पाठकों के प्रति

कवीर की कथा अकथ है। उनका साहित्य अथाह है। प्रस्तुत पुस्तक इसी अथाह की थाह लेने का एक विनम्र प्रयास है।

कवीरदास की रचनाओ को लेकर कई ग्रन्थो का सपादन किया गया है। डा० श्यामसुन्दरदास द्वारा सपादित 'कबीर ग्रन्थावली' मे हमको कवीरदास के काव्य का सर्वाधिक प्रामाणिक स्वरूप प्राप्त होता है। प्रस्तुत पुस्तक को लिखते समय उक्त 'कबीर ग्रन्थावली' को ही आधार माना गया है।

कबीरदास और कवीर साहित्य को लेकर वहुत कुछ लिखा जा चुका है और आगे भी लिखा जाएगा। उनकी ग्रन्थावली पर टीकाएँ, 'सजीवन भाष्य' आदि कई ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। सवमे कवीर के काव्य को समझने-समझाने का प्रयत्न किया गया है। इनमे प्रत्येक का अपना निजी महत्व है।

कबीर के काव्य पर लिखी गई अधिकाश टीकाओ मे प्राय छन्दो के भावार्थ ही दिए गए हैं। अप्रचलित शब्दो तथा दुरूह पदावली को या तो छोड दिया गया है अथवा भावार्थ लिखकर विषय को चलता कर दिया गया है। इससे न तो पूरे छन्द की सगति ही वैठती है और न उसका अर्थ ही स्पष्ट होता है। ऐसी स्थिति मे जिज्ञासु पाठक की सतुष्टि नही हो पाती है और कवीर का काव्य कठिन, दुरूह, नीरस एव अटपटा कह दिया जाता है।

मेरी धारणा है कि कवीर को जीवन और जगत का व्यापक अनुभव था। उनकी आध्यात्मिक अनुभूति अत्यन्त गहरी थी। अनुभूतिजन्य पारलौकिक ज्ञान को देश-काल द्वारा आवद्ध लौकिक भाषा मे व्यक्त करना यदि असम्भव नही, तो दुष्कर अवश्य है। इसी कारण विश्व-चेतना प्रसूत ज्ञान को जब वैयक्तिक चेतनापरक मन ग्रहण करता है, तो उसमे रहस्यात्मकता का समावेश स्वभावत हो जाता है। फलत अभिव्यक्ति भी रहस्यात्मक हो जाती है, और वौद्धिकता की कसौटी पर कसने पर वह प्राय अपूर्ण ही प्रतीत होती है। कवीर का काव्य वहुत कुछ इसी प्रकार का है। उनके काव्य को समझने के लिए हृदय की आँखें आवश्यक हैं। उनका काव्य बुद्धि-विलास की वस्तु न होकर ध्यान और अनुभव का विषय है। कवीर स्वयं कहना चाहते हैं— इस

प्रश्न का उत्तर खोजने पर ही उनकी वाणी का अर्थ खुलता है, अन्यथा वह अकथ कथा ही बना रहता है। अर्थ खुल जाने पर अध्येता चमत्कृत हो उठता है और काव्य के उपकरणों की झंकार अनहद नाद के समान उसके कानो में गूंजने लगती है। मैंने कबीर के काव्य को इसी रूप मे देखने दिखाने का प्रयास किया है। यह बात दूसरी है कि मैं अपने पात्र को लघुता के अनुरूप ही उनके साहित्य-सागर का रस प्राप्त कर सका हूँ।

मैंने प्रत्येक शब्द का अर्थ दिया है, प्रत्येक छद का सदर्भ दिया है और तब भावार्थ लिखा है, जिससे पाठक के सम्मुख अथ सम्बन्धी किसी प्रकार की उलझन न रह जाये। कबीर ज्ञानी भक्त और भक्त योगी थे। इसी मान्यता के आधार पर मैंने उनके द्वारा प्रणीत प्रत्येक छन्द के अर्थ की आद्यन्त सगति स्थापित करने की चेष्टा की है। आशा है सहृदय पाठको को अर्थ समझने मे विशेष कठिनाई नही होगी।

भावार्थ के पश्चात अलकारो का निर्देश कर दिया गया है और उसके नीचे कबीर के मन्तव्य एव उनकी चिन्तन-पद्धति को स्पष्ट करते हुए 'विशेष' के अन्तर्गत आवश्यक टिप्पणियाँ दे दी गई हैं।

मुझे विश्वास है कि इस टीका को पढने के बाद कबीर का काव्य दुरूह और अटपटा नही लगना चाहिए। वह वाणी के लिए अकथ रहा है और आगे भी रहेगा। मेरी क्या सामर्थ्य है, जो उसको कथनीय बना सकूँ?

प्रकाशन केन्द्र लखनऊ के स्वामी श्री पद्मधर मालवीय के प्रति मैं विशेष आभारी हूँ जिनकी कृपा के फलस्वरूप इस पुस्तक का प्रकाशन सम्भव हो सका है।

इस समय मै केवल कबीर के पदो और उनकी रमैणियो पर ही लिख सका हूँ। उनकी "साखियो" को लेकर फिर कभी विज्ञ पाठको के सम्मुख उपस्थित होऊँगा।

कबीर की अकथ कथा को अपनी सामर्थ्य के अनुसार वर्णन करके मैंने आत्म-सतोष का अनुभव किया है। आशा है हमारे सुधी पाठक भी इसको पढ कर सतुष्ट होगे।

आगरा
कार्तिक पूर्णिमा
संवत् २०२८

विनीत—
राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी

श्रद्धेय बाबू जी

के

अदृश्य चरणों

पर

सादर, सविनय, सप्रेम

समर्पित

प्राक्कथन

कवीर साहित्य अपनी विभिन्न विशेषताओ के कारण हिन्दी-साहित्य मे महत्वपूर्ण स्थान रखता है। सहजता, सरलता, स्वाभाविकता की दृष्टि मे यह अद्वितीय है। कवीर अपने युग के सर्वाधिक चेतनशील प्राणी थे। उनकी वाणी मे युग की प्रवृत्तियो की प्रतिध्वनि और समस्याएं मुखरित हैं। उनका साहित्य, उनके समाज सुधारक, धर्म सुधारक, क्रान्तिकारी और अद्भुत समन्वयकारी रूप को प्रस्तुत करता है। कवियो के आलोचक और निन्दक कवीर स्वतः महाकवि, अद्भुत काव्य शक्ति से सुसम्पन्न, सम्वेदनशील महाकवि थे। कवीर की सवमे वडी विशेषता यह है कि वे जितने वड़े महाकवि थे, उतने वड़े महामानव भी। अन्तस और मानसिक परिस्थितियो को प्रभावित करने की उनमे अद्भुत क्षमता थी। वे समाज के उन्नायक सत्य के गायक और उच्चकोटि के आत्मदर्शी थे। उनकी अभिव्यजना शक्ति वडी शक्तिशाली और प्रवल थी। वे सन्तमत के प्रवर्त्तक थे और दलित वर्ग के सवमे वडे हिमायती थे। उनके साहित्य की उपयोगिता इसी वात से अनुमानित हो सकती है कि आज का युग पुरुष, जननायक, महामना, उदारचेता मनस्वी गाँधी भी उनसे प्रभावित था।

कवीर-साहित्य, कवीर-दर्शन और कवीर की साखियाँ की विवेचना और टीका अनेक विद्वानो ने की हैं। इस दिशा मे यह एक और अभिनव प्रयास है। महाकवि तुलसीदास ने सत्य ही कहा है कि—

"सब जानत प्रभु प्रभुता सोई।
तदपि कहे विनु रहा न कोई॥"

इस टीका या भाष्य मे लेखिका ने कवीर-साहित्य के सम्बन्ध मे अपनी अनुभूति और प्रतिक्रिया को व्यक्त करने की चेष्टा की है और इस वात का प्रयत्न किया है कि पाठको को कवीर की आत्मा के दर्शन सही रूप मे कराये जा सकें।

लेखिका ने अनुभव प्राप्त जिन विद्वान लेखको, आलोचको की रचनाओं का उपयोग किया है, उनके प्रति हृदय से कृतज्ञता प्रगट करती है।

१५ जुलाई, १९६८ सावित्री शुक्ल

विषय-सूची

भूमिका

वीरगाथा काल के अवसान काल मे हिन्दी काव्य-धारा की दिशा मे अभिनव परिवर्तन के लक्षण परिसूचित होने लगे। मुसलमानो की तलवार के पानी मे हिन्दू जनता निमग्न होती जा रही थी। मुसलमानो की प्रबल पराक्रम, आतंक, और ध्वन्सात्मक प्रतिभा के समक्ष हिन्दू जनता का ठहर पाना दुस्तर हो रहा था। महमूद गज़नवी के सत्रह हमलो ने ध्वस सोमनाथ की छिन्न-भिन्न मूर्ति के समक्ष हिन्दुओ का विश्वास, आस्थाएं और धार्मिक भावनाएं शतशः खण्डो मे विच्छिन्न होकर धून धूसरित हो रही थी। मुसलमानो की बढ़ती हुई शक्ति, फहराती हुई इस्लाम की ध्वजा और विनाशकारी गति के समक्ष हिन्दुओ के अस्तित्व पर प्रश्न-वाचक चिन्ह अंकित हो गया। उत्तर-पश्चिम से आक्रमणकारियो की बढनी हुई फौजो ने हिन्दू-राष्ट्र, हिन्दू जाति, और हिन्दू धर्म के अस्तित्व को धूल-धूसरित कर डाला। हिन्दुओ के पास न जन-बल था, न आत्मबल न सघबल वे किस साहस पर और किस आधार पर मुसलमानो की केन्द्रीभूत सत्ता का सामना करते। मुसलमानो के शौर्य और संगठन के समक्ष हिन्दुओ का जन-बल और आत्म-बल क्षीण पडता जा रहा था, उनकी स्थिति व परिस्थिति न केवल शोचनोय थी वरन् अनिश्चित भी थी। अलाउद्दीन खिलजी के उद्भव, विकास और उत्कर्ष होते-होते उत्तरी-भारत मुसलमानो के अधिपत्य मे आ चुका था। और दक्षिण-भारत की स्थिति भी सुरक्षित नही थी। देवगिरि के शासक रामचन्द्र को पद्दलित करके उसके राज्य को अपनो सीमा मे मिला लिया। वारंगल, होयसिल, महाराष्ट्र, कर्नाटक की राज्य सीमाओ को अलाउद्दीन ने अपनी सीमा मे सम्मिलित कर लिया। दक्षिण मे कृष्ण और तुंगभद्र के मध्यस्थ सीमा पर अधिकार सम्प्राप्त करने के लिए विजय नगर और बहमनी राज्यो मे सघर्ष चलता रहता था। सिन्धु-प्रदेश यद्यपि राजपूतों के अधिकार मे था, फिर भी मुसलमानो की आतंक पूर्ण छाया से उन्मुक्त नही थी। समस्त देश पर मुसलमानों का प्रभाव क्रमशः बढ़ता जा रहा था। हिन्दुओं के हृदय मे भय की भावना बढ़ती जा रही थो और वे मुसलमानो से लोहा लेने की अवस्था से दूर होते जा रहे थे। चारणो के स्वर क्रमशः क्षीण होते जा रहे थे और उनके स्थान पर भारतोय जनता निर्बल के बल राम की शरण मे चली जा रही थी। क्रमशः वीरगाथा काल की उत्तेजना पूर्ण ओज से समन्वित चुनौती के स्वर क्षीण होते गए और उनका स्थान खंजरी और माला ने लिया। हिन्दुओं की अवस्था,

विवशता से पूर्ण और असहाय अवस्था से अभिशप्त थी वे वर्तमान और समक्ष विद्यमान अभिशापों से मुक्ति पाने के लिए 'अशरण-शरण' निर्गुण, निर्विकार, निर्विकल्प ब्रह्म की शरण मे पहुँचने की चेष्टा कर रहे थे। क्रमशः हिन्दुओ का जीवन परिवर्तित होता जा रहा था। उनके मन्दिर मूर्तियो के ध्वंस हो जाने के कारण शून्य और छिन्न-भिन्न अवस्था मे पड़े थे। वे किस भावना को लेकर मन्दिरो मे प्रवेश करते? हिन्दुओ की सामाजिक, सास्कृतिक, धार्मिक और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर बहुमुखी प्रतिबन्ध लगा दिए गए थे। उनकी रसमयी जीवनधारा नीरस और शुष्क होने लगी थी। उनका राजनीतिक दृष्टिकोण निराशा के तिमिर से आच्छादित होता जा रहा था। जब बीर ही न रहे तो चारण किसकी गाथा गाते और किसको सुनाते? राजनीतिक वातावरण क्रमशः शान्त होता चला जा रहा था। ऐसे वातावरण मे हिन्दू जनता निर्गुण ब्रह्म की शरण मे जाने का प्रयास करने लगी। निर्गुण ब्रह्म की कल्पना बड़ी उदात्त, उदार, विशाल थी। मुसलमानो का शासन, मूर्ति-उपासना के बिल्कुल विरुद्ध था। इसलिए देश की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियो को देखते हुए निर्गुण ब्रह्म की उपासना ही इस जटिल समस्या का हल था। कबीरदास संतमत के प्रवर्त्तक थे। उन्होने हिन्दू धर्म के मूल सिद्धान्तो को इस्लाम धर्म के आधारभूत सिद्धान्तो के साथ समान स्तर पर रखकर एक नए मत, एक नए पंथ की कल्पना की जिसमे ईश्वर एक अद्वैत, सगुण-निर्गुण से परे, निराकार, निर्विकार, निर्विकल्प और अनादि था। इस प्रकार के ब्रह्म की कल्पना न हिन्दुओ के लिए नई थी और न मुसलमानो के लिए। उपनिषदो मे ऐसे ही ब्रह्म की उपासना का उपदेश दिया गया है। इस्लाम भी इस प्रकार के ब्रह्म की कल्पना से सवर्था परिचित था दोनो ही धर्मों के मिश्रण से एक अभिनव पंथ का स्वरूप प्राप्त हुआ, जो सतमत के नाम से भारतीय धर्म-साधना के इतिहास मे, और हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे परिचित और विख्यात हुआ। सच बात यह है कि सतमत के विकसित होने, फूलने-फलने और प्रचारित होने का बहुत कुछ श्रेय इस्लाम धर्म को हैं। इस मत मे साधना का सच्चा, सरल, शुद्ध और कल्याणकारी स्वरूप, भारतीय जनता को दृष्टिगत हुआ। इस मत के कल्याणकारी सीमा मे बाह्याचार, काया-प्रक्षालन, मूर्ति-पूजा, व्रत, तीर्थ बाग-नमाज सब कुछ हराम है, निषिद्ध है, और प्रसन्नता की बात यह है, कि यह मत हिन्दू-मुसलमान दोनो को ही सुसाध्य और सरल प्रतीत हुआ। कर्मकाण्ड की वे दुरुहताएं, जटिलताएं और विषमताएं जो हिन्दू और इस्लाम धर्म मे विद्यमान थी यहाँ पर मान्यता न प्राप्त कर सकी। संतमत मे दोनो धर्मों के सार तत्वो को सिद्धान्त के रूप मे ग्रहण कर लिया गया।

संतमत मे ब्रह्म की कल्पना बडो स्पृहणीय है। वह एक, अद्वैत, निर्गुण, निर्विकार, निर्विकल्प, अनादि, अनन्त, अजन्म, अजात, अमर, अनाम और अभेद

है। वह सगुण और निर्गुण से परे है। वह अनिर्वचनीय है, वह अलख और निरजन है। संसार के कण-कण मे वह परिव्याप्त है। ब्रह्म की अनुभूति सद्गुरु की कृपा से ही होती है। संतमत मे माया त्रिगुणात्मक है वह साधना मे वाधक है। माया दो प्रकार की मानी गई है, एक विद्या और दूसरी अविद्या। अविद्या माया से ग्रसित प्राणी सासारिक भोग विलासो मे अनुरक्त रहता है। और विद्या सृष्टि की सृजनात्मक शक्ति है, ईश्वर प्राप्ति मे सहायक है। अविद्या माया 'खाड' के समान मधुर है।

जगत—सन्त काव्य मे जगत का जो स्वरूप विकसित हुआ है वह क्षण-भंगुरता से परिपूर्ण है। यह जीवन नश्वर है और संसार अस्थिर हैं। संसार के कण-कण मे ब्रह्म व्याप्त है और संसार उस ब्रह्म मे पूर्णतया परिव्याप्त है। कबीर ने स्वतः कहा है--

खालिक खलक खलक मैं खालिक।
सब घट रह्यौ समाई।
लोक जानि ना भूलो भाई॥

सन्त साहित्य मे इसी जगत की प्रस्थापना हुई है।

सन्त मत के प्रवर्तक कबीर थे कबीर का व्यक्तित्व युग प्रवर्तक और महान था कबीर जिस युग मे अवतरित हुए थे वह विडम्बनाओ, विषमताओ और विविध प्रकार के पारस्परिक विरोधो का युग था।

कबीर का युग

कबीर का आविर्भाव-काल एक संदिग्ध विषय है। इस सम्बन्ध मे स्पष्ट अन्तर्साक्ष्य प्रमाण नही उपलब्ध है। कबीर के पदो मे केवल दो स्थानो पर तत्कालीन आविर्भावकाल—शासक सिकन्दर लोदी के अत्याचार का उल्लेख मिलता है।

प्रथम संकेत रागु गौंड के चतुर्थ पद मे हुआ है और द्वितीय रागु भैरव[1] के अट्ठारहवें पद मे। इन पदो मे काजी द्वारा कबीर पर हाथी चलवाने तथा जंजीर मे बांध कर गंगा मे डुबाने के प्रयत्न का वर्णन है। परन्तु इन दोनो पदो मे सिकन्दर लोदी के नाम का कहीं भी उल्लेख नही मिलता है। परची आदि ग्रंथो मे सिकन्दर लोदी ने जो-जो अत्याचार किए थे, उनमे उपर्युक्त दोनो घटनाएं सम्मिलित हैं। अतः

१—भुजा बांधि मिलाकर डारिओ। हसती क्रोपि मूंड महि मारिओ ॥
हसती भागि कै चीसा मारै। इआ मूरति कै हउ बलिहारै ॥
आहि मेरे ठाकुर तुमरो जोरु। काजी बकिबो हसती तोरु ॥१॥
रे महावत तुमु डारउ काटि। इसहि तुरावहु घालहु साटि ॥
हसती न तोरै धरै धिआनु। वाकै रिदै बसै भगवानु ॥२॥
किआ अपराधु संत है कीन्हा। बांधि पोटि कुंचर कउ दीन्हा ॥
कुंचरु पोट लै लै नमसकारै। बूझी नहीं काजी अंधियारै ॥३॥
तीनि बार पतीआ भरि लीना। मन कठोरु अजहू न पतीना ॥
कहि कबीर हमरा गोबिन्दु। चउथे पद महि जनका जिन्दु ॥४॥
(राग गौंड ४)

तथा—

गंग गुसाइनि गहरि गम्भीर। जंजीर बांधि करि खरे कबीर ॥
मनु न डिगै तनु काहे कउ डराइ। चरन कमलचित रहियो समाइ ॥१॥
गंगा की लहरि मेरी टुटी जंजीर। मृगछाला पर बैठे कबीर ॥
कहि कबीर कोउ संग न साथ। जल थल राखन है रघुनाथ ॥
(रागु भैरउ १८)

—सन्त कबीर

—डा० रामकुमार वर्मा

यहाँ पर इन दोनो घटनाओ को सिकन्दर लोदी के अत्याचारो के अन्तर्गत मानने मे अनुमान किया जा सकता है। 'आहि मेरे ठाकुर तुमरा जोरू' और 'गंगा की लहरि मेरी टुटी जंजीर' जैसी पंक्तियो से ज्ञात होता है कि कबीर ने अपने अनुभवो का वर्णन स्वयं ही किया है।[1] यदि उपर्युक्त दोनो पदो (रागु गौंड ४ तथा भैरउ, १८) को प्रामाणिक मान लिया जाय तो कबीर को सिकन्दर लोदी का समकालीन माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त कोई भी अन्तर्साक्ष्य नही उपलब्ध होता है।

कबीर को सिकन्दर लोदी का समकालीन सिद्ध करने वाले कुछ बहिर्साक्ष्य प्रमाण भी हैं। रेवरेन्ड के, बील, फर्कहर, मेकालिफ, बेसकट, स्मिथ, भण्डारकर, ईश्वरी प्रसाद[2], तथा रामकुमार वर्मा[3] आदि विद्वान भी इस मत से सहमत हैं कि कबीर और सिकन्दर लोदी समकालीन हैं। इनके अतिरिक्त प्रियादास जी[4] ने भी कबीर और सिकन्दर को समकालीन माना है। अतः कबीरदास का युग पन्द्रहवी शताब्दी मानना असंगत न होगा। इस समय लोदी वंश के शासक सिकन्दर का राज्य था। लोदी वश से पूर्व भारतवर्ष पर गुलाम, बलबन, खिलजी, तुगलक, तथा सैयद वंश राज्य कर चुके थे। कबीरदास से पूर्व प्रायः तीन सौ वर्षों तक मुसलमान इस देश पर राज्य कर चुके थे। राजनीतिक क्षेत्रो मे मुसलमानो का ही प्रभुत्व रहा। इन तीन सौ वर्ष के मुसलमानी शासन काल मे भारतवर्ष की धार्मिक, सास्कृतिक, राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक दशा का ह्रास हो गया था। मुसलमानो की विकास शक्ति और धर्म ने देश का दृष्टिकोण ही बदल दिया। मध्य देश मे भी मुसलमानी तलवारो का पानी अनेक हिन्दू राज्यो के सिंहासन डुबो चुका था। हिन्दू राजाओ के पास न बल था, न साहस और न ऐक्य।

सिकन्दर की शक्ति, अधिकार और महत्वाकाक्षा निःसीम थी। उसके लिए कोई नियम नही था। देश का राज्य उसकी इच्छा और मन पर निर्भर था। देश की जनता और विशेष रूप से हिन्दू उसकी कृपा-कोर के आकाक्षी बने रहे। जनता के अधिकारो का कोई अस्तित्व नही था। उसके जीवन की सब से बड़ी सार्थकता थी शासक की आज्ञा पालन करना। सिकन्दर की राजनीति पर भी धार्मिक आदर्शों का प्रभाव था। जहाँ भी हिन्दुओ का कोई विद्रोह होता था वहाँ हिन्दुओ को जो दण्ड

१–हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३३४।

२–हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ३३५।

३–सन्त कबीर पृ० ३८।

४–भक्तमाल की टीका, प्रियादास।

मिलता था वह तो था ही साथ ही उस क्षेत्र के सभी मन्दिर नष्ट करा दिए जाते थे। बात यहीं नहीं समाप्त हो जाती थी वरन् मन्दिरो के स्थान पर मसजिदो का निर्माण करा दिया जाता था।

सक्षेप मे कबीर के युग की राजनीतिक परिस्थिति, अस्थिरता, विश्वासघात, धार्मिक संकीर्णता तथा अमानुषिक अत्याचारो की कथा है। राजनीतिक विद्रोह अशाति और प्रतिहिंसा की छाप सर्वत्र अकित है। कबीर एक सहृदय व्यक्ति थे। इनके राजनीतिक प्रपंचो ने कबीर को संसार विषयक क्षणभगुरता की भावना को और भी दृढ कर दिया। उन्होने तत्कालीन शूर वीरो को सम्बोधित करके कहा कि तीर तोप से लड़ना शौर्य नही, शूर धर्म का निर्वाह वह व्यक्ति करता है जो माया के बन्धनो से मुक्त होकर आध्यात्मिक पथ पर अग्रसर हो। तत्कालीन जनता की भौतिकता भी कबीर को पसन्द नहीं आई। वे तत्वदर्शी थे। जानते थे कि जो कुछ भी भौतिक है वह क्षणिक है और इसीलिए उन्होने भौतिकता और माया से दूर रहने के लिए बार-बार सचेत किया। कबीर ने अपने युग मे जनता की स्वार्थपरता और धनलिप्सा की भी बडी निन्दा की है। इन्होने उदार वृत्ति और सन्तोष धारण करने की आवश्यकता पर भी जोर दिया।

कबीर से पूर्व भारतवर्ष की राजनीतिक दशा पर ऊपर विचार हो चुका है। विगत पृष्ठो को देखने से प्रकट हो जाता है कि १२०० से १३०० ई० तक देश की दशा कितनी विषम बनी रही। हिन्दू समाज, हिन्दू सस्कृति पर निरन्तर आक्रमण हो रहे थे। हिन्दू धर्म को नष्ट कर देने के लिए साम, दाम, दड और भेद आदि सभी उपायो से प्रयत्न किया गया।

धार्मिक परिस्थिति

हिन्दुओ की इस गम्भीर, विषम शोचनीय और नित्य ही परिवर्तनशील दशा मे हिन्दुओ का धर्म संकट मे पड चुका था। उनके राम जनता के हृदय और मस्तिष्क से विलग हो चले थे। परिस्थिति इस बात की द्योतक थी कि मूर्ति-उपासक कितने निर्बल, अशक्त और सकट मे थे और दूसरी ओर मूर्ति-भजक कितने बलवान और कितने ऐश्वर्यवान् हैं। मूर्तिभंजको को सुख और ऐश्वर्य के पालने मे झूलते हुए देख कर हिन्दुओ का मूर्ति-पूजा से विश्वास उठ रहा था। वे उसकी निःसारता स्पष्ट रूपेण समझ चुके थे। फलत' महान् सघर्ष और क्रान्ति के इस युग मे एक ऐसे धार्मिक आन्दोलन की आवश्यकता थी जो देश के निवासियो को अन्धकार मे प्रकाश दिखा सके। निराशा मे आशा का सचार कर सके। इस आवश्यकता की पूर्ति वैष्णव आन्दोलन ने की। इस आन्दोलन मे परब्रह्म के लोक रक्षक लोक-पालक स्वरूप को विष्णु के रूप में प्रतिष्ठा करके, उनकी सरल भक्ति का मार्ग निराश हृदयों को प्रदर्शित किया गया।

प्रस्तुत वैष्णव आन्दोलन की प्रेरणा और प्रयत्न से निराश हिन्दुओ मे एक बार पुनः धार्मिक जाग्रति उत्पन्न हुई। समय-समय पर इस आन्दोलन के भी उपास्य देवो के स्वरूप मे परिवर्तन होता रहा। फिर भी इसके मूल मे एक भावना बराबर रही और वह भावना थी परब्रह्म के सर्वव्यापी एवं अन्तर्यामी स्वरूप की।

रामानन्द ने लोक-रक्षक 'राम' की प्रतिष्ठा की। रामानन्द की इस 'राम' भक्ति के महान् स्रोत्र से दो धाराये फूट निकली। प्रथम धारा थी 'राम' के सगुण रूप की, इस धारा मे नाभादास, तुलसीदास आदि प्रतिभावान व्यक्ति हुए और द्वितीय धारा मे 'राम' के निर्गुण रूप की उपासना हुई जिसके प्रचारक नामदेव, कबीर आदि सत हुए। इन सन्तो ने अपने सम्प्रदाय मे योग की क्रियाओ को भी स्थान दिया पर सामान्य जनता ने इनके सरल उपदेशो को ग्रहण किया। इन सन्तो ने उपासना के लिए निर्माण 'ब्रह्म' का आश्रय ग्रहण किया और इस भावना ने जातीय, सास्कृति तथा धार्मिक मतभेद के लिए अवशेष अवसर भी समाप्त कर दिये।

हिन्दू धर्म मे बाह्य प्रभावो के अतिरिक्त दोष भी व्याप्त हो गये थे। धर्म के पवित्र रूप को बाह्याडम्बरो ने आच्छादित कर लिया। सद्विश्वासो का स्थान अन्धविश्वासो ने ग्रहण कर लिया। अहिंसा, त्याग और सत्य का स्थान बलिदानो के रूप मे हिंसा तथा ढोग ने ले लिया। सक्षेप मे कबीर के युग तक हिन्दू धर्म अनेक दोषो से पूर्ण था। साधना के स्थान पर बाह्याचार की प्रतिष्ठा हो रही थी। कबीर तथा अन्य कवियो ने इन दोषो को कड़ी आलोचना की है। उन्होने अपने व्यङ्ग बाणो के द्वारा तत्कालीन जनता की मनोवृत्ति और धर्म के अंधकारपूर्ण पक्ष का चित्रण किया है।

समाज मे बाह्याडम्बर बढ रहे थे। जनता की अध-विश्वासो पर अत्यधिक श्रद्धा थी। भूत-प्रेतो पर विश्वास की भावना का प्रसार जनता मे हो रहा था।

सामाजिक परिस्थिति

संक्षेप मे कबीर के समय मे भारतीय समाज अनेक प्रकार के दोषो से युक्त था। कबीर ने जिस प्रकार धार्मिक विश्रृंखलाओ को दूर करने का प्रयत्न किया उसी प्रकार सामाजिक रूढियाँ और दोषो को निकाल फेंकने के लिए प्रयत्न किया। समाज मे व्याप्त हिन्दू, मुसलमानो की भेद भावना के विरोध मे कबीर ने बार-बार समता और एकता का उपदेश दिया। कबीर ने तत्कालीन जनता को समझाया कि हिन्दू मुसलमान एक ही कर्ता की दो कृतियाँ हैं, इनमे भेद नही है। इसी प्रकार 'राम' 'रहीम' एक ही ईश्वर के दो नाम हैं। केवल नामो का भेद

अनादि शक्ति को द्वैत नही सिद्ध कर सकता है। इस प्रयत्न से कबीर ने दोनो धर्मावलम्बियो के हृदयस्थ भेद भाव की संकीर्णता दूर करने का प्रयत्न किया। तत्कालीन जनता मे व्याप्त असंतोष तथा प्रतिहिंसा की प्रवृत्ति के विरुद्ध भी कबीर ने सन्तोष और क्षमा का उपदेश दिया। उन्होने क्षमावान् को परब्रह्म की रूप बताया। तत्कालीन यवनो की हिंसा-प्रधान प्रवृत्ति का विरोध करते हुए कबीर ने जनता को अहिंसा और दया का उपदेश दिया। जब सभी एक ही 'साँई' की सन्तान हैं तो किस पर दया की जाय और किस पर निर्दयता। विजेता वर्ग के अत्याचारो से उत्पीडित हिन्दू जनता को भी कबीर ने धैर्य रखने का उपदेश दिया। उन्होने स्पष्ट शब्दो मे कहा 'धीरे-धीरे मना धीरे सब कुछ होय।' इसी प्रकार कबीर ने अपने समकालीन समाज को उदारता की भी उपयोगिता बताई। कबीर ने जनता के लोभ, क्रोध, मोह, कपट तृष्णा आदि विषयो पर विचार प्रकट किये हैं। वास्तव मे कबीर समाज को परिष्कृत और दोषरहित रूप मे देखना चाहते थे।

कबीर से पूर्व और कबीर के युग मे नारी का जो चित्र हमे साहित्य, धर्म तथा इतिहास मे मिलता है वह अत्यन्त विवशता का चित्र है। तत्कालीन जनता की भोग-लिप्सा देख कर कबीरदास ने बारम्बार भोग-विलास से दूर रहने का उपदेश दिया। उन्होने कहा कि पंडित और मूर्ख दोनो 'काम' मे लिप्त[1] हैं। 'काम मे लिप्त मनुष्य कभी भी 'हरि नाम' की साधना नही कर सकता है जिस प्रकार सूर्य और अन्धकार एक स्थान पर नही एकत्रित हो सकते[2] है। इस प्रकार मानव को भोग-लिप्सा और कामुकता की बडी आलोचना की। अपनी पतिव्रता स्त्री का परित्याग कर स्त्री से प्रेम करने वालो का सम्बोधित कर कबीर कहते हैं कि 'दूसरे की स्त्री, चाहे वह सोने ही की क्यो न हो, उससे दूर रहना चाहिए, नही तो रावण के समान विनाश अवश्यम्भावी है[3]। इसी प्रकार बडे प्रभावशाली शब्दो मे कबीर ने इस प्रवृत्ति की आलोचना की। कबीर के युग मे नारी भोग-विलास को वस्तु बन गई

नारी (margin)

१—काम क्रोध मद लोभ की जब लग तट मे खान।
कहाँ मूर्ख कहँ पण्डिता दोनो एक समान।

२—जहाँ काम तहँ नाम नहि जहाँ नाम नहि काम।
दोनो कबहूँ ना मिले रवि रजनी एक ठाम॥ कबीर ग्र० पृ० ४८

३—परनारी पैनी छुरी विरला बाचै कोय।
ना वहि पेट सचारिये सर्व सोन की होय॥
रावन के दस सिर गए पर नारी के संग। कबीर ग्र०, पृ० ५५-५६

थी । इसलिए उन्होने नारी के भोगमय स्वरूप की बड़ी निन्दा की है । आध्यात्मिक पथ से भ्रष्ट करने के कारण कबीर ने स्त्री को सर्पिणी के समान भयंकर[1] व्याघ्र के समान घातक[2] तथा भक्ति एवं मुक्ति से पतित करने वाली[3] कहा है । स्थान-स्थान पर कबीर ने नारी को माया आदि शब्दो से भी सम्बोधित किया है । परन्तु साथ ही कबीर ने नारी के कल्याणकारी रूप का समर्थन भी किया है । कबीर ने सती स्त्री की प्रशंसा की[4] है कारण कि उसका हृदय और मन पवित्र रहता है । यह पति के साथ अपनी जीवन लीला समाप्त कर देती है । इसी प्रकार कबीर ने पति-व्रता नारी का भी बडा समर्थन किया है । कबीर के लिए मैली-कुचैली पतिव्रता भी वन्दनीय है ।[5] पतिव्रता नारी को कबीर ने शूर और दोनो के समान उच्च और अभिनन्दनीय माना है[6] । सक्षेप मे कबीर ने नारी के उस स्वरूप की निन्दा की जो मानव को आध्यात्मिक पथ पर अग्रसर होने मे रोकता है । यदि वह इस दोष से रहित है तो वह सर्वथा वन्दनीय है ।

आर्थिक परिस्थिति

मुसलमानो के आक्रमण, अकाल, अनावृष्टि, लुटेरो तथा विजेता वर्ग के शोषण ने कबीर के समय तक देश को नितान्त कंगाल बना दिया था । इसका प्रभाव मध्यवर्ग, निम्नवर्ग और किसान तथा मजदूरो पर विशेष रूप से पडा । आर्थिक विनाश और अन्नाभव के कारण जनता के लिए जीवन का प्रश्न अत्यन्त विषम वन गया । जनता के इन वर्गों के लिए ईश्वर के अतिरिक्त और किसी का सहारा नही था । इसलिए कबीर ने तत्कालीन जनता को सन्तोष धारण करने का उपदेश

१—कामिनी सुन्दर सर्पिणी जो छेड़ै तेहि खाय ।
जो गुरुचरन न राचिया तिनके निकट न जाय ।।

२—नैनो काजर पाइ कै गाढे वाधे केस ।
हाथो मेहदी लाइ के वाघिनि खाया देस ।।

३—नारि नसावै तीन गुन जो नर पासे होय ।
भक्ति-मुक्ति निज ध्यान मे पैठि न सक्कै कोय ।।

४—सती न पीसै पीसना जो पीसै सो राड ।
साधू भीख न मांगही जो मांगै सो भांड ।।

५—पतिवरता मैली भली काली कुचित कुरूप ।
पतिवरता के रूप पर वारो कोटि सरूप ।।

६—सूरा के तो सिर नही दाता के धन नाहि ।
पतिवरता के तन नही, सुरति वसै पिउ माहि ।।

दिया। कारण कि, सन्तोष गजधन, वाजिधन और रत्नधन आदि सभी धनो से श्रेष्ठ है[1]। कबीर ने मानव-सुलभ तृष्णा की भी आलोचना की, क्योंकि तृष्णा ही मनुष्य का वास्तविक काल है[2]। तृष्णावान् मानव कही भी शान्ति नही प्राप्त कर सकता है। शोषण के विरुद्ध भी कबीर ने जनता को उपदेश दिया।[3] कबीर ने स्थान-स्थान पर गरीबी की सराहना की है। उन्होने गरीब को "द्वितिया के चन्द्र के समान" वन्दनीय बताया है[4]। कारण कि गरीब स्वय सभी के उत्पीडन को सहन करता है और प्रतिकार मे किसी को कष्ट नही पहुँचाता है। वह स्वयं अपने ठगाने मे सुख का अनुभव करता है। गरीबी सबसे अच्छी है कारण कि लघुता से ही मनुष्य महत्ता की ओर अग्रसर होता है। कबीर ने उस धन को अभिशाप माना है जिससे ईश्वर के भजन मे बाधा पडे। इस प्रकार समय की आवश्यकतानुसार कबीर ने सन्तोष और दीनता का महत्व प्रदर्शित करके दीन और भुक्तभोगी जनता को अपनी स्थिति मे ही स्थिर रहने और ईश्वर प्रेम मे रत रहने का उपदेश दिया।

साहित्य मे धार्मिक स्थिति के चित्रण की परम्परा सरहपा से आरम्भ होती है। सरहपा के समय मे पाखंड और बाह्याडम्बरो की अधिकता थी। उन्होने ब्राह्मण, वेद, साहित्य दण्डी, यज्ञ, यन्त्र मन्त्र आदि की आलोचना की है।

जिससे ज्ञात होता है कि आठवी शताब्दी मे ही धर्म के क्षेत्र मे बाह्याडम्बर और पाखण्ड समाविष्ट हो गए थे। सरहपा के पश्चात् दसवी शताब्दी के कवियो मे से तिलोपा काव्य मे तत्कालीन धार्मिक स्थिति का चित्रण उपलब्ध होता है। तिलोपा के समय मे धर्म के मूल सिद्धान्तो को त्यागकर जनता तीर्थ, तप, बहुदेवोपासना मे लग रहे थे तथा साधक भोगी हो रहे थे। योगीन्दु (१००० ई०) के समय तक ये दोष कुछ और भी बढ गए। इस समय की जनता विभिन्न 'पंथो' और

---

(१) गोधन गजधन बाजिधन और रतन धन खान।
जब आवै संतोष धन सब धन धूरि समान॥

(२) को त्रिस्ना है डाकिनी की जीवन का काल।
और और निस दिन चहै जीवन करै निहाल॥

(३) कबिरा आप ठगाइये और न ठगिए कोय।
आप ठगे सुख ऊपजै और ठगे दुख होय॥

(४) सब ते लघुताई भली लघुता से सब होय।
जस दुतिया को चन्दमा सीस नवै सब कोय।

'सम्प्रदायो' मे भटक रही थी। शिक्षित समुदाय मानवता के धर्म को विसार कर 'पोथी पत्र' को ही धर्म समझ बैठा था। रामसिंह, योगीन्दु के समकालीन थे। इन्होने भी पाखंड के उन बहुत से चित्रो की अभिव्यक्ति अपने काव्य मे की है जो तत्कालीन धर्म और समाज मे व्याप्त थे। उन्होने उन 'मुण्डियो' का वर्णन किया है जो मुक्ति की आशा मेसिर मुंडाए हुए घूमघूमकर जगत् को धोखा देने के साथ ही अपनी आत्मा को भी धोखा देते फिरते थे। कवि रामसिंह ने इन व्याप्त दोषो को बहुत निकट से देखा था। इन उपर्युक्त कवियो के समान ही नाथ सम्प्रदाय के प्रसिद्ध कवि गोरखनाथ के काव्य मे भी तत्कालीन धर्म मे व्याप्त दोषो तथा पाखण्डो का अच्छा चित्रण मिलता है। गोरखनाथ के समय मे ब्राह्मण बहुपठित तो थे पर उन्हे सार-ज्ञान नही था, योगी माया मे लिप्त तथा धूर्त, साधक निद्रा, मैथुन और माया मे लिप्त थे, मन्त्र देने वाले गुरु अंहकारी थे। समय के साथ धर्म मे व्याप्त दोषो मे भी वृद्धि होती गयी। कबीर के समय तक जनता नितात पथभ्रष्ट हो चुकी थी। बडे-बड़े योगी माया मे लिप्त थे। योगी, पंडित, संन्यासी, मौलाना, काजी सब 'मदमाते' हो रहे थे। हिन्दू और मुसलमान दोनो ही सत धर्म के भ्रष्ट होकर भटक रहे थे। पीर औलिया हिंसा मे प्रवृत्त थे। हिन्दू मुसलमान दोनो ही ब्रह्म के विषय को लेकर परस्पर एक दूसरे के शत्रु बने हुए थे। हिन्दू लोग पत्थरो की पूजा मे ही कर्त्तव्य पूर्ति समझते थे। साधु लोग बाह्याडम्बरो मे प्रवृत्त होकर धन एकत्रित करते फिरते थे। सोना चांदी के आभूषण पहनते थे। घोड़ा घोडियो पर सवारी करके विचरते थे। इस प्रकार साधु-समाज माया का दास हो रहा था[1] साधुओ की भांति मुल्ला भी पथ भ्रष्ट हो चुके थे। पीर कर्त्तव्यच्युत हो गए थे। उनमे विवेक बुद्धि नष्ट हो गई थी। वे अहिंसा मे प्रवृत्त थे। इन पीरो और मुल्लाओ का प्रभाव तत्कालीन मुसलमान जनता पर गम्भीर पडा। अपने-अपने धार्मिक नेताओ की भांति हिन्दू और मुसलमान सभी आचरण कर रहे थे। हिन्दुओ मे महन्तो के आदर्शो का अनुकरण हो रहा था। और मुसलमानो मे इन पीरो और मुल्लाओ का अधानुकरण। धर्म के नाम पर अधर्म, आचार के नाम पर अनाचार कबीर जैसे उदार दृष्टिकोण वाले व्यक्ति के लिए असह्य था। उन्होने दोनो को खूब फटकारा।

१—साधु भया तो क्या भया माला पहिरी चारि।
बाहर भेष बनाइया भीतर भरी भगारि॥
भक्त विरक्त लोभ मन ठाना, सोना पहिरि लजावै बाना।
घोरी घोरा कीन्ह बटोरा, गाँव पाय जस चले करोरा॥

धर्म मे व्याप्त विकारो तथा वाह्याडम्बरो की निन्दा करके कवीर पथ-भ्रष्ट तथा लक्ष्यच्युत जनता को धर्म के राजमार्ग अथवा उचित मार्ग पर लाना चाहते थे। धर्म और साधना मे कवीर को ऐंचातानी पसन्द नही थी। साधना तो अत्यन्त प्रिय विषय है। साधना के क्षेत्र मे दैनिक औचित्य के मध्यस्थ कोई भी विरोधी भावनाएं नही हैं। कवीर इस सत्य से परिचित थे। इसी कारण कवीर धर्म और साधना के सहज पथ को ग्रहण करने के लिए अपनी समकालीन जनता को उपदेश दिया। कवीर ने जनता को वताया कि समस्त दुरूहताओ और दांव-पेचो की क्या निःसारता है और सहज पथ ही सत्य पथ है जिसके द्वारा कोई भी व्यक्ति मुक्ति प्राप्त कर सकता है।[1] सहज पथ सवके लिए खुला है। उसमे जात-पांति वर्ग कुल आदि का प्रतिवन्ध नही है। सम्प्रदाय और मत-मतातरो की भांति इसमे वाह्याडम्बर की आवश्यकता नही है।

धर्म के अन्तर्गत वाह्याडम्वरो का कोई अस्तित्व नही है, फिर भी हिन्दू और इस्लाम दोनो ही धर्मों मे यह दोष समान रूप से वर्तमान है। कवीर ने देखा कि धर्म के वास्तविक रूप को वाह्याडम्वरो ने आच्छादित कर रखा है। अतः उन्होने मतवाद, शास्त्र, कतेव, तीर्थ, व्रत, नमाज आदि की व्यर्थता जनता के समक्ष वारम्वार रखी। सवसे पहले कवीर ने हिन्दू और मुसलमानो के धार्मिक ग्रन्थो की आलोचना की। उन्होने वताया कि ये ग्रन्थ सभी को भ्रम मे डालने के लिए रचे गए हैं।[2] कवीर ने

१—सहज सहज सव को कहै सहज न चीन्हैं कोइ।
जिन्ह सहजैविषया तजी सहज कहीजै सोइ॥
सहज सहज सवको कहै सहज न चीन्है कोइ।
पांचू राखै परसतौ सहज कहीजै सोइ॥
सहजै सहजै सव गए सुत विन कामणिकाम।
एक मेक ह्वै मिलिरह्या दास कवीरा राम॥

२—हिन्दू मुसलमान दो दीन सरहद वने वेद कतेव परपच साजी।
—ज्ञानगुदड़ी पृ० १६
वेद किताव दोय फंद सवारा। ते फंदे पर आप विचारा॥
—वीजक पृ० २६६
चार वेद ब्रह्मा निज ठाना। मुक्ति का मर्म उनहु नहि जाना॥
हवीवी और नवी कै कामा। जितने अमल सो सवै हरामा॥
—वीजक १०४,१२४

मूर्ति-पूजा के विरोध मे भी बहुत कुछ लिखा है।[१] कबीर तो मन्दिर की नीव को ही अस्थिर मानते हैं।[२] इसी प्रकार उन्होने मुसलमानो की 'बाँग' और मस्जिद की व्यर्थता बताइ।[३] हिन्दुओ की एकादशी और मुसलमानो के तीस रोजा की भी कबीर ने आलोचना की।[४]

हिन्दू मुसलमानों की 'राम' 'रहीम' सम्बन्धी भेद-भावना को मिटाने के लिए कबीर ने ब्रह्म के अद्वैत स्वरूप का उपदेश दिया। उन्होने स्पष्ट शब्दो मे कहा 'साहेब मेरा एक है दूजा कहा न जाय।[५]' इतना ही नही 'साहब' को द्वैत बताने वाले को कबीर "दूजा कुल को हाय" कहने तक का साहस रखते हैं।[६] कबीर ने बताया कि हिन्दू और मुसलमानो की एक ही राइ है।[७] दोनो ही एक ही कलाकार की कृतियाँ हैं। उनमे दृष्टिगत भेद मानवकृत है।

कबीर ने भेष बनाकर घूमने की प्रकृति की भी तीव्र आलोचना की है। माला, तिलक, छाप, गेरुआ वस्त्रो आदि की निःसारता पर उन्होने बार-बार जोर दिया है।[८]

१—पाहन पूजे हरि मिलै तौ मैं पूजूं पहार।
ताते यह चाकी भली पीस खाय संसार॥

२—नीव विहूणा देहुरा देह विहूणा देव।
कबीर तहाँ विलंबिया करे अलष की सेव॥

३—काकर पाथर जोरि के मसजिद लई चुनाय।
ता चढि मुल्ला वाग देक्या बहिरा हुआ खोदाय॥

४—हिन्दू एकादसि चौबिस रोजा मुसलिम तीस बनाए।
ग्यारह मास कहो किन टारौ ये केहि माहि समाये॥
—बीजक पृ० ३८८

५—कबीर वचनावली, पृ० १

६—"जो साहब दूजा कहै दुजा कुल को होय।" २/६

७—हिन्दू तुरुक की एक राह है सतगुरु इहै वताई।
कहहि कबीर सुनहु हो सन्तो राम न कहेउ खुदाई॥
—बीजक शब्द १०

८—कर सेती माला जपै, हिरदै वहै डहूल।
पग तौ पाला मैं गिल्या भाजण लागी सूल॥
कर पकरै अंगुरी गिनै मन धावै चहुँ ओर।
जाहि फिरायाँ हरि सो भया काठ की ठौर॥
मूंड मुडावत दिन गए अजहूँ न मिलिया राम।
राम नाम कहु क्या करै जे मन के औरै काम॥
क० ग्र० पृ० ४५-४६

कबीर के युग मे हिन्दू और मुसलमान दोनो ही के धर्म मे 'हिंसा' वृत्ति समाविष्ट हो गई थी। कबीर ने काजी सैय्यद, औलिया और पीर आदि को डाँटते हुए पूछा कि 'बकरी मुर्गी का तुम किसकी आज्ञा से हनन करते हो। दिन भर तो रोजा रहते हो और रात मे गाय खाते हो। भला तुम्हारा खुदा किस प्रकार से इस आचरण पर प्रसन्न होगा।' इसी प्रकार उन्होने हिन्दू योगियो से पूछा कि "कब नारद बन्दूक चलाया।"

इस प्रकार कबीर ने तत्कालीन हिन्दू तथा मुसलमानो के धर्म मे व्याप्त दोषो तथा वाह्याडम्बरो को दूर करने का प्रयत्न किया। उन्होने दोनो विरोधी वर्गों की एकता और प्रेम का मार्ग प्रदर्शित किया और पारस्परिक विरोधी भावनाओ को शान्त करने का प्रयत्न किया।

रामानन्द के पश्चात् सन्त कवियो ने अपने उपदेशो का माध्यम हिन्दी भाषा बनाया। वे इस बात को समझ गये थे कि यदि अधिक से अधिक जनता मे स्वमत का प्रचार करना है, तो हिन्दी का ही आश्रय ग्रहण करना पड़ेगा। भाषा फलतः उन्होने हिन्दी मे ही अपने विचारो को प्रकट किया। सन्तो ने विद्वत्समाज की स्तुतनिन्दा, अथवा योग्यता-प्रदर्शन की आवश्यकता न समझ कर जनता की भाषा मे ही उपदेश किया। रामानन्द ने संस्कृत के विद्वान होते हुए भी जन-हितार्थं हिन्दी मे उपदेश दिये। परन्तु बाद के कवियो ने संस्कृत के विपक्ष और भाषा की सराहना भी की जिनमे से कबीर विशेष उल्लेखनीय हैं। कबीर ने स्पष्ट शब्दो मे संस्कृत को 'कूपजल' कहा और भाषा की बहते हुए नीर से तुलना की। इससे कबीर के भाषा विषयक आदर्श प्रकट होते हैं।

देश की संघर्षमयी परिस्थिति का कबीर पर प्रभाव पड़ा। मानव की निम्न तथा हेय प्रवृत्तियो के विरुद्ध कबीर दास ने अपने शात एवं प्रभावशाली स्वर मे क्षमा, दया, विश्वबन्धुत्व,

एकता तथा समता कर संदेश दिया और अपने युग उपसंहार को सही मार्ग पर अग्रसर करने का प्रयत्न किया।

उस युग की हलचल, अशाति, आडम्बर और विडम्बना का मापदण्ड कबीर का स्वर और उनका 'सहज' संदेश है।

———

कबीर-व्यक्तित्व

किसी भी साहित्याकार का व्यक्तित्व उसकी रचना मे प्रतिबिम्बित होता है। लेखक के व्यक्तित्व से उसके साहित्य का बडा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। कोई भी मनुष्य किसी रचना से उसके लेखक के व्यक्तित्व का अनुमान लगा सकता है। कबीर (१५ वी शताब्दी) का साहित्य उनके व्यक्तित्व का सबसे अधिक परिचायक है। कबीर के साहित्य को देखने से ज्ञात होता है कि वे सत्य (दोनो, व्यवहार और साधना) प्रिय थे। उनमे चरित्रबल था जिसके कारण स्पष्टोक्तियाँ उनकी बानियो मे लहरे ले रही हैं। वे मान और अपमान के स्तर से ऊपर उठ चुके थे। उन्हे द्रोह, विद्रोह, अशान्ति, वैमनस्य, प्रतिहिंसा की भावना से घृणा थी। वे शान्ति प्रिय थे। अहिंसा और सरलता के वे समर्थक थे। करनी और कथनी मे वे भेद नही मानते थे। लौकिक जीवन से ऊपर उठने की उनमे साध थी। वे प्रेमी, भक्त, साधक योगी और विश्वासी थे। दुविधा से वे घृणा करते थे। भेष और वस्त्राचार तथा सत्य के नाम पर अनाचार देख कर वे जल उठते थे। समदृष्टि और सहज को जीवन मे वे कार्यान्वित करना चाहते थे। उदारता, विश्वबन्धुत्व, दीनता, धैर्य, संतोष, सहनशीलता और क्षमा उनकी चरित्रगत विशेषताएं थी। सत्य-प्रियता के कारण उन्हे जीवन मे विरोधो के अनेक तूफानो का सामना करना पडा। कबीर स्वतन्त्र विचार के व्यक्ति थे। उममे प्रतिभा थी, मौलिकता थी। उनकी वाणी मे बल और हृदय मे साहस था। अप्रिय सत्य कहने मे भी उन्हें कोई संकोच नही था। मुरौव्वत और रियायत की भावना उनमे स्थान नही पा सकी थी।

लेखक के व्यक्तित्व के अध्ययन का दूसरा साधन है उसके समकालीन और परिवर्ती लेखको का उसके विषय मे कथन। कबीर सत मत के प्रवर्तक और एक विशेष परम्परा के संस्थापक थे। साहित्य और धर्म के क्षेत्र मे एक नवीन क्रान्ति के जनक थे। आलोचना की एक नवीन शैली के जन्मदाता थे। १५ वी शताब्दि के सर्वश्रेष्ठ कवि और समाज सुधारक थे। समकालीन शासक उनसे अत्यधिक प्रभावित था। (यदि किवदंतियो मे जरा भी विश्वास कर लिया जाय) वे एक नवीन समाज के निर्माता थे। निश्चय ही उन्होने अपने युग की जनता को प्रभावित किया होगा और निश्चय ही उनके सिद्धान्तो को पुण्य गंगा मे अवगाहन कर उनके पश्चात् नानक,

दादू, मलूक, जगजीवन, शिवनारायण, दरियाद्व, मीरा, सहजोदयाबाई, बनीदास, गरीबदास, केशवदास, तुलसी (साहब) चरनदास, सुन्दरदास आदि ने भारतीय जनता मे समय-समय पर प्रकाश फैलाया। आज इस युग का महापुरुष गाँधी भी उनके सिद्धान्तो से अनुप्राणित प्रतीत होता है। कबीर के विषय मे लिखित इन सन्तो की बानियो से कबीर के व्यक्तित्व का अनुमान बड़ी सरलता से लग सकता है। अतिशयोक्तियो को छान कर निकाले हुए तथ्यो से कबीर का व्यक्तित्व प्रकाश मे लाया जा सकता है।

कबीर के पश्चात् धर्म और समाज के विषय मे अभिरुचि रखने वाले सभी कवियो और इतिहासकारो ने कबीर की प्रशंसा की है--चाहे वे मुसलमान हो या हिन्दू दोनो जातियो मे उनका आदर था, सम्मान था। उनकी वाणी मे प्रभावित करने की शक्ति थी। उनकी वाणी ने समय, वर्ण वर्ग, जाति और समाज के सभी स्तरो को लाँघ कर एक रूप से जनता को प्रभावित किया।

साम्प्रदायिक कवियो का काव्य अतिशयोक्ति एव अतिरजना से पूर्ण होता है। फिर भी उन अतिरजनो के मूल मे तथ्य बीज-रूप मे वर्तमान अवश्य रहता है, इसमे कोई सन्देह नही। धरमदास (स० १४७५) कबीर के प्रधान शिष्य थे। कबीर के पश्चात् यही गद्दी पर आसीन हुए। इनके शब्दो मे कबीर अजर-अमर व्यक्ति हैं। प्रत्येक युग मे एक भिन्न-भिन्न नाम धारण करके अवतार ग्रहण करते हैं। सतयुग मे सतसुकृत नाम था, त्रेता मे मुनीन्द्र, द्वापर मे करुणा तथा कलियुग मे कबीर। कबीर सभी युगो मे माया रहित होकर विराजमान रहे हैं—

जुगन जुगन लीन्हा अवतारा। रहौं निरन्तर प्रगट प्रसारा॥
सतयुग सतसुकृत कह टेरा। त्रेता नाम मुनेन्द्रहि मेरा॥
द्वापर में करुना मय कहाये। कलियुग नाम कबीर रखाये॥
चारो युग मे चारो नाऊँ। माया रहित रहै तिहि ठाऊँ॥
जो जाधा पहुँचे नहीं कोई। सुर नर नागर रहै मुख गोई॥

(ग्रन्थ अवतारण पृ० ३१-३२)

धर्मदास के अनुसार कबीर एक दिव्य पुरुष के रूप मे दृष्टिगत होते हैं। परन्तु इस उद्धरण की अन्तिम दो पंक्तियाँ विशेष ध्यान देने योग्य हैं। इनसे ज्ञात होता है कि कबीर माया मोह के पाश से उन्मुक्त थे। "जो जाधा पहुँचे नहीं कोई" और "सुर नर नाग रहै मुख गोई" वहाँ पर कबीर "माया रहित रहै तिहि ठाऊँ" कबीर ने जीवन पर्यन्त माया के बन्धनो से दूर रहने का उपदेश दिया है। उनकी

वाणियो मे अनेक ऐसे कथन हैं। इस लिए कबीर के विषय मे धरमदास की अंतिम दो पंक्तियाँ मान्ह हैं। नाभादास जी ने भक्तमाल मे लिखा है—

(१)

कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षट दरस की।
भक्ति विमुख जो धर्म सो अधरम कर्म गायो।
जोग जग्य ब्रतदान भजन बिनु तुच्छ दिखायो॥
हिन्दू तुरक प्रमान रमैनी शब्दी साखी।
पक्षपात नहिं बचन, सब ही के हित की भाखी॥
आरूढ़ दसा ह्वै जगत पर मुख देखो नाहिन भनी।
कबीर कर्म न राखी नहीं वर्णाश्रम षट दरसनी॥
(३२७ छप्पय)

(२)

अति ही गंभीर मति सरस कबीर हियो।
लियौ भक्ति भाव जाति पाँति सब टारियै॥
(कवित्त ५१५)

(३)

बीनै तानौ बानौ, हियै राम मंडरानौ।
कहि कैसे कै बखानौं, वह रीति कछु न्यारियै॥

(४)

उतनोई करै जामै तन निरवाह होय।
भाय गयी और बात भक्ति लागी प्यारियै॥
(कवित्त ५१३)

इन उद्धरणो से ज्ञात होता है कि (१) कबीर ने चार वर्ण चार आश्रम छः दर्शन किसी की भी "आनि कानि" नही रक्खी। केवल भक्ति को ही दृढ़ किया। भक्ति से विमुख धर्मों को अधर्म कहा। सतभक्ति से रहित तप, योग, दान व्रतादि तुच्छ बताए। आर्य और अनार्य, हिन्दू और मुसलमान को सिद्धान्त की बातों का ज्ञान कराया। (२) उनकी मति गम्भीर और अन्तःकरण भक्ति से सरस था। वह भजन भाव मे संलग्न रहते थे और जाति पाँति एवं वर्णाश्रम मे आस्था नहीं रखते थे। (३) वे कपड़ा बुनने का उद्यम करते थे। यद्यपि वाह्य रूप से ताना-बाना का कार्य करते थे, पर अन्तःकरण से ब्रह्म मे ही लीन रहते थे। (४) उद्यम तो

केवल उतना करते थे जितने से उनकी जीविका चल जाय। इसके सिवाय उनका चित्त पूर्ण रूपेण ब्रह्म मे ही लगा रहता था। (५) कबीर अपने सिद्धान्त का समर्थन करना जानते थे। सिकन्दर द्वारा उत्पीड़ित और पाखंडियो द्वारा अपमानित होने पर भी वे अपने सिद्धान्तो से अडिग रहे। उन्हें सिद्धान्तो से विचलित करने के अनेक उपाय हुए पर वे सभी विफल हो गए। भक्तमाल की इन पंक्तियो से कबीर के व्यक्तित्व पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। नाभादास के इस कथन मे कहीं भी कोई अतिशयोक्ति नही उपलब्ध होती है। कबीर के सभी स्वाभाविक गुणो का परिचय इन उद्धरणो से प्राप्त होता है।

अकबर के समय मे अबुल फजल अल्लामी ने आइन-ए-अकबरी की रचना की। इस ग्रंथ मे कबीर के लिए "मुवाहिद" अर्थात् "एकता प्रेमी" शब्द का प्रयोग हुआ है। इस ग्रन्थ मे कबीर के विषय मे लेखक ने दो बार उल्लेख किया है। १२९ पृष्ठ पर उनका परिचय देते हुए लेखक का कथन है कि "कबीर मुवाहिद यहाँ विश्राम करते हैं और आज तक उनके कारण और कृत्यो के सम्बन्ध मे अनेक विश्वस्त जनश्रुतियाँ कही जाती हैं। वे हिन्दू और मुसलमान दोनो के द्वारा अपने उदार सिद्धान्तो और पवित्र जीवन के कारण पूज्य थे।" पृष्ठ १७१ पर लेखक का कथन है कि "कोई कहते हैं कि रतनपुर (सूबा अवध) मे कबीर की समाधि है जो ब्रह्मैक्य का मण्डन करते थे। आध्यात्मिक दृष्टि का द्वार उनके सामने अंशतः खुला था। उन्होने अपने समय के सिद्धान्तो का भी प्रतिकार कर दिया था।" आइन-ए-अकबरी के इन कथनो से ज्ञात होता है कि कबीर समदृष्टिवान व्यक्ति थे। वे दोनो ही वर्गों मे पूज्य थे और उद्धार सिद्धान्तो के पोषक और प्रचारक थे।

कबीर के गुरु भाई पीपा और रैदास ने प्रायः एक से ही शब्दो मे कबीर का यशोगान करते हुए कहा है :—

जाकै ईद बकरीद नित गउरे वध करै मानिये सेप सहीद पीराँ।
बापि वैसी करी पूत ऐसी धरी नाव नवखंड परसिध कबीरा॥

—पीपा

जाकै ईद बकरीदि कुल गउरे वधि करहि,
मानियहि सेल सहीद पीरा॥
बापि वैसी करी पूत ऐसी सरी तिहुरे,
लोक परसिधा कबीरा॥

(रैदास)

दोनो का एक ही कथन है कि मानव का भला और बुरा होना उसके कुल या जाति पर निर्भर नही हैं। कुलीनता और अभिजात्य का गर्व झूठा है। जिसके कुल मे गोवध होता था, लोग बाह्यआडम्बरो मे लीन थे, उसी कबीर ने ऐसा आचरण किया कि तीन लोक नौ खंड मे प्रसिद्ध हो गया। इन पंक्तियो से कबीर का विद्रोहात्मक आचरण प्रकट होता है। पीर शहीद, शेख के गुलाम, ईद बकरीद मे ब्रह्म का रूप देखने वाले परिवार मे उत्पन्न होकर कबीर ने भिन्न आचरण किया। इसके अतिरिक्त पीपा ने अनेक स्थलो पर कबीर की बड़ी प्रशंसा की है। उनकी वाणी का एक पद उद्धृत किया जाता है :—

जो कलिमांझ कबीर न होते।
तौ लै—वेद अरु कलिजुग मिलिकरि भगति रसातलि देते॥
अगम निगम की कहि कहि पाँडे फला भामोव लगाया।
राजस तामस स्त्रावक कथिकथि इनही जगत भुलाया॥
सागुन कथिकथि मिला पनाया काया रोग बढ़ाया।
निरगुन नीक पियौ नहीं गुरुमुप तातै हाटै जीव निराया॥
बहता स्रोता दोऊ भूले दुनियां सबै भुलाई।
कलि विद्धकी छाया बैठा क्यूँ न कलपना जाई॥
अंध लुकटिया गही जु अंध परत कूप थित थोरै।
अबरन बरन दोऊ से अंजन आषि सबन की कोरै॥
लसे पतित कहा कहि रहते थे कौन प्रतीत मन धरते।
नांनां वानी देखि सुनि स्रवन वहौ मारग अणसरते॥
त्रिगुण रहत भगति भगवंत कीतिरि, विरला कोई पावै।
दया होइ जोई कृपानिधान की तौ नाम कबीरा गावै॥
हरि हरि भगति भगत कवलीन त्रिविधि रहत थित मोहै।
पाखंड रूप भेप सब कंकर ग्यान सुपले सोहै॥
भगति प्रताप राएय वेकारन निज जन-जन आप पठाया।
नाम कबीर साम साम पर करिया तहां पीपै कछु पाया॥

भारतवर्ष मे धर्म के नाम पर कौन से अनाचार और दुराचार नहीं हुए। कबीर के समय तक धर्म का स्वच्छ सहज रूप अत्यन्त विकृत और विस्मृत हो गया

था। ऐसी दशा मे कबीर ने जनता को साधना का जो मार्ग प्रदर्शित किया, वही सब से अधिक कल्याणप्रद था, साथ ही समय की माँग पूर्ण करता था। कबीर का व्यक्तित्व इस दृष्टि से बडा महत्वपूर्ण है। तथ्य तो यह है कि पीपा की प्रथम दो पंक्तियाँ कबीर के समस्त महत्व को प्रकाश मे ला देती हैं।

मिर्जा मोहसिन फानी ने 'दबिस्ताने मजाहिब' मे लिखा है कि—

"कबीर जुलाहानजादकि अज़ मोवहिदान मशहूर हिन्द अस्त।
मर्दुम बारामानन गुफतन्द दरीशहर जुलाहान जादेस्त॥"

अर्थात् "भारतवर्ष के जुलाहो मे कबीर प्रसिद्ध अद्वैत ब्रह्म का उपासक था। लोग रामानन्द से कहते हैं कि इस प्रकार के एक जुलाहे का लड़का है जो अपने को आपका शिष्य कहता है।"

गुरुग्रंथ साहब मे सिद्ध सन्तो के साथ कबीर का भी कई बार उल्लेख हुआ है। उदाहरणार्थ :—

(१)

नाम छीवा कबीरु जुलाहा पूरे गुरते गति पाई।
(पृ० ५६)

(२)

हरि के नाम कबीर उजागर जनम जनम के काटे कागर।
(पृ० २६४)

(३)

नाम देव कबीर त्रिलोभनु सधन्न रैनु तरै।
कहि रबिदास सुनहु से सबहु हरि जी उते समै सरै॥
(पृ० ५६८)

इन सभी पंक्तियो से कबीर की भक्ति भावना पर प्रकाश पडता है। इसमे कोई शका की बात नही है कि कबीर ने सर्वप्रथम भारतीय समाज मे साधना के सब पथ और बाह्याचार के भेद दिखा कर जनता को निःसार बातो से दूर रहने के लिये उपदेश दिया था। ज्ञात होता है कि वे दीन दुखियो की निरन्तर सेवा किया करते थे। कितने ही व्यक्तियो को वे अपने घर का सामान उठाकर दे देते और उन्हें संकट से उन्मुक्त करते थे। चरणदास की निम्नलिखित पंक्तियाँ कबीर के चरित्र के उज्जवल पक्ष की उद्घाटिका है :—

दास कबीरा जाति जोलाहा, भये संत हितकारी।

एक स्थल पर चरणदास ने उन्हे आध्यात्मिक क्षेत्र के सूरमो मे विशिष्ट स्थान प्रदान किया--

कबीर दादू धने पहिर बक्तर बने ।
नामदेव सारिखे बहुत कूदे ॥
सैनसदना वली भक्त पीपा बड़ो ।
राम की ओर कूं चले सूधे ॥

माया से युद्ध करते हुए राम की ओर कूं सूधे चलने वालो मे कबीर का वास्तविक विशिष्ट स्थान है दयाबाई और धरणीदास ने कवीर को श्रेष्ठ भक्त और साधक माना है। उद्धरण के लिए उनकी वानियो के संग्रहो के क्रमशः पृ० २२ तथा पृ०१३, ३३ को देखा जा सकता है।

ऐसा अनुभव होता है कि गरीवदास और धनी धर्मदास कबीर से विशेष प्रभावित थे। गरीवदास ने कवीर और उनके स्वभाव तथा व्यक्तित्व के विषय मे वडी श्रद्धा और आदर के साथ उल्लेख किया है। बात यह है कि कवीर को गरीवदास अपना गुरु मानते थे और इसलिये उनकी दृष्टि मे कवीर का वड़ा ऊंचा स्थान था। गरीवदास की वानी (पृ० १० से १९ तक) मे कबीर के सतगुणो का उल्लेख हुआ है। गरीबदास के अनुसार कबीर माया से रहित, स्वच्छ हृदय वाले ज्ञानवान शून्य का तत्व समझने वाले गगन मन्डल मे विचरने वाले सुरत सिन्धु के गीत रचने वाले, आनन्द के उद्गम, ज्ञान और भक्ति की साकार मूर्ति मनुष्यो मे हंस, जीवित जगदीश, चार वेद छै शास्त्र और १८ वोध के प्रकाण्ड पंडित, न्यायप्रिय जगद्गुरु शाति प्रिय, मोह और माया के विनाशक, कर्म की रेख मिटाने वाले, भक्तो के सरदार, अलख को लखने वाले, सुन्नीशाखा पर निवास करने वाले और भंवर गुफा मे रमने वाले थे। गरीवदास की दृष्टि मे कवीर समस्त सन्तो मे श्रेष्ठ हैं—

ऐसा सतगुरु हम मिला सुरत सिन्धु के तीर।
सब संतन सिरताज है सतगुरु अदल कवीर॥

गरीवदास ने कबीर के स्तवन मे प्रायः सौ साखियो की रचना की है और इन साखियो मे कवीर को वडा सम्मान और गौरवपूर्ण स्थान प्रदान किया है। शायद ही किसी ने कवीर के विषय मे इतने विस्तार से लिखा हो। कवीरदास का अपने निरालेपन और फक्कड़पन के कारण, स्पष्टवादिता और अप्रिय सत्य कथन के कारण वडा विरोध हुआ। संत कवि मलूकदास भी इन से वहुत प्रभावित थे। इन की धार्मिक विचारधारा और सिद्धान्तो मे कवीर की वाणी लहरें ले रही हैं। उन

की वाणियो मे कबीर के प्रति बडे ही सम्मानसूचक शब्दो का प्रयोग हुआ है। सुमीरन प्रकरण मे मलूक कबीर का आदर्श जनता के लिए प्रस्तुत करते हैं—उनका कथन है कि "सुमिरन ऐसा कीजिए जैसे दास कबीर।" यह इस बात का द्योतक है कि कबीर ने साधना बडी लगन से की। साधना मे लगन और तत्परता के लिए कबीर मध्ययुगीन सन्तो मे सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। इसलिए मलूकदास का उन्हें इस दिशा मे आदर्श मानना असंगत नही प्रतीत होता। मलूक को कबीर की सिद्धि पर विश्वास सा-था जैसा कि निम्नलिखित पंक्तियो से ज्ञात होता है—

हमारा सतगुरु बिरले जानै।
सुई के नारे सुमेर चलावै सो यह रूप बखानै॥
कीवौ जानै दास कबीरा कि हरिनावस पूता।
की वौ नामदेव और नानक की गोरख अवुधता॥

इन पक्तियो के कबीर को प्रहलाद और गोरखनाथ आदि साधको के समान पद पर व्यक्त किया गया है। यह भी उनके गौरव का द्योतक है।

दुखहरनदास मलूक पथी थे। पर कबीर से वे भी कम प्रभावित नहीं थे। ससार की विघिताओ को शान्त करने वाले मे जहाँ उन्होने गोरखनाथ, नानक और मलूक के नाम गिनाये हैं, वही उन्होने कबीर के महत्व को भी अंकित किया है। देखिए—

जस कबीर जस गोरख जस नानक जस व्यास।
तास कलीमल जग हरन को प्रगटे मलूकदास॥

(कृपावती'—एक अप्रकाशित ग्रंथ से)

इन पंक्तियो मे मलूक को कबीर के समान व्यक्त करके उन्हे भी महान् सिद्ध किया गया है। फिर भला कबीर के महान् व्यक्तित्व के लिये क्या कहा जाय।

कबीर को ध्रुव, प्रहलाद और विभीषण के समान, हनुमान और अंगद के समान दास तथा रामानन्द और नानक के समान भक्त मानने वालो मे शिवनारायण साहब विशेष उल्लेखनीय हैं। उनकी निम्नांकित पक्तियाँ उल्लेखनीय हैं :—

ध्रुव प्रह्लाद विभीषण धीरा। पांडव पांचव धरे शरीरा॥
हनूमान, अंगद और आनी। यही विधि प्रीति करे सब जानी॥
रामानन्द कबीर गुसाईं। नानक नाम जान एक साईं॥

एक से एक समान भये, भगत यही संसार।
गुरु अन्यास सुनायहु, जो मोहि भक्ति पियास।

(गुरुन्यास—एक अप्रकाशित रचना से)

आध्यात्मिक पक्ष मे कबीर की महता को स्वीकार करने वाले चरणदास ने नागरिकता के उज्जवल पक्ष का चित्रण भी किया है। कबीर उपकारी, परोपकारी व्यक्ति थे। उनके जीवन-चरित्र से मुक्ति का मार्ग खोजने वाले पंडितो और मुल्लाओ को कबीर का यह नया प्रकाश कभी भी स्वीकार नही था। कबीर के सत्याचरणों, उच्चादर्शों का उच्च वर्ग ने बडा उपहास किया। देखिये गरीब दास की ये पंक्तियाँ इस बात को स्पष्ट करती हैं :—

याभी मर्द कबीर है जगत करै उपहास।
कैसो बनिजारा भाया, भगत बड़ाई दास॥

गरीबदास कबीर को धर्म, समाज और आध्यात्मिक क्षेत्र मे एक महान् क्रांतिकारी मानते थे। इतना ही नही वे कबीर को ज्ञान के क्षेत्र मे चक्रवर्ती मानते थे :—

ऐसा निरमल नाम है, निरमल करै सरीर।
और ज्ञान मंडलीक है, चकवै ज्ञान कबीर॥

इसके पश्चात् कबीर के विषय मे कहने के लिये क्या कुछ और रह जाता है।

धनी धर्मदास ने कबीर को अपने युग का महापुरुष माना है। उनके अनुसार ऐसे महापुरुष बड़े सौभाग्य से मिलते हैं। उनका संसर्ग आवागमन से मुक्त होने वाला है। (पृ० ४३) सामान्य रूप से धर्मदास ने कबीर को एक महान् संत माना है।

कबीर के विषय मे सतो के उपर्युक्त कथनो को पढ़ जाने के पश्चात् कबीर के चरित्र और व्यक्तित्व की समस्त विशेषताएं स्पष्ट हो जाती हैं। समस्त सतो का कबीर के व्यक्तित्व के विषय मे मत साम्य है। सभी का मत है कि वे युग के श्रेष्ठ साधक थे और उन्होने उस मधुर ज्योति के दर्शन कर लिये थे कि जिससे समस्त संसार आलोकित है। प्रायः सभी संत कवियो ने कबीर को गोरखनाथ और रामानन्द के समकक्ष स्थान दिया है। कबीर की लोकप्रियता पर सभी का एक मत है।

कबीर का आविर्भाव काल—भारतीय जन-जीवन की परम्परा बडी महान् रही है। हमारे देश के महाकवियो ने सहस्रो पदो, छन्दो और पृष्ठो की रचना कर डालने के बाद भी अपने विषय मे एक भी शब्द का उल्लेख नहीं किया। समस्त

रचना को कृष्णार्पण करके निवृत्त हो जाने वाले कवियो ने अपने सम्बन्ध मे किंचित मात्र भी उल्लेख नही किया। कबीर इसी परम्परा के अनुयायी थे। कबीर की कविता मे अन्तस्साक्ष्य बहुत कम प्राप्त होता है अन्तः साक्ष्य के आधार पर वे सिकन्दर लोदी के समकालीन प्रतीत होते हैं।

निम्नलिखित विद्वानो ने कबीर को सिकन्दर लोदी का समकालीन माना है।

	लेखक का नाम	कबीर का समय	सिकन्दर लोदी का समय
(१)	वील	जन्म सन् १४९० (संवत् १५४७)	यही समय
(२)	फरकहार	सन् १४००–१५१७ (सवत् १४५७–१५७५)	सन् १४८९–१५१८ (सवत् १५४६–१५४७)
(३)	हंटर	सन् १३०३–१४२० (सवत् १३५७–१४७७)	नही दिया।
(४)	व्रिग्स	नही दिया	सन् १४८८–१५१७ (सवत् १५४५–१५७४)
(५)	मेकालिक	सन् १३९८–१५१८ (संवत् १४५५–१५७५)	सिंहासनासीन सन् १४८८ (सवत् १५४५)
(६)	वेसकट	सन् १४४०–१५१८ (सवत् १४९०–१५७५)	सन् १४९६ (सवत् १५५३) (जौनपुर गमन)
(७)	स्मिथ	सन् १४४०–१५१८ (सवत् १४९७–१५७५)	सन् १४८९–१५१७ (सवत् १५४६–१५७४)
(८)	भडारकर	सन् १३९८–१५१८ (सवत् १४५५–१५७५)	सन् १४८८–१५१७ (संवत् १५४५–१५७४)
(९)	ईश्वरी प्रसाद	ईसा की पंद्रहवी शताब्दी	सन् १४८९–१५१७ (संवत् १५४६–१५७४)

इस प्रकार कबीर का जन्म संवत् तेरहवी शताब्दी के अन्त या चौदहवी शताब्दी के प्रारम्भ से लेकर संवत् १४८२ के मध्य मे होना चाहिए। कबीर की जन्म तिथि के सम्बन्ध मे निम्नलिखित मत हैं :—

(१) कबीर चरित्र बोध १४५५ विक्रमी जेठ सुदी पूर्णिमा दिन सोमवार।

(२) डा० श्याम सुन्दर दास का विश्वास है कि कबीर की जन्म तिथि के सम्बन्ध मे कबीर पंथियो मे प्रचलित यह दोहा सत्य है।

चौदह सौ पचपन साल गए, चन्द्रवार इक ठाट ठए।
जेठ सुदी बरसायत को, पूरनमासी प्रगट भए॥

कबीर रामानन्द के शिष्य थे। डॉ० मोहन सिंह, डॉ० राम कुमार वर्मा, डॉ० श्याम सुन्दर दास इस सम्बन्ध मे भक्त माल से मत साम्य रखते हैं। रामानन्द का जन्म समय सवत् १३७५ निश्चित किया गया है।

कबीर की मृत्यु—कबीर का निधन कब हुआ यह भी रहस्य बना हुआ है। धर्मदास के अनुसार उनका महा प्रयाण काल १५६९ भक्तमाल की टीका के अनुसार उनका मृत्यु समय सवत् १५४९ है और जनश्रुति के अनुसार कबीर १५७५ में दिवगत हुए।

कबीर की रचनाएँ—कबीर के नाम पर निम्नलिखित एकसठ रचनाएँ उपलब्ध हैं:—

(१) अगाध मंगल।
(२) अठपहरा।
(३) अनुराग सागर।
(४) अमर मूल।
(५) अर्जनाम कबीर का।
(६) अलिफनामा।
(७) अक्षर खंड की रमैनी।
(८) अक्षर भेद की रमैनी।
(९) आरती कबीर कृत।
(१०) उग्र गीता।
(११) उग्र ज्ञान मूल सिद्धान्त-दश मात्रा।
(१२) कबीर और धर्म दास की गोष्ठी।
(१३) कबीर की वानी।
(१४) कबीर अष्टक।
(१५) कबीर गोरख की गोष्ठी।
(१६) कबीर की साखी।
(१७) कबीर परिचय की साखी।
(१८) कर्म काण्ड की रमैनी।

(१९) काया पंजी ।

(२०) चौका पर की रमैनी ।

(२१) चौंतीसा कबीर का ।

(२२) छप्पय कबीर का ।

(२३) जन्म वोध ।

(२४) तीसा जन्त्र ।

(२५) नाम महातम की साखी ।

(२६) निर्भय ज्ञान ।

(२७) पिय पहचानवे को अग ।

(२८) पुकार कवीर कृत ।

(२९) वलख की फैज ।

(३०) वारामासी ।

(३१) वीजक ।

(३२) ब्रह्म निरुपण ।

(३३) भक्ति का अग ।

(३४) भाषो षंड चौंतीस ।

(३५) मुहम्मद वोध ।

(३६) मगल वोध ।

(३७) रमैनी ।

(३८) राम रक्षा ।

(३९) राम सार ।

(४०) रेखता ।

(४१) विचार माला ।

(४२) विवेक सागर ।

(४३) शब्द अलह टुक ।

(४४) शब्द राग काफी और राग फगुआ ।

(४५) शब्द राग गौरी और राग भैरव ।

(४६) शब्द वंशावली ।

(४७) शब्दावली ।

(४८) संत कवीर वंदी छोर ।

(४९) सतनामा ।

(५०) सतसंग की अग ।

(५१) साधो को अंग ।
(५२) सुरति सम्वाद ।
(५३) स्वास गुञ्जार ।
(५४) हिंडोरा वा रेखता ।
(५५) हस मुक्तावलो ।
(५६) ज्ञान गुदड़ी ।
(५७) ज्ञान चौंतीसी ।
(५८) ज्ञान सरोदय ।
(५९) ज्ञान सागर ।
(६०) ज्ञान सम्बोध ।
(६१) ज्ञान स्तोत्र ।

कबीर की भावभूमि

विश्व साहित्य के श्रेष्ठ कवियों मे, महाकवियो मे प्रतिभा-सम्पन्न साहित्यकारो मे, और उत्कृष्ट क्रान्तिकारी धार्मिक एवं सामाजिक नेताओ मे, काव्य जगत मे नाना प्रकार के अभिनव, प्रतिमान संस्थापको मे, तथा मानव-जीवन के सूक्ष्म पर्यालोचको मे कबीर पंथ के प्रवर्तक, प्रबल आलोचक, प्रकाण्ड दार्शनिक, प्रशिष्ट स्पष्टवादी, तथा युग प्रवर्तक मानव, महामानवकवि महाकवि, और असाधारण जनवादी, विचारक तथा समाज सुधारक कबीर का स्थान विशिष्ट है। कबीर की कविता, रचना, प्रतिपाद्य काव्य की आत्मा अप्रस्तुत योजना, भावपक्ष, कला पक्ष, हृदय पक्ष, मस्तिष्क पक्ष सभी कुछ अति यथार्थ, अतिवास्तविक, और अति सुपरिचित प्रतीत होता है। कबीर केकाव्य मे सहजता, सरलता, स्पष्टता, सुलभता और संवेदनात्मकता सहसा, शिक्षित, अशिक्षित, अर्द्ध शिक्षित सभी के हृदय और मस्तिष्क को अपनी ओर आकर्पित कर लेती है। जीवन और जगत को कबीर ने बहुत निकट, बहुत गहराई, बहुत गम्भीरता और बहुत गौर से देखा था। आत्मानुभूति, आत्म चिन्तन, आत्ममनन के आधार पर प्रस्तुत किये हुए कबीर आत्म कथन इसलिए अति प्रभावशाली, अधिक प्रवाहशाली, अधिक मर्मस्पर्शी और अधिक सजीव हैं। कबीर ने जो कुछ देखा, उसे वाणी के माध्यम से यथातथ्य रूप मे व्यक्त कर दिया। और इसीलिए कबीर ने रूढिवादी पडितो, प्रदर्शन प्रिय साहित्यकारो, प्रचारको और कवियो को चुनौती देते हुए कहा "तू कहता है कागद देखी, मैं कहता हूँ आँखौ देखी" स्पष्ट है कि कबीर की कविता रचना, विचारधारा चिन्तन और प्रकाशन का आधार सत्य है, चिरन्तन सत्य है, शाश्वत है। क्योकि कबीर सत्य को जीवन का आधार मानते हैं कबीर की दृष्टि मे "साँच बराबर तप नही झूठ बराबर पाप। जाके हिरदे साँच है ता हिरदे गुरु आप।"

कबीर ने इसी सत्य की नीव पर जीवन, जगत और साहित्य को जिन भित्तियो का निर्माण किया वे बडी ही लोककल्याणकारी, आल्हादकारी और समन्वयकारी हैं। कबीर की कविता का हेतु, प्रयोजन, वर्ण्य विपय अथवा प्रतिपाद्य मानव है। काव्य की भूमिका मे उतर कर कबीर ने मानव-जीवन और समाज का चित्रण, विवेचन और विश्लेपण किया है वह बहुत ही विशिष्ट है। कबीर के

सम्पूर्ण काव्य का परायण कर जाने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे आलोचक कवि ने मानव-जीवन को बहुत ही निकट से देखा था। मनुष्य की सामर्थ्य, अभावो, हीनताओ से कबीर भली भाँति परिचित थे। उनके वर्ण्य विषय विश्वास, धैर्य, मे औदार्य, दैन्य, शील, विवेक, सन्तोष विचार जैसी प्रवृत्तियो मानवीय भावो पर सविस्तारविचार प्रकट किए गए हैं। मनुष्य क्या है, कैसा है, उसका वास्तविक रूप कैसा है, इस सम्बन्ध मे कवि ने अपने विचारो को चेतावनी, भेष, कुसंग, माया, मन, कपट, तृष्णा, अहं, लोभ, परनिन्दा, भेदभाव, और असत्य आदि शीर्षको मे व्यक्त किया है। इन विषयो पर अभिव्यक्त भावो और विचारों का अध्ययन और विश्लेषण करने पर प्रतीत होता है कि मानव कितना हीन और अपदस्थ है। मानव पच महाविकारो, आशाओ और तृष्णाओ से प्रपीड़ित है। मानव सुलभ दुर्बलतायें, प्रत्येक मानव को दिग्भ्रान्त किए हुए हैं। इस प्रकार कबीर का सम्पूर्ण काव्य मानवीय प्रवृत्तियो का रोचक लेखा-जोखा है। कबीर की कविता जल-जीवन, मानव-जीवन के धरातल को प्रत्येक स्तर पर संस्पर्श करती है। चाहे वह सामाजिक वर्ण्य विषय हो अथवा आध्यात्मिक, दार्शनिक हो अथवा रहस्यवाद से सम्बन्धित हो, सभी क्षेत्रो मे कबीर मानव को हीनताओ, क्षुद्रता और निम्न प्रवृत्तियो से ऊपर उठाकर आध्यात्मिकता, सामाजिकता एवं वृहत्तर मानवता के उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित और आसीन करने के लिये प्रयत्नशील है। मानवता के इतिहास मे मानव समाज के कितने भी हिमायती उत्पन्न हुए हैं उनमे से कबीर का स्थान बड़ा उच्च और स्पृहणीय है। इसका कारण यह है कि कबीर ने जिन अनुभवो को हृदयगम किया वे सब यथार्थ और वास्तविक है। इसीलिये कबीर ने दया, विश्वबन्धुत्व और प्रेम की भावना पर विशेष जोर दिया है। कबीर ने मानवतावादी भावो से अनुप्राणित होकर कहा :—

दया दिल में राखिये, तू क्यों निरदयी होय।
साईं के सब जीव है, कीडी कुंजर सोय।

दया, उदारता और क्षमा के सम्बन्ध मे कबीर ने अनेक युक्तपूर्ण उक्तियो को जनता के समक्ष प्रस्तुत किया। कबीर ने दान और क्षमा इन दो उदान्त अलौकिक गुणो के सम्बन्ध मे जाने कितनी साखियो की रचना की जिनमे से दो यहाँ उद्धृत की जाती है।

(१)

दान दिये धन ना घटे, नदी न घटे नीर।
आपनी आँखों देखिये, यों कीत कहे कबीर।

(२)

जहाँ दया तहाँ धर्म है, जहाँ लोभ तहाँ पाप।
जहाँ क्रोध तहाँ काल, जहाँ क्षमा तहाँ आप।

इन पंक्तियों मे धर्म का बडा उदान्त, व्यापक और जन कल्याणकारी रूप व्यक्त हुआ है। दया कबीर के समस्त दर्शन सिद्धान्तो और उपदेशो का सार तत्व है। कबीर को कविता की भावभूमि की एक झलक उपयुक्त उद्धरणो से प्राप्त होती है। इसी प्रकार के महान विचार, महान सन्देश, और तत्व एव तथ्य पूर्ण कथन कबीर की कविता की विशेषताये है। कबीर की कविता मे महान सन्देशो की अभिव्यक्ति हुई है। सभ्यता, संस्कृति वैज्ञानिक प्रगति, सामाजिक मान्यताओ और लौकिक जीवन के मानदण्डो मे कितने ही परिवर्तन समुपस्थित हो जांय परन्तु कबीर के सन्देश अनभूतिपूर्ण कथन कभी भी झूठे नही पडेंगे। यह अभिनवता वर्ण्य विषय की यह शाश्वतता इसलिये है कि कबीर की अनुभूति जीवन सत्य और प्रत्यक्ष जगत से ग्रहीत हुई है। कबीर के यह शब्द कभी फीके नही पडे गे और इनका प्रभाव सीधे मानवीय हृदय पर पडता है।

कबीर की भाव भूमि मानव के सामजिक, धार्मिक, आर्थिक और आध्यात्मिक जीवन से सम्बन्धित है कबीर समाज के सूक्ष्म पर्यालोचक थे। उनके लिए समाज और धर्म मानव-जीवन के दो अभिन्न पक्ष है। समाज, धर्म का आधार लेकर ही फूलता फलता और आगे बढता है, और धर्म समाज का पूरक है। तात्पर्य यह है कि दोनो अन्योन्याश्रित है। सत्य, सामाजिक और धार्मिक गुण है। विश्वास, धैर्य दया, क्षमा, सन्तोष, दैन्य, शील, विवेक आदि जितने सामाजिक गुण हैं उतने ही धार्मिक। कबीर ने इसीलिए इन पर बडे विस्तार के साथ विचार प्रगट किया है। सम दृष्टि और समता मानव के लिये बढे वरदान हैं। और कुसग मानव तथा वनस्पति व पशु जगत के लिये भी सतत रूप से दुखप्रद है। जनसुलभ अप्रस्तुत योजना के द्वारा कबीर ने अपने समय के कुसग से अभिशप्त मानव समाज को सम्बोधित करते हुए कहा—

(१)

केला तबहि न चेतिया, जब ढिंग लागी बेरि।
अबके चेते क्या भया, कांटों लीन्हा घेरि।

(२)

बुद्धि बिहूना आदमी जाने नहीं गंवार।
जैसे कपि परबस परयो नाचै घर-घर द्वार।

और व्यर्थ ही सतर्स गये रत कठोर हृदय वाले व्यक्तियो को सम्बोधित करते हुए कबीर ने 'संगति भई तो क्या भया, हिरदा भया कठोर। नौ नेजा पानी चढ़ै तऊ न भीजै कोर।' भेष बाह्याडम्बर, दुविधा, असत्य, अन्तोष जैसे 'दुर्गुणो' जो सामाजिकता के लिये अभिशाप है, की कबीर ने कटु निन्दा की। कबीर "जस की तस धरि दीनी चदरिया' मे विश्वास करते थे। यह मानव शरीर रूपी चदरिया का उपयोग यत्न पूर्वक ही करना चाहिए और इस चदरिया का यत्न पूर्वक प्रयोग करना ही सबसे बड़ा सामाजिक गुण है। कबीर का काव्य मानव जीवन, मानव समाज और व्यक्त की प्रत्येक दिशा का स्पर्श करता है। तभी तो आलोचको ने कहा कि कबीर मानव जीवन के सूक्ष पर्यावलोचक थे। वास्तव मे कबीर की कविता मे मानव जीवन के विविध पक्ष, प्रवृत्तियाँ, भावनाये व्यक्त हुई है। मनुष्य कैसा है और उसे कैसा होना चाहिये यह कबीर की कविता मे बहुत ही स्पष्ट रूप से, बहुत ही सूक्ष्म रूप से चित्रित हुआ है। कबीर मानव के बड़े हिमायती और सवेदनशील थे। उनकी कविता मे समाज की असंगतियो मानव जीवन को कुरूपताओ, धर्मगत विषमताओ और चतुर्दिक व्याप्त विडम्बनाओ का व्यापक चित्रण हुआ है। कबीर ने अपने काव्य का विषय इन्ही के आधार पर चित्रित किया है और इसीलिए मानव जीवन और परिस्थितियो के चितेरे कबीर का चित्रपट बहुत व्यापक है। इन समस्त असंगतियो के मध्य मे कबीर ने समन्वय संस्थापित करने की चेष्टा की। कबीर का समन्वय अद्भुत, अनोखा और अद्वितीय है। यह समन्वय न तो विभिन्न वादो मतमतान्तरो और दर्शनो से सग्रहित विचार धारा के सुन्दर सुमनो का समुच्चय है न वह किसी प्रकार का समझौता है और न किसी यथार्थ से पलायन है। यह समन्वय तत्कालीन परिस्थितियो और विषमताओ से अनुप्राणित होकर सस्थापित किया गया है। युगों से कुलीन और अन्त्यज, हिन्दू और मुसलमान वर्णों और वर्गों के मध्य मे विषमतायें चली आ रही थी। कबीर ने इनके मध्य से समन्वय सस्थापित करने की चेष्टा की। कबीर के समन्यवाद का मूलाधार परम तत्व है। यही परमतत्व समस्त मानव समाज का कर्त्ता है। मनुष्य दर्शनो और वर्णों के भ्रमों मे भटकता फिरता है। परन्तु वास्तविकता कुछ दूसरी है।

जोगी गोरख गोरख करें,
हिन्दू राम नाम उच्चारि।
मुसलमान कहै एक खुदाई,
अलह राम सति सोई।

इसी प्रकार साधनात्मक जीवन की विषमताओ की ओर भी कबीर ने समन्वयात्मक दृष्टि से देखा। ब्रह्म के सम्बन्ध मे कबीर ने इसी प्रकार जो चित्र अंकित किया वह समन्वयात्मक है।

वो है तैसा वोही जाने, ओही आहि आहिनही आने।

नैनां बैन अगोचरी, अबनां करनी सार।

बोलन के सुख कारने, कहिये सिरजनहार॥

समन्वय की भावना से ही प्रेरित होकर कबीर ने कहा कि—

हंसा पय को कढि ले, और नीर निखार।

ऐसे गई जो सार को, सो जन उतरे पार।

कबीर की भाव भूमि मे दार्शनिकता का प्रखर रग और प्रभाव परिलक्षित होता है। अदैवत व्रत, अनश्वर आत्मा अतिशय नश्वर ससार क्षणिक जीवन ये सब एक एक कर कबीर की कविता मे व्यक्त हुए हैं।

कबीर का वर्ण्य विषय सत्य, वास्तविकता और यथार्थ से परिपोषित हैं। उनकी साधनात्मक सामाजिक, धार्मिक और दार्शनिक उक्तियाँ अत्यन्त यथार्थ है और उनका आधार प्रस्तुत अथवा प्रत्यक्ष है। दार्शनिक, और आध्यात्मिक का विश्लेषण भी कबीर ने बडी रोचक और प्रभावशाली मे किया है। उदाहरण के लिए यहाँ पर कतिपय साखियाँ उद्धृत की जाती है।

(१)

यह तन काचा कुम्भ है, लिया फिरैं या साथि।

डबका लागा फूटि गया, कछू न आया हाथि।

(२)

कस्तूरी कुंडलि वसे मृग ढूंढे वन माहिं।

ऐसे घट घट राम हैं, दुनियाँ देखे नाहिं।

(३)

पानी केरा बुदबुदा अस मानस की जाति,

एक दिन छिप जाहिंगे, तारे ज्यूं परिभात।

कबीर की कविता का वर्ण्य विषय स्पष्ट और हृदयग्राही है ज्ञान, विज्ञान जिन बातो का उल्लेख कबीर ने किया है वे बडी ही स्पष्ट है और स्पष्ट होने के कारण उनका वर्ण्य विषय हमारे हृदय और मस्तिष्क को स्पर्श कर लेने मे पूर्ण रूप सक्षम है से। कबीर ने अपने काव्य की रचना जनता के निम्न वर्ग के लिए की थी

और इस वर्ग के लिए कबीर ने जिस अभिव्यंजना माध्यम को चुना वह बड़ा ही सहज है। कतिपय उलट वासियो को छोड कर उनका समस्त काव्य बहुत सरल और सहज है। शृंगार नश्वरता, विरह और संयोग जैसे विषयो को कबीर ने बड़ी सरलता के साथ सरल भाषा के माध्यम से जनता के समक्ष उपस्थित किया।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से सुस्पष्ट हो जाता है कि कि कबीर की कविता की भावभूमि मे जनकल्याणकारी और लोक रंजनकारी है। कवीर की कविता मे कला पक्ष नगण्य है जो कुछ महत्वपूर्ण है वह हैं कबीर को भाव भूमि, कबीर का भावपक्ष, कबीर का वर्ण्य विषय अथवा कबीर का सदेश। और इसमे सन्देह है कि कवीर अपने भावभंग के साथ पाठक अथवा श्रोता को सफलतापूर्वक बाहर ले जाते हैं। झांझ, मंजीरा अथवा एकतारे पर गाये जाते हुए कवीर के पद हमे आत्म-विभोर कर देते हैं और यही कवि की सफलता है। कवि का सौभाग्य है या कवि का गौरव है।

———

कबीर की काव्य कला

सन्त कबीर सन्तमत प्रवर्तक एवं संस्थापक थे। सन्तमत के अन्तर्गत हृदय उदात्त भावना भक्ति एव साधना की चरम अभिव्यक्ति हुई है। उसमे हृदय की स्वाभाविक प्रेरणा की झलक विद्यमान है। सन्तमत बहुजन हिताय, स्वच्छन्द एवं नैसर्गिक है। सन्तमत के सम्बन्धित साहित्य मे कृतिमता का अभाव है। काव्य की सरलता एव सहजता ही उसकी विशेषता है। इस साहित्य मे सन्तो के महान् व्यक्तित्व, निर्मल हृदय तथा उनकी जनहित की भावना प्रतिबिम्बित होती है। मध्ययुगीन साहित्य की विशेषताओ का उल्लेख करते हुए डॉ० रवीन्द्रनाथ टैगोर ने लिखा है कि "मध्य युगेर साधक कबीरा हिन्दी भाषाएं जे भाव रसेर ऐश्वर्य विस्तार करियाछेन ताहर मध्ये असमान्य विशेषत्व आछे। सेई विशेषत्व एइ जे ताहादेर रचनाय उच्च अगरे साधक एव उच्चे अगेर कवि एकग्र मिलित होइयाछेन एमन मिलन सर्वत्रइ दुर्लभ।' (सुन्दर ग्रन्थावली प्राक्कथन-सम्पादक पुरोहित हरिनारायण शर्मा) अर्थात् मध्य युग के साधक एव कवियो ने जो भाव एव रस का विस्तार किया है उसमे असामान्य विशेषता अंकित है। वह विशेषता यह है कि उस रचना मे उच्च श्रेणी के साधक तथा उच्च श्रेणी के कवि का सम्मिलन है इस प्रकार का सम्मिलन सर्वत्र दुर्लभ है। सन्तमत का काव्य-साहित्य बहुत स्वतन्त्र तथा प्रभावशाली है। सन्तमत के समस्त कवियो मे कवि कबीर सबसे अधिक प्रतिभाशाली एव मौलिक थे। मौलिकता तथा प्रतिभा मे तो कबीर हिन्दी साहित्य के सूर्य एव चन्द्र' सूरदास तथा तुलसीदास से कही अधिक बढे हुए धनी हैं। कबीर जिस कुल मे उत्पन्न हुए या कबीर का जिस कुल मे पालन-पोषण हुआ वहाँ न कोई सांस्कृतिक परम्परा विद्यमान थी न अध्ययन का वातावरण था न वेदशास्त्र की चर्चा। कबीर ने स्वय कहा है कि "मसि कागद छूयों नही कलम गह्यो नहि हाथ" ऐसे वातावरण मे उद्भुत होकर, परिपालित होकर कबीर धर्म सुधार, समाज परिष्कार तथा काव्य रचना के क्षेत्र मे अवतरित होकर, अपनी मृत्यु के अनन्तर ५०० वर्षों तक चर्चा मनन, अध्ययन, आलोचना और अनुसन्धान के विषय बने रहे यह कबीर की अद्वितीय प्रतिभा तथा मौलिकता का परिचायक है। कबीर ने काव्य रचना का व्रत नही लिया था, न कविता लिखने की प्रतिज्ञा करके उन्होने कहीं पर कुछ लिखा है। फिर भी पाँच सौ वर्षों से कवि या महाकवि के रूप मे अध्ययन के विषय बने हैं। कबीर को, रीति

कालीन कवियो की भाँति पिंगल और अलंकारो का ज्ञान नहीं था न इनके आधार पर उन्होने काव्य रचना ही की तथापि उनमे काव्यानुभूति इतनी प्रबल एवं उत्कृष्ट थी कि वे सरलता के साथ महाकवि कहलाने के अधिकारी हैं। सत्य यह है कि कविता मे छन्द, अलंकार, शब्दशक्ति आदि गौण है, और सन्देश प्रधान है। यही सन्देश कबीर की कविता की विशेषता है। कबीर की कविता मे महान् सन्देशो की अभिव्यक्ति हुई है। सभ्यता और संस्कृति चाहे कितनी ही विकसित हो जाय पर कबीर के ये सन्देश कभी न फीके पड़ेंगे न समय की गति मे पुराने (या आउट आफ डेट) पड़ेंगे। इन सन्देशो मे आनेवाली पीढ़ियो के लिये प्रेरणा, पथ प्रदर्शन तथा संवेदना की भावना सन्निहित है। महाकवि का यही दायित्व है कि वह अपनी सूक्ष्म दृष्टि के द्वारा आने वाली पीढियो को भावी मनोवृत्ति का आसानी के साथ अनुमान लगा ले और तदनुकूल साहित्य की रचना करे। कबीर मे यह शक्ति विद्यमान थी। अलंकारो से सुसज्जित न होते हुए भी कबीर के सन्देश काव्य-मय है। सच यह है कि काव्य की मर्यादा जीवन की भावात्मक एव कल्पनात्मक विवेचना मे हैं, पिंगल मे नही। इस दृष्टि से कबीर एक अत्यधिक सफल कवि हैं। कबीर भावना की अनुभूति से मुक्त, उत्कृष्ट रहस्यवादी, जीवन का सवेदनशील सस्पर्श करने वाले और मर्यादा के रक्षक कवि थे। कबीर की काव्य कला का मूल्याकन परम्परागत पिटी-पिटाई रस, छन्द, अलंकार की कसौटी पर नही होना चाहिए। उन्होने स्वतः कहा है "तुम जिन जानो गीत है, यह निज ब्रह्म विचार 'तथा' कवि कवी ने कविता मुये। उनकी कविता का लक्ष्य मानव है। पथ-भ्रष्ट, मार्ग-विभ्रात जनता तथा समाज को उचित मार्ग पर लाना ही कबीर के काव्य का हेतु है। सक्षेप मे उनकी काव्य धारा का धरातल मानव है। वह मानव की पूरी पूरी विवेचना हमारे समक्ष प्रस्तुत करने मे असमर्थ हैं। कवि के रूप मे कबीर जीवन के अत्यन्त निकट हैं। उनके काव्य मे रीतिकालीन आचार्यो जैसी कलाबाजी तो नही है पर निश्चय ही उनकी कला उनकी स्पष्टवादिता तथा स्वाभाविकता मे है। स्वाभाविकता कबीर के काव्य की सबसे बडी शोभा और कला की सबसे बडी विशेषता है। कबीर के काव्य का आधार स्वानुभूति या यथार्थ है। उन्होने स्पष्ट रूप से कहा कि "मैं कहता हूँ आँखिन देखी ? तू कहता है कागद की लेखी।' कबीर अत्यधिक प्रगतिशील कवि थे। कवि, चिन्तक, दार्शनिक, समाज सुधारक, धर्म सुधारक तथा रहस्यवादी के रूप मे वे अपने समय से बहुत आगे और सक्रिय थे। क्षमता, विद्रोह, विश्व-बन्धुत्व की भावना ने हमारे कवि को बड़ा उदार और जनप्रिय बना दिया था। साराश यह कि कबीर जन्म से विद्रोही, प्रवृत्ति से समाज-सुधारक कारणो से प्रेरित होकर धर्म-सुधारक, प्रगतिशील दार्शनिक और आवश्यकतानुसार कवि थे। सरल

जीवन, सत्यता एव स्पष्ट व्यवहार उनके अन्तरग एवं वहिरंग का सार तत्व था। उनके व्यक्तित्व का पूरा-पूरा प्रतिविम्ब उनके साहित्य मे विद्यमान है। कवीर की सूक्तियाँ आज भी जनता मे वारम्वार उद्धृत होती है, उनकी पदावली का प्रसार आज भी आकाशवाणी के द्वारा होता है। यह सब इस बात का द्योतक है कि कवीर के काव्य मे कुछ ऐसी विशेषता एव गुण है जिनकी समानता हिन्दी का कोई अन्य कवि नही कर पाता है। उनमे ऐसा अनूठापन है जिसके कारण वे किसी एक श्रेणी विशेष के कवियो मे परिगणित नही होते। उनमे कुछ ऐसा आकर्षण है जो हृदय को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है।

कवीर की कविता प्रतिपाद्य मानव है। काव्य की भूमिका मे उतर कर कवीर ने मानव को खूवियो और खामियो का सूक्ष्म पर्यालोचन किया है। अपने युग मे और आज भी कवीर एकता के प्रतीक और अनाचार, दुराचार, भ्रष्टाचार के शत्रु माने जाते हैं। कवीर का प्रतिपाद्य स्थूल रूप से दो भागो मे विभाजनीय है। इनमे से प्रथम है रचनात्मक तथा द्वितीय आलोचनात्मक है। रचनात्मक विषयो के अन्तर्गत हमारे आलोच्य कवि ने सतगुरु नाम, विश्वास, धैर्य, दया, विचार, औदार्य, क्षमा, संतोष, दैन्य, भक्ति, मुक्ति, ज्ञान, वैराग्य, शील, विवेक, विचार, जैसे अनेक विषयो पर अपने विचारो को क्रियात्मक शैली मे व्यक्त किया है। यहाँ उनकी खण्डनात्मक प्रतिभा या विशेषता के दर्शन नहीं होते हैं। अपने काव्य मे उन्होने इन विषयो की महत्ता पर ही प्रकाश डाला है और प्रेम, विश्वास एवं भक्ति के उच्चादर्शों के प्रचार एव प्रसार के लिए प्रयत्न किया है। इन विषयो के प्रतिपादन मे जीवन को उदात्त भावो की ओर ले जाने का संकेत है। ये प्रसंग उनके काव्य की उच्च भूमिका है। यहाँ मानव की हीनताओ का दिग्दर्शन नही कराया गया है। अव प्रतिपाद्य के दूसरे पक्ष पर आइए। वहाँ कवि कवीर की आलोचनात्मक प्रतिभा का व्यापक प्रदर्शन हुआ है। यहाँ कवि के अतिरिक्त वे आलोचक, सुधारक, पथ-प्रदर्शक और समन्वय-कर्त्ता के रूप मे भी दृष्टिगत हुए हैं। इस पक्ष मे विशेष परिगणनीय विषय है चेतावनी, भेष, कुसग, माया, मन, कपट, कनक-कामिनी, आशा, तृष्णा, अहं, लोभ, परनिन्दा, भेदभाव, जातिवर्णादि। इन प्रसंगो का अध्ययन करते ही आभासित हो जाता है कि मानव कितना हीन प्राणी है। वह काम-क्रोध मद, लोभ, अहंकार से प्रपीडित है। आशा एवं तृष्णा जीवन के लिए वडे अभिशाप हैं। ये नित्य मानव को दिग्भ्रान्त किये रहते हैं। कवीर के काव्य का यह पक्ष यह स्थापित करता है कि मानव वडा हीन है। सन्तकाव्य मे इन्ही विषयो को लेकर कवियों ने अपने विचारो

को प्रकट किया। देखने मे विषय लघु है पर ये मानव जीवन का व्यापक रूप से स्पर्श करते हैं।

कवि कबीर की अभिव्यंजना शैली बड़ी शक्तिशाली, समर्थ और प्रभावशाली, है। प्रतिपाद्य के एक-एक अंग को लेकर अशिक्षित, निरक्षर, संस्कारविहीन, पर परम्पराओ के प्रभाव से विहीन इस कवि ने सैकड़ो साखियो की रचना की है। आश्चर्य की बात यह है कि प्रत्येक साखी मे अभिनवता है, यद्यपि प्रतिपाद्य वही है।

साखियो मे समान रूप से विद्यमान है। रमणीयता और अभिनवता जो काव्य की परिभाषा के अंग है कबीर के काव्य मे सर्वत्र विद्यमान है। कबीर ने ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, योग, हठयोग, जैसे दुरुहतम विषयो को अपनी अभिव्यजना शैली के माध्यम से बडे सुबोध एवं सरल रूप मे व्यक्त कर दिया है। माया, आशा, तृष्णा आदि विषयो का बड़े रोचक ढग से रहस्योद्घाटन किया है। चेतावनी को अग "अध्ययन करते जीवन और मृत्यु, सृष्टि और विनाश, ब्रह्म और जीव जैसे विषयो को कबीर ने अपनी अभिव्यजना शैली के द्वारा इतना सुबोध बना दिया है कि शिक्षित और अशिक्षित समान रूप से उनके उपदेश और सकेतो को ग्रहण कर सकता है। लगभग ५०० वर्षों से जो कवि निम्न और अशिक्षित वर्ग का पथ प्रदर्शक और धर्म सुधारक माना जाता था आज उच्चतम उपाधियो के लिए अनुसंधान का रहस्य बना हुआ है। कबीर की अभिव्यजना शक्ति की विशेषताएं है सरलता, सुबोधता, सहजता, अभिनवता और प्रभावित करने की अद्वितीय शक्ति उनकी वाणियो मे साहित्यिक अभिव्यक्ति हुई है। उदाहरणार्थ कतिपय साखियां यहाँ उद्धृत की जाती है —

(१)

बुरा जो देखन मैं चला जग में बुरा न कोय।
जो दिल खोजा आपना मुझ सा बुरा न कोय॥

(२)

चुन चुन चिड़िया महल बनाया लोग कहें घर मेरा है।
न घर मेरा न घर तेरा चिड़िया रैन बसेरा है॥

(३)

देखन के सबको भले जिसे सीत के कोट।
रवि के उदे न दीसही, बँधे न जल की पोट॥

(४)

तन सराय मन पाहरू मनसा उतरी आय।
कोउ काहू का है नही, देखा ठोंकि बजाय॥

इन साखियो मे अभिव्यक्ति सत्य सबको प्रभावित करता है। कबीर को 'हाड जरै ज्यो लाकडी, केस जरै ज्यो घास,' 'पानी कैरा बुलबुला जस मानुष की जाति। 'तथा' यह तन काचा कुंभ है लिये फिरै था साथ। 'टनका लागा फूटिया, कछु नहि आया हाथ 'आदि साखियो मे अभिव्यंजना शक्ति विशेष रूप से प्रभावशाली है कि उनमे सत्य की अभिव्यक्त हुई है। उपनिषदो की दुरुह उक्तियो को कबीर ने बडो सरलतम भाषा मे व्यक्त किया है।--

पानी ही थे हिम भया हिम ह्वे गया विलाय,
जो कुछ था सोई भया अब कछु कहा न जाय॥

तथा

हेरत हेरत हे सखी रहा कबीर हेराय।
बूँद समान समुद्र में सोकत हेरा जाय॥

मे तत्व और रहस्य की अभिव्यक्ति हुई है। निम्नलिखित दो साखियो मे कबीर का अभिव्यजना कौशल दर्शनीय है :—

पिय का मारग सुगम है तेरा भजन अचेड़ा।
नाच न जानै बापुरी कहँ आगना टेढ़ा॥

तथा

पिय का मारग कठिन है खाँडा हो जैसा।
नाचत निकसी बापुरी फिर घूँघट कैसा॥

किंचित शब्दो के हेर-फेर से साखियो के प्रतिपाद्य मे कितना अन्तर पड गया है। कबीर प्रमुख रूप से अनाचारो के विरुद्ध आवाज उठाने वाले दार्शनिक कवि थे। उनकी अभिव्यजना शैली की शक्तिमत्ता "चेतावनी" प्रसग मे दृष्टिगत होती है। दो एक उदाहरणो से कथन स्पष्ट हो जायगा :—

आछे दिन पाछे पाछे गए, गुरु से किता न हेत।
अब पछताया क्या करे जब चिड़िया चुग गई खेत॥

तथा

मनुष जन्म दुर्लभ अहै होय न बारम्बार॥
तरवर से पत्ता झरे, बहुरि न लागै डार॥

सारांश यह कि कवि कबीर की अभिव्यंजना शक्ति उनके व्यक्तित्व के अनुकूल तथा अनुरूप है। जिस प्रकार उनकी दृष्टि मे तीक्ष्णता तथा तीव्रता थी उसी

प्रकार से उनकी अभिव्यन्जना प्रतिभा भी प्रखर थी। अन्य सन्तो की बानियो मे कबीर की रचनाएं मिलाकर रख दीजिए परन्तु विशिष्टता के कारण वे कबीर की रचनाएं कहलाकर रहेगी। निम्नलिखित साखी से उनके व्यक्तित्व की किंचित थाह और अभिव्यंजना शक्ति का लेश परिचय मिल जायगा।

खुली खेलो संसार में, बांधि न सकै कोय।
घाट जगाती क्या करे, सिर पर पोट न होय॥

यहां पर जिस पोठ की ओर कबीर का संकेत है वह दुष्कर्म की पोठ है और खुली खेलो से तात्पर्य है सच्चाई या ईमानदारी का व्यवहार। कबीर ने उपनिषदो की परम्परा से ब्रह्म का वर्णन बडी सरल शैली मे किया है—

जाके मुँह माथा ही नहीं रूपक रूप।
पुहुपवास से पतला ऐसा तत अनूप॥

जाति पाँति की निन्दा करते हुए बड़े सक्षेप मे कबीर ने तत्व की बात कह दी है—

एक बूंद एकै मलमूतर, एक चाँम एक गूदा।
एक जाँति थे सब उतपना कौन बाह्मन कान सुदा॥

तथा

एकै पवन एक ही पानी एक जोति संसारा।
एक ही खाक घड़े सब भाँड, एक ही सिरजन हारा॥

ब्रह्म, जीव, माया आदि के रहस्यो को भी कबीर ने प्रभावशाली एवं स्पष्ट शैली मे व्यक्त कर दिया है। कबीर की अभिव्यन्जना शक्ति बेजोड़ थी।

कबीर के काव्य मे बुद्धि तत्व की प्रधानता है। पाश्चात्य काव्य शास्त्रियो के अनुसार काव्य के लिए बौद्धिकता या बुद्धि-तत्व आवश्यक है। जिस रचना मे बुद्धि तत्व विद्यमान माना जाता है वह रचना स्थायी महत्व को प्राप्त करती है। ऊपर कहा जा चुका है कि कबीर के काव्य मे इस तत्व की प्रधानता है। कबीर का बुद्धि तत्व सरस तथा रोचक है उसमे शुष्कता या नीरसता का स्पर्श नहीं होने पाया। निश्चय ही आत्मा, परमात्मा, जीव, जगत आदि नीरस विषय हैं परन्तु कबीर ने इन बौद्धिक समस्याओ का समाधान करने के लिए सरल भाषा, भावमयी अनुभूतियो तथा मधुर कल्पनादि का सहारा लिया है। बात यह है कि कबीर अपने प्रतिपाद्य को जनता के उस स्तर के लिए प्रस्तुत करने जा रहे थे जो निरक्षर था, अशिक्षित

था। ऐसे वर्ग के लिए बौद्धिक समस्याओ को रोचक एवं सरल ढंग से प्रस्तुत करना ही उचित था। कबीर ने यही किया। उपर्युक्त समस्याओ तथा विषयो को लेकर कबीर ने अनेकानेक ऐसे पदो की रचना की है जो अपनी मौलिकता को खोये बिना रोचकता के रंग मे अनुरंजित हैं। बुद्धितत्व प्रधान होते हुए भी कबीर वादो के पीछे नही लगे। केशवदास के समान न उन्होने अपने को भक्त कवि प्रमाणित करने के लिए विज्ञान गीता की रचना की न देव के समान भक्ति के रग-मुंह मे पगडो रगने की आवश्यकता का अनुभव हुआ। उनकी दार्शनिक तत्व विवेचना मे हृदय का योग है। सत्य यह है कि कबीर की तुलना मे इतनी सरसता, सरलता तथा भावपूर्ण शैली मे दार्शनिक एव आध्यात्मिक तत्वो की विवेचना और अभिव्यजना और कोई कवि कर ही नही सका। कबीर ने बुद्धि की तर्कपूर्ण कसौटी पर भावना को कसा। प्राचीन परम्पराओ, बहुदेवोपासना, मूर्ति पूजा, जप, तप, तिलक, माला आदि की उपयोगिता पर कबीर ने तर्कपूर्ण शैली मे विचार किया। कबीर की निम्नलिखित सखियो पर ध्यान दीजिए —

(१)

जल में कुम्भ कुम्भ में जल है बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना यह तत कथा गियानी॥

(२)

हेरत हेरत हे सखी रहा कबीर हेराइ।
समुन्द समाना बूँद में सो कत हेरा जाइ॥

(३)

झल उठी झोली जली, खपरा फूटिम फूति।
जोगी था सो रमि गया आसणि रही विभूति॥

(४)

जल भर कुम्भ जलै बिच परिया बाहर भीतर सोई।
तको नाम कहन को नांहीं दूजा भोखा होई॥

(५)

पंच तत्व का पुतरा जगति, रची में कीव।
मैं तोहि पूछो पंडिता, शब्द बड़ा की जीव॥

कबीर के काव्य मे बौद्धिक तत्व किस कोटि का है इन उदाहरणो से स्पष्ट हो जायगा। स्मरण रखना चाहिए इस साहित्य की रचना निम्न वर्गों के लिए हुई थी जो साहित्यकारो की सवेदना की परिधि से सदैव ही वचित रहे हैं। ऐसे ही व्यक्तियो से कबीर कहते हैं कि :—

मूँड़ मुँडाए हरि मिलै तो कौन न लेय मुड़ाय।
बार बार के मूड़ते भेड़ न बैकुन्ठ जाय॥

बुद्धितत्व के सम्बन्ध मे दो उद्धरण देकर दूसरे प्रसंग मे कबीर के काव्य पर विचार करेंगे :—

(१)

हस्ती चढ़िए ज्ञान को, सहज दुलीचा डारि।
स्वान रूप संसार है भूकन दे झक मारि॥

(२)

पाणी केरा पूतला राखा पवन संवारि।
नांनां वाणी बोलिया, ज्योति धरी करतारि॥

बुद्धितत्व के समान कबीर के काव्य मे भावना-तत्व की भी प्रचुरता है। यदि कबीर कोरे बुद्धिवादी होते तो उनकी रचनाओ मे भावना पक्ष का अभाव होता। कबीर के काव्य मे जो रसात्मकता है उसका प्रमुख कारण भावना-तत्व का विद्यमान होना है। शृंगार रस की जो निर्मल धारा कबीर मे उपलब्ध होती है वह भी प्रस्तुत कथन की पुष्टि करती है। कबीर की रचनाओ मे उपलब्ध यह शृंगार रस और भावना तत्व मानव को वासना के पाप पंक से निकाल कर निर्मलता के सच्चे रूप के दर्शन कराने मे सहायक है। इस भावना मे सत्य की अनुभूति और ज्ञान की गम्भीरता समन्वित है। उदाहरणार्थ यहाँ कतिपय साखियाँ उद्धृत की जाती है। इनमे भावनातत्व की गम्भीरता देखिए :—

(१)

नैनों की कोठरी पुतरी पलंग बिछाय।
पलकों की चिक डारि कै पिय को लिया रिझाय॥

(२)

प्रीतम को पतियाँ लिखूँ, जो कहुँ होय विदेस।
तन में, मन में, नैन में, ताको कहाँ संदेस॥

(३)

प्रीति जो लागी घुल गई, पैठि गई मन माँहि।
रोम रोम पिउ पिउ करै मुख की सरधा नाहिं॥

(४)

प्रेम छिपाया ना छिपै जा घट परगट होय।
जो पै मुख बोलै नहीं तो नैन देत हैं रोय॥

कबीर की साखियाँ, पदो एवं अन्य रचनाओं से ऐसी ही न जाने कितनी पंक्तियाँ निकाली जा सकती हैं जो भावना-तत्व से ओत-प्रोत हैं। दुलहिन गावहु मंगल चार 'इसी कोटि का पद है। सबकी आलोचना करने वाला, सबको डाट फटकार कर दोष निर्देशन करने वाला कबीर, फक्कड़, अक्खड़, मस्त कबीर इतना रससिक्त होगा, यह आश्चर्य की बात प्रतीत होती है। इतनी वाह्य कठोरता के बावजूद भी कबीर अन्तस बडा कोमल था इसलिए वह कहता है :—

(१)

सब घट रमता सांइया सुनी सेज न कोय॥

(२)

लागी लगन छूटै नहीं जीभ चोंच जरि जाय।
मीठा कहा अंगार में जाहि चकोर चबाय॥

(३)

कहै कबीर सुख कहा न जाई, ना कागद पर अंक चढ़ाई।
मानो मुंगेसम गुड़ खाई, कैसे बचन उचारा हो॥

संगीत मे राग का जो महत्व और उपयोगिता होती है वही काव्य जगत के अन्तर्गत कल्पना का स्थान है। शब्द जगत मे राग जिस दायित्व की पूर्ति करता है। उसी दायित्व को भाव जगत मे कल्पना का उद्भव, विधान एवं विकास होता है। कल्पना-शक्ति एवं प्रकार का सौन्दर्य-बोधात्मक एव चेतनता से सम्पन्न व्यापार है। कल्पना काव्य सौन्दर्य के विकास मे विशेष सहायक होती है। कवि के सौन्दर्य बोध को शक्ति देने का बहुत कुछ श्रेय इसी कल्पना को है। कल्पना के समागत से कविता रुचिर मनोवेगो के हेतु रमणीयता का सर्जन करती है। कल्पना का क्षेत्र व्यापक, व्यापार अद्भुत तथा कार्य महत्वपूर्ण है। संस्कृत के आचार्यों ने कल्पना के स्थान पर शक्ति का प्रतिभा की स्थितप्रतिपादन किया है।आचार्य मम्मट ने अपने 'काव्यप्रकाश' मे शक्ति को विशेष संस्कारो के फलस्वरूप कविता बीज रूप समुत्पन्न माना है। उनका कथन है 'शक्तिः कवित्वबीजरूपः संस्कार विशेष कश्चित्' अर्थात काव्य निर्माण के मूल मे प्रतिभा या शक्ति ही है तथा यह एक संस्कार विशेष है जो केवल कवि मे ही उपलब्ध होता है। कबीर की कविता मे कल्पना या कवित्व या प्रतिभा के दर्शन सर्वत्र होते है। व्यर्थ की कल्पनाओ के पीछे दौड़ना कबीर का लक्ष्य नहीं था। कबीर ने अपने काव्य मे केवल उन्हीं विषयो को लिया है जिनकी कल्पना रसानुभूति मे बाधक न सिद्ध हो। इसलिए यह स्वतन्त्रता और विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि कबीर के साहित्य मे कल्पना का स्वाभाविक विकास मिलता है। कबीर ही नहीं हिन्दी के अन्य [illegible] कवि भी कल्पना के धनी थे। उनकी कल्पनाएं [illegible]

उद्भावना है। उनकी कल्पनाशक्ति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमे व्यावहारिकता तथा कलात्मकता का सुन्दर समन्वय है। सन्तो ने भाव या वर्ण्य विषय को ही काव्य की आत्मा या सब कुछ मानकर बाह्यावरण एवं कलात्मक उपकरणो को जुटाने का प्रयास नही किया है। उन्होंने भावो की अभिव्यक्ति के लिए जिन-जिन उपकरणो को स्वीकार किया है वे सब अत्यन्त स्वाभाविक एवं सहज हैं। कबीर एवं अन्य सन्तो ने कल्पना को काव्य मे इस लिए स्थान दिया कि उनका वर्ण्यविषय अधिकाधिक प्रभावशाली, स्पष्ट तथा चमत्कारपूर्ण बन सके। अब यहाँ पर कबीर की कविता से कल्पना के सम्बन्ध मे कुछ उद्धरण देंगे :—

(१)

गुरु तुम्हारा शिष कुम्भ है गढ़ि-गढ़ि काढै खोट।
अन्तर हाथ सहार दे बाहर बाहै चोट॥

(२)

मन ताजी चेतन चढ़ै लहौकी करै लगाम।
सबद गुरु का ताजना कोई पहुँचे साधु सुजान॥

(३)

हरिहै खांड रेत महि बिखरी हाथी चुनि ना जाय।
कहि कबीर गुरु भली बुझाई कीटी होई के खाय॥

(४)

हाड़ जरै ज्यों लाकड़ी केस जरै ज्यों घास।
सबका जरता देखिकर भये कबीर उदास॥

(५)

पिया ऊँची रे अटरिया तोरी देखन चली।
ऊँची अटरिया जरदकिनरिया, लागी नाम की डोरी।
चाँद सुरज सम दियना बरतु है ता बिचु भूल डगरिया।
आठ मरातिब दस दरवाजा नौ में लागी किवरिया।
खिरकी बैठ गोरी चितवन लागी, उपरा झाँप झोपरिया॥

इन पाँच उद्धरणो की तेरह पंक्तियो मे कबीर की कल्पनाशक्ति, उस कल्पना शक्ति की विविधता और शक्तिमत्ता सरलता के साथ मूल्यांकन किया जा सकता है। सतगुरु को अंग, माया को अंग, चेतावनी को अंग आदि प्रसंगो मे कवि की कल्पना शक्ति का वैभव दर्शनीय है। शब्द, साखी और पदो मे समान रूप से कबीर की

कल्पना शक्ति बिखरी पडी हुई है। उसे 'कीटी होइ कै' खाना और खोजना पडेगा। कबीर की कल्पना का उत्कर्ष उन पंक्तियो मे विशेष रुचिकर है जहाँ वे संसार का वर्णन करते हैं।

सुगवा पिंजरवा छोरि कर भागा ॥
इस पिंजरे में दस दरवाजा, दसौ दरवाजौ किंवरवा लागा।
अखियन सेती नीर वहन लाग्यौ
अब कस नाही तु बोलत अभागा।
कहत कबीर सुना भाई साधो, उड़िगे हंस टूटि गया तागा।

तथा

कौन ठगवा नगरिया लूटल हो[1]
सतगुरु है रंगरेज चुनरि मोरी रंग डारी[2]
हंसा करो नाम नौकरी[3]
आई गवनवां की सारी,[4]
उमिरि अबहि मोरी बोरी[5]

आदि कल्पना के पारखी द्वार विशेष रूप से पठनीय है। इन कबीर की कल्पना शक्ति की विविधिता और स्पष्टता दिखाई पड़ती है। कबीर ने कल्पना के चुनाव मे औचित्य पर भी ध्यान दिया है यह उनकी मनोवैज्ञानिकता का परिचायक है। किसी वस्तु या व्यापार का वर्णन या कल्पना करते समय प्रत्यक्ष एवं कल्पित के साथ उसके साम्य तथा सम्बन्ध को ध्यान मे रखना नितान्त आवश्यक है। प्रस्तुत एव अप्रस्तुत के साम्य पर ही कल्पना का औचित्य निर्भर माना जाता है। कबीर तथा अन्य सन्तो ने इस वात पर विशेष ध्यान दिया है। वे न हवाई किलो के निर्माण मे विश्वास करते थे, न फालतू वातो का प्रतिपादन ही करते थे। निम्नलिखित उद्धरणो से इस कथन की पुष्टि होगी।—

(१)

वडा हुआ तो क्या हुआ जैसे पेड़ खजूर।
पंथी को छाया नहीं फल लागे अति दूर ॥

१—सतवानी संग्रह भाग २ पृ० ४।
२—वही पृ० २।
३—वही पृ० ३।
४—वही
५—वही

(२)

सौना सज्जन साधु जन, टूटि जुरै सौ बार।
दुर्जन कुम्भ कुंमार का एकै धका दरार॥

(३)

मूरख से क्या बोलिये सठ से कहाँ बसाय।
पाहन में क्या मारिये चोखा ती र नसाय॥

(४)

लिखा लिखी की है नहीं देखा देखि की बात।

दुल्हा दुलहन मिलि गये फीकी पड़ी बरात॥

इन साखियो मे कल्पना औचित्यपूर्ण प्रतीत होती है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भाव समन्वित कल्पना को सच्ची कवि कल्पना माना है। सच्ची कल्पना वही है जो अन्तस के शुद्ध भावो को जाग्रत कर दे तथा तत्सम्बन्धित भावो को पूर्णतया व्यंजित कर दे। सन्तो की कल्पना अनुभूति और भावुकता के आधार पर सृजित है, इसलिए वह प्रभावित करने की शक्ति और भाव-व्यंजकता से सम्पन्न है। उनकी कल्पना और वर्ण्य विषय जन जीवन से ग्रहण किए गए हैं। इसीलिए उनमे भाव व्यजकता है। कबीर की भाव व्यजकतापूर्ण कल्पना के कतिपय उदाहरण यहा दिये जाते हैं।

(१)

माली आवत देखकर कलियन करी पुकार।
फूलेर फूले चुन लिए काल्हि हमारी बार॥

(२)

पानी केरा बुदबुदवुदा अस मानुस की जात।
देखत ही छिप जायगा ज्यों तारा परभात॥
साहिब तुमहि दयाल हौ, तुम लगि मेरी दौर।
जैसे काग जहाज को, सूझै और न ठौर॥

इन साखियो मे नश्वरता तथा आत्म समर्पण का भाव व्यजित हो उठता है। यही है कवि की कल्पना की सफलता। कबीर की कल्पना शिक्षित अशिक्षित को प्रभावित करने मे समर्थ है।

मानव के हृदय एवं मस्तिष्क मे ऐसी अनेक बातें जन्म ग्रहण करती रहती है। जिनकी अभिव्यक्ति वह सामान्यतया व्यवहृत भाषा के माध्यम से नही कर सकता है। ऐसी हृदयानुभूति बिम्बो या संकेतो द्वारा भी नहीं अभिव्यक्त हो सकती है। इसी-

लिए सूक्ष्म एवं अर्द्ध स्पष्ट भावो की अभिव्यक्ति के लिए मानव ने प्रतीको की कल्पना की और उन्हे जन्म दिया। विद्वानो का कथन है कि मानव सभ्यता के विकास मे प्रतीको का उतना ही योग है जितना हमारे जीवन के विकास मे वायु या प्रकाश का। प्रतीको का जन्म उद्भव या विकास यथार्थ वस्तुओ के आधार पर होता है। काल्पनिक वस्तुएं या वे वस्तुएं जो निराकार है, उन्हे प्रतीको के माध्यम से नही व्यक्त किया जा सकता है और यदि वे मानव की विकसित चिंतन शक्ति के आधार पर व्यक्त भी कर डाली गई तो सत्य से दूर, यथार्थ से परे और प्रभावित करने की शक्ति से विहीन होगी। प्रतीको का जन्म जगत तथा जीवन की अर्थ भूमि से होता है। जीवन के साहचर्य से प्रतीको के अर्थ और प्रतीक का महत्व बढता है। माननीय अनुभवो से निकट रहकर प्रतीको मे सजीवता, अर्थ व्यक्तित्व की स्थापना होती है।

यथार्थ रूप से समक्ष विद्यमान रहने वाले पदार्थों के अतिरिक्त प्रत्यक्ष जगत मे विद्यमान रहने वाले अनेक पदार्थ हैं, जो इन्द्रियगत नही होते हैं फिर भी उनकी कल्पना तर्क विश्वास, एवं अनुमान द्वारा कर ली जाती है। आत्मा और परमात्मा ऐसे ही विषय है। इनके अगोचर होने के कारण विभिन्न मतवादियो मे भाँति-भाँति की धारणाएं प्रचलित हैं। ब्रह्मविद्या के विशेषज्ञ आत्मा को परमात्मा का अश मानते हैं पर मनोविज्ञान स्वय परमात्मा का आत्मा की सत्ता पर सिद्ध करना चाहता है। इनका वर्णन करना हमारी भाषा और सामर्थ्य के बाहर है। सन्तो के इन अकथनीय विषयो को काल्पनिक प्रतीको के द्वारा स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। प्रतीक केवल साहित्य की ही शक्ति नही होते हैं, वरन् वे जातीय एव सास्कृतिक अनुभव की शक्ति है। हर पीढ़ी आवश्यकतावश नये प्रतीको को गढ लेती है और प्राचीन प्रतीको को नये अर्थ और दृष्टि से देखती है। प्रतीक अपने व्यक्तित्व मे अनेक प्रकार के रहस्यो को समाहित रखता है। उसका कर्तव्य है उन रहस्यो को मधुर ढग से व्यक्त कर देना। प्रतीक भावुकता तथा अनेक प्रकार के ज्ञान के सार तत्व है। प्रतीक रहस्य नही है न रहस्य प्रतीक बन सकते हैं फिर भी दोनो मे अविच्छिन्न सम्बन्ध नही है। प्रतीको के माध्यम से निरपेक्ष सत्य की प्रावृत्ति को रहस्यवाद मानना चाहिए। रहस्यवाद प्रत्यक्ष जीवन की अन्तमूर्त चेतना को प्राप्त करना चाहता है और प्रतीक उसका आभास मात्र देने का प्रयास करता है। प्रतीक प्रणाली बडी प्राचीन है। दार्शनिक विचारो की व्यजना के लिए वैदिक ऋषियो ने भी प्रतीको को माध्यम बनाया था। ऋषियो ने उपनिषदो मे ब्रह्म का वर्णन, सूर्य, चन्द्रादि प्रतीको के माध्यम से किया था। मुण्डकोपनिषद् मे भी एक स्थल पर प्रतीको के माध्यम से विचार स्पष्ट करते हुए कहा गया है 'द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानवृक्ष परिस्वजाते' इसी परम्परा मे सन्तो ने भी प्रतीकों के माध्यम से अपनी रहस्यानुभूति की अभिव्यक्ति

की है। संत साहित्य मे दाम्पत्य एवं वात्सल्य प्रतीको का प्रचुर प्रयोग हुआ है। कभी-कभी प्रतीकात्मक पदो का अर्थ स्पष्ट करने के लिए सन्तो ने पंडित, पन्ड, मुल्ले और मौलवियो तक को चुनौती दे डाली है। कबीर का तो विश्वास है कि जो उनके प्रतीको को नही समझना है उससे वार्तालाप करने से कोई लाभ ही नही है :—

जो कोई समझे सैन में, तासे कहिये बैन।
सैन बैन समझै नहीं, तासे कहुनहि कहन॥

सन्तबानी सग्रह भाग १, पृष्ठ ४५।१३०)

कबीर की कविता मे प्रतीको का बाहुल्य है। कबीर के दास्य भाव के प्रतीको मे दास तथा ब्रह्म की एकात्मकता का भाव बड़ा आकर्षक बन पडा है :—

मैं गुलाम मोंहि बेचि गुंसाई। तन मन धन मेरा राम जी के ताई॥
आनि कबीरा घाट उतारा। सोई गाहक सोई बेंचन हारा॥
बेचें राम तो राखै कौन। राखै राम तो बेचै हारा॥
कहै कबीर मैं तन मन पारया। साहिब अपना छिन न बिसराया॥

इसी प्रकार कबीर के साहित्य मे वात्सल्य प्रतीको का बाहुल्य है :—

हरि जननी मैं बालक तेरा, काहे न अवगुन बकसहु मेरा।
सुत अपराध करै दिन केते, जननी के चित रहै न तेते॥
कर गहि केस करै जो धाता, तऊ न तो उतारै माता।
कहै कबीर एक बुद्धि बिचारी, बालक दुखी दुखी महतारी॥

कबीर ने दाम्पत्य प्रतीको की भी रचना की है। इस कोटि के प्रतीक बड़े रसमय और मधुर है। उदाहरणार्थ—

दुलहिन गावहु मंगलचार, हम घरि आयो हो राजा राम भरतार।
तन रति कर मैं मन रति करिहूँ, पंच तत बराती।
राम देव मोहि व्याहन आये मैं जोवन मदमाती॥
सरीर सरोवर वेदी करिहूँ, ब्रह्मा वेद उचार।
रामदेव संग भाँवरि लेहूँ, धनि धनि भाग हमारा॥
सुर तेतिस कोटिक आये मुनिवर सहज अठासी।
कहै कबीर हम व्याहि चलै है, पुरुष एक अविनासी॥

कबीर की रचनाओ मे साकेतिक प्रतीक,[१] 'पारिभाषिक प्रतीक, सख्यामूलक प्रतीक,[२] रूपात्मक प्रतीक[३] तथा प्रतीतात्मक उलटवासियो के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। प्रतीकात्मक उलटवासियो की रचना करने मे कबीर बडे कुशल थे। प्रतीकात्मक उलटवासियो के भी दो भेद है—प्रथम वे जो प्रतीक प्रधान है। द्वितीय रूपक प्रधान, रूपक प्रधान मे प्रतीक गौण रहता है। उदाहरणार्थ रूपक प्रधान उलटवासी देखे।

हरि के पारे बड़े पकाये, जनि जारे तिनि खाये।
ज्ञान अचेत फिरै नर लोई, ताते जनमि-जनमि डहकाये॥
धौल मंदलिया बैलरबाबी, कउवा ताल बजावै।
पहिर चोलना गदहा नाचै, भैसा निरति करावै॥
स्यंध बैठा पान कतरै, मूस गिलौरा लावै।
उदरी वपुरी मंगल गावै, कछु एक आनन्द सुनावै॥
कहै कबीर सुनहु रे सन्तो, गदरी परवत खावा।
चकवा बेसि अंगारे निगलै, संमद अकासे धावा॥

प्रतीक प्रधान उलटवासी

कैसे नगर करो कुटवारी, चंचल पुरिष विचक्कन नारी।
बैल बियाह गाय भई बाँझ, बछरा दूहै तीन्यू सांझ॥
मकड़ी घर माखी छटिहारी, मास पसारि चील्ह रखवारी।
मूसा केवट नाम बिलइया, मोडक सोवै साप पहरिया।
नित उठि स्याल सिंघ सू जूझै, कहै कबीर कोई बिरला बूझै॥

कबीर की प्रतीक योजना के सबन्ध मे उपर्युक्त उद्धरण से अनुमान लगाया जा सकता है। वास्तव मे कबीर साहित्य सुन्दर प्रतीक योजना से भरा पडा है। पग-पग पर कबीर ने सुन्दर प्रतीको के माध्यम से अकथनीय या कठिनाई से वर्णित होने वाले अनुभव को व्यक्त कर दिया है। प्रतीक सच्चे रहस्यवादी की बडी भारी शक्ति होती है। इसी प्रतीक के माध्यम से वह हृदय के भार को कम करता है। कबीर इसके अपवाद नही थे। कबीर के प्रतीक (उलटवासियो के अतिरिक्त) कही दुर्बोध और कठिन नही है। उनके प्रतीक भाव को ग्रहण करने मे सहायक सहयोग देने वाले हैं। अपढ़ जनता के लिये कबीर के ये प्रतीक और भी

१—कबीर ग्रन्थावली पृ० ८४ पद १८।
२—वही परचा को अग पद १०
३—संत कबीर पृ० २२८, राग भैरव पद १७।

अधिक वरदान स्वरूप है। कबीर के प्रतीको मे प्रभावसाम्य के कारण सदृश भावना जाग्रत होती है। वे पाठकों के भावों और विचारो को भी प्रबुद्ध करने मे सहायक है कबीर के प्रतीकों की ये विशेषताएं काव्य रचना की क्षमता को प्रमाणित करती है।

काव्य के दो पक्ष होते हैं-भाव और विभाव। ये उभय अन्योन्याश्रित है। अप्रस्तुत योजना या विभाव पक्ष काव्य का अभिन्न अंग है काव्य मे कलात्मकता एवं रमणीयता का सचार करने का समस्त श्रेय और दायित्व अप्रस्तुत योजना पर है। कवि के हेतु अप्रस्तुत योजना की शक्ति प्रकृति का बड़ा भारी वरदान है। सभी कवियो को यह प्रतिभा समान रूप से नही सम्प्राप्त होती है। उपमा के क्षेत्र मे सभी कालीदास की प्रतिद्वद्विंता नहीं कर सकते हैं। इस प्रकार की प्रतिभा का मूल कारण है वासना और संस्कार। दण्डी का अभिमत है कि अद्भुत प्रतिभापूर्व वासनागुणानुबन्धी अर्थात् कवि की प्रतिभा मे पूर्व वासना का गुण विद्यमान रहता है। वारभट्ट ने प्रतिभा को ही काव्य की उत्पत्ति का कारण मानते हुए कहा है प्रतिभा कारणान्तस्य। हेमचन्द्र ने भी कहा है कि—

> प्रतिभैवच कवीना काव्यकरण कारणम्।
> व्युत्पत्यभ्यासौ तस्या एव संस्कारकारकौ न तु काव्य हेतु॥

कवि के व्यक्तित्व मे अप्रत्यक्ष रूप से पूर्ववर्ती संस्कारो के रूप मे अद्भुत काव्य-प्रतिभा विद्यमान रहती है। यह प्रतिभा कवियो मे अनेक रूपो से पल्लवित होती है। अप्रस्तुत की सम्यक् एवं प्रभावशाली योजना नरक कार्य नही है। इसके लिए कवि मे अनेक विशेषताओ का होना परमावश्यक है। यह आवश्यक है कि वह लोकशास्त्र के तत्वो सूक्ष्म ज्ञाता हो। कवि मे जितनी अधिक सहृदयता तथा अन्त-दृष्टि होगी, वह जितना ही अधिक अनुभवी होगा उतनी ही सुन्दर उसको अप्रस्तुत योजना होगी और वह अप्रस्तुत योजना हृदयग्राही तथा मार्मिक भी होगी। इस सब के लिए यह भी आवश्यक है कि कवि अपने हृदय मे सवेदनशीलता को जाग्रत करे तथा जीवन एवं प्रकृति का सूक्ष्म पर्यालोचक बने। यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा कि यद्यपि कबीर शास्त्र के ज्ञाता, काव्य शास्त्र के आचार्य और विद्वान नही थे। परन्तु दण्डी ने जिसे प्रतिभा तथा हेमचन्द्र ने जिसे संस्कार रूप मे काव्य कौशल कहा है वह कबीर मे प्रचुर रूप मे विद्यमान था। इनके अतिरिक्त कबीर को दूरदर्शिता, रसज्ञता, सहृदयता तथा सवेदनशीलता ने उनके काव्य में अप्रत्यक्ष रूप से विभाग पक्ष को सुन्दर और प्रभावशाली बना दिया था। कबीर के लिए काव्य रचना एक साधन था साध्य नहीं। उनकी कविता मे हृदय की सत्यता का चित्रण हुआ है। सत्य जीवन और अनुभव की कलात्मक अभिव्यंजना करने के

पीछे कबीर न काव्य के बहिरग की ओर ध्यान नही दिया। सन्त कबीर के साहित्य मे वह सतर्कता एवं सावधानी नही उपलब्ध होती है जो लिखित साहित्य के लिए अपेक्षित है। कबीर का काव्यादर्श इस बात का पोषक है कि वे कवि-कर्म को निन्दनीय मानते हैं। काव्यसौन्दर्य की अभिवृद्धि के कृत्रिम साधनो, छन्द, अलंकारादि कीओर उनकी दृष्टि नही गई। इसीलिए उनके साहित्य पर अलकारो का मुलम्मा चढाने का प्रयत्न नही किया गया। कबीर के साहित्य मे जो अलंकार उपलब्ध हे जिनकी योजना कवि प्रतिभा अज्ञान रूप से भावो को प्रभाव पूर्ण बनाने के लिये किया करती है। अन्य सन्तो के काव्य मे भी उपमा, रूपक तथा अनुपासादि अलकारो की प्रचुरता का यही एक मात्र कारण है। रहस्यद्रष्टा इन सन्तो के रूपक तथा उपमाये दैनिक जीवन से सम्बन्ध रखती है। उन्हे प्रतीकात्मक मूर्तभावो के हेतु कही दूर जाने की आवश्यकता नही। कबीर के काव्य मे रूपक,[1] उपमा,[2] दृष्टात,[3] अद्‌गुण[4], स्वाभावोक्ति[5], अतिशयोक्ति[6], सहोक्ति[7], विशेषोक्ति[8], अन्योक्ति,[9] लोकोक्ति,[10] उदात्त,[11] विभावना,[12] विरोधाभास,[13] व्यतिरेक,[14] विचित्र,[15]

१—कबीर पदावली पृ० ५८, ५६, ६१ तथा कबीर ग्रन्थावली पृ० ८७, ६३।

२—सन्तबानी सग्रह भाग १, पृ० ३, ६, ८, ६, ११, १३, १५, १७, २०, २१, २५, २६, २६, ३० तथा प्रायः प्रत्येक पृष्ठ।

३—वही पृ० ६, १३, २४, २६, ३१।

४—वही पृ० ३१।

५—वही पृ० २३, २४, २५, २६।

६—ब्रह्मवाणी सग्रह भाग १, पृ० ५।

७— " " पृ० २६।

८—वही पृ० २, ३, ५, १७।

६—वही पृ० १५१।

१०—वही पृ० ६-१०।

११—वही पृ० भाग १ पृ० १।

१२—कबीर ग्रन्थावली पृ० १३६-१८०।

१३—वही पृ० २३, ८६।

१४—स० बा० स० भाग १, पृ० २।

१५—कबीर ग्रन्थावली पृ० १४१।

विषम,[1] अनन्वय[2], असंगति,[3] काव्यलिंग,[4] श्लेष,[5] यमक,[6] अनुप्रास[7] आदि के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। कबीर के काव्य मे प्रयुक्त अलंकारो मे सर्वत्र औचित्य प्रतीत होता है। उदाहरणार्थ यहाँ पर कतिपय साखियाँ उद्धृत की जाती है :--

(१)

मनुष जन्म दुर्लभ अहै, होय न बारम्बार।
तरुवर से पत्ता झरै, बहुरि न लागै डार॥

(२)

पूजा सेवा नेम व्रत गुडियन का सा खेल।
जबलगि पिउपरिचय नहीं, तब लगि संसय मेल॥

(३)

विरह कमण्डल कर लिये, बैरागी दोउ नैन।
मागे दरस मधुकरी छके रहै दिन रैन॥

कबीर की अप्रस्तुत योजना पूर्णतया गुण व्यापार, फल, रूप साम्य पर आधारित है। यह औचित्य उनकी उलटवासी साहित्य मे भी उपलब्ध होता है। अप्रस्तुत तोजना मे यर्थाथता का होना बहुत आवश्यक है। यह तभी सम्भव हो सकता जब कि सादृश्य स्वरूप अधिक और भावोत्तेजक हो। यदि अप्रस्तुत विधान स्वरूप अधिक मात्र है, तो वहाँ सौन्दर्य सृष्टि ही होती है। भावानुकूल साम्य योजना यथार्थ कही जाती है। कबीर के काव्य मे उपलब्ध अप्रस्तुत योजना यथार्थता से उदाहरणार्थ :—

(१)

यह तन कांचा कुम्भ है लिया फिरै का साथि।
ढबका लागा फूटि गया कछु न आया हाथि॥

१—वही पृ० ६२।
२—स० बा० स० भाग १ पृ० १।
३—कबीर ग्रन्थावली पृ० ११, ८६।
४—वही पृ० ६।
५—स० बा० स० भाग १, पृ० १२।
६—वही पृ० १-५०।
७—वही पृ० १, ७, १४, ३२।

(२)

पानी केरा बुलबुला अस मानुस की जाति।
देखत ही छिप जायगी ज्यों तारे परभाति॥

(३)

हाड़ जरै ज्यों लाकड़ी केस जरै ज्यों घास।
सब जग जरता देखि करि भये कबीर उदास॥

इन साखियों मे नश्वरता का भाव अनेक अप्रस्तुत विधानो द्वारा व्यक्त किया है। इनके पढने से संसार की नश्वरता के प्रति भावोनेजन के साथ ही स्वरूप वोध मे भी सहायता मिलती है। भावो की सुचारु व्यंजना के लिए ही अप्रस्तुत योजना की जाती है। भाव-व्यजना मे भी कवि की पटुता प्रतिबिम्बित होती है। जो कवि जितने सुन्दर भावो की व्यंजना कर सकता है, वह उतना ही अधिक पाठको को प्रभावित एवं आल्हादित कर पाता है। अतः आवश्यक है कि भावो मे ये नवीनता हो और सुचारुता हो। इसके लिये प्रवल अनुभूति की अपेक्षा है। संतो और विशेपतया कबीर की अनुभूति बडी गहन थी। अनुभूति की गहनता मे पहुँचकर ही उन्होने रूपको एव अन्योक्तियो की रचना की है। भावो की सुन्दर व्यंजना के लिये निम्नलिखित पद पठनीय है।

सतगुरु है रंगरेज चुनर मेरी रंगि डारी।
स्याही रंग छुड़ाइ केरे, दियो मंजीठा रंग।
धोये से छूटै नहीं रे, दिन दिन होत सुरंग॥
भाव के कुण्ड नेह के जल में प्रेम रंग देई बोर।
चसकी चास लगाइ केरे, खूब रगी झकझोर॥
सतगुरु ने चुनरी रगी रे, सतगुरु चतुर सुजान।
सब कुछ उन पर वार दूँ रे, तन मन धन औ प्रान॥
यह कबीर रंगरेज गुरु रे, मुझ पर हुए दयाल।
सीतल चुनरी ओढ़ि के रे, भइहो मगन निहाल॥

इसी प्रकार कबीर के पद 'मन फूना फूना फिरे जगत मे कैसा नाता रे' तथा 'हंसा करो नाम नौकरो' भावा व्यजकना को दृष्टि से उत्तम पद है। कबीर के काव्य मे अप्रस्तुत विधान की ध्वन्यात्मिकता बडी प्रभावशाली है। ध्वन्यात्मक अप्रस्तुत योजना मार्मिक मानी गई है। 'मन फूना फूना फिरे' मे कितनी सुन्दर ध्वन्यात्मक है। कबीर के अप्रस्तुत विधान मे व्यग्यो को बहुत स्थान मिला है। अनुचित न होगा

यदि कहा जाय कि कबीर इस दिशा मे सिद्धहस्त थे। उनके व्यंग बडे मार्मिक और प्रभावशाली होते हैं। उदाहरणार्थ यहाँ तीन साखियाँ दी जाती है—

(१)

पण्डित केरी पोथिया ज्यों तीतर का ज्ञान।
औरन सगुन बतावही आपन फन्द न जान॥

(२)

पण्डित और मसालची दोनों सूझै नाहिं।
औरन को करै चाँदन आप अँधेरे माहिं॥

(३)

नारी की झाईं परत अन्धा होत भुजंग।
कबीर तिनकी कौन गति नित ही नारी संग॥

संक्षेप मे कबीर की अप्रस्तुत योजना सरल प्रभावशाली एवं कृत्रिमता विहीन है।

संसार की असारता, विषम रीति-नीति, स्वार्थीधता, निम्न प्रवृत्तियो और कटु अनुभवों ने कबीर मे विचित्र तीखापन तथा आलोचनात्मक प्रवृत्ति समुत्पन्न कर दी थी। इसीलिये उनकी साखियो मे अनुभूति की गहनता दिखाई देती है। संसार की गति देखकर उनमे प्रतिकार की ऐसी भावना जाग्रत हो उठी थी कि वे नीति विपयक उक्तियो के द्वारा जनता को जाग्रत करने के लिए अग्रसर हुए। कबीर के काव्य मे नीति सम्बन्धी अनेक उक्तियाँ मिलती हैं। इनमे एक चतुर व्यक्ति की जैसी दूरदर्शिता एवं एक दूरदर्शी के सदृश सुझाव देने की अद्भुत क्षमता थी। उदाहरणार्थ यहाँ कतिपय साखियाँ उद्धृत की जाती है :—

(१)

देह धरे का दण्ड है, सब काहू को होय।
ज्ञानी भुगतै ज्ञान से, मूरख भुगतै रोय॥

(२)

जुआ चोरी मुखबिरी, ब्याज घूस, पर नार।
जो चाहै दीदार को एती वस्तु निवार॥

(३)

जग में बैरी कोउ नहीं, जो मन सीतल होय।
यह आपा तू डारि दे, दया करै सब कोय॥

(४)

मारग चलते जो गिरै, ताको नाहीं दोस ।
कह कबीर बैठा रहै, ता सिर करड़े कोस ॥

(५)

जो तो को कोटा बुवै, ताहि बोव तू फूल ।
तोहि फूल को फूल है, वाको है तिरसूल ॥

(६)

दुर्बल को न सताइये जाकी मोटी हाय ।
बिना जीव की स्वांस से, लौह भस्म होइ जाय ॥

(७)

जो देखे सो कहै नहिं, कहं सो देखे नांहि ।
सुनै सो समझावै नहीं, रसना दृग सरवन काहि ॥

इन साखियो मे गम्भीर ज्ञान और अनुभूति की अभिव्यंजना हुई है ।

प्रस्तुत सक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि काव्य रचना कबीर का साध्य या लक्ष्य नही था फिर भी महान सन्देशो को अभिव्यक्ति के लिये उन्हे काव्य को माध्यम बनाना पडा । धर्म गुरु होने के साथ-साथ कबीर कवि भी थे । डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दो मे "भाषा पर कबीर का जबर्दस्त अधिकार था । वे वाणी के डिक्टेटर थे । जिस बात को उन्होने जिस रूप मे प्रकट करना चाहा, उसे उसी रूप मे भाषा से कहलवा लिया--बन गया तो सीधे-सीधे नही तो दोहा देकर । भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार सी नजर आती है । उसमे मानो ऐसी हिम्मत ही नही कि इस लापरवाह फक्कड की किसी फरमाइश को नाही कर सके । और अकह कहानी को रूप देकर मनोग्राही बना देने की तो जैसी ताकत कबीर की भाषा मे है, वैसी भाषा बहुत कम लेखको मे पाई जाती है । वाणी के ऐसे बादशाह को साहित्य रसिक काव्यानन्द का आस्वाद कराने वाला समझे, तो उन्हे दोष नहीं दिया जा सकता है । फिर व्यंग करने मे चुटकी लेने मे भी कबीर अपना प्रतिद्वन्दी नहीं जानते इस प्रकार यद्यपि कबीर ने कही काव्य लिखने की प्रतिज्ञा नहीं की है तथापि उनकी आध्यात्मिक रस की गगरी से छलके हुए रस से काव्य की कटोरी मे भी कम रस इकट्ठा नही हुआ है ।

हिन्दी साहित्य के हजार वर्षों के इतिहास मे कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न ही नहीं हुआ ।—मस्ती, फक्कडाना स्वभाव और सब कुछ झाड़ फटकार कर चल देने वाले तेज ने कबीर को हिन्दी साहित्य का अद्वितीय

व्यक्ति बना दिया। उनकी वानियो मे सब कुछ को हटाकर उनका सर्वजयी व्यक्तित्व विराजता रहता है। उसी ने कबीर की वाणियो मे अनन्य साधारण जीवन रस भर दिया है। "इस व्यक्तित्व के आकर्षण को सहृय, समालोचक संभाल नही पाया है। ऐसे आकर्षक वक्ता को कवि न कहा जाय तो क्या कहा जाय ?"

कबीर साहित्य पर इस्लाम का प्रभाव

हिन्दी साहित्य पर इस्लाम का प्रभाव अत्याधिक भावुकता के रूप मे पडा। कबीर और मीरा की बेचैनी, बोधा और घनानन्द को विह्वलता, विद्यापति और सूरदास की भावाकुलता मे इसका प्रत्यक्ष प्रमाण दृष्टिगत होता है। ज्ञानाश्रयी शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि कबीर के विचारो मे हिन्दू मुस्लिम समन्वय का भाव अत्यन्त पुष्टता पर पहुँच चुका था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है :—

"जो ब्रह्म हिन्दुओ की विचार पद्धति मे ज्ञान मार्ग का एक निरूपण था, उसी को कबीर ने सूफियो के ढरें पर उपासना का ही विषय नही प्रेम का ही विषय बनाया। उसकी प्राप्ति के लिए हठयोगियो की साधना का समर्थन किया। इस प्रकार उन्होने भारतीय ब्रह्मवाद के साथ सूफियो के भावात्मक रहस्यवाद हठ-योगियो के साधनात्मक रहस्यवाद और वैष्णवो के अहिंसावाद तथा प्रपत्तिवाद का मेल करके अपना पथ खडा किया।"

इस उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि कबीर धार्मिक कवि थे, और उनकी दृष्टि भारत की प्राचीन परम्परा के अनुसार सासारिकता की ओर कम और परलोक की ओर अधिक थी। मानव-जीवन को भी उन्होने महत्व दिया वह समाज सुधारक के रूप मे भी उल्लेखनीय हैं। उनकी समाज सुधार से सम्बन्धित कविताओ मे प्रचलित वाह्याडम्बरो के प्रति विरोध की ध्वनि थी। किन्तु अपने सिद्धान्त का जो अंश उन्होने सूफियो से लिया वह स्पष्टतया इस बात का पोषक है कि वे इस्लामी सस्कृति से किसी न किसी सीमा तक प्रभावित थे। प्रेम की बेचैनी और विरह की व्याकुलता का जो चित्रण सत कबीरदास ने किया, उससे हिन्दी साहित्य मे एक नवीन परम्परा की स्थापना हुई। दूसरे शब्दो मे हम कह सकते हैं कि भारतीय भावुकता का सामन्जस्य कबीर की कविता मे हुआ। कबीर के द्वारा स्थापित इन मान्यताओ का पालन अन्य सन्तो ने किया।

कबीर की निम्नलिखित पंक्तियो मे प्रेम की पीडा, और प्रेमी के हृदय की जो व्यग्रता वर्णित है उसे देखिए :—

"अंखियन तो झांई पडी, पथ निहारि निहारि।
जिह्वा तो छाला पड़े, नाम पुकारि पुकारि॥"

यह भारतीय साहित्य के लिए नवीन बात थी। इसके पीछे सूफियों की विरहानुभूति का ही प्रभाव है।

सूफियो के दर्शन के अनुसार जीव ब्रह्म से मृत्यु के पश्चात् मिल सकता है। इससे दूसरा सिद्धान्त यह निकला की शीघ्र से शीघ्र मृत्यु को प्राप्त किया जाय, जिससे ब्रह्म से मिलन हो। भारत मे इसके पूर्व बौद्ध भी जीवन के दीपक को बुझा देने को अपना परम उद्देश्य मानते थे। जैन साधक तो जीवन दीप बुझने के पूर्व शरीर को अधमरा कर देने के समर्थक थे। मृत्यु का भय है, यह बात अभी तक स्पष्ट शब्दो मे किसी ने भी नही कहा था। परन्तु सन्त कबीर को जब ब्रह्म वियोग की तीव्र अनुभूति हुई तो उन्होने यह स्पष्ट कर दिया की मृत्यु त्याज नही काम्य है :—

"जिन मरने से जग डरे सो मेरे आनन्द।
कब मरिहूँ कब देखि हूँ पूरण परमानन्द॥"

भारतीय जीवन मे इस प्रकार की विचारधारा को प्रश्रय नही दिया जाता था, परन्तु इस्लाम या सूफी प्रभाव के कारण इस प्रकार की भावना का विकास हुआ। भक्त कवियो ने जीवन की उपयोगिता भगवान की सेवा करने मे ही बताई। उनकी दृष्टि मे सेवा के सामने मोक्ष प्राप्ति भी तुच्छ था परन्तु कबीर पर इसका प्रभाव न पड़ा वे फारसी के सूफी कवियो से ही अधिक प्रभावित हुए और मृत्यु को काम्य और मोहक बना दिया। यह प्रभाव हम आधुनिक हिन्दी कविता मे भी देखते हैं।[1]

इस प्रकार सूफी कवियो के प्रेम की विरहानुभूति एवं प्रिय से मिलन की आकांक्षा से प्रभावित हुए, कबीर ने परमात्मा को पति और अपने को 'बहुरिया' माना है। विरह एवं मिलन की वेदनाओं का भी मार्मिक चित्रण किया।

सूफी कवियो द्वारा नर-नारी के शारीरिक मिलन से जीव ब्रह्म मिलन की जो उपमा दी गयी, उसका भी प्रत्यक्ष प्रमाण हमे भारतीय भक्ति धारा मे दृष्टिगत होता है। शृंगारिकता का गहरा पुट इसी कारण आया है। परन्तु यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि इस धारा का आगमन मुसलमानो के पूर्व भी भारत मे हो चुका था।

१—इस असीम तम मे मिलकर
मुझको पल भर सो जाने दो
बुझ जाने दो देव
आज मेरा दीपक बुझ जाने दो।

महादेवी वर्मा

अब यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि सूफी काव्य का प्रभाव किस वातायन से आया। ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियो के यहाँ प्रेम का आलम्बन निर्गुण ब्रह्म था। इसी कारण प्रेम को दीप्त करने का कोई स्पष्ट आधार इन कवियो को न प्राप्त था। अतएव प्रेम भाव की महत्ता का प्रतिपादन करने के लिए कबीर ने विरह की अनुभूति पर आश्रित आहो के आधार पर हृदय के फटने, आखो मे भांई पडने, जीभ मे छाले पडने के माध्यम से यह भी स्पष्ट कर दिया कि जो 'शीश उतारे भुइ धरै' वही उसको प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार कबीर द्वारा इस्लाम एवं हिन्दू संस्कृतियो का समन्वय हुआ। सूफियो से बहुत पूर्व ही कबीर ने प्रेम की महत्ता को स्वीकार करते हुए कहा था :—

"ढाई आखर प्रेम का,
पढ़ै सो पंडित होय।"

कबीर साहित्य की महान परम्पराएँ

साहित्य एवं जीवन द्वारा परम्पराओ का जन्म भी होता है और परिपालन भी होता है। कबीर ने हमारे साहित्य की अनेक परम्पराओ को अपनी महत्वपूर्ण जन कल्याणकारी रचनाओ के द्वारा बल प्रदान किया, और साहित्य की महान परम्पराओ को जीवन प्रदान किया। भूत की घटनाओ और वर्तमान के कठोर तथ्यों को इन्होने भविष्य से श्रृंखलाबद्ध कर दिया। उनके साहित्य मे सस्कार गत रूढियों, साहित्यिक मान्यताओ और तत्कालीन परिस्थितियो का अद्भुत समन्वय एव चित्रण मिलता है। परम्परा भूत और वर्तमान के सोपानो को पार करती हुई भविष्य की ओर अग्रसर होती है। दूसरे शब्दो मे वह अतीत से भविष्य की ओर प्रगति की मूल धारा है, जो क्रमशः चली आ रही है, परन्तु उस सरिता के समान जो कही पर तीव्र-गति से और कही पर मध्यम गति से बहती रहती है। इसमे सदैव एक तारतम्य रहता है, और यही इसकी प्रभावित करने की शक्ति है।

कबीर की परम्परा को समझने के पूर्व उनकी एक दो सामान्य विशेषताओं की ओर ध्यान देना आवश्यक है। कबीर स्वभाव से ही बुद्धिवादी और क्रान्ति प्रिय सत थे। उनका रूढि विरोध क्रान्ति की सीमा तक पहुँच गया था। साथ ही उनके निष्कपट व्यवहार ने उन्हे अत्याधिक लोक प्रिय बना दिया है। कबीर सच्चे सत्या-न्वेषक थे। सत्य का अन्वेषण उन्होने कोरे वाग्जाल पर ही नही किया है, वरन अनुभवो की शिला पर सत्य की खोज के साथ-साथ धर्म के सामान्य तत्वो पर अधिक बल दिया। सामान्यतया कबीर साहित्य की मुख्य परम्पराएं है :—

(१) मानवतावाद (२) धार्मिकता (३) जातीयता (४) प्रगतिशीलता (५) शाश्वतता (६) सजीवता

मानवतावाद

कबीर साहित्य की सर्व प्रथम महान परम्परा मानवतावाद है। भारतीय दर्शन के इतिहास में मानवतावाद के चिन्तन और विश्लेषण का [illegible] उपनिषद् काल। यथा ग्रीक दार्शनिको ने आत्म ज्ञान और आत्म विश्लेषण पर जोर दिया है उसी प्रकार हमारे भारतीय दार्शनिको ने भी आत्म ज्ञान और आत्म विश्ले-षण पर बहुत जोर दिया है। आत्म ज्ञान प्राप्त कर लेना मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ कर्तव्य

समझा जाता था। मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ विकास था आत्म ज्ञान प्राप्त कर लेना। इसके बाद और कोई कर्तव्य शेष नही रह जाता है। आत्म ज्ञान के अनन्तर मनुष्य का परम कर्तव्य समझा जाता है, उस ब्रह्म का साक्षात्कार अथवा प्राप्त करना जो समस्त जगत का हेतु कारण या कर्त्ता है। इस प्रकार आत्म ज्ञान और ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करने के लिए बड़े-बड़े दार्शनिको ने महत्वपूर्ण ग्रन्थो की रचना की और अपने विचारो के प्रसार के लिए अथक परिश्रम किया। सम्राटो और शासको के दरबार मे विद्वान् एवं ज्ञानी पुरुष ज्ञान प्राप्ति की चर्चा के तदनुसार वातावरण का प्रसार करके मानवतावाद का उपदेश दिया करते थे। उनके चिन्तन और चर्चा का विषय होता था "ज्ञान" एव "मानवतावादी विचार।"

इसमे सन्देह नही है कि वह मानवतावादी दृष्टिकोण जिसका प्रचार भारतीय दार्शनिको ने समय-समय पर किया था, एक बड़े भारी कल्याणकारी वातावरण के प्रचार मे अत्यधिक सहायक हुआ। इस विचार धारा ने एक ऐसे वातावरण की सृष्टि की जहाँ मानव हृदय से मानव के प्रति सहानुभूति का स्रोत प्रस्फुटित हो उठा, और एक दूसरे को समझने मे सहायता पहुँची। मानवतावाद के प्रचार मे उपनिषद् साहित्य एवं तत्कालीन दार्शनिको ने बडी सहायता प्रदान की। इस दृष्टि से उपनिषद् काल मानवतावाद के प्रचार के लिए सबसे उत्तम समय माना जाता है।

मानव की शाश्वत सुख की लालसा उसके अमृततत्व मे ही सन्निहित रहती है। मानव के सुख का लक्ष्य या उद्देश्य शारीरिक सुख या भौतिक सम्पत्ति की प्राप्ति ही नही होती वरन् इसके अतिरिक्त कुछ और भी है जो मानव को अपनी ओर आकर्षित करने की क्षमता रखता है और वह है 'सत्य' और उसकी प्राप्ति भौतिक सम्पत्ति और भौतिक सुख के आनन्द से मानव का चित्त कभी न कभी उचट जाता है, परन्तु सत्यं, शिव, सुन्दरम् के सान्निध्य और नैकट्य मे रहकर मानव का मन कभी भी विकृत नही होता है। वास्तव मे मानव जीवन का चरम उद्देश्य या लक्ष्य है, चिर सत्य की प्राप्ति करना। मानव की आत्मा को उन्नति तभी हो सकती है, जब समस्त जीवो पर समान स्नेह हो और जब सासारिक वस्तुओ मे आशक्ति न हो। भारतीय दार्शनिको ने बारम्बार "आत्मवत सर्वभूतेषु यः पश्यतिसः पडितः" का उपदेश दिया है। हमारी चिन्तन धारा सदैव से इस बात पर जोर देती रही है कि दूसरे को आत्मवत् समझना चाहिए दूसरे के कष्टो, व्यथाओ और दुःखो को अपनी अनुभूति बनाना चाहिए। इस उदार दृष्टिकोण ने भारतीय जीवन के समस्त कलुषों को धोकर उसे निर्मलता प्रदान करने का प्रयत्न किया। कहना न होगा कि इस दृष्टि ने भारतीय जीवन ने दिव्यता का संचार किया और उसे उदात्त बनाने मे अपूर्व योग प्रदान किया।

मानवतावाद का आधारभूत या मूल सिद्धान्त है समस्त प्राणियो को 'आत्म' से भिन्न न समझना, समस्त जीवो मे दया भाव का समान रूप से प्रसार करना, सबकी दु.ख की अनुभूति को आत्मानुभूति बनाना, इसका प्रमुख कारण यह है कि सबका रचयिता एक ही है। एक ही अश के सब अशो हैं, फिर मानव-मानव के बीच यह विरोध कैसा ? न कोई बडा है, न कोई छोटा, न कोई उच्च है, न कोई नीच। एक ही ईश्वर ने सबको जन्म दिया है। सब समान हैं। जाति-पाँति का भेद-भाव नही होना चाहिए। केवल कर्म से ही मनुष्य कुछ भी बन सकता है।

कबीर के शब्दो मे :—

जाति न पूछो साध की पूछो उसका ज्ञान।
मोल करो तलवार का पड़ी रहन दो म्यान॥

भारतीय मानवतावाद की पृष्ठ भूमि मे आध्यात्मिकता ही है। विदेशियो के भीषण आक्रमणो से भी भारतीय योगियो की शान्ति भग नहीं हुई। उनके यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि बिना किसी विघ्न बाधा के चलते रहे। वे बाह्य ससार को छोडकर ध्यानावस्थित होकर आभ्यान्तरिक साधना मे सलग्न रहे। आत्मा की स्वतंत्रता के आगे देश की स्वतन्त्रता का महत्व उनके मन मे न बैठ सका। तथापि उन्होने उसकी ओर ध्यान न दिया।

कबीर के युग मे जब कि उत्तर पश्चिम से अनवरत रूप मे आक्रमण हो रहे थे, भारतीय धर्म, साहित्य एव संस्कृति अत्याधिक सकट पूर्ण परिस्थितियो मे स्वास ले रही थी, और जबकि निराशा तिमिर भारतीय जनता को विनाश के गर्त की ओर उत्तरोत्तर अग्रसर कर रही थी। उस समय कबीर ने अपनी मधुर वाणी से जीवो को समता और एकता का सदेश दिया।

युग प्रवर्तक रामानन्द से प्रेरित और अनुप्राणित होकर सन्त कबीरदास ने मानवतावादी विचारधारा का प्रचार एवं प्रसार करने का प्रयत्न किया। इतना ही नहीं उन्होने भारतीय चिन्तनधारा मे एक नवीन परिच्छेद प्रारम्भ किया जिसके द्वारा समानता की भावना को प्रसार मिला। कबीरदास ने एक ऐसा मार्ग प्रशस्त किया जिस पर उनके अनन्तर आविर्भूत अन्य सन्तो ने चलकर समता का उपदेश भारतीय जनता को समय-समय पर सुनाया। इनकी प्रेरणा से हिन्दी के ज्ञानाश्रयी भक्त कवियो की एक शाखा चल पडी। ये सन्त सभी जातियो के थे, इनकी मूल भावना थी "हरि को भजै सो हरि का होई।' जाति-पाँति के भेद भाव से इन्हे मोह न था। इन्होने बड़े ही स्पष्ट शब्दों मे ललकार कर कहा कि सभी एक ही बूंद से सृजित हैं। सभी एक ही कुम्हार की रचना है। फिर 'को ब्राह्मन को सूद्रा' भेद-भाव तो मन का मैल है।

कबीर का लक्ष्य बडा ही व्यापक था। इन्होने जीवो के निस्तार के लिए उच्चादर्शों के उपदेश दिए। मानव को कल्याणकारी पथ पर अग्रसर करना ही इनका सबसे बड़ा लक्ष्य था। कबीर के हृदय मे व्यथित के हेतु सहानुभूति एवं सम्वेदना की भावना थी। वे संसार को सुखी और प्रसन्न देखना चाहते थे। इसी कारण उन्होने मानव की आर्थिक सामाजिक तथा आध्यात्मिक सभी दशाओ को सुधारने की चेष्टा की। मानवता को सदैव ही शृंखलाओ से उन्मुक्त देखना चाहते थे और भविष्य मे एक स्वस्थ एवं आशापूर्ण दृष्टिकोण के आकांक्षी थे। यह मानवता-वादी दृष्टिकोण कबीर के साहित्य मे ओत-प्रोत है। मानव के आध्यात्मिक और लौकिक जीवन को सुखी बनाने के हेतु कबीर ने बारम्बार सन्मार्ग एवं कल्याणकारी पक्ष की ओर जनता का ध्यान आकर्षित किया। उन्होने पारमार्थिक सत्ता की एकता निरूपित करके यह प्रतिपादित किया कि मानव-मानव मे भेद नही है। सब प्राणी एक ही कलाकार की कृतियाँ हैं। हिन्दू और मुसलमानो ने अपनी-अपनी मिथ्या कल्पना के आधार पर ब्रह्म के सम्बन्ध मे निस्सार कल्पनाएं स्थापित कर ली हैं। माया, भ्रम अथवा अज्ञान के कारण हम सत्य को नही देख पाते हैं। सत्य ही ब्रह्म है और ब्रह्म ही सत्य है। उसमे द्वैत नही है। वह पूर्णतया अद्वैत, अगम, अज्ञात, अमर और अनन्त है। ससार का कोई भी कार्य उसकी इच्छा के बिना नही सम्पादित होता है। वह सर्वोपरि और सर्वश्रेष्ठ है। उस ब्रह्म को लेकर जो भेद-भाव हिन्दू और मुसलमानो मे चलते हैं वह निरी मूढ़ता का द्योतक है। अज्ञान का विसर्जन करके मूढ़ता का परित्याग करके प्रेम सद्भावना और सहृदयता का प्रसार न केवल व्यक्तिगत जीवन के लिए वरदान है वरन् समाज के उत्थान और विकास के लिए भी नितान्त आवश्यक और उपयोगी है। सद्भावना के प्रसार से मनुष्य के जीवन मे औदार्य, स्नेह, करुणा, प्रेम, त्याग तथा विश्वबन्धुत्व की भावनाओ का स्वतः विकास हो जाता है, जो मानव के लिए नितात आवश्यक है। मनुष्य का स्वभाव श्रेय भी है, प्रेय भी है। धीरवान व्यक्ति दोनो को पृथक्-पृथक् दृष्टि से देखते हैं। साधु श्रेय को ग्रहण करते हैं और असाधु प्रेय को।

मानवतावाद कबीर की सबसे बडी विशेषता है। कबीर जैसे उदार सन्त कवि ससार मे प्राणी मात्र को सुखी देखने के आकांक्षी थे।

मानवतावाद से प्रेरित होकर कबीर ने संसार को भाँति-भाँति के कल्याण-कारी मार्ग प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया। उनके मानवतावाद का केन्द्र बिन्दु है अद्वैत ब्रह्म। ब्रह्म अद्वैत है। वही सर्वजगत का नियंता है।

ब्रह्म ही कबीर का प्रतिपाद्य और साध्य है।

पावक रूपी साइयां, सब घट रहा समाय ।
चित चकमक लागे नहीं, ता ते बुझि बुझि जाय ॥

मानवतावाद विषयक अपने विचारो के प्रसार के लिए कबीर ने सप्त महाव्रतो का उपदेश दिया, जिनसे मानव का व्यक्तिगत तथा समाजगत जीवन समुन्नत बनता है । (१) सत्य (२) अहिंसा (३) ब्रह्मचर्य (४) अस्वाद (५) अस्तेय (६) अपरिग्रह (७) अभय ।

सत्य ही ज्ञान है, ब्रह्म है और संसार की वास्तविक गति है । कबीर ने सत्य के प्रति बडी श्रद्धा प्रकट की है । सत्य व्यवहार, सत्य कर्म, सत्य वचन, सत्य अनुभूति जीवन को उदात्त बनाने मे सहायक होती है और इस प्रकार मानव समाज सुखी और सम्पन्न बनता है । इसलिये कबीर ने कहा था —

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप ।
जाके हिरदे, साँच है, ताके हिरदे आप ॥

दूसरा महाव्रत है 'अहिंसा' । अहिंसा मानवतावाद की प्राण शक्ति है । जब तक हम हिंसा मे लगे रहेगे तब तक हम एक दूसरे के प्रति ममता की भावना की स्थापना कर ही नही सकते हैं ।

कबीर की अहिंसा भावना बडी व्यापक है । वह तो यहाँ तक कहते हैं कि—

घट घट में वह साईं रमता,
कटुक बचन मत बोल रे ॥

कबीर ने भय की भावना को भी उत्पन्न कराके अहिंसा व्रत पालन करने का उपदेश दिया है —

(१)

मास मास सब एक है, मुरगी हिरनी गाय ।
आंख देख जे खात है, ते नर नरकहि जाय ॥

(२)

बकरी पाती खात है ताकी काढ़ी खाल ।
जे नर बकरी खात है तिनको कौन हवाल ॥

अहिंसा के विषय मे लिखते समय कबीर का अर्थ केवल 'वध न करना', 'जीव न मारना' हिंसा न करना ही नहीं है वरन् उस संकुचित क्षेत्र से बाहर आकर कटु वचन तक बोलने को उन्होंने मना किया है ।

इसी प्रकार कबीर ने ब्रह्मचर्य धारण करने का भी उपदेश दिया । ब्रह्मचर्य जीवन के लिए बहुत आवश्यक है, क्योंकि मनुष्य इन्द्रियो का चेरा होता है । इन्द्रियां

की प्रचंड ज्वाला मे जलता हुआ मानव उसी प्रकार नष्ट हो जाता है जिस प्रकार दीपक की लौ पर पतग नष्ट हो जाता है। वासना मे संलग्न मानव कभी भी साधना और परमार्थ मे दत्त-चित्त नही हो सकता है। कबीर ने मन, वचन, कर्म से ब्रह्मचर्य, पालन करने का उपदेश दिया है। सयम जीवन के लिए सबसे बडा वरदान और प्रेरक शक्ति है। कबीर ने इसीलिए मानवतावादी भावना के प्रसार के लिए ब्रह्मचर्य को उपयोगी माना है। कबीर के इस प्रकार के उपदेश चेतावनी के अंग में सग्रहीत हुए हैं। इसके अतिरिक्त "पतिव्रता को अंग" मे भी संयम एवं ब्रह्मचर्य भावना की अभिव्यक्ति हुई।

उपर्युक्त इन तीन महाव्रतो पर विचार कर लेने के बाद विचारणीय हैं शेष चार महाव्रत। ये महाव्रत हैं अस्वाद, अस्तेय, अपरिग्रह तथा अभय। कबीर ने इनके प्रति इसलिए महत्व स्थापित किया है कि ये गुण या व्रत औदार्य, विनय शीलता और व्यापक भावनाओ का सर्जन करते हैं। इनके द्वारा मानव-मानव को समझने का प्रयत्न करता है और व्यापक भावनाओ को धारण करता है। कबीर ने मानव की हर प्रकार की दुप्रवृत्तियो की आलोचना की। उन्होने अपने समय की जनता को बताया कि मनुष्य को एक दूसरे का शोषण नही करना चाहिए। सबको दीनता की भावना ग्रहण करके सच्चाई और ईमानदारी के साथ जीवन यापन करना चाहिये। कबीर ने स्पष्ट शब्दो मे कहा है कि—

सबते लघुताई भली, लघुता ते सब होय।
जस दुतिया को चन्द्रमा सीस नवै सब कोय॥

सच यह है कि यदि सभी सतोष और दीनता को ग्रहण कर ले, तो संसार के समस्त अनाचार, दुराचार, भ्रष्टाचार तथा सघर्ष समाप्त हो जायं और मानव, मानव बनकर जीवन यापन करने लगे। कबीर के मानवतावाद के सन्तोष एव दीनता अभिन्न अंग हैं। इन उपदेशो ने युग युग से पीड़ित एवं निराश जनता के हृदय में आशा का संचार किया। कबीर ने काव्य रचना मे संजोये हुए सरल भावो द्वारा भटकती हुई जनता का पथ प्रदर्शन किया। पथ भ्रष्ट को मार्ग दिखाई पड़ा और वाह्याडम्बर से दूर मानव एक दूसरे के दुःख एव कष्ट की ओर ध्यान देने लगा। धीरे-धीरे जनता इस ओर आकर्षित हुई।

कबीर का विचार था कि सद्गुण व नैतिक शक्ति बहुत ही प्रभावोत्पादक होती है। इस कारण मानव मे मानसिक शक्ति बढ़ाकर उत्साह भरने की चेष्टा की। उनका विचार था कि मनुष्य मे वह शक्ति है, कि वह अपनी समस्याओ का समाधान स्वयं कर सकता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर ने मानवतावाद को

और अधिक से अधिक ध्यान दिया। प्रेम, अहिंसा, सत्य, शान्ति, त्याग क्षमा, दया, सहनशीलता ही मानवतावाद के गुण हैं। इस पर कबीर ने स्थान-स्थान पर प्रकाश डाला है।

धार्मिकता

कबीर साहित्य की द्वितीय महान् परम्परा "धार्मिकता" है। इनके सम्पूर्ण साहित्य की रचना ही धर्म को दृष्टि मे रख कर हुई है। यह अवश्य है कि धर्म के क्षेत्र मे उन्होने एक क्रान्ति उपस्थित कर दी। परन्तु फिर भी जिस कठोरता से रूढियो का विरोध किया उसी दृढता से उन्होने बुद्धिवादी सिद्धान्तो की भी स्थापना की है। वे किसी भी बात को तभी स्वीकार करते थे, जब वह उनकी बुद्धि के अनुभव की कसौटी पर खरी उतरती थी। कबीर सच्चे सत्यान्वेषक थे। उनका धर्म बडा व्यापक है। जिस प्रकार उनका ब्रह्म व्यापक और सब जाति वर्गों का जन्मदाता है, उसी प्रकार उनका धर्म भी व्यापक है। इनका धर्म सार्वभौमिक और युगो तक अभिनव बना रहने वाला धर्म है। देश काल की सीमाएं उनके धर्म और उनके उदात्त रूप का स्पर्श नही कर पाती हैं। कबीर का धर्म-धनी-दीन बालक-वृद्ध, नर नारी सबके लिए समान रूप से उपयोगी और महत्वपूर्ण है। उनके व्यापक धर्म का आधार मानव की शाश्वत सद्प्रवृत्तियाँ हैं। यही शाश्वत सद्प्रवृत्तियाँ जीवन को उदात्त और समुन्नत बनाती हैं। कबीर ने मानव जीवन को उन्नत और विकासशील बनाने के लिए उपदेश दिये।

कबीर की बानियो मे बारम्बार इन्ही बातो पर जोर दिया गया है। उन्होने औदार्य, दया, क्षमा, त्याग, सहनशीलता, अहिंसा, धैर्य और सत्य को मानव जीवन और मानव प्रकृति के अविच्छिन्न अग माने हैं। उनके काव्य मे इन विषयो पर शतशः साखियो की रचना हुई और प्रत्येक साखी उनकी सत्यानुभूति को दृढ़ प्रमाणित करने मे समर्थ है।

कबीर की धार्मिकता बाह्याचारो बाह्याडम्बरो से पृथक और परे है। उनकी धार्मिकता मे छुआ छूत, चन्दन-तिलक, व्रत माला, जप तप, बाग, नमाज और अजान मे नही सन्निहित है। वरन उनकी धार्मिकता व्यापक है, शुद्ध है, और उदात्त है। उनका सन्देश है, कि मानव को मानव के सहज धर्म का परिपालन करना चाहिए। उसे 'सुरत्व की जननी' मानव योनि को दूषित कर्म करके कलंकित नही करना चाहिए। यही कबीर की धार्मिकता है, यही उनका व्यापक धर्म है।

जातीयता

कबीर साहित्य की तृतीय महान परम्परा जातीयता है। अपनी वाणी द्वारा कबीर ने देश को एक महान सांस्कृतिक चेतना मे बांध दिया था। देश के प्रत्येक क्षेत्र मे महान सांस्कृतिक चेतना के फल स्वरूप जातीयता का विकास हुआ। उनकी भाषा मे समस्त भाषाओ विभाषाओ और बोलियो का मधुर मिश्रण है। उन्होने व्याकरण के नियमो की ओर भी ध्यान नही दिया। जिससे स्पष्ट हो जाता है कि जनता के सम्मुख केवल अपने भावों की अभिव्यक्ति ही करना चाहते थे। काव्य रचना की ओर उनका ध्यान न था। इसमे सन्देह नही कि उनकी लेखनी मुख से निकले हुए शब्द हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि बन गए हैं।

कबीर की वाणी का प्रभाव जनता पर पड़ा। क्योकि उनकी भाषा मे पंजाबी, सिन्धी, गुजराती, ब्रज, अवधी, खड़ी बोली, आदि के उदाहरण मिलते हैं।

जातीयता का विकास सामन्ती शृंखलाओ के छिन्न-भिन्न हो जाने पर ही हुआ। कबीर जनता की मनोवृत्ति से भली भांति परिचित थे। वे यह अच्छी तरह जानते थे कि शासक वर्ग की सभ्यता संस्कार और जातीयता का जनता से कोई विशेष सम्बन्ध नही है, वरन् सामन्ती जातीयता मानव के विकास मे बाधक है। जनता की संस्कृति और जातीयता का सम्बन्ध सर्वथा दूसरे वर्ग से है। परन्तु कबीर ने जातीयता के प्रचार के लिए रूढ़िवादी साधनो को दूर कर नवीन साधनो को अपनाया है। जातीयता का प्रसार कबीर ने भाषा द्वारा किया है।

भाषा को जातीयता का गौरव पूर्ण अंग जीवन प्रगति माना। कबीर के शब्दो मे भाषा का गौरव निम्नलिखित है :—

'संस्कीरति है कूप जल भाषा बहता नीर'

जीवन भर वह इसी बात का प्रयत्न करते रहे कि संकुचित क्षेत्र से निकल कर विस्तृत क्षेत्र मे जनता जातीयता के अर्थ समझ सके। सन्त कबीर समस्त प्रकार की संकीर्णता के विरोधी थे। इसीलिये उन्होने एक ऐसी वृहत्तर भावना का प्रतिपादन और स्थापना की जो जनता के निकट और जनता के लिए सर्वथा उपयोगी थी।

प्रगतिशीलता

कबीर साहित्य की चतुर्थ महान परम्परा है प्रगतिशीलता। सामान्यतया प्रगतिशीलता का अर्थ होता है स्पन्दनशीलता, उत्तरोत्तर उन्नति के पथ पर अग्रसर रहना।

कबीर ने समाज, साहित्य, धर्म सभी मे प्रगतिशील विचारो का समावेश कर युग युग से पीडित एव प्रताड़ित जनता का उद्धार किया। जिन विकृत तत्वो के प्रति उनकी प्रतिक्रिया जाग्रत हुई, उनमे मुख्य तत्व ये हैं:—

(१) पुरोहितवाद, (२) वर्णाश्रम धर्म, (३) मूर्ति पूजा, (४) धार्मिक अन्ध-विश्वास, (५) वाह्याडम्बर, (६) पूजा विधि, (७) पौराणिकता।

हिन्दू धर्म के सामान्य विश्वास अपने मूल रूप मे वडे ही सात्विक थे, परन्तु मध्य युग तक आते-आते ये सात्विक विश्वास अन्धविश्वासो मे परिणित हो गये थे, और उनका प्रचार धर्म के सभी क्षेत्रो मे था। मध्य युगीन जनता के लिये ये विश्वास परम्परागत रूढियो के रूप मे वन कर रह गये थे कबीर की वाणी ने इन्ही विकृत रूपो का खण्डन करने मे प्रवृत्त हुई। आपसी द्वेष की राक्षसी प्रवृत्ति को रोक कर कबीर सत् धर्म की प्रतिष्ठा मे कटिवद्ध हो गये। रक्तपात, भौतिकता, और प्रति-कार भावना के विरुद्ध उपदेश दिये। संध्या, वंदना, पंच महायज्ञ, वलि, श्राद्ध, षोडष-संस्कार विविध प्रकार के व्रत, तीर्थ शौचा-शौच सम्बन्धी आचारो का खडन-किया जो कि केवल परम्परागत ही रह गये थे। कबीर साहित्य प्रगतिशीलता का प्रतीक है। प्रत्येक दृष्टि से कबीर का साहित्य प्रगतिशीलता के रग मे अनुरजित है। काव्य के अन्तरग एव वहिरंग उभय पक्षो मे कवि पूर्णतया प्रगतिशील हैं। क्या भाषा, क्या भाव, क्या रस, क्या छन्द हर दृष्टि से उन्होने प्रयोग किये जो उनके युग की मान्यताओ को पुष्टता प्रदान करते हुए भविष्य के लिए मानदण्ड वन गये।

शाश्वतता

सत काव्य मे मानव जीवन की अनेक शाश्वत प्रवृत्तियो की वडी सुन्दरता के साथ चित्रण हुआ। युग-युग से मनुष्य प्रेम, क्षमा, दया, विश्वबन्धुत्व और उदारता मे विश्वास करता चला आ रहा है। मनुष्य सदैव से उदात्त वृत्तियो से युक्त रहा है। हीन कार्यों से हटकर हमारा मन स्वत शान्तिमय वातावरण मे रमना चाहता है। कबीर के काव्य मे मनुष्य की इन्ही जन्म जात और शाश्वत प्रवृत्तियो पर जोर दिया गया है। मानव समाज के सघर्षमय वातावरण का परित्याग करके आध्या-त्मिक वातावरण मे सन्तोष प्राप्त करता है। कबीर ने आध्यात्म की प्रतिष्ठा के लिए वार-वार उपदेश दिया है। आध्यात्म का विषय शाश्वत और चिरन्तन है, इसी कारण कबीर साहित्य शाश्वत साहित्य है।

कबीर ने साहित्य की रचना किसी स्वार्थ भाव से प्रेरित होकर नहीं की थी। उनकी रचनाएं स्वान्तः सुखाय और 'बहुजन हिताय' हुई थी। इसीलिए इन

रचनाओ मे मानव-जीवन के हित की भावना अप्रत्यक्ष रूप से प्रवाहित होती हुई शताब्दियो से जनता को सही मार्ग पर अग्रसर कर रही है।

सजीवता

कबीर साहित्य की षष्ठ महान परम्परा सजीवता है। कबीर के प्रति यह आरोप लगाया जाता है कि वे पलायनवादी थे, और उन्होने भारतीय जनता को पलायनवाद का हर प्रकार से पाठ पढाया। जिसके फलस्वरूप भारतीय जनता अकर्मण्य बनती गई है। लेकिन तथ्य इसके विरुद्ध है। कबीर ने अपने युग की निराश जनता को आशा का प्रकाश दिखाया। उन्होने भग्न हृदयो मे उल्लास का सचार किया। जीवन को उन्होने जीने योग्य बनाया और इस प्रकार से उन्होने उदात्त एव सात्विक जीवन का उपदेश देकर साहित्य के क्षेत्र मे नवीन परम्पराओ को स्थापित किया। कबीर के काव्य मे एक अलौकिक चेतना एवं सजीवता है। जिसकी आधारशिला आध्यात्मिक प्रणय की प्रतिष्ठा, आत्मानुभूतिगत माधुर्य, साधनात्मक रहस्यवाद और प्रतिभा आदि हैं। इन्ही तत्वो ने कबीर के काव्य को मे सजीवता एव माधुर्य का समावेश करके उसे सक्रिय बना दिया है।

———

गुरुदेव को अंग

सतगुरु सवाँन को सगा, सोधी सई न दाति।
हरिजी सवाँन को हितू, हरिजन सईं न जाति॥ १॥

सन्दर्भ—सतगुरु का व्यक्तित्व अद्वितीय असाधारण, समादरणीय और अत्यन्त कल्याणकारी है। वह मुक्ति और भक्ति का भण्डार है। वह हरिजी और हरिजन से भी श्रेष्ठ है।

भावार्थ--सतगुरु के समान कौन सगा है, कौन अपना है। उसके समान कोई भी शोधक नही है। वह अमोघ, अजस्त्रदाता है। हरिजी अर्थात् भगवान की सदृश कौन हितैषी है और हरिजन अर्थात् वैष्णवजन के समान कोई जाति नही है, उसके समान कोई कुलीन नही है।

शब्दार्थ--सवाँन = समान, बराबर। को = कौन। सगा = स्वक् = अपना, अभिन्न। सोधी = शोधी—सशोधन करने वाला, शोधक। सईं = समान। दाति = दातृ—दाता, दानी। हितू—हितैषी।

बलिहारी गुरु आपणौं, द्यौं हाड़ी कै बार।
जिनि मानिष तैं देवता, करत न लागी बार॥ २॥

सन्दर्भ—सतगुरु मे दिव्य शक्ति है। उन्होने हाडी के सदृश इस तुच्छ, हीन शरीर को दिव्यता प्रदान की। उनके प्रसाद से यह शरीर अब सार्थक हो गया।

भावार्थ—सतगुरु के श्री चरणो पर मै अपने इस शरीर को अधम पचतत्वों से विनिर्मित शरीर को जो हाडी के सदृश निःसार है—शतशः बार न्यौछावर करता हूँ। सतगुरु को मुझ दोषो से अभिशप्त वासनाओ से ग्रस्त अधम प्राणी को दिव्यता प्रदान करने मे विलम्ब न लगा। यही उनकी महत्ता है।

शब्दार्थ—बलिहारी = न्यौछावर। आपणौं = अपने, मेरे। द्यौं < दूँ कर दूँ। हाडी—मृत्तिका पात्र। कै = कितनी। कै बार = कितनी बार। जिनि = जिन—जिन्हें। मानिष = मानुष = मनुष्य। तैं = से। बार = विलम्ब।

सतगुरु की महिमा अनंत अनंत किया उपगार।
लोचन अनंत उघाड़िया अनंत दिखावणहार॥ ३॥

संदर्भ – सतगुरु दिव्यशक्ति से सम्पन्न है। उनकी महत्ता, महिमा अनिर्वचनीय है। उन्होने अनन्त कृपा करके शिष्य को अपरिमेय शक्ति प्रदान की।

भावार्थ—सतगुरु की महिमा अनन्त है। उनकी महत्ता का वर्णन नही हो सकता है। उन्होने शिष्य के प्रति अनन्त उपकार किए हैं। उन्ही की असीम कृपा से अनन्त अर्थात्-ज्ञान के चक्षु उद्घाटित होगा। उनकी असीम कृपा से अनंत, निराकार निर्विकार ब्रह्म के दर्शन हो गए।

शब्दार्थ—अनत = अनन्त, असीम। उपगार = उपकार। लोचन = नयन। उघाडिया = उघाड, उद्घाटित किया। दिखावणहार = दिखावनहार = दिखाने वाला।

राम नाम कै पटंतरै, देबै कौं कुछ नाँहि।
क्या ले गुरु संतोषिए, हौंस रही मन माँहि॥ ४॥

संदर्भ—शिष्य के मन मे असीम कृतज्ञता की भाव है। वह सतगुरु के प्रति प्रतिदान की इच्छा रखता है, पर गुरुदेव के प्रति क्या समर्पित किया जाय यह संकल्प विकल्प मन मे साकार रहता है। उसकी अभिलाषा अपूर्ण ही रह गई।

भावार्थ—सतगुरु ने 'रामनाम' जैसी दिव्य वस्तु का दान शिष्य को दिया। शिष्य के पास प्रतिदान के लिए कोई भी उपयुक्त पदार्थ नही है। शिष्य के मन मे हौसला, अभिलाषा, आकाक्षा अपूर्ण एवं बलवती बनी हुई है कि सतगुरु के महान् व्यक्तित्व की अनुकूल कौन-सी वस्तु प्रतिदान मे दी जाय।

शब्दार्थ—पटंतरै—समान, बराबर। देवै—देने योग्य। कौं—को। ले—दे, देकर। सन्तोपिए—प्रसन्न कीजिए। हौंस = हौसला—इच्छा, आकाक्षा। मनमाँहि—मन मे।

सतगुर के सदकै करूँ दिल अपणीं का साछ।
कलियुग हम स्यूँ लड़ि पड़्या मुहकम मेरा बाछ॥ ५॥

संदर्भ—सतगुरु सर्वथा प्रशंसनीय है, वंदनीय है। उसकी महती कृपा से शिष्य कलियुग से पराभूत होने से बच गया।

भावार्थ—अपने हृदय की समस्त सत्यता को साक्षी करके, पूर्ण मनोयोग से मैं सद्गुरु के चरणो मे अपने को न्यौछावर करता हूँ। कलियुग ने पूर्ण शक्ति के साथ मेरे प्रति आक्रमण किया परन्तु मेरी वाछाएं बलशालिनी थी। अतः मैं सद्गुरु की कृपा से भवसागर उत्तीर्ण हो गया।

शब्दार्थ—सदकै = सिद का—बलि जाऊं, न्यौछावर जाऊ। दिल = हृदय। स्यूं = से। पड़्या = पड़ा। मुहकम = प्रबल, बलशाली। बाछ = वांछा, अभिलाषा।

सतगुरु लई कमांण करि, बांहण लागा तीर ॥
एक जु बाह्या प्रीति सूँ, भीतरि रह्या शरीर ॥ ६ ॥

सन्दर्भ—सतगुरु सच्चा सूरमा है। वह शब्दबाण मारने मे अत्यन्त निपुण है उसने ऐसा शब्द-बाण मारा कि शिष्य का मर्म आहत हो गया और वह तत्व से पूर्णतया परिचित हो गया।

भावार्थ—सतगुरु ने हाथ मे धनुष ग्रहण करके तीर बहाना (दया फेकना) आरम्भ किया। एक तीर जो उसने बड़े प्रेम से मेरे प्रति सधान किया, वह मेरे शरीर मे घर कर गया।

विशेष—प्रस्तुत साखी मे कवि ने सतगुरु को सूरमा के रूप मे व्यक्त किया है, जो तीर संधान करने मे अत्यन्त कुशल है वह अनवरत रूप से शिष्य के प्रति जो शब्द-बाण को लक्ष्य करता रहा है। परन्तु एक शब्द-बाण उसने बड़े हित और प्रेम से संधान किया। इस बाण से शिष्य का मर्म आहत हो गया और वह ब्रह्ममय हो गया।

शब्दार्थ—लई—ली, ग्रहण की। करि = कर--हाथ। बाहण = बहाने अर्थात्—फेकने लगा। बाह्या = बहाया, फेंका। सरीर—शरीर।

सतगुरु सांचा सूरिवां, सबद जु बाह्या एक।
लागत ही मैं मिल गया, पड्या कलेजै छेक ॥ ७ ॥

सन्दर्भ—प्रस्तुत साखी में सतगुरु की एक और विशेषता का उल्लेख किया है। वह सच्चा सूरमा है। उसका लक्ष्य अचूक और अत्यन्त प्रभावशाली है। उसका बाण शब्द-बाण है। शब्द-बाण ने शिष्य के मर्म को आहत कर दिया है।

भावार्थ—सतगुरु सच्चा शूरवीर है। उसने मेरे प्रति एक ऐसे शब्द-बाण का अनुसधान किया, जिसके प्रभाव मे मेरा मर्म आहत हो गया और मैं मेरा खोया हुआ अपनत्व मुझे सम्प्राप्त हो गया।

विशेष--शब्द बाण के लगते ही मेरा खोया हुआ अपनत्व प्राप्त हो गया। तात्पर्य है कि मैं जो माया के आकर्षक स्वरूप को देखकर आत्म विस्मृत हो गया था, सतगुरु के शब्द बाण के लगते ही पुनः अपने खोये हुए रूप को प्राप्त हो गया। मैं माया से आवृत होने के कारण अपने निर्विकार एव निराकार स्वरूप को बिसर गया था पर सतगुरु की कृपा से ज्ञान प्राप्त हुआ और मैं पुन. अपने मौलिक रूप मे परिवर्तित हो गया। पड्या कलेजै छेद मे तात्पर्य है कलेजा (पर मर्म) आहत हो गया।

शब्दार्थ—सांचा = सच्चा । सूरिवां = शूरमा । सबद = शब्द । बाहृया = बहाया, फेंका । लगते । पड्या = पडा-हुआ । छेक प्रभाव डालना ।

सतगुरु मार्‌या बाण भरि धरि करिसूधी मूठि ।
अंगि उघाडै लागिया, गई दवा सूँ फूटि ॥ ८ ॥

संदर्भ—प्रस्तुत साखी मे कवि ने विगत साखी के भाव को अधिक विस्तार के साथ व्यक्त किया है । विगत साखी मे कवि ने सतगुरु के शूरत्व तथा प्रभावशाली व्यक्तित्व का उल्लेख किया है । यहाँ उसी भाव का विश्लेषण करते हुए कबीर ने शब्द बाण के तीव्र एवं व्यापक प्रभाव को अंकित किया है ।

भावार्थ—सतगुरु ने शक्तिभर शिष्य को लक्ष्य करके बाण मारा । फलतः शिष्य के शरीर मे दावाग्नि भी प्रस्फुटित हो गई और शिष्य के अगो को उदघाटित करने लगा ।

विशेषः—(१) मार्‌या बाण भरि से तात्पर्य यह है कि सतगुरु ने पूर्णशक्ति के साथ बाण मारा । (२) धरि— मूठि–लक्ष्य साधन करके । (३) अगि—लागिया सतगुरु के शब्द बाणो ने शिष्य के अगो को उद्‌घाटित कर दिया । अर्थात् शब्द बाण ने मर्म को आहत कर दिया । (४) गई–फुटि–शब्द बाण के फलतः ज्ञान की अग्नि दावाग्नि से फैल गई और उसने व्यक्तित्व के असर तत्वो को विनष्ट कर दिया ।

शब्दार्थ—भरी पूरी शक्ति के साथ । सूधी = सूधे । दवा = दावाग्नि ।

हँसै न बोलै उनमनी, चंचल मेल्हया मारि ।
कहै कबीर भीतरि भिद्या, सतगुर कै हथियारि ॥ ६ ॥

संदर्भ—सतगुरु ने पूरी शक्ति के साथ शब्द-बाण को शिष्य के प्रति मारा और फलतः प्रेम या ज्ञान की अग्नि शिष्य के सम्पूर्ण शरीर मे प्रस्फुटित हो गई । प्रस्तुत साखी मे कवि ने शब्द बाण के प्रभाव को स्पष्ट एवं अधिक विस्तार के साथ यहाँ प्रकट किया है । शब्द बाण का प्रभाव यह पडा, कि शिष्य उन्मन अवस्था मे प्रविष्ट हो गया और उसका चचल मन पगु या गति-विहीन हो गया ।

भावार्थ—शब्द बाण रूपी सतगुरु के हथियार ने शिष्य के अन्तस या मर्म को आहत कर दिया । अब वह हर्ष-विषाद की मानव से परे होकर संसार से उन्मन या उदासीन हो गया और उसका चंचल मन प्रशान्त हो गया ।

विशेष—(१)"हसै न बोले" शिष्य शब्द बाण के लगते ही शिष्य सांसारिक भावनाओं और प्रतिक्रियाओं से ऊपर उठ गया । वह वीतराग या ससार की यथार्थ स्थिति को भली प्रकार समझ गया और वह संसार से विमुख हो उठा, (२) 'उनमनी' से तात्पर्य है उदासीन । (३) 'चचल' शब्द का प्रयोग संत साहित्य में मन के लिए

प्रयुक्त हुआ है। (४) 'मेल्ह्या' का अर्थ है फेका। शब्द बाण फेका और शिष्य के मन को गति विहीन कर दिया। (५) 'भीतरि से तात्पर्य है 'हृदय' अन्तस या मर्म। (६) हथियार--शब्द बाण।

शब्दार्थ--भिद्या - भिदा = भेदा = भेद गया। उनमनी = उन्मनी।

गूंगा हूवा बावला, बहरा हूआ कान।
पाऊँ थैं पंगुल भया, सतगुर मार्‌या बाण ॥१०॥

सन्दर्भ--"सतगुरु के हथियारि" कुछ ऐसा "भीतरि भिद्या" कि शिष्य का चचल मन तो पंगु हो ही गया, साथ ही वह उस अवस्था को भी पहुँच गया जिसे "उनमनी" कहा गया है। इतना ही नही इस "हथियारि" का ऐसा अद्भुत एव अकथनीय प्रभाव पड़ा है कि शिष्य की इन्द्रियां भी निश्चेष्ट एव चेतना विहीन हो गई है।

भावार्थ—सतगुरु ने ऐसा शब्द बाण मारा है कि शिष्य गूंगा, बावला बधिर एव पगू हो गया।

विशेष—प्रस्तुत साखी मे कवि ने रहस्यवादी की उस स्थिति का वर्णन किया है, जिस मे उसकी विभिन्न इन्द्रियां स्व कार्य को बिसर जाती हैं और वे निश्चेष्ट हो जाती है। ज्ञान की ज्योति सम्प्राप्त हो जाने पर, ब्रह्म की अनुभूति परिपूरित हो जाने पर साधक की इन्द्रियां लौकिक आनन्द तथा सासारिक सुखो की ओर से विमुख हो जाती हैं। इस उच्चतम स्थिति पर पहुँचने के अनन्तर उसकी वाक् शक्ति या अभिव्यजना शक्ति मौन हो गयी, उसकी कर्णेन्द्रिय शब्द ग्रहण को प्रक्रिया को भूल गई और उसे पग पगुल हो गए। अब वह बावला-सा प्रतीत होने लगा। उसकी मनःस्थिति कुछ ऐसी हो गई कि वह जीवन और संसार से उदासीन ही नही पूर्णतया विमुख हो गया। ससार जिसे सुख, जिसे वैभव तथा जिसे महत्व कहता है, वह उसे निःसार प्रतीत होने और उसके इस दृष्टिकोण को देख कर सासारिक उसे बावला समझने लगा। वस्तुतः वही ज्ञानी और तत्व वेत्ता है।

शब्दार्थ—हूवा = हुवा। पगुल = पगु - गतिविहीन।

पीछैं लागा जाइ था, लोक वेद के साथि।
आगैं थैं सतगुर मिल्या, दीपक दीया हाथि ॥११॥

सन्दर्भ—लोकानुमोदित मार्ग पर चलते हुए शास्त्रादिकों का अनुसरण करना जीवन का लक्ष्य था। परन्तु सतगुरु की महती कृपा हुई। उसने ज्ञान-दीपक हाथ में दिया और उचित मार्ग का परखने का मार्ग प्रशस्त हो गया।

भावार्थ--शिष्य लोकानुमोदित मार्ग का अन्य अनुसरण करता हुआ जा रहा था। परन्तु आगे सतगुरु के दर्शन हुए। उन्होंने ज्ञान का दीपक हाथ दिया।

विशेष—सतगुरु की महान अनुकम्पा इसलिए हो कि उसने अन्धानुकरण और लोक वेद प्रतिपादित मार्ग को निःसार बताया और ज्ञान के दीपक के जीवन कि मार्ग को परिष्कृत एवं अलौकित किया।

शब्दार्थ—पीछैं=अनुकरण। साथि = साथ। मिल्या=मिला। दीया = दिया, प्रदान किया।

दीपक दीया तेल भरि, बाती दई अघट्ट।
पूरा किया बिसाहुणां बहुरि न आँवौ हट्ट ॥१२॥

सन्दर्भ—सतगुरु की कृपा से न केवल अंधानुकरण से ही उन्मुक्ति प्राप्त हुई और न केवल अज्ञान से अवकाश मिला। वरन् ज्ञान का ऐसा दीपक मिला जो अक्षय और अनन्त हो सतगुरु ने जो ज्ञान का दीपक प्रदान किया, उसमे अक्षय तेल, अघट्ट बाती और अनन्त प्रकाश भी था।

भावार्थ--सतगुरु ने प्रेमरूपी तैल से सयुक्त दीपक प्रदाव किया, जो न घटने वाली बाती सम्पन्न था। दीपक के प्रकाश मे शिष्य ने संसार रूपी बाजार मे क्रय-विक्रय पूर्ण किया। अब इस संसार रूपी बाजार मे पुनः नही आगमन होगा।

विशेष—प्रस्तुत साखी मे ज्ञान के दीपक मे प्रेम का तैल तथा अघट बाती का उल्लेख किया है। क्रय-विक्रय प्रकाश मे किया जाता है। संसार रूपी हाट मे अज्ञान का अंधकार, माया का तम चारो ओर प्रसारित है। उस तम या अंधकार के कारण सुकृत का क्रय-विक्रय सम्भावित नही था। अब अघट बाती तथा अक्षय तेल युक्त ज्ञान का दीपक प्राप्त हो गया है। अब सुकृत तथा पुण्य का क्रय कर लिया गया है। अतः जीवन्मुक्त होकर साधक अब पुनर्जन्म के क्रम मे नही पड़ेगा।

शब्दार्थ—दीया = दिया = प्रदान किया। अघट्ट=अघट=न कम होने वाली। बिसाहूंणा=क्रय-विक्रय, खरीदारी। आवौं=आवो=आऊं=आना होगा। हट्ट=हट=हाट=बाजार।

ग्यान प्रकास्या गुर मिल्या, सो जिनि वीसरि जाइ।
जब गोविन्द कृपा करी, तब गुर मिलिया आइ ॥ १३॥

सन्दर्भ—ज्ञान से सुशोभित एव समलंकृत गुरु की प्राप्ति एव दर्शन बड़े भाग्य से होते है। ऐसे महान व्यक्ति के दर्शन के भी ईश्वर की प्रेरणा और अनुकम्पा का फल है। इस प्रकार का असाधारण, अद्भुत और अद्वितीय व्यक्तित्व अविस्मरणीय है।

भावार्थ—गोविन्द की कृपा से मुझे ग्यान के आलोकित या प्रकाशित गुरु मिला। ऐसा सतगुरु अविस्मरणीय है।

विशेष—कबीर का यदि यह विश्वास है कि "गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूं पाँय। बलिहारी गुरु आपने जिन गोविन्द दियो बताय," "तो वही कबीर यह भी रखते हैं कि" "जब गोविन्द कृपा करी, तब गुर मिलिया आइ। कबीर को इस बात की प्रसन्नता है कि उसका गुरु ग्यान से पूर्ण और ईश्वर की कृपा से प्राप्त हुआ है।

शब्दार्थ—प्रकास्या = प्रकासा = प्रकाशा = प्रकाशित। गुर = गुरु। मिल्या = मिला। जिनि = जिन। मत = नही। बीसरि = बीसर = बिसरा = भूला। मिलिया = मिला।

कबीर गुर गरवा मिल्या, रलि गया आटै लूण।
जाति पाँति कुल सब मिटे, नाँव धरौगे कौंण ॥१४॥

संदर्भ—ज्ञान के आलोक से प्रकाशित गुरु मिला। वह गुरु न केवल ज्ञान से सम्पन्न है, वरन् वह गौरव से युक्त तथा महानात्मा भी है। गुरु के महान व्यक्तित्व से शिष्य अभिभूत हो गया और उसी मे समा गया। ज्ञान से आलोकित गुरु के प्रभाव से शिष्य भी ज्ञान सम्पन्न हो गया और उसका जाति, वर्ण, कुल की सब भावना विलीन हो गई। वह शुद्धात्मा के रूप मे विचरण करने लगा।

भावार्थ - कबीर कहते हैं गौरवमय तथा गम्भीर गुरु मिला। गुरु ने अपने व्यक्तित्व मे मुझे एकाकर लिया। मैं उससे मिलकर उसी प्रकार अभिन्न हो गया, यथा आटा एव नमक मिलकर अभिन्न हो जाता है। इस प्रकार सतगुरु के व्यक्तित्व मे एकाकार हो जाने की अनन्तर जाति, कुल और नाम की सकरी सीमाएं विनष्ट हो गई और मैं विशुद्धात्मा हो गयी। ऐसी शुद्धात्मा का क्या नामकरण होगा ?

विशेष—आटै-लूंण मे तात्पर्य है यथा आटा मे मिलकर नमक एकाकार हो जाता है। उसी प्रकार सतगुरु की महानात्मा मे मिलकर शिष्य की आत्मा एका-कार हो गई। (२) "गुरगरवा" से तात्पर्य है कि ज्ञान के गौरव से पूर्ण और गम्भीर (३) जाति···कौंण से तात्पर्य है सासारिक एव सामाजिक मान्यताएं एव प्रतिबन्ध एव विनष्ट हो गये। शिष्य शुद्धात्मा हो गया। (४) नाव···कौंण-से तात्पर्य है कि अब शिष्य अनाम, अजात, अवर्ण और अभेद हो गया।

शब्दार्थ—लूंण = लोन—नमक। गरवा = गरुआ—गम्भीर। नांव = नाम। कौंण = कौन।

जाका गुर भी अंधला, चेला खरा निरंध।
अंधै अंधा ठेलिया, दून्यूं कूप पडंत ॥ १५ ॥

संदर्भ—सतगुरु के ज्ञान से प्रकाशित होकर शिष्य विशुद्धात्मा हो गया। वह इनाम और अजात हो गया। परन्तु जिसका गुरु अन्धा है और चेला भी खरा निरंध है। ऐसे गुरू और शिष्य दोनो ही अन्धे प्राणियो के सदृश विनाश के कुएं मे गिरते हैं।

भावार्थ—जिस शिष्य का गुरु अन्धा और चेला स्वतः अन्धा है वे दोनो एक दूसरे को ठेलते-ठेलते कुएं मे जा पड़ते हैं।

विशेष—प्रस्तुत साखी मे कबीर के अज्ञानी गुरु एवं शिष्य की दुर्दशा का उल्लेख किया है। दोनो अज्ञान के कारण एक दूसरे को ठेलते हुए विनाश के कूप मे विनष्ट हो जाते हैं।

शब्दार्थ—अवला = अंधा—अज्ञान के अन्धकार से ग्रस्त। खरा = पूर्णतया। निरंध = निरा = निरा अन्धा। ठेलिया = ठेलते हुए। दून्यूं = दोनो। कूप = माया का कूप या विनाश का कूप। पडत = गिरता है।

नां गुर मिल्या न सिष भया, लालच खेला डाव।
दून्यूं बूड़े धार मैं, चढ़ि पाथर की नाव ॥१६॥

सन्दर्भ—ज्ञानी सतगुरु के न मिलने के कारण बडा अहित हुआ। शिष्य माया, मोह, लालच और अन्य सजातीय कुप्रवृत्तियो से पराजित हो गया, जो अज्ञानी गुरु प्राप्त हुआ उसने शिष्य को ऐसा मार्ग प्रदर्शित किया, जिसके कारण गुरु और शिष्य अपने अज्ञान के कारण भवसागर मे डूब गए।

भावार्थ—न सत् गुरु मिला, न शिष्य को सत् दीक्षा प्राप्त हुई। लोभ या लालच ने दोनो के प्रति दांव खेलता रहा। पत्थर को नाव मे बैठकर (भवसागर को उत्तीर्ण करने के अभिलाषी) दोनो भवसागर मे डूब गए।

विशेष—पहले की साखियो मे कवि ने सतगुरु के प्रसाद से प्राप्त ज्ञानलोक का उल्लेख किया है। अब यहाँ पर उसने झूठे गुरु के दर्शन से जो अहित होता है, उसका उल्लेख कर दिया है। अज्ञान से अभिग्रस्त गुरु के कारण शिष्य तो विनष्ट हुआ ही, गुरु भी भवसागर के मध्य मे डूब कर विनष्ट हो गया। (२) दून्यू... मैं—से तात्पर्य है कि दोनो मंझधार में डूब गए। (३) चढ़ि...नाव = से तात्पर्य है माया, लालच या मोह की नौका।

शब्दार्थ—मिल्या = मिला । सिष = शिष्य । भया = हुआ । डाव = दाँव । दून्यू = दोनो । धार = मझधार । पाथर = पत्थर । नाव = नौका ।

> चौसठि दीवा जोइ करि, चौदह चंदा मांहि ।
> तिहिं घरि किसको चानिणो, जिहि घरि गोविन्द नाहिं ॥१७॥

सन्दर्भ—सतगुरु के प्रसाद से ज्ञान के प्रकाश से शिष्य आलोकित हो गया । जो गुरु स्वतः ज्ञानालोक से आलोकित है वह शिष्य के व्यक्तित्व से भी वासनाओं के तामसिक अन्धकार को दूर कर सकता है । सतगुरु ने शिष्य के व्यक्तित्व को ब्रह्म के प्रकाश से प्रकाशित कर दिया है । जो ब्रह्म के प्रकाश से आलोकित नही है, उनके व्यक्तित्व को कौन सुशोभित कर सकता है ।

भावार्थ—जिस घर मे गोविन्द का निवास नही है, वह घर चौसठ कलाओं और चन्द्रमा की चौदह राशियो से आलोकित होने पर भी, अन्धकार ग्रस्त ही रहेगा ।

विशेष—प्रस्तुत साखी मे दो बातें विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है । प्रथम ब्रह्म के ज्ञान का प्रकाश चौसठ कलाओ और चन्द्र की चौदह कलाओ के समन्वित प्रकाश से भी अधिक है । द्वितीय, यह कि हृदय मन्दिर ब्रह्मानुभूति के अभाव मे शून्य और अन्धकार से ओत-प्रोत रह जायगा । (२) चौसठि दीवा से तात्पर्य है चौसठ कलाएं जो अज्ञान के अन्धकार को दूर करती हैं । (३) चौदह चन्दा—चन्द्रमा की १४ कलाएं जो अन्धकार को नष्ट करती है । (४) घर से तात्पर्य है = शरीर ।

शब्दार्थ—चन्दा = चन्द्रमा । चानिणो = प्रकाश ।

> निस अँधियारी कारणी, चौरासी लख चन्द ।
> अति आतुर ऊदै किया, तऊ दिष्टि नहि मन्द ॥१८॥

सन्दर्भ—विगत साखी मे कवि ने कहा है कि "तिहि घरि किसको चानिणो जिहि घरि गोविन्द नाहिं" । उसी भाव को विकसित करते हुए यहाँ कबीर ने कहा है कि अज्ञान निशा को दूर करने के लिए अत्यन्त आतुरता के साथ यदि ८४ लक्ष चन्द्र को उदित करने का आयोजन किया जाय तो वह दूर नही होगा, यदि दृष्टि माया के कारण मलीन है ।

भावार्थ—रात्रि के अन्धकार को दूर करने के लिए यदि अत्यन्त आतुरता के साथ ८४ लाख चन्द्र को उदित किया जाय तो भी अन्धकार दूर नही होगा, यदि दृष्टि मलिन है ।

विशेष—यदि दृष्टि मन्द है, या मलीन है तो एक स्थान पर एकत्र ८४ लक्ष चन्द्र का प्रकाश भी नही दृष्टिगत होगा । चन्द्र और नेत्रो के मध्य व विकारों का

पर्दा पड़ा है। इसी प्रकार ब्रह्मानुभूति की शक्ति के बिना दृष्टि निर्मल नही होगी। (२) निस···कारणौं – रात्रि के अन्धकार के कारण या रात्रि के अन्धकार को दूर करने के लिए। (३) अति आतुर···किया = अत्यन्त आतुरता के साथ अथवा अत्यन्त तीव्रता के साथ चन्द्रमा उदय किया या आयोजित किया। (४) तऊ···मन्द = फिर भी दृष्टि नही है। दृष्टि मन्द ही रहेगी।

शब्दार्थ—ऊदै = उदय। दिष्टि 7 दृष्टि।

भली भई जु गुर मिल्या, नहीं तर होती हांणि।
दीपक दिष्टि पतंग ज्यूँ पड़ता पूरी जाणि॥१६॥

सन्दर्भ—सतगुरु की महिमा अनन्त है। उसने "अनन्त किया उपगार" तथा "लोचन अनन्त उघाडिया अनन्त दिखावणहार"। तथा "सतगुरु सवाँन को सगा सोधी सई न दाति।" उसके शब्दबाण "लागत ही मैं मिलि गया पड्या कलेजे छेद"। ऐसे बहुगुणी सतगुरु के न मिलने से बड़ा अहित होता। उसके अभाव मे शिष्य की दृष्टि माया रूपी पतग पर अवश्य पड़ती। और वह आवागमन के क्रम मे सदैव के लिए बंध जाता।

भावार्थ—अच्छा ही हुआ जो गुरु के दर्शन हो गए नही तो बड़ी हानि होती। पतंग रूपी मेरी दृष्टि माया रूपी दीपक पर अवश्य पड़ती और इस प्रकार हर प्रकार से हानि की सम्भावना थी।

विशेष—प्रस्तुत साखी मे कबीर ने "दीपक दिष्टि पतंग" की सुन्दर कल्पना की है। माया दीपक है और मन या दृष्टि पतंग है। यहाँ पर कवि की अप्रस्तुत योजना औचित्य तथा यथार्थपूर्ण है।

शब्दार्थ—भली = अच्छा, कल्याणकारी। भई = हुई, हुआ। तर = तो। हांणि = हानि = नुकसान। दिष्टि = दृष्टि। ज्यूं = ज्यों। जाणि = जानि = जान।

माया दीपक नर पतंग, भ्रमि-भ्रमि इवैं पडन्त।
कहै कबीर गुर ग्यान थैं, एक आध उबरन्त॥२०॥

सन्दर्भ—पूर्व साखी मे प्रयुक्त अप्रस्तुत योजना "दीपक दिष्टि पतंग ज्यूं" को और भी विस्तार तथा स्पष्टता के साथ व्यक्त करते हुए कवि ने गुरु के ज्ञान के समक्ष पुनः श्रद्धा, आस्था तथा विश्वास प्रकट करते हुए अप्रत्यक्ष रूप से गुरु की महत्ता का वर्णन किए हैं।

भावार्थ—माया रूपी दीपक पर नर (रूपी) पतंग, मंडरा-मंडरा कर गिरता है। परन्तु कबीर का मत है कि गुरु के ज्ञान से (उस विनाश से) एक आध उबर जाता है या उद्धार भी प्राप्त करता है।

विशेष—माया के आकर्षक स्वरूप पर मानव उसी प्रकार भ्रम के कारण, या अज्ञान के कारण मडला-मडला कर गिरता है, यथा दीप-शिखा पर पतग आकर्षित होकर प्राण अर्पित कर देते हैं। (२) "एक आध" से तात्पर्य विरले। (३) प्रस्तुत साखी मे अप्रत्यक्ष रूप से सतगुरु की सामर्थ्य की प्रशसा की गई है। वह सर्वथा स्तुत्य और वंदनीय हैं।

शब्दार्थ = पडंत = पडते हैं। उबरंत = उबरते हैं।

सतगुर बपुरा क्या करै, जे सिपही मांहै चूक।
भावै त्यूं प्रमोधि ले, ज्यूं बँसि वजाई फूंक ॥२१॥

सन्दर्भ—यदि शिष्य माया मे अनुरक्त है, या दोषपूर्ण हो तो सतगुरु का क्या दोष। सतगुरु की शिक्षा का कोई भी प्रभाव शिष्य पर नही दृष्टिगत होगा, यदि वह दोषयुक्त हो। परन्तु निपुण या साधना मे सिद्ध सतगुरु दोषो से अभिशप्त शिष्य को भी प्रबुद्ध कर लेता है। तथा कुशल वाद्यकार छिद्रो से युक्त बासुरी के माध्यम् से सुन्दर एव मनोहर राग प्रस्फुटित करता है।

भावार्थ—सतगुरु वेचारा क्या करे, यदि शिष्य ही दोष या त्रुटि पूर्ण है। (कुशल) सतगुरु उसी प्रकार से शिष्य को प्रबुद्ध कर लेता है। यथा कुशल वजाने वाला (बहु छिद्रो वाली) बांसुरी को वजा लेता है।

विशेष—प्रस्तुत साखी मे कवि ने युक्ति सगत बात का उल्लेख किया है। समर्थ सतगुरु शिष्य को वैसे ही उचित मार्ग पर ले आता है। यथा बसुरी बजाने वाला, बहुछिद्र सम्पन्न होने पर भी बासुरी को वजा लेता है।

शब्दार्थ—बपुरा = वेचारा। सिपाही = शिष्य ही। माहै = मे है। प्रमोधि = प्रबोध।

संसै खाया सकल जुग, संसा किनहूँ न खद्ध।
जे वेधे गुरु अष्पिरां, तिनि संसा चुणि-चुणि खद्ध ॥२२॥

सन्दर्भ—सतगुरु के शब्दो मे अद्भुत शक्ति एवं अद्भुत प्रभाव है। उस महानात्मा के शब्दबाणो ने शिष्य मे जिन अद्वितीय शक्तियो को उत्पन्न कर दिया है, उनका उल्लेख पिछली साखियो मे हो चुका है। संशय ने समस्त संसार को नष्ट कर दिया है। पर जो सतगुरु के शब्दबाणो से आहत हो चुके है, उन्होने संशय को भी नष्ट करके मृत्यु पर विजय प्राप्त कर ली है।

भावार्थ--संशय ने समस्त जगत को खा डाला। पर संशय को कोई न (खा सका या) नष्ट कर सका। परन्तु जन्हे गुरु के अक्षरो (शब्द वाणी) ने वेधा (या आहत किया) है, उन्होने ही संशय को चुन-चुन कर (खा डाला या) नष्ट कर डाला।

विशेष—गीता मे भगवान् कृष्ण का उपदेश है "संशयात्मा विनश्यति।" जो संशय, भ्रम, आशंका से परिपीडित हैं, वे नाश को प्राप्त होते हैं। (२) गुरु की वाणी मे या शब्द वाणो मे वह सामर्थ्य है कि शिष्य के समस्त संशय विनष्ट हो जाते हैं।

शब्दार्थ—खद्ध = खाया। जे = जिन्हे। वेधं = वेधा है, या आहत किया है। चुणि = चुनि। ससा = सशय।

> चेतनि चौकी बैसि करि, सतगुर दीन्हाँ धीर।
> निरभै होइ निसंक भजि, केवल कहै कबीर॥२३॥

संदर्भ—सतगुरु ने शिष्य के अनन्त लोचन ही नही उदघाटित किया, वरन् उसे धैर्य का वरदान भी दिया। साथ ही सतगुरु ने निःशक होकर ईश्वराराधना करने का भी उपदेश दिया।

भावार्थ—चैतन्य चौकी पर आसीन होकर सतगुरु ने धैर्य धारण करने का उपदेश दिया। धैर्य के साथ ही सतगुरु ने निर्भर एव निःशक होकर ईश्वर की आराधना का उपदेश दिया।

विशेष—"चैतन्य चौकी' पर वैठकर से तात्पर्य है ज्ञान की चौकी या ज्ञान के आसन पर वैठकर। (२) चेतनि···धीर—ज्ञान के उच्च आसन पर वैठकर सतगुरु ने शिष्य को धैर्य का धारण करने का आशीर्वाद दिया। (३) निरभै होइ निसक भजि "से तात्पर्य है निर्भय और शका रहित होकर आराधन कर। (४) "भजि" से तात्पर्य है जप।" यहाँ वह शब्द आदेशात्मक रूप मे प्रयुक्त हुआ है। (५) "केवल" का तात्पर्य है अद्वैत ब्रह्म 'केवल' शब्द का प्रयोग सतो ने ब्रह्म अद्वैत अर्थ मे किया है।

शब्दार्थ--चेतनि = चेतन = चैतन्य। वैसि = वैठि। धीर = धैर्य। निरभै = निर्भय। निसंक = निःशक। होइ = होकर। भजि = भज। करि = कर।

> सतगुर मिल्यात का भया, जे मनि पाड़ी भोल।
> पासि विनंठा कप्पडा, क्या करै विचारी चोल॥२४॥

संदर्भ—कबीर ने प्रस्तुत साखी का भाव "सतगुर कौ अंग" की २१ वीं साखी मे व्यक्त करते हुए कहा है "सतगुर बपुरा क्या करे, जे सिषही माँहै चूक।" इसी भाव को किंचित अधिक विस्तार के साथ व्यक्त करते हुए कवि ने सुन्दर अप्रस्तुत, योजना की आयोजना की है।

भावार्थ—यदि मन ही भूलो से भरा है तो, सतगुरु का मिलना और न मिलना समान है। यदि पास मे विनष्ट या फटा। कपडा है, तो उसके आधार पर तैयार किया हुआ अधोवस्त्र की क्या उपयोगिता होगी।

विशेष—प्रस्तुत साखी मे सुलभ एव सरल अप्रस्तुत योजना के माध्यम मे कबीर ने यह कहा है कि यदि शिष्य का मन माया मे ही अनुरक्त है तो सतगुरु बेचारे का क्या दोष। फटे हुए कपडे से शरीर नही ढका जाता है। यदि इतना होने पर भी कोई फटे हुए वस्त्र से चोल या चोली मिले और उससे शरीर आवृत नही सकते, कपडे का क्या दोष।

शब्दार्थ—त=सो। का=क्या। भवा=हुआ। जो=यदि। पाडो=पारी या आच्छादित। भोल=भ्रम। पासि=पास अधिकार मे। विनटा=विनष्ठ। कप्पडा=कपडा। चोल=चोली।

बूड़े थे परि ऊबरे, गुर की लहरि चमंकि।
भेरा देख्या जरजरा, (तब) ऊतरि पड़े फरकि॥२५॥

संदर्भ—गुरुदेव की अग की २० वी साखी मे कबीर ने गुरु की अद्वितीय शक्ति का उल्लेख किया है, जिसकी कृपा से एक आध शिष्य का उद्धार होता है। कबीर ने उक्त साखी मे कहा है "कहै कबीर गुर ग्यान थै एक आध उबरंत।" यहाँ पर कबीर ने पुनः उसी आशय को अभिनव अप्रस्तुत योजना द्वारा नये शब्दों म व्यक्त किया है।

भावार्थ—हम भव सागर मे मग्न थे। पर गुरु की (कृपा की) लहर चमक देखकर मेरा उद्धार हो गया। सतगुर की कृपा प्राप्त होते ही मैंने जर्जर बेडा का परित्याग कर दिया और उस पर से फडक कर उतर पडा।

विशेष—गुरु की कृपा अगाध और निःसीम है यथा सागर। सागर की उत्तुङ्ग लहरों मे प्रबल शक्ति होती है। उसी प्रकार सागर के समान गम्भीर, व्यापक निःसीम सतगुरु का व्यक्तित्व है उनकी कृपा की लहर मे अद्भुत शक्ति है। वह शिष्य का उद्धार करने मे सशक्त है। (२) बूडे थे परि ऊबरे" तात्पर्य है भव सागर मे डूबे हुए थे पर उद्धार हो गये। (३) "लहरि" से तात्पर्य 'कृपा की लहर।' (४) "चमंकि" चमक या प्रकाश। गुरु की कृपा की ज्योति प्रकटित हुई या प्रकाशित

हुई और अपने अज्ञान के अन्धकार मे मग्न शिष्य का उद्धार किया। (५) मेरा से तात्पर्य है "बेडा।" यहाँ बेडा से तात्पर्य है लोक वेदानुमोदित मार्ग, या माया बेडा। (६) 'जरजरा'—से तात्पर्य है जर्जर, क्षीण, विनाशशील मग्न प्राय (७) "फरकि" से तात्पर्य है फडक कर, या फांद कर।

शब्दार्थ—परि = पर, परन्तु। ऊबरै = उबरे, उद्धार हुआ। मेरा = बेड़ा जरजरा = जर्जर। ऊतरि = उतर।

गुर गोविंद तौ एक है, दूजा यहु आकार।
आपा मेट जीवत मरै, तौ पावै करतार ॥२६॥

संदर्भ—गुरु और गोविन्द एक हैं, अभिन्न हैं। गुरु और गोविन्द से भिन्न जो कुछ है वह माया या भ्रम है। प्रेम रस पान करना सरल नही है। अहं के जीवित रहते ब्रह्मानुभूति असम्भव है। प्रेम के मार्ग मे अहं सबसे बड़ा बाधक है। कबीर ने सच कहा है "पीया चाहै प्रेम रस राखा चाहै मान। एक म्यान मे दो खड़ग देखा सुना न कान।"

भावार्थ—गुरु और गोविन्द मे अन्तर नही है। दोनो एक हैं। उनसे जो कुछ भी भिन्न है वह आकार या माया है। यदि जीते-जी (जीवित रहते हुए) अन्त का (मानव) परित्याग कर देते हैं, ब्रह्मानुभूति से सम्भावित है।

विशेष—प्रस्तुत साखी मे कबीर ने दो भावो की अभिव्यक्ति की है। प्रथम यह कि सतगुरु और ब्रह्म अभिन्न है। सन्त, साहित्य मे यह भाव अनेक बार बड़े उत्साह के साथ व्यक्त किए जाते हैं। द्वितीय भाव यह है कि अहं ब्रह्मानुभूति = या आत्मानुभूति मे बाधक होती है। प्रेम एव ब्रह्माराधना के मार्ग मे अहं विनाशकारी। कबीर ने बारम्बार कहा है "यहु तौ घर है प्रेम का खाला का घर नांहि। सीस उतारै भुंई धरै पैठे घर माहि।

शब्दार्थ—दूजा = दूसरा, द्वैत। आकार = माया। आपा = अंह। करतार = ब्रह्म।

कबीर सतगुर नाँ मिल्याँ, रही अधूरी सीप।
स्वाँग जती का पहरि करि, घरि घरि मांगे भीप ॥२७॥

सन्दर्भ—प्रस्तुत साखी मे अपने युग की दुर्व्यवस्था और कुप्रवृत्तियो के प्रति कवि की प्रतिक्रिया अंकित की गई है। संत-साहित्य मे तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों के प्रति चेतना के दर्शन होते हैं।

यहाँ पर उन स्वांग भरने वालो की ओर सकेत किया गया है जो यती के भेष को धारण कर भिक्षार्जन मे प्रवृत्त है।

भावार्थ—कबीर दास कहते हैं कि (शिष्य को) सद्गुरु न प्राप्त हुआ और दीक्षा या शिक्षा अपूर्ण रही। यती का वेष धारण करके (अधूरी शिक्षा प्राप्त शिष्य) भिक्षार्जन करते फिरते हैं।

विशेष—अनुभव एवं ज्ञान से शून्य गुरु जो शिक्षा देता है, वह अपूर्ण या अधूरी शिक्षा ही अपूर्ण ज्ञान, नीतिकारो ने विनाशकारी माना है। (२) कबीर ने वेश को स्वाग या तमाशा माना है।

शब्दार्थ—स्वांग = तमाशा। जती = यती। पहरि = पहन। घरि = घर। भीष = भीख = भिक्षा। सीष = सीख = शिक्षा।

सतगुर साँचा सूरिवाँ, तातैं लोहिं लुहार।
कसणी दे कंचन किया, ताइ लिया ततसार ॥२८॥

सन्दर्भ—कृत्रिम या असगत गुरु मिलने का प्रतिफल होता है, "अधे अधा ठेलिया, दून्यू कूप पडत" तथा "दून्यू बूड़े धार मैं चढि पाथर की नाव।" सतगुर के सम्पर्क मे आने का क्या प्रभाव होता है। इसका उल्लेख कबीर ने प्रस्तुत "अंग" की साखी ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३ आदि मे अकित किया है। यहाँ पर पुन कबीर ने सतगुरु की वन्दना करते हुए उसे तत्व एव सार का शोधक माना है।

भावार्थ—सतगुर सच्चा शूरमा है। यथा लुहार लोहे को दग्ध करके शुद्ध करता है उसी प्रकार साधना की अग्नि मे तप्त करके शिष्य को शुद्ध कर लिया है। शिष्य को साधना की कसौटी मे कस कर कंचनवत् बना लिया है और सार तत्व को सम्प्राप्त कर लिया है।

विशेष—प्रस्तुत साखी मे साधना की अग्नि मे शिष्य को निर्मल कर लेने का उल्लेख है। माया के असार तत्व साधना की कसौटी से ही दूर किए जा सकते हैं।

शब्दार्थ—साँचा = सच्चा। सूरिवाँ = सूरमा = शूरमा। तातैं = तात = तप्त कसणी = कसनो = कसौटी मे कसने की प्रक्रिया। तत = तत्व।

५.५.६२.

थापणि पाई थिति भई, सतगुर दीन्हीं धीर।
कबीर हीरा-बणजिया, मानसरोवर तीर ॥ २९ ॥

सन्दर्भ—प्रस्तुत साखी मे कवि ने "सतगुर कौ अंग" की साखी २३ तथा १२ का भाव किंचित परिवर्तन के साथ लिया गया है। सतगुरु ने धैर्य एव निर्भो

कता का आशीर्वाद दिया और फलतः कबीर ने बहुमूल्य पदार्थों का वाणिज्य किया। यह वाणिज्य हीरे का था।

भावार्थ--गुरु से दीक्षा समाप्त हुई और धैर्य का वरदान मिला। कबीर ने मानसरोवर के तट पर हीरा का वाणिज्य किया।

विशेषः– यहाँ साधना की उन तीन अवस्थाओ का कबीर ने उल्लेख किया है जिसका कवि स्वतः ने अनुभव किया था। थापणि या स्थापना से अनन्तर धैर्य और तदनन्तर साधक द्वारा हीरा का वाणिज्य। (२) स्थापना या दीक्षा के अनन्तर ही शिष्य को सतगुरु से धैर्य धारण की साधना-पथ पर अग्रसर होने का आशीर्वाद मिला। फलतः साधना मे रत रह कर कबीर ने मानसरोवर के तट पर हीरा रूपी हरि का वाणिज्य। (६) थापणि...भई- दीक्षा के अनन्तर थिति मिली।

शब्दार्थ--थापणि = स्थापना। थिति = स्थिरिता। धीर-धैर्य। वणजिया-वाणिज्य किया। तीर-तट।

निहचल निधि मिलाइ तत, सतगुर साहस धीर।
निपजी मैं साभी घणां, बाँटै नहीं कबीर ॥३८॥

संदर्भ--सतगुरु के अमोघ दान के फलतः जीवन मे सब कुछ सत्र प्राप्य उपलब्ध हो गया। दुर्लभ ब्रह्मानुभूति प्राप्त हो गई। भवसागर मे भटकती हुई जीवन नौका को लक्ष्य एवं गतव्य प्राप्त हो गया ब्रह्म की अनुभुति का आनन्द अविभाज्य एव अभिव्यक्ति से परे हैं या असम्प्रेषणीय है।

भावार्थ--सतगुरु द्वारा प्राप्त साहस एव धैर्य के फलतः अमर निधिरूप सार तत्व समाप्त हो गया। परमतत्व के साक्षात्कार से समुत्पन्न आनन्द को बटाने के लिये सभी समुत्सुक है पर कबीर उसे सम्प्रेषित नही कर पाता है।

विशेष—विगत साखी मे कबीर ने हरि के लिए "हीरा" शब्द का प्रयोग किया है और इस साखी मे "निहचल निधि" का प्रयोगब्रह्म तत्व के अर्थ मे किया है। लौकिक जीवन मे हीरा या निधि माया का प्रतीक है। प्रश्न होता है कि कबीर ने माया की इतनी भर्त्सना की है फिर भी माया के प्रतीकों को ब्रह्म तत्व के लिए क्यो प्रयोग किया है बात यह है कि सासारिक जीवन मे हीरा बहुमूल्य वस्तु मानी गई है। इसी प्रकार ब्रह्म साधनात्मक जीवन मे बहुमूल्य उपलब्धि है हरि रूपी निधि और हीरा साधनात्मक जीवन मे उसी प्रकार बहुमूल्य है यथा लौकिक जीवन के माया के प्रतीक धन या हीरा। (२) तत = तत्व-ब्रह्म तत्व। (३) निपजी...कबीर—ब्रह्मानुभूति का आनन्द अविभाजनीय है असम्प्रेषणीय है। यह आनन्द स्वतः अर्जित किया जाता है, उधार मे नही प्राप्त होता है।

शब्दार्थ—निहचल = निश्चल । तत = तत्व । निपजी = उपजी । घणा = घना- घनीभूत ।

चौपडि मांड़ी चौहटै, अरध उरध बाजार ।
कहै कबीरा रामजन, खेलौ संत विचार ॥ ३१ ॥

संदर्भ—कबीर ने प्रस्तुत अग की साखी १२ एवं २६ मे वाणिज्य का उल्लेख किया है । अब प्रस्तुत साखी एवं आगामी साखी मे चौपड एवं पासा के खेल का उल्लेख किया । आध्यात्मिक जगत मे चौपड का भिन्न अर्थ होता है ।

भावार्थ—चौराहे पर चौपड सुशोभित है । ऊपर नीचे बाजार लगा हुआ कबीर कहते हैं कि हे सतजन । विवेक पूर्वक इस चौपड के खेल को खेलो ।

विशेष—अरध···बाजार—ऊपर नीचे चक्रो का बाजारा बिछा हुआ ही शरीर मे षटचक्र है । मूलाधार प्रथम और सहस्रार अतिम चक्र है ध्यान रूपी मोहरें या गोटो से साधक खेल रहा है प्रत्येक चक्र पर ध्यान केन्द्रित करके पुनः आगे बढ़ता है । (२) चौपडि...चौहट शरीर रूपी चौराहे पर चौपड बिछी है । खेलौ सत विचार से तात्पर्य है कि हे सतो ध्यान पूर्वक इस खेल को खेलो ।

शब्दार्थ—मांडी = मडित । चौहटै = चौराहे । अरध उरध = ऊपर-नीचे ।

पासा पकड़्या प्रेम का, सारी किया सरीर ।
सतगुर दाव बताइया, खेलै दास कबीर ॥३२॥

संदर्भ—"चौपडि मांडी चौहटै अरध उरध बाजार ।" ऐसे बाजार मे कबीर राम जन से उपदेश देते हुए कहते हैं "खेलौ संत विचार" । शरीर रूपी चौपड मे प्रेम का पासा फेकने का रूपक कबीर ने यहाँ पर बडी स्पष्टता के साथ व्यक्त किया है । विगत साखी मे कबीर ने इस खेल को खेलने के लिए सहजन के विवेक पर विश्वास रखे हैं । यहाँ सतगुरु के निर्देशन के अनुसार दाँव चलने का आदेश कबीर ने बताया है ।

भावार्थ—शरीर को चौपड पर प्रेम का पासा पकड़ कर, सतगुरु के आदेशानुसार कबीर दाव चल रहा है ।

विशेष—प्रेम का पासा और शरीर का चौपड बडी ही यथार्थ और बुद्धि-सगत अप्रस्तुत योजना । शरीर के चौपड़ पर प्रेम के पासे का खेल स्वाभाविक और औचित्यपूर्ण है । प्रेम के इस खेल मे दाव बताने वाला या निर्देशन देने वाला सतगुरु ही कुशल गुरु के निर्देशन सम्प्राप्त हो जाने से साधक विजय के लिए परामर्श का कोई अवसर नही है ।

"खेलै दास कबीर" मे आत्मविश्वास दृढ़ता तथा सतगुरु पर आस्था का भाव प्रतिबिम्बित होता है।

शब्दार्थ—सारी = चौपड़। सरीर = शरीर। दाव = दाव, चाल। बताइया = बता रहा है।

सतगुरु हम सूँ रीझि करि, एक कह्या प्रसंग।
बरस्या बादल प्रेम का, भीजि गया सब अंग ॥३३॥

सन्दर्भ—प्रस्तुत प्रसंग मे कबीर ने अनेक बार कहा है कि "सतगुरु मार्‌या बाण भरि," 'सतगुरु साचा सरिवो, सबद जु बाह्य एक"। "लागत ही मैं मिट गया, पड़्या कलेजे छेक" तथा "सतगुरु लई कमांण कहि, बाहण लागा तीर। एक जु बाह्या प्रीति सूं भीतरि रह्या सरीर।" एक शब्द बाण से आहत होने के अनन्तर, अत्र कबीर का अन्तर प्रेम के बादल से भीग जाने का वर्णन है। यहाँ सतगुरु ने एक प्रसग कहा है और वहाँ एक कर्मान के चलने का उल्लेख है। दोनो का फल एक ही है। परन्तु प्रभाव दोनो का दिव्य, असाधारण और ब्रह्मानुभूति है।

भावार्थ—सतगुरु ने हमसे प्रसन्न होकर एक प्रसंग कहा। फलतः प्रेम का बादल बरसा और सब अंग आर्द्र हो गए।

विशेष—सतगुरु ने शिष्य की योग्यता, सच्चाई और लगन देखकर उसके उपयुक्त प्रेम का एक प्रसंग प्रस्तुत किया। यह प्रेम का प्रसंग ब्रह्मानुभूति का प्रसंग था। प्रेम का यह प्रसग इतना प्रभावशाली था कि शिष्य के समस्त अग उसी से आर्द्र हो गये। इसी भाव से प्रेरित होकर कबीर ने अन्यत्र कहा है कि "लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल। लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल।" यहाँ भी प्रेम का अनुराग के रंग मे समस्त अगो के भीग जाने का वर्णन है।

शब्दार्थ—रीझि = प्रसन्न। बरस्या = बरसा। भीजि = भीगि = भीग।

कबीर बादल प्रेम का, हम परि वर्ष्या आइ।
अंतरि भीगी आत्मां, हरी भई बनराइ ॥३४॥

सन्दर्भ—प्रस्तुत साखी मे कबीर ने पुनः प्रेम के बादल की वर्षा और उसके व्यापक प्रभाव का वर्णन किया है।

भावार्थ—कबीर कहते हैं कि प्रेम का बादल हम पर आकर बरसा। फलतः अन्तस और आत्मा उसके प्रभाव से भीग गया और बनराय हरा हो गया।

विशेष—आतम माया के आकर्षक आवरण तथा पंच विकारो (काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ) मे अनुरक्त था। परन्तु यहा प्रेम के जल या सतगुरु के उपदेश जल

मे वह भीगकर विशुद्ध हो गया। (२) आत्मा, असार, अशुभ और अपवित्र तत्वों से परिवेष्ठित थी। प्रेम के जल से धुल कर वह स्वच्छ हो गई। (३) शरीर रूपी यह वनराय प्रेम के जल से सिंचित होकर हरा-भरा हो गया। (४) "अंतरि भीगी आत्मा" तात्पर्य है अतस (या मन) तथा आत्मा दोनो प्रेम के बादल से आर्द्र हो गये।

शब्दार्थ--परि = पर। बरष्या = बरसा। अंतरि = अंतर। भई = हुई। बनराइ = बनराय।

> पूरे सूँ परचा भया, सब दुःख मेल्या दूरि।
> निर्मल कीन्ही आत्मा, ताथै सदा हजूर ॥३५॥

सन्दर्भ—सतगुरु की कृपा से, उसके आशीर्वाद से पूर्ण ब्रह्म से परिचय प्राप्त हो गया और भव सागर के समस्त ताप दूर हो गए। सर्वात्मा से मिल कर यह आत्मा विशुद्ध हो गई।

भावार्थ—पूर्ण ब्रह्म से परिचय हुआ और सब दुख दूर हो गये। आत्मा निर्मल हो गई और प्रभु (या ब्रह्म) मे संलग्न हो गई।

विशेष--(१) उपनिषदो मे ब्रह्म को पूर्ण अभिव्यक्त करते हुए कहा गया है "पूर्णमदः पूर्णमिदः पूर्णात्पूर्ण मदुच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।" उपनिषदो के उसी पूर्ण भाव को कबीर ने यहाँ ग्रहण करके उस ईश्वर को 'पूरा' कहा है। "एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।" उस पूर्ण ब्रह्म से परिचय हो जाने के अनन्तर समस्त दुख दूर हो गये। निर्गुण, निराकार, निर्विकार ब्रह्म से साक्षात्कार होते ही आत्मा विशुद्ध हो गई। मलीन शरीर, काम क्रोधादि मे अनुरक्त शरीर मलीन हो गया था, सो अब पवित्र हो गई।

शब्दार्थ--सूं = से। परचा = परिचय। मेना = फेंका। दूरि = दूर। हजूरि = हुजूर = स्वामी।

२. सुमिरन कौ अंग

> कबीर कहता जात हूँ, सुणता है सब कोइ।
> राम कहें भला होइगा, नहिं तर भला न होइ ॥१॥

सन्दर्भ—राम नाम कल्याण का अक्षय स्रोत है। उसके अभाव मे मानव का भला या कल्याण नहीं होगा। नाम समस्त विकारों के लिए औषधि है।

भावार्थ--कबीरदास कहते है कि मैं यह बराबर कहता जा रहा हूँ और सब मेरा कथन सुनते जा रहे है। राम कहने से, जपने से ही कल्याण होगा। अन्यथा कल्याण नही होगा।

विशेष—"कबीर······हूँ" से तात्पर्य है कि कबीर अनुभव तथा दृढ विश्वास को प्रकट कर रहा है। (२) सुणता है······कोई = से तात्पर्य है सब मेरे कथन को सुन रहा है। (३) राम······होई = राम नाम जप ही कल्याण का स्रोत है। उनके अभाव मे माया के विकार अपना प्रभाव प्रसारित करते जायेंगे।

शब्दार्थ--सुणता = सुनता। तर = तो। भला = कल्याण।

कबीर कहै मैं कथि गया, कथि गया ब्रह्म महेस।
राम नाँव ततसार है, सब काहू उपदेश ॥२॥

सन्दर्भ--विगत साखी मे कबीर ने कहा है "कबीर कहता जात हूँ सुणता है सब कोइ।" यहाँ पर कबीर ने उसी भाव को पुनः व्यक्त किया है कि जो मैं कह रहा हूँ वह परम्परागत या सनातन सत्य है। वह सत्य ब्रह्मा और महेश द्वारा भी समर्पित है। संसार मे राम नाम ही तत्व सार है।

भावार्थ--कबीर कहते हैं कि मैं यह कह चुका हूँ और यही मेरा सब को उपदेश है कि संसार मे राम नाम ही तत्व और सार वस्तु हैं। यही ब्रह्मा और महेश का भी कथन है।

विशेष—प्रस्तुत साखी मे कवि ने परम्परागत चिर समर्थित सत्य की अभिव्यक्ति की है। कबीर नाम के महत्व के सम्बन्ध मे परम्परागत सत्य को प्रकट करते हुए उसके महत्व को उपदेश के रूप मे व्यक्त करते हैं। राम नाम समस्त साधना का तत्व और सार है।

(२) सत दरिया ने भी इसकी प्रस्तुत विशेषता की ओर संकेत करते हुए कहा है "राम नाम निजु सार है।" कबीर दास दरिया के शब्दो का समर्थन करते हुए कहते हैं "नाम सरोवर सार है सोह सुरत लगाय"।

शब्दार्थ -कथि = कहि। नाँव = नाम। तत = तत्व। काहू = को। कहै = कहता है।

तत तिलक तिहुँ लोक मैं, राम नाँव निज सार।
जन कबीर मस्तक दिया, सोभा अधिक अपार ॥३॥

सन्दर्भ--संसार मे राम नाम समस्त साधना का तत्व है। बारम्बार कबीर ने इसी भाव पर बल दिया है। जीवन और व्यक्तित्व नाम के सम्पर्क से और भी अधिक सुशोभित हो गया।

भावार्थ—तीनो लोको मे राम नाम सार तत्व है। जब से कबीरदास ने उसे अपने मस्तक पर धारण किया है, तब से अपार शोभा से युक्त हो गया।

विशेष--प्रस्तुत साखी मे कबीर ने राम नाम की दो विशेषताओ का उल्लेख किये हैं। प्रथम, राम नाम तत्व और सार है। द्वितीय वह तिलक के रूप मे मस्तक पर धारण करने से व्यक्तित्व की शोभा अभिवृद्ध हो जाती है।

शब्दार्थ—तिहुँ = तीनो। मैं = मे। नाव = नाम। सोभा = शोभा।

भगति भजन हरि नाँव है, दूजा दुक्ख अपार।
मनसा बाचा क्रमनां, कबीर सुमिरण सार ॥४॥

सन्दर्भ--संसार दुःख का सजीव और सक्रिय रूप है। यहाँ हरि नाम स्मरण के अतिरिक्त और है ही क्या? विगत साखी मे कबीर ने राम नाम को सार, तत्व, तिलक तथा शोभा का आधार माना है। प्रस्तुत अग की द्वितीय साखी मे भी कबीर ने कहा है "राम नाव ततसार है।" ऐसे महत्वपूर्ण राम नाम का ध्यान मनसा, वाचा, कर्मणा करना ही दुःख के आगार को विध्वस करना है।

भावार्थ—ईश्वर का भक्ति और नाम स्मरण पर भजन ही सार तत्व है और सब अपार दुःख का आधार है। कबीर का मत है कि हरि का नाम मनसा, वाचा और कर्मणा स्मरण करना सार है।

विशेष—(१) भगति······है: से तात्पर्य है कि भक्ति और हरि के नाम का भजन ही सार तत्व है। (२) दूजा······अपार भक्ति और हरि नाम स्मरण के अतिरिक्त सब कुछ अपार दुःख का अपार माया है। (३) जिस हरि नाम का इतना महत्व है, जो 'ततसार' है, जो मुक्ति और भक्ति प्रदान कराने वाला है, उसकी साधना मनसा, वाचा कर्मणा होनी चाहिए। (४) "मनसा वाचा क्रमना।" से तात्पर्य है समस्त चेतना के साथ, निष्ठा और एकाग्रता के साथ, वाणी-वचन, मन तथा क्रियात्मक रूप मे अथवा हर प्रकार से। (५) कबीर······सार = स्मरण या हरि का भजन सार तत्व है, समस्त साधना का साराश है। (६) सुन्दर दास ने कबीर के प्रस्तुत भाव का समर्थन करते हुए कहा है "नाम लिया तिन सब किया सुन्दर जप तप नेम। तीरथ अटन समान व्रत तुला बैठि दत्त हेम।"

शब्दार्थ-भगति = भक्ति। नाँव = नाम। दुक्ख = दुःख। क्रमना = कर्मणा।

कबीर सुमिरण सार है, और सकल जंजाल।
आदि अंति सब सोधिया, दूजा देखौं काल ॥५॥

सन्दर्भ—कबीर का मत है कि नाम-जप ही समस्त साधना का सार है। इसके अतिरिक्त समस्त साधनाएं जंजाल है। विगत साखी मे कबीर ने कहा है

"भगति भजन हरि नाँव है, दूजा दुक्ख अपार ।" उसी भाव को अधिक विस्तार के साथ यहाँ व्यक्त करते हुए कबीर ने पूर्व भाव पर बल दिया है ।

भावार्थ—कबीर कहते हैं कि नाम स्मरण ही समस्त साधना का सार-तत्व है । नाम-जप के अतिरिक्त समस्त साधना जंजाल है । मैंने आद्योपांत समस्त साधनाओं को शोधा (देखा) लिया, नाम के अतिरिक्त सब काल है, विनाशकारी है ।

विशेष— (१) सुमिरण सार है—समस्त साधनाओं का सार तत्व । नाम स्मरण समस्त साधना का सारांश है । सुन्दर दास का भी मत है कि "सकल सिरोमनि नाम है, सब धरमन के माँहि । अनन्य भक्ति वह जानिये, सुमिरन भूलै नाहि ।" (२) "और सकल जजाल" नाम जप के अतिरिक्त और सब जंजाल है, माया है, बाह्याचार है ।" (३) आदि······सोधिया" से तात्पर्य है आद्योपान्त सब कुछ सब साधना का मूल्यांकन किया । (४) "दूजा······काल" नाम के अतिरिक्त सब काल या विनाशकारी है ।

शब्दार्थ— सोधिया = शोधा । दूजा = दूसरा । काल = विनाशकारी ।

चिंता तौ हरि नाँव की, और न चिंता दास ।
जे कुछ चितवैं राम बिन, सोइ काल की पास ॥६॥

सन्दर्भ—विगत साखी की द्वितीय पंक्ति मे कबीर ने राम नाम की महिमा का उल्लेख करते हुए कहा है "आदि अन्त सब सोधिया, दूजा देखौं काल" प्रस्तुत साखी मे कबीर ने उसी भाव को दूसरे शब्दो मे व्यक्त करते हुए कहा है "जे कछु चितवै रामबिन, सोई काल की पास ।" सच्चे साधक को हरिनाम की चिन्ता रहती है । हरिनाम के अतिरिक्त जो कुछ अन्य है वह काल या विनाशकारी है ।

भावार्थ—हरिभक्त या हरि के दास को एक मात्र चिन्ता हरिनाम या नाम जप की रहती है । इसके अतिरिक्त उसे और कोई चिन्ता नही रहती है । राम के अतिरिक्त और जो कुछ देखा या चिन्तन किया जाता है वह काल या पाश या विनाश का कारण है ।

विशेष—(१) प्रस्तुत साखी मे कबीर ने हरि के नाम के साधक की निष्ठा तथा लगन की ओर संकेत किया है हरिदास एकाग्रता के साथ, निष्ठा के साथ हरि का चिन्तन करता है । (२) राम के नाम या राम की स्थिति से विहीन जो कुछ है, वह सब विनाश या माया है । (३) 'नारद पुराण' में भी इसी प्रकार उल्लेख हुआ है "हरे र्नाम हरे र्नाम, हरे र्नामैव केवलम् । कलौ नास्त्येव नास्त्येव, नास्त्येव गतिरन्यथा ।" (४/४१/११५) ।

शब्दार्थ- च्यंता = चिन्ता। नाँव = नाम। चितवै = देखे। पास = पाश।

पंच संगी पिव पिव करैं, छठा जु सुमिरै मन।
आई सूति कबीर की, पाया राम, रतन ॥७॥

प्रसंग—प्रस्तुत परिच्छेद की चतुर्थ साखी मे सासारिक प्राणियो को उपदेश देते हुए कबीर ने कहा है 'मनसा वाचा क्रमना, कबीर सुमिरण सार।" और प्रस्तुत साखी मे कबीर की पंच ज्ञानेन्द्रिया और मन पूर्णतया पर ब्रह्म मे अनुरक्त हो गया है प्रस्तुत परिच्छेद मे कबीर ने नाम की महत्ता का अनेक बार महत्त्व वर्णन किया है। "राम नाँव ततसार है," "राम कहे भल होइगा," "राम नाँव निज सार," "कबीर सुमिरण सार है" आदि महत्व को हृदयगम कर लेने के अनन्तर कबीर सूति प्राप्त हुई और उसे राम रतन की प्राप्ति हुई।

भावार्थ- पंच ज्ञानेन्द्रियाँ एवं मन राम नाम का स्मरण सतत् रूप से कर रहा है। कबीर को समाधि अवस्था मे रामरत्न सम्प्राप्त हुआ।

विशेष—प्रस्तुत साखी मे कबीर ने अपनी उस निष्ठा और एकाग्रता का उल्लेख किया है जिसको सामान्य रूप से स्पृहा प्रत्येक साधक प्राणी को होता है। रहस्यवादी के लिए जीवन क्षण धन्य होता है जब वह मनसा, वाचा कर्मणा ब्रह्म और साधना मे प्रवृत्त हो जाता है उसकी समस्त इन्द्रियाँ ब्रह्म के प्रति उन्मुख होकर, ब्रह्माकार बनने की चेष्टा मे अनुरक्त हो जाती है। (२) समाधि की अवस्था मे कबीर को ब्रह्मानुभूति प्राप्त हुई जो साधक की चरम उपलब्धि होती है।

शब्दार्थ = पंच संगी = पंच ज्ञानेन्द्रिय। पिव = प्रिय = ब्रह्म। सूति = समाधि। रतन = रत्न।

मेरा मन सुमिरै राम कूँ, मेरा मन रामहिं आहि।
अब मन रामहिं ह्वै रह्या, सीस नवावौं काहि ॥८॥

सन्दर्भ समाधि मे ब्रह्म का दर्शन प्राप्त कर लेने पर आत्मा ब्रह्माकार हो जाती है। जब आत्मा परमात्मा मे समाहित हो गई, सब भेद समाप्त होगए, और माया जनित भेद के विनष्ट हो जाने से उभय एक हो गए तो कौन किसकी आराधना करे और कौन किसकी उपासना ?

भावार्थ--राम का स्मरण करते-करते मेरा मन राममय (या स्वयं राम) हो गया है। अब मन स्वयं राम हो गया तो किसके प्रति शीश झुकाये।

विशेष—(१) प्रस्तुत साखी मे कवि ने साधक की साधना की उस अवस्था का उल्लेख किया है जब वह ब्रह्म का ध्यान करता-करता ब्रह्ममय हो जाता है। इसी

स्तर पर पहुँच कर कबीर ने कहा था कि "तू तू करता तू मय मुझ मे रही न हूँ। वारी फेरी वलि गई, जित देखौं तित तूं।" संत मलूकदास ने भी इसी प्रकार की अनुभूति हो जाने पर लिखा था "हम सवहिन के सबहि हमारे जीव जन्तु मोहिं लगे पियारे।" इस स्थिति का उद्भव तब होता है जब साधक की 'पच सगी पिव पिव करै, छठा जु सुमिरे-मंन।" इसी स्थिति मे कबीर ने कहा था "अब मन रामहिं ह्वै रह्या, सीस नवावौं काहि।" (२) "अब मन···काहि "उस परिस्थिति का सूचक है जव साधक अद्वेत ब्रह्म मे समाहित हो जाता है। (३) यहाँ पर सावक की उस अवस्था का वर्णन है जव वह आनन्दातिरेक मे उद्घोषित कर उठता है" शिवोऽहं। "अह ब्रह्मासि।"

शब्दार्थ--ह्वै = हो। रह्या = रहा। सीस = शीश।

तूँ तूँ करता तूँ भया, मुझमें रही न हूँ।
वारी फेरी वलि गई, जित देखौं तित तूँ।।६।।

सन्दर्भ--विगत साखी मे कवि ने उस परिस्थिति का वर्णन किया है, जब साधक ब्रह्माराधना करता-करता या नाम जप मे इतना अधिक अनुरक्त हो जाता है कि वह ब्रह्ममय या ब्रह्माकार हो जाता है। आत्मा और परमात्मा के मध्य मायाकृत भेद विलीन हो जाता है। प्रस्तुत साखी मे उसी भाव को किंचित अधिक विस्तार और स्पष्टता मे साथ अंकित किया गया है।

भावार्थ—तेरा ध्यान करते-करते मैं 'तू' ही हो गया। मुझमे मेरा पार्थक्य अह या व्यक्तित्व की भिन्नता शेष नही रह गई। (फलतः) मेरा वारम्वार का आवागमन विनष्ट हो गया। अब तो जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है।

विशेष--कबीर की एक वड़ी ही प्रसिद्ध साखी है "लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल। लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल।" प्रस्तुत साखी मैं तू तू करता तूभया का भाव बड़े ही माधुर्य पूर्ण शब्दो मे, सरल शैली मे व्यक्त कर दिया गया है। कबीर की उभय साखियो मे भाव साम्य है, पर शब्दो की भिन्नता। (२) मुझ···हूँ ने तात्पर्य है कि मेरा अह, मेरी पार्थक्य की भावना का लोप हो गया। (३) वारी फेरी···गई से तात्पर्य है कि मेरा आवागमन समाप्त हो गया।

शब्दार्थ—तूं = तुम = राम। हूँ = अह। वारी = आवागमन। फेरी = फिर गया, समाप्त हो गया। जित = जिधर। तिन = उधर।

कबीर निरभै रामजपि, जब लग दीवै बाति।
तेल घट्या बाती बुझी, (तब) सोवेगा दिन राति।।१०।।

सन्दर्भ—"गुरुदेव कौ अंग" की तेइसवीं साखी में कवि ने कहा है "चेतनि चौकी बैठिकरि, सतगुरु दीन्हाँ धीर। निरभै होइ निसंक भजि केवल कहै कबीर।" प्रस्तुत साखी में कवि ने पुनः निसंक और "निरभै" होकर राम का जप करने का उपदेश दिया है। मानव का जब तक जीवन दीपक जल रहा है, तब तक मानव को नाम जप करना चाहिए।

भावार्थ—कबीरदास का कथन है कि जब तक दीपक में बत्ती है तब तक निर्भय होकर राम का जप कर। तेल के निःशेष हो जाने पर बत्ती बुझ जायगी और तू पाँव पसार कर दिनरात सोयेगा।

विशेष—प्रस्तुत साखी में कवि ने निर्भय होकर ब्रह्म नाम जप का उपदेश दिया है। यह उपदेश कवि ने एक बड़ी ही सरल तथा स्वाभाविक अप्रस्तुत योजना के माध्यम से व्यक्त की है। शरीर रूपी में प्राणरूपी वर्तिका है और सामर्थ्य रूपी तेल विद्यमान है इस वर्तिका और तेल के घट जाने पर मानव मृत्यु को प्राप्त हो जाता है और वह अनन्त काल तक सोता रहता है। (२) शरीर से आत्मा के विलग हो जाने पर शरीर निश्चेष्ट हो जाता। जड़ शरीर के माध्यम से धर्म साधना असम्भव हो जाती है। इसीलिए कवि ने यहाँ पर जीवन रहते-रहते साधन करने के लिए उपदेश दिया है। (३) "(तब) सोवेगा दिन राति" का तात्पर्य यह है कि मृत्यु को प्राप्त होगा। (४) निरक्षर कबीर की अप्रस्तुत योजना कितनी यथार्थ और प्रभावशाली है, यह प्रस्तुत साखी से स्पष्ट हो जायगा।

शब्दार्थ—निरभै = निर्भय। जपि = जप। लग = तक। दीवै = दीपक में बाति = बत्ती = वर्तिका। घटना = घटा। राती = रात

कबीर सूता क्या करे, जागि न जपै मुरारि।
एक दिनां भी सोवणां, लंबे पाँव पसारि ॥१२॥

सन्दर्भ—विगत साखी में कवि ने कहा कि "तेल घटया बाती बुझी, (तब) सोवेगा दिन राति।" कर्तव्य और साधना से विमुख प्राणियों को चेतावनी प्रदान करते हुए कवि ने पुन. जाग्रत होकर नाम साधना के लिए मानव समाज को अनुप्राणित करने की चेष्टा की है।

भावार्थ—कबीरदास कहते हैं कि हे प्राणी सोया हुआ तू क्या कर रहा है। जाग्रत होकर भगवान के नाम का स्मरण क्यों नहीं करता है। अन्ततोगत्वा एक दिन तो लम्बे पैर पसार कर तुझे सोना ही है।

विशेष—(१) प्रस्तुत साखी में कबीर ने अज्ञान निद्रा में प्रसुप्त प्राणियों को सचेत करते हुए कहा है जीवन के व्यर्थ में सोने और माया को [illegible]

परिस्थितियो से दूर रहकर नाम साधन के लिए उपदेश दिया है। (२) "सूता" से तात्पर्य है अज्ञान निशा मे कर्तव्य की ओर से विमुख या प्रसुप्त। (३) जागो से तात्पर्य है सचेत होकर। (४) एक दिन से तात्पर्य है अन्ततोगत्वा। (५) "भी" का तात्पर्य तो।" (६) "सोवणा" से कवि का आशा है मृत्यु को प्राप्त होना। (७) लवे···पसारि से तात्पर्य है पैर फैला कर। "लंबे पाँव पसारि" का प्रयोग कवि ने कहावत के रूप मे किया है। अशिक्षित कबीर ने प्रस्तुत कहावत का प्रयोग वडे ही यथार्थ और स्वाभाविक शैली मे किया है।

शब्दार्थ—सूता = सोता = सुप्त। दिना = दिना = दिन। सोवणा = सोवना = सोना। पसारि = पसार फैलाकर।

> कबीर सूता क्या करै, काहे न देखै जागि।
> जाका संग तैं बीछुड़्या, ताही के संग लागि॥ १२॥

सन्दर्भ—कवीर ने प्रस्तुत परिच्छेद की दशम साखी मे कहा है "कबीर निरभै राम जी, जब लग दीवै वाति। तेल घटया बाती बुझी, (तव) सोवेगा दिन राति।" "सोवेगा दिन राति" चेतावनी प्रस्तुत करने के वाद प्रस्तुत साखी मे कवि ने अज्ञान निशा मे प्रसुप्त, माया मे सलग्न मानव को कर्तव्य पथ से विमुख प्राणी से जाग्रत होकर कर्तव्य पथ को देखने का आग्रह किया है।

भावार्थ—कबीर कहते हैं कि प्रणी! तू सोया हुआ क्या कर रहा है। जाग्रत होकर क्यो नही देखता है। जिसके साहचर्य ऐ तू विमुक्त हुआ है, उसी के सग पुनः जा लग।

विशेष—(१) प्रस्तुत साखी मे कवि ने कर्तव्य एवं नाम जप से विमुख निद्रा से अभिभूत है प्राणियो को ज्ञान के नेत्र उद्घाटित करने के लिए आग्रह पूर्ण उपदेश दिया है। (२) 'सूता' से तात्पर्य है अज्ञान निशा मे, माया से परिवेष्ठित सोया हुआ था। चेतनाविहीन यहाँ 'सूता' शब्द का प्रयोग चेतनाविहीन या निश्चेष्ठ के लिए अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। (३) 'काहे न जागि' से तात्पर्य है कि प्रबुद्ध होकर ज्ञान के नेत्रो से या सचेत होकर क्यो नहीं विवेक पूर्ण कार्य मे सलग्न होता है। (४) जाका·· बीछुडया' से तात्पर्य है कि जिसके सम्पर्क से तू वियुक्त हुआ है। आत्मा परमात्मा से विमुक्त हो कर माया के द्वारा पथ-भ्रष्ट कर दी गई है। इसी भाव की अभिव्यक्ति एक साखी मे कबीर ने कहा है 'पूत पियारो पिता कौं गौंहनि लागा धाइ। लोभ मिठाई हाथि दे, अपण गया भुलाई।' माया रूपी मिठाई पाकर आत्मारूपी बालक अपने पिता को बिसर गया। (५) 'ताही के संग लागि' से तात्पर्य है कि उसी ब्रह्म के साथ लगकर एकाकार हो जा। एक साखी

मे इसी स्थिति का वर्णन करते हुए कबीर ने कहा है 'पानी ही थैं हिम भया हिम ह्वै गया विलाय। जो कुछ था सोई भया अब कछु कहा न जाय।'

शब्दार्थ—सूता = सोता = सोया = सुप्त । जागि = जागकर । जाका = जिसका । तै = तें । बिछुड्या = बिछुड़ा । ताही = उसी लागि = लाग = लग ।

कबीर सूता क्या करै, उठि न रोवै दुक्ख।
जाका बासा गोर मैं, सो क्यूँ सोवै सुक्ख ॥ १३ ॥

सन्दर्भ—नाम-जप से विमुख प्राणी को सचेत करते हुए कवि ने विगत साखी मे कहा है कि 'कबीर सूता क्या करै काहे न देखै जागि' तथा 'कबीर सूता क्या करै जागि न जपै मुरारि।' परन्तु यहाँ पर कवि ने कहा है 'उठि न रोवै दुक्ख।' जिसका कदम कब्र मे रखा है, वह सुख से कैसे सो सकता है।

भावार्थ—कबीर दास कहते हैं कि हे प्राणी ! तू अज्ञान निशा मे पड़ा हुआ क्यो सो रहा है। तू उठकर अपने प्रिय के वियोग मे जो दु.ख का अनुभव हो रहा है उसके प्रति क्यो नही खेद प्रकट करता। जिसका निवास स्थान कब्र है, वह सुख पूर्वक कैसे सोता है।

विशेष—विगत साखी मे कबीर ने कहा है 'जाकि सग तै बिछुड्या ताही के संग लागि।' प्रियतम से वियुक्त मानव को अपने दु.खो के प्रति खेद प्रकट करना चाहिए। प्रियतम से वियोग होने का दु.ख स्वतः महान विपत्ति है। परन्तु मानव उस दुख को भूलकर माया के आवरण मे अनुरक्त रहता है। लोभ की मिठाई के पाते ही वह अपने आप को भूल जाता है। कबीर इस प्रकार से अज्ञान निशा मे आत्म विस्मृत प्राणियो को सचेत करते हुए कर्तव्य पूर्ति की ओर उन्मुख रहने का उपदेश दिया है। (२) 'जाका''सुक्ख' से कबीर का तात्पर्य है कि जो मरणशील है, जिसका निवास स्थान कब्र है, वह सुख पूर्वक क्यो कर सो सकता है।

शब्दार्थ—बासा = निवास स्थान । गोर = कब्र । मैं = मे । क्यूं = क्यो ।

कबीर सूता क्या करै; गुण गोविन्द के गाइ।
तेरे सिर परि जम खड़ा, खरच करे का खाइ ॥ १४ ॥

सन्दर्भ—प्रस्तुत साखी मे कबीर ने साधन से विमुख प्राणियो को चेतावनी देते हुए यम का स्मरण दिलाया है जो किसी भी दशा मे किसी प्राणी को नहीं छोड़ता है, और सब पर काल का प्रहार करता है।

भावार्थ—कबीर कहते हैं कि हे प्राणी ! तू अज्ञान की निद्रा मे पड़ा क्या कर रहा है। यम तेरे सिर पर खड़ा है। तेरे संहार वह करने को तुला है।

विशेष—गोविन्द के गुणो का गान करना जीवन का परम पुण्य है। कबीर ने विगत साखियो मे सततरूप से सचेत होकर साधन मे रत रहने का उपदेश दिया है। कवि कभी कहता है 'जाका वासा गोर मैं सो क्यू सोवै सुक्ख,' और कभी वह कहता है 'एक दिन' भी सोवणा लबे पाव पसारि।' उसी विचार परम्परा मे वह कवि पुन: यहा पर कहता है कि 'तेरे सिर परि जम खडा खरच करे का खाइ।' (२) 'खरच करे का खाइ' मे कवि ने महाजन और कर्जदार का रूपक प्रस्तुत किया है। (३) इसी प्रकार का भाव कबीर ने एक अन्य साखी मे व्यक्त किया है" 'काल सिहरणैं यो खडा जागि पियारे म्यंत' तथा 'काल खडा सिर ऊपरैं ज्यू तोरणि आया बीदं (काल-कौ अंग)। (४) सत्य यह है कि 'जाका वासा गोर मे, सो क्यू सोवै सुक्ख।' (५) प्रस्तुत साखी मे अशिक्षित कबीर की अप्रस्तुत योजना की यथार्थता तथा सहजता दर्शनीय है।

शब्दार्थ—गाइ = गा = गान कर। परि = पर। जम = यम। खरचा = खर्च व्यय करे। खाइ = खाया है।

> कबीर सूता क्या करैं, सूताँ होइ अकाज।
> ब्रह्मा का आसण खिस्या, सुणत काल की गाज॥ १५॥

सन्दर्भ—काल का नाम सुनते ही जगत नियंता ब्रह्मा तक विचलित हो उठे इतना जानते रहने पर भी मानव ब्रह्म की आराधना से विमुख होकर भी अज्ञान निद्रा मे गाफिल पडा रहता है।

भावार्थ—कबीर कहते हैं कि हे प्राणी! तू सोता हुआ क्या कर रहा है। सोते रहने से बडा अहित होता है। काल की गर्जना सुनकर ब्रह्मा का आसन विचलित हो गया।

विशेष—प्रस्तुत साखी मे कवि ने काल की प्रबलता और मानव की निष्क्रियता का उल्लेख बडी सहजशैली मे किया है। (२) मानव काल की प्रबलता से परिचित होने पर भी ब्रह्मनाथ की साधन से विमुख रहता है और अज्ञान निद्रा मे सुप्त रहता है। (३) इसीलिए कवि ने पीछे कहा है कि "भगति भजन हरि नाँव है, दूजा दु:ख अपार। (४) प्रस्तुत साखी मे कवि ने नाम महिमा के साथ ही साथ काल की प्रबलता तथा मृत्यु की अनिवार्य स्थिति का उल्लेख किया है।

शब्दार्थ—सूता = सुप्त। अकाज = अहित। आसण = आसन। खिस्या = खिसका, सरका। सुणत = सुनत, सुनते ही। गाज = गर्जन।

> केसौ कहि कहि कूकिये, ना सोंइये असरार।
> रात दिवस कैं कूकणौं, (मन) कबहूँ लागै पुकार॥ १६॥

सन्दर्भ—प्रस्तुत साखी मे कवि नाम जप के महत्व को उल्लेख करता है। उसका आग्रह पूर्ण अभिमत है कि अज्ञान निशा मे सोने से कोई लाभ नही है। रात दिन नाम-जप करने का प्रतिफल यह हो सकता है कि ब्रह्म तक कभी न कभी तो प्रार्थना पहुँच ही जायगी।

भावार्थ—केशव का नाम उच्चरित करते रहिए। इतना आग्रह है कि अज्ञान-निद्रा मे मत सोइए। दिन-रात के नाम जप से कभी न कभी तो पुकार सुनी ही जायगी।

विशेष—(१) सुमिरण कौ अग की अन्य सखियो के वर्ण्य विषय की तुलना मे प्रस्तुत साखी के वर्ण्य-विषय मे विशिष्ठता और अभिनवता है। कवि ने यहाँ मानव-समाज से विशेष प्रकार का इसरार (आग्रह) किया है। आग्रह इस बात का है कि "ना सोइए" तथा 'रात दिवस कै कूकणौ (मन) कबहूँ लगै पुकार।' (२) प्रस्तुत साखी मे कवि के मस्तिष्क की स्थिरता तथा दृढता के भाव के साथ ही साथ अनन्य विश्वास तथा भरोसा का भाव प्रतिबिम्बित होता है। कवि की आशावादी विचारधारा भी "कबहूँ लगै पुकार" से प्रतिभासित होती है।

शब्दार्थ—केसौ = केशव। कूकिये = आनन्द से भरे स्वर मे पुकारिए। सोइयै = सोइए। असरार = इसरार—आग्रह। कूकणौ = कूकने से। पुकार = अर्ज, प्रार्थना। कबहूँ = कभी तो।

> जिहि घटि प्रीति न प्रेम रस, फुनि रसना नहिं राम।
> ते नर इस संसार में, उपजि पये बेकाम॥ १७॥

सन्दर्भ—राम-नाम का महत्व अकथनी, अवर्णनीय, अनिर्वचनीय, तथा दिव्य है। कबीर ने विगत प्रसगो मे लिखा है कि "राम नाव ततसार है ... राम कहे भला होइगा, नहि तर भला न होइ ....भगति भजन हरि नाव है ... प्रस्तुत साखी मे कवि ने कहा है कि प्रेम, प्रीति तथा रामनाम के महत्वपूर्ण मन्त्र से विहीन मानव का इस ससार मे अवतरित होना और पचतत्व को प्राप्त होना सब बराबर है।

भावार्थ—जिन प्राणियो के घट या शरीर मे न प्रीति है न प्रेम रस और न जिह्वा पर राम नाम है। वे नर इस ससार मे उत्पन्न होकर भी व्यर्थ ही नष्ट हो गए।

विशेष—(१) प्रस्तुत साखी की प्रथम पक्ति बड़ी महत्वपूर्ण है। इस पक्ति मे कवि ने दो सारपूर्ण तत्वो की अभिव्यजना की है—(क) "जिहि घटि प्रीति न प्रेम रस" (ख) "फुनि रसना नहि राम।" कबीर की दृष्टि मे मानव के शरीर सार्थ-

कता तभी है, जब वह प्रेम या प्रीति रस मे ओत-प्रोत हो। वही जीवन धन्य है जो ब्रह्म के रग मे अनुरंजित हो। इतना भी न हो, तो, जिस जिह्वा रामनाम रस से सिंचित अवश्य होनी चाहिए। परन्तु जिनके व्यक्तित्व मे उभय तत्वो का अभाव हो, उनका संसार मे उत्पन्न होना व्यर्थ है। (२) प्रस्तुत साखी मे कवि ने जीवन की सार्थकता का मूल्याकन स्पष्ट शब्दो मे किया है।

शब्दार्थ--फुनि=पुनि पुनः। रसना=जिह्वा। उपजि=उत्पन्न हो कर। पये=क्षय को प्राप्त हुए। बेकाम=व्यर्थ।

कबीर प्रेम न चषिया, चषि न लीया साव।
सूने घर का पहुणां, ज्यूँ आया त्यूँ जाव ॥१८॥

सन्दर्भ—अत्यन्त रोचक एवं सुन्दर अप्रस्तुत योजना से सम्पन्न प्रस्तुत साखी मे कबीर ने प्रेम तथा प्रेम के मधुर स्वाद का उल्लेख किया है। जिन्हे यह महत्वपूर्ण अनुभव तथा सौभाग्यपूर्ण परिस्थिति का आनन्द नही मिला, उन अभागो का इस संसार मे आना उसी प्रकार अर्थ विहीन है यथा सूने गृह मे अतिथि का आगमन प्रयोजन रहित होता है।

भावार्थ—कबीर का कथन है कि जिन प्राणियो ने प्रेम का आस्वादन नहीं किया और आस्वादन करके उसके आनन्द का अनुभव नही किया है। उनका इस ससार मे जन्म लेना उसी प्रकार है यथा सूने घर मे पाहुन का आगमन निःसार होना है।

विशेष - (१) यथा शून्य मंदिर मे अतिथि के आगमन पर न कोई स्वागत कर सकता है न उसके विदा के क्षणो मे ममत्व पूर्ण अश्रु-प्रवाह कर सकता है, न कोई स्नेह दे सकता है, न आशा ही कर सकता है, उसी प्रकार है वह प्राणी जिसने ब्रह्म से प्रेम नही किया और प्रेम या भक्ति मे आनन्द का अनुभव नही किया। (२) 'ज्यूं······जाव" से तात्पर्य है यथा खाली हाथ आया है उसी प्रकार उप-लब्धि विहीन होकर वह जायगा। अर्थात् उसका संसार मे उत्पन्न होना व्यर्थ ही है।

शब्दार्थ—चषिया=चाखिया=आस्वादन किया। लीया=लिया। साव-स्वाद। पाहुणा=पाहुना-अतिथि। ज्यूं=ज्यो। त्यूं=त्यो। जाव=जाय।

पहली बुरा कमाइ करि, बाँधी विष की पोट।
कोटि करम पेलै पलक मैं (जब) आया हरि ओट ॥१९॥

सन्दर्भ--कबीर का कर्मवाद तथा पुर्नजन्म मे दृढ विश्वास है। कर्म का प्रतिफल मानव को उपभोग करना ही पडता है। दुष्कर्मों के दुष्प्रभाव का उन्मूलन करने के लिए हरि की शरण मे जाना ही अपेक्षित हरि की शरण मे भव की एक भी बाधा नही रह जाती है। प्रस्तुत साखी मे कवि ने इसी भाव को रोचक शैली मे व्यक्त किया है।

भावार्थ—पहले बुरे कर्मों को अर्जित करके विष की पोटली बाँधी। हरि की शरण मे आते ही कोटिशः दुष्कर्म पल मे क्षीण हो गए।

विशेष—(१) कबीर ने प्रस्तुत साखी मे अत्यन्त तर्कपूर्ण ढंग से, अभिनव शैली मे कर्म सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। मानव दुष्कर्मों के प्रभाव से विनाश कि पथ पर अग्रसर होकर माया का चेरा बन जाता है। परन्तु हरि की शरण मे जाने पर दुष्कर्मों के प्रभाव से विलम्बित हो जाते हैं। (२) कबीर ने कर्म के सिद्धान्तो का प्रतिपादन करते हुए उसकी औषधि हरिनाम साधना है। (३) कबीर ने 'पहली बुरा कमाइ करि'' शब्दो के द्वारा पूर्वजन्म की ओर सकेत किया है। पूर्वजन्म के साथ ही यहाँ कर्म सिद्धातो का प्रतिपादन किया गया है।

शब्दार्थ—कमाइ = कमाकर। करि = कर। बाँधी = संग्रह की। पोट = पोटली। करम = कर्म। पेलै = फेके, दूर करे। ओट = शरण।

> कोटि क्रम पेलै पलक मे, जे रंचक आवै नाउँ।
> अनेक जुग जे पुन्नि करै, नहीं राम बिन ठाउँ॥ २८॥

संदर्भ—नाम का माहात्म्य अत्यन्त दिव्य एव प्रभावशाली है। ब्रह्म के नाम का लेश मात्र भी ध्यान करने से समस्त दुष्कर्म विलीन हो जाते हैं। युगो तक कृत पुण्य राम-नाम के बिना नि सार है।

भावार्थ—कोटिशः दुष्कर्म क्षणमात्र मे विनष्ट हो जाते हैं यदि लेशमात्र 'राम' नाम का स्मरण होता है। अनेक युगो तक पुण्य करते (मानव) को राम नाम के अभाव मे कही ठौर नही है।

विशेष—(१) प्रस्तुत साखी मे राम-नाम का विस्मरण करने वाले प्राणियो के दुर्भाग्य का मूल्यांकन किया गया है। रामनाम के बिना समस्त साधन और जप तप व्यर्थ ही नही निस्सार भी है। अनेक युग तक पुण्य करने से प्रत्येक मानव की साधना अपूर्ण एव अपरिपक्व है यदि रामनाम की साधना उसने नहीं की है। (२) रामनाम के साधना के बिना संसार मे कहीं ठौर नहीं है। कबीर ने राम नाम का महत्व इस बात से अंकित किया है कि इस विशाल संसार मे रामनाम से विहूर

प्राणी के लिए कोई अवकाश नही है। (३) कोटि क्रम मे से कबीर का तात्पर्य यह है कि अनेक दुष्कर्म क्षण मे नष्ट हो जाते हैं, प्रभावहीन हो जाते हैं।

शब्दार्थ—क्रम = कर्म। दुष्कर्म = पेलै = नष्ट कर दें। पलक-क्षण। रंचक = लेशमात्र भी। नाउं = नाम। जुग = युग। पुन्नि = पुन्न = पुण्य। ठाउं = ठाँव- स्थान

जिहि हरि जैसा जाँणियाँ, तिन कूँ तैसा लाभ।
ओसों प्यास न भाजई जब लग धसै न आभ॥

सन्दर्भ--कबीर ने प्रस्तुत साखी मे कहा है कि साधक की हरि के प्रति जैसी भावना होती है, उसी प्रकार सिद्धि उसे सम्प्राप्त होती है। केवल अभिलाषा करने मात्र से उपलब्धि नही होती है' सन्तुष्ट होती यथार्थ रूप मे उपलब्धि हो जाने पर।

भावार्थ—हरि को जिसने जिस रूप मे जाना उसको उसी रूप मे लाभ होता हैं। ओस से प्यासे या पिपासा नही दूर होती। जब तक पानी नही प्रवेश करता तब तक पिपासा कैसे शात होगी।

विशेष—कबीर ने प्रस्तुत साखी की प्रथम पक्ति मे यह भाव व्यक्त किया है कि हरि की साधना जिसने जिस भाव से की तदनुसार उसे सफलता प्राप्त होती है (२) कबीर की प्रस्तुत पक्ति पर संस्कृति की उक्ति यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशि का पूर्ण प्रभाव है (३) मानव के विश्वास ही वास्तविक रूप से फलदायक होते हैं। जैसा विश्वास होता है उसी प्रकार की प्राप्ति होती है। (४) ओसो प्यास न भाजई" से तात्पर्य है। माया रूपी ओस के चाटने से भौतिक ताप या लौकिक विषमताएं दूर नही होती है प्यास या अभाव या तृष्णा तभी दूर होती है जब ब्रह्मभक्ति या सतगुरु के उपदेश रूपी शीतल जल की प्राप्ति होती है। (५) तृष्णा का प्रभावमानव पर तभी तक अक्षुण्ण व्यापक रहते हैं जब तक भक्ति रूपी शीतलजल की प्राप्ति नही होती है।

शब्दार्थ--जिहि = जिसने। जाँणियाँ = जनियाँ—पहचाना। तिन = उन। कूं = को। ओसो = ओस से। भाजई = भागती है, दूर होती है। धसै = प्रवेश करे। आभ—जल।

राम पियारा छांड़ि करि, करै आन का जाप।
बेस्यां केरा पूत ज्यूँ, कहै कौन सूँ बाप॥२८॥

संदर्भ--प्रस्तुत साखी मे कवि ने राम-नाम के अनन्य या अद्वितीय महत्त्व की ओर संकेत किया है। राम नाम के जाप से विमुख, 'आनदेव' की उपासना मे

अनुरक्त मे मानव की स्थिति वेश्या के पुत्र जैसी है। वह किसे अपना पिता कहे ? इसी प्रकार वह देवोपासना मे अनुरक्त प्राणी किसे अपना प्रिय देव कहेगा ?

भावार्थ—प्रिय राम को छोड कर जो अन्य का जप करता हैं, वह वेश्या पुत्र के सदृश है जो अपने पिता को नही जानता है। यह किसे अपना पिता कहे ?

विशेष—(१) प्रस्तुत साखी का पाठ करते ही पाठक के मस्तिष्क पर कबीर अत्यधिक स्पष्ट वादिता तथा कटूलियो की छाप अंकित हो जाती है। "वेस्वा केरा पूत ज्यूं कहै कौन सूं वाप" पक्ति वास्तव मे कटुता तथा स्पष्ट वादिता से सम्पन्न होते हुए भी अत्यन्त यथार्थ तथा सत्य है। यथा वेश्या का पुत्र स्व पिता से अनिभिज्ञ होता है तथा वह देवोपासना मे अनुरक्त किसे अपने स्वामी, प्रभु और देवता मान सकता है। (२) राम पियारा 'तात्पय' है प्रियराम।' लौकिक जीवन मे जो स्वजन-परिजन प्रिय हैं उनसे भी प्रियतर, प्रियतम राम (३) "छांडि कर" से तात्पय' है उपेक्षा करके। (४) आन" का तात्पय' है अन्य। पर यहाँ पर उसका अभिप्राय हो "बहुदेव।" आन का प्रयोग 'माया या' माया जनित तत्वो की ओर भी है।

शब्दार्थ—पियारा = प्यारा, प्रिय। आन = अण्य। जाप = जप। वेस्वां = वेश्या। केरा = का। ज्यूं-ज्यो सू – से।

कबीर आपण राम कहि औरां राम कहाइ।
जिहि मुखि राम न ऊचरै, तिहि मुख फेरि कहाइ ॥२३॥

सन्दर्भ—राम नाम का माहात्म्य तथा गौरव वर्णनातीत है। कबीर ने तो रामनाम के अतिरिक्त अन्य समस्त साधना को अपार दुःख का द्वार माना है। "भगति भजन हरि नांव है, दूजा दुःख अपार।" अत. 'मनसा वाचा क्रमणा कबीर सुमिरण सार।" अतः कबीर स्वत; राम कहने और दूसरे से प्रयत्नपूर्वक राम कहलाने के पक्ष मे है।

भावार्थ—कबीर कहते हैं कि स्वतः राम कहिए और दूसरो से राम कह-लाइये। जिस के मुख से राम नाम का उच्चारण न हो उसके मुंह से पुन. (प्रयत्न) पूर्वक) नाम उच्चारण कराइये।

विशेष—प्रस्तुत साखी मे कबीर ने दूसरो मे राम नाम के प्रति अभिरुचि समुत्पन्न करने के सम्बन्ध मे उपदेश दिये है। "जिहि मुखि राम न ऊचरै" "कहाइ" इसी भाव की परि पुष्टि के लिए पर्याप्त है। जिस मुख से राम नाम का उच्चारण न हो उससे प्रयत्न पूर्वक नाम उच्चारण कराना चाहिए।

शब्दार्थ—आपसा = आपन = अपना । कहि = कह । औरा = औरो = अन्योसे । कहाइ = कहा, कहलाइये । जिहि = जिह = जिस । मुखि = मुख । ऊचरै = उच्चरै = उच्चारण हो । फेरि = पुनः ।

जैसें माया मन रमैं, यूं जे राम रमाइ ।
(तौ) तारा मंडल छाँड़ि करि, जहां केसो तहाँ जाइ ॥२४॥

सन्दर्भ--यथा मन माया मे रमना है, तथा यदि राम मे रम जाय तो मानव लौकिक और सासारिक सीमाओ का उल्लंघन करके ब्रह्म के साथ एकाकार हो जाय ।

भावार्थ—जिस प्रकार माया मे मन रमता है उसी प्रकार यदि राम मे रम जाय, तो लौकिक सीमाओ का अतिक्रमण करके मानव राम मे रम जाए ।

विशेष - प्रस्तुत साखी मे कवि ने राम नाम और राम के कल्याणकारी व्यक्तित्व का उल्लेख किया है । मनुष्य का मन यदि राम मे उसी प्रकार रम जाय यथा माया मे रमा हुआ है, तो वह ब्रह्म के साथ एकात्मकता संस्थापित कर सकता है । (२) "तारा मण्डल छाँडि करि" से तात्पर्य है लौकिक सीमाएं । लौकिक सीमाएं से तात्पर्य है ससार की सीमा । (३) "जहाँ केसो तहाँ जाइ" से तात्पर्य है जहाँ से आप है वही जायगा । अर्थात् जिस ब्रह्म का उग्र रूप तू है उसी सर्वात्मा मे तू समाविष्ट हो जायगा । (४) प्रस्तुत साखी मे कवि ने बड़े ही सुन्दर और शैली में उस मानव की आलोचना की है । जो माया मे अनुरक्त ब्रह्म से विरक्त है ।

शब्दार्थ--रमै = रमे = प्रवृज हो । यु = इस प्रकार । जे = यदि । रमाइ रमे । तारा = नक्षत्र । जाइ = जाये ।

लुटि सकै तौ लूटियौ, राम नाम है लूटि ।
पीछैं ही पछिताहुगे, यहु तन जैहै छूटि ॥२५॥

सन्दर्भ—प्रस्तुत साखी मे कवि ने राम नाम सुलभता और जीवन की क्षण भगुरता की ओर सकेत किया है । कवि ने बडी स्पष्टता के साथ कहा है जब "यह तन जैहै छूटि" तब "पीछैं ही पछिताहुगे ।"

भावार्थ---राम नाम की लूट है, लूट सके तो लूट ले । अन्यथा जब तन से आत्मा विलग हो जायगी तब पीछे पछताना पड़ेगा ।

विशेष--(१) राम नाम का ही सुलभ है । राम नाम बड़ा ही कल्याणकारी तत्व है । इस प्रकार के कल्याणकारी तत्व की उपेक्षा करने के कारण मानव का बड़ा अहित होता है । फिर भी मानव सचेत नहीं होता है (२) पीछे "छूटि" में कवि ने यह बताने की चेष्टा की है कि प्राणान्त हो जाने पर पछताना पड़ेगा ।

प्राणान्त हो जाने पर पछताने का का कौन सा अवसर है ? मृत हो जाने पर संज्ञा विहीन होने पर पछताना शेष रहेगा ? इस शंका का समाधान इस प्रकार हो सकता कि यह जीवन माया मे सलग्न रहकर, पथ भ्रष्ट होकर, लक्ष्य विहीन होजायगा और पंचतत्व को प्राप्त होकर पुनः जन्म-मरण के क्रम मे निबद्ध होगा , एक बार सत्यता पूर्वक ब्रह्म का स्मरण करने पर मानव ब्रह्माकार हो जाता है। परन्तु इसके विपरीत माया मे सलग्न रहने के कारण वह दूसरे जन्म मे भी पश्चाताप की अग्नि मे प्रदग्ध होता रहता है।

शब्दार्थ—लूटियौ = लूटिये। पीछै = मृत्य के अनन्तर। दूसरा जन्म धारण करने पर।

> लूटि सकै तौ लूटियौ, राम नाम भंडार।
> काल कंठ तै गहैगा, रुंधै दसूँ दुवार ॥ २६ ॥

संदर्भ—प्रस्तुत साखी मे कबीर ने काल की प्रबलता, मानव जीवन को क्षण भङ्गुरता, मानव की विवशता और राम नाम की सुलभता की ओर सकेत करते हुए अप्रत्यक्ष रूप से मानव समाज को चेतावनी प्रदान की हैं।

भावार्थ--राम नाम का भण्डार विद्यमान है। उसे लूट सके तो लूट ले। अन्यथा काल कण्ठ से पकड लेगा और दसो द्वार रुध देगा।

विशेष—विगत साखी मे कवि ने चेतावनी देते हुए कहा है पीछे ही पछिताहुगे यह तन जैहै छूटि और इस साखी मे उसी भाव को अधिक प्रभावशाली अभिव्यक्ति के साथ 'काल कठ तै गहैगा, रुधै दसूं दुवार' के रूप मे प्रस्तुत किया है। (२) कवि ने राम नाम भण्डार का उल्लेख करके रामनाम को प्रचुरता और सुलभता का उल्लेख किया है। रामनाम की सदृश सुलभ और प्रभावशाली अन्य तत्व नही है इसीलिए उसने प्रस्तुत परिच्छेद की तेइसवीं साखी मे आदेशात्मक उपदेश दिया है कि 'कबीर आपण राम कहि औरू राम कहाई। जिहि मुख राम न ऊचरे, तिहि मुख फेरि कहाइ।' राम नाम से विमुख प्राणियो के लिए कवि ने कहा है "ते नर उस ससार मे उपजि पये बेकाम।' (३) काल कठ तैं गहैगा से तात्पर्य है कि काल कण्ठ से ही पकड कर मृत्यु के मुख मे डाल देगा। (४) रुधै दसूं दुवार से तात्पर्य है काल दसो द्वार अवरुद्ध कर देगा। दस द्वार है ब्रह्म रन्ध्र, कर्ण, नेत्र, नासिका, मुख, गुदा, शिश्नेन्द्रिय।

शब्दार्थ—गहैगा = पकडेगा। रुधै = अवरुद्ध करेगा। दसूं = दसो। दुवार = द्वार।

लंबा मारग दूरि घर, बिकट पंथ बहु मार।
कहौ संतौ क्यूँ पाइये, दुर्लभ हरि दीदार॥ २७॥

संदर्भ—प्रियतम का प्रदेश बहुत दूर है। वहाँ का मार्ग अत्यन्त लम्बा और भाँति-भाँति की बाधाओ से सम्पन्न है। ऐसी स्थिति मे प्रियतम के दुर्लभ दीदार कैसे प्राप्त होगे ?

भावार्थ—मार्ग लम्बा है, घर दूर पर है, विकट पथ है और अनेक प्रकार के आघात है। हे संतजन ! फिर हरि के दुर्लभ दीदार कैसे प्राप्त होगे।

विशेष—(१) प्रस्तुत साखी मे कवि ने प्रियतम के प्रदेश की दूरी तथा हरि के दर्शनो की दुर्लभता का उल्लेख किया है। अथर्ववेद मे उसकी सर्वत्र विद्यमानता सम्बन्ध मे कहा गया है। ओइम्। यस्तिष्ठति चरति यश्चवञ्चति यो निलायं चरतिः यः प्रतङ्कम्। द्वौ सन्निवद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद्वेद वरुणस्तृतीयः। उस प्रियतम का प्रदेश कवि ने दूर माना है। ब्रह्म सर्वत्र विद्यमान होते हुए भी निकट है। वह ज्ञान चक्षु के द्वारा दृष्टिगत होता है। अन्यथा वह दूर ही है। (२) उसको प्राप्त करने का मार्ग (साधना) बडा लम्बा है। (३) 'विकट पंथ'''मार' से तात्पर्य है साधना का मार्ग अनेक विघ्न-बाधाओ से सम्पन्न है। माया, तृष्णा, लोभ, काम आदि साधक को उस मार्ग पर गतिशील नही होने देते हैं। (४) दुर्लभ हरि दीदार" से तात्पर्य है प्रियतम के दर्शन साधना, संयम तथा शान्ति के बिना सम्भव नही है।

शब्दार्थ—मारग = मार्ग, रास्ता। विकट = कठिन। मार = आघात। दीदार = दर्शन।

गुण गायें गुण नाम कटै, रटै न राम वियोग।
अह निसि हरि ध्यावै नहीं, क्यूँ पावै दुलभ जोग॥ २८॥

सन्दर्भ—प्रस्तुत साखी मे कबीर ने राम नाम के महत्व का पुनः उल्लेख किया है। राम नाम का प्रभाव बडा व्यापक और असाधारण है। नाम जप के प्रभाव से माया के बधन विच्छिन्न हो जाते। फिर भी मानव इस पुण्य कर्तव्य से विमुख है।

भावार्थ—राम नाम का गान करने से माया का पाश विच्छिन्न हो जाते है। फिर भी (मानव) राम के वियोग मे नाम जप नहीं करता है। जब रात दिन हरि का ध्यान नही करेगा, तब फिर दुर्लभ अनन्त योग कैसे प्राप्त होगा।

विशेष—(१) प्रस्तुत साखी मे कवि ने 'गुण' शब्द का प्रयोग दो अर्थों मे किया है। प्रथम गुण का अर्थ है हरिनाम के गुण या विशेषता और द्वितीय स्थान पर 'गुण' शब्द का प्रयोग माया के पाश के हेतु हुआ है। (२) गुण''''कटै"

अशिक्षित कवि कबीर की काव्य प्रतिभा के दर्शन होते हैं। प्रस्तुत पंक्ति से कबीर-साहित्य मे प्रयुक्त अलंकारो के सहज-रूप के दर्शन होते हैं। सहज अभिव्यक्ति के साथ सहज रूप मे अलंकारो का प्रयोग कबीर की विशेषता है। (३) रटै...वियोग से तात्पर्य है राम के वियोग मे नाम-जप नही करता है। इसी प्रकार प्रस्तुत परिच्छेद की बारहवी साखी मे कवि ने लिखा है "काहे न देखै जागि" और ग्यारहवी साखी मे भी इसी प्रकार कवि ने लिखा है "जागि न जपै मुरारी। (४) अह निसि हरि ध्यावै नही' से तात्पर्य है रात दिन हरि के नाम का जप नही करता है। रात दिन के नाम-जप के विषय मे कबीर ने बारम्बार उपदेश दिया है। प्रस्तुत परिच्छेद की १६ वी साखी मे कबीर ने इसी प्रकार लिखा है" राति दिवस कै कूकर्णों (मन) कबहूँ लगै पुकार" (५) 'दुलंभ जोग' ब्रह्म के साथ दुर्लभ योग या तादात्म्य संस्थापना। ब्रह्म स्वतः दुर्लभ है और उसके साथ योग सस्थापन और भी दुर्लभ है। यहाँ पर कवि ने इसी भाव की ओर संकेत किया है यजुर्वेद मे उस ब्रह्म की सर्व व्यापकता के सम्बन्ध मे कहा गया है 'सः ओतः प्रोतश्च विभुः प्रजासु'। फिर भी वह दुर्लभ उन लोगो के लिए है जो माया-से परिवेष्ठित ही है। (६) सम्पूर्ण साखी मे कवि ने नाम-जप के कर्तव्य से विमुख प्राणियो को सचेत करने की चेष्टा की है।

शब्दार्थ—बिबोग = वियोग। अह निसि = अहर्निश-दिनरात। दुलभ = दुर्लभ।

कबीर कठिनाई खरी सुमिरतां हरि नाम।
सूली ऊपरि नट विद्या, गिरूं त नहीं ठाम॥ २६॥

संदर्भ—प्रस्तुत साखी मे कबीर के नाम जप या साधन की दुरूहता की ओर संकेत किया है। साधना का मार्ग उसी प्रकार दुर्गम और दुःसाध्य है यथा सूली पर नट की कला का प्रदर्शन कठिन सूली के ऊपर अपनी कला का प्रदर्शन करने वाला नट लेशमात्र भी असावधान होते ही धराशायी हो जाता है उसी प्रकार साधक ध्यान से भ्रष्ट होते ही कही पर भी नही स्थान पाता है।

भावार्थ—कबीर कहते हैं कि हरि नाम के स्मरण मे अनेक कठिनाइयां है। यथा सूली के ऊपर नट अपनी कला का प्रदर्शन करता हुआ जब गिरता है तो उसके लिए कोई स्थान नहीं रहता है।

विशेष—प्रस्तुत साखी मे कवि ने साधक तथा नट की तुलना की है साधना मे साधक और कला के प्रदर्शन मे एकाग्रता अत्यधिक अनिवार्य और वांछनीय होती है। एकाग्रता विनष्ट होते ही दोनो ही स्खलित हो जाते है। लोक मे पतित जोगी और सूली पर से पतित नट प्राण रहित हो जाता है। इसीलिए कबीर ने

ठीक ही कहा है कि 'गिरूं तो नांही ठाम। (२) "कबीर···नाम से तात्पर्य है कि हरि नाम स्मरण मे बहुत सी कठिनाइयां है। काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ आदि शत्रु आक्रमण करते हैं और मन विश्वासघात करता है माया अपनी ओर आकर्षित करती है यही साधन के मार्ग मे कठिनाइयां है।

शब्दार्थ—सुमिरता = स्मरण करने मे। सूली = शूली। ठाम = स्थान।

कबीर राम ध्याइ लै, जिभ्या सौं करि मंत।
हरि सागर जिनि बीसरै, छीलर देखि अनंत ॥ ३० ॥

सन्दर्भ—प्रस्तुत साखी मे कबीर ने राम नाम से अनुराग उत्पन्न करने जप की साधना मे अनुरक्त रहने तथा सांसारिक स्वादो का परित्याग करके हरि रस से प्रेम करने और उसे जिह्वा पर धारण करने का उपदेश दिया है। इसी साखी के उत्तरार्ध मे कवि ने हरि सागर की उपेक्षा करके लौकिक छीलरो से अनुराग करने वालो को चेतावनी भी दी है।

भावार्थ—कबीर दास कहते हैं कि जिह्वा से मैत्री करके राम का ध्यान करले। अनन्त छीलरो को देखकर हरि-सागर मत बिसर।

विशेष—(१) 'कबीर·· लै' के द्वारा कबीर ने बारम्बार उसी भाव की अभिव्यक्ति की है, जिसका उल्लेख काव्य मे प्रस्तुत 'अंग' मे बारम्बार किया है। राम नाम की महत्ता का उल्लेख करते हुए कबीर ने अनेक बार कहा 'कबीर आपण राम कहि, औरां राम कहाइ' तथा 'कबीर निरभै राम जपि, जब लग दीवै बाति।' यही भाव यहां अन्य शब्दो मे कवि ने व्यक्त किया है; (२) जिभ्या सौं करि मंत से तात्पर्य है कि यह कि जिह्वा के साथ मैत्री करले। यह जिह्वा जो भौतिक और लौकिक रसो और स्वादो मे अनुरक्त है, उस पर अधिकार तथा संयम स्थापित करले। यह जिह्वा जो रसो के पान करने मे अनुरक्त है, उसे हरि-रस को पान करने मे अनुरक्त करले। (३) 'हरि सागर से तात्पर्य है कि ब्रह्म रूपी सागर। अगाध, अनन्त तथा अपार होता है, उसी प्रकार हरि या ब्रह्म अनन्त, अगाध, तथा अपार है। (४) 'छीलर देखि अनन्त' से तात्पर्य है अनेक पोखरे। पोखरे या छीलर का का प्रयोग यहां पर लौकिक या भौतिक प्रलोभनो के लिए किया गया है तात्पर्य है कि लौकिक प्रलोभनो मे पड़कर अलौकिक तत्व को नही भूलना चाहिए।

शब्दार्थ—ध्याइ = ध्यान करले। जिभ्या = जिह्वा। सौं-से। मंत = मैत्री जिनि-मत। बीसरै-भूल। छीलर-पोखरे, तालाब।

कबीर राम रिझाइ लै, मुख अमृत गुण गाइ।
फूटा नग ज्यूं जोड़ि मन, संधे संधि मिलाइ ॥३१॥

सन्दर्भ—अमृत के सदृश मधुर एवं कल्याणकारी रामनाम के रस को जिह्वा पर धारण करके मनुष्य के लिए यह उपयोगी है कि वह राम को रिझा ले तथा फूटे हुए नग को कोने से कोना मिला कर जोड लिया जाता है, उसी प्रकार इस मन को उस मन से जोडने का यत्न करना चाहिए।

भावार्थ—कबीर दास कहते हैं कि मुख से अमृत तत्व पर ब्रह्म का गुण-गान करके उसे अपने प्रति आकर्षित कर ले। तथा फूटे हुए नग को कोने से कोना मिला कर जोडा जाता है, उसी प्रकार मन को ब्रह्म से जोड ले।

विशेप—(१) कबीर जनता के कवि हैं। उन्होने जनसाधारण मे प्रचलित उक्तियो और अप्रस्तुत योजना को लेकर अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्यो को व्यक्त करने की चेष्टा मे आशातीत सफलता प्राप्त की है फूटा नग ज्यूं जोडि, मन सधे साधि मिलाइ" मे यह प्रयुक्त अप्रस्तुत योजना सहज होने के साथ ही साथ औचित्यपूर्ण भी है। (२) फूटे हुए नग को जोडने की प्रक्रिया एकाग्रता तथा कौशल की अपेक्षा करती है। उसी प्रकार ब्रह्म से वियुक्त मन को कौशल एव एकाग्रता के साथ जोडना आवश्यक है। (३) "राम रिझाइ लै बारम्बार प्रार्थना एव नाम जप के द्वारा ब्रह्म को अपने प्रति आकर्षित एव प्रसन्न कर ले। सेवा के द्वारा प्रियतम ब्रह्म को अपने प्रति रिझा लेना चाहिए। (४) मुखि... गाइ से तात्पर्य है मुख से अमृत तत्व अर्थात् ब्रह्म के गुणो का गान कर ले अमृत का अर्थ वह ब्रह्म जो अजर अमर अनादि और अन्त है।

शब्दार्थ—रिझाई = प्रसन्न। लै = ले मुखि = मुख, मुह। अमृत = अमर। गाइ = गान कर। सधे = सधि।

कबीर चित चमंकिया, चहुँ दिसी लागी लाइ।
हरि सुमिरण हाथूँ घडा, वेग लेहु बुझाइ ॥ ३२ ॥

सन्दर्भ—वासना तृष्णा और माया की अग्नि या दाह ने मन की शान्ति, दशाओ और एकाग्रता को विनिष्ट कर दिए है यह दाह, संताप या पीडा तभी विनष्ट हो सकती है, जब हरिनाम रूपी शीतल जल को ग्रहण करके उसे शान्त करने की चेष्टा मे मानव अनुरक्त और दत्तचित हो।

भावार्थ—कबीर कहते है कि माया (या वासना या तृष्णा) की अग्नि दसो दिशाओ मे लग गई और मन पराक्रान्त हो उठा। हरिनाम स्मरण रूपी घडा तुम्हारे हाथो मे है। इसके द्वारा अग्नि को शीघ्र ही बुझा लो।

विशेप— (१) अग्नि को शान्त करने के लिए घडा के जल का आश्रय ग्रहण करना पडता है। यहाँ पर जन कवि कबीर ने इसी उक्ति को साधनात्मक

जीवन मे घटित करने का प्रयत्न किया है वासनाओ और माया द्वारा प्रदग्ध अग्नि को नाम सुमिरण के जल के द्वारा ही प्रशान्त किया जा सकता है कबीर ने यहाँ पर अत्यन्त सुलभ उक्ति के द्वारा आध्यात्मिक जगत के भाव को प्रभावशाली बनने की चेष्ठा की है। (२) कबीर...लाइ से तात्पर्य है कि वासना की अग्नि चारो दिशाओ, सर्वत्र लगी है और उसके प्रभाव से मन चमत्कृत हो उठा है संसार के सर्वत्र माया की अग्नि प्रज्वलित है। और मन उसमे रमा हुआ या अत्यन्त अनुरक्त है। (३) वेगे लेहु बुझाइ-शीघ्र ही इस अग्नि बुझा लो। कबीर ने यहाँ वेगे शब्द का प्रयोग किया है। क्षणभङ्गुर जीवन किसी पल विनष्ट हो सकता हैं। अतः मानव के लिए यह आवश्यक है कि अत्यन्त शीघ्रता के साथ जीवन की विगड़े क्रम मे सुधार के करले। (४) हरि...घडा से तात्पर्य है कि हरि नाम रूपी जल का घडा हाथ मे है।

शब्दार्थ—चमकिया = चमत्कृत। चहुँ = चारो। दिसि = दिशा। लाइ = ज्वाला अग्नि। हाथू = हाथो मे। वेगे = शीघ्र ही। लेहु = लो। वुझाइ = वुझा।

३. विरह कौ अंग

रात्यूं रूंनी बिरहिनीं, ज्यूं बंचौ कूं कुंज।
कबीर अंतर प्रजल्या, प्रगट्या बिरहा पुंज ॥१॥

सन्दर्भ—क्रौंच पक्षी का विरह जगत प्रसिद्ध है। उसी प्रकार विरहिनी आत्मा प्रियतम के वियोग मे जीवन निशा या विरह निशा भर रुदन करती रही। साधना के अन्तस मे जब से विरह की भावना उद्दीप्त हुई तब से समस्त कलुष दूर हो गए।

भावार्थ—रात भर विरहिणी रोई यथा क्रौंच पक्षी अपने बच्चो के लिए रोती है। कबीर कहते हैं कि विरह के प्रज्वलित होने पर अंतर प्रज्वलित हो गया।

विशेष—(१) प्रस्तुत साखी मे कवि ने विरही साधक तथा क्रौंच की परिस्थिति और विरहानुभूति मे साम्य उपस्थित करते हुए दोनो के विषाद का उल्लेख किया है। विरही आत्मा और क्रौंच दोनों प्रिय के वियोग मे अत्यन्त व्याकुल रहते हैं। विरहनिशा भर आत्मा प्रिय के हेतु रुदन करती रही उसी प्रकार क्रौंच पक्षी की परिस्थिति है। (२) "रात्यू" से तात्पर्य रात भर। यहाँ पर "रात" का प्रयोग कवि ने उसी अर्थ मे किया है जिस अर्थ मे पाश्चात्य रहस्यवादियो ने "डार्क नाइट

आफ दिसोल" अर्थात् आत्मा की अन्धकारपूर्ण रात्रि" का प्रयोग किया है। (२) "अन्तर प्रजल्या" से तात्पर्य है अन्तस प्रज्वलित हो गया। विरह पुंज के प्रकट होने पर अन्तस प्रज्वलित हो गया। जो अन्तस वासनाओ का केन्द्र स्थल बना हुआ था, वह विरहाग्नि के प्रज्वलित होने पर अब प्रज्वलित हो उठा।

शब्दार्थ--रात्यूं = रात मे। रुनी = रोई। बचौ = कूं = को। कुंज। प्रजल्या = प्रज्वलित हुआ। प्रगट्या = प्रकट हुआ। पुंज = घनीभूत।

अंबर कुंजा कुरलियाँ, गरजि भरे सब ताल।
जिनि थैं गोविन्द बीछुटे, तिनके कौंण हवाल ॥२॥

सन्दर्भ—आकाश क्रौंच-पक्षी के आर्त क्रन्दन से परिपूरित हो उठा। फलतः जलद का अन्तस आर्द्र हो उठा और उसके रुदन से जलाशय ओत-प्रोत हो उठे। परन्तु जो प्राणी गोविन्द से विमुख हैं, उनके प्रति कौन संवेदनशील होगा।

भावार्थ—क्रौंच पक्षी ने आकाश मे आर्त क्रन्दन किया जिससे आर्द्र होकर घनश्याम ने सरोवरो को जल से ओत-प्रोत कर दिया। परन्तु जो गोविन्द अर्थात् भगवान से विमुख है, उनकी क्या दशा होगी। भगवान से वियुक्त उन प्राणियो पर कौन कृपा भाव प्रदर्शित करेगा।

शब्दार्थ--अम्बर = आकाश। कुंजा = क्रौंच। गरजि = गर्जन करके। पै = से। बीछुटे = बिछुडे = वियुक्त। कौण = कौन। हवाल = हाल।

चकवी बिछुटी रैणि की, आइ मिलि परभाति।
जे जन बिछुटे राम सूं, ते दिन मिले न राति ॥३॥

सन्दर्भ--चकवी रात्रि के अभिशप्त क्षणो मे, अभिशाप वश प्रिय से वियुक्त हो गई, परन्तु सूर्य की किरणो के आलोकमय वातावरण मे वह अपने प्रिय से पुनः मिल गई। परन्तु माया के प्रभाव से परम पिता से वियुक्त प्राणी परम पिता से कभी नही मिल पाती है।

भावार्थ—रात्रि की बिछुडी हुई चकवी, प्रभात के क्षणो मे प्रियतम से पुनः मिल गई। परन्तु माया के प्रभाव मे भगवान के सम्पर्क से पृथक प्राणी ब्रह्म की शरण मे कभी नही, पहुँच पाता है।

शब्दार्थ—रैणि = रैन = रात्रि। परभाति = प्रभात। बिछुटे = बिछुडे = वियुक्त। राति = रात = रात्रि।

बासर सुख नां रैन सुख, ना सुख सुपिनै माहि।
कबीर बिछुट्या राम सूं, नां सुख धूप न छांह ॥४॥

सन्दर्भ—राम से वियुक्त प्राणी को कभी किसी दशा या परिस्थिति मे सुख नही प्राप्त होता है।

भावार्थ—कवीर कहते हैं कि राम से वियुक्त प्राणी को न रात मे सुख है, न दिन मे; न वह स्वप्न मे शान्ति प्राप्त करते हैं न जाग्रतावस्था मे। धूप अथवा छाह मे भी वह शाति नही प्राप्त कर पाता है। तात्पर्य यह है कि ब्रह्म की शरण ही समस्त सुख है। वही सुख निधान है, वही शान्ति-निकेतन है।

शब्दार्थ—बासर=बासर=दिवस। रैन=रात्रि। सुपिनै=स्वप्न मे।

> विरहिन ऊभी पंथ सिरि, पंथी बूझै धाइ।
> एक सवद कहि पीव का, कवर मिलैंगे आइ॥

सन्दर्भ—प्रस्तुत साखी मे विरहिणी की व्यग्रता, अधीरता, मानसिक व्यथा को व्यक्त किया गया है।

भावार्थ—विरहिणी मार्ग पर खड़ी पथिको से पूछ रही है कि प्रिय का समाचार वताइए। वे कव आकर मिलेंगे, अनुग्रहीत करेंगे।

शब्दार्थ—ऊभी=खड़ी। सिरि=सिरे पर। बूझै=पूंछे। धाइ=दौड कर। कवर=कवरे, अरे कव।

> वहुत दिनन की जोवती, बाट तुम्हारी राम।
> जिव तरसै तुझ मिलन कूँ, माने नांही विश्राम॥

सन्दर्भ—प्रस्तुत साखी मे आत्मा रूपी विरहिणी की विरह भावना वडे मार्मिक शब्दो मे व्यक्त हुई है।

भावार्थ—हे राम ! हे प्रिय ! वहुत काल से अर्थात् जाने कब से तुम्हारी वाट जोह रही हूँ, तुम्हारी प्रतीक्षा मे अनुरक्त हूँ। तुमसे एकात्मकता संस्थापित करने के लिए मेरा जी व्यग्र है और मन मे शाति नहीं है।

शब्दार्थ— जोवती=जोहती=प्रतीक्षा करती। वाट=मार्ग। जिव=जी, प्राण। विश्राम=शान्ति।

> विरहिन ऊठै भी पडै, दरसन कारनि राम।
> मूवाँ पीछे देहुगे सो दरसन किहि काम॥७॥

सन्दर्भ—प्रस्तुत साखी मे विरहिनी की कृशावस्था, और विरह के दुःप्रभाव का चित्रण किये गये हैं।

भावार्थ—हे राम ! विरहिनी तुम्हारे दर्शन के लिए उठते हैं और पुनः गिर पड़ती है। यदि मृत्यु के अनन्तर तुम्हारे दर्शन हुए भी तो किस काम के, उसके क्या मान होगा।

शब्दार्थ—ऊठै = उठे। भी = फिर। पड़ै = गिर = गिर पड़ती है। दरसन = दर्शन। कारनि = कारण।

मूवा पीछै जिनि मिलै कहै कबीरा राम।
पाथर घाटा लोह सब (तब) पारस कौंणे काम ॥ ८ ॥

सन्दर्भ—प्रस्तुत साखी का वर्ण्य-विषय सप्तम साखी के विषय से साम्य रखता है। कवि ब्रह्म के अनुग्रह का आकांक्षी हैं, परन्तु शरीर रहते ही।

भावार्थ—कबीर कहते हैं कि हे राम! पंचतत्व मे मिल जाने के अनन्तर यदि आपने अनुग्रह किया तो उससे लाभ, उससे प्रयोजन? पारस पत्थर की खोज मे, खोदते-खोदते यदि लौहास्त्र यदि पूर्णतया घिस जाय, और अन्त मे पारस के पत्थर प्राप्त भी हो तो उसका क्या प्रयोजन।

शब्दार्थ—मूवा = मृत्यु। जिनि = मत। पाथर = पत्थर घाटा = क्षीण। कौनै = किस।

अन्देसड़ा न भाजिसी, सन्देसौ कहियाँ।
कै हरि आयाँ भाजिसी, कै हरि ही पासि गयाँ ॥९॥

सन्दर्भ—प्रस्तुत साखी मे वियोगिनी आत्मा की द्वन्द्वात्मक परिस्थिति और अनुभूति का चित्रण हुआ है।

भावार्थ—साधना के पथ पर प्रतीक्षित विरहिणी, उस पथ के पथिको द्वारा प्रियतम की सेवा मे सदेश भेजती हुई कहती है कि द्वन्द्व या सकल्पविकल्प की स्थिति दूर नही होती है। या तो प्रिय कृपा करके अनुग्रह करे या मैं ही प्रिय की सेवा मे प्रस्तुत हूँ।

शब्दार्थ—अदेसड़ा = अदेशा = चिन्ता, द्वन्द्व। भाजिसी = नही दूर होगा। सन्देसौ = सन्देश। कहियाँ = कहना। कै = या।

आइ न सकौं तुझ पै, सकूँ न तुझ बुलाइ।
जियरा यौंही लेहुगे, विरह तपाइ तपाइ ॥१०॥

सन्दर्भ—प्रस्तुत साखी मे कवि या साधक की विरह भावना की तीव्रता व्यक्त हुई है। साधक अपनी हीनताओं और सीमाओं मे सर्वदा परिमित है।

भावार्थ—आत्मा रूपी विरहिणी प्रियतम के प्रति निवेदन करती हुई कहती है कि हे प्रिय! मैं तुम्हारे पास अपनी सीमाओं, हीनताओं के कारण नहीं आ सकती हूँ और तुम्हें अपने पास बुला सकने की क्षमता नहीं अर्जित कर पाई। प्रतीत होता है कि विरह की अग्नि मे इसी प्रकार तपा-तपाकर प्राण ले लोगे।

शब्दार्थ :—तुझ पै – तुम्हारे पास। तूझ = तुम्हे। जियरा – जी, प्राण तपाइ – तपा करके।

यह तन जालौं मसि करूं ज्यूं धूवाँ जाइ सरग्गि।
मति वै राम दया करैं, बरसि बुझावै अग्गि॥

सन्दर्भ—विरहिणी की आकाक्षा का अभिनव स्वरूप। शरीर को विरह की अग्नि मे जला कर भस्म कर डालने की इच्छा, जिसमे धुवा आकाश की ओर जाय और धुंवे के प्रभाव से प्रिय का ध्यान प्रियतमा की सतप्तावस्था की ओर आकर्षित हो।

भावार्थ—विरहिणी सोचती है कि इस शरीर को विरहाग्नि मे प्रदग्ध करके जला दूं जिससे धुंवाँ आकाश मे जा पहुँचे। सम्भव है कि धुयें को देखकर वे राम कृपावारि, अनुग्रह-जल बरसकर मेरे विरह जीवित संताप को दूर कर दें।

शब्दार्थ—जालौ = जला दूं। मसि = स्याही। धूवा = धुवाँ = धूम्र। सरागी = सरग = स्वर्ग = मति = शायद, सम्भव है। अग्गि = आग = अग्नि।

यहु तन जालौ मसि करौं, लिखौं राम का नाउँ।
लेखणि करूँ करंक की, लिखि लिख राम पठाउँ॥

सन्दर्भ—विरहिणी की इच्छाएं नए-नए रूपो मे प्रकट हो रही है। यहां एक और अभिनव कामना। जिस प्रकार भी-प्रिय का ध्यान आकर्षित हो वह कार्य करना है गंतव्य तक पहुँचना है। लक्ष्य की समुपलब्धि ही ध्यय बन गया है।

भावार्थ—विरहिणी की आत्मा इच्छा करती हैं कि इस शरीर को जला कर मसि (स्याही) बना डालूं और अपनी हड्डियो की लेखनी बना कर राम के पास विरह निवेदन करती हुई पत्र लिखूं।

शब्दार्थ—लेखणि = लेखनी, कलम। करंक = हड्डी।

कबीर पीर पिरावनीं, पंजर पीड न जाइ।
एक ज पीड परीत की, रही कलेजा छाइ॥ १२॥

प्रसंग—प्रेम एवं विरह की पीडा ने पिंजर या शरीर एवं मर्म को अभिभूत कर रखा है।

भावार्थ—कबीर दास कहते हैं कि पीडा पंजर या शरीर को दुख देने वाली है परन्तु प्रेम की पीड़ा मर्म या कलेजे को अभिभूत कर रखा है।

शब्दार्थ—पीर = पीड = पीड़ा। पिरावनी = पीड़ा देने वाली। पंजर = शरीर। परीति = प्रीति।

चोट सताँणी विरह की, सब तन जर जर होइ।
मारणहारा जाँणि है, कै जिहि लागी सोइ॥ १४॥

प्रसंग—विरह की चोट एव पीडा से विरही का समस्त शरीर जर्जर हो रहा है।

भावार्थ—विरह की चोट ने मर्म को आहत कर डाला और समस्त शरीर जर्जर (अथवा शिथिल) हो रहा है। इस पीडा का अनुभव नही करेगा जिसने शब्द रूपी वाण मार कर प्रेम एवं विरह की पीडा समुत्पन्न की है, या जिसके यह वाण लगा है।

शब्दार्थ—सताँणी = सतानी = सताने वाली। जरजर = जर्जर = शिथिल। मारणहारा = मारने वाला। जाँणि है = जानि है = जानेगा। कै = या।

कर कमाण सर साँधि करि, खैंचि जु मारया मांहि।
भीतर भिद्या सुमार ह्वै, जीव कि जिवै नांहि॥ १५॥

प्रसंग—सदगुरु ने जब से शब्द रूपी वाण मारा है तब से प्रेम की मधुर पीडा, विरह की चोट सबल हो उठी है।

भावार्थ—सतगुरु ने हाथ मे कमान लेकर शब्द रूपी वाण शक्ति भर खीचकर मारा है। तब से शब्द रूपी वाण ने मर्म को आहत कर डाला। अब वियोगी जीवन एवं मृत्यु के मध्य मे समय व्यतीत कर रहा है।

शब्दार्थ—साँधि = संधान = लक्ष्य करके। खैंचि = खीच कर शक्ति भर। माँहि = आभ्यान्तर मे। भीतर = अन्तम। भिद्या भिदा = भद गदा। सुमार = गभीर चोट।

जब हूँ मारया खैंचिकर, तब मैं पाई जाँणि।
लागी चोट मरम्म की, गई कलेजा छाणि॥ १६॥

प्रसंग—शब्द वाण के लगते ही ज्ञान जाग्रत हो गया। अब उस प्रेम और विरह की व्यथा ने मर्म को आहत कर डाला है।

भावार्थ—सतगुरु ने जब खींच कर शब्द-बाण मुझे मारा तो मैं ज्ञान से सम्पन्न हो गया। शब्द-बाण के फल स्वरूप मर्म आहत हो गया और कलेजा पीड़ा से अभिभूत हो गया।

शब्दार्थ—हूँ = मुझे। जाणि = जाण = ज्ञान। मरम्म = मर्म = छाणि = अभिभूत।

जिहि सरि मारी काल्हि, सो सर मेरे मन बस्या।
तिहि सरि अजहूँ मारि, सर बिन सचपाऊं नहीं॥ १७॥

प्रसंग—सतगुरु द्वारा मारा हुआ शब्द रूपी बाण और उससे समुत्पन्न पीडा मन को मधुर प्रतीत होती है।

भावार्थ—हे सतगुरु ! जिस शर या बाण से आपने मुझे कल मारा था उसी से आज भी पुनः मर्म को आहत कीजिए। वह शब्द रूपी बाण मेरे मन मे बस गया है। शब्द बाण की चोट सहन किए बिना मुझे सुख नहीं मिलता है।

शब्दार्थ—सरि = सर = शर = बाण । कालिह = कालि = कल = विगत दिन । वस्या = बसा = बस गया है । तिहि = तिह = उस । सचपाऊं = सुख पाऊं।

विरह भुवंगम तन बसै, मंत्र न लागै कोइ।
राम वियोगी ना जिवै, जिवै त बौरा होइ ॥ १८ ॥

प्रसंग—विरह के प्रभाव से साधक का तन क्षीण, मन उन्मन प्रतीत होता है। राम वियोगी संसार से वियुक्त होकर जीवन यापन करता है।

भावार्थ—जबसे विरह रूपी सर्प शरीर मे निवास करने लगा है तब से कोई मंत्र या औषधि काम नही देती है। राम का वियोगी संसार से उदासीन हो कर जीवन यापन करता है, वह जीवन्मुक्त होकर संसार मे जीवित रहता है।

शब्दार्थ—भुवगम = भुजंग = सर्प । मंत्र = औषधि । वित्रोगी = वियोगी । बौरा = असंतुलित ।

विरह भुवंगम पैसि करि, किया कलेजै घाव।
साधू अंग न मोड़ही, ज्यूँ भावै त्यूँ खाव ॥ १९ ॥

सन्दर्भ—विरहानुभूति साधुजनो को प्रिय लगता है। विरह जनित आनन्द अद्वितीय है।

भावार्थ—विरह भुजंग से जाग्रत होकर मर्म को आहत कर डाला है। साधु जन विरह भुजंग से दूर रहने की चेष्टा नहीं करते हैं। उनका समस्त शरीर विरह भुजग के प्रसार का क्षेत्र है।

शब्दार्थ—भुवंगम = भुजग—सर्प । पैसि = पैठि, प्रविष्ट होकर । मोड़ही—मोड़ते हैं । भावै—रुचिकर लगे । त्यूं—त्यो तैसे । खाव—खालो ।

सब रँग तंतर बाव तन, विरह बजावै नित्त।
और न कोई सुणि सकै, कै सांई कै चित्त ॥२०॥

सन्दर्भ—विरह का शरीर पर एक छत्र साम्राज्य है। शरीर रूपी रबाब को विरह रूपी कलाकार बजा रहा है।

भावार्थ—विरह शरीर रूपी रबाब को नित्य बजाता है। शिराएँ इन वाद्ययंत्र मे तार (या ततु) का काम दे रही है। इस रबाव से प्रस्फुटित राग या तो स्वामी (सत गुरु) सुन पाता है या साधक।

शब्दार्थ—रग = रगे, शिराएं। रबाव = एक विशिष्ट वाद्य यंत्र। तन = शरीर। सुणि = सुनि = सुन।

> विरहा बुरहा जनि कहौ, बिहरा है सुलितान।
> जिह घटि विरह न संचरै, सो घटि सदा मसान॥ २१॥

सन्दर्भ—विरह शरीर का सुल्तान है।

भावार्थ—विरह बुरा है, ऐसा मत कहो। विरह शरीर का सुलतान है। जिस शरीर मे विरह की गति नही है, वह शरीर श्मशान सदृश है।

शब्दार्थ—बुरहा = बुरा है। जिन-मत-।। सुलितान = सुलतान = सम्राट। घटि = घट-शरीर। मसान = श्मशान—मरघट।

> अंषड़ियां झांई पड़ी, पंथ निहारि निहारि।
> जीभड़ियाँ छाला पड्या, राम पुकारि पुकारि॥ २२॥

सन्दर्भ—प्रिय की प्रतीक्षा करते करते अग-प्रत्यंग, शिथिल और जर्जर हो गये हैं।

भावार्थ—विरह के प्रभाव से वियोगिनी की आंखो मे प्रतीक्षा करते-करते झाई पड गई और प्रिय का नाम पुकारते-पुकारते जिह्वा मे छाले पड गए।

शब्दार्थ—अपणियाँ-आंखे। झाई-मद। निहारि-देखकर। जीभडियाँ-जिह्वा। पडया = पडा।

> इस तन का दीवा करौं, वाती मेल्यूँ जीव।
> लोही सींचौं तेल ज्यूँ, कब मुख देखौं पीव॥ २३॥

सन्दर्भ—विरहिणी चिर काल तक प्रतीक्षा मे अनुरक्त रहना चाहती है। शरीर रूपी दीपक मे प्राणो की वर्तिका सुरक्षित रख कर वह प्रिय के पथ को आलोकित करना चाहती है।

भावार्थ—विरहिणी कहती है कि इस तन को दीपक बना डालूं और और उसके प्राणो की वर्तिका डालकर रक्त रूपी तेल से सिंचित करते हुए, प्रिय का मुख देखने के लिए मैं चिर प्रतीक्षित रहूंगी।

शब्दार्थ—दीवा = दीपक। करौं = करूं। वाती = बत्ती। मेल्हूं = डालूं लोही = लहू = रक्त। सींचौं = सिंचित करूं।

नैनां नीझर लाइया, रहट बहै निस जाम।
पपीहा ज्यूँ पिव पिव करौं, कबरु मिलहुगे राम ॥ २४ ॥

सन्दर्भ—विरह के कारण नेत्रो से अश्रु निरतर प्रवाहित रहते हैं और प्राण पपीहे के सदृश प्रिय का नाम रटते रहते हैं।

भावार्थ—प्रिय के वियोग मे नेत्रो से आंसू-निर्झर दिनरात प्रवाहित रहते है और प्रण पपीहे के सदृश प्रिय का नाम रटते हैं। हे प्रिय कब मिलोगे।

शब्दार्थ—नीझर = निर्झर = झरना। रहट = कुआं से जल निकालने का यंत्र। निसजाम = निशयाम। कबरू = अरे कब।

अँपड़ियाँ प्रेम कसाइयाँ, लोग जांणै दुखड़ियाँ।
साँईं अपणैं कारणैं, रोइ रोइ रतड़ियाँ ॥ २५ ॥

सन्दर्भ—प्रिय के वियोग मे रुदन करते करते नेत्र आरक्त हो गए हैं।

भावार्थ—नेत्र प्रेम-विरहाग्नि मे सतप्त होने के कारण लाल हो गए। स्वामी के वियोग के करण रो-रोकर लाल हो गए हैं और लोग जानते हैं नेत्र दुख रहे हैं।

शब्दार्थ—अपडिया = अंखडिया = आंखें। कसाइया = कसी गई है। दुखाइयां = दुख रही है। रतडियां = लाल हो गई है।

सोइ आँसू सजणाँ सोई लोक बिड़ाँहि।
जे लोइण लोंहीं चुवै, तौ जाणौ हेत हियाँहि ॥ २६ ॥

संदर्भ—आंसू आंसू मे भेद है। वही सच्चे आंसू है जो हृदय से प्रस्फुटित होते हैं।

कबीर हसणाँ दूरि करि, करि रोवण सौ चित्त।
बिन रोयाँ क्यूँ पाइए, प्रेम पियारा मित्त ॥ २७ ॥

सन्दर्भ—विरहानुभूति का अनुभव किए विना प्रिय किसे प्राप्त हुआ है।

भावार्थ—कबीर कहते हैं कि हे प्राणी लौकिक-भौतिक सुखो का परित्याग करके, विरहानुभूति हृदयगत करके प्रिय के विरह मे प्रिय के हेतु रुदन कर। बिना रुदन किए कही प्रिय प्राप्त होते हैं।

शब्दार्थ—हसणां = हसना। रोवण = रोवन = रोने। सौ = मे। नित्त = चित्त लगा। रोयां = रोये। क्यूं = क्यो। मित्त = मित्र।

जौ रोऊँ तौ बल घटै, हँसौं तौ राम रिसाइ।
मनही मांहि बिसूरणां, ज्यूँ घुंण काठहि खाइ ॥ २८ ॥

सन्दर्भ—विरह की तीव्रता अन्दर ही अन्दर प्रदग्ध रहे।

भावार्थ—यदि प्रिय के विरह मे रोता हूँ तो बल घटता है शक्ति क्षीण होती है हंसता हूँ लौकिक आनन्दो मे संलग्न होता हूँ तो प्रिय राम मे दूर होता हूँ अतः प्रिय का ध्यान मन ही मन, विरहानुभूति अंतस मे होनी चाहिए। प्रकटित होने के लिए अवकाश नही है। यथा घुन अंदर ही अन्दर काष्ठ को खा जाता है उसी प्रकार विरहाग्नि अदर ही अदर प्रदग्ध रहे।

शब्दार्थ—घटै = घटे = अल्प हो। हसौं = हसूं। रिसाइ = नाराज हो माँहि = मे। विसूरणाँ = स्मरण करना। घुण = घुन।

> हँसि हँसि कंत न पाइए, जिनि पाया तिनि रोइ।
> जो हाँसेही हरि मिलै, दुतौ नहीं दुहागनि कोइ॥ २९॥

सन्दर्भ—प्रिय या ब्रह्म साधना से सम्प्राप्ति होता है। वह लौकिक ऐश्वर्य से दूर है।

भावार्थ—लौकिक आमोद-प्रमोद के मध्य मे प्रिय की प्राप्ति नही होती है प्रिय प्राप्त किया जाता है विरहानुभूति के द्वारा। यदि हंस खेल कर ही प्रिय मिलता तो कौन अभाग्यशाली रहता।

शब्दार्थ—कत = प्रियतम। जिनि = जिन-जिसने। तिनि = तिसने। हाँसे-ही = हंसने से ही। दुहागनि = दुहागिन = दुर्भाग्यशालिनी।

> हाँसी खेलौं हरि मिलै, कौण सहै परसान।
> काम क्रोध त्रिष्णाँ तजै, ताहि मिलै भगवान॥ ३०॥

संदर्भ—आमोद-प्रमोद तथा माया मे सलग्न रहकर कही ब्रह्मानुभूति होती है। काम क्रोध एवं तृष्णा का परित्याग करने से ही प्रिय के साथ तादात्मय सस्थापित होता है।

भावार्थ—ब्रह्मानुभूति हंसी-खेल और माया मे अनुरक्त रह कर नहीं होती है। काम, क्रोध तथा तृष्णा का सहज रूपेण परित्याग कर देने से ही ब्रह्मानुभूति होती है।

शब्दार्थ—हांसी = खेलै = हंसी खेल मे। कौण = कौन। पर = खर-प्रखर = तेज। सान = शान, तेज धार।

> पूत पियारो पिता कौं, गौंहनि लागा धाइ।
> लोभ मिठाई हाथ दे, आपण गया भुलाइ॥ ३१॥

सन्दर्भ—माया आत्मारूपी बालक को पथ भ्रष्ट कर देती है।

भावार्थ—आत्मारूपी पुत्र परमपिता को बहुत प्रिय था। वह परमपिता से अभिन्न था। परन्तु माया ने लोभ रूपी मिठाई बालक के हाथ मे पकड़ा दी, तब से वह अपने पिता को बिसर गया।

शब्दार्थ—पियारो = पियार = प्यार = प्रिय। कौ = को गोहनि। धाइ-दौड़ कर। हाथि = साथ। आपण = अपना = अपने को अथवा आत्म तत्व को।

हारी खाँड पटकि करि, अँतरि रोस उपाइ।
रोवत रोवत मिल गया, पिता पियांरे जाइ॥ ३२॥

सन्दर्भ—अन्ततोगत्वा आत्मारूपी बालक चेतन पर सचेत हो गया। और वह पुनः पिता से अभिन्न हो गया।

भावार्थ—अन्ततोगत्वा सचेत होकर बालकरूपी आत्मा ने रोषपूर्वक लोभ-मिठाई को पटक (फेंक) दिया और रोते-रोते उसे परमपिता की प्राप्ति या अनुभूति हो गई।

शब्दार्थ—खाँड = शकर, मिठाई। अतरि = अन्तर अन्तस, हृदय। रोस = रोष = असन्तोष। उपाइ = उत्पन्न हुआ।

नैनां अतरि आचरूँ, निस दिन निरपौं तोहि।
कब हरि दरसन देहुगे, सो दिन आवै मोहि॥ ३३॥

सन्दर्भ—हे प्रभु! आपको अपने नैनो में बसा लूं और प्रतिक्षण आपके दर्शन करता रहूँ।

भावार्थ—हे प्रभु! आपको अपने नेत्रो मे बसा लूं, जिसमे मैं आपको प्रतिक्षण देखा करूं। हे हरि! वह दिन कब आएगा, जब आपके दर्शन प्राप्त होगे।

शब्दार्थ—अंतरि = अन्तर मे। आचरूं = बसा लूं। निरपौं = देखूं दरसन = दर्शन। देहुगे = दोगे।

कबीर देखत दिन गया, निस भी देखत जाइ।
बिरहणि पिव पावै नहीं, जियरा तलपै माइ॥ ३४॥

सन्दर्भ—प्रतीक्षा करते-करते जीवन बीत गया। विरहणी विरह मे व्यथित है।

भावार्थ—कबीर कहते हैं कि प्रिय की प्रतीक्षा करते-करते दिन भी व्यतीत हो गया और रात्रि भी व्यतीत हो गई। विरहिणी प्रिय के वियोग म अत्यन्त व्यग्र है।

शब्दार्थ—देखत = प्रतीक्षा करते । जियरा = जी, प्राण ।

विरहणी थी तौ क्यूँ रही, जली न पिउ के नालि ।
रहु रहु मुगध गहेलडी, प्रेम न लाजूँ मारि ॥ ३५ ॥

सन्दर्भ—सच्ची विरहिणी तो विरहाग्नि मे स्वतः प्रदग्ध हो जाती है । तू प्रेम को क्यो लज्जित करता है ।

भावार्थ—कबीरदास कहते हैं कि यदि तू विरहिणी थी तो प्रिय के साथ प्रिय की स्मृति मे क्यो न जल गई । हे मुग्धा ठहर-ठहर तू प्रेम को लज्जित मत कर ।

शब्दार्थ—रही = जीवित रही । नालि ।

मुगध = मुग्धा, नायिका जिसमे लज्जाधिक्य होता है । गहेलडी । लाजूं = लज्जित कर ।

हौं विरहा की लाकड़ी, समझि समझि धूँधाऊँ ।
छूटि पड़ौ या विरह तै, जे सारी ही जलि जाऊँ ॥ ३६ ॥

सन्दर्भ—सच्ची विरहिणी प्रिय के वियोग मे शनै:-शनै: जलती है । विरहिणी ये विरहप्रियता प्रमुख होती है ।

भावार्थ—मैं विरहिणी गीली लकड़ी के समान हूँ जो भभक कर नहीं, धीरे-धीरे जलती है । यदि भभक कर जल जाऊं तो विरह से छुटकारा मिल जायगा । जो मुझे न प्रिय है, न अभीप्सित है ।

शब्दार्थ—विरहा = विरह = वियोग । लाकडी = लकडी = ईंधन । समझि-समझि = धीरे-धीरे । धूंधाऊं धूं, धूं करके जलना = धीरे-धीरे जलना । पडौं = पड़ूं । या = इस । सारी = समस्त । जलि = जल ।

कबीर तन मन यौं जल्या, विरह अगनि सूँ लागि ।
मृतक पीड न जांणई, जाणैगी यहु आगि ॥ ३७ ॥

सन्दर्भ—प्रेम की पीडा, विरह की व्यथा विरही ही जान सकता है, या विरहाग्नि स्वतः अपनी प्रखरता का अनुभव करेगी ।

भावार्थ—कबीरदास कहते हैं विरहाग्नि के लगने से यह तन मन इस प्रकार जला कि उसकी कोई सीमा नहीं रही । विरह की व्यथा को मृतक (चेतना शून्य) क्या जाने ? विरहाग्नि उसकी ताप की प्रखरता को जानती है ।

शब्दार्थ—जल्या = जला प्रदग्ध हुआ । अगनि = अग्नि आग । सूं = से । पीड = पीडा व्यथा । जांणई = जानई—जानता है । जाणैगी = जानेगी ।

विरह जलाई मैं जलौ, जलती जलहरि जाउँ।
मों देख्याँ जलहरि जलै, सन्तौ कहाँ बुझाऊँ ॥ ३८ ॥

सन्दर्भ—विरह का प्रभाव, क्षेत्र और स्वरूप व्यापक है, शिष्य ही नहीं, सद्गुरु भी विरह के प्रभाव से पीड़ित है।

भावार्थ—विरह से प्रदग्ध मैं सतगुरु के पास विरहाग्नि प्रशान्त करने के लिए गई। परन्तु मैंने देखा कि सतगुरु स्वतः विरह ज्वर से पीड़ित है। हे सन्तो ! अब बताओ कि इस विरहाग्नि को कहाँ शात करूं ?

शब्दार्थ—जलहरि = जलधरि = जलधार – तालाब । देख्या = देख्या – देखा। बुझाऊं – शान्त करूं।

परबति परबति मैं फिर्‌या, नैन गँवाये रोइ।
सो बूटी पाँऊँ नहीं, जातै जीवनि होइ ॥ ३९ ॥

सन्दर्भ—विरह के कारण स्थान-स्थान पर भटकता रहा पर विरह को प्रशान्त करने वाला परम तत्व न मिला।

भावार्थ—प्रियतम की खोज मे एक पर्वत से दूसरे पर्वत, दूसरे से तीसरे पर्वत तक अर्थात् स्थान-स्थान पर भटकता रहा और प्रिय के वियोग मे रो रोकर नैन खो दिए परन्तु वह तत्व न प्राप्त हुआ जिससे जीवन प्राप्त होता।

शब्दार्थ—परबति = पर्वत। फिरया = घूमा, भटका। नैन = नयन – नेत्र। गंवाये = खोये। जातै = जिससे। जीवनि = जीवन, जीवन शक्ति।

फाड़ि पुटोला धज करौं, कामलड़ी पहिराउँ।
जिहि जिहि भेषां हरि मिलैं, सोइ-सोइ भेष कराउँ ॥४०॥

सन्दर्भ—प्रियतम की प्राप्ति के लिए समस्त बलिदान निःसार है।

भावार्थ—अपने रेशमी वस्त्रों को फाड कर फेंक दूं और कमली धारण कर लूं। जिस-जिस भेष से हरि मिल सके वही-वही भेष धारण कर लूं।

शब्दार्थ—पुटोला – पटोरा, रेशमी वस्त्र। धज = धज्जी टुकडे-टुकड़े कामलड़ी = कामली = कामरी = कम्मल। भेषा – भेष मे।

नैन हमारे जलि गये, छिन-छिन लोडै तुज्झ।
नां तूँ मिलै न मैं खुसी, ऐसी वेदन मुज्झ ॥४१॥

सन्दर्भ—प्रिय के दर्शनो के अभाव मे प्रतीक्षा रत मेरे नेत्र प्रदग्ध रहे और अपार वेदना से पीड़ित रहा हूँ।

भावार्थ—हे प्रिय ! ये नेत्र आपकी प्रतीक्षा करते-करते प्रदग्ध हो उठे। न तेरे दर्शन प्राप्त होते हैं न प्रसन्नता प्राप्त होती है। मैं विरह वेदना से पीडित हूँ।

शब्दार्थ—छिन = क्षण। लोडै = प्रतीक्षा करें। तुज्झ = तुझ। वेदन = वेदना। मुज्झ = मुझे।

भेला पाया श्रम सौं, भौसागर के मांहि।
जे छाँड़ौ तौ डूबिहौ, गहौं त डसिये बाँह॥ ४२॥

सन्दर्भ—इस भव सागर मे बड़े श्रम बडे भाग्य से सतगुरु रूपी जहाज मिल गया।

भावार्थ—बड़े परिश्रम करने के अनन्तर भव सागर मे सतगुरु रूपी जहाज मिल गया। अब यदि इसे छोडता हूँ तो भवसागर मे डूब जाऊँगा और यदि इस जहाज को ग्रहण करता हूँ तो उसके शब्द रूप सर्प, भुजग मुझे डस लेंगे।

शब्दार्थ—भेला = बेडा। सौ = से। छाडौ = छोड़ू। गहो = ग्रहण करूँ।

रैणा दूर बिछोहिया, रहु रे संषम झूरि।
देवलि देवलि धाहड़ी, देसी ऊगे सूरि॥ ४३॥

सन्दर्भ—हे वियोगी धैर्य धारण कर। सूर्योदय होते ही पुनः प्रिय के दर्शन होंगे।

भावार्थ—हे कृश चक्रवाक। रात्रि ने तुझे प्रिय से वियुक्त कर दिये हैं। तू घर-घर चीत्कार करता फिरा। सूर्य के उदय होते ही पुनः प्रिय से समागम होगा।

शब्दार्थ—रैणा = रैण = रैन = रात्रि। बिछोहिया = वियुक्त हुई। संषम = चक्रवाक। झूरि = कृश। देवलि = देवालय = मन्दिर = घर। धाहड़ी = दहाड़ता = चीत्कार करता। देसी = देगा। ऊगे = उदय। सूरि = सूर्य।

सुखिया सब संसार है, खावै अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै॥ ४४॥

सन्दर्भ—चेतन प्राणी ससार की गति देखकर दुखी रहता है।

भावार्थ—कबीर दास कहते हैं कि समस्त संसार खाता है, पीता है, सोता है और सुख पूर्वक जीवनयापन करता है। केवल मैं दुःखी हूँ जागता हूँ और रोता हूँ।

शब्दार्थ—खावै = खावे = खाता है। सोवै = सोता है। रोवै = रोता है।

४. ग्यान विरह कौ अंग

दीपक पावक आँणिया, तेल भी आँण्या संग।
दीन्यूँ मिल करि जोइया, (तब) उड़ि उड़ि पड़ै पतंग ॥ १ ॥

सन्दर्भ—जब से आत्मा चेतन हो गई, तब से वासनाएं विनष्ट हो गई।

भावार्थ--जीवात्मा ज्ञान की ज्योति से और भक्ति रूपी स्नेह से सम्पन्न हो गया। अब वासना रूपी पतंगे आत्मा जल-जल कर नष्ट होने लगे।

शब्दार्थ—दीपक = जीवात्मा। पावक = अग्नि। आंणिया—आनिया = लाया। आण्या = आना = लाया। तेल = स्नेह, प्रेमी। जोइया = आयोजित किया। पतंग = वासना रूपी पतंगे।

मार्‍या है जे मरेगा, बिन सर थोथी भालि।
पड्या पुकारै ब्रिच्छ तरि, आजि मरै कै काल्हि ॥ २ ॥

सन्दर्भ--शब्द बाण से आहत प्राणी संसार से विलग होकर जीवन यापन करता है।

भावार्थ--शब्द रूपी भाले से आहत प्राणी अब संसार से विलग होकर, पृथक होकर जीवन यापन करता है। वह सद्गुरु के आश्रय मे ब्रह्म का स्मरण कर रहा है। वह शीघ्र ही संसार को व्यथाओ से ऊपर उठ जायगा।

शब्दार्थ—बिन सर = बिना शर = फलके के बिना। थोथी = भूठी = कोरी। भालि = भाला। ब्रच्छ = वृक्ष, पेड़।

हिरदा भीतरि दौं बलै, धूँवा न प्रकट होइ।
जाकै लागी सो लखै, कै जिहि लाई सोइ ॥ ३ ॥

सन्दर्भ—हृदय के अन्दर ज्ञान-विरह की ज्योति जल रही है। इसका अनुभव या तो साधक करता है, या सतगुरु।

भावार्थ—हृदय मे प्रेम-विरह की अग्नि जल रही है परन्तु उसके लक्षण बाह्यतः नहीं प्रकट हो रहे हैं। इस अग्नि का वही अनुभव करता है, जिसके अन्तस मे यह अग्नि लगी है या वह जिसने इस अग्नि को जाग्रत किया है।

शब्दार्थ--हिरदा = हृदय। दौ = दावाग्नि। बलै = जलै। लखै = देखै। लाई = लागी।

झल ऊठी झोली जली, खपरा फूटिम फूटि।
जोगी था सो रमि गया, आसणि रही बिभूति ॥ ४ ॥

सन्दर्भ—ज्ञान की अग्नि मे असार तत्व विनष्ट हो गये और योगी ब्रह्मानन्द मे लीन हो गया।

भावार्थ--ज्ञान की अग्नि मे शरीर रूपी झोली जल गयी और खप्पर फूट गया। योगी ब्रह्म मे रम गया और आसन पर केवल वस्त्र अवशेष रह गई।

शब्दार्थ—झल = अग्नि। झोली = शरीर। खपरा = खप्पर = खोपड़ी फूटिम = फूटि = फूट गया। जोगी = योगी। आसणि = आसन। बिभूति = राख।

अगनि जु लागी नीर मैं, कँदू जलिया झारि।
उतर दषिण के पंडिता, रहे बिचारि बिचारि ॥ ५ ॥

संदर्भ--ज्ञान की अग्नि के लगते ही माया और माया के तत्व विनष्ट हो गये।

भावार्थ--ज्ञान की अग्नि के लगते ही माया का जल और उसके सहायक तत्व विनष्ट हो गये। इस आश्चर्यजनक कृत्य को उत्तर-दक्षिण के पण्डित देखते ही रह गए।

शब्दार्थ—नीर = जल, माया का जल। कन्दू = कर्दम = कीचड़। झारि = सम्पूर्ण।

दौं लागी सायर जल्या, पंषी बैठे आइ।
दाधी देह न पालवै, सतगुर गया लगाय ॥ ६ ॥

सन्दर्भ—ज्ञान की अग्नि के लगते ही माया का सागर जल गया और आत्मा रूपी पक्षी को मुक्ति प्राप्त हो गई।

भावार्थ—ज्ञान की अग्नि के प्रज्वलित हो जाने पर माया का सागर भस्मीभूत हो गया। आत्मा रूपी पक्षी जो माया रूपी सागर के निकट विद्यमान थे, अब निश्चिन्त हो गये। ज्ञानाग्नि से प्रदग्ध देह भौतिक दृष्टि मे [illegible] नहीं है। यह अग्नि सतगुरु ने लगा दिया।

शब्दार्थ—दौ = दावाग्नि। सायर = सागर। पंषी = पक्षी। दाधी = दग्ध पालवै = पल्लवै = बढ़ती है।

गुर दाधा चेला जल्या, बिरहा लागी आगि।
तिणका बपुड़ा ऊबरया, गलि पूरे कै लागि ॥ ७ ॥

सन्दर्भ—विरह की अग्नि मे जल कर शिष्य का भव सागर से उद्धार हो गया।

भावार्थ—गुरु ने ज्ञान की अग्नि प्रज्वलित की और शिष्य विरह (ज्ञान विरह) की अग्नि मे जल गया। तिनके के समान हलकी, पाप के भार से मुक्त आत्मा को उन्मुक्ति हो गया और वह पूर्ण ब्रह्म से मिल कर एकाकार हो गया।

शब्दार्थ—दाघा = दग्ध किया। जल्या = जला। विरहा = विरहाग्नि। तिणका = तिनका। वपुडा = वपुरा = बेचारा। गलि = सहारे। पूरे = पूर्ण = ब्रह्म।

अहेड़ी दौं लाइया, मृग पुकारे रोइ।
जा वन में क्रीला करी, दाझत है वन सोइ॥ ८॥

सन्दर्भ—ज्ञानाग्नि के लगते ही इन्द्रियाँ विषयो से उन्मुक्त हो गई हैं।

भावार्थ—सतगुरु = अहेरी ने ज्ञान की अग्नि प्रज्वलित की, संसार रूपी वन जल गया और इस माया के वन मे वितरण करने वाले इन्द्रिय रूपी मृग रो उठे। जिस वन मे मृग क्रीडा करते थे, अब वह वन जल गया। इस लिए मृग दुखी हो गये।

शब्दार्थ—अहेडी = अहेरी = शिकारी। दौं = दावाग्नि। मृग = इन्द्रिय। क्रीला = क्रीड़ा, सैर। दाझत = दग्ध।

पाणी मांहि प्रजली, भई अप्रबल आगि।
बहुती सलिता रह गई, मंछ रहे जल त्यागि॥ ९॥

सन्दर्भ—माया रूपी जल मे ज्ञानाग्नि लगी तो माया के सहायक तत्व स्थगित हो गये और आत्मा माया से पृथक हो गई।

भावार्थ—माया के सागर मे ज्ञानाग्नि लगी तो पाया कि सहायक तत्व विनष्ट हो गये और आत्मा रूपी मछली माया के जल को छोड़ कर अलग हो गई।

शब्दार्थ—प्रजली = प्रज्वलित हुई। अप्रबल = अत्यन्त प्रबल। सलिता = नदी।

समंदर लागी आगि, नदियाँ जलि कोइला भई।
देखि कबीरा जागि, मंछी रूषां चढ़ि गई॥ १०॥

सन्दर्भ—भवसागर मे ज्ञान की अग्नि लगी, माया के सहायक-तत्व नष्ट हो गए और आत्मा रूपी मछली उन्मुक्त हो गई।

भावार्थ—भव सागर मे ज्ञान की अग्नि लग गई और फलतः माया को सहायक तत्व विनष्ट हो गये। कबीर ने चेतन होकर देखा कि मछली शब्द रूपी वृक्ष पर आसीन है।

शब्दार्थ—समदर=समुद्र। कोइला=कोयल=काली। मंछी=मछली। रूपा=वृक्ष।

५. परचा कौ अंग

कबीर तेज अनंत का, मानौं ऊगी सूरज सेणि।
पति सँगि जागी सुंदरी, कौतिग दीठा तेणि॥ १॥

सन्दर्भ—ब्रह्म प्रकाश नारायण हो, वह निर्मल आत्मा द्वारा ही अनुभव किया जा सकता है।

भावार्थ—ब्रह्म का तेज, प्रकाश माव स्वरूप अनन्त है। वह प्रकाश का समूह मानो सूर्य की श्रेणियाँ एक स्थान पर उदित हुई हो, आत्मा रूपी सुन्दरी ने जाग्रत होकर उस वैभव को देखा, प्रकाश नारायण के दर्शन किये।

शब्दार्थ—अनन्त=ब्रह्म। ऊगी=उगी=विकसित हुई। सूरज=सूर्य। सेणि=श्रेणी। कौतिग=कौतुक=आश्चर्यजनक वस्तु। तेणि=उसके द्वारा।

कौतिक दीठा देह बिन, रवि ससि बिना उजास।
साहिब सेवा माहिं है, बेपरवांही दास॥ २॥

सन्दर्भ—प्रबुद्ध आत्मा ने निराकार ब्रह्म के दर्शन किए। ब्रह्म सेवा, अपनी द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

भावार्थ—प्रबुद्ध आत्मा ने निराकार ब्रह्म के दर्शन किए। वह ब्रह्म रवि एवं शशि के प्रकाश के अभाव मे भी प्रकाश मान है। वह स्वयम् प्रकाश है। प्रभु के दर्शन सेवा मे रत सेवक को ही प्राप्त होते हैं।

शब्दार्थ—कौतिग=कौतुक=आश्चर्य, ब्रह्म। दीठा=देखा। देहबिन=निर्गुण। उजास=उज्ज्वल। बेपरवाही=निश्चिन्त।

पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान।
कहिबे कूं सोभा नहीं, देख्या ही परवान॥ ३॥

भावार्थ—ब्रह्म अवर्णनीय, अगम्य है।

भावार्थ—पर ब्रह्म के तेज, स्वरूप किस प्रकार का है ? यह अकथनीय है, अवर्णनीय है। वह अभिव्यंजना से परे है, केवल अनुभव करने योग्य है।

शब्दार्थ—उनमान = अनुमान । कूं = को । सोम = शोभ = देख्या = देखा, देखने से । परवान = प्रमाण ।

अगम अगोचर गमि नहीं, तहाँ जगमगै जोति।
जहाँ कबीरा बंदिगी, (तहां) पाप पुन्य नहीं छोति ॥ ४ ॥

सन्दर्भ—ब्रह्म प्रकाश स्वरूप है। वह ज्योति का समूह है।

भावार्थ—निर्गुण निराकार ब्रह्म अगम है, अगोचर जहाँ ब्रह्म की ज्योति जगमगाती वहाँ किसी की गति नही है वह पाप-पुण्य की सीमाओ से परे है। ऐसे ही ब्रह्म ही समक्ष कबीर का प्रार्थना प्रस्तुत होते है।

शब्दार्थ—गमि = गति। ज्योति = प्रकाश । छोति-छूत-अपवित्र।

हदे छाँडि बेहदि गया, हुआ निरंतर बास।
कवल ज फूल्या फूल बिन, को निरषै निज दास ॥ ५ ॥

सन्दर्भ—साधक ससीम ब्रह्म को त्याग निःसीम ब्रह्मोपासना मे अनुरक्त हुआ।

भावार्थ—ससीम ब्रह्मोपासना का परित्याग करके (मैं) निराकार निर्गुण ब्रह्मोपासना मे सलग्न हुआ। और उसी मे मेरा चित्त, स्थायी रूप से रम गया। निर्गुण ब्रह्म रूपी कमल जो स्वयम् है, उसे कौन देख सकता है, उसका कौन अनुभव कर सकता है ? ब्रह्म का सेवक ऐसे ब्रह्म का रहस्य जान सकते हैं।

शब्दार्थ—हदे = हद = सीमा। बेहदि-निःसीम। फूल्या = फूला। निरषै = देखे।

कबीर मन मधकर भया, रह्या निरंतर बास।
कवल ज फूल्या जलह बिन, को देखै निज दास ॥ ६ ॥

संदर्भ—मन मधुकर हो सहज निरंतर रूप से ब्रह्म मे अनुरक्त हो गया।

भावार्थ—कबीर कहते हैं कि मेरा मन मधुकर निर्गुण ब्रह्म रूपी कमल पर अनुरक्त होकर उसी मे निरंतर रम गया है। माया रूपी जल के संसर्ग से परे विकासमान निर्गुण ब्रह्म की दर्शन कोई सच्चा साधक ही कर सकता है।

शब्दार्थ—मधकर = मधुकर, भ्रमर। निरंतर = सतत। जलह = जल।

अंतरि कवल प्रकासिया, ब्रह्म वास तहाँ होइ।
मन भवरा तहाँ लुबधिया, जांणैगा जन कोइ ॥ ७ ॥

संदर्भ—हृदय प्रदेश मे ब्रह्म का वास है। मन भंवरा वहा लुब्ध हो गया है।

भावार्थ—हृदय मे कमल प्रकाशित हो गया और उसमे ब्रह्म का निवास है। मन रूपी भ्रमर उस पर लुब्ध हो गया। विरला ही साधक इस रहस्य को जान सकेगा

शब्दार्थ—अन्तरि = हृदय के अन्तर्गत। कवल = कमल = हृदय पद्म। प्रकाशिया = प्रकाशिया = प्रकाशित हो गया। भवरा = भ्रमर।

सायर नाहीं सीप बिन, स्वांति बूँद भी नांहि।
कबीर मोती नीपजैं सुन्नि सिषर गढ़ मांहि ॥ ८ ॥

संदर्भ—शून्य शिखर गढ़ मे निर्गुण ब्रह्म के दर्शन हुए।

भावार्थ—कबीर कहते हैं कि न सागर है, न सीप है न स्वाती का बूंद है। फिर भी शून्य शिखर गढ़ मे निर्गुण ब्रह्म रूपी मोती की उपलब्धि हो रही है।

शब्दार्थ—सायर = सागर। स्वाति = स्वाती। नीप जै = उपजे। सुन्नि = शून्य।

घट मांहैं औघट लह्या, औघट माहैं घाट।
कहि कबीर परचा भया, गुरू दिखाई बाट ॥ ९ ॥

सन्दर्भ—सतगुरु की कृपा से घट मे ही ब्रह्म के दर्शन हो गये।

भावार्थ—कबीर कहते हैं कि सतगुरु की कृपा से, सतगुरु द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलकर घट मे ही ब्रह्म के दर्शन हुए और ब्रह्म मे ही अपनी स्थिति दृष्टिगत हुई।

शब्दार्थ—घट = शरीर। औघट = विचित्र = ब्रह्म। बाट = मार्ग। परचा = परिचय।

सूर समांणां चंद मैं दहूँ किया घर एक।
मनका च्यंता तब भया, कछू पूरबला लेख ॥ १० ॥

सन्दर्भ—चन्द्रनाड़ी मे सूर्य नाड़ी समाहित हो गई, तब ब्रह्म के दर्शन हुए।

भावार्थ—जब चन्द्र नाड़ी मे सूर्य नाड़ी प्रविष्ट हो गई और साधक ऊर्ध्वरेता बन गया तब मन की अभिलाषा और पूर्वजन्म का लेख पूर्ण हुआ अर्थात् ब्रह्मानुभूति पूर्ण हुई।

शब्दार्थ—सूर = सूर्य। चन्द्र = चन्द्रमा। दहू = दोनों ने। च्यन्ता = चिन्ता।

हद छाड़ि बेहद गया, किया सुन्नि असनान।
मुन जन महल न पावई, तहाँ किया विश्राम ॥ ११ ॥

सन्दर्भ—निर्गुण निराकार ब्रह्म के दर्शन करके शून्य शिखर गढ मे प्रवेश किया।

भावार्थ—संसार की सीमित दिशाओ का परित्याग करके निःसीम ब्रह्म मे प्रवेश किया। जिस निर्गुण ब्रह्म के अतःपुर मे मुनिजन भी प्रवेश नही कर सकते हैं, वहाँ मैंने विश्राम किया।

शब्दार्थ—हद = हद्द—सीमा। सुन्नि = शून्य। असनान = अस्नान। तहाँ = वहाँ। विश्राम = आराम।

देखो कर्म कबीर का, कछु पूरब जनम का खेल।
जाका महल न मुनि लहैं, सो दोसत किया अलेख ॥ १२ ॥

सन्दर्भ—पूर्वजन्म के फल और इस जन्म की साधना के फलतः कबीर ब्रह्म से मिलकर अभिन्न हो गए।

भावार्थ—कबीर के कर्म, कृत्य, भाग्य और पूर्व जन्म की साधनात्मक उपलब्धि तो देखो, कि जिस ब्रह्म के महल मे मुनि जन प्रवेश नही कर पाते हैं, उस ब्रह्म को उसने अभिन्न बना लिया।

शब्दार्थ—कर्म = भाग्य, कृत्य। पूरब = पूर्व। जनम = जन्म। जाका = जिसका। दोसत = दोस्त—अभिन्न अलेख = अनिर्वचनीय।

पिंजर प्रेम प्रकासिया, जाग्या जोग अनंत।
संसा खूटा सुख भया, मिल्या पियारा कंत ॥ १३ ॥

सन्दर्भ—प्रेम के जाग्रत होते ही अनन्त योग जाग्रत हो गया और संशय मिट गया, ब्रह्म के साथ अभिन्नता स्थापित हो गई।

भावार्थ—शरीर मे प्रेम के जाग्रत होते ही अनन्त प्रेम, और अनन्त तन्मयता प्रगाढ हो गया। इस प्रकार संशय मिट गया और प्रिय मे एकात्मकता स्थापित हो गई।

शब्दार्थ—पिंजर = शरीर। प्रकासियर = प्रकाशित हुआ। जाग्या = जागा जाग्रत हुआ। जोग = योग एकात्मकता। अनन्त = असीम। संसा = संशय। खूटा = नष्ट हुआ। पियारा = प्यारा = प्रिय।

प्यंजर प्रेम प्रकासिया, अंतरि भया उजास।
मुख कस्तूरी महमहीं, बाँणी फूटी वास॥ १४॥

सन्दर्भ--प्रेम के प्रकट होते ही अन्तस उज्ज्वल हो गया और सुन्दर प्रेम से ओत-प्रोत वाणी प्रस्फुटित हुई।

भावार्थ—जब से प्रेम जाग्रत हुआ अन्तस उज्ज्वल हो गया और ब्रह्म रूपी कस्तूरी से सुवासित वाणी प्रस्फुटित हुई।

शब्दार्थ—प्यंजर = पिंजर = शरीर। अंतरि = हृदय। उजास = उज्ज्वल। कस्तूरी = कस्तूरी।

मन लागा उन मन्न सौं, गगन पहुँचा जाइ।
देख्या चंद बिहूँणां, चांदिणां, तहाँ अलख निरंजन राइ॥१५॥

संदर्भ—मन ने उनमनी अवस्था मे ब्रह्मानुभुति प्राप्त की।

भावार्थ--संसार से उन्मुक्त होकर मन उनमनी अवस्था मे पहुँच कर ब्रह्माण्ड मे जा पहुँचा। वहाँ पर उसने स्वयं प्रकाश, प्रकाश पुन्ज ब्रह्म के दर्शन किए।

शब्दार्थ--उनमन्न = उन्मन्न। गगन = ब्रह्माण्ड।

मन लागा उन मन सौं, उन मन मनहिं विलग।
लूँण बिलगा पाणियाँ, पांणीं लूँण विलग॥ १६॥

संदर्भ--मन ब्रह्म से मिलकर एकाकार हो गया।

भावार्थ—मन उनमनी अवस्था मे प्रविष्ट हुआ और उनमन के साथ मिलकर दोनो अभिन्न हो गए। पानी और नमक मिलकर एक हो गए, एकाकार हो गए।

शब्दार्थ—लूंण = नमक।

पांणीं ही तैं हिम भया हिम ह्वै गया बिलाइ।
जो कुछ था सोई भया, अब कछू कह्या न जाइ॥ १७॥

सन्दर्भ—आत्मा और परमात्मा की एकात्मकता अनिर्वचनीय है।

भावार्थ—पानी से ही हिम का निर्माण होता है और हिम पुनः घुलकर पानी के रूप मे परिवर्तित हो जाता है। इसी प्रकार ब्रह्म मे उद्भूत होकर आत्मा ब्रह्माकार हो जाती है। आत्मा और परमात्मा का एकाकार होना अनिर्वचनीय है।

शब्दार्थ—पांणी = पानी।

भली भई जु मैं पड्या, गई दशा सब भूलि।
पाला गलि पांणी भया, ढुलि मिलिया उस कूलि॥ १८॥

सन्दर्भ—सुरति और निरति से परिचय होने पर समस्त रहस्य स्वतः उद्भासित हो गए।

भावार्थ—सुरति निरति मे प्रविष्ट हो गई, और निरति के साथ मिलकर एकाकार हो गई। सुरति और निरति का परिचय हो जाने के पश्चात् ब्रह्म के रहस्य का द्वार स्वतः उद्घाटित हो गया।

शब्दार्थ—स्यम = स्वयं।

सुरति समांणीं निरति मैं, अजपा मांहैं जाप।
लेख समांणा अलेख मैं, यू आपा मांहैं आप ॥ २३ ॥

सन्दर्भ—सुरति निरति मे प्रविष्ट हो गई।

भावार्थ—सुरति निरति मे समाहित हो गई और जाप, अजपा जप मे परिवर्तित हो गया। इसी प्रकार साकार निराकार मे विलीन हो गया और आत्मा ईश्वर मे समाहित हो गई।

शब्दार्थ—लेख = साकार। अलेख = निराकार।

आया था संसार में, देषण कौं बहु रूप।
कहै कबीरा संत हौ, पड़ि गया नजरि अनूप ॥ २४ ॥

सन्दर्भ—ससार मे माया के विविध रूप देखने के लिए आया था।

भावार्थ—ससार मे माया के बहुरंग रूप को देखने के लिए आया था, परन्तु हे सन्त-जन अनुपम तत्व जब से दृष्टिगत हो गया, तब से माया की समस्त दशाओ को मैं भूल गया।

शब्दार्थ—देषण—देखने के लिए।

अंक भरे भरि भेटिया, मन में नाहीं धीर।
कहै कबीर ते क्यूँ मिलें, जब लग दोइ सरीर ॥ २५ ॥

सन्दर्भ—ब्रह्म से एकाकार हो कर अभिन्न हो गया।

भावार्थ—प्रेमाधिक्य के कारण प्रिय का बडी व्यग्रता के साथ आलिंगन किया, दोनो शरीर एकाकार हो गए। कबीर कहते हैं जब तक प्रेम तत्व की प्रबलता नही होती है तब तक दोनो एकाकार कैसे हो सकते है?

शब्दार्थ—अंक = गोद।

सचुपाया सुख ऊपना, अरु दिल दरिया पूरि।
सकल पाप सहजैं गये, जब साईं मिल्या हजूरि ॥ २६ ॥

संदर्भ—हुजूर के दर्शन होते ही समस्त पाप और क्लेश स्वतः विच्छिन्न हो गए।

संदर्भ—आत्मा और परमात्मा उभय एकाकार हो गए।

भावार्थ—अच्छा ही हुआ जो भय मेरे अन्तस मे समुत्पन्न हो गया, उसके फलस्वरूप मैं सासारिकता से ऊपर होकर ईश्वरोन्मुख हो गया। आत्मा रूपी पाला घुलकर पानी बन गया और ब्रह्म रूपी जल मे मिलकर वह अभिन्न हो गया।

शब्दार्थ—जु = जो। पड़या = समुत्पन्न, आकर उपस्थित हो गया। कूलि = किनारे।

चौहटै च्यंतामंणि चढ़ी, हाडी मारत हाथि।
मीरां मुझसूं मिहर करि, इब मिलौ न काहु साथि॥ १९॥

संदर्भ—हे ईश्वर अब मै तुझसे मिलकर अभिन्न हो गया।

भावार्थ—जीवन रूपी चौराहे मे त्रिकुटी नामक स्थान पर जीवन रूपी चौसर के खेल मे पासा फेकते हुए, चिंतामणि हाथ मे लग गई। हे प्रभु! अब तुझे छोड़कर मैं किसी अन्य की अपेक्षा नही रखता हूँ।

शब्दार्थ—च्यंतामणि = चिंतामणि। चढ़ी = प्राप्त हुई।

पंषि उडानीं गगन कूं, प्यंड रह्या परदेश।
पांणी पीया चंच बिन, भूलि गया यहु देश॥ २०॥

संदर्भ—आत्मा ने निर्गुण ब्रह्म के दर्शन प्राप्त किए।

भावार्थ—आत्मा रूपी पक्षी ब्रह्माण्ड मे उड़ गई और शरीर इस परदेश मे पड़ा रह गया। वहाँ पर आत्मा रूपी पक्षी ने चोच के बिना जल पिया। अर्थात् निराकार ब्रह्म के दर्शन किए और इस प्रकार वह अपनी दशा, परिस्थिति को भूल गई।

शब्दार्थ—पंषि = पक्षी, आत्मा। प्यड = शरीर। चंच = चोच।

पंषि उडानीं गगन कूं, उड़ी चढ़ी असमान।
जिहिं सर मंडल भेदिया, सो सर लागा कान॥ २१॥

सन्दर्भ—आत्मा रूपी पक्षी ब्रह्माण्ड मे जाकर ब्रह्माकार हो गई।

भावार्थ—आत्मा रूपी पक्षी ब्रह्माण्ड मे प्रविष्ट होकर और आगे उड़ती गई जिस बाण ने हृदय मडल को आहत कर दिया था उस बाण के प्रति चित्त की भावना और भी प्रगाढ़ हो गई।

शब्दार्थ—सर = बाण।

सुरति समांणी निरति मैं, निरति रही निरधार।
सुरति निरति परचा भया, तब खूले स्यंभ दुवार॥ २२॥

भावार्थ—कबीर दास कहते हैं कि जब से प्रभु के प्रत्यक्ष दर्शन हुए तब से हृदय मे शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो गया और समस्त पाप सहज रूप से विनष्ट हो गए।

शब्दार्थ— सचुपाया = शाति प्राप्त की। ऊपना = उत्पन्न हुआ।

धरती गगन पवन नहीं होता, नहीं तोया, नहीं तारा।
तब हरि हरि के जन होते, कहै कबीर विचार ॥ २७ ॥

सन्दर्भ—हरि और हरिजन शाश्वत है।

भावार्थ—धरती गगन पवन, सूर्य जल न होते और यह सृष्टि भी न होती तोभी प्रभु और उनके भक्त इस संसार मे अवश्य होते।

शब्दार्थ—तोया = पानी।

जा दिन कृतमनां हुता, होता हट न पट।
हुता कबीरा राम जन, देखै औघट घट ॥ २८ ॥

सन्दर्भ—राम और उनके भक्त शाश्वत है।

भावार्थ—जिस दिन यह ससार न होता हाट और वस्त्र न होते, सांसारिक व्यापार न होते कबीर कहते हैं कि उस दिन भी राम और राम के भक्त इस संसार मे होते।

शब्दार्थ— कृतम = कृत्रिम

थिति पाई मन थिर भया, सतगुर करी सहाइ।
अनिन कथा तनि आचरी, हिरदै त्रिभुवन राइ ॥ २६ ॥

सन्दर्भ—जब से हरि की कथा का ध्यान किया तब से समस्त ताप नष्ट हो गए।

भावार्थ--सदगुरू की कृपा से मन स्थिर हो गया और हरि की यशगाथा की साधना मे मन अनुरक्त हो गया, तब से हृदय मे भगवान के दर्शन हुए।

शब्दार्थ--थिनि = शाति। अमिन = अनन्य।

हरि संगति सीतल भया, मिटी मोह की ताप।
निस बासुरि सुख निध्य लह्या, जब अंतरि प्रगट्या आप ॥ ३० ॥

सन्दर्भ--प्रभु की शरण मे जाने पर समस्त ताप नष्ट हो गए।

भावार्थ—हरि के शरण मे जाते ही समस्त ताप विनष्ट हो गए। मोह की ज्वाला शान्त हो गई जब से ब्रह्म के दर्शन हुए तब से दिन-रात सुख की निधि प्राप्त हो गई।

शब्दार्थ—वासुरि = दिन । निध्य = निधि ।

तन भीतरि मन मानियां, बाहरि कहा न जाइ ।
ज्वाला तैं फिर जल भया, बुझी बलंती लाइ ॥ ३१ ॥

सन्दर्भ—अब मन अन्तमु ंखी हो गया ।

भावार्थ—हृदय मे ही मन मुग्ध होकर सीमित हो गया । अब यह बाहर कही नही जाता है । मोह की ज्वाला शान्त हो गई और अग्नि शीतल हो गई ।

शब्दार्थ—बाहरि = बाहर ।

तत पाया तन बीसर्या, जब मन धरिया ध्यान ।
तपनि गई सीतल भया, जब सुनि किया असनान ॥ ३२ ॥

सन्दर्भ—धैर्य के जाग्रत होते ही तत्व प्राप्त हो गया ।

भावार्थ—जब से मन मे प्रभु का ध्यान हुआ, तब से मन मे शान्ति स्थापित हुई । ब्रह्म तत्व की प्राप्ति हुई और तन की दशाएं भूल गया । समस्त ताप नष्ट हो गए और शून्य सरोवर मे स्नान किया ।

शब्दार्थ—तत = तत्व ।

जिनि पाया तिनि सू गह गह्या रसनां लागी स्वादि ।
रतन निराला पाईया, जगत ढंढोल्या बादि ॥ ३३ ॥

संदर्भ—ससार सागर मे भटकते-भटकते हरि रूपी हीरा प्राप्त हो गया ।

भावार्थ—जिन्होने खोज की उन्हें हरि रूपी हीरा मिला और जिसने पाया उसे भली-भाँति ग्रहण किया । मन मे जिह्वा मे रामनाम रूपी स्वाद लग गया । मैंने तो अद्भुत रत्न प्राप्त कर लिया अब ससार मे कौन भटकता फिरे ।

शब्दार्थ—सूगह = अच्छी तरह । गह्या = पकड़ा । ढंढोल्या = खोजा ।

कबीर दिल स्यावति भया, पाया फल संम्रथ्थ ।
सायर मांहि ढंढोलतां, हीरै पडि गया हथ्थ ॥ ३४ ॥

संदर्भ—ससार सागर मे हरि हीरा प्राप्त हो गया ।

भावार्थ—जब से मन मे धैर्य और शान्ति स्थापित हो गई तब से हरि रूपी हीरा सम्प्राप्त हो गया । ससार सागर मे खोजते खोजते हरि रूपी हीरा प्राप्त हो गया ।

शब्दार्थ—स्याबित=सम्पूर्ण। ढंढोलता=खोजते हुए।

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नांहि।
सब अँधियारा मिटि गया जब दीपक देख्यां माहि॥ ३५॥

सन्दर्भ—हृदय मे ब्रह्मानुभूति होते ही समस्त अंधकार मिट गया।

भावार्थ—जब तक अहं था तब तक मैं हरि को नही प्राप्त कर पाया। अब तो हरि ही हैं मैं नही हूँ, जब से हृदय मे स्वय प्रकाश के दर्शन हुए तब से समस्त ताप और पाप नष्ट हो गए।

शब्दार्थ—मैं=अहंभाव।

जा कारणि मैं ढूंढता, सनमुख मिलिया आइ।
धन मैली पिव ऊजला, लागि न सकौं पाइ॥ ३६॥

सन्दर्भ—प्रिय के साथ कैसे एकाकार होऊं मैं तो मलीन हूँ।

भावार्थ—जिसको मैं ढूंढ़ता फिरता था वह सन्मुख मिल गया, परन्तु पाप से पंकिल आत्मा रूपी प्रिय स्त्री प्रिय के चरणो का स्पर्श कैसे करे।

शब्दार्थ—धन=स्त्री, (आत्मा)। मैली=पापो से युक्त।

जा कारणि मैं जाइ था, सोई पाई ठौर।
सोई फिरि आपण भया, जासूं कहता और॥ ३७॥

सन्दर्भ—आत्मा और परमात्मा मिलकर एकाकार हो गए।

भावार्थ—जिसके खोज मे मैं भटक रहा था वह अपने स्थान पर प्राप्त हो गया और जिसे मैं विलग समझता था वही अभिन्न हो गया।

शब्दार्थ—जा कारणि—जिसके लिए।

कबीर देख्या एक अंग, महिमा कही न जाइ।
तेज पुंज पारस धणीं, नैनूं रहा समाइ॥ ३८॥

सन्दर्भ—प्रकाश पुंज परमात्मा नेत्रो मे समाहित हैं।

भावार्थ—कवीर दास कहते हैं कि मैंने प्रभु के दर्शन एक निष्ठ होकर किए। उनकी महिमा अनिर्वचीय हैं। वह तेज पुन्ज हैं, पारस है, धनी है, वह नेत्रो मे समाहित हो रहा है।

शब्दार्थ—एक अंग=एक निष्ठ होकर धणी=स्वामी।

मानसरोवर सुभर जल, हंसा केलि कराहिं।
मुकताहल मुकता चुगै, अब उड़ि अनत न जाहिं ॥ ३९ ॥

सन्दर्भ—मान सरोवर मे आत्मा रूपी हस विश्राम कर रहे हैं।

भावार्थ—मानसरोवर भक्ति के शुद्ध जल से भरा हुआ है। वहाँ आत्मा रूपी हंस क्रीड़ा कर रहे हैं, तथा भक्ति रूपी मोती चुग रहे हैं अब वे उड़कर अन्यत्र कही नही जाएंगे।

शब्दार्थ—सुभर = शुद्ध।

गगन गरजि अंमृत चवै, कदली कवल प्रकास।
तहाँ कबीरा बंदिगी, कै कोई निज दास ॥ ४० ॥

सन्दर्भ—कबीर ब्रह्माण्ड मे स्थिति प्रिय की वन्दगी करता है।

भावार्थ—शून्य शिखर गढ मे अनहदनाद हो रहा है। अमृत की वर्षा हो रही है और सहस्त्र दल कमल विकसित हैं। कदली प्रकाशित है। वहाँ पर कबीर, ईश्वराधना मे अनुरक्त है।

शब्दार्थ—गगन = ब्रह्माण्ड।

नींव विहूँणां देहुरा, देह विहूँणां देव।
कबीर तहाँ बिलंबिया, करे अलप की सेव ॥ ४१ ॥

सन्दर्भ—कबीर अलख की सेवा मे अनुरक्त है।

भावार्थ—नीव से रहित देवालय मे निराकार देवता विद्यमान है ऐसे स्थान पर कबीर अलख की सेवा करने मे अनुरक्त हैं।

शब्दार्थ—देहुरा = देवालय। विहूंणां = रहित = बिलंबिया = विश्राम किया।

देवल माँहै देहुरी, तिल जहै बिसतार।
माँहै पाती माँहि जल, माँहै पूजणहार ॥ ४२ ॥

सन्दर्भ—निर्गुण ब्रह्म की उपासना अन्तस मे हो रही है।

भावार्थ—शरीर रूपी देवालय मे ही तिल के समान सूक्ष्म विद्यमान हैं हृदय मे ही पूजा के पत्र हैं, हृदय में ही जल है, हृदय मे पूजा करने वाला है।

शब्दार्थ—देव = देवालय।

कबीर कवल प्रकासिया, ऊग्या निर्मल सूर।
निस अंधियारी मिटि गई, बागे अनहद नूर॥ ४३॥

सन्दर्भ—ज्ञान के उदय होते ही हृदय कमल विकसित हो गया।

भावार्थ—जब से निर्मल सूर्य रूपी ब्रह्म का प्रकाश प्राप्त हुआ तब से हृदय कमल प्रकाशित हो गया। समस्त वासनाओं का अन्धकार मिट गया और अनहद नाद की तुरही वजने लगी।

शब्दार्थ—ऊग्या = उदित हुआ।

अनहद बाजै नीझर झरै, उपजै ब्रह्म गियान।
आवगति अंतरि प्रगटै, लागै प्रेम धियान॥ ४४॥

सन्दर्भ—प्रेम पूर्वक ध्यान लगाने से ब्रह्म प्रकट होता है।

भावार्थ—प्रेम पूर्वक ध्यान लगाने से अविगत ब्रह्म की अनुभूति होती है। अनहदनाद प्रतिश्रुति होता है और अनहद का झरना बहने लगता है।

शब्दार्थ—नीझर = निर्भर। गियान = ग्यान। आवगति = अनिर्वचनीय।

आकासे मुखि औंधा कुवाँ, पाताले पनिहारि।
ताका पांणीं को हंसा पीवै, बिरला आदि बिचारि॥४५॥

सन्दर्भ—शून्य शिखर गढ़ का सुभग जल हंसात्मा ही पान करती है।

भावार्थ—आकाश मे निम्न मुख हुआ है नीचे आत्मारूपी पनिहारी जल जल को प्राप्त करने के लिए आकांक्षी है। इस कुएं का जल कोई विरली शुद्धता ही ही ग्रहण करती है।

शब्दार्थ—आकासे = आकाश मे ब्रह्म रन्ध्र मे। औंधा = निम्नाभिमुख। पनिहारि = पनिहारी।

सिवसकती दिसि कौंण जु जोवै, पछिम दिसा उठै धूरि।
जल मैं स्यंघ जु घर करै, मछली चढ़ै खजूरि॥ ४६॥

सन्दर्भ—अनहद शब्द के सहारे आत्मा ब्रह्म मे लीन हो जाती है।

भावार्थ—शिव और शक्ति को किस दिशा मे देखा जा सकता है वह तो सर्व व्यापी है। जो दिशा विशेष में देखने की चेष्टा करेगा उसके पीछे धूल उड़ने लगेगी। आत्मारूपी मछली अनहदनाद के सहारे ब्रह्म मे लीन होगी, शिव और शक्ति की अनुभूति करना उतना ही कठिन है जितना मछली का खजूर पर चढ़ना अथवा सिह का जल मे प्रवेश करना।

शब्दार्थ—सकती = शक्ति। स्यंघ = सिंह। मछली = आत्मा।

अंमृत बरिसै हीरा निपजै, घंटा पड़ै टकसाल।
कबीर जुलाहा भया पारषू, अनभै उतर्या पार॥ ४७॥

सन्दर्भ—ब्रह्म निन्द होते ही दिव्य अनुभूति प्राप्त हो गई।

भावार्थ—ब्रह्म निन्द रूपी अमृत की वर्षा हो रही है और प्रभु दर्शन रूपी हीरा उत्पन्न हो रहा है। अनहद शब्द प्रतिश्रुत हो रहा है। कबीर जुलाहा निर्भय होकर इस संसार सागर से पार उतर गया।

शब्दार्थ—बरिसै = बरसत है घटा पड़ै टकसाल = अनहद नाद प्रतिश्रुत हो रहा है।

ममिता मेरा क्या करै, प्रेम उघाड़ीं पौलि।
दरसन भया दयाल का, सूल भई सुख सौड़ि॥ ४८॥

सन्दर्भ—ब्रह्मानुभूति प्राप्त हो जाने के बाद माया मोह के बन्धन विछिन्न हो गये।

भावार्थ—माया मेरा क्या कर लेगी अब तो प्रेम का द्वार उन्मुक्त हो गया अब तो दयालु ब्रह्म के दर्शन हो गए, अब दुख भी सुख प्रतीत होने लगे।

शब्दार्थ—ममिता = ममता। उघाडी = खोल दिया। पौलि द्वार।

६. रस कौ अंग

कबीर हरि रस यौं पिया, बाकी रही न थाकि।
पाका कलस कुँभार का, बहुरि न चढ़ई चाकि॥ १॥

संदर्भ—जीवात्मा प्रभु-भक्ति के रंग में रंगकर [illegible] हो जाती है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं मैंने ईश्वर की भक्ति का रस इतना अधिक पिया है कि सांसारिक कठिनाइयों से उत्पन्न थकावट बिल्कुल समाप्त हो गई है किंचितमात्र भी बाकी नहीं रही। जिस प्रकार कुम्हार के द्वारा पकाया हुआ घड़ा पुनः चाक पर नहीं चढ़ाया जाता है उसी प्रकार हरि-भक्ति-रस का पान करने के बाद आत्मा को इस संसार में नहीं भटकना पड़ता।

शब्दार्थ—थाकि = थकान। बाकी = शेष। कलस = कलश = घड़ा।

राम रसाइन प्रेम रस, पीवत अधिक रसाल।
कबीर पीवण दुलभ है, मांगै सीस कलाल ॥ २ ॥

संदर्भ—ब्रह्मानन्द के प्रेम का रस पाने मे जितना सुमधुर होता है उसकी प्राप्ति उतनी ही कठिन होती है। उसके लिए सर्वस्व त्याग करना पड़ता है।

भावार्थ—प्रभु भक्ति का प्रेम रस पीने मे बड़ा मधुर होता है और पीते-पीते और अधिक मधुर होता जाता है किन्तु कबीर कहते हैं कि इसकी प्राप्ति की शर्तें बड़ी कठिन है क्योकि गुरु रूपी मदिरा विक्रेता कठिन से कठिन स्थिति का सामना करने के लिए साधक को उपदेश देता है।

शब्दार्थ—कलाल = मदिरा पिलाने वाला।

कबीर भाठी कलाल की, बहुतक बैठे आइ।
सिर सौंपै सोई पिवै, नहीं तो पिया न जाइ ॥ ३ ॥

संदर्भ—प्रभु प्राप्ति के लिए सर्वस्व त्याग करना पड़ता है प्रत्येक कष्ट सहना पड़ता है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि प्रभु भक्ति रूपी मदिरा को बेचनेवाले सतगुरु की दूकान पर मदिरा पीने वाले बहुत से साधक बैठे हैं। किन्तु उस मदिरा का पानी वही पी सकता है जो अपने को साधना की कठिन से कठिन परिस्थितियो मे डाल दे अन्यथा उस मदिरा को नही पिया जा सकता है।

विशेष—सांग रूपक।

शब्दार्थ—भाठी = भट्ठी जिसमे मदिरा तैयार की जाती है। बहुतक = बहुत से।

हरि रसपीया जांणिये, जे कबहूँ न जाइ खुमार।
मैमंता घूमत रहै, नांही तन की सार ॥ ४ ॥

संदर्भ—हरि-रस का पान करने वाला अपने शरीर की सुधि-बुधि भूल जाता है।

भावार्थ—हरि-भक्ति रसामृत का पान किया उसी व्यक्ति को समझना चाहिए जिसके ऊपर उसका स्थायी नशा बना रहे। और वह उस नशे मे मदमस्त हाथी के समान मतवाला होकर इधर-उधर घूमता रहे उसे अपने शरीर तक की भी सुधि-बुधि न रहे।

शब्दार्थ—मैमता = मस्त।

मैमंता तिण नांचरै, सालै चिता सनेह।
बारि जु बांध्या प्रेम कै, डारि रह्या सिरि पेह॥ ५॥

संदर्भ—परमात्मा के प्रेमी को अपने शरीर का ध्यान नही रहता है।

भावार्थ—जिस प्रकार मदमस्त हाथी एक तिनका भी ग्रहण नही करता है उसी प्रकार साधक भी खान पान की सुधि भुलाकर प्रेम की अग्नि मे अपने शरीर को तपाता है और जिस प्रकार मदमस्त हाथी दरवाजे पर बंधा हुआ अपने सिर पर मिट्टी डालता रहता है उसी प्रकार साधक भी अपने शरीर का ध्यान न रखकर अहं की भावना का त्याग कर सिर पर मिट्टी आदि धारण कर लेता है।

शब्दार्थ— मैमंता = मदमस्त हाथी। तिण = तृण।

मैमंता अविगत रता, अकलप आसा जीति।
राम अमलि माता रहै, जीवत मुकति अतीति॥ ६॥

सन्दर्भ—मद मत्त साधक अपने जीवन काल मे मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

भावार्थ—मदमत्त साधक अपनी अकल्पनीय आशाओ पर विजय प्राप्त करके परमात्मा के प्रेम मे तल्लीन रहता है। वह राम के प्रेमामृत मे इस प्रकार सराबोर रहता है कि जीवित अवस्था मे ही उसे जीवन से मुक्ति मिल जाती है।

शब्दार्थ—अकलप = अकल्पनीय।

जिहि सिर घड़ा न डूबता, अब मैंगल मलिमलिन्हाइ।
देवल बूड़ा कलस सूँ, पंषि तिसाई जाइ॥ ७॥

संदर्भ—भक्ति के बढने पर आत्मा की प्यास भी सतत् बढती चलती है।

भावार्थ—जिस भक्ति के तालाब मे मन रूपी घडे को डूबने भर का भी पानी नहीं था। उसी मे अब भक्ति के बढ़ जाने से मद मस्त साधक मल-मल कर स्नान करता है। अब उसमे इतना अधिक जल हो गया है कि सम्पूर्ण संसार उस भक्ति सागर मे डूब गया है किंतु आत्मारूपी पक्षी पीते-पीते नहीं अघाता।

शब्दार्थ—मैंगल = मदमत्त हाथी, मन। देवल = संसार।

सबै रसांइण मैं पिया, हरिसा और न कोइ।
तिल एक घट मैं संचरै, तौ सब तन कंचन होइ॥ ८॥

संदर्भ—ब्रह्म रस की समता करने वाला संसार का अन्य कोई भी रस नहीं है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि मैंने संसार के सभी रसो का रसास्वादन करके देख लिया है किंतु हरि इसके समान और कोई रस नही है। यदि इस हरि रस का एकतिल मात्र अंश भी शरीर मे व्याप्त हो जाय तो संपूर्ण शरीर पाप मुक्त होकर कंचन के समान शुद्ध हो जाय।

शब्दार्थ--रसाहण = रसास्वादन।

७. लांबिको अंग

कया कमंडल भरि लिया, उज्जल निर्मल नीर।
तन मन जोबन भरि पिया, प्यास न मिटी शरीर ॥ १ ॥

सन्दर्भ—ज्ञान एवं भक्ति के द्वारा भी शरीर की तृष्णा शान्त नही होती।

भावार्थ—ज्ञान एवं भक्ति का उज्ज्वल एवं निर्मल नीर शरीर रूपी कमंडल में भर लिया। शरीर एवं मन की पूर्ण शक्ति लगाकर जीवन के सुन्दरतम समय यौवनकाल मे इसका पान किया किन्तु फिर भी इसकी प्यास शात नही हुई।

शब्दार्थ--कया = काया = शरीर।

मन उलट्या, दरिया मिल्या, लागा मलिमलि न्हांन।
थाहत थान न आवई, तूँ पूरा रहिमान ॥ २ ॥

सन्दर्भ—जीवात्मा को प्रभु-प्रेम-सागर की थाह नही मिल पाती है।

भावार्थ—मन सांसारिक झंझटो से हटकर प्रभु प्रेम रूपी समुद्र मे जाकर मिल गया और वहाँ मल-मल कर स्नान करने लगा। हे प्रभु ! आप अत्यन्त दयालु हैं बहुत प्रयत्न करने पर भी आपकी वास्तविक थाह नही मिलती है।

शब्दार्थ—रहिमान = दयालु।

हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराइ।
बूँद समानी समद मैं सोकत हेरी जाइ ॥ ३ ॥

सन्दर्भ--आत्मा का जब परमात्मा से एकीकरण हो जाता है तो उसको ढूंढ़ पाना कठिन होता है।

भावार्थ—कबीर की आत्मा परमात्मा को खोजते-खोजते उसी मे लीन हो गई। आत्मा और परमात्मा का मेल हो गया। जो बूंद समुद्र मे जाकर मिल जाती

है उसका पता नही लगाया जा सकता है उसी प्रकार जिस आत्मा का परमात्मा मे समावेश हो गया उसको भी नही खोजा जा सकता है।

शब्दार्थ—हेरत-हेरत = खोजते-खोजते। हिराइ = खो जाना। हेरी = पता लगाना।

हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ।
समंद समाना बूँद मैं, सो कत हेर्‌या जाइ ॥ ४ ॥

सन्दर्भ—हृदय स्थित ईश्वर को देखना मुश्किल है।

भावार्थ—कबीर की आत्मा अन्य सासारिक आत्माओ से कहती है कि हे सखी ! परमात्मा को खोजते-खोजते मैं स्वयं खो गई। समुद्र (परमात्मा) बूंद (आत्मा) के अन्तःकरण मे ही व्याप्त है उसको कैसे खोजा जा सकता है।

शब्दार्थ—समद = समुद्र।

---

८. जर्णा कौ अंग

भारी कहौं त बहु डरौं, हलका कहूँ तौ झूठ।
मैं का जांणौ राम कूं, नैनूं कबहूँ न दीठ ॥ १ ॥

सन्दर्भ—ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन नहीं किया जा सकता है।

भावार्थ—यदि उस परमात्मा को भारी कहा जाय तो बहुत डर लगता है क्योंकि वह निराकार है फिर भारी कैसे हो सकता है ? और यदि हलका कहूँ तो यह भी असत्य ही है। क्योंकि मैंने अपने भौतिक नेत्रो से परमात्मा को देखा ही नहीं है फिर उसके अस्तित्व के विषय मे कह कैसे सकता हूँ।

शब्दार्थ—दीठ = देखा।

दीठा है तो कस कहूँ, कह्या न को पतियाइ।
हरि जैसा है तैसा रहौ, तूं हरषि हरषि गुण गाइ ॥२॥

सन्दर्भ—ईश्वर के अस्तित्व का बखान कठिन है उसका स्मरण ही करना चाहिए।

भावार्थ—यदि उस परमात्मा के दर्शन भी हो गए हो तो भी उस अवर्णनीय का वर्णन कैसे किया जा सकता है और यदि किसी प्रकार वर्णन कर भी दिया जाय तो कहने पर विश्वास कौन मान सकता है। परमात्मा जिस प्रकार का है उसे उसी प्रकार का रहने दो हे मन। तू प्रसन्नतापूर्वक उस परमात्मा के गुणो का स्मरण कर।

शब्दार्थ—पतियाह = विश्वास करता है।

ऐसा अद्भुत जिनि कथौ, अद्भुत राखि लुकाइ।
वेद कुरानौ गमि नहीं, कह्या न को पतियाइ॥ ३॥

सन्दर्भ—ईश्वर के रूप का वर्णन वेद और कुरान ऐसे धार्मिक ग्रथ भी नही कर पाते हैं फिर और कौन कर सकता है?

भावार्थ—जो ब्रह्म इतना रहस्यमय है रे मन! उसके वर्णन का प्रयास तू न कर। उस रहस्य को रहस्य ही बना रहने दे। वेद और कुरानादि धार्मिक ग्रन्थ जिसके गुणो का वर्णन नही कर सके उसका वर्णन कैसे किया जा सकता है और करने पर भी उसका विश्वास कौन करेगा?

शब्दार्थ—जिनि = मत। गमि = पहुँच।

करता की गति अगम है, तूँ चलि अपणै उनमान।
धीरैं धीरैं पाव दे, पहुँचैंगे परवान॥ ४॥

सन्दर्भ—ईश्वर का दर्शन एक दिन मे नही होगा प्रयास करने पर कभी न कभी होई जायेगा।

भावार्थ—सम्पूर्ण विश्व के कर्ता परमात्मा की गति अगम्य है हे जीव? तू अपनी शक्ति के अनुसार ही उसको खोजने के लिए चल। धीरे-धीरे चलते रहने पर भी किसी न किसी दिन तो उसके दर्शन हो ही जाएंगे।

शब्दार्थ—उनमान = मार्ग। परवान, ब्रह्म प्राप्ति।

पहुँचैंगे तब कहैंगे, अमड़ैंगे उस ठाँइ।
अजहूँ बेरा समन्द मैं, बोलि बिगूचैं कांइ॥ ५॥

सन्दर्भ—विना परमात्म ज्ञान के उसके विषय मे कुछ भी कहना व्यर्थ है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि उस परमात्मा के विषय मे तभी कहा जा सकता है जब हम उस तक पहुँच जाएंगे। अभी तो मैं मंझधार मे पड़ा हूँ। साधना के मार्ग मे बीच मे ही पड़ा हूँ इसलिये इस समय ईश्वर के विषय मे कुछ कह कर अन्य मनुष्यो को धोखा क्यो दे।

शब्दार्थ—अमड़ैंगे = कहेंगे। बिगूचैं = धोखा दें।

९. हैरान कौ अङ्ग

पंडित सेती कहि रहे, कह्यां न मानै कोइ।
ओ अगाध एका कहै, भारी अचिरज होइ ॥ १ ॥

सन्दर्भ—ईश्वर के विषय मे जो कुछ भी कहा जाय उसी पर लोगो को आश्चर्य होता है।

भावार्थ—मैं यदि पण्डितो से उस परमात्मा के अद्भुत स्वरूप का वर्णन करता हूँ तो ये उसका विश्वास ही नही करते। और यदि मैं उनसे यह कहता हूँ कि ब्रह्म असीम, अगाध, और एक है तो सभी पण्डित आश्चर्य करते हैं।

शब्दार्थ—सेती = से।

बसै अपण्डी पण्ड मैं, तागति लषै न कोइ।
कहै कबीरा संत हौ, बड़ी अचंभा मोहि ॥ २ ॥

सन्दर्भ—ब्रह्म का निवास हृदय मे होने पर भी उसको कोई प्राप्त नहीं कर पाता है।

भावार्थ—निराकार ब्रह्म इसी शरीर मे निवास करता है किन्तु फिर भी इस बात पर कोई ध्यान नही देता है उनकी गति को कोई देख नहीं पाता है। कबीर दास जी कहते हैं कि मुझे बडा आश्चर्य इस बात पर होता है कि लोग साधना के द्वारा उसे प्राप्त क्यो नही कर पाते हैं।

शब्दार्थ—अपंडी = पंड = शरीर।

---

१०. लै को अङ्ग

जिहि बन सीह न संचरै, पंषि उड़ै नहीं जाइ।
रैनि दिवस का गमि नहीं, तहाँ कबीर रह्या ल्यौ लाइ ॥ १ ॥

सन्दर्भ—अगम्य प्रभु की प्राप्ति के लिए दत्तचित्त होकर साधना मे लीन होना चाहिए।

भावार्थ—जिस बन मे सिंह नही पहुँच सकता पक्षी भी जहाँ उड़ नही सकते जहाँ रात्रि और दिवस का भी पता नही। सूर्य और चन्द्रमा का अस्तित्व नहीं। उस स्थान तक पहुँचने के लिए कबीरदास साधना कर रहे हैं।

शब्दार्थ—सीस = सिंह। रैन दिवस = रात दिन अर्थात सूर्य और चन्द्रमा।

सुरति ठीकुली लेज ल्यौ, मन् नित डोलनहार।
कॅवल कुँवा मैं प्रेम रस, पीवै बारम्बार ॥ २ ॥

सन्दर्भ—साधक का मन बार-बार ईश्वर का स्मरण करता है।

भावार्थ—सहस्त्र दल रूपी कुएं मे प्रेम का अमृत मय रस भरा हुआ है। साधक सुरति-स्मृति की ढीकुली और लगन की रस्सी से मनके डोल मे इस रस को भरकर बारम्बार पीता है।

विशेष—रूपक अलंकार।

शब्दार्थ—लेज = रस्सी। कमल कुंवा = सहस्त्रदल' कमल।

गंग जमुना उर अंतरै, सहज सुंनि ल्यौ घाट।
तहाँ कबीरै मठ रच्या, मुनि जन जोवैं बाट ॥ ३ ॥

सन्दर्भ—जिस स्थान तक पहुंचने के लिए। मुनि लोग प्रतीक्षा किया करते हैं वही पर कवीर दास ने अपने मन को साधना मे लगा दिया है।

भावार्थ—उड़ा और पिंगला नाड़ियाँ हृदय मे गंगा और यमुना के समान प्रवाहित हो रही है शून्य मे ध्यान रूपी घाट है। उसी शून्य स्थान मे कबीर दास ने अपने मन को लगा दिया है। मुनि लोग उस स्थान के लिए प्रतीक्षा ही करते रहते हैं।

शब्दार्थ—गंग यमुन = इडा पिंगला। ल्यौ = ध्यान।

---

११. निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग

कबीर प्रीतड़ी तौ तुझसौं, बहु गुण याले कन्त ।
जे हँसि बोलौ और सौं, तौ नील रँगाऊँ दन्त ॥ १ ॥

सन्दर्भ—साधक केवल परमात्मा से प्रेम करता है ।

भावार्थ—हे अनन्त गुणो वाले प्रियतम (ब्रह्म) ! कबीर का एकमात्र तुझ से ही प्रेम है । यदि मैं तुझे छोडकर अन्य किसी से हंस बोलकर प्रेम करूं तो वह मुंह पर स्याही लगाकर मुंह को कलंकित करने के समान है ।

शब्दार्थ—प्रीतडी = प्रेम । गुणिया ले = गुणवान् ।

नैनां अन्तर आवतूँ, ज्यूँहौं नैन झँपेउ ।
नाँ हौं देखौं और कूँ, नां तुझ देखन देउँ ॥ २ ॥

सन्दर्भ—प्रेम की अनन्यावस्था को दिखाया गया है । भक्त प्रेम मे विभोर होकर अपने प्रियतम को ही देखना चाहता है ।

भावार्थ—हे प्रियतम । तुम नेत्रो के अन्दर आजाओ और मैं तुरन्त नेत्रो को मूंद लूं । जिससे न तो मैं ही तुम्हारे अतिरिक्त किसी अन्य को देख सकूं और न तुम को ही अपने अतिरिक्त किसी अन्य को देखने दूं । तुम मुझे देखो और मैं तुझे देखूं ।

शब्दार्थ—अंतरि = अन्दर । झंपेउ = मूंद लूंगा ।

मेरा तुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा ।
तेरा तुझको सौंपता, क्या लागै मेरा ॥ ३ ॥

सन्दर्भ—संसार की सभी वस्तुएं परमात्मा की है । साधक जो भी वस्तु परमात्मा को समर्पित करता है वह उसी की ही वस्तु उसको समर्पित करता है ।

भावार्थ—मेरे पास जो कुछ भी है हे परमात्मन् ! वह तेरा ही है उसमें मेरा कुछ भी नही है । फिर आपकी ही वस्तु आप को सौंपने मे मेरा क्या लगता है ।

कबीर रेख स्यंदूर की, काजल दिया न जाइ ।
नैंन रमइया रमि रह्या, दूजा कहां समाइ ॥ ४ ॥

सन्दर्भ—भक्त के लिए भगवान को छोड़कर अन्य कोई नही होता है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि जिस प्रकार एक पतिव्रता स्त्री सौभाग्य सूचक सिंदूर की रेखा ही लगाती है पति को आकर्षित करने के लिए आँखो मे काजल भी नही लगाती उसी प्रकार मेरे नेत्रो मे तो केवल राम की ही तस्वीर वसी हुई है किसी अन्य को उसमे स्थान नही मिल सकता है।

शब्दार्थ—स्यंदूर = सिंदूर। नैमूं = नेत्रो मे।

> कबीरा सीप समद की, रटै पियास पियास।
> समदहि तिणका वरि गिणै, स्वाँति बूँद की आस॥ ५॥

सन्दर्भ—जिसका जिसमे प्रेम होता है उसके लिए उससे बढकर और कोई पदार्थ नही होता है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि समुद्र मे पड़ी हुई सीपी उसके जल से तृप्त न होकर प्यास ही प्यास रटती रहती है। वह तो स्वाति नक्षत्र के बूंद की आशाएं विशाल समुद्र को तिनके के समान नगण्य समझती है।

विशेष—अन्योक्ति अलंकार।

शब्दार्थ—समदहि = समुद्रहि = समुद्र को।

> कबीर सुख कौं जाइ था, आगैं आया दुख।
> जाइ सुख घरि आपणैं, हम जाणौं अरु दुख॥ ६॥

सन्दर्भ—साधक परमात्मा की प्राप्ति के लिए सासारिक सुखो को तिलाजलि दे देता है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि इस विषय विकार से भरे हुए संसार के सुखो मे लिप्त होने जा ही रहा था कि अचानक मेरा साक्षात्कार परमात्मा के विरहरूपी दुख से हो गया। तव मैंने सांसारिक दुखो को तिलाजलि देकर ईश्वर की प्राप्ति के लिए विरह (दुख) को ही सहने का लक्ष्य बनाया है।

> दो जग तौ हम अँगिया, यहु डर नाहीं मुझ।
> भिस्त न मेरे चाहिए, बांझ पियारे तुझ॥ ७॥

सन्दर्भ—ईश्वर के अभाव मे भक्त स्वर्ग भी नही चाहता है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि यदि मुझे नरक मे भी जाना पड़े और वहाँ पर मुझे परमात्मा के दर्शन न होते रहे तों मुझे कोई भय नही है। किन्तु ऐप्रितम! तेरे विना यदि मुझे स्वर्ग मे भी जाना पडे, तो वह भी मेरे लिए त्याज्य है, व्यर्थ है।

शब्दार्थ—दो जग = दो जख – वर्क। भिस्त = वहिश्त – स्वर्ग। बांभ = रहित है।

जे ओ एकै न जांणियाँ, तो जांण्याँ सव जांण।
जे ओ एक न जांणियाँ, तो सव ही जांण अजांण ॥ ८ ॥

सन्दर्भ—परमात्मा के ज्ञान के अतिरिक्त और सव ज्ञान व्यर्थ है।

भावार्थ—जिसने एक परमात्मा को जान लिया उसने संसार के सम्पूर्ण ज्ञान को प्राप्त कर लिया। और जिसने उस एक परमात्मा को नहीं जाना उसका संसार की अन्य वस्तुओं का ज्ञान अज्ञान के ही समान है।

शब्दार्थ—जांण = ज्ञान।

कवीर एक न जांणियाँ, तौ बहुजांण्याँ क्या होइ।
एकै तैं सब होत है, सवतैं एक न होइ ॥ ९ ॥

सन्दर्भ—सच्चा ज्ञान ब्रह्मज्ञान है। उससे अन्य ज्ञान प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—कवीरदास जी कहते हैं जिसने एक परमात्मा को नही जाना उसका और सव ज्ञान क्या होगा। वह व्यर्थ है। उस एक परमात्मा के ज्ञान से तो और सभी ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं कि और सव ज्ञानो से उस परमात्मा का ज्ञान नहीं होता है।

शब्दार्थ—एक = परमात्मा। वहु = अन्य समस्त ज्ञान।

जव लगि भगति सकांमता, तव लगि निर्फल सेव।
कहै कवीर वै क्यूँ मिलै, निहकांमी निज देव ॥ १० ॥

सन्दर्भ—भक्ति कामनारहित होनी चाहिए।

भावार्थ—जव तक भक्ति मे कामना मिली होती है किसी स्वार्थ के लिए ईश्वर का स्मरण किया जाता है तव तक ईश्वर की सम्पूर्ण सेवा व्यर्थ होती है। कवीरदास जी कहते हैं कि जो ईश्वर निष्काम है उसे तो निष्काम भक्ति से ही प्राप्त किया जा सकता है सकाम भक्ति से वह कैसे मिल सकता है?

शब्दार्थ—सकांमता = कामनामय। निर्फल = निष्फल। निहकांमी = निष्कामी।

आसा एक जु राम की, दूजी आस निरास।
पांणी मांहैं घर करैं, ते भी मरैं पियास ॥ ११ ॥

सन्दर्भ—जीव को सासारिक आशाओ के प्राप्त होने पर भी शांति प्राप्ति नही होती है।

भावार्थ—जिसको एक परमात्मा की आशा है उसके लिए अन्य आशाएं व्यर्थ हैं निराशामात्र है क्योकि उसी एक से सबकी प्राप्ति होती है। सांसारिक कामनाओ का अन्त तो निराशाएं होता है। जो व्यक्ति ईश्वर की आशा को छोड़ कर अन्य की आशा करते हैं वह तो उन लोगो के समान है। जो पानी मे रहकर भी प्यासे मरते हैं।

शब्दार्थ—पाणी = जल।

जें मन लागै एक सूँ, तौ निरबाल्या जाइ।
तूरा दुइ मुखि बाजणाँ, न्याइ तमाचे खाइ ॥ १२ ॥

सन्दर्भ—जीव को अकेले परमात्मा के प्रेम मे मन को लगा देना चाहिए।

भावार्थ—यदि जीव का मन परमात्मा पर ही आसक्त हो जाय तो उसका निर्वाह हो जायगा और यदिवह ईश्वर के अतिरिक्त अन्य का ध्यान करता है तो उसे सांसारिक दुख उसी प्रकार सहन करने पड़ेगे जिस प्रकार तुरही को दोमुखों से बजने के कारण अकारण ही हाथ के प्रहार सहन करने पडते हैं।

शब्दार्थ—निरवाल्या = निर्वाह हो जाएगा। तूरा = तुरही। न्याइ = उचित। बाजणां = बजाने से।

कबीर कलिजुग आइकरि, कीये बहुतज मीत।
जिन दिल बँधी एक सूँ, ते सुखु सोवै नचींत ॥ १३ ॥

सन्दर्भ—जीव यदि परमात्मा को मित्र बना ले तो वह निश्चित हो सकता है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि इस कलियुग मे आकर मनुष्य अनेको मित्रो को बनाता है किन्तु वे सभी दुख देने वाले होते हैं परन्तु यदि एक परमात्मा को मित्र बना लिया जाय तो जीव जीवन पर्यंत निश्चिन्त होकर सो सकता है।

शब्दार्थ—बहुतज = बहुत से। नचीत = निश्चिन्त।

कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाँउँ।
गलै राम की जेवड़ी, जित खैंचे तित जाँउँ ॥ १४ ॥

सन्दर्भ—भक्त को भगवान जिधर खीचता है वह उधर ही चला जाता है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि मैं राम का कुत्ता हूँ और मेरा नाम मुतिया (मुक्त) है मेरे गले मे राम नाम की रस्सी पडी हुई है उस रस्सी को पकड़ कर मेरे स्वामी राम जिधर मुझे घुमाते हैं मैं उधर ही घूम जाता हूँ।

विशेष - रूपक अलंकार।

शब्दार्थ—कूता = कुत्ता। जेवडी = जेवरी = रस्सी।

तो तो करै त बाहुड़ौं, दुरि दुरि करै तो जाउँ।
ज्यूँ हरि राखे त्यूँ रहौं, जो देवै सो खाउँ ॥ १५ ॥

सन्दर्भ - भक्त अपने सारे क्रिया कलाप ईश्वर की इच्छा पर ही करता है।

भावार्थ— यदि ईश्वर मुझ कुत्ते को तू-तू करके बुलाते हैं तो मैं तुरन्त ही उनके समीप पहुँच जाता हूँ और यदि दुरदुरा देते हैं तो मैं दूर चला जाता हूँ। इस प्रकार मैं राम की इच्छा पर ही रहता हूँ। वह जो कुछ खाने को दे देते हैं वही खा लेता हूँ,

शब्दार्थ—वाहुडो = नजदीक।

मन प्रतीत का प्रेम रस, नाँ इस तन मैं ढंग।
क्या जाणौं उस पीव सूं, कैसे रहसी रंग ॥ १६ ॥

संदर्भ - जीवात्मा को चिन्ता है कि वह प्रभु-मिलन के आचार-व्यवहार तक से भी परिचित नहीं है फिर मिलन कैसे होगी।

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि मेरा मन न तो ईश्वर के प्रति अटूट विश्वास रखता है और न प्रेम रस से ही परिपूर्ण है और शरीर भी उसके मिलन के लिए उपयुक्त नही है फिर समझ मे नही आता कि राग-रंग के खेलो मे उस ईश्वर के साथ कैसे प्रवृति होगी।

उस संम्रथ का दास हौं, कदे न होइ अकाज।
पतिव्रता नाँगी रहै, तौ उस ही पुरिस कौं लाज ॥ १७ ॥

संदर्भ—भक्ति पर यदि आपत्ति आयेगी तो ईश्वर के लिए लज्जा का विषय है।

भावार्थ—मैं उस समर्थ पुरुष परमात्मा का सेवक हूँ जो सर्व शक्तिमान है। इस कारण मेरा किसी भी प्रकार अनर्थ नही हो सकता है जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री के नग्न रहने पर उसके पति को ही लज्जा आती है उसी प्रकार मेरे अकाज होने में भी परमात्मा के लिए ही लज्जा का विषय है।

शब्दार्थ—समरथ = सामर्थ्यवान ब्रह्म। कदे = कभी भी।

घरि परमेसुर पाहुणां, सुणौं सनेही दास।
षटरस भोजन भगति करि ज्यूँ कदे न छाँड़ै पास॥ १८॥

संदर्भ—ईश्वर का निवास हृदय में है उसकी सेवा भक्ति पूर्वक करनी चाहिए।

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि हे प्रेमी भक्तो! ध्यान पूर्वक सुनो इस हृदय रूपी घर मे प्रभुरूपी अतिथि पधारे हैं। उसकी सेवा मे भक्ति रूपी षट् रस व्यंजन प्रस्तुत करो ता कि वे प्रसन्न हो कर कभी भी तुम्हारा साथ न छोड़े। सदैव तुम्हारे साथ रहे।

विशेष—रूपक अलंकार।

शब्दार्थ—घरि = घर। पाहुणां = अतिथि।

---

१२. चितावणी कौ अंग

कबीर नौबति आपणीं, दिन दस लेहु बजाइ।
ए पुर पटन ए गली, बहुरि न देखौ आइ॥ १॥

संदर्भ—शरीर क्षण भंगुर है। वैभव थोडे दिन का ही है अंत मे शरीर के साथ वह भी नष्ट हो जायगा।

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि इस क्षण भंगुर संसार मे अपने वैभव का प्रदर्शन थोड़े ही दिन किया जा सकता है। फिर काल जब मृत्यु के मुख्य मे शरीर को सुला देता है तो नगर, बाजार गली कही भी इसके दर्शन नही हो सकेगे।

शब्दार्थ—चितावणी = चेतावनी। नौबत = नगाडा।

जिनकै नौबति बाजती, मैंगल बँधते बारि।
एकै हरि के नावै बिन, गए जन्म सब हारि॥ २॥

संदर्भ—सांसारिक वैभव थोड़े दिनों का ही होता है मरणोपरान्त उसका चिह्न भी नहीं रह जाता है। अतः ईश्वर का नाम स्मरण कर जीवन को सार्थक करना चाहिए।

भावार्थ—जिन लोगों के दरवाजों पर सदैव वैभव सूचक नगाड़े बजा करते थे और मदमस्त हाथी घूमा करते थे। वे वैभवशाली लोग भी ईश्वर के एक नाम के बिना अपने जीवन को संसार में व्यर्थ ही खो बैठे।

शब्दार्थ—मैंगल = मदमस्त हाथी।

ढोल दमामा दुड़ बड़ी, सहनाई संग भेरि।
औसर चल्या बजाइ करि, है कोइ राखै फेरि॥ ३॥

संदर्भ—कोई भी सांसारिक आकर्षण मृत्यु को रोकने में समर्थ नहीं है।

भावार्थ—प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार ढोल, नगाड़ा डुगडुगी, शहनाई तथा भेरी को बजाते हुए मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। उनका वैभव और ऐश्वर्य मृत्यु को रोकने में समर्थ नहीं हो पाता है।

शब्दार्थ—दुडबडी = डुगडुगी।

सातों शबद जु बाजते, घरि घरि होते राग।
ते मन्दिर खाली पड़े, बैसण लागे काग॥ ४॥

संदर्भ—मृत्यु संपूर्ण वैभवों को नष्ट कर देती है।

भावार्थ—जिनके दरवाजे पर सप्तस्वरों का राग बजता था अर्थात् जहाँ वैभव का प्रत्येक उपकरण उपस्थित था आज वे वैभवपूर्ण महल भी खाली पड़े हैं उन पर आज कौए बैठे हुए हैं। उनका समस्त वैभव नष्ट हो गया है।

शब्दार्थ—सातों सबद = सप्त स्वर। बैसण = बैठने लगे।

कबीर थोड़ा जीवड़ा, माड़ै बहुत मँडाण।
सबही ऊभा मेल्हि गया, राव रंक सुलितान॥ ५॥

संदर्भ—मनुष्य जीवन को सुखमय बनाने के लिए नानाविध प्रयत्न करता है और वे सुख के साधन पूर्ण भी नहीं हो पाते कि उसका विनाश हो जाता है।

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि यह जानते हुए भी कि जीवन क्षणिक है मनुष्य आनन्दोल्लास के अनेकानेक उपकरण जुटाता रहता है और कठोर काल के द्वारा वह क्षण भर में ही नष्ट कर दिया जाता है। राव, भिखारी एवं राजा सब इस संसार से विदा हो जाते हैं।

शब्दार्थ--मांड़े बहुत मंडाण = बड़े ठाट-बाट बाँध दिए। उभा = खड़ा। मेल्हि गया = नष्ट हो गया।

इक दिन ऐसा होइगा, सब सूँ पड़ै बिछोह।
राजा राणा छत्रपति, सावधान किन होइ॥ ६॥

सन्दर्भ—संसार से वियोग अवश्यंभावी है इसलिए पहले ही व्यक्ति को सावधान हो जाना चाहिए।

भावार्थ--एक दिन ऐसा अवश्य आयेगा जब कि मनुष्य का सभी से वियोग हो जायेगा। अतएव हे राजाओ! हे छत्र को धारण करने वालो। आप लोग आज ही सावधान क्यो नही हो जाते। ताकि बाद मे पश्चाताप न करना पडे।

शब्दार्थ--किन = क्यो नही।

कबीर पटण कारिवाँ, पंच चोर दस द्वार।
जय राँणों गढ़ भेलिसी, सुमिरि लै करतार॥७॥

संदर्भ--साग रूपक के द्वारा शरीर पर यमराज के आक्रमण को स्पष्ट किया गया है।

भावार्थ--कवीरदास जी का कहना है कि यह शरीर रजी सार्थवाह है जो आत्मा रूपी धन को लेकर चल रहा है। इसके साथ पाच चोर (काम, क्रोध, लोभ मद, मोह) इस धन को चुराने के लिए चल रहे हैं। दस छिद्रो (५ कर्मेन्द्रियाँ और ५ ज्ञानेन्द्रियाँ) के होने के कारण इस शरीर रूपी कारवाँ की दशा और भी शोचनीय हो रही है यमराज इस दुर्ग को नष्ट करने के लिए इस पर आक्रमण अवश्य करेगा अतः ईश्वर का स्मरण करना चाहिए तभी रक्षा हो सकती है।

शब्दार्थ—पाटण – नगर, शरीर। कारिवाँ = कारवाँ, सार्थवाह। पच चोर = काम क्रोध, मद, लोभ, मोह। दसद्वार = दस छिद्र (दस इन्द्रिया = ५ कर्मेन्द्रियाँ ५ ज्ञानेन्द्रियाँ। जमराणैं = यमराज। भेलिसी = नष्ट करेगा।

कबीर कहा गरबियौं, इस जीवन की आस।
टेसू फूले दिवस चारि, खंखर भये पलास॥८॥

संदर्भ—क्षण भंगुर जीवन में अभिमान नही करना चाहिए।

भावार्थ—कवीरदास जी कहते हैं कि इस नश्वर शरीर और जीवन की आशा मे मनुष्य को घमण्ड नहीं करना चाहिए। जिस प्रकार पलाश के वृक्ष मे चार दिन के लिए अर्थात् थोड़े समय के लिए टेसू (पलाश के फूल) आ जाते हैं वह हरा-

भरा हो जाता है और फिर वह ठूंठ का ठूंठ ही रह जाता है। ठीक उसी प्रकार यह जीवन भी थोड़े दिनों तक आभा बिखेर कर नष्ट हो जाता है।

शब्दार्थ—खंखर = नष्ट हो जाते हैं।

कबीर कहा गरबियौ, देही देखि सुरंग।
बीछड़ियाँ मिलिबौ नहीं, ज्यूँ काँचली भुवंग ॥६॥

संदर्भ—शरीर को छोडने के बाद आत्मा उसमे प्रविष्ट नही होती इसलिए जीव को गर्व नही करना चाहिए।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि सुन्दर शरीर को पाकर-देखकर उस पर गर्व नही करना चाहिए क्योंकि जिस प्रकार सर्प केंचुली को छोडने के बाद पुनः उसे नही धारण करता है उसी प्रकार आत्मा भी इस शरीर को छोड देने के बाद फिर उसमे नही प्रविष्ट होती है।

शब्दार्थ—सुरग = सुन्दर। बीछडिया = वियुक्त होने पर।

कबीर कहा गरबियौ, ऊँचे देखि अवास।
काल्हि परयू भ्वै लेटणां, ऊपरि जामें घास ॥१०॥

संदर्भ—सासारिक ऐश्वर्य पर गर्व नही करना चाहिए।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि ऊंचे-ऊंचे अट्टालिकाओ को देखकर उस पर गर्व नही करना चाहिए। जीव यह नही जानता कि शीघ्र ही उसे कब्र में लेटना पडेगा और कब्र के ऊपर घास उग आएगी तेरा सारा वैभव नष्ट हो जायेगा।

शब्दार्थ—अवास = घर। भ्वै = भू = पृथ्वी पर।

कबीर कहा गरबियौं, चाँम पलेटे हड्ड।
हैं वर ऊपरि छत्र सिरि, ते भी देवा खड्ड ॥११॥

संदर्भ—जीवन की नश्वरता का संकेत है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि चर्म से ढंकी हुई हड्डियों के सौंदर्य पर गर्व करना ठीक नही है। जो लोग श्रेष्ठ घोडो पर बैठकर और सिर पर छत्र-धारण कर चलते हैं वे भी एक दिन कब्र मे चले जाते हैं।

शब्दार्थ—हैवर (हय + वर) श्रेष्ठ घोडा। देवा = दिए जायेंगे।

कबीर कहा गरबियौ, काल गहै कर केस।
नाँ जाणौं कहाँ मारिसी, कै घरि कै परदेस ॥१२॥

संदर्भ—मृत्यु एक न एक दिन सभी को नष्ट कर देती है अतः मनुष्य को गर्व नही करना चाहिए।

भावार्थ—कबीर कहते हैं कि हे जीव तेरे बालो को मृत्यु अपने हाथो मे पकड़े हुए है फिर भी तू व्यर्थ मे गर्व क्यो करता है। यह भी पता नहीं कि वह मृत्यु तुझे घर मे या परदेश मे कहाँ मारेगी।

यहु ऐसा संसार है, जैसा सैंबल फूल।
दिन दस के व्यौहारकौ झूठै रंगि न भूलि ॥१३॥

सन्दर्भ—सेमर की फूल की भाँति इस नश्वर संसार पर गर्व करना उचित नही है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि यह संसार उसी प्रकार है जिस प्रकार सेमर के फूल। सेमर का फूल ऊपर से ही आकर्षक होता है भीतर उसमे कोई तत्व नही होता है। इस थोड़े दिन के जीवन मे इसके झूठे दिखावे मे मनुष्य को अपनी वास्तविकता को नही भूल जाना चाहिए।

शब्दार्थ—सैंवल = सेमर का पुष्प। झूठै रगि = झूठे आकर्षण। विशेष = उपमा अलंकार।

जांमण मरण विचारि करि, कूड़े कांम निबारि।
जिनि पंथूं तुझ चालणां, सोई पंथ सँवारि ॥१४॥

संदर्भ—वासना प्रेरित कुमार्ग को छोड़कर मनुष्य को सुमार्ग को अपनाना चाहिए।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि हे मनुष्य! तू जीवन मरण (आवागमन) को गम्भीरतापूर्वक विचार कर वासना जन्य कुकर्मों का परित्याग कर दे। जिस प्रभु-भक्ति के मार्ग पर तुझे अंततः चलना है तू उसे अभी से अपना ले।

शब्दार्थ—जामण = जन्म। कूडे—बुरे। चाल = चलना है संवारि = संभाल ले।

विन रखवाले वाहिरा, चिड़ियैं खाया खेत।
आधा प्रधा ऊवरै, चेति सकै तो चेति ॥१५॥

सन्दर्भ—जीव को सावधानी से मोक्ष-प्राप्ति का प्रयास करना चाहिए।

भावार्थ—हे मनुष्य! सतगुरु रूपी रक्षक के अभाव मे तेरे मोक्ष रूपी खेत को कुछ तो काम क्रोधादि रूपी पाँच चोरो ने उडा लिया और कुछ वासना रूपी

चिडियो ने खा लिया। अब भी यदि मंगल चाहता है तो सावधान होकर प्रभु-भक्ति मे प्रवृत्त होकर उसको थोडा बहुत बचा ले।

शब्दार्थ—रखवाले = रक्षक, गुरु। चिडियै = वासना या माया के पक्षी। आधा प्रधा = थोडा बहुत।

हाड़ जलै ज्यूं लाकड़ी; केस जलै ज्यूँ घास।
सब तन जलता देखि करि, भया कबीर उदास ॥१६॥

सन्दर्भ—शरीर की क्षण भंगुरता देखकर कबीर को विरक्ति हो गयी है।

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि मरणोपरान्त इस शरीर की हड्डियाँ लकडी की भाँति और केश घास की तरह चिता के ऊपर जलते हैं। इस प्रकार समस्त शरीर को जलता हुआ देखकर कबीर दास यह समझकर कि इस जीवन मे कुछ नही है इससे विरक्त हो गये।

कबीर मन्दिर ढहि पड़्या, सैंट भई सैंवार।
कोइ चेजारा चिणि गया, मिल्या न दूजी वार ॥१७॥

संदर्भ—शरीर के नष्ट होने पर इसका बनाने वाला कारीगर इसकी मरम्मत नही करता वह बेकार ही हो जाता है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि सैकडो वार काम क्रोधादि रूपी चोरों ने इस शरीर रूपी मकान मे सेंध लगाई है। जिसके कारण यह पूर्ण रूप से ढह कर गिर गया है। इसको चुनकर बनाने वाला कारीगर एक वार तो बना गया किन्तु दुबारा बनाने के लिए वह नही मिला।

शब्दार्थ—चेजारा = चुनने वाला, राज।

कबीर देखत ढहि पड़्या, ईंट भई सेंवार।
करि चिजारा सौं प्रीतिड़ी, ज्यूं ढहै न दूजी वार ॥१८॥

सन्दर्भ—ईश्वर से प्रेम करने पर मानव शरीर आवागमन मे मुक्त होकर अमरता को प्राप्त होता है।

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि शरीर रूपी भवन की प्रत्येक ईंट-ईंट मे सेंध लगा दी गई है जिससे छिन्नभिन्न होकर यह भवन ढह गया है। इसलिए उस चिरन्तन प्रभु रूपी कारीगर से प्रेम कर जिससे दूसरी बार यह शरीर रूपी भवन फिर न ढह जाय।

शब्दार्थ—प्रीतिड़ो = प्रेम ।

कबीर मन्दिर लाष का, जड़िया हीरैं लालि ॥
दिवस चारि का पेषणां, बिनस जाइगा काल्हि ॥१६॥

सन्दर्भ—शरीर की साज सज्जा चन्द दिनो की है उसके बाद यह नष्ट हो जायेगा ।

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि यह शरीर रूपी मंदिर लाख का बना हुआ है इसमे हीरे और लाल जड़े हुए हैं यह देखने मे बहुत आकर्षक है किन्तु इसका यह आकर्षण शीघ्र ही नष्ट हो जायेगा और यह (पाण्डवो के) लाक्षा गृह के कि समान जलकर नष्ट हो जाएगा ।

शब्दार्थ—लाष = लाक्षा, लाख ।

कबीर धूलि सकेलि करि, पुड़ी ज बाँधी एह ।
दिवस चारि का पेषणां अन्ति षेह की षेह ॥२०॥

सन्दर्भ—रूपक के द्वारा शरीर की क्षण भंगुरता के प्रति संकेत है ।

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि यह मानव शरीर धूल को इकट्ठा करके पुडिया के समान बाँध दिया गया है । इसकी साज-सज्जा कुछ ही दिनो की है और अन्त मे यह जिस मिट्टी से बना है उसी मिट्टी के रूप मे परिवर्तित हो जाएगा ।

शब्दार्थ—सकेलि = एकत्रित कर । पुडी = पुडिया षेह = धूल ।

कबीर जे धन्धै तौ धूलि, बिन धधै धूलै नहीं ।
तैं नर बिनहे मूलि, जिनि, धंधै मै ध्याया नहीं ॥२१॥

सन्दर्भ—प्रभु प्राप्ति संसार मे रहकर ही सम्भव है ।

भावार्थ—कबीर का कहना है कि जो मनुष्य इस संसार मे सत्कर्मों में प्रवृत्त रहते हैं उनकी आत्मा स्वच्छ हो जाती है क्योंकि बिना कर्मों के आत्मा स्वच्छ नही हो सकती । वे मनुष्य तो जाते ही नष्ट हो गये जो इस संसार मे कर्मों मे प्रवृत्त होते हुए ईश्वर का स्मरण नही करते ।

शब्दार्थ—धधै = कर्म । धूलि = धुलना । बिनठे = नष्ट हो गये ।

कबीर सुपनैं रैनि कै, उघड़ि आए नैंन ।
जीव पड्या बहु लूटि मैं, जागै तौ लैंण नदैण ॥२२॥

सन्दर्भ—अज्ञान के कारण ही जीव माया के भ्रम मे पड़ा रहता है किन्तु ज्ञान रूपी जागृति होने पर वह माया के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि जीवात्मा के अज्ञान रूपी रात्रि में सोते-सोते सहसा नेत्र खुल गये। सुप्तावस्था मे वह नाना प्रकार के लेन देन मे पडा हुआ था और जागते ही (ज्ञान प्राप्त होते ही) यह संसार के लेन देन से मुक्त हो गया।

कबीर सुपनैं रैनिकै, पारस जीय मैं छेक।
जे सोऊँ तौ दोइ जणां, जे जागूं तौ एक ॥२३॥

सन्दर्भ—ब्रह्म और जीव का भेद माया के कारण ही होता है। ज्ञान प्राप्त हो जाने पर यह भेद समाप्त जो जाता है।

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि अज्ञान रूपी रात्रि मे माया के स्वप्न देखने के कारण पारसरूप ब्रह्म और जीव मे अन्तर स्थापित हो गया। यही कारण है कि अज्ञान की सुषुप्तावस्थाये मुझमे और परमात्मा मे भेद हो जाता है और ज्ञान की जागृतावस्था मे कोई भेद नही रहता एकरूपता स्थापित हो जाती है।

शब्दार्थ—छेक = भेद।

कबीर इस संसार में, घणें मनिष मत हीण।
रांम नांम जांणें नहीं, आया टापा दीन ॥२४॥

सन्दर्भ—ढोंगियो और तिलकधारियो के प्रति व्यग्य है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि इस संसार मे अनेको मनुष्य बुद्धि-हीन हैं वह राम नाम के वास्तविक तत्व को न जान कर तिलक आदि लगाकर ही ईश्वर-भक्त बनना चाहते हैं। संसार को धोखा देना चाहते हैं।"

शब्दार्थ—घणे = अत्यधिक। टापा = झांसा देना, धोखा देना।

कहा कियौ हम आइ करि, कहा कहेंगे जाइ।
इत के भये न उतके, चाले मूल गँवाइ ॥२५॥

सन्दर्भ—जीव इस संसार मे आकर परलोक सुधारने के कर्म कम करता है।

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि हमने इस संसार मे आकर आत्मा की मुक्ति के लिए कौन-कौन से कर्म किए हैं जिनको कि मरने के बाद ईश्वर के सम्मुख

बतलायेंगे। हमने न तो ऐसे कर्म किये हैं जिनसे इस लोक का जीवन सुधरता और न ऐसे सत्कर्म किए हैं कि परलोक का मार्ग ही सुधरता। अतः हम तो कही के न हुए जो पवित्र आत्मा परमात्मा से प्राप्त हुई थी वह भी गंवा बैठे।

आया अण आया भया, जे बहुरता संसार।
पड़्या भुलांवां गाफिला, गये कुबधी हारि ॥२६॥

सन्दर्भ—जो व्यक्ति संसार मे आकर माया के आकर्षण मे ही पड़े रहते हैं उनका जीवन व्यर्थ हो जाता है।

भावार्थ—इस संसार मे आकर जो व्यक्ति नाना प्रकार के सासारिक आकर्षणो मे आकर पड़ जाते हैं वह संसार मे आकर भी न आने के समान मृत तुल्य है। वह भ्रम मे पडा हुआ बेहोश है और दुष्ट बुद्धि पराजित हो चुके हैं।

शब्दार्थ—अण आया = न आने के समान। भुलांवा = भ्रम मे। कुबुधी = बुरी बुद्धि।

कबीर हरि की भगति बिन, धिग जीवण संसार।
धूँवा केरा धौलहर, जात न लागै बार ॥२७॥

सन्दर्भ—प्रभु भक्ति के बिना जीवन धारण व्यर्थ है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि ईश्वर भक्ति के बिना इस संसार मे जीवित रहना घृणा स्पद है। मनुष्य को प्रभु भक्ति करनी ही चाहिए क्योकि यह शरीर धुएं के महल के समान हैं जिसके बिगड़ने मे तनिक भी देर नही लगती है।'

विशेष—(१) उपमा अलंकार

(२) 'धुआं कैसे धौलहर देखि तू न भूलिरे।'

विनय पत्रिका मे तुलसी ने भी इसका प्रयोग किया है।

शब्दार्थ—धिग = धिक्कार। धौलहर = महल। जात = नष्ट होते।

जिहि हरि की चोरी करी, गये राम गुंण भूलि।
ते बिधना बागुल रचे, रहे अरध मुखि भूलि ॥२८॥

सन्दर्भ—प्रभु भक्ति के बिना जीवन व्यर्थ होता है।

भावार्थ—जिन मनुष्यो ने इस संसार मे आकर ब्रह्म के प्रति भी विश्वास-घात किया है उसके गुणो को भूल जाते हैं। उन्हीं को विधाता बगुले का जन्म दे देता है जो लज्जावश अपना मुख नीचा किये खडे रहते है।

माटी मलणि कुंभार की घणी सहै सिरि लाव।
इहि औसरि चेत्या नहीं, चूका अब की घात ॥२६॥

सन्दर्भ—जो मनुष्य इस संसार मे आकर आवागमन के चक्र से छूटने के लिए प्रयास नही करता वह फिर मुक्त नहीं हो पाता है।

भावार्थ—जिस प्रकार कुम्हार की मिट्टी को मनते समय अनेको लातें खानी पड़ती हैं ठीक उसी प्रकार मनुष्य को भी नाना प्रकार की यातनाये भोगनी पड़ती हैं इस लिए हे जीव यदि तू इस जन्म मे सावधान नही हुआ तो पुन: इस प्रकार का स्वर्णिम अवसर मिलना मुश्किल है।

इहि औसरि चेत्या नहीं, पसु ज्यूं पाली देह।
राम नाम जांण्यां नहीं, अंति पड़ी मुख पेह ॥३०॥

सन्दर्भ—मनुष्य योनि मे जो अपने को मुक्त न कर सका उसका जीवन ही नष्ट हो जाता है।

भावार्थ—इस मनुष्य योनि मे जिस व्यक्ति को चेत नही आया, परलोक को सुधारने की चेष्टा नही की और पशुओ के समान देह को ही पालता रहा अर्थात् पाशविक प्रवृत्तियो मे ही लगा रहा। जीवन भर राम के महत्व को न पहिचान पाने के कारण अन्त समय मे तुझे नष्ट होकर मिट्टी मे मिल जाना पड़ेगा।

शब्दार्थ—पेह = मिट्टी, धूल।

रांम नांम जांण्यौं नहीं, लागी मोटी पोड़ि।
काया हांडी काठकी, ना ऊं चढ़ै बहोड़ि ॥३१॥

सन्दर्भ—मनुष्य जीवन बार-बार नही मिलता अतः प्रभु-भक्ति इसी जीवन में कर लेनी चाहिए।

भावार्थ—जीवन भर राम नाम के महत्त्व को नहीं जाना। सांसारिक प्रपंचो की मोटी तह जमा हो गई जिस प्रकार काठ की हांडी एक ही बार चढ़ाई जा सकती है दुबारा वह चढ़ाने योग्य नहीं रह जाती है इसी प्रकार यह शरीर भी दुबारा प्राप्त नहीं हो सकता है।

शब्दार्थ—पोढ़ि = पोत। बहोड़ि = बहोरि = पुन. दूसरी बार।

राम नाम जांण्यां नहीं, बात बिनंठी मूल।
हरत इहां ही हारिया परति पड़ी मुख धूलि ॥३२॥

संदर्भ—मनुष्य को अपनी शक्ति संसार के व्यर्थ कार्यों मे नष्ट न कर प्रभु भक्ति मे ध्यान लगाना चाहिए।

भावार्थ—हे जीवात्मा ! तूने राम नाम के तत्व को नही जाना और इस प्रकार जड़ से ही बात को बिगाड़ दिया। व्यर्थ के सासारिक धन्धो मे तू यहाँ पर ईश्वर को ही हार गया अब मरने के अवसर पर तेरे मुख मे धूलि के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ?

शब्दार्थ—विनेटी = नष्ट कर दी।

राम नाम जाण्याँ नहीं, पाल्यो कटक कुटुम्ब।
धन्धा ही में मरि गया, बाहर हुई न बम्ब ॥३३॥

सन्दर्भ—सासारिक झंझटो मे जीवन का अन्त हो जाता है किन्तु अहंकार के कारण राम नाम का स्मरण नही हो पाता है।

भावार्थ—हे जीवात्मा ! तुमने राम नाम का स्मरण नही किया। सेना के समान अपने कुटुम्ब के पालन मे ही 'जूझना रहा। इस प्रकार सासारिक झंझटो मे उलझते हुए जीवन का अंत हो गया किन्तु अहंकार से मुक्ति फिर भी न मिली।

शब्दार्थ—कटक = सेना। बंब = नगाड़ा, यहाँ अहं से तात्पर्य है।

मनिषा जनम दुर्लभ है, देह न बांरम्बार।
तरवर थैं फल झड़ि पड़्या, बहुरि न लागै डार ॥३४॥

सन्दर्भ—मनुष्य का जन्म बार-बार नही प्राप्त होता है।

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि यह मानव जन्म बडी कठिनाई से प्राप्त होता है और यह शरीर बारम्बार नही प्राप्त होता है। जिस प्रकार एक बार वृक्ष से फल गिर जाने के बाद उसी शाखा मे फिर से नही लग सकता उसी प्रकार मनुष्य देह भी दुबारा नही मिल पाती है।

शब्दार्थ—मनिषा = मानव का।

कबीर हरि की भगति करि, तजि विषिया रस चोज।
बार-बार नहीं पाइये, मनिषा जन्म की मौज ॥३५॥

सन्दर्भ—मानव जन्म के बार-बार न मिल पाने के कारण जीव को ईश्वर स्मरण मे समय व्यतीत करना चाहिए।

भावार्थ—कबीर का कहना है कि मानव जन्म-प्राप्ति का सौभाग्य बारम्बार प्राप्त नही होता अतः हे जीवात्मा। विषय वासना युक्त माया पूर्ण क्षणिक

आनन्द और सुखो का परित्याग कर प्रभु भक्ति में प्रवृत्त होगा वही वास्तविक आनन्द है।

शब्दार्थ—रस चोज = आनन्दोल्लास।

कबीर यहु तन जात है, सकै तौ ठाहर लाइ।
कै सेवा करि साधकी, कै गुण गोविन्द के गाइ ॥३६॥

सन्दर्भ—जीव को प्रभु भक्ति और सत्संगति करनी चाहिए।

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि यह शरीर नश्वर है शीघ्र ही नष्ट हो जाने वाला है अतः यदि तू इसे उचित कार्य मे लगा सके तो लगा ले। या तो तू साधुओ की सेवा मे अपने मन और शरीर को लगा दे या फिर परमात्मा के गुणानुवाद कर ताकि तेरा परलोक सुधर जाय।

विशेष—तुलसी ने भी लिखा है कि—

"बिनु सत्संग विवेक न होई।
राम कृपा बिन सुलभ न सोई ॥"

—मानस

शब्दार्थ—ठाहर लाइ = उचित कार्य मे लगाना।

कबीर यह तन जात है, सकै तौ लेहु बहोडि।
नागे हाथूँ ते गये, जिनकै लाख करोड़ि ॥ ३७ ॥

सन्दर्भ—परलोक का ध्यान रखना जीवात्मा का परम लक्ष्य है।

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि यह शरीर व्यर्थ मे ही नष्ट होता जा रहा है अब भी यदि इसका उद्धार करना चाहो तो अच्छे कर्मों मे प्रवृत्त करो ससार मे माया के पीछे बावला बना क्यों फिरता है जिनके पास लाखो और करोड़ो की सम्पदा थी वह भी मृत्यु के समय खाली हाथ ही यहाँ से नंगे गये।

विशेष —(१) दृष्टान्त अलकार।
(२) तुलना कीजिए।

इकट्ठे गर जहाँ जर सभी मुल्कों के माली थे।
सिकन्दर जब चला दुनिया से दोनों हाथ खाली थे।

शब्दार्थ—बहोडि = बहोरि = पुनः। नागे = नंगे।

यह तनु काचा कुंभ है, चोट चहूँ दिसि खाइ।
एक राम के नांव बिन, जदि तदि प्रलै जाइ ॥ ३८ ॥

संदर्भ—ईश्वर के नाम-स्मरण के बिना इस शरीर को नानाविधि यातनाएं भोगनी पड़ती हैं।

भावार्थ—जिस प्रकार कुम्भकार का कच्चा घडा कुम्भकार की थपकी की चोट खाता रहता है उसी प्रकार यह शरीर भी सासारिक यातनाओ को सह रहा है.। केवल राम नाम के अवलम्ब के विना यह जव तब संसार मे जन्म लेकर नाना प्रकार के कष्ट पाता है।

विशेष:—रूपक अलंकार।

शब्दार्थ—जदि तदि = जब तब ।

> यह तन काचा कुंभ है, लियां फिरै था साथि।
> ढ़बका लागा फूटि गया, कछू न आया हाथि ॥ ३६ ॥

संदर्भ—शरीर का भविष्य अनिश्चित है।

भावार्थ—कुम्भकार का कच्चा घड़ा जिसे वह हाथ में लिए रहता है कोमल होने के कारण तनिक सी चोट लगने के कारण फूट जाता है और अस्तित्वहीन होने के कारण फिर हाथ मे कुछ नही रहता उसी प्रकार इस शरीर का भविष्य भी अनिश्चित होता है यह भी किसी समय नष्ट हो सकता है और नष्ट होने पर कुछ भी हाथ मे नहीं आता है।

शब्दार्थ—ढवका = हल्की सी चोट ।

> काँची कारी जिनि करै, दिन दिन बधै बियाधि ।
> राम कबीरै रुचि गई, याही ओषदि साधि ॥ ४० ॥

संदर्भ--सासारिक तापो की औषधि एक मात्र प्रभु भक्ति ही है।

भावार्थ—हे जीवात्मा ! तू अपनी शरीर रूपी केंचुली को वासना से मत कलकित कर। काल रूपी शिकारी दिन प्रति दिन तुझे मार रहा है। कबीर दास जी ने तो अपनी रुचि ईश्वर भक्ति की ओर मोड दी है। हे प्राणी ! तू भी उसी औषधि का सेवन कर।

शब्दार्थ—कांची = केचुली। बियाधि = बहेलिया, शिकारी।

> कबीर अपने जीव तैं, ऐ दोइ वातैं धोइ।
> लोभ वड़ाई कारणैं, अछता मूल न खोइ ॥ ४१ ॥

संदर्भ—लोभ और दर्प से ही प्रभु भक्ति मे बाधा पड़ती है।

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि हे जीव ! तू अपने मन से दो बातो को बिल्कुल निकाल दे एक तो लोभ और दूसरे आत्म-प्रशसा से उत्पन्न अहंकार । इन्ही दो वस्तुओ के कारण अपने अमूल्य धन परमात्मा को मत खो ।

शब्दार्थ—जीवतैं = मन से । अछता = पास का ।

> खंभा एक गइंद दोइ, क्यूं करि बंधिसि बारि ।
> मानि करै तौ पीव नहीं, पीव तौ मानि निवारि ॥ ४२ ॥

सन्दर्भ—प्रभु-भक्ति और अहं की भावना दोनो साथ-साथ नही रह सकते हैं ।

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि हे जीव ! तेरे पास हृदय रूपी खम्भा तो एक है और उस खम्भे मे बांधने के लिए दो हाथी प्रभु-भक्ति और अहं हैं । वे दोनो एक ही खभे से कैसे बांधे जा सकते हैं । यदि तू अहं की सम्मान की रक्षा करना चाहेगा तो प्रभु प्राप्ति नही पावेगी और यदि प्रियतम—परमात्मा—को प्राप्त करना चाहेगा तो अहं का परित्याग करना पड़ेगा ।

शब्दार्थ—गइद = गयंद = हाथी ।

> दीन गँवाया दुनीं सौं, दुनी न चाली साथि ।
> पाँइ कुहाड़ा मारिया, गाफिल अपणै हाथि ॥ ४३ ॥

सन्दर्भ—ससार के आकर्षण मरते समय नही काम देते हैं उस समय तो प्रभु-भक्ति ही काम देती है ।

भावार्थ—जीवात्मा ने सासारिक माया आकर्षणो मे लिप्त रह कर प्रभु को भुला दिया किन्तु मरने पर वह सासारिक प्रलोभन एक भी जीव के साथ नहीं जाते हैं । इस प्रकार जीवात्मा ने गाफिल होकर स्वय अपने पैरों मे कुल्हाड़ी मार ली है अपनी उन्नति का मार्ग अवरुद्ध कर लिया है ।

शब्दार्थ—दीन = धर्म । दुनी = दुनिया ।

> यहु तन तौ सब बन भया, करम भए कुहाड़ि ।
> आप आप कूँ काटि हैं, कहै कबीर बिचारि ॥ ४४ ॥

सन्दर्भ—कर्मों का फल जीव को भोगना पड़ता है ।

भावार्थ—यह सम्पूर्ण शरीर वन के समान है और इसको काटने के लिए जीव के कर्मों की कुल्हाड़ी प्रस्तुत है । कबीर दास जी विचार कर कहते हैं कि जीव

अपने कर्मों की कुल्हाडी से अपने ही शरीर को काट रहा है। जीवन को नष्ट कर रहा है।

विशेष—(१) तुलना कीजिए—

"कोउ न कहु सुख दुख कर दाता।
निज कृत कर्म भोग सुनु भ्राता॥"

—मानस

(२) रूपक अलंकार।

शब्दार्थ—कुहाडि = कुल्हाडा।

कुल खोयां कुल ऊबरै, कुल राख्यां कुल जाइ।
राम निकुल कुल मेंटि लै, सब कुल रह्या समाइ॥ ४५॥

सन्दर्भ—माया जन्य आकर्षणो को भुलाकर ही ब्रह्म-प्राप्ति संभव है।

भावार्थ—सासारिक वैभवो का त्याग करके ही सार तत्व ब्रह्म की प्राप्ति संभव है और यदि सासारिक वैभवो की ही रक्षा का प्रयास किया गया तो ईश्वर-प्राप्ति असम्भव है इसलिए हे जीव! तू सांसारिक आकर्षणो से विरक्त होकर ब्रह्म से मिल ले क्योकि सारा संसार उसी मे समाया हुआ है।

विशेष—कुल के दो अर्थ होने से यमक अलंकार।

शब्दार्थ—कुल = सासारिक वैभव। कुल = सारतत्व प्रभु। निकुल = कुल रहित होकर, सासारिक प्रलोभनो से विरक्त होकर। कुल = समस्त आनद के साधन।

दुनिया के धोखै मुवा, चलै जु कुल की कांणि।
तब कुल किसका लाजसी, जब ले धर्या मसांणि॥ ४६॥

सन्दर्भ—जीव ने यदि प्रभु-भक्ति, साधु सेवा आदि सुकृत्य किये होते तो उसका नाश न होता।

भावार्थ—जो व्यक्ति कुल की मर्यादा आदि के प्रपंचो को लेकर चला वह सांसारिक भ्रमो का शिकार होकर मर गया। मृत्यु हो जाने पर जब शव को ले जाकर श्मशान की अपवित्र भूमि मे रख दिया जाता है तब किसका कुल लज्जित होता है? अर्थात् किसी का नहीं।

शब्दार्थ—कांणि = मर्यादा, गौरव। लाजसी = लज्जा करता है। मसांणि = श्मशान।

दुनियाँ भाँडा दुख का, भरी मुहांमुह भूप।
अदया अलह राम की, कुरहै ऊँणीं कूप ॥ ४७ ॥

सन्दर्भ—सब कुछ राम की कृपा से ही प्राप्त होता है।

भावार्थ—यह संसार और कुछ नही केवल दुखो का पात्र (स्थान) है जो नीचे से ऊपर तक अभावो से पूर्ण रूपेण भरा हुआ है। श्रेष्ठ राम और अल्लाह की कृपा के बिना बड़े-बडे कोषागारो के रहते हुए भी जीवात्मा को अभावो का शिकार होना पडता है।

शब्दार्थ—भांडा = बर्तन। अदया = कृपा बिना। अलह = अल्लाह।

जिहि जेवणी जग बँधिया, तू जिनि बधें कबीर।
ह्वैसी आटा लूँण ज्यूँ, सोना सेवा शरीर ॥४८॥

सन्दर्भ—माया के बंधन मे पड़ने से जीव की मुक्ति नही होती है। उसे आवागमन, के चक्र मे पडकर सासारिक यातनएं सहनी पडती हैं।

भावार्थ—कबीरदास जी अपने को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि जिस माया की रस्सी से सारा ससार बंधा हुआ है उससे तू अपने को मत बांध अर्थात् तू माया के प्रलोभन मे न पडा। जिस प्रकार आटे की लोई को हाथो के मुक्के सहने पडते हैं उसी प्रकार तू भी कंचन के समान शुद्ध शरीर का होकर भी माया के वश मे होकर सासारिक यातना के प्रबल आघातो को बारम्बार सहेगा।

शब्दार्थ—जेवडी = रस्सी, माया बंधन। लूंण = आटे की लोई।

कहत सुनत जग जात है, विषै न सूझै काल।
कबीर प्याले प्रेम कै, भरि भरि पिवै रसाल ॥४९॥

संदर्भ—माया के परिणाम को जान सुनकर के भी जीव उसके आकर्षण मे मुक्त नही हो पाता है।

भावार्थ—इस ससार के सभी प्राणी माया से मुक्त होने का उपदेश देते और सुनते हुए भी एक-एक कर उसी विषय वासना के मार्ग पर चलते जाते हैं उसमें उन्हें अपना विनाश दिखाई ही नहीं देता किन्तु कबीर ऐसे साधु व्यक्ति प्रभु-प्रेम रस के प्यालो को भर-भर कर पी रहे हैं और अमित आनन्द की प्राप्ति कर रहे हैं।

शब्दार्थ—विषै = विषय वासना।

कबीर हद के जीव सूँ, हित करि मुख्यां न बोलि।
जे लागे बेहद सूँ, तिन सूँ अंतर खोलि ॥५०॥

संदर्भ—प्रभु भक्तो से ही अन्तःकरण की बात कहनी चाहिए ।

भावार्थ— कबीरदास जी कहते हैं, कि संसार के माया मे लिप्त प्राणियो से प्रेम पूर्वक वार्तालाप नही करना चाहिए । इसके अतिरिक्त जो असीम परमात्मा की प्राप्ति में सन्नद्ध हैं ऐसे प्रभु-भक्तो से अपने अन्तःकरण की बात भी कह देनी चाहिए ।

शब्दार्थ—हद के जीव सूं = सांसारिक मनुष्य से बेहद = असीम, निस्सीम ।

> **कबीर केवल राम की, तूँ जिनि छाड़ै ओट ।**
> **घण अहरणि विधि लोइ ज्यूँ, घणीं सहैं सिर चोट ॥५१॥**

सन्दर्भ—प्रभु = आश्रय से विमुक्त प्राणियो को नानाविध यातनाएं सहनी पड़ती हैं ।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि हे जीवात्मा । तू राम का परमात्मा का आश्रय कभी मत छोड और यदि तू ब्रह्म को विस्मृत कर देगा तो जिस प्रकार घन और छेनी के बीच लोहे को अनेको चोटें सहनी पड़ती हैं उसी प्रकार तुझे भी नाना प्रकार की सासारिक यातनाए सहनी पड़ेगी ।

शब्दार्थ—अहरणि = छेनी ।

> **कबीर केवल राम कहि, सुध गरीबी झालि ।**
> **कूड़ बड़ाई कूड़सी, भारी पड़सी काल्हि ॥५२॥**

संदर्भ—राम नाम को भुलाकर झूठे बडप्पन मे डूब जाने से जीव को बड़े कष्ट सहन करने पडते हैं ।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि हे जीव ! तू राम नाम का स्मरण करते हुए अपनी गरीबी मे ही प्रसन्न रह । भवसागर मे डुबाने वाले मिथ्या सासारिक वैभवो मे यदि तू पड गया तो भविष्य मे तेरे ऊपर भारी विपत्ति आवेगी और निश्चित रूप से तेरा पतन होगा ।

शब्दार्थ—झालिह = झेलने । कूड = व्यर्थ के, मिथ्या ।

> **काया मंजन क्या करै, कपड़ धोइम धोइ ।**
> **उजल हुआ न छूटिये, सुख नींदड़ीं न सोइ ॥ ५३ ॥**

सन्दर्भ—शरीर और कपडो की शुद्धता से ही आत्मा पवित्र नही होती । मन की शुद्धि ही वास्तविक शुद्धि है ।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि हे जीव ! तू कपडो को धो-धोकर शरीर को स्वच्छ कर रहा है किंतु ऐसी सफाई से क्या लाभ ? वास्तविक पवित्रता आंतरिक पवित्रता है। इस बाह्य स्वच्छता से संसार से मुक्ति नहीं होगी इसलिए सुख की निद्रा मे मत पड़ा रह।

शब्दार्थ—मंजन = स्नान। छूटिए = मुक्त होना।

ऊजल कपड़ा पहरि करि, पान सुपारी खाँहि।
एकै हरि का नाँव बिन, बाँधे जमपुरि जाँहि॥ ५४॥

सन्दर्भ—ईश्वर के नाम स्मरण के विना जीवको यमपुर की यातनायें भुगतनी पड़ती हैं।

भावार्थ—जो व्यक्ति श्वेत स्वच्छ वस्त्र धारण कर पान सुपारी खाकर अपना जीवन व्यतीत करते रहते हैं वे एक ईश्वर के नाम-स्मरण के बिना यमपुर के बंधनो मे जकड दिए जाते हैं।

तेरा संगी को नहीं, सब स्वारथ बँधी लोइ।
मन परतीति न ऊपजै, जीव बिसास न होइ॥ ५५॥

संदर्भ—विना ईश्वर की प्रतीति के जीवात्मा को मुक्ति नही मिलती।

भावार्थ—हे जीव ! जिनको तू अपना संगी साथी मानता है वे कोई तुम्हारे साथी नही है। वे सब तो स्वार्थ मे बंधे हुए हैं। जब तक मन मे ईश्वर की प्रतीति नही होती है तब तक जीवात्मा को मुक्ति नही प्राप्त हो सकती है।

शब्दार्थ—बंधी = बंधे हुए। लोई = लोग।

माँइ बिड़ाणी बाप बिड़, हम भी मँझि बिड़ोह।
दरिया केरी नाव ज्यूँ, संजोगे मिलियाँह॥ ५६॥

संदर्भ—इस ससार मे सभी प्राणी अचानक मिल जाते है और फिर वियुक्त हो जाते हैं।

शब्दार्थ—इस संसार के सभी सबन्ध मिथ्या हैं। माता-पिता, सब नष्ट होने वाले हैं हम भी इस संसार मे एक दिन नष्ट हो जायेंगे। यह संसार नदी की नाव के समान है जिसमे सब संबन्धी और मित्र अचानक संयोग मिल भी जाते हैं और वियुक्त भी हो जाते हैं।

शब्दार्थ—बिडाणी = नष्ट होने वाली है।

इत प्रघर, उत घर, बरगु जरगु आये हाट ।
करम किरांणां बेचि करि, उठि ज लागे बाट ॥ ५७ ॥

सन्दर्भ—इस ससार मे आकर लोग कर्मों का फल भोग कर फिर मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं।

भावार्थ—जीवात्मा का घर तो ब्रह्म के पास ही है यह संसार तो उसके लिए परदेश है। लोग इस संसार मे कर्मों का व्यापार करने के लिए आते हैं और कर्मों का किराना—कर्म फल प्राप्त करके बेचकर सब उसी मार्ग का अवलम्बन करते हैं।

शब्दार्थ—प्रघर=पर घर, संसार। बर=ब्रह्म।

नाँन्हाँ काती चित दे महँगे मोलि बिकाइ।
गाहक राजा राम है और न नेड़ा आइ॥ ५८ ॥

सन्दर्भ—कर्मों के अनुसार फल देना परमात्मा का ही काम है।

भावार्थ--हे जीवात्मा ! तू खूब मन लगाकर सतकर्मों का पतला सूत कात जिससे तुझे अच्छी कीमत प्राप्त होगी। उस कर्म रूपी सूत को लेने वाले केवल राम ही हैं अन्य लोग तो पास आने का साहस भी करते हैं।

शब्दार्थ--नान्हां=पतला । सूत=धागा कार्म से तात्पर्य है। नेड़ा= समीप ।

डागल ऊपरि दौड़णाँ, सुख निदणीं न सोइ ।
पूनै पाये द्यौंहड़े ओछी ठौर न कोइ ॥ ५९ ॥

सन्दर्भ—जीवन को प्रभु भक्ति मे ही लगाना चाहिए, व्यर्थ मे नही खोना चाहिए।

भावार्थ--हे मनुष्य ! तुझको ऊबड़ खावड भूमि पर दौडना है कठिन साधना करनी है। सुख निद्रा मे अचेत हो कर मत सो। यह मानव शरीर अनेकानेक सुकर्मों के परिणाम स्वरूप प्राप्त हुआ है प्रभु-भक्ति के बिना इसे व्यर्थ मत खो।

शब्दार्थ—डागल=ऊबड खावड़ भूमि। द्यौंहडे=देवालय (यहाँ मानव शरीर से तात्पर्य है।)

मैं मैं बड़ी [बलाइ है, सकै जौ निकसी भाजि ।
कब लग राखौं हे सखी, रुई पलेटी आगि ॥ ६० ॥

सन्दर्भ—अहंकार किमी न किसी दिन प्रकट होकर जीव को नष्ट कर देता है।

भावार्थ—अहंकार बहुत ही भयानक वस्तु है। इसका शीघ्र ही विनाश कर देना चाहिए अन्यथा यह व्यक्ति को ही नष्ट कर देगा। जिस प्रकार रूईमे लिपटी हुई अग्नि कब तक सुरक्षित रह सकती है वह थोड़े ही समय मे रूई को भस्मकर बाहर प्रकट हो जाती है उसी प्रकार अहंकार भी कब तक छिपा हुआ रहेगा एक न एक दिन वह प्रकट होवेगा ही।

शब्दार्थ—मैं मैं = अह। बलाई = बला।

मैं मैं मेरी जिनि करै, मेरी मूल विनास।
मेरी पग का पैषड़ा, मेरी गल की पास ॥ ६१ ॥

सन्दर्भ—अहंकार मनुष्य का विनाश का मूल कारण है।

भावार्थ—हे जीव तू अहंकार का परित्याग कर दे क्योकि अहंकार आत्मा केविनाश का कारण है। अहं भाव ही जीव के पैरो का बन्धन है और गले मे पड़े हुए फाँसी के फन्दे के समान है।

शब्दार्थ—पैषड़ा = बंधन। पास = पाश, फासी का फन्दा।

कबीर नाव जरजरी, कूड़े खेवणहार।
हलके हलके तिरि गए, बूड़े तिनि सिर भार ॥ ६२ ॥

सन्दर्भ—जो पापो के बोझ से लदे नही होते हैं है वे ही संसार सागर को पार कर पाते हैं।

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि जीवन रूपी नाव अत्यन्त जर्जर है और उसका खेने वाला नाविक अत्यन्त कूड़ा है, बेकार है। ऐसी अवस्था में जो व्यक्ति हल्के हैं जिनके ऊपर पापो का बोझा कम है वे तो संसार सागर से पार उतर गए और जिनके सर पर पापो का बोझा लदा हुआ था वे उसी भव सागर में डूब गए।

शब्दार्थ—कूड़े = रद्दी, बेकार। हलके हलके = शुद्धात्मा वाले।

---

१३. मन कौ अङ्ग

मन कै मते न चालिए, छाँड़ि जीव की बाँणिं।
ताकू केरे सूत ज्यूँ, उलटि अपूठा आंणिं ॥१॥

सन्दर्भ—जीव ब्रह्म का ही अंग है उसे संसार से हटाकर ब्रह्म मे ही लगा देना चाहिए।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि हे जीव ! तू मन की इच्छानुसार न चल। मन की विषय वासना मे लिप्त रहने की आदत छुडा दे। जिस प्रकार तकुआ का सूत उससे निकाल कर फिर उसी से लपेट दिया जाता है उसी प्रकार तू अपने मन को संसार से विरक्त करके ब्रह्मा से लगा दे।

शब्दार्थ—बांणि = आदत, स्वभाव। अपूठा = कच्चा।

चिंता चिंति निबारिये, फिरि बूझिये न कोइ।
इंद्री पसर मिटाइये, सहजि मिलैगा सोइ ॥२॥

संदर्भ—सासारिक चिन्ताओ को छोड़ देने से परमात्मा स्वयं ही प्राप्त हो जाता है।

भावार्थ—अपने मन से संसार की नाना प्रकार की चिन्ताओ को त्याग देने पर फिर किसी की भी परवाह नही रहती है। इन्द्रियो से उत्पन्न विषय वासना रूपी सुख के फैलाव को समाप्त कर देने पर वह परमात्मा बड़ी ही सरलता से प्राप्त हो जाता है।

शब्दार्थ—चिन्ता = सासारिक चिन्ताएं। सहजि = आसानी से।

आसा का ईंधण करूॅ, मनसा करूॅ बिभूति।
जोगी फेरी फिल करौ, यौं बिननाँ वै सूति ॥३॥

सन्दर्भ—सत्कर्मों के द्वारा ही ब्रह्म को प्राप्त किया जा सकता है।

भावार्थ—आशा का परित्याग कर उसको ईंधन के रूप मे प्रयोग कर मन के अहंकार को जला कर भस्म कर दूं और योगी बनकर संसार से विरक्त होकर परमात्मा की खोज मे इधर-उधर चक्कर काटता रहूँ। इस प्रकार अच्छे कर्मों रूपी सूत को कात करके ही परमात्मा की प्राप्ति सम्भव हो सकती है।

विशेष—रूपक अलंकार।

कबीर सेरी सांकड़ी, चंचल मनवां चोर।
गुंण गावै लैलीन होइ, कछू एक मन में ओर ॥४॥

सन्दर्भ—मन मे नाना प्रकार की इच्छाएं भरी रहती हैं इसीलिए प्रभु-प्राप्ति नही हो पाती है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि परमात्मा के समीप पहुँचने का मार्ग बहुत संकरा है। मन चंचल है और चोर के समान लोभी वृत्ति का है। ऊपर से तो यह भगवान के गुणानुवाद गाता है किन्तु आन्तरिक मन मे अनेकानेक इच्छाएं व्याप्त हैं और इसी कारण प्रभु-प्राप्ति मे बाधा पडती है।

शब्दार्थ—सेरी = मार्ग। लैलीन = तल्लीन।

कबीर मारूँ मन कूँ, टूक टूक ह्वै जाइ।
विष की क्यारी बोइ करि, लुणत कहा पछिताइ ॥५॥

सन्दर्भ—बुरे कर्मों का परिणाम बुरा ही होता है किन्तु परिणाम भोगने में कष्ट होता है।

भावार्थ - कबीरदास जी कहते हैं कि इस चंचल वृत्ति वाले मन को इतना मारूंगा कि वह टुकडे-टुकडे हो जायगा। पहले तो यह विषय वासना की क्यारी बोता है फिर उसके परिणाम को भोगने के समय क्यो पछिताता है। कर्मों का फल तो भोगना ही पडेगा।

शब्दार्थ—लुणत = काटते समय।

इस मन कौं बिसमल करौं, दीठा करौं अदीठ।
जे सिर राखौं आपणां, तौ पर सिरिज अंगीठ ॥६॥

सन्दर्भ—साधना मे शीश समर्पण करना पडता है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि अपने चचल मन को अधमरा कर सासारिक विषयो से विरक्त कर निराकार अदृष्ट प्रभु के दर्शन करूंगा यदि अपने सिर की रक्षा करनी है तो उसके ऊपर अगारे के समान कठिन से कठिन यातनाओ को भी सहन करना पडेगा।

शब्दार्थ--बिसमिल = घायल। अदीठ = अदृष्ट, निराकार।

मन जाणैं सब बात, जाणत ही औगुण करै।
काहे की कुसलात, कर दीपक कुंवै पड़ै ॥७॥

सन्दर्भ—मन जान बूझ कर भी बुराइयां करता है।

भावार्थ—मन सब बातो को जानते हुए भी नाना प्रकार की बुराइयो को करता है। यदि हाथ मे दीपक लेकर चलने वाला भी कुएं मे गिर पड़े तो उस दीपक से क्या लाभ ? उसी प्रकार जान बूझ कर भी यदि मन बुराई करता है तो उसे जानने से क्या लाभ ?

शब्दार्थ—जाणत = जानना। कूवै = कुएं मे।

हिरदा भीतरि आरसी, मुख देषणां न जाइ।
मुख तौ तौपरि देखिये, जे मन की दुविधा जाइ ॥८॥

सन्दर्भ—सासारिक द्वन्द्वो से छुटकारा तभी मिल सकता है जब हृदय के अंदर ब्रह्म का दर्पण हो।

भावार्थ—हृदय के भीतर ही आत्मा का दर्पण है किन्तु उसमे परमात्मा का मुख दिखाई नहीं पड़ता है यदि मन सांसारिक विषयो से अपनी चचलता का परित्याग कर दे तो ब्रह्म के दर्शन हो सकते हैं।

शब्दार्थ—आरसी = दर्पण, शीशा।

मन दीयाँ मन पाइए, मन बिना मन नहीं होइ।
मन उनमन उस अंड ज्यूँ, अनल अकासां जोइ ॥६॥

सन्दर्भ—प्रभु को अपने मन का प्रेम देकर ही उनकी कृपा प्राप्त की जा सकती है।

भावार्थ—परमात्मा का प्रेम उसमे मन लगाने से ही प्राप्त हो सकता है। यह सत्य है कि जब तक भक्त का मन ईश्वर की ओर नही लगता तब तक ईश्वर का मन भी भक्त की ओर नही झुकता किन्तु जब तक मन को इस ससार के भोगो मे लगाए रहोगे तब तक परमात्मा की प्राप्ति असम्भव ही है। संसार से उदासी न हुआ मन उस सृष्टि के समान है जैसे आकाश मे ब्रह्म की ज्योति प्रकाशित होती है।

शब्दार्थ—मन = प्रेम का हृदय। अकासी = शून्य प्रदेश।

मन गोरख मन गोविन्दौ, मन ही औघड़ होइ।
जे मन राखै जतनकरि, तौ आपैं करता सोइ ॥१०॥

संदर्भ—मन को वश मे करने पर ही उच्चतम स्थान मिलता है।

भावार्थ—मन ही गोरखनाथ है मन ही पर ब्रह्म है और मन ही औघड़ नाथ है। मन ही इन पदों पर पहुँचाने वाला है। यदि मन प्रयत्न-पूर्वक वश मे रखा जाये तो यही इस चराचर लोक का कर्त्ता, नियामक ब्रह्म बन सकता है।

शब्दार्थ—औघड़ = एक प्रकार के साधु।

एक ज दोसत हम किया, जिस गलि लाल कबाइ।
सब जग धोबी धोइ मरै, तौ भी रंग न जाय ॥११॥

सन्दर्भ—प्रेम का रग किसी के छुडाए नहीं छूटता है।

भावार्थ—मैंने एक ऐसा मित्र बनाया है कि जिसके गले मे लाल कपडा बंधा हुआ है अर्थात् जो प्रेम के रग से ओत-प्रोत है। यह प्रेम का रंग इतना पक्का है कि संसार के सब धोबो मिल करके भी यदि इसके रग को धोकर छुडाना चाहें तो नहीं छुडा सकते हैं।

शब्दार्थ—कबाइ = कपडा।

पाँणीं हीं तैं पातला, धूंवाँ हीं तैं भींण।
पवनाँ वेगि उतावला, सोदोसत कबिरै कीन्ह ॥१२॥

संदर्भ—कबीरदास ने निराकार ब्रह्म से मित्रता जोड़ी है। उसी के गुणो का बखान है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि जो पानी से भी पतला धुएं से भी हल्का, और पवन के वेग से भी अधिक वेग वाला है ऐसे परमात्मा से मित्रता की है।

शब्दार्थ—उतावला = तीव्र।

कबीर तुरी पलाँणियाँ, चाबक लीया हाथि।
दिवस थकाँ साँई मिलौं, पीछे पड़िहै राति ॥१३॥

संदर्भ—इसी जीवन मे परमात्मा के दर्शन करने के लिए मनरूपी घोड़े को कसने के लिए संयम का चाबुक लेना पडेगा।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि मैंने अपने मन रूपी घोड़े को कस करके, पलाद करके, सयम के चाबुक को अपने हाथ मे ले लिया है अर्थात् मन पर पूर्ण रूपेण नियन्त्रण कर लिया है। मैं यह चाहता हूँ कि जीवन रूपी दिन का अंत होने के समय तक ही अर्थात् इसी जीवन मे ही परमात्माँ के दर्शन कर लूं क्योंकि फिर तो मृत्यु रूपी रात्रि आ जायेगी और जीव को अचेत कर देगी।

शब्दार्थ—तुरी = घोडी। पलाँड़ियाँ = कसकर चढ़ने के लिए तैयार कर लिया है।

मनवाँ तौ अधर बस्या, बहुतक भीणां होय।
आलोकत सचु पाईया, कबहुँ न न्यारा सोइ ॥१४॥

सन्दर्भ—ब्रह्म की प्राप्ति ज्ञान के प्रकाश से ही सम्भव है।

भावार्थ—मन अत्यन्त क्षीण होकर अधर मे निराधार ब्रह्म मे रम गया है। प्रकाशमय ब्रह्म की आभा पाकर मन सुख का अनुभव कर रहा है और अब वह कभी भी ब्रह्म से अलग नही हो सकता है।

शब्दार्थ=निराधार। सच, सत्य ब्रह्म।

मन न मर्‌या मन करि, सके न पच प्रहारि।
सील साच सरधा नहीं, इन्द्री अजहुँ उधारि ॥१५॥

संदर्भ—विना इन्द्रियो पर अधिकार किए भवसागर से पार पान कठिन है।

भावार्थ—हे जीव ! तूने न तो मन को वश मे किया है और न काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह को ही प्रहार कर नष्ट किया है। शील, सत्य, और श्रद्धा आदि सद् गुणो का भी लोप हो गया है। कबीरदास जी कहते हैं कि यदि मन इन्द्रियो पर आज भी अपनापूर्ण अधिकार कर ले तो उसका भवसागर से उद्धार हो सकता है, अन्यथा नही।

शब्दार्थ—मन करि=संकल्प कर। पंच=काम, क्रोध, मद, लोभ और मोह।

कबीर मन बिकरै पड़ या, गया स्वाद कै साथि।
गलका खाया वरजता, अब क्यूँ आवै हाथि ॥१६॥

संदर्भ—मन इन्द्रियो के वश मे हो गया है अब वह काबू मे नही आ सकता।

भावार्थ—कवीरदास जी कहते हैं कि मन विषय-वासना के विकारो मे पडा हुआ है वह नानाप्रकार के स्वादो के उपभोग मे पडा हुआ है। जो वस्तु गले तक पहुँच गई है उसके लिए अव मना करने से क्या लाभ हो सकता है। इसी प्रकार जो मन इन्द्रियो के वश मे हो गया है वह अव किसी भी प्रकार हाथ मे नही आ सकता है।

शब्दार्थ—विकरै=विकारो मे। वरजता=वर्जित किया जाता हुआ।

कबीर मन गाफिल भया, सुमरिण लागै नाहिं।
घणीं सहैगा सासनां, जम की दरगह माहिं ॥१७॥

संदर्भ—मनको सांसारिक विषय भोगो के बदले नरक मे यातनाएं भोगनी पड़ेगी।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि नाना प्रकार की विषय-वासनाओ के पीछे दौडते-दौडते मन इतना गाफिल हो गया है कि ईश्वर के नाम-स्मरण मे उसका मन ही नही लगता है। किन्तु उसे अपने इन पाप कर्मों का भोग यमलोक मे जाकर यातना सहकर सहना पड़ेगा।

शब्दार्थ—घणी = अत्यधिक। सांसना = यातनाएं। दरगह = दरबार।

कोटि कर्म पल मैं करै, बहु मन विषिया स्वादि।
सतगुर सबद न मानई, जनम गँवाया बादि॥१८॥

संदर्भ—मन विषय वासना मे पड़ कर अपना सर्वस्व ही गंवा बैठा है।

भावार्थ—यह मन विषयो के स्वाद मे इतना रमण करने लगा है कि पल भर मे ही करोडो दुष्कर्म कर डालता है। और सतगुरु द्वारा दिये गए उपदेशो की अवहेलना करके व्यर्थ मे ही जीवन को नष्ट कर डाला है।

शब्दार्थ—सबद = शब्द। बादि = व्यर्थ।

मैमंता मन मारि रे, घटहीं मांहै घेरि।
जबहीं चालै पीठि दे, अंकुस दे दे फेरि॥१९॥

संदर्भ—मन को सयम रूपी अंकुश से मार देना चाहिए।

भावार्थ—हे जीव! तू अपने मदमस्त मन को अपने हृदय के भीतर ही घेर कर मार दे। और जब भी यह परमात्मा से विमुख होकर इधर-उधर भागने का प्रयत्न करे उसी समय ईश्वर-स्मरण और सयम का अकुश लेकर इसको उचित मार्ग पर लगा देना चाहिए।

शब्दार्थ—मैमन्ता = मदमस्त हाथी। घटही माहै = हृदय के अन्तर से।

विशेष—अनुप्रास और रूपक अलंकार।

मैमंता मन मारि रे, नॉन्हाँ करि करि पीसि।
तब सुख पावै सुंदरी, ब्रह्म झलकै सीसि॥२०॥

सन्दर्भ—मन को वश मे करने से ही ब्रह्म ज्योति का प्रकाश मिलेगा।

भावार्थ—मदमस्त हाथी रूपी मन को संयम के द्वारा इतना कस कर मारो कि सूक्ष्मता को प्राप्त हो जाय। कर्मों को बारीक आटे की तह पीसना चाहिए। तभी आत्मा रूपी सुन्दरी को सुख प्राप्त होगा और सिर से ब्रह्म ज्योति का प्रकाश छिटकता रहेगा।

शब्दार्थ—सुन्दरी = आत्मा।

कागद केरो नॉव री, पांणी केरी गंग।
कहै कबीर कैसे तिरूँ, पंच कुसंगी संग ॥२१॥

संदर्भ—संसार-सरिता को पार करने के लिए संयम की नौका चाहिए।

भावार्थ—मनुष्य का शरीर कागज की नाव के समान है और यह ससार रूपी सरिता माया जल से परिपूर्ण है। कबीरदास जी कहते हैं कि इस अगाध सरिता को इस कागज की क्षणिक नौका से कैसे पार किया जा सकता है फिर साथ मे पाँच इन्द्रियो के रूप मे पंच चोर भी हैं जो अवसर देखते ही अच्छे कर्मों की चोरी भी कर लेते हैं।

शब्दार्थ—गग = गगा, सरिता। पंच = पंचेन्द्रियो।

कबीर यहु मन कत गया, जो मन होता काल्हि।
डूंगरि वूठा मेह ज्यूँ, गया, निबांणां चालि ॥२२॥

संदर्भ—मन ब्रह्म की ओर उन्मुख होकर भी माया भिमून हो जाता है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि जो मेरा निर्मल मन कल (भूतकाल) था वह आज कहाँ चला गया मन की वह निर्मलता कहाँ चली गयी जिस प्रकार टीले पर हुई वर्षा क्षण भर के लिए टीले पर रुककर नीचे की ओर बह जाती है उसी प्रकार मन के ऊपर संतो के सदुपदेशो का प्रभाव क्षण भर के लिए तो हुआ किंतु दूसरे ही क्षण वह उपदेश मन से निकल गए और मन फिर विषयासक्त हो गया।

विशेष—दृष्टात अलंकार।

शब्दार्थ—डू गरि = टीला। निर्वांणां चालि = नीचे की ओर चल कर।

मृतक कूँ धीजौं नहीं, मेरा मन बीहै।
बाजै बाव बिकार की, भी मूवा जीवै ॥ २३ ॥

संदर्भ—मन मरे हुए आदमी की भाँति मरी हुई अवस्था मे भी जीवित रहता है।

भावार्थ—साधक को अपने मन पर पूर्णरूपेण विश्वास नही है वह कहता है कि जिस प्रकार मनुष्य मर जाता है उसी प्रकार मैंने अपने मन को विषयो की ओर से मृतक तुल्य वना दिया है किन्तु फिर भी यदि इसके पास विकारो की दुंदभी फिर से वजने लगे तो जीवित व्यक्ति के समान पुनः पाप कर्म करने लगता है।

शब्दार्थ—वाव = दुंदुभी। विकार = सासारिक विषय। मूवा = मृतक।

काटी कूटी मछली छींकै धरी चहोड़ि।
कोई एक अपिर मन बस्या; दह में पड़ी बहोड़ि ॥ २४ ॥

संदर्भ—मन सयमित होने पर भी वासना के अवशेष से विकार ग्रस्त हो जाता है।

भावार्थ—मन रूपी मछली को काट कूटकर किसी प्रकार विषय वासना से रहित कर अपने वश मे करके शून्य रूपी छीके मे रखा था किंतु इतने पर भी उसमे वासना का कोई अक्षर अवशिष्ट रह गया था इसलिए वह मन रूपी मछली साधना के छीके से पुनः वासना के जल मे आकर गिर पडी। मन फिर विषयो मे आसक्त हो गया।

शब्दार्थ—मछली = मन। दह = तालाव, ससार पक।

कबीर मन पंषी भया; बहुतक चढ़्या अकास।
उहाँ ही ते गिरि पड़्या; मन माया के पास॥ २५॥

संदर्भ—मन रूपी पक्षी माया के प्रभाव से नीचे गिर पडता है।

भावार्थ—ईश्वर को प्राप्त करने के लिए कबीरदास कहते हैं कि मेरा मन पक्षी की भाँति आकाश तक शून्य तक विचरण करने गया था किन्तु माया के प्रभाव से जब वह वहाँ से गिरा तो बीच मे कही रुका हो नही ठीक नीचे आकर माया के पास ही गिरा।

विशेष—रूपक अलंकार।

भगति दुवारा संकड़ा, राई दसवैं भाइ।
मन तो मैंगल ह्वै रह्यो; क्यूँ करि सकै समाइ॥ २६॥

संदर्भ—भक्ति के सकीर्ण मार्ग मे मन रूपी हाथी कैसे जा सकता है?

भावार्थ—भक्ति के मार्ग का दरवाजा इतना सकीर्ण है कि वह राई के दशमाश के बराबर है और उसमे प्रवेश करने वाला मन मदमस्त हाथी के समान है फिर वह उस भक्ति के मार्ग मे प्रवेश कैसे पा सकता है?

शब्दार्थ—मैंगल = मद मस्त हाथी।

करता था तौ क्यूँ रह्या, अब करि क्यूँ पछताय।
बोवै पेड़ बबूल का, अंब कहाँ ते खाय॥ २७॥

संदर्भ—कर्मों के अनुसार ही फल की प्राप्ति होती है।

भावार्थ—हे जीव! कर्म करते समय तुझे इस बात का बोध क्यो नही हुआ कि बुरे कर्म नही करने चाहिए इनका परिणाम बुरा होगा और यदि अब बुरे कर्म किए ही हैं तो फिर पछताने से क्या लाभ? उसके परिणाम तो भोगने ही पड़ेंगे। यदि तूने कुकर्म रूपी बबूल के वृक्ष लगाए हैं तो खाने के लिए मीठे आम कहाँ से प्राप्त हो सकते हैं।

विशेष—तुलना कीजिये—

कोउ न काहु सुख दुख कर दाता।
निज कृत कर्म भोग सुनु भ्राता॥

मानस—अरण्यकाण्ड

शब्दार्थ—अब—आम।

काया देवल मन धजा, बिषै लहरि फहराइ।
मग चाल्यां देवल चलै, ताका सर्बस जाइ ॥ २८॥

सन्दर्भ—मन के अनुसार कार्य करने पर सर्वस्व नष्ट हो जाता है।

भावार्थ—शरीर रूपी मन्दिर है और उसके ऊपर फहराने वाली ध्वजा मन है। और ध्वजा विषय वासना की चंचल वायु लहरो से फहरने लगती है यदि शरीर रूपी मंदिर मन रूपीध्वजा के कहने से चलायमान हो जाता है तो समझ लेना चाहिए कि उसका सर्वस्व नष्ट हो जायगा।

शब्दार्थ—देवल = देवालय, मन्दिर। धजा = ध्वजा।

विशेष—सागरूपक।

मनह मनोर्थ छाँड़ि दे, तेरा किया न होइ।
पाँणी मैं घीव निकसै, तौ रूखा खाइ न कोइ॥ २९॥

सन्दर्भ—यदि मन की इच्छाएं पूरी हो जाया करे तो फिर कमी किस वात की ?

भावार्थ—मन की इच्छाओ का परित्याग कर देना चाहिए। क्यो कि जो कुछ मन चाहता है वह सब कुछ पूरा हो जाना सम्भव नही है। यदि जल को मथने से ही घी निकलने लगे तो इस संसार मे फिर कोई व्यक्ति बिना घी का सूखा भोजन क्यो करे ? किन्तु वास्तविकता यह है कि पानी मे घी निकलता नही। मन की इच्छाएं पूरी होती नही।

शब्दार्थ—मनोर्थ = मनोरथ।

काया कसू कमाँण,ज्यूँ पेच तत्त करि बाँण।
मारौं तौ मन मृग कौ नहीं तौ मिथ्या जाँण॥ ३०॥

सन्दर्भ—उपदेश को क्रियान्वित भी करना चाहिए।

भावार्थ—इस शरीर को इतना अधिक साधना मे प्रेरित कर दू कि यह धनुष के समान हो जाय फिर उस पर पंच तत्व का बाण चलाकर मनरूपी मृग को मार डालूं तब तो मुझे ठीक समझना अन्यथा मेरी उपदेशो को मिथ्या ही समझना।

विशेष—महात्मा तुलसीदास ने पंचतत्वो की सख्या इस प्रकार गिनाई है—

'छिति जल पावक गगन समीरा ।
पच रचित अति अधम सरीरा ॥

मानस—किष्किन्धा काण्ड ।

---

१४. सूषिम मारग कौ अंग

कौण देस कहाँ आइया, कहु क्यूँ जांण्यां जाइ ।
उहु मार्ग पावैं नहीं, भूलि पड़े इस मांहि ॥ १ ॥

सन्दर्भ—जीव ससार मे भ्रमित होता हुआ भटकता रहता है ।

भावार्थ—आत्मा किसी प्रदेश का निवासी है और कहाँ आकर बस गया है कहो इस तत्व को कैसे जाना जा सकता है ? जीव को ब्रह्म के पास जाने का मार्ग नही मिल पाता इसलिए वह भ्रम मे पडा हुआ इस ससार मे भटक रहा है ।

शब्दार्थ—उहु मार्ग = वह मार्ग, ब्रह्म प्राप्ति का मार्ग ।

उतीथै कोइ न आवई, जाकूँ बूँझौं धाइ ।
इतथैं सबै पठाइये, भार लदाइ लदाइ ॥ २ ॥

सन्दर्भ—ब्रह्म के पास जीव जाकर लौट नही पाता है ।

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि ब्रह्म के पास पहुँच कर कोई वहाँ से लौटता नही है जिससे जाकर मैं पूछ सकूं कि ब्रह्म के पास जाने का कौन सा मार्ग है ? क्या तरीका है ? इस संसार से ही कुकर्मों का बोझा लाद-लाद कर सभी प्राणी जाते हैं ।

शब्दार्थ—उती थैं = उधर से । इतीथे = इधर से ।

सबकूँ बूझत मैं फिरौं, रहण कहै नहीं कोइ ।
प्रीति न जोड़ी राम सूँ, रहण कहाँ थैं होइ ॥ ३ ॥

सन्दर्भ—जीव को अपनी स्थिति अज्ञात रहती है ।

भावार्थ--कबीर दास जी कहते हैं कि मैंने प्रत्येक व्यक्ति से पूछा किन्तु किसी ने यह नही बताया कि इस संसार मे रहने का वास्तविक ढंग क्या है ? किन्तु कोई उचित उत्तर दे नही पाया। ब्रह्म से किसी ने प्रेम तो किया नही फिर रहने की वास्तविक स्थिति किसी को कैसे ज्ञात हो सकती है।

चलौ चलौ सब कोइ कहै. मोहिं अंदेसा और।
साहिब सूँ परचा नहीं, ए जाहिंगे किस ठौर॥ ४॥

सन्दर्भ—ब्रह्म से बिना परिचय हुए यदि जीव वहाँ तक जाए भी तो रहे कहाँ ?

भावार्थ—इस संसार के सभी प्राणी ब्रह्म के पास जाने की बात तो करते हैं किन्तु इस बात मे सदेह है कि क्या वे वास्तव मे वहाँ तक पहुँच भी सकेंगे क्योकि ब्रह्म से उनका परिचय तो है नही फिर ये सब कहाँ जाकर रहेगे ?

शब्दार्थ—पर्चा=परिचय।

आइबे कौं जागा नहीं, रहिबे कौं नहीं ठौर।
कहै कबीरा सन्त हौ, अविगत की गति और॥ ५॥

सन्दर्भ—निर्गुण ब्रह्म की गति अगम्य है। साधना मे वाह्याडम्बरों की आवश्यकता नही है।

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि ब्रह्म के पास तक आने के लिए ज्ञान नेत्र खुले नही और इस संसार की विषय वासना मे भी सर्वदा रहने के लिए स्थान नहीं है। हे सन्तो ! ब्रह्म प्राप्ति का मार्ग सामान्य रूप से आने वाला नहीं है, अगम्य है।

शब्दार्थ—जागा नही=ज्ञान नेत्र नही खुले।

कबीर मारिग कठिन है, कोई न सकई जाय।
गये ते बहुड़ नहीं, कूसल कहै को आय॥ ६॥

सन्दर्भ--ब्रह्म के पास पहुँच कर कोई लौटता नहीं फिर वहाँ के समाचार कैसे मालूम हो ?

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि परमात्मा के पास तक पहुँचने का मार्ग अत्यधिक कठिन है वहाँ कोई आसानी से पहुँच नहीं सकता है। और जो वहाँ कठिन साधना करके पहुँच भी गये तो वे आवागमन से मुक्त होकर वहाँ से वापस आए ही नहीं फिर वहाँ के कुशल समाचार कौन आकर कहे।

शब्दार्थ—बहुरे=लौटे।

जन कबीर का सिषर घर, बाट सलैली सैल।
पाँव न टिकै पपीलिका, लोगनि लादे बैल ॥ ७ ॥

सन्दर्भ—भक्त कबीर के घर तक पुण्यात्मा और सज्जनो के पैर तो जम नही पाते, फिर पापियो का तो प्रश्न ही नही उठता।

भावार्थ—भक्त कबीर का तो वास्तविक घर ब्रह्मरंध्र रूपी शिखर पर स्थिति है और वहाँ का मार्ग नाना प्रकार की बाधाओ के कीचड से परिपूर्ण है। वहाँ पर चीटी जैसा छोटा जीव भी अपने पैर रखकर नही जा सकता फिर और मनुष्य तो नाना प्रकार के सासारिक कुकर्मों का बोझ लादे हुए हैं कैसे वहाँ पहुँच सकते हैं।

शब्दार्थ—सिषर = शून्य शिखर। सलैली सैल = कीचड़ आदि से दुर्गम पर्वतीय मार्ग। पपोलिका = पिपीलिका = चीटी।

जहाँ न चींटी चढ़ि सकै, राई ना ठहराइ।
मन पवन का गमि नहीं, तहाँ पहुँचे जाइ ॥ ८ ॥

सन्दर्भ—जिस ब्रह्म के पास तक चीटी, वायु और मन की गति भी नही है वहाँ तक कबीर पहुँच गए हैं।

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि जिस शून्य स्थल पर चीटी तक नही चढ सकती और राई भी नहीं ठहर सकती मन और पवन की जहाँ तक गति नही है उस सूक्ष्म और सकीर्ण स्थान तक मैं पहुँच चुका हूँ।

कबीर मारग अगम है, सब मुनिजन बैठे थाकि।
तहाँ कबीरा चलिगया, गहि सतगुर की सांषि ॥ ९ ॥

सन्दर्भ--सतगुरु के उपदेश को ग्रहण करके ही साधक ब्रह्म तक पहुँच सकता है।

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि ब्रह्म-प्राप्ति तक का मार्ग अत्यन्त कठिन है, साधक मुनि भी वहाँ की दुर्गमता के कारण थक कर बैठ गये हैं जाने की आशा छोड बैठे हैं। ऐसे दुर्गम स्थान पर भी कबीर दास जी सतगुरु के उपदेशो को ग्रहण करके पहुँच गये हैं।

शब्दार्थ—साषि = सीख, उपदेश।

सुर नर थाके मुनि जनाँ, जहाँ न कोइ जाइ।
मोटे भाग कबीर के, तहाँ रहे घर छाइ ॥ १० ॥३०२॥

सन्दर्भ--साधक की साधना की चरमावस्था ब्रह्म प्राप्ति है।

भावार्थ--जिस स्थान तक पहुँचने के लिए देवता, मनुष्य और मुनि सभी थक जाते हैं और थकावट के कारण वहाँ तक पहुँच नही पाते हैं। वहाँ पर सौभाग्यवश कवीर दास पहुँच भी गए हैं और उनका स्थायी निवास भी हो गया है।

शब्दार्थ--मोटे भाग = बड़े भाग्य।

---

१५. सूषिम जनम कौ अङ्ग

कबीर सूषिम सुरति का, जीव न जाणैं जाल।
कहै कबीरा दूरि करि, आतम अदिष्टि काल ॥१॥

सन्दर्भ—माया के आवरण को हटा देने पर ही आत्मा को आत्म तत्व का ज्ञान हो सकता है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि सूक्ष्म ब्रह्म के स्मरण के रहस्य को जीव कुछ नही जानता क्योकि माया के आवरण के कारण उसको उसका ज्ञान नहीं हो पाता है। कबीर कहते हैं कि उस माया के आवरण को हटा देने पर ही आत्मा का आत्म तत्व का ज्ञान होगा।

शब्दार्थ—सूषिम = सूक्ष्म। जाल = रहस्य।

प्राण पंड कौं तजि चलै, मूवा कहै सब कोइ।
जीव छतां जांमैं मरै, सूषिम लखै न कोइ ॥२॥३४॥

सन्दर्भ—जीवन्मुक्त प्राणी जीवित अवस्था में ही ब्रह्म के दर्शन कर लेता है।

भावार्थ—जिस समय प्राण इस भौतिक शरीर को छोड़कर चल देते हैं उस समय संसार के सभी व्यक्ति उसको मरा हुआ कहते हैं। जीवात्मा जीवित रहते हुए भी अपने अस्तित्व को ब्रह्म मे लीन कर जीवन्मुक्त हो सकता है किन्तु उस ब्रह्म को कोई देख नही पाता है।

शब्दार्थ—पंड = शरीर। छता = रहते हुए।

---

१६. माया कौ अङ्ग

जग हट वाड़ा स्वाद ठग, माया वेसौं लाइ।
राम चरन नीकौं ग्रही, जिनि जाइ जनम ठगाइ ॥१॥

सन्दर्भ—इस संसार मे जीव विषय-वासना और माया के द्वारा ठग लिया जाता है।

भावार्थ—यह संसार एक बडा बाजार है जिसमे इद्रियो के स्वाद रूपी ठग हैं और माया रूपी वेश्या भी जीवको ठगने का प्रयास करती है। ऐसी अवस्था मे हे जीव! यदि तू दृढतापूर्वक ईश्वर के चरणो का सहारा लेगा तब तो ठीक है नही तो इस संसार ही बाजार से विषय-वासना और माया के द्वारा बिना ठगे बच नहीं सकते हो।

शब्दार्थ—वेसा = वेश्या।

विशेष—रूपक अलकार।

कबीर माया पापणीं, फंध ले बैठी हाटि।
सब जग तौ फंधै पड्या, गया कबीरा काटि ॥२॥

सन्दर्भ—माया के फदे से भक्त ही बच पाता है।

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि माया अत्यन्त पापिनी है वह अपने हाथ फंदा लेकर सारे ससार के प्राणियो को फंसाने के लिए बैठी है। सारा संसार तो उस माया के फदे मे पड गया है अर्थात् सब पर माया का प्रभाव पड चुका है किन्तु कबीर ऐसे भक्त ही उस माया के फन्दे को काटकर उससे बाहर हो जाते हैं उसकी पकड़ मे नहीं आते हैं।

शब्दार्थ—फन्ध = फन्दा।

कबीर माया पापणी, लालै, लाया, लोग।
पूरी किनहूँ न भोगई, इनका ईहै विजोग ॥३॥

सन्दर्भ—माया रूपी वेश्या के फन्दे मे फंसकर सभी को कष्ट भोगना पडता है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि माया अत्यन्त पापिनी है यह ससार के समस्त प्राणियो मे अपने पाने के लालसा को जागृत कर देती है किन्तु वह गृह-वधू नही है जिसका एक ही व्यक्ति उपभोग कर सके वह तो वेश्या है उसका पूर्ण

उपभोग कोई व्यक्ति नही कर पाता है। थोड़े समय के लिए माया सबको आकर्षित कर लेती है फिर उससे सबका वियोग हो जाता है। यही ससार का दुःख है।

विशेष—रूपक अलकार

शब्दार्थ—लालै लाया = अपनी प्राप्ति की आशा जागृत करना।

कबीर माया पापणी, हरि सूँ करै हराम।
मुखि कड़ियाली कुमति की, कहण न देई राम ॥ ४ ॥

संदर्भ—माया ही प्रभु-भक्ति मे बाधक है।

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि पापी माया अत्यंत दुष्टा है यह जीव को ब्रह्म से मिलने नहीं देती है। यह जीव के मुख से कड़वी बातो को कहवाती रहती है और राम नाम (ब्रह्म) का उच्चारण नही होने देती।

शब्दार्थ—कड़ियाली = कड़वी।

जाँणौं जे हरि कौं भजौं, मो मनि मोटी आस।
हरि विचि घाले अन्तरा, माया बड़ी बिसास ॥ ५ ॥

सन्दर्भ—माया जीव और ईश्वर के बीच अन्तर डाल देती है।

भावार्थ—प्रत्यक्ष मे ऐसा लगता है कि मैं परमात्मा का बहुत भजन करता हूँ किन्तु मेरे मन मे सासारिक आशाएं अत्यन्त तीव्रता से भरी हुई है। किन्तु यह माया अत्यत विश्वासघातिनी है यह तो जीव और ब्रह्म के बीच अन्तर डाल देती है।

शब्दार्थ--मोटी आस = विषयो की तीव्र तृष्णा। घालै = डालना। बिसास = विश्वासघातिनी।

कबीर माया मोहनी, 'मोहे जांण सुजांण।
भागां ही छूटै नहीं, भरि भरि मारै बांण ॥ ६ ॥

सन्दर्भ—माया के प्रभाव से कोई व्यक्ति भाग कर भी नही बच सकता है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि माया इतनी आकर्षक है कि बडे-बडे ज्ञानी एवं चतुर व्यक्ति भी इसके सम्मोहन से बच नही पाते हैं और यदि कोई इसके प्रभाव से भागकर भी बचना चाहे तो यह इतना तान-तान कर मोहक बाण चलाती है कि व्यक्ति के ऊपर बाणो का प्रभाव पड़ ही जाता है। लोग माया जाल मे फंस ही जाते हैं।

शब्दार्थ--जांण = ज्ञानी। सुजांण = सुजान = चतुर।

कबीर माया मोहनी, जैसी मीठी खाँण।
सतगुरु की कृपा भई, नहीं तौ करती भाँड ॥ ७ ॥

सन्दर्भ—सतगुरु की कृपा से मनुष्य माया के प्रभाव से बच पाता है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि माया खाँड के समान मीठी और मोहक है। सबको अपनी ओर आकर्षित करने वाली है। सतगुरु की कृपा हो गई इसलिए मैं इसकी चपेट से बच गया हूँ अन्यथा तो यह मुझे बर्बाद करके ही दम लेती।

शब्दार्थ—भाँड = अत्यन्त नीच, निकृष्ट।

कबीर माया मोहनी, सब जग घाल्या घाँणि।
कोई एक जन ऊबरै, जिन तोड़ी कुल की कांणि ॥ ८ ॥

सन्दर्भ—जो व्यक्ति माया की ओर आकर्षित नहीं होता, वह मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि माया इतनी जादूगरनी है कि सम्पूर्ण संसार को अपने फंदे में डालकर तेली की घानी के समान पीस डालती है। कोई बिरला व्यक्ति ही इसके प्रभाव से बच सकता है जो सांसारिक मान-मर्यादाओं को छोड़कर परम्पराओं का परित्याग कर देते हैं।

शब्दार्थ—घाल्या = मारा। कुल की कांणि = कुल की मर्यादा, जीवात्मा की परम्पराओं को तोड़ना।

कबीर माया मोहनी, माँगि मिलै न हाथि।
मनह उतारी झूठ करि, तब लागी डोलै साथि ॥ ९ ॥

सन्दर्भ—माया मोहक होते हुए भी ईश्वर भक्तों के पीछे दौड़ती है। इसके परित्याग में ही मंगल है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि माया ऐसी मोहक है कि जो इसको हाथ फैलाकर माँगते हैं उनको यह नहीं प्राप्त होती है किन्तु जिन भक्तों और साधकों ने इसको मिथ्या समझ कर अपने मन से निकाल दिया है उनके पीछे यह डोलती रहती है।

शब्दार्थ—मनह = मन से।

माया दासी सन्त की, ऊँभी देइ असीस।
बिलसी अरु लातौं छड़ी, सुमिरि सुमिरि जगदीस ॥ १० ॥

सदर्भ—माया सन्तों की तो सेवा करती है और अन्य व्यक्तियों को दुख देती है।

भावार्थ—माया सन्तो की सेवा करने वाली दासी है जो खड़ी हुई उनकी आज्ञा का पालन करती रहती है। सन्त लोग ईश्वर का स्मरण करते हुए इसका उपभोग भी करते हैं और इसका तिरस्कार कर लातो से मार-मार कर ठुकराते भी हैं किन्तु अन्य लोगो को यह दुख ही देती है।

शब्दार्थ—ऊंभी = खडी हुई।

माया मुई न मन मुवा, मरि मरि गया सरीर।
आसा त्रिवणां नाँ मुई, यों कहि गया कबीर ॥ ११ ॥

संदर्भ—माया, मन, आशा और तृष्णा की अमरता की ओर संकेत है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि इस संसार के आवागमन के चक्र के कारण शरीर तो बार-बार मरता है किन्तु माया के आकर्षण और मन की विषयो के पीछे की दौड़ समाप्त न हुई, और कभी सांसारिक आशाओ कामनाओ और तृष्णा का ही अन्त हुआ।

शब्दार्थ—मुई = मरी।

आसा जीवै जग मरै, लोग मरे मरि जाइ।
सोइ मूवे धन संचते, सो ऊबरे जे खाइ ॥१२॥

सन्दर्भ—कबीर दास जी धन संचय पर बल नही देते हैं।

भावार्थ = इस संसार मे लोग एक-एक करके मरते जाते हैं और इस प्रकार सारा संसार ही मरताजा रहा है किन्तु फिर भी आशा जीवित ही बनी है। लोगो के मरने पर भी आशा उनका साथ नहीं छोड़ती है। वे ही व्यक्ति मरते हैं जो धन का संचय किया करते हैं और जो लोग इस धन को खा पी कर साफ कर देते हैं वे इस भव-सागर से पार उतर जाते हैं।

शब्दार्थ—मूवे = मरते हैं।

कबीर सो धन संचिए, जो आगैं कू होइ।
सीस चढ़ाये पोटली, ले जात न देख्या कोइ ॥१३॥

सन्दर्भ—धन सग्रह अच्छी बात नही है।

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि सुकृत्यो और पुण्यो का ऐसा धन संग्रह करना चाहिए आगे के लिए परलोक मे काम दे। यद्यपि इस संसार मे लोग धन की गठरी लादे हुए फिरते रहते हैं किन्तु कोई भी व्यक्ति नहीं देखा गया जो उस धन को परलोक ले गया हो। वह सारा का सारा धन यहीं पर पड़ा रह जाता है।

त्रिया त्रिष्णाँ पापणीं, तासू प्रीति न जोड़ि।
पैंड़ी चढ़ि पाछाँ पड़ै, लागै मोटी खोड़ि ॥१४॥

सन्दर्भ--तृष्णा से विलग रहने का सकेत है।

भावार्थ—कबीर दास जी जीव को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि तृष्णा रूपी स्त्री बडी ही पापिनी और वेश्या के समान है अतः तू इससे प्रेम का व्यवहार न कर। पहले तो यह पीछे पडकर जीव को आकर्षित करती है किन्तु इसके संसर्ग से जीव को अनेक दोषो का शिकार बनना पडता है।

शब्दार्थ—खोडि = अपराध, पाप

त्रिष्णां सांचीं नां बुझै, दिन-दिन बढ़ती जाय।
जवासा के रूप ज्यूं, घण मेहाँ कुमिलाइ ॥१५॥

सन्दर्भ--सासारिक तृष्णा का विनाश प्रभु-भक्ति से ही सभव है।

भावार्थ—सासारिक तृष्णा को जितना ही अधिक शान्त करने का प्रयास किया जाता है वह दिन प्रति दिन उतना ही अधिक वढती जाती है। जिस प्रकार जवासा जितनी ही अधिक वर्षा होती है उतना हो अधिक मुरझाता जाता है उसी प्रकार यह सासारिक तृष्णा भी प्रभु-भक्ति रूपी से ही मुरझा कर शान्त हो सकती है अन्य किसी विधि से नही।

विशेष—(१) विभावना अलकार।

(२) जवासा वरसात मे मुरझा जाता है--

"अर्क जवास पात बिनु मयऊ।"

मानस—किष्किन्धा काण्ड

शब्दार्थ—वधती = वढती। घण = घना, अधिक।

कबीर जग की को कहै, यौ जल बूढै दास।
पारब्रह्म पति छाँड़ि करि, करैं मान की आस ॥१६॥

सन्दर्भ—ब्रह्म से विमुख भक्त भी संसार सागर मे डूब जाते हैं।"

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि ससार के साधारण व्यक्तियो की वात कौन कहे भगवान के भक्त भी इस ससार-सागर मे डूबते उतराते हैं किन्तु भक्त उसी अवस्था मे डूबते हैं जब वे पर ब्रह्म ऐसे स्वामी को छोडकर सासारिक मान सम्मान की आशा मे इधर उधर भटकते रहते हैं।

शब्दार्थ—भौजलि = भव जल = ससार सागर।

माया तजी तौ का भया, मानि तजी नहीं जाइ।
मनि बड़ै मुनियर मिले, मानि सबनि कौ खाइ ॥१७॥

संदर्भ—माया के साथ अहं का त्याग भी आवश्यक है।

भावार्थ—हे जीव ! यदि तूने माया का त्याग कर दिया तो उसी के त्याग से क्या होता है अभी सम्मान पाने की भावना का त्याग तो नहीं है। यह मान सम्मान की भावना बडे-बडे मुनियो को भी पथ भ्रष्ट कर देती है। अतः सम्मान की भी परित्याग आवश्यक है।

रामहिं थोड़ा जाँणि करि, दुनियाँ आगैं दीन।
जीवाँ कौ राजा कहैं, माया के आधीन ॥१८॥

सन्दर्भ—वास्तविक स्वामी तो पर ब्रह्म है।

भावार्थ—मनुष्य ब्रह्म के अस्तित्व को अल्प समझ करके संसार को ही अधिक महत्वशाली समझता रहता है और उसी मे उलझता रहता है। मनुष्य उस व्यवित को ही अपना स्वामी समझ लेते हैं जो माया के आधीन होकर वैभवशाली दिखाई पडता है।

रज बीरज की कली, तापरि साज्या रूप
राँम नाँम बिन बूढ़ि है, कनक काँमिणी कूप ॥१९॥

सन्दर्भ—मनुष्य का शरीर स्त्री के रज और पुरुष के वीर्य के सम्मिश्रण से बनी हुई कली के समान उस पर भी जीव साज सज्जा का आडम्बर करता है किन्तु यदि वह राम नाम का आश्रय न ग्रहण करेगा तो धन और स्त्री रूपी कूएं मे डूब जायगा।

विशेष—तुलसी ने भी कहा है—

"एक कंचन एक कामिनी दुर्गम घाटी दोइ ॥"

दोहावली

माया तरवर त्रिविधका, साखा दुख सन्ताप।
सीतलता सुपिनैं नहीं, फल फीको तनि ताप ॥२०॥

सन्दर्भ—माया रूपी वृक्ष और उसकी छाया जीव को दुख ही प्रदान करते हैं।

भावार्थ—माया रूपी वृक्ष सात्विक, राजस और तामस इन तीन गुणो से मिलकर बना है और इसकी शाखायें दुख और सन्ताप की हैं किन्तु इस वृक्ष के नीचे बैठकर जीव को स्वप्न मे भी शीतलता का अनुभव नही हो सकता है और इसके फल भी अत्यन्त फीके हैं और शरीर को ताप देने वाले हैं।

शब्दार्थ—त्रिविध = सत, रज, तम।

कबीर माया डाकणीं, सब किस ही कौं खाइ।
दांत उपाड़ौं पापणीं, जे सन्तौं नेड़ी जाइ ।।२१।।

सन्दर्भ—सन्तो के पास माया जाती है तो उसको नष्ट करने का प्रयास किया जाता है।

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि यह माया अत्यन्त पिशाचिनी है यह सभी को खाती रहती हैं किन्तु यदि यह सन्तो—साधु स्वभाव वाले व्यक्तियो—के पास जाकर फटकी तो मैं इसके दांत ही उखाड डालूंगा फिर यह खायेगी कैसे ?

शब्दार्थ—डाकणी = पिशाचिनी । उपाडौ = उखाडूं ।, नेडी = नजदीक

नलनी सायर घर किया, दौं लागी बहुतेणि ।
जलही माहैं जलि मुई, पूरब जनम लिषेणि ।।२२।।

सन्दर्भ—पूर्व जन्म के दुष्कृत्यो के कारण आत्मा को नाना प्रकार के कष्ट सहने पड़ते हैं।

भावार्थ—आत्मा रूपी कमलिनी ने इस संसार सागर मे अपना घर बनाया किन्तु यही अनेकानेक दुखो की दावाग्नि उस कमलिनी को जलाने लगी। और इस प्रकार यह आत्मा रूपी कमलिनी माया रूपी जल मे ही जलकर नष्ट हो गयी। यह सब पूर्व-जन्म के कर्मों का फल था।

कबीर गुंण की बादली, तीतर बानीं छाँहि ।
बाहरि रहे ते ऊबरे, भीगे मन्दिर मांहि ।।२३।।

सन्दर्भ—माया के प्रभाव से मुक्त व्यक्ति हो आवागमन से मुक्त हो हो पाते हैं।

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं सात्विक, राजस और तामस इन तीनो के सम्मिश्रण से बनी हुई माया की छाया रग तीतर के पखो के समान बहुरगी होता है। जो इस माया की छाया से बाहर रहते हैं वे तो मुक्त हो जाते हैं और जो माया के प्रभाव मे ही आ जाते हैं तो वे माया के प्रभाव से भीगते ही रहते हैं।

विशेष—(१) विरोधाभास अलकार।

शब्दार्थ—तीतरबानी = तीतरवर्णी।

कबीर माया मोह की, भई अँधारी लोइ।
जे सूते ते मुसि लिये, रहे बसत कूँ रोइ ।।२४।।

सन्दर्भ--माया मोह मे पडे हुए व्यक्ति मुक्ति नही प्राप्त कर पाते हैं।

भावार्थ--कबीरदास जी कहते हैं कि इस संसार मे जीव की आँखो पर माया और मोह का अन्धकार छाया हुआ है अतः उसे उचित मार्ग नही दिखाई पडता है। जो व्यक्ति इस माया और मोह के अन्धकार मे सावधान न रहकर अज्ञान मे सोते ही रहते हैं वे ठग लिए जाते हैं और बाद मे मुक्ति रूपी अपनी वस्तु के लिए रोते ही रह जाते हैं।

शब्दार्थ—लोइ = नेत्र। मुसि = ठगलिए। बसत = वस्तु, सारतत्व।

> संकल ही तैं सब लहै, माया इहि संसार।
> ते क्यूँ छूटैं बापुड़े, बाँधे सिरजनहार ॥२५॥

सन्दर्भ—ब्रह्म के द्वारा माया के बंधन मे बाँधा जीव कैसे मुक्त हो सकता है ?

भावार्थ—इस संसार के समस्त प्राणी माया की शृंखलाओ मे जकड़े हुए हैं किन्तु जब उनके सृजनकर्त्ता ब्रह्म ने ही उनको माया मे बाँध दिया है तो फिर वे मुक्त ही कैसे हो सकते हैं ?

शब्दार्थ--संकल = साकल, शृखला। बापुडे = बपुरे = बेचारे।

> बाड़ि चंढ़ति बेलि ज्यूँ, उलझी आसा फंध।
> तूटै पणि छूटै नहीं, भई ज बाचा बंध ॥२६॥

सन्दर्भ--माया रूपी बेलि को तोड़ा जा सकता है किन्तु छुडाया नही जा सकता है।

भावार्थ--यह माया संसार रूपी बाडी पर बेलि के समान है और आशा के फंदो मे इसे उलझा दिया गया है। अर्थात् यह माया जीव को आशा और तृष्णा के फंदो मे उलझा देती है। यह टूट सकती है किन्तु किसी प्रकार से छुडाई नही जा सकती है। मानो हानि या लाभ कुछ भी होने पर यह जीवात्मा को पकडे रहने की प्रतिज्ञा कर चुकी है।

शब्दार्थ—फंध = फंदा। वाचाबन्ध = वचन बद्ध।

> सब आसण आसा तणाँ, निवर्ति कै को नाहिं।
> निर्वत्ति कै निबहै नहीं, परवति परपंचमांहि ॥२७॥

सन्दर्भ—संसार से तटस्थ होकर, प्रवृत्ति मार्ग का परित्याग करके ही निवृत्ति वैराग्य (ईश्वर से राग) उत्पन्न हो सकता है।

भावार्थ—संसार के समस्त प्राणी आशावान् हैं सभी पर आशा का प्रभाव है। कोई निवृत्ति मार्गी नहीं है। जो प्रवृत्ति मार्ग का अनुरागी है भला वह आशा से परे होकर निवृत्ति मार्गी कैसे हो सकता है ?

शब्दार्थ—तर्णा = नीचे। निर्वति = निवृत्ति। परवर्त्ति = प्रवृत्ति।

कबीर इस संसार का, झूठा माया मोह।
जिहि घरि जिता बंधावणा, तिहिं घरि तिता अँदोह ॥२८॥

सन्दर्भ—सुख के साथ दुख भी मिला होता है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि इस ससार का माया मोह सभी झूठा प्रपंच है। जिस घर मे जितनी ही अधिक प्रसन्नता आनन्द-मगल दिखाई देना है, वहाँ उतना ही अधिक दुख भी होता है।

शाब्दार्थ—बंधावणा = बधन। अन्दोह = दुख।

माया हम सौं यौ कह्या, तू मति दे रे पूठि।
और हमारा हम बलू, गया कबीरा रूठि ॥२६॥

सन्दर्भ—आत्मबल वाले व्यक्ति ही माया से सबन्ध विच्छेद कर पाते हैं।

भावार्थ—माया ने हमसे (जीवात्मा से) यो कहा कि तू मुझ को मत छोड। किन्तु यह हमारा ही आत्मबल है कि मैं (कबीरदास) माया से अप्रसन्न हो गया और उस माया से रूठ गया, अप्रसन्न हो गया।

शब्दार्थ—पूठि = पीठ देना।

बुगली नीर बिटालिया, सायर चढ़या कलंक।
और पखेरू पी गये, हँस न बोवैं चंच ॥३॥

सन्दर्भ = भक्तजन विषय भोगो मे आसक्त नही होते हैं।

भावार्थ—माया रूपी बगुली ने आत्मा के जल को दूषित कर दिया, इससे संसार रूपी सागर भी कलकित हो गया अन्यपक्षी, सासारिक मनुष्य तो इस विषय वासना के पानी को पी गए किन्तु मुक्तात्माओ (हसो) ने इस जल को छुआ तक नही है।

शब्दार्थ—बिटा लिया = समाप्त कर दिया। सायर = सागर। हस = मुक्तात्मा।

कबीर माया जिनि मिलै, सौ बरिया दे बाँह।
नारद से मुनियर गिले, किसी भरोसौ त्यांह ॥ ३१ ॥

संदर्भ—माया का कोई भरोसा नही है उसके फन्दे मे नही पडना चाहिए।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि अगर माया सैकडो प्रलोभन देकर के तुझे फंसाना चाहे तो भी उसके फन्दे मे नही पडना चाहिए। जब इस माया ने

नारद ऐसे प्रभु भक्तों तक को अपने जाल मे फाँस लिया है तो फिर इसका भरोसा कैसे किया जा सकता है ?

शब्दार्थ—गिले = नष्ट कर दिये ।

> माया की झल जग जल्या, कनक कॉमिणीं लागि ।
> कहू, धौं, किहि विधि राखिए, रूई पलेटी आगि ।। ३२ ।।

संदर्भ—कनक और कामिनी के प्रभाव मे पडा मनुष्य अधिक समय तक नही टिक सकता ।

भावार्थ—कनक और कामिनी-धन और स्त्री के लोभ मे फँसकर सारा संसार मसा के जल मे फँस गया और उसी की लप्ट मे जलने लगा भस्म हो गया । माया तो रूई मे लपेटी हुई आग के समान है जिस प्रकार रूई मे लपेटी हुई आग थोडे समय मे ही रूई को जलाने लगती है उसी प्रकार माया भी संसार को जलाने लगती है ।

विशेष—निदर्शना अलंकार ।

शब्दार्थ—झल = अग्नि । पलेटी = लपेटी हुई ।

---

१६. चांणक कौ अंग

> जिव बिलंब्या जीव सौं, अलख न लखिया जाइ ।
> गोविंद मिलै न झल बुझै, रहि बुझाइ बुझाइ ।। १ ।।

सन्दर्भ--माया जन्य दुखो की ज्वाला प्रभु दर्शनो से ही शात हो सकती है ।

भावार्थ—एक जीव दूसरे जीव का सहारा ले रहा है अलक्ष (नराकार) परमात्मा को कोई नही देखता । जब तक प्रभु मिलन नही होगा तब तक सांसारिक तापो कि अग्नि का बुझना शान्त होना असम्भव है भले ही इसके बुझाने के अनेको प्रयत्न किये जायं ।

शब्दार्थ—विलंब्या = सहारा लिया । अलप = निराकार ब्रह्म । झल = अग्नि ।

> इहि उदार के कारणैं, जग जाच्यौं निस जाम ।
> स्वामीं पणौं जु सिरि चढ़यौ, सरया न एकौ काम ।। २ ।।

सन्दर्भ--अहकार के कारण जीव किसी लोक को भली भांति सभाल नही पाता है।

भावार्थ—सांसारिक जीव अपनी उदरपूर्ति के लिए रातदिन संसार मे भटक-भटक कर याचना किया करते हैं किन्तु उनके अदर जो स्वामीपन की भावना का अहंकार होता है उसके कारण उनका एक भी काम नही बन पाता है न यह लोक ही सुख कर हो पाता है और परलोक मे ही मुक्ति का मार्ग बन पाता है।

शब्दार्थ—स्वामी पर्णों = स्वामीपना। सर्या = सिद्ध हुआ, बना।

स्वामी हूँणाँ सोहरा, दोद्धा हूँणाँ दास।
गाडर आँणीं ऊन कूँ, बाँधी चरै कपास ॥ ३ ॥

सन्दर्भ—ईश्वर भक्त बनना अत्यन्त कठिन है।

भावार्थ—इस ससार मे स्वामी बनना तो सरल है कोई भी व्यक्ति अपने अहंकार को प्रदर्शित कर कुछ व्यक्तियो पर अपना स्वामित्व प्रदर्शित कर सकता है किन्तु परमात्मा का भक्त बनना अत्यन्त कठिन है। जिस प्रकार भेड को ऊन प्राप्ति के लिए पाला जाता है किन्तु वह घर आकर कपास को भी चर लेती है ठीक उसी प्रकार ईश्वर भक्त मे यदि अह् की भावना आ जाती है तो उसका परलोक और यह लोक दोनो नष्ट हो जाते हैं।

शब्दार्थ—सोहरा = साल। दोद्धा = दुर्लभ। गाडर = भेड।

स्वामी हुवासीत का, पैकाकार पचास।
राम नाम काँठै रह्या, करै सिषाँ की आस ॥४॥

सन्दर्भ--सासारिक व्यक्ति दम्भ मे ही लिप्त रहते हैं।

भावार्थ--हे जीवात्मा! तू कण भर सपत्ति का स्वामी होकर भी दभ मे आकर पचासो सेवक बना रखे हैं हृदय से तूने कभी राम का नाम लिया ही नहीं केवल जीभ से ही राम नाम का उच्चारण करता रहा और अब तू शिष्य बनाने की आशा करता है।

शब्दार्थ—सीत = दाना, कण। पैकाकार = सेवक। काठै = कठ।

कबीर तष्टा टोकणीं, लीयै फिरै सुभाइ।
राम नाम चीन्हैं नहीं, पीतलि टी कै चाइ ॥५॥

सन्दर्भ--जीव उदर पूर्ति के लिए ही भ्रमण करता रहता है राम का नाम नही लेता है। उसी के प्रति सकेत है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि तू अपने स्वभाव के अनुसार तसला और टोकनो लिए हुए इधर-उधर घूमकर खाने पीने का प्रबन्ध करता रहता है। तू

राम नाम के अमूल्य रत्न को पहचानता नही और पीतल के पात्र खाने के लिए घूमता रहता है उसी मे मस्त है यह ठीक नही है।

शब्दार्थ—तष्टा = तसला। टोकणी = टोकनी। सुभाइ = स्वभाव। चाइ = चाव, इच्छा।

कलि का स्वामी लोभिया, पीतलि धरी षटाइ।
राज दुवारां यौं फिरै, ज्यूँ हरिहाई गाइ ॥६॥

संदर्भ—पाखंड करने और ईश्वर की भक्ति करने मे बहुत बड़ा अंतर है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि इस संसार के स्वामी और सन्यासी सभी लोभी हैं वे बाहर से देखने मे तो विरक्त लगते हैं और अंतःकरण मे लोभ व्याप्त रहता है जिस प्रकार पीतल पर खटाई लगा देने से क्षण भर के लिए उसमे चमक आ जाती है उसी प्रकार ऐसे पाखंडी सन्यासी भी क्षण भर के लिए विरक्त हो जाते हैं। जिस प्रकार हरियाली के लोभ मे पड़ी हुई गाय बार-बार रोकने पर भी ही खेत की ओर दौडती चली जाती है उसी प्रकार वे सन्यासी भी लोभासक्त होकर धनवानो के दरवाजे पर जाया करते हैं।

शब्दार्थ—हरिहाई = जो हटाने पर भी नही हटती है।

कलि का स्वांमीं लोभिया, मनसा धरी बधाइ।
दैंहि पईसा व्याज कौं, लेखाँ करतां जाइ ॥७॥

संदर्भ—कलियुग के सन्यासी लोभी वृत्ति के होते हैं।

भावार्थ—कलियुग के स्वामी सन्यासी अत्यन्त लोभी होते हैं वे अपनी इच्छाओ-अभिलाषाओ को अत्यन्त बढा चढ़ाकर रखते हैं। वे व्याज पर रुपया उधार देत हैं और बड़ी-बडी बहियो (बहीखाता) मे उसका हिसाब रखते हैं तब भला बताइए कि उनमे और एक ससारी प्राणी मे क्या अन्तर है?

शब्दार्थ—मनसा = इच्छाएं, अभिलाषाएं।

कबीर कलि खोटी भई, मुनियर मिलै न कोइ।
लालच लोभी मसकरा, तिनकूँ आदर होइ ॥८॥

संदर्भ—कलियुग मे लोभी और मनचले लोग ही सम्मान के पात्र होते हैं।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि यह कलियुग अत्यन्त खोटा है इसमें कोई श्रेष्ठ मुनि नहीं मिल पाता है इसमे तो उन्ही व्यक्तियो का सम्मान हो पाता है जो लालची, लोभी और मनचले होते हैं।

शब्दार्थ—मुनियर = मुनिवर = श्रेष्ठमुनि। मसकरा = मसखरा, मनचला।

चारिऊँ वेद पढ़ाइ करि, हरि सूँ न लाया हेत।
वालि कबीरा ले गया, पण्डित ढूँढै खेत ॥९॥

संदर्भ--पुराण पथियो की निन्दा और व्यंग्य है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि चारो वेदो को पढ़ करके भी पंडित परमात्मा से प्रेम नही कर पाते हैं। भक्ति की भावना उनमे नही आ पाती है। भक्ति रूपी खेती की वास्तविक फसल बाली को तो मैंने ग्रहण कर लिया है अब पडित लोग व्यर्थ मे उसमे अन्न खोजने की—तत्व खोजने की चेष्टा कर रहे हैं।

शब्दार्थ—वालि = बाली।

ब्राह्मण गुरु जगत का, साधू का गुरु नाहि।
उरझि-पुरझि करि मरि रह्या, चारिउँ वेदां माहिं ॥१०॥

सन्दर्भ—वेदो की निन्दा की गई है।

भावार्थ—ब्राह्मण तो सारे संसार का गुरु है किन्तु वह साधुओ का गुरु नहीं हो सकता है क्योंकि वह तो चारो वेदो को ही उलट-पुलट कर ब्रह्म तत्व को खोजता रहता है और साधू प्रेम के द्वारा ईश्वर को प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं।

शब्दार्थ—उरझि पुरझि = उलझ-पुलझकर।

साषित सण का जेवड़ा, भीगाँ सूँ कठठाइ।
दोइ आषिर गुरु बाहिरा, बांध्या जमपुर जाइ ॥११॥

सन्दर्भ—इस साखी मे कबीर का शाक्तो के प्रति विरोध व्यक्त हुआ है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि शाक्त सम्प्रदाय को मानने वाले व्यक्ति सन की रस्सी के समान होते हैं जो जितना ही अधिक भीगती है उतना ही अधिक कड़ी होती जाती है उसी प्रकार शाक्त भी सासारिक विषय-वासनाओ मे लिपटते जाते हैं। वह राम नाम के दो अक्षरो और गुरु से विलग होने के कारण सीधा बंधा हुआ यमपुर को चला जाता है।

शब्दार्थ--साषित = शाक्त। कठठाइ = कडा होता है।

पाड़ोसी सूँ रूसणाँ, तिल-तिल सुख की हाँणि।
पंडित भये सरावगी, पाँणी पीवै छाँणि ॥१२॥

सन्दर्भ—पडोसी से द्वेष करने से सुख कभी नही प्राप्त हो सकता है।

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि अपने पडोसी से रूठ जाने पर प्रत्येक क्षण के सुख की हानि होती रहती है किन्तु इसका विचार जैन सम्प्रदाय वाले नही करते हैं वे पानी तो छान-छान कर पीते हैं किन्तु पडोसियो से रूठे रहते हैं।

शब्दार्थ—रूसणां = रुठना। सरावगी = जैन साधु।

पंडित सेती कहि रह्या, भीतरि भेद्या नाहिं।
औरूँ कौं परमोधतां, गया मुहरकां मांहिं ॥१३॥

सन्दर्भ—पंडित दूसरो को तो उपदेश देते हैं किन्तु स्वयं उस पर आचरण नहीं करते हैं।

भावार्थ—कबीरदास जी पंडित से कह रहे हैं कि तू ऊपर से ढोंग दिखाकर ज्ञानी और भक्त बन रहा है किन्तु भक्ति अन्तःकरण मे व्याप्त नही होती है और दूसरों को तो तू ज्ञान और भक्ति का प्रबोध, उपदेश देता रहता है किन्तु स्वय घोर पाप करता रहता है।

शब्दार्थ—पर बोधतां = उपदेश करता रहा। मुहरका = वधस्थान।

चतुराई सूवै पढ़ी, सोई पंजर माँहि।
फिरि प्रमोधै आँन कौं, आपण समझै नाहिं ॥१४॥

सन्दर्भ—तोते के उदाहरण के द्वारा कबीरदास जी समझाते हैं कि जीव को राम नाम का महत्व समझना चाहिए।

भावार्थ—सम्पूर्ण चतुराई सीख लेने के कारण तोते को लोग पिंजडे मे बन्द कर देते हैं किन्तु स्वय पिंजड़े मे बन्द होकर भी वह और लोगो को उपदेश देता है कि राम नाम का उच्चारण करो यद्यपि वह स्वय राम नाम के महत्व को समझ नही पाता है।

शब्दार्थ—पंजर = पिंजड़ा। प्रमोधै = उपदेश देना।

रासि पराई राषताँ, खाया घर का खेत।
औरों कौं प्रमोधताँ, मुख मैं पड़िया रेत॥ १५॥

सन्दर्भ—ऐसे पंडितो के प्रति संकेत है जो दूसरो को तो उपदेश देते रहते हैं किन्तु स्वयं विषय-वासना ग्रस्त रहते हैं।

भावार्थ—कुछ किसान अपने खेतो के अनाज की रक्षा न करके थोडा अन्न पाने के लिए दूसरो के खेत की रक्षा करते हैं उसी प्रकार ढोंगी पंडित दूसरो को ही उपदेश देते रहते हैं स्वयं तो विषय-वासना मे पडकर अपना जीवन नष्ट करते रहते हैं।

शब्दार्थ—रासि = अन्न का ढेर।

तारा मंडल वैसि करि, चंद बड़ाई खाइ।
उदै भया जब सूर का, स्यूँ तारां छिपि जाइ॥ १६ ॥

संदर्भ—जीवको जब ज्ञान प्राप्त हो जाता है तब उसकी संपूर्ण इच्छाएं नष्ट हो जाती हैं।

भावार्थ—ताराओ के मध्य मे आकाश मंडल मे विराजमान होकर चन्द्रमा ऐश्वर्य को प्राप्त करता है किन्तु सूर्य के उदय होने पर वह तारो के साथ अस्त हो जाता है ठीक उसी प्रकार जीव अज्ञानान्धकार मे पडा रहता है ज्ञान के उदय होने पर संपूर्ण इच्छाएं नष्ट हो जाती हैं।

शब्दार्थ—स्यूं = साथ ।

देषण के सबको भले, जिसे सीत के कोट।
रवि कै उदै न दीसहीं, बँधै न जल की पोट ॥ १७ ॥

सन्दर्भ—जीव का अज्ञान ज्ञान रूपी सूर्य के उदय हो जाने से भाग जाता है।

भावार्थ—जिस प्रकार शीत काल मे बरफ के किले देखने मे अच्छे लगते हैं उसी प्रकार बाह्य वेशभूषा से युक्त पडित भी देखने मे सबको अच्छे लगते हैं किन्तु जिस प्रकार सूर्य उदय होने पर उनका अस्तित्व समाप्त हो जाता है और उस जल की पोटली भी नही बाँधी जा सकती उसी प्रकार वास्तविक ज्ञान प्राप्त होने पर अज्ञानी पडितो और सन्यासियो का अस्तित्व भी समाप्त हो जाता है।

शब्दार्थ—देषण = देखने मे । दीसही = दिखाई देते हैं। पोट = गठरी

तीरथ करि करि जग मुवा, डूंघै पांणीं न्हाइ।
रामहि राम जपतडां, काल घसीट्या जाइ ॥ १८ ॥

सन्दर्भ—मुक्ति उपासना के बाह्याडम्बरो से नही मिलती उसके लिए हृदय से प्रभु-भक्ति की आवश्यकता होती है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि अनेकानेक प्रकार के तीर्थों के दर्शन करके और गंदले पानी मे स्नान करके लोग मर जाते हैं। मुंह से राम नाम का उच्चारण करते हुए भी मृत्यु उन्हें घसीट ले जाती है क्योकि राम नाम उच्चारण ही होना है हृदय से उसका जप नहीं होता है।

शब्दार्थ—डूंघै = गदा । जपतडाँ = जपता हुआ ।

कासी कांठैं घर करैं, पीवै निर्मल नीर।
मुकति नहीं हरि नाव बिन यौं कहै दास कबीर ॥ १९ ॥

सन्दर्भ—ईश्वर के नाम-स्मरण के बिना मुक्ति नही प्राप्त हो सकती है।

भावार्थ—शकर की पुरी काशी मे निवास करते हुए और गंगाजी का निर्मल जल पीते हुए लोग मुक्ति की आशा करते हैं किंतु कबीरदास जी इस प्रकार कहते हैं, विना हरि नाम के स्मरण के जीव को मुक्ति मिलना असंभव है।

शब्दार्थ—कासी काठैं = काशी मे निवास करते हुए।

कबीर इस संसार कौं; समझाऊँ कै बार।
पूँछ ज पकड़ै भेद की, उतर्या चाहै पार॥ २०॥

सन्दर्भ—माया का आश्रय ग्रहण कर कही जीव संसार-सागर को पार उतर सकता है?

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं इस संसार के जीवों को कितनी बार समझाऊं कि माया का आश्रय ग्रहण कर भवसागर को पार उतरने की चाह रखना बिलकुल व्यर्थ है।

शब्दार्थ—भेद = माय।

कबीर मन फूल्या फिरै, करता हूँ मैं ध्रंम।
कोटि क्रम सिरि ले चल्या, चेत न देखे भ्रंम॥ २१॥

सन्दर्भ—वाह्याचरण से कहीं मुक्ति मिलती है?

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि लोग अपने मन मे बहुत प्रसन्न रहते हैं कि मैं धर्म कर रहा हूँ यद्यपि वे वाह्याचरण को ही धर्म के अंतर्गत मानते हैं और उसी से मुक्ति की कामना करते हैं। वह भ्रम का निवारण कर इस बात पर विचार नहीं करता कि अपने सिर पर करोड़ो कुकर्मों का भार लेकर चल रहा है फिर मुक्ति मिले तो कैसे?

शब्दार्थ— ध्रम = धर्म। क्रम = कर्म। चेति = चेत कर, सावधान होकर भ्रंम = भ्रम।

मोर तोर की जेवड़ी, वलि वन्ध्या संसार।
कांसि कडूँवा सुत कलित, दाझण वारम्बार॥ २२॥३६८॥

संदर्भ— अपने और पराए की भावना के कारण जीव को संसार से मुक्ति नही मिलती।

भावार्थ—मेरे तेरे की भावना रूपी रस्सी मे वलि के वछड़े के समान सारा ससार वंधा हुआ है। पुत्र एव स्त्री रूपी काम एवं कंडुआ के कारण जीवात्मा को आवागमन से मुक्ति नही मिल पाती है। वह वार-वार आवागमन चक्र मे पड़ कर ससार तापो मे दग्ध होता रहता है।

शब्दार्थ--मोर तोर=अपना पराया। जेवडी=रस्सी। कांसि=कांस कंडुवा=बाली के अन्दर बिगडा हुआ दाना। दाभण=जलना।

---

१८. करणीं बिना कथणीं कौ अंग

कथणीं कथी तौ क्या भया, जे करणीं नां ठहराइ।
कालबूत के कोट ज्यूँ, देषत ही ढहि जाइ॥१॥

सन्दर्भ—कथनी के अनुसार ही करणी का होना आवश्यक है ?

भावार्थ--यदि केवल कहते, ही कहते मनुष्य ने अपना जीवन व्यतीत कर दिया और उसी अनुसार कार्य न किया तो उससे क्या लाभ। जिस प्रकार कालबूत के बने हुए कगूरे साधारण प्रयास से ही देखते ही देखते नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार मनुष्य के उस मौखिक कथन का भी कोई अस्तित्व नही रहता है वे साधारण परीक्षा मे भी खरे नही उतरते।

शब्दार्थ--कथणी=कथन, कहना। करणी=कर्म।

जैसी मुख तैं नीकसै, तैसी चालै चाल।
पारब्रह्म नेड़ा रहै, पल में करै निहाल॥२॥

सन्दर्भ—यदि कथनी के समान आचरण भी हो जाय तो क्षण भर मे मुक्ति मिल जाय।

भावार्थ--जिस प्रकार की बातें मनुष्य के मुख से दूसरो के लिए निकलती हैं यदि उस पर वह स्वय भी आचरण करे तो परब्रह्म उसके समीप ही रहता है और क्षण भर मे उसको मुक्ति प्रदान करके निहाल कर देता है।

शब्दार्थ— नेड़ा=समीप। निहाल=प्रसन्न।

जैसी मुख तैं नीकसै, तैसी चालै नाहिं।
मानिष नहीं ते स्वान गति, बांध्या जमपुर जाँहि॥३॥

सन्दर्भ—केवल दूसरो को ही उपदेश देने वाला और स्वयं उस पर आचरण न करने वाला व्यक्ति कुत्ते के समान होता है।

भावार्थ—जो व्यक्ति अपने मुख से दूसरो के उपदेश हेतु निकाली हुई बात पर स्वयं नही चलते हैं आचरण नहीं करते हैं वे व्यक्ति मनुष्य नही हैं वल्कि कुत्ते के समान हैं वे पापाचरण के कारण बाधकर यमलोक ले जाये जाते हैं।

शब्दार्थ—स्वांन = श्वान = कुत्ता।

पद गाएँ मन हरषियाँ, साषी कहयाँ अनन्द।
सोवत नांव न जांणियाँ, गल में पड़िया फंध ॥४॥

सन्दर्भ—ब्रह्म के पूर्ण रहस्य को समझे बिना जीव को मुक्ति नही मिल पाती है।

भावार्थ—मनुष्यो को ईश्वर भक्ति के पद गाने से मन मे प्रसन्नता होती है और साखियो को कहने से आनन्द मिलता है ऐसा लगता है कि उन्होने ईश्वर की सम्पूर्ण भक्ति कर ली है। किन्तु विना उस परम तत्व के रहस्य को जाने और ध्यान किए उनकी मुक्ति नही हो पाती है और वे अन्त तक काल-पाश मे ही पड़े रहते हैं।

शब्दार्थ—तत = तत्व। फंध = फन्दा।

करता दीसै कीरतन, ऊँचा करि करि तूंड।
जांणै बूझै कुछ नहीं, यौं ही आँधाँ रुंड ॥५॥३७३॥

सन्दर्भ—वाह्य रूप से ही राम नाम की रट लगाने से कुछ नही होता. जब तक हृदय से उसकी भक्ति नही होती है।

भावार्थ—जो व्यक्ति राम नाम का कीर्तन, विना उसके महत्व को समझे हुए मुँह उठा-उठा कर ऊंचे स्वर से करते हैं वह वास्तविकता तो कुछ नही जानते-बूझते हैं अंधे रुंड के समान विना सिर के शरीर के नीचे के भाग के समान इधर-उधर डोलते हैं।

---

१९. कथणीं बिना करणीं कौ अंग

मैं जांन्यूं पढ़िबौ भलौ, पढ़िवा थैं भलौ जोग।
रांम नांम सूं प्रीति करि, भलभल नींदौ लोग ॥१॥

सन्दर्भ—जीव को प्रभु-भक्ति मे ही प्रवृत्त होना चाहिए।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि इस बात को मैं भली-भांति जानता हूँ कि वेद शास्त्रो का पढना अच्छा काम है किन्तु उससे भी अच्छा योग साधना करना

है किन्तु यदि इनका ज्ञान न हो तब भी राम नाम का स्मरण करना अच्छा है भले ही लोग निन्दा करते रहे।

शब्दार्थ—पढ़िबौ = पढना। थैं = से। भल भल = भले ही।

कबीर पढ़िबा दूरि करि, पुसतक देइ बहाइ।
बांवन आषिर सोधि करि, ररै ममैं चित लाइ ॥२॥

सदर्भ—प्रभु-भक्ति ही जीव का काम्य है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि पढना बन्द करके पुस्तको को वहा दे। और वर्णमाला के ५२ अक्षरो का भली प्रकार से शोध करके उसमे से केवल दो अक्षर 'र' और 'म' में अपने चित्त को लगा दे। उसी से मुक्ति प्राप्त होती है।

शब्दार्थ—आषिर = अक्षर। ररै ममै = 'र' और 'म'।

कबीर पढ़िवा दूरि करि, आथि पढ़्या संसार।
पीड़ न उपजी प्रीति सूँ, तौ क्यूं करि करै पुकार ॥३॥

संदर्भ—शास्त्रादि के पाठ से ही मुक्ति सम्भव नही होती है। मुक्ति तो प्रभु-प्रेम से ही प्राप्त होती है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि वेद शास्त्रो का अध्ययन करना छोड़ दे क्योंकि उसके पढने के बाद भी ससार का अन्त हो जाता है। यदि हृदय मे प्रभु-प्रेम की पीड़ा न उत्पन्न हुई तो केवल राम नाम का उच्चारण मात्र करने से क्या लाभ ?

शब्दार्थ—आदि = अत।

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोइ।
एकै अषिर पीव का, पढ़ै सु पंडित होइ ॥४॥३७७॥

संदर्भ—राम नाम का महत्व समझ लेना ही वास्तविक पण्डित होना है।

भावार्थ—संसार के समस्त धर्म ग्रन्थो को पढ-पढ करके सारा संसार मर गया किन्तु उनमे से कोई भी वास्तविक पडित नही हो सका। किन्तु जिसने प्रियतम का (प्रभु का) एक शब्द 'राम' पढ़ लिया वह वास्तव मे पंडित हो गया।

शब्दार्थ—मुवा = मरा।

———

२०. कामी नर कौ अंग

कांमणि काली नागणीं, तीन्यूँ लोक मँझारि।
राम सनेही ऊबरे, बिषई खाये झारि ॥ १ ॥

सन्दर्भ—ईश्वर भक्तो के ऊपर नारी का प्रभाव नही पडता है।

भावार्थ—कामिनी (स्त्री) काली नागिन के समान विष से भरी हुई है। यह तीनो लोको के मध्य घूम-घूम कर लोगो को डंसती रहती है उसके प्रभाव से केवल राम भक्त ही बच पाते हैं विषय वासना मे डूबे हुए व्यक्तियो को तो वह डस ही लेती है।

शब्दार्थ—कांमणि= कामिनी। नागणी=नागिन। मझारि=मध्य मे।

कांमणि मींनीं षांणि की, जे छेड़ौं तौ खाइ।
जे हरि चरणां राचिया, तिनके निकट न जाइ ॥ २ ॥

सन्दर्भ—नारी का प्रभाव ईश्वर के भक्तो पर नही पड़ता है।

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि स्त्री मधुमक्खी के समान है जिस प्रकार मधुमक्खी को जो कोई छेडता है उसी को खा जाती है उसी प्रकार स्त्री को भी जो कोई छेड़ता है वह उसी का परलोक बिगाड़ देती है। किन्तु जिन्होने अपने मन को भगवान के चरणो मे लगा रखा है उनके निकट जाने का साहस यह मधु-मक्खी रूपी स्त्री नहीं कर पाती है।

शब्दार्थ—मीनी=मक्खी। पाणि=शहद।

परनारी राता फिरैं, चोरी बिढ़ता खाँहिं।
दिवसि चारि सरसा रहै, अंति समूला जाँहिं ॥ ३ ॥

सन्दर्भ—पर स्त्री मे अनुरक्त एवं चोरी का धन खाने वाले का लोक और परलोक दोनो नष्ट हो जाते हैं।

भावार्थ—जो व्यक्ति दूसरो की स्त्री मे अनुरक्त रहता है और चोरी की कमाई खाता है वह थोड़े दिनो के लिए भलेही फला फूला दिखाई दे समृद्धवान् हो जाय किन्तु अन्त मे जड़ सहित नष्ट हो जाता है।

शब्दार्थ—राता= अनुरक्त। विढ़ता=समृद्ध। सरसा=फूलना फलना।

पर नारी पर-सुंदरी, बिरला बंचै कोइ।
खातां मींठी खांड सी, अंति कालि विष होइ ॥ ४ ॥

सन्दर्भ—पर नारी-ससर्ग परिणाम मे दुखदायक होता है।

भावार्थ—दूसरे की पत्नी और सुन्दर स्त्री से कोई विरले व्यक्ति ही बच पाते हैं स्त्री के संसर्ग से प्राप्त सुख खाँड़ के समान मधुर लगता है किन्तु अन्त मे यह विष के समान भयानक प्रभाव वाला होता है।

विशेष--तुलसी ने भी लिखा है कि--

'नारि नयन सर जाहि न लागा।"
+ + +
"सो नर तुम्ह समान रघुराया।"

—मानस

शब्दार्थ--विरला = कोई।

पर नारी कै राचणैं, औगुण है गुण नांहि।
षार समंद मैं मछला, केता बहि बहि जांहिं ॥ ५ ॥

सन्दर्भ –लोग वासना का परित्याग न कर पाने के कारण पर स्त्री गामी हो जाते हैं जब कि इससे हानि ही हानि होती है।

भावार्थ–पर स्त्री के प्रेम मे अवगुण ही अवगुण है गुण एक भी नही इस स्त्री के आकर्षण रूपी समुद्र मे न जाने कितनी आत्मा रूपी मछलियाँ बह जाती हैं।

शब्दार्थ--राचणों = प्रेम मे। षार = खारी नमकीन।

पर नारी को राचणौं, जिसी ल्हसण की षाँनि।
षूणैं बैसि रषाइए, परगट होइ दिवानि ॥ ६ ॥

सन्दर्भ—पर स्त्री प्रेम को छिपाया नही जा सकता है।

भावार्थ—पर स्त्री से प्रेम करना लहसुन के खाने के समान है। जिस प्रकार लहसुन खाने के बाद सुगंध से उसका पता अवश्य चल जाता है उसी प्रकार पर स्त्री से किए गए प्रेम का भी पता चल जाता है वह छिपता नही। अत्यन्त सतर्कता पूर्वक कोने मे बैठकर भी यह छिपाया नही जा सकता है।

शब्दार्थ—षाँनि = खाना। षूणैं = कोने मे। बैसि = बैठकर। रषाइए = रखवाली कीजिए।

नर नारी सब नरक है, जब लगि देह सकाम।
कहै कबीर ते रांम के, जे सुमिरैं निहकांम ॥ ७ ॥

सन्दर्भ—सासारिक कामनाओ की इच्छा न करके भगवान का भजन ही सच्चा भजन है।

भावार्थ—जब तक शरीर कामनामय रहता है तब तक सभी स्त्री पुरुष नरक के कीड़े के अतिरिक्त और कुछ नही है। जो व्यक्ति निष्कम रूप से ईश्वर की भक्ति करते हैं वे ही वास्तव मे ईश्वर प्रेमी हैं।

शब्दार्थ—सकाम = कामनामय। निहकाम = निष्काम।

नारी सेती नेह, बुधि बिवेक सबही हरै।
कांइ गमावै देह, कारिज कोई नां सरैं॥ ८॥

संदर्भ--स्त्री के प्रेम मे विवेक नष्ट हो जाता है।

भावार्थ—स्त्री के प्रति प्रेम व्यक्ति की बुद्धि, विवेक सब का हरण कर लेता है। हे जीव! तू क्यो अपनी शारीरिक शक्तियो का अपहरण कर रहा है? इससे तो तेरा कोई भी कार्य सफल नहीं होगा।

शब्दार्थ—काह = क्यो? सरै = पूरा होना।

नाना भोजन स्वाद सुख, नारी सेती रंग।
वेगि छाड़ि पछिताइगा, ह्वै है मूरति भंग॥ ९॥

सन्दर्भ--इन्द्रिय सुखो मे अनुरक्त शरीर की शक्ति कम होने पर मनुष्य पश्चाताप करता है।

भावार्थ—हे मनुष्य! तू नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजनो और स्त्री के साथ विलास करने के सुख को शीघ्र ही छोड़ दे अन्यथा जब तेरा रूप सौन्दर्य नष्ट हो जायगा तब तुझे पश्चाताप करना पडेगा।

शब्दार्थ—मूरति = रूप' सौन्दर्य।

नारि नसावै तीन सुख, जा नर पासैं होइ।
भगति, मुकति, निज ग्यान में, पैसि न सकई कोय॥१०॥

सन्दर्भ—कामी मनुष्य का सम्बन्ध भक्ति मुक्ति और आत्म ज्ञान से नही होता है।

भावार्थ—स्त्री का संपर्क मनुष्य को भक्ति, मुक्ति और आत्म ज्ञान इन तीनो सुखो से वंचित कर देता है। कामी मनुष्यो का इन तीनो से कोई भी सम्बन्ध नही रहता है।

शब्दार्थ—पैसि = प्रवेश।

एक कनक अरु कांमनीं, विपफल कीए उपाइ।
देखै ही थैं विप चढ़ै, खाँयें सूँ मरि जाइ॥ १२॥

सन्दर्भ—धन और स्त्री के उपभोग से प्राणी मृत्यु को ही प्राप्त हो जाता है।

भावार्थ—एक तो सोना अर्थात् धन दूसरे स्त्री को प्राप्त कर लेना विष फल का प्राप्त करना है। इन दोनो के देखने मात्र से ही विष के समान प्रभाव हो जाता है और यदि इनका उपभोग किया जाय तो निश्चय ही मृत्यु आती है।

शब्दार्थ—उपाइ = उत्पन्न करके।

एक कनक अरु कामिनी, दोऊ अगनि की झाल।
देखैं ही तन प्रजलै, परस्यौं ह्वै पैमाल ॥ १२ ॥

सन्दर्भ—स्त्री और धन का देखना भी भयकर होता है।

भावार्थ—एक सोना अर्थात् धन और दूसरे स्त्री दोनो अग्नि की जलती हुई लपटो के समान हैं। इनको देखने मात्र से ही शरीर प्रज्वलित होने लगता है फिर स्पर्श करने पर तो कहना ही क्या ? तब तो मनुष्य नष्ट ही हो जाता है।

शब्दार्थ—झाल = लपट। पैमाल = नष्ट होना।

कबीर भग की प्रीतड़ी, केते गए गडंत।
केते अजहूँ जाइसी, नरकि हसंत हसंत ॥ १३ ॥

सन्दर्भ—एक दूसरे के परिणाम देखकर भी मनुष्य वासना से अलग नहीं होता है।

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि स्त्री के सहवास के सुख के प्रेमी न जाने कितने व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त होने के बाद कब्र मे गाड दिये गए किन्तु फिर भी ससार के अवशिष्ट प्राणी आज भी हंसते हंसते उसी नरक को (पतन मार्ग) को जा रहे हैं।

शब्दार्थ—भग = स्त्री सम्भोग।

जोरू जूठणि जगत की, भले बुरे के बीच।
उत्यम ते अलगे रहैं, निकटि रहैं तें नीच ॥१४॥

सन्दर्भ—स्त्री से दूर रहने वाला व्यक्ति श्रेष्ठ और इसके संसर्ग मे रहने वाला नीच होता है।

भावार्थ—स्त्री सांसारिक विषय वासनाओ की बची हुई जूठन है। यह मनुष्य के भले और बुरे का अतर बताती है। जो इससे अलग रहते हैं वे उत्तम कोटि के व्यक्ति होते हैं और जो इसके निकट रहते हैं वे नीच प्रकृति के होते हैं।

शब्दार्थ—जोरू = पत्नी, नारी। उत्यम = उत्तम = श्रेष्ठ।

नारी कुँड नरक का, बिरला थंभे बाग।
कोइ साधू जन उबरै, सब जग मूवा लाग ॥१५॥

सन्दर्भ—स्त्री के सम्पर्क से ईश्वर भक्त ही बच पाते हैं।

भावार्थ—जिस प्रकार नरक कुंड अपवित्र होता है उसी प्रकार स्त्री भी अप-वित्र होती है अपनी इन्द्रियरूपी लगाम को विरले व्यक्ति ही रोक पाते हैं। संपूर्ण संसार स्त्री मोह मे पडकर मरकर विनष्ट हो गया केवल कुछ साधु व्यक्ति ही इसके प्रलोभन से वचकर भव सागर पार कर पाते हैं।

शब्दार्थ—थभै = थामना रोक पाना। वाग = लगाम।

विशेष—रूपक अलकार।

सुंदरी थैं सूली भली, विरला बंचै कोइ।
लोह निहाला अगनि मैं, जलि बलि कोइला होय ॥ १६॥

सन्दर्भ—नारी दृढ चरित्र वाले को व्यक्ति को भी पथ भ्रष्ट कर देती है।

भावार्थ—सुन्दरी स्त्री से शूली फिर भी अच्छी होती है क्योकि स्त्री के घातक प्रभाव से विरला व्यक्ति ही वच पाता है। श्रेष्ठ से श्रेष्ठ लोहे को भी अग्नि जलाकर कोयला वना देती है उसी प्रकार स्त्री भी श्रेष्ठ से श्रेष्ठ पुरुष को भी नष्ट भ्रष्ट कर देती है।

शब्दार्थ—निहाला = डालना।

अंधा नर चेतै नहीं, कटै न संसै सूल।
और गुनह हरि बकससी, काँमी डाल न मूल ॥ १७ ॥

सन्दर्भ—कामी व्यक्ति के अवगुणो को ईश्वर क्षमा नही करता है।

भावार्थ—कामान्ध व्यक्ति को कभी चेत नही आता वह सदैव असावधान ही रहता है उसके सशय का निवारण भी नही हो पाता है। अन्य गुनाहो को दोपो को तो ईश्वर क्षमा कर देता है किन्तु कामी व्यक्ति तो कही का भी नही रहता है न तो उसके हाथ मे यह लोक रहता है और न परलोक।

शब्दार्थ—अन्धा = कामान्ध। गुनह = गुनाह, दोप।

भगति बिगाड़ी काँमियाँ, इंद्री केरै स्वादि।
हीरा खोया हाथ थैं, जनम गँवाया वादि ॥ १८ ॥

सन्दर्भ—मानव जन्म का उद्देश्य एक मात्र प्रभु भक्ति ही है।

भावार्थ—कामी पुरुपो ने इन्द्रियो के स्वाद के लिए भक्ति मार्ग को नष्ट कर दिया उन्होंने हीरा ऐसे अनमोल भक्ति मार्ग को अपने हाथ से खो दिया और सांसारिक विपयों मे पड़ कर अपने जन्म को व्यर्थ ही खो किया।

शब्दार्थ—काँमियाँ = कामी पुरुप। वादि = व्यर्थ।

विशेप—रूपक अलकार।

कामीं अमीं न भावई, बिषई कौ ले सोधि ।
कुबोधि न जाई जीव की, भावै स्यंभ रहौ प्रमोधि ॥ १६ ॥

सन्दर्भ—स्वय प्रभु के समझाने पर भी कामी पुरुषो को समझ नही आ पाती हैं।

भावार्थ—कामी पुरुष को प्रभु भक्ति रूपी अमृत अच्छा नही लगता है वह तो इन्द्रियो के विषयो को खोजा करता है यदि साक्षात प्रभु ही आकर ऐसे जीव को उपदेश देने लगे तो भी उसकी कुबुद्धि नष्ट नही होती है।

शब्दार्थ—अमी = अमृत । स्यभ = शभु, ईश्वर ।

विषै बिलंबी आत्माँ, ताका मजकण खाया सोधि ।
ग्याँन अंकुर न ऊगई, भावै निज प्रमोध ॥ २० ॥

संदर्भ—उपदेशो का प्रभाव कामी पुरुषो पर नही पडता है।

भावार्थ—विषय भोगो मे लिप्त जीवात्मा के शरीर के मज्जा के प्रत्येक कण-कण को विषय की प्रवृत्ति खोज खोजकर खा लेती है। इस प्रकार के व्यक्ति के अंतःकरण मे ज्ञान का अकुर अंकुरित नही होता है उसे चाहे जितने उपदेश दिये जांय। उसे तो अपने आपका उपदेश ही अच्छा लगता है।

शब्दार्थ—विलबी = लगी हुई। मजकण = मज्जा का कण।

विषै कर्म की कंचुली, पहरि हुआ नर नाग।
सिर फोड़ै सूझै नहीं, को आगिला अभाग ॥२१॥

सन्दर्भ—विषय-वासना मे लगा हुआ व्यक्ति आत्म तत्व को नही पहचान पाता है।

भावार्थ—विषय वासना रूपी कर्मों की केंचुल को पहन कर मनुष्य सर्प तुल्य हो जाता है। जिस प्रकार सर्प केचुली से ढका होने पर सिर पटक पटककर देखने पर भी आत्मस्वरूप को नही देख पाता है उसी प्रकार विषयी पुरुष भरसक प्रयास करने पर भी आत्मा स्वरूप को नही जान पाते हैं।

शब्दार्थ – सिर फोडै = भरसक प्रयत्न करने पर भी।

विशेष - दृष्टान्त अलकार।

कामीं कदे न हरि भजै, जपै न केसौ जाप।
राम कह्यां थैं जलि मरै, को पूरिबला पाप ॥२२॥

सन्दर्भ—कामी पुरुष को प्रभु भजन अच्छा नही लगता है।

भावार्थ—कामी पुरुष कभी भी ईश्वर का भजन नहीं करता है और न वह केशव नाम का सकीर्तन ही करता है यह उसके पूर्व जन्म के पापो का ही परिणाम

है कि यदि उसके समक्ष कोई दूसरा भी व्यक्ति राम का नाम ले लेता है तो वह क्रोधाभिभूत हो जाता है।

शब्दार्थ—करे = कभी। केसौ = केशव, प्रभु।

कामी लज्या नां करै, मन मांहै अहिलाद।
नींद न मांगै सांथरा, भूष न मांगै स्वाद ॥२३॥

सन्दर्भ—कामी पुरुष निर्लज्जता के कारण भले बुरे पर ध्यान नहीं देता है।

भावार्थ—कामी पुरुष लज्जा नही करता है अपितु उसके मन मे अपने कुकर्मों के प्रति भी प्रसन्नता ही होती है। जिस प्रकार नींद मे मस्त आदमी शैया की चिन्ता न कर कही भी सो जाता है और भूखा व्यक्ति स्वाद नही देखता कुछ भी खाकर भूख शान्त करने लगता है उसी प्रकार कामी पुरुष भले बुरे का ध्यान नहीं रखता है।

शब्दार्थ—अहिलाद = आह्लाद, प्रसन्नता। साथरा = शय्या।

नारि पराई आपणीं, भुगत्या नरकहिं जाइ।
आगि आगि सबरौ कहैं, तामैं हाथ न बाहि ॥२४॥

सन्दर्भ—कबीर मनुष्यो को नारी से अलग रहने का उपदेश देते हैं।

भावार्थ—जो व्यक्ति दूसरे की स्त्री का उपभोग अपनी स्त्री के समान करते हैं वे सीधे नरक को ही जाते हैं। हे मनुष्य! जिस स्त्री को सारा संसार अग्नि-अग्नि कहकर घातक बतलाता है उसमे तू अपना हाथ न डाल। उससे तू अलग ही रहने की चेष्टा कर।

शब्दार्थ—भुगत्या = भोग करने पर। बादि = डाल।

कबीर कहता जात हौं, चेतै नहीं गँवार॥
बैरागी गिरही कहा, कामी वार न पार ॥२५॥

सन्दर्भ—काम वासना की ओर उन्मुख हुए व्यक्ति का कही, स्थान नहीं होता है।

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि मैं कहता हुआ जाता हूँ कि सांसारिक प्राणियो को चेत नही आता है। चाहे बैरागी हो और चाहे गृहस्थ कामी पुरुष कही वार-पार नही होता है। उसे कही भी स्थान नही प्राप्त होता है।

शब्दार्थ—गिरही = गृहस्थ।

ग्यानी तौ नींडर भया, मानै नांही संक।
इन्द्री केरे बसि पड्या, भूँचै विषै निसंक ॥२६॥

सन्दर्भ—ज्ञानी पुरुष के लिए भी विषय वासना का परित्याग आवश्यक है।

भावार्थ—ज्ञानी व्यक्ति निडर हो जाता है उसे किसी प्रकार की शंका नहीं रहती है और वह निशंक होकर इंद्रियो के भोगो को भोगता रहता है किन्तु वह ज्ञानी ही कैसा ? जो इन्द्रियो के भोगो को भोगे। उसे तो उससे अलग ही रहना चाहिए।

शब्दार्थ--शंक = शंका।

ग्यानी मूल गँवाइया, आपण भया करता।
तार्थैं संसारी भला, मन में रहै डरता ॥२७॥४०४॥

सन्दर्भ—अपने आचरण के प्रति सचेष्ट रहने वाला व्यक्ति ही श्रेष्ठ है।

भावार्थ—ज्ञानी व्यक्ति अपने को संसार का कर्त्ता मानकर मूल सपत्ति भी गंवा देता है आत्म तत्व को पहचान नही पाता है। उससे अच्छे तो वे सासारिक मनुष्य है जो अपने मन मे ईश्वर से डरते रहते हैं कि कही प्रभु उस पर क्रुद्ध न हो जाय और इस डर से वह कुकर्म नही करता है।

शब्दार्थ = तार्थैं = उससे।

---

२१. सहज कौ अङ्ग

सहज सहज सब कोई कहै, सहज न चीन्हैं कोइ।
जिन सहजैं विषिया तजी, सहज कहीजै सोइ ॥१॥

सन्दर्भ—निष्काम भक्त विषय वासना का परित्याग कर देते हैं।

भावार्थ—प्रत्येक मनुष्य ईश्वर प्राप्ति के मार्ग सहज (आसान) ही कहता है किन्तु उस सहज को कोई जानता नही है। परमात्मा को कोई नही जान पाता है। जो सरलतापूर्वक विषय वासनाओ का परित्याग कर देते हैं उन्ही को सरल एवं निष्काम भक्त कहना चाहिए।

शब्दार्थ—चीन्हैं = जानना ।

विशेष—पुनरुक्ति अलकार।

सहज सहज सब कोई कहै, सहज न चीन्हैं कोइ।
पाँचू राखै परसती, सहज कही जै सोइ ॥२॥

सन्दर्भ—पचेन्द्रियो को वश मे करने वाला व्यक्ति ही सच्चा निष्काम भक्त है।

भावार्थ--ईश्वर प्राप्ति को सभी सरल कहते हैं किन्तु उस सरल ब्रह्म को कोई पहचान नही पाता है। जो व्यक्ति पांचो इन्द्रियो को अपने वश मे कर लेता है वही सहज और निष्काम भक्त होता है।

शब्दार्थ--पांचू = पाँचो इन्द्रियो को। परसती = वश मे।

विशेष- पुनरुक्ति अलंकार।

> सहजैं सहजैं सब गए, सुत बित कांमणि कांम।
> एकमेक ह्वै मिलि रह्या, दासि कबीरा राम ॥३॥

सन्दर्भ—संसार की प्रत्येक वस्तु नश्वर है। केवल ईश्वर भक्त ही परमात्मा मे तदाकार हो जाता है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि पुत्र, धन, स्त्री और कामनाएं धीरे-धीरे एक-एक करके सभी चले गये। और सब के नष्ट होने पर सब से वैराग्य होने पर भक्त कबीर ईश्वर से मिल कर एकाकार हो गये।

शब्दार्थ—सहजैं सहजैं = शनैः शनै।

> सहज सहज सबको कहै, सहज न चीन्हैं कोइ।
> जिन्ह सहजैं हरिजी मिलै, सहज कहीजै सोइ ॥४॥४०८॥

संदर्भ--ईश्वर को सरलता से प्राप्त कर लेना ही सहजावस्था है।

भावार्थ--ईश्वर प्राप्ति को सरल तो सभी कहते हैं किन्तु उस सरल को (ब्रह्म को) कोई जान नहीं पाता है। जिस व्यक्ति को सुगमता से प्रभु मिल जायें वही सहज साधक है और वही अवस्था सहजावस्था है।

शब्दार्थ—हरि जी = परब्रह्म, परमात्मा।

———

२२. साँच कौ अङ्ग

कबीर पूँजी साहु की, तूँ जिन खोवैख्वार।
खरी विगूचनि होइगी, लेखा देती बार ॥१॥

सन्दर्भ—जीव को सम्बोधित करते हुए कबीर दास जो कहते हैं कि आत्मा के सच्चे रूप को भुला देने से बडी परेशानी होगी।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि हे जीव ! तू परमात्मा रूपी सेठ की दी हुई पूंजी को व्यर्थ ही नष्ट मतकर अन्यथा मृत्यु के उपरान्त कर्मों का लेखा-जोखा देते समय तुझे भारी कठिनाई मे पडना होगा।

शब्दार्थ—ख्वार = व्यर्थ। विगूचनि = कठिनाई।

लेखा देणां सोहरा, जे दिल साँचा होइ।
उस चंगे दीवांन मैं, पला न पकड़ै कोइ ॥२॥

सन्दर्भ--सत्य प्रिय व्यक्ति को परमात्मा के समक्ष कोई कष्ट नहीं होता है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि यदि तुम्हारा मन सच्चा है तो परमात्मा के समक्ष तुम्हे अपने कर्मों का हिसाब देने मे आनन्द ही आयेगा कष्ट नहीं होगा। और उस परमात्मा के दरबार मे सत्य प्रिय व्यक्ति का दामन नही कोई पकड सकता है कोई उसको निकाल नही सकता है।

शब्दार्थ--सोहरा = अच्छा। पला = दामन।

कबीर चित्त चमंकिया, किया पयाना दूरि।
काइथि कागद काढ़िया, तब दरगह लेखा पूरि ॥३॥

सन्दर्भ—सच्चा व्यक्ति हिसाब-किताब मे खरा निकलता है और जीव सत्कर्मों के द्वारा ही जीवन्मुक्त हो पाता है।

भावार्थ— कबीर दास जी कहते हैं कि मेरी आत्मा ने दूर देश—ब्रह्म के समीप प्रयाण किया तो चित्त प्रसन्न हो गया और वहाँ पर जब चित्रगुप्त ने मेरे कर्मों का लेखा-जोखा निकाला तो वह पूर्ण निकला।

शब्दार्थ--चमकिया = प्रसन्न हुआ। पयाना = प्रयाण। काइथि = कायस्थ, चित्रगुप्त। दरिगह = दरबार।

काइथि कागद काढ़िया, तब लेखै वार न पार।
जब लग सांस सरीर में, तब लग रांम सँभार ॥४॥

सन्दर्भ—जीवन रहते ही पापो के नाश हेतु राम नाम का जप करते रहना चाहिए।

भावार्थ—मरणोपरान्त परमात्मा के दरवार मे जिस समय चित्र गुप्त तेरे कर्मों का हिसाव-किताव लगाकर देखेगा उस समय तेरे कुकर्मों का कोई वारपार न होगा। नरक भोगना अवश्यंभावी हो जावेगा। इसलिए हे जीव ! जव तक तेरे शरीर मे प्राण हैं तव तक सच्चे हृदय से राम नाम को अवश्य स्मरण कर जिससे पाप नष्ट हो जायं।

शव्दार्थ--सास = प्राण।

यहु सब झूठी बंदिगी, बरियां पंच निवाज।
साचै मारै झूठ पढ़ि, काजी करै अकाज ॥५॥

सन्दर्भ—परमात्मा एक और सर्वंव्यापक है।

भावार्थ—कवीरदास जी कहते हैं कि मुसलमानो का पाँच वार नमाज पढना और परमात्मा की प्रार्थना करना सव व्यर्थ है क्योकि तू उन कुरान की आयतो पर स्वयं तो आचरण करता नही है और इस प्रकार कितना वड़ा अनर्थ करता है।

शव्दार्थ--वंदिगी = अर्चना, पूजा। वरिया पंच = पाँच वार।

कबीर काजी स्वादि बसि, ब्रह्म हतै तब दोइ।
चढ़ि मसीति एकै कहै, दरि क्यूँ साँचा होइ ॥६॥

सन्दर्भ—ईश्वर और जीव एकही हैं उनमे कोई भेद नही है।

भावार्थ—कवीरदास जी कहते हैं कि काजी जिस समय अपनी जिह्वा के स्वाद हेतु वकरे का हनन करता है तो वह यही समझकर मारता है कि ब्रह्म और जीव दोनो अलग हैं यद्यपि वास्तव मे वह वकरा भी ब्रह्म ही है किन्तु मसजिद मे खड़े होकर जिस समय वह यह कहने लगता है कि अल्लाह एक है उस समय उसकी वात को सत्य कैसे माना जा सकता है ?

शव्दार्थ—मसीति = मसजिद।

काजी मुल्ला भ्रंमियां, चल्या दुनीं के साथि।
दिल थैं दीन बिसारिया, करद लई जब हाथि ॥७॥

सन्दर्भ—धर्म का जीव हिंसा से कोई सम्वन्ध नही है।

भावार्थ--कवीरदास जी कहते हैं कि काजी और मुल्ला जो धार्मिक गुरु

होते हैं वे भी दुनिया के साथ ही साथ चलते हैं। वे भी जिस समय निरीह पशुओं को हिंसा हेतु कटार अपने हाथ मे उठा लेते हैं।

शब्दार्थ—भ्रमियां = भ्रम ग्रस्त। दुनी = दुनियां। दीन = धर्म। करद = कटार।

जोरि करि जिवहै करैं, कहते हैं ज हलाख।
जब दफतर देखैगा दई, तब ह्वैगा कौंण हवाल ॥८॥

सन्दर्भ—जीव हिंसा धर्म के प्रतिकूल है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि मुसलमान निरीह पशुओ को पकड़कर काटते हैं उस समय कहते हैं कि यह हलाल है धार्मिक विधान के अनुकूल है। किन्तु जब मृत्यु के उपरान्त विधाता के यहाँ कर्मों का हिसाव-किताव होगा उस समय तेरा क्या हाल होगा।

शब्दार्थ—जिवहै = वध। दई = प्रभु।

जोरी कीयां जुलम है, माँगै न्याव खुदाइ।
खालिक दरि खूनी खड़ा, मार मुहे मुहिं खाइ ॥९॥

सन्दर्भ—किसी व्यक्ति के साथ वल प्रयोग करना अत्याचार है।

भावार्थ—जीव वध मे शक्ति का प्रयोग करना बहुत बडा अपराध है। ईश्वर प्रत्येक प्राणी से न्याय पूर्ण व्यवहार की आशा करता है। यही खूनी व्यक्ति जिस समय परमात्मा के दरवार मे खडा होगा उस समय उसके मुंह पर अनवरत प्रहार किए जाएगे और उसे उतना ही कष्ट दिया जायगा जितना वह दूसरो को दे चुका है।

शब्दार्थ—खालिक = ईश्वर। दरि = द्वार।

सांई सेती चोरियाँ, चोरां सेती गुझ।
जांणैगा रे जीवड़ा, मार पड़ैगी तुझ ॥१०॥

सन्दर्भ—ईश्वर से चोरी करना अक्षम्य अपराध है।

भावार्थ—ऐ जीव! तू परमात्मा से तो चोरी करता है और काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह आदि चोरो से तू मित्रता रखता है। हे जीव! जब तेरे इस आचरण पर परमात्मा तुझे दण्ड देगा तव तुझे अपने कपट पूर्ण व्यवहार का अनुमान होगा।

शब्दार्थ—गुझ = मित्रता। जीवडा = जीवात्मा।

सेप सबूरी बाहिरा, क्या हज काबै जाइ।
जिनकी दिल स्याबति नहीं, तिनकौ कहाँ खुदाइ ॥११॥

सन्दर्भ—ईश्वर प्राप्ति के लिए भ्रम और संशय का त्याग आवश्यक है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि हे शेख ! तू सतोष से परे है फिर तेरे हज और कावे जाने से कोई लाभ नही है जिनका हृदय सच्चा नही है उन्हे ईश्वर कही भी नही प्राप्त होता है।

शब्दार्थ—सबूरी = सब्र, संतोष। स्याबति = पूर्ण, सच्चा।

खूब खाँड है खीचड़ी, माँहि पड़ै टुक लूँण।
पेड़ा रोटी खाइ करि, गला कटावै कौंण ॥१२॥

सन्दर्भ—मरणोपरान्त दण्ड से बचने के लिए सादा जीवन व्यतीत करना श्रेयस्कर है।

भावार्थ—यदि खिचड़ी मे थोडा सा नमक पड जाय तो वही खाँड के समान मधुर हो जाती है। पेडा और रोटी खा करके भी मृत्यु के उपरान्त अपना गला मौन कटावे ? कष्ट कौन सहन करे ?

शब्दार्थ—टुक = थोडा सा। लूँण = नमक।

पापी पूजा बैसि करि, भषै माँस मद दोइ।
तिनकी दष्या मुकति नहीं, कोटि नरक फल होइ ॥१३॥

सन्दर्भ—धर्म के नाम पर जीव हिंसा करने वालो को मुक्ति नही मिलती है।

भावार्थ—पापी लोग पूजा के नाम पर बैठकर मास और मदिरा का सेवन करते है ऐसे पापियो की इस दशा पर उन्हे मुक्ति नही मिल पाती है उनको तो करोड़ो नरको का फल भोगना पडता है। यातनायें सहन करनी पडती हैं।

शब्दार्थ—वैसीकरि = बैठकर। दष्या = दशा मुकति = मुक्ति मोक्ष।

सकल वरण इकत्र ह्वै, सकति पूजि मिलि खाँहिं।
हरि दासनि की भ्राँति करि, केवल जमपुर जाँहिं ॥१४॥

सन्दर्भ—शाक्तो के जीव हिंसा के प्रति विरोध प्रदर्शित है।

भावार्थ—शाक्त सम्प्रदाय को मानने वाले सभी लोग एकत्र होकर बलि चढाकर शक्ति की पूजा करते हैं और फिर सभी मिलकर प्रसाद के रूप मे उसका भक्षण करते हैं वे केवल ईश्वर-भक्त बनने के भ्रम मे पडे रहते हैं वास्तविकता तो यह कि वे सीधे यमलोक जाते हैं।

शब्दार्थ—सकति = शक्ति।

कबीर लज्या लोक की, सुमिरै नाँही साच।
जानि बूझि कंचन तजै, काठा पकड़ै काच ॥१५॥

सन्दर्भ—कुरीतियो का पालन किसी भी प्रकार श्रेयष्कर नही है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि मनुष्य लोक लज्जा के भय से सत्य का विस्मरण कर कुरीतियो का पालन करता है। ऐसा व्यक्ति जान-बूझ करके सोना रूपी परमात्मा का त्याग कर कांच रूपी असत्य को अपना रहा है।

शब्दार्थ—लज्या = लज्जा।

कबीर जिनि जिनि जाँणियाँ, करता केवल सार।
सो प्राँणी काहै चलै, झूठे जग की लार ॥१६॥

संदर्भ—ईश्वर के अस्तित्व को समझ लेने के बाद मिथ्याचरण नहीं होते हैं।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि जिन-जिन लोगो ने यह समझ लिया है कि इस सृष्टि का कर्त्ता ब्रह्म ही सब कुछ है वह असली तत्व है वे व्यक्ति मोहान्धकार मे पडकर सासारिक मिथ्या मार्ग पर आचरण नही करते हैं।

शब्दार्थ—जिनि जिनि = जिन्होने। करता = कर्त्ता। लार पंक्ति।

झूठे कौ झूठा मिलै, दूणाँ बधै सनेह।
झूठे कूँ सांचा मिलै, तबही टूटै नेह ॥१७॥४२५॥

संदर्भ—मैत्री समान गुणो मे होती है।

भावार्थ—यदि झूठे (ईश्वर विमुख) व्यक्ति से झूठा (ईश्वर विमुख) व्यक्ति मिल जाता है परिचय बढ़ता है तो स्नेह दूना बढ़ जाता है मैत्री बढ जाती है। और यदि ईश्वर विमुख से ईश्वर-प्रेमी मिल जाता है तो स्नेह सम्बन्ध टूट जाता है। मैत्री समाप्त हो जाती है।

शब्दार्थ—दूणां = दुगुना। बधै = बढ़ै।

———

२३. भ्रम बिधौंसण कौ अंग

पाहण केरा पूतला, करि पूजै करतार।
इही भरोसै जे रहे, ते बूड़े काली धार॥ १॥

सन्दर्भ—कबीर का मूर्ति पूजा के प्रति विरोध प्रदर्शित है।

भावार्थ—मनुष्य पत्थर के पुतले को-मूर्ति को-ईश्वर मानकर पूजते हैं और जो इस पाषाण मूर्ति को ईश्वर ही मानते रहते हैं वे काली धारा मे डूब जाते हैं।

शब्दार्थ—पाहण = पाषाण। पूतला = मूर्ति।

काजल केरी कोठरी, मसि के कर्म कपाट।
पाँहनि बोई पृथमीं, पण्डित पाड़ी बाट॥ २॥

संदर्भ—कबीरदास ने मूर्ति पूजा को ढोग बताया है।

भावार्थ—यह ससार काजल की कोठरी के समान है उसमे कालिमा युक्त कर्मों-कुकर्मों के किवाड लगे हुए हैं और पंडितो ने अपना ढोग रचकर सम्पूर्ण पृथ्वी को पत्थरो की मूर्तियो से ढंक दिया है मानो उसी रास्ते से वे स्वर्ग जाने की तैयारी कर रहे हो।

शब्दार्थ—पृथमी = पृथ्वी। पाड़ी = निकाली।

पाहन कूँ का पूजिए, जे जनम न देई जाब।
आंधा नर आसामुषी, यौंहीं खोवै आब॥ ३॥

संदर्भ—पत्थरो की पूजा व्यर्थ है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि उस पत्थर को पूजने से क्या लाभ ? जो जीवन भर उत्तर ही नही देती है और विभिन्न प्रकार की आशाओ को लगाए हुए मनुष्य मूर्ति पूजा कर करके अपने आत्म-सम्मान को व्यर्थ ही नष्ट कर रहा है।

शब्दार्थ—जाव = जबाव, उत्तर। आंधा = अज्ञानी।

हम भी पांहन पूजते, होते रन के रोझ।
सतगुर की कृपा भई, डारया सिर थैं बोझ॥ ४॥

सन्दर्भ—कबीरदास कहते हैं कि हमने सतगुरु की कृपा से मूर्ति पूजा नही की है।

भावार्थ—यदि हम भी पत्थरो की पूजा करते होते तो युद्ध के गधो के समान सैनिको के खाद्य पदार्थ ढोया करते किंतु मेरे ऊपर तो सतगुरु की कृपा हो गई जिससे मेरे सिर से इन मूर्तियो का निरर्थक बोझा उतर गया।

शब्दार्थ—रोझ = गधा, खच्चर।

जेती देषौं आत्मा, तेता सालिग राम।
साधू प्रतषि देव हैं, नहीं पाथर सूकाम ॥ ५ ॥

संदर्भ—बहु देवोपासना पर व्यग्य है।

भावार्थ—इस संसार मे जितनी जीवात्मायें हैं संख्या मे उतनी ही शालिग्राम की मूर्तियां हैं अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति अलग-अलग देवता की पूजा करता है। कबीरदास जी कहते हैं कि साधू तो स्वय ही देवता है फिर पत्थरो की पूजा करने से क्या लाभ ?

शब्दार्थ—प्रतषि = प्रत्यक्ष।

सेवै सालिग राम कू, मन की भ्रांति न जाइ।
सीतलता सुपनैं नहीं, दिन दिन अधकी लाइ ॥ ६ ॥

संदर्भ—मन का भ्रम मूर्ति पूजा से दूर नही हो सकता है।

भावार्थ—पत्थर की बनी हुई शालिग्राम की मूर्ति की पूजा करने से मन का भ्रम दूर नही हो सकता है। ऐसे मूर्ति पूजको को स्वप्न मे भी शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती है दिन प्रतिदिन अशान्ति की अग्नि अधिकाधिक तीव्रता से प्रज्वलित होती है।

शब्दार्थ—अधकी = अधिक। लाई = संताप की अग्नि।

सेवैं सालिगराम कूँ, माया सेती हेत।
वोढ़ें काला कापड़ा, नाँव धरावै सेत ॥ ७ ॥

संदर्भ—कुकर्म करके कोई व्यक्ति धर्माचारी कहे जाने के योग्य है ?

भावार्थ—सांसारिक माया जन्य आकर्षणो के हेतु जो व्यक्ति शालिग्राम की पूजा किया किया करते हैं वे व्यक्ति काला वस्त्र धारण करके भी श्वेत वस्त्र धारी बनना चाहते हैं ढोग रचकर भी धर्माचारी बनना चाहते हैं।

शब्दार्थ—सेत = श्वेत।

जप तप दीसैं थोथरा, तीरथ व्रत वेसास।
सूवै सैंवल सेविया यौं, जग चल्या निरास ॥ ८ ॥

सन्दर्भ—जप, तप आदि पर विश्वास करने वालो को निराशा ही हाथ लगती है।

भावार्थ—जप, तप, तीर्थ, व्रत, एवं विभिन्न देवताओ मे विश्वास करना निरर्थक है, थोथा है। उसमे तो व्यक्ति को उसी प्रकार निराशा हाथ लगती है जिस प्रकार सेंवर के फल मे टोट के मारने से तोते को निराशा ही होती है।

शब्दार्थ—थोथरा = थोथा। सूवै = सुआ, तोता।

विशेष—उपमा अलंकार।

> तीरथै तै सब बेलड़ी, सब जग मेल्या छाइ।
> कबीर मूल निकंरिया, कौण हलाहल खाइ॥ ९॥

सन्दर्भ—कबीर के मतानुसार तीर्थ व्रतादि सब व्यर्थ हैं।

भावार्थ—तीर्थ व्रत आदि जगली वेल के समान फैलकर पूरे संसार मे छाए हुए हैं किन्तु कबीरदास जी ने इस मूल को जड से ही नष्ट कर दिया है फिर इसके विषाक्त फलो को कौन खाता। अर्थात् संसार इनके विषय प्रभाव से बच गया।

शब्दार्थ—बेलड़ी = बेल।

> मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जाँणि।
> दसवाँ द्वारा देहुरा, तामें जोति पिछाँणि॥ १०॥

संदर्भ—सभी तीर्थ स्थान और योग की क्रियायें शरीर मे ही विद्यमान हैं।

भावार्थ—हे मनुष्यो। मन मे ही मथुरा है और दिल मे द्वारिका और इस शरीर को ही पवित्र काशी नगरी समझो जिसमे ब्रह्माण्ड ही इस शरीर रूपी मंदिर का दरवाजा है इसलिए उसमे प्रज्ज्वलित निरंजन पुरुष की ज्योति को पहिचानना ही श्रेयष्कर है।

शब्दार्थ—दसवाँ द्वार = दशम द्वार, ब्रह्म रंध्र।

विशेष—रूपक अलकार।

> कबीर दुनियाँ देहुरै, सीस नवाँवण जाइ।
> हिरदा भीतरि हरि वसैं, तूँ ताही सौं ल्यौ लाइ॥११॥ ४३६

संदर्भ—हृदय स्थित परमात्मा का ध्यान लगाने से ही परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते है कि इस संसार के सभी व्यक्ति मंदिर में ईश्वर का निवास समझकर वहाँ सिर झुकाने जाते हैं किन्तु प्रभु तो तेरे हृदय के

भीतर ही निवास करते हैं तू उन्ही से अपने प्रभु की लौ लगा उन्ही की प्राप्ति का प्रयत्न कर ।

शब्दार्थ—देहुरै = मन्दिर मे । ल्यौ = ध्यान ।

---

२४. भेष कौ अङ्ग

कर सेती माला जपै, हिरदै बहै डंडूल ।
पग तौ पाला मैं गिल्या, भाजण लागी सूल ॥१॥

सन्दर्भ—सासारिक मनुष्य माया जाल मे फंसे रहते हैं ।

भावार्थ—हे जीवात्मा ! तू हाथ से माला जप रहा है इस बात का प्रदर्शन कर रहा है कि मैं ईश्वर भक्त हूँ किन्तु मेरा हृदय माया जाल मे फंसा हुआ है । विषय-वासना रूपी पाले मे तेरे पैर गल गये हैं अब यदि इससे भागने का भी प्रयास करेगा तो तेरे पैरो मे कांटे चुभ जायेंगे ।

शब्दार्थ—सेती = से । डडूल = माया जाल ।

कर पकरै अँगुरी गिनैं, मन धावै चहुँ ओर ।
जाहि फिराँया हरि मिलैं, सो भया काठ की ठौर ॥२॥

सन्दर्भ—ईश्वर की प्राप्ति सासारिक विषय वासनाओ से मन को अलग कर देने मे होती है ।

भावार्थ—ढोगी साधक हाथ मे माला लेकर उंगलियो से उनकी मनकाओ को गिनता जाता है किन्तु मन जिसको स्थिरता से ही साधना सम्भव है वह चारो ओर दौड रहा है । जिस मन को ससार की ओर से घुमा देने पर अलग कर देने पर ईश्वर की प्राप्ति हो जाती है वह मन तो काठ के समान जड़ हो गया है ।

शब्दार्थ—वोर = ओर । काठ की ठौर = काष्ठवत् ।

माला पहरैं मनसुषी, ताथैं कछू न होइ ।
मन माला कौं फेरतां, जुग उजियारा सोइ ॥३॥

सन्दर्भ—मन की माला को फेरने से ही ईश्वर प्राप्ति सभव है ।

भावार्थ—मनुष्य माला को गले मे पहन कर उसे व्यर्थ ही घुमाता रहता है किन्तु उसका मन बहिर्मुखो हो जाता है वह सासारिक विषय वासनाओ मे लिपटा रहता है इस प्रकार की पूजा से उपासना से कोई लाभ नही है। यदि वह मन की माला को सच्चे हृदय से फेरे तभी उसका यह लोक जौर परलोक दोनो सुधरेगा।

शब्दार्थ—मनमुषी = एक प्रकार की माला का नाम।

माला पहरैं मनसुषी, बहुतैं फिरैं अचेत।
गाँगी रोलै बहि गया, हरि सूं नाहीं हेत ॥४॥

सन्दर्भ—मन पवित्र होने से हो जप तप उपासनादि का फल प्राप्त होता है।

भावार्थ—इस संसार मे बहुत से व्यक्ति मनसुखो माला को पहने अचेतावस्था-अज्ञानावस्था मे घूमा करते हैं किन्तु जिस व्यक्ति का ईश्वर से सच्चा प्रेम नहीं है वह गगा जैसी पवित्र नदी के पास भी जाकर स्नान नही कर पाता वरन् उसके प्रवाह मे प्रवाहित हो जाता है। उसका कल्याण नही हो पाता है।

शब्दार्थ—अचेत = अज्ञान। गागी = गंगा के। रोलै = धारा मे। हेत = प्रेम, भक्ति।

कबीर माला काठ की, कहि समझावै तोहि।
मन न फिरावै आपणां, कहा फिरावै मोहि ॥५॥

संदर्भ—सच्ची भक्ति तो संसार से चित्त वृत्ति को हटाकर प्रभु मे केन्द्रित करना है।

भावार्थ—काष्ठ की माला, माला घुमाने वाले साधक को समझाती हुई कहती है कि ऐ साधक! तू यदि अपने मन को परमात्मा की ओर उन्मुख नही करता है तो फिर मुझे घुमाने से क्या लाभ? कबीर कहते हैं कि सच्ची उपासना तो मन को प्रभु की ओर लगाना ही है।

शब्दार्थ—आपणा = अपना।

कबीर माला मनकी, और संसारी भेष।
माला पहर्यां हरि मिलै, तौ अरहट कै गलि देष ॥६॥

संदर्भ—क्या माला पहनने से ईश्वर की प्राप्ति होती है?

भावार्थ—कबीरदास जो कहते हैं कि वास्तविक माला तो मन की होनी चाहिए और मालाएं तो मात्र दिखावा मात्र हैं। यदि माला के पहनने से ही प्रभु

प्राप्ति सम्भव होती तो रहटको क्यो न प्रभु प्राप्ति हो जाती जिसके गले मे बाल्टियो की माला हमेशा घूमा करती है।

शब्दार्थ—भेष = दिखावा। अरहट = रहट।

माला पहर्‌याँ कुछ नहीं, रुल्य मूवा इहि भार।
बाहरि ढोल्या हींगलू, भीतरि भरी भँगारि ॥७॥

संदर्भ—माला पहनना तब तक व्यर्थ है जब तक मन विषय-वासना से अलग न हो।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि माला पहनने से कुछ नहीं होता है व्यर्थ मे ही शरीर उसके भार से दबा रहता है। बाहर से तो गेरुआ वस्त्र धारण कर लोग साधुओ का-सा बाना बनाए रहते हैं किन्तु उनके अन्तःकरण मे विषय-वासनाएं भरी रहती हैं।

शब्दार्थ—रुल्य = शरीर। हींगलू = गेरू। भंगारि = गन्दगी।

माला पहर्‌याँ कुछ नहीं, काती मन कै साथि।
जब लगि हरि प्रगटै नहीं, तब लग पड़ता हाथि ॥८॥

संदर्भ—माला धारण करने के साथ-साथ परमात्मा का स्मरण करना भी आवश्यक है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं माला पहन लेने से ही कुछ नही होता जब तक मन नाना प्रकार के माया जन्य आकर्षणो मे फंसा रहेगा तब तक प्रभु भक्ति से कोई लाभ नही। माला पर हाथ तो तभी तक पडता है जब तक ईश्वर का स्वरूप समक्ष प्रकट नही हो जाता है और जैसे ही ईश्वर की प्राप्ति हो जाती है वैसे ही इन बाहरी आडम्बरो से कोई लाभ नही।

शब्दार्थ—काती = माया जन्य आकर्षण।

माला पहर्‌याँ कुछ नहीं, गाँठि हिरदा की खोइ।
हरि चरनूं चित राखिये, तौ अमरापुर होइ ॥९॥

संदर्भ—माला धारण की व्यर्थता की ओर कबीर का सकेत है।

भावार्थ—माला धारण करने से कोई लाभ नही है जब हृदय के भीतर माया, मोह, राग और द्वेष की गाँठ न खोल दी जाये यदि हरि चरणो मे चित्त को लगा रखा जाय तो एक न एक दिन परमात्मा की प्राप्ति अवश्य होगी।

शब्दार्थ—गाँठि = माया जनित रागद्वेष। अमरापुर = स्वर्गपुरी।

माला पहरयाँ कुछ नहीं, भगति न आई हाथि।
माथा मुंछ मुंड़ाइ करि, चल्या जगत कै साथि ॥१०॥

संदर्भ—माला धारण करने से प्रभु-प्राप्ति संभव नही है।

भावार्थ—माला धारण करने से कोई लाभ नही उससे भक्ति की प्राप्ति संभव नही है। सिर और मूंछो को मुडवाकर सासारिक ढोगियो के साथ चलने से कोई लाभ नही, ईश्वर प्राप्ति के लिये तो सच्चे उपासक की भाँति आचरण करना चाहिए।

शब्दार्थ—मुंछ=मूंछ।

> सांई सेंती सांच चलि, औरां सूं सुध भाइ।
> भावै लम्बे केस करि, भावै घुरड़ि मुंड़ाइ ॥११॥

संदर्भ—एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य के साथ सरल व्यवहार करना चाहिए और ईश्वर के साथ भी सत्य आचरण करना चाहिये।

भावार्थ—हे जीव ! तू स्वामी (परमात्मा) के साथ सत्य का आचरण कर और साथ ही अन्य प्राणियो के साथ भी तू सरल भाव से आचरण कर और उसके वाद चाहे तू लबे लबे बाल बढा ले और चाहे सिर मुंड़वा ले।

शब्दार्थ—सुधमाह=सीधे भाव से। घुरडि=पूर्ण रूपेण।

> केसों कहा बिगाड़िया, जे मूंडै सौ बार।
> मन कौ काहे न मूंडिये, जामैं विषय बिकार ॥१२॥

संदर्भ—कवीरदास जी सिर मुडाने के पक्ष मे न होकर मन को विषय वासनाओ से अलग करने के पक्ष मे हैं।

भावार्थ—कवीरदास जी कहते हैं कि इन बालो ने तेरा क्या बिगाडा है जो तू इनको बार-बार मुडवाता रहता है। वास्तव मे तू मन को क्यो नही मुडवाता जिसमे नाना प्रकार के सासारिक विषय वासनाएं भरी हुई हैं ?

शब्दार्थ—केसो=बालो ने।

> मन मैंवासी मंडि ले, केसौं मूंडै काँइ।
> जे कुछ किया सु मन किया, केसों कीया नाँहि ॥१३॥

संदर्भ—सिर मुडवाने की उतनी आवश्यकता नही है जितनी मन को विषयो से अलग करने की है।

भावार्थ—हे ढोगी साधुओ ! तू वारम्वार सिर ही क्यो मुडवाया करता है। मनरूपी मदमस्त डाकू को मूड कर क्यो नही स्वच्छ करता जो कुछ भी पाप कर्म किए हैं वे सभी मन ने किए हैं बालो ने कुछ भी नही किया है फिर उनकी सफाई से क्या लाभ ?

शब्दार्थ—मैं वासी=मदमस्त डाकू। कांइ=क्यों।

मूंड मुंडावत दिन गए, अजहूँ न मिलिया राम।
राम नाम कहु क्या करै, जे मन के औरे काम ॥१४॥

सन्दर्भ—सासारिक कार्यों मे रत होकर मन राम नाम का स्मरण नही कर पाता है।

भावार्थ—सिर को मु डवाते हुए मनुष्य की पूरी आयु क्षीण हो गई किन्तु अन्तिम समय तक राम (ब्रह्म) नही मिल सके। जब मन ही नाना प्रकार के माया जाल मे फंसा हुआ है तो फिर भला बाहर से राम नाम का उच्चारण ही क्या कर सकता है?

शब्दार्थ—दिन गए = आयु व्यतीत हो गई।

स्वांग पहरि सो रहा भया, खाया पीया षूंदि।
जिहि सेरी साधू नीकले, सा तौ मेल्ही मूंदि ॥१५॥

सन्दर्भ—उपासना के वास्तविक मार्ग पर कुकर्मों के कारण साधक नही चल पाते हैं वे ऐश आराम मे ही लगे रहते हैं।

भावार्थ—हे कपटी साधक! तू रग विरगे कपडो को ही पहनकर आनन्द-पूर्वक खा-पीकर मौन उड़ाता रहा किन्तु जिस मार्ग से होकर साधु जाते हैं अपने कुकर्मों के कारण तूने उस मार्ग को अपने लिए बन्द कर लिया है। उस पर तू चल ही नही सकता।

शब्दार्थ—सोरहा = सुन्दर। षू'दि = आनन्द पूर्वक। सेरी = गली। मेल्ही मू'दि = बन्द कर ली।

वैसनों भया तौ का भया, बूझा नहीं बिवेक।
छापा तिलक बनाइ करि, दगध्या लोक अनेक ॥१६॥

सन्दर्भ—केवल वैष्णव मत मे दीक्षित हो जाने से ही प्रभु प्राप्ति नही होती है।

भावार्थ—यदि तूने विवेक की ज्ञान की प्राप्ति नही की तो फिर वैष्णव मत मे दीक्षित होकर वैष्णव बन जाने से ही क्या लाभ हुआ? छापा-तिलक आदि लगाकर अनेको लोग इस सासारिक तापो मे दग्ध होते रहते हैं। वास्तविकता तो यह है कि प्रभु वेष भूषा से नही वरन् सच्ची भक्ति से ही प्राप्त होते हैं।

शब्दार्थ—वैसनो = वैष्णव। बुझा = समझा।

तनकौ जोगी सब करैं, मनकों बिरला कोइ।
सब बिधि सहजैं पाइए, जेमन जोगी होइ ॥१७॥

सन्दर्भ—मन इच्छारहित होकर ही सिद्धियो को प्राप्त कर सकता है।

भावार्थ—इस शरीर को गेरुआ वस्त्रादि से ढंक कर तथा तिलक आदि लगाकर सभी योगी बना देते हैं शरीर देखने से ऐसा लगता है कि योगी ही हैं किन्तु मन को विरला व्यक्ति ही साधु बना पाता है और यदि वास्तव मे किसी का मन योगी हो जाय तो वह सहज रूप से ही परमात्मा को प्राप्त कर सकता है।

शब्दार्थ—सहजैं = परमात्मा को।

कबीर यहु तौ एक हैं, पड़दा दीया भेष।
भरम करम सब दूरि कर, सब ही माँहि अलेख ॥१८॥

संदर्भ—जीवात्मा और परमात्मा एक है। भ्रम के कारण ही दोनो में भेद दिखाई देता है।

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि आत्मा और परमात्मा वास्तव मे एक हैं किन्तु माया के आवरण के कारण दोनो मे भेद दिखाई पड़ता है। यदि भ्रम और कुकर्मों को दूर कर दिया जाय तो वह अलक्ष ब्रह्म प्रत्येक प्राणी मे प्राप्त हो सकता है।

शब्दार्थ—यहु तौ = आत्मा और परमात्मा। अलेख = अलक्ष परमात्मा।

भरम न भागा जीय का, अनन्तहि धरिया भेष।
सत गुरु परचै बाहिरा, अन्तरि रह्या अलेष ॥१९॥

सन्दर्भ—हृदयस्थित ब्रह्म का परिचय बिना सच्चे गुरु के नही हो सकता है।

भावार्थ—हे जीव! तेरा भ्रम समाप्त नही हुआ तू भ्रम जाल मे ही पडा रहा यद्यपि अनेकानेक योनियो मे तूने जन्म ग्रहण किया। बिना सतगुरु के उन अन्त.करण मे परिव्याप्त अलक्ष ब्रह्म की प्राप्ति नही हो पाती है।

शब्दार्थ—अन्तहि = अनेक। भेष = शरीर।

जगत जहद्म राचिया, झूठी कुल की लाज।
तन बिनसैं कुल बिनसि हैं, गह्यौं न राम जिहाज ॥२०॥

सन्दर्भ—ससार-सागर को पार करने के लिए राम नाम रूपी नौका का संबल आवश्यक है।

भावार्थ—मनुष्य अपनी मिथ्या प्रतिष्ठा के लोभ मे ऐसे कार्य करता रहता है जिससे नरक की सृष्टि होती रहती है और वास्तविकता तो यह है कि इस शरीर के नष्ट होते ही सारी मर्यादायें स्वतः नष्ट हो जायेगी फिर संसार सागर से पार जाने के लिए राम नाम रूपी नौका का आश्रय क्यो नही ग्रहण करता ?

पष ले बूड़ी पृथमीं, झूठी कुल की लार।
अलष बिसार्यौ भेष मैं, बूड़े काली धार ॥२१॥

सन्दर्भ—परमात्मा कहीं आडम्बर से प्राप्त होता है ? वह तो सरल आचारण और व्यवहार से प्राप्त होता है।

भावार्थ—सम्पूर्ण संसार के प्राणी कुल की झूठी परम्पराओं, मर्यादाओं और सम्मान हेतु अहं भाव का प्रदर्शन करते ही करते नष्ट हो गया किन्तु वह सब उसे प्राप्त न हो सका। इस वाह्य भेष-भूषा मे हीं लगे रहकर अलक्ष परमात्मा को भुलाकर तू नरक की काली नदी मे ही डूब गया।

शब्दार्थ—पष = पक्ष। पृथमी = पृथ्वी।

चतुराई हरि नाँ मिलै, ए बातां की बात।
एक निसप्रेही निरधार का, गाहक गोपी नाथ ॥२२॥

शब्दार्थ—ब्रह्म की प्राप्ति चतुराई से न होकर निष्काम भक्ति से होती है।

भावार्थ—यह बात तो निश्चित ही है कि प्रभु की प्राप्ति चतुराई से नही हो पाती है। जो भक्त निष्पृह और निराधार होते हैं प्रभु उन्ही भक्तो को अपनाते हैं।

शब्दार्थ—निसप्रेही = निष्पृह, निष्काम।

नव सत साजे कामनी, तन मन रही सँजोइ।
पीव कै मनि भावै नहीं, पटम कीयें क्या होइ ॥२३॥

सन्दर्भ—वास्तविक भक्ति तो वही है जिससे प्रभु रीझ जाएं। अन्य सब तो आडम्बर है।

भावार्थ—स्त्री यदि बहुत ही मनोयोग से सोलहो शृंगार करके अपने प्रिय के समुख जाय और फिर भी वह प्रिय को अच्छी न लगे तो उसकी साज-सज्जा से क्या लाभ ? अर्थात् वाह्य वेषभूषा को धारण करने से ही क्या लाभ ? जिससे ब्रह्म की प्राप्ति न हो सके या जो वाह्य वेषभूषा प्रभु को अच्छी ही न लगे उसको धारण करने से क्या लाभ ? प्रभु को प्रसन्न करने के लिए तो हृदय की तल्लीनता आवश्यक है।

विशेष—कालिदास ने भी कहा है कि—

"प्रियेषु सौभाग्य फलाहि चारुता।"

कुमार सभवम्-पचम सर्ग।

सुन्दरता वही है जो प्रिय को अच्छी लगे।

शब्दार्थ—नवसत = नव + सात = सोलह। पटम = शृंगार सज्जा।

जब लग पीव परचा नहीं, कन्या कँवारी जाँणि।
हथलेवा हौसैं लिया, मुसकलि पड़ी पिछांणि ॥२४॥

सन्दर्भ—ईश्वर की प्राप्ति उतना आसान नही है जितना लोग उसे समझने हैं।

भावार्थ—जब तक आत्मा रूपी कन्या का परमात्मा रूपी प्रियतम से परिचय नही हो जाता है तब तक उसे कुमारी ही समझना चाहिए। आत्मा बडो प्रसन्नता से प्रभु भक्ति के मार्ग पर अग्रसर तो हो जाती है किन्तु बाद मे उसमे अनेको कठिनाइयाँ आकर पड जाती हैं।

शब्दार्थ—परचा = परिचय। पिछाणि = बाद मे।

कबीर हरि की भगति का, मन में परा उल्हास।
मैं वासा भाजै नहीं, हूँण मतै निज दास ॥२५॥

संदर्भ—मनका अहंकार ही ईश्वर प्राप्ति मे वाधक है इसलिए उसके नष्ट होने पर ही ईश्वर से साक्षात्कार होता है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि जीव के हृदय मे भगवान की भक्ति का बहुत उल्लास भरा हुआ होता है किन्तु अहंरूपी चोर के घर से न निकलने के कारण वह भक्त अपने वास्तविक भक्ति मार्ग से विचलित हो जाता है।

शब्दार्थ—परा = बहुत। उल्हास = उल्लास। मैंवासा = चोर।

मैंवासा मोई किया, दुरिजन काढ़ै दूरि।
राज पियारे रामका, नगर वस्या भरि पूरि ॥२६॥४६२॥

सन्दर्भ—वासना और अहंकार को नष्ट कर देने पर तो प्रभु की प्राप्ति निश्चय ही हो जाती है।

भावार्थ—अहंरूपी चोरो को मार दिया है और काम क्रोधादि दुर्जनो को भी अलग कर दिया है और इस प्रकार अब मेरे भीतर और बाहर परम प्रभु परमात्मा का ही राज्य है और समस्त कार्य उसी की प्रेरणा से हो जाते हैं।

विशेष—तुलना कीजिए।

उरप्रेरक रघुवंस विभूषन।

—मानस

शब्दार्थ—मोई किया = मार डाला।

———

२५. कुसंगति कौ अंग

निरमल बूंद अकास की, पड़ गई भोमि बिकार।
मूल बिनंठा मांनवी, बिन संगति भठछार ॥१॥

प्रसंग—कुसंगति मे पडकर पवित्र आत्मा विकृत हो गई।

भावार्थ—आकाश की निर्मल जल की बूंद पृथ्वी पर पडते ही गन्दी हो गई। इसी प्रकार मानव भी सत्संगति के अभाव मे भट्ठी की राख सदृश है और समूल नष्ट हो जाता है।

शब्दार्थ—निरमल = निर्मल। आकास = आकाश। विनठा = विनष्ट। भट = भट्ठी। छार = राख या क्षार।

मूरषि संग न कीजिए, लोहा जलि न तिराइ।
कदली सीप भवंग मुषी, एक बूंद तिहँ भाइ ॥२॥

प्रसंग—मूर्ख व्यक्ति का सग कभी नहीं करना चाहिए। अज्ञानी व्यक्ति कभी सात्विकता से पूर्ण नही हो सकता है।

भावार्थ—मूर्ख का साथ न कोजिए। लोहे के समान वह जड तथा भारी है। भव जल मे तैर नही सकता है। सगीत का प्रभाव यह है कि आकाश से गिरी हुई एक बूंद केला, सीप तथा सर्प का संसर्ग प्राप्त करके विविध गतियो को प्राप्त करती है।

शब्दार्थ—मूरषि = मूर्ख। सग = संगीत। जलि = जल मे। तिराइ = तैरता है। कदली = केला। मुषी = मुख।

हरिजन सेती रूसणां, ससारी सूं हेत।
ते नर कदे न नीपजै, ज्यूं कालर का खेत ॥३॥

प्रसंग—हरिभक्तो से द्वेष रखने वाला मानव कभी भी उन्नति नही कर सकता है।

भावार्थ—वे व्यक्ति जो ईश्वर से प्रेम करने वाले व्यक्तियों से (हरिजनो) से प्रेम नही करते हैं रुष्ट रहते हैं, द्वेष करते हैं तथा सासारिक प्राणियो से स्नेह करते हैं। ऐसे पुरुषो का कभी उत्थान नही हो पाता है। वे उसी प्रकार हैं जिस प्रकार ऊसर भूमि मे पडा हुआ बीज।

शब्दार्थ—हरिजन = ईश्वर भक्त। सेती = से। रुपणा = रुष्ट होगा। संसारी = समार मे। सू = मे। हेत = हित या प्रेम। ते = वे।

मारी मरू कुसग की, केला कांठै वेरि।
वो हालै वो चीरिये, साषित संग न वेरि ॥४॥

प्रसंग—कुसगति मे पड़कर मानव की वही गति होती है, जो बेर के पास वाले केले के वृक्ष की हुई।

भावार्थ—आत्मा परमात्मा से कह रही है, कि मैं कुसंगति की मार से मृतप्राय हुई जा रही हूँ। केले के वृक्ष के समीप बेर का काटे से पूर्ण वृक्ष है और वह अपनी कटुता के कारण प्रेम से अपनी ओर आने वाले वृक्ष को चीरता जा रहा है। केले के वृक्ष के सदृश ही मेरी दशा है। इसी कारण है परमात्मा तुम वेर के सदृश कटु शाक्तो के संग से मेरी रक्षा करो।

शब्दार्थ—मारी = मार से। मरी मृतप्राय। कुसंग = कुसंगति। केला = कदली वृक्ष।

मेर निसांणी मीच की, कुसंगति ही काल।
कबीर कहै रे प्रांणियां, बाँणी ब्रह्म सँभाल ॥

प्रसंग—कुसंगति ही काल है अतः कुसगति का परित्याग कर देना चाहिए

भावार्थ—मेरा अहकार या अपनत्व की भावना ही मेरी मृत्यु का चिन्ह है यथा मैं जिन कुसंगो मे पडा हुआ हूँ वह स्पष्ट रूप से मेरी मृत्यु है इसी कारण कवीर दास जी कहते हैं कि हे प्राणियो तुम अपनी वाणी को संभालकर ईश्वर की आराधना एवं भजन मे लीन हो जाओ।

शब्दार्थ—मेरा = अह की भावना। निसाणी = चिन्ह। मीच = मृत्यु। काल मृत्यु। संभाल = सुरक्षित कर।

माषी गुड़ मैं गडि रही, पंप रही लपटाइ।
ताली पीटै सिरि धुनैं, मीठै वोई माइ ॥ ६ ॥

प्रसंग—माया मे लिप्त प्राणी की वही गति होती है जो गुड मे चिपटी हुई मक्खी की होती है।

भावार्थ—जिस प्रकार मक्खी गुड मे चिपक जाती है और उसके पख भी उसमे चिपक जाते हैं उस समय वह हाथ पैर चलाती है, सिर धुनती है। परन्तु वह मिठास ही माया है। जहाँ सांसारिक मधुरता है वही ही संसारी माया है। इस माया से दूर रहे।

शब्दार्थ—भाषी = मक्खी । गडि = चिपक गई । पष = पख । बोई = बुराई ।

ऊँचै कुल क्या जनमियां, जे करणीं ऊँच न होइ ।
सोवन कलस सुरै भरया, साधूं निंद्या सोइ ॥७॥४६६॥

प्रसंग—उच्चकुल में जन्म लेने से ही मानव महान नही वन जाता है। उसके कर्म ही उसे महान या नीच व्यक्ति बना सकते हैं ।

भावार्थ—उच्चकुल मे जन्म लेने का कोई महत्व नही हैं जब तक कि हम उसके अनुरूप कार्य न करे । यह उसी प्रकार है कि स्वर्ण के कलश मे सुरा भरी हो तो उस स्वर्ण के कलश की महिमा समाप्त हो जाती है । इसीलिए साधू जन के लिए बुरे कार्य निंदा के कारण होते हैं और सज्जन व्यक्ति उनकी आलोचना करते हैं ।

शब्दार्थ—ऊंचे कुल = उच्च वंश । जनमियां = जन्म लेना । करणी = कर्म सोवन = स्वर्ण । सुरै = मदिरा । सोई = उसकी मां । साधु = सज्जन ।

---

२६. संगति कौ अंग

देखा देखी पाकड़ै, जाइ अपरचै छूटि ।
बिरला कोई ठाहरै, सतगुर साँमी मूठि ॥१॥

प्रसंग—सदगुरु ही संगति साधक का उचित पथ प्रदर्शन कर सकती है ।

भावार्थ—साधना के मार्ग पर साधक यदि किसी की देखा देखी मे उसका अनुकरण करके चलता है तो वह पथ से भ्रमीभूत हो जाता है क्योकि उस पथ से उसका परिचय नही है । कोई विरला व्यक्ति ही सदगुरु की कृपा (मूठ भरके वाण का प्रहार) से ही साधना के उचित मार्ग पर अग्रसर हो कर ठहर पाता है ।

शब्दार्थ—पाकडै = पकड़ना । जाइ = जिससे । अपरचै = अपरचित । मू ठि = सिर ।

देखा देखी भगति है, कदे न चढ़ई रंग ।
बिपति पड़्यां यूँ छाड़सी, ज्यूँ कंचुली भवंग ॥२॥

प्रसंग—सद्‌गुरु के अभाव मे भक्ति नहीं हो सकती है। दूसरो का अनुकरण करके भक्ति मार्ग पर बढने वाला मानव विपत्ति आने पर भक्ति छोड़ देता है।

भावार्थ—दूसरो की देखा देखी जो भक्ति की जाती है उसमे स्थिरता नही होती है, वह अधिक दिन तक नही ठहर सकती है। साधना के मार्ग पर आने वाली विपत्तियो से डर कर वह साधक भक्ति को उसी प्रकार छोड़ देता है जिस प्रकार सर्प केंचुली को त्याग देता है।

शब्दार्थ—भगति = भक्ति । कदे = कभी । चढई = चढ़ना । विपति = विपत्ति । छाड़सी = छोड़ देना । केचुली = केंचुल । भवंग = भुवग ।

करिए तौ करि, जांणिये सारीषा सूं संग।
लीर लीर लोई थई, तऊ न छाड़ै रंग।।३।।

प्रसंग—सद्‌गुरु की संगति को कोई विरला ही प्राप्त कर सकता है। सद्‌गुरु की पहचान है कि उसका भक्ति के रस मे ही ध्यान रहता है।

भावार्थ—सत्सग सदैव समान व्यक्तियो के साथ ही करना चाहिए। लोई को यदि चीर-चीर कर टुकड़े-टुकड़े करके देखा जाए तो भी उसका रंग नही छूटता है। ठीक उसी प्रकार सच्चा भक्त, सद्‌गुरु कभी अपनी भक्ति नही छोडता है। उसका भक्ति रूपी रंग कभी भी नही उतरता है।

शब्दार्थ—लीर-लीर = चीर-चीर करके । सारीष = विश्वसनीय सद्‌गुरु । तऊ = तो भी । थई = थाह ली ।

यहु मन दीजै तास कौं, सुठि सेवग भल सोइ।
सिर ऊपरि आरास है, तऊ न दूजा होइ।।४।।

प्रसंग—यह मन ईश्वर के सच्चे भक्त को ही देना चाहिए।

भावार्थ—मन को सच्चे ईश्वर भक्त की ओर ही लगाना चाहिए। अर्थात् सद्‌गुरु मे पूर्ण आस्था होनी चाहिए। क्योंकि सच्चा भक्त सिर पर आरा तक सहन कर लेता है। कोई उसे चीर भी डाले तो भी वह अपने मार्ग से विचलित नहीं होता है।

शब्दार्थ—सुठि = अच्छा । सेवग = सेवक । तास = उसको ।

पांहण टांकि न तौलिए, हाडि न कीजै वेह।
माया राता मांनवी, तिन सूँ किसा सनेह।।५।।

प्रसंग—सांसारिक माया में लिप्त मानव से कभी स्नेह नही करना चाहिए।

भावार्थ—पत्थरो को टाँकी लगा कर नही तौला जा सकता है और न हड्डी को तोड कर ही देखा जा सकता है। क्योंकि उनका रूप सदैव एक ही दिखाई पड़ेगा। वह भीतर और बाहर से एक है उनका मूल्यांकन नही किया जा सकता है। उसी प्रकार माया के फन्दे मे फँसे हुए मनुष्य हैं। उनसे किसी प्रकार का स्नेह ? अर्थात् उनसे दूर रहना चाहिए।

शब्दार्थ—वेह = विदीर्ण करना। राता = रगा हुआ। मानवो = मनुष्य।

> **कबीर तासूँ प्रीति करि, जो निरबाहै ओड़ि।**
> **बानता बिबधि न राचिये, देषत लागै षोड़ि ॥ ६ ॥**

प्रसंग—प्रेम उसी से करना चाहिए जो आदि से अन्त तक उसका निर्वाह कर सके।

भावार्थ—कबीरदास जी का कथन है कि प्रेम उसी से करना चाहिए जिससे जीवन पर्यन्त निर्वाह हो सके। अनेक स्त्रियो और सम्पत्ति मे अनुरक्त मानव को देखने से ही पाप लगता है।

शब्दार्थ—तास = उससे। प्रीति = प्रेम। निरवाहै = निर्वाह। ओडि = अन्त तक। वनिता = स्त्री।

> **कबीर तन पषी भया, जहाँ मन तहाँ उड़ि जाइ।**
> **जो जैसी संगति करै, सो तैसे फल खाइ ॥ ७ ॥**

प्रसंग—कुसगति का प्रभाव मानव पर बहुत ही शीघ्र पड जाता है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि विषय वासनाओ मे अनुरक्त मन, सासारिकता मे लीन रहता है और शरीर रूपी पक्षी उसी मन के साथ उडा करता है। जो इच्छा उत्पन्न होता है उसी के अनुसार शरीर कार्य करता है उसी स्थान पर पहुँच जाता है जहाँ मन चाहता है। यह कुसंगति का ही परिणाम है। जैसी सगति होती है वैसा परिणाम भोगना पडता है।

शब्दार्थ—तन = शरीर। पषी = पक्षी।

> **काजल केरी कोठड़ी, तैसा यहु संसार।**
> **बलिहारी ता दास की, पै सिर निकसणहार ॥ ८ ॥**

प्रसंग—ससार काजल की कोठरी के समान है।

भावार्थ—यह ससार काजल की कोठरी के सदृश है, इसमे माया रूपी काजल सर्वत्र फैला हुआ है। जो भी इस काजल की कोठरी मे प्रवेश करता है, उसके थोड़ा बहुत काजल अवश्य लग जाता है। कबीर दास कहते हैं मैं उस दास की अर्थात्

भक्त की बलि-बलि जाऊं जो प्रवेश करके उसके अभाव से अछूना निकल जाएं। अर्थात् ससार मे रहकर भी सांसारिक माया से दूर रहे।

शब्दार्थ—कोठडी = कोठरी। यहु = यह। निकसणहार = निकलने वाला।

---

२७. असाध कौ अङ्ग

कबीर भेप अतीत का, करतूति करै अपराध।
बाहर दीसै साध गति, मांहे महा असाध॥१॥

प्रसंग—वाह्य वेष-भुषा एवं करनी मे साम्य न होने पर वह साधु नहीं असाधु होता है।

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं वेष तो वैरागी के समान बनाए हुए है और पाप कर्म मे प्रवृत्त है। ऐसा साधु जो केवल वाह्यावरण से ही साधु दृष्टिगत होता है, वह अन्तःकरण से परम असाधु अर्थात् नीच होता है।

शब्दार्थ—अतीत = वैरागी (परे, उस लोक)। भेष = वेष। करतूति = करनी।

ऊज्जल देखि न धीजिए, बग ज्यूँ माड़ै ध्यान।
धोरै बैठि चपेट सी, यूँ लै बूड़ै ज्ञान॥२॥

प्रसग—किसी की उज्ज्वल वेष-भूषा को देखकर उसके उज्ज्वलमना होने का विश्वास नही करना चाहिए।

भावार्थ—जिस प्रकार श्वेत रंग का बगुला मछली पकडने के लिए ध्यानस्थ रहता है वैसे ही किसी का उज्ज्वल वेप देखकर विश्वास मत करो सम्भव है कोई बग-ध्यानी हो जो अवसर आने पर मछली के समान ही तुम्हे दबोच ले और समस्त ज्ञान तथा विवेक को भी डुबा दे।

शब्दार्थ—न धीजिए = विश्वास न कीजिए। माडै ध्यान = ध्यान करता है। धोरै = निकट।

जेता मीठा बोलणां, तेता साध न जांणि।
पहली थाह दिखाइ करि, ऊँडै देसी आंणि॥३॥५८०॥

प्रसंग—मिष्ट भाषियो को साधु नही समझना चाहिए।

भावार्थ—पद्ध-भाषियो को कभी भी साधु नही समझना चाहिए। वे पहले पार जाने योग्य उथला जल दिखा देते हैं और फिर बीच धार मे गहरे पानी मे लाकर डुबा देते हैं।

शब्दार्थ—थाह = पार जाने योग्य, उथला जल। ऊंडे = गहरे पानी मे। जेता = जितना। तेता = उनको।

———

२८. साध कौ अङ्ग

कबीर संगति साध की, कदे न निरफल होइ।
चंदन होसी बांवना, नींब न कहसी कोइ ॥१॥

प्रसंग—साधु की सगत कभी भी निष्फल नही होती है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं, कि साधु अर्थात् सज्जन व्यक्ति की संगति कभी भी व्यर्थ नही जाती है। साधु सगति से तुम नीम के समान कड़वे से सुशीतलता एव सुगन्धता देने वाले चन्दन वन जाओगे और फिर तुम्हें कोई कड़वा नही कह सकेगा। क्योकि चन्दन के वृक्ष को कोई नीम नही कह सकता है।

शब्दार्थ—कदे = कभी। निरफल = निष्फल। बाँवन = श्रेष्ठ।

कबीर संगति साध की, बेगि करीजै जाइ।
दुरमसि दूरि गँवाइसो, देसी सुमति बताइ ॥२॥

प्रसग—साधु जनो की संगति शीघ्रता शीघ्र करनी चाहिए।

भावार्थ—कबीर दासजी कहते हैं 'कि साधु संगति शीघ्र ही करनी चाहिए। उससे दुर्बुद्धि का नाश होता है। तथा सद्बुद्धि की प्राप्ति होती है।

शब्दार्थ—दुरमति = दुर्बुद्धि

मथुरा जावै द्वारिका, भावै जा जगनाथ।
सांध संगति हरि भगति बिन, कछू न आवै हाथ ॥३॥

प्रसंग—तीर्थ स्थलो से अधिक महत्त्वपूर्ण साधु सगति है।

भावार्थ—कबीर दास का कथन है, कि चाहे मथुरा जाओ, या द्वारिका पुरी जाओ या इच्छा हो तो जगन्नाथ पुरी जाओ। परन्तु साधु संगति और प्रभु भक्ति के बिना कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता है।

शब्दार्थ—भावै = भाये = अच्छा लगे,

मेरे संगी दोइ जणां, एक वैष्णों एक रांम।
वो है दाता मुकति का, वो सुमिरावै नांम ॥४॥

प्रसंग—मुक्ति एवं प्रभु का स्मरण कराने वाले ही साथी है।

भावार्थ—कबीर का कथन है, मेरे साथी केवल दो ही है--एक वैष्णव दूसरा राम अर्थात् प्रभु। राम मुक्ति का प्रदाता है और वैष्णव राम का स्मरण कराता है।

शब्दार्थ--विष्णो = वैष्णव।

कबीर बन बन मैं फिरा, कारिण अपणे रांम।
रांम सरीखे जन मिले, तिन सारे सब कांम ॥५॥

प्रसग—हरि भक्त की प्राप्ति से उद्देश्य की पूर्ति हो गई।

भावार्थ--कबीर दास कहते हैं, कि राम की खोज मे मैं वन-वन भटकता रहा। मुझे राम के भक्त मिल गये। जिन्होने मेरा उद्देश्य सिद्ध कर दिया और प्रभु से मिला दिया।

शब्दार्थ—सारे = पूर्ण किये।

कबीर सोइ दिन भला, जा दिन संत मिलांहिं।
अंक भरे भरि भेटिया, पाप सरीरौ जांहि ॥६॥

प्रसंग—जिस दिन सत्यसंगति हो, वही दिन सुन्दर है।

भावार्थ—कबीर का कथन है कि वही दिवस श्रेष्ठ एवं सुन्दर है जिस दिन सत दर्शन हो जाएं। उनको प्रेम पूर्वक आलिगन करने से शरीर के सारे पाप दूर हो जाते हैं।

शब्दार्थ—भेटिया—आलिगन।

कबीर चन्दन का बिड़ा, बैठ्या आक पलास।
आप सरीखे करि लिए, जे होते उन पास ॥७॥

प्रसंग—सत्संगति के प्रभाव से दुष्ट व्यक्ति भी सुधर जाते हैं।

भावार्थ—कबीर दास का कथन है चन्दन जैसे सत्पुरुष को आक और पलाश जैसे दुष्ट व्यक्तियो ने घेर लिया है। परन्तु उस सत्पुरुष ने उन सबको, अर्थात् दुष्टो को भी अपना जैसा सुगन्धि युक्त बना दिया।

शब्दार्थ—बिडा = वृक्ष।

कबीर खाई कोट की, पांणी पिवै न कोइ।
जाइ मिलै जब गंग मैं, तब सब गंगोदिक होइ ॥ ८ ॥

प्रसग--सत्सगति से व्यक्ति का महत्व बढ जाता है।

भावार्थ--कबीर दास जी का कथन है कि किले से निकलने वाली खाई अर्थात् गन्दी नाली का जल कोई नही पीता है। वही जब गंगा मे जाकर मिलती है तो गगा जल हो जाता है। जिसका सब श्रद्धा पूर्वक पान करते हैं।

शब्दार्थ--कोट किला। गगोदक = गगाजल।

जांनि बूझि साचहिं तजैं, करैं झूठ सूँ नेह।
ताकी संगति राम जी, सुपिनैं ही जिनि देहु ॥ ९ ॥

प्रसंग--कुसगति से कबीर दास दूर रहना चाहते हैं।

भावार्थ--कबीर दास जी का कथन है, जो जान बूझ कर सच्चो का तथा सत्य का परित्याग करते हैं और मिथ्याचारियो तथा झूठ से स्नेह करते हैं। हे राम। उनको संगति स्वप्न मे भी मत दो।

शब्दार्थ--सूं = से। सुपिनैं = स्वप्न मे।

कबीर तास मिलाइ, जास हियाली तूँ बसे।
नहिं तर वेगि उठाइ, नित का गंजन को सहै ॥१०॥

प्रसग--सत्सगति मे ही रहना चाहिए।

भावार्थ--कबीर दास का कथन है कि हे प्रभु। तुम मेरी भेट उससे करा दो, जिसके हृदय मे तुम्हारा निवास हो। नही तो इस संसार से मुझे उठा लो। नित्यप्रति कुसगति दुखः कौन सहन करता रहे ?

शब्दार्थ--हियालो = हृदय मे। गजन = दुख।

केती लहरि समन्द की, कत उपजै कत जाइ।
बलिहारी ता दास की, उलटी मांहि समाइ ॥११॥

सन्दर्भ--कोई बिरला प्रभु-भक्त ही इस सासारिक भाषा को त्याग कर ब्रह्म मे लीन हो जाता है।

भावार्थ--इस भवसागर मे न जाने कितने लोग जन्म लेते हैं और मृत्यु को प्राप्त करते हैं। यह जन्म और मृत्यु का क्रम हो ससार सागर मे उठने व गिरने वाली न जाने कितनी लहरे हैं। कबीर दास जी का कथन है कि मैं उस दास (भक्त) को बलिहारो जाता हूँ जो इस ससार को त्याग कर ब्रह्म मे लीन हो जाए।

शब्दार्थ--समद = समुद्र। उपजै = उत्पन्न होती है।

काजल केरी कोठड़ी, काजल ही का कोट।
बलिहारी ता दास की, जे रहै रांम की ओट ॥१२।

सन्दर्भ--ससार काजल की कोठरी के समान है।

भावार्थ—यह संसार काजल की कोठरी के समान हैं, और जिसका कोट भी काजल से ही विनिर्मित हैं अर्थात् मनुष्य निर्मित। कवीर दास कहते हैं, कि मैं उस दास की वलिहारी जाता हूँ जो ससार मे राम का सहारा लेकर माया, मोह से दूर रह जाए।

शब्दार्थ—ओट = सहारा।

भगति हजारी कपड़ा, तामैं मल न समाइ।
साषित काली काँबली, भावै तहाँ बिछाइ।।१३।। ४६३ ।।

सन्दर्भ = भक्ति बहुमूल्य वस्त्र के समान है।

भावार्थ—भक्ति बहुमूल्य वस्त्र के समान है। वह मलिनता को सहन नही कर सकती है। उसमे किंचिन्त मात्र भी पाप रूपी मैल नही छिप सकता है। दूसरी ओर शक्ति साधना वाले कम्बल जैसे हैं, जिसे जहाँ चाहो विछा दो।

शब्दार्थ—हजारी कापडा = एक सहस्त्र मूल्य वाला वस्त्र, बहुमूल्य। सापित = शाक्त।

---

२६. साध साषीभूत कौ अङ्ग

निरवैरी निहकाँमता, सांई सेती नेह।
विषिया सूं न्यारा रहै, संतनि का अंग एह ।। १ ।।

संदर्भ—संतो के लक्षण क्या है ?

भावार्थ—किसी से शत्रुता न करना अर्थात् वैर भाव न रखना, प्रत्येक कार्य को विना फल की इच्छा (निष्काम भाव) के करना। प्रभु के प्रति भक्ति रखना, विषयो के प्रति विरक्ति, यह सत पुरुषो के स्वभाव का महत्वपूर्ण अंग है।

शब्दार्थ—निहकाँमता = निष्काम रहना। साई = स्वामी। सेती = के।

संत न छाड़ै संतई, जे कोटिस मिलैं असन्त।
चँदन भुवंग वैठिया, तउ सीतलता न तजंत ।। २ ।।

संदर्भ—सन्तो का कर्म निम्नलिखित है।

भावार्थ = कुसंगति मे पड़कर भी संतजन अपने गुणो का परित्याग नही करते है, जिस प्रकार चन्दन के वृक्ष पर सर्प लिपटे रहते हैं तो भी वह अपनी शीतलता का त्याग नहीं करता है।

शब्दार्थ—कोटिक = करोडो । भुवग = सर्प ।

कबीर हरि का भांवता, दूरैं थैं दीसंत।
तन षीणां मन उनमनां, जग रूठड़ा फिरंत ॥ ३ ॥

सन्दर्भ—हरि भक्त दूर से ही दृष्टिगत हो जाता है।

भावार्थ—कबीर दास का कथन है कि हरि (राम) का प्यारा दूर से ही दिख जाता है। वह शरीर से क्षीण होता है, मन उन्मनी अवस्था अर्थात् भीतर ही केन्द्रित रहता है और वह संसार से विरक्त रहता है।

शब्दार्थ—भांवता = प्रिय । षीणा = क्षीण । रूठडा = रूंठा हुआ । उन्मना = उन्मन ।

कबीर हरि का भांवता, झीणां पंजर तास।
रैंणि न आवै नींदड़ी, अंगि न चढ़ई मास ॥ ४ ॥

सन्दर्भ—हरि के प्रिय की काया कृश होती है।

भावार्थ—कबीर दास कहते हैं कि हरि भक्त का शरीर क्षीण होता है। हरि भक्त मे अनुरक्त रहने के कारण उसे रात भर नीद नहीं आती है। (हरि का जाप किया करता है) उस पर कभी मांस नही चढता है अर्थात् वह शरीर से पुष्ट नहीं होता है।

शब्दार्थ—झीणा = कृश । पजर = शरीर तास = उसका ।

अणरता सुख सोवणां, रातै नींद न आइ।
ज्यूँ जल टुटै मंछली, यूँ बेलत बिहाइ ॥ ५ ॥

संदर्भ—जिनकी वृति प्रभु मे रमी हुई है वे सुख-निद्रा मे सो नहीं पाते हैं।

भावार्थ—जो व्यक्ति ईश्वर से प्रेम नही करता है वह सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करता है पर जो प्रभु मे अनुरक्त उन्हे नीद नही आती है। उनकी अवस्था जल के अभाव मे तडपती हुई मछली के समान है, वह प्रभु वियोग मे सदैव तड़पते रहते हैं।

शब्दार्थ—अणरता जो अनुरक्त नही है। रातै जो अनुरक्त है। बेलत = तडप कर।

जिन्य कुछ जांण्यां नहीं, तिन्ह सुख नींदड़ी बिहाइ।
मैर अबूझी दूझिया, पूरी पड़ी बिलाइ ॥ ६ ॥

सन्दर्भ—जिन्होने ज्ञानार्जन का प्रयत्न नही किया। उन्होने सम्पूर्ण आयु सुख निद्रा मे व्यतीत कर दी।

भावार्थ—जो अज्ञानी है वे सुख की नींद सोते हैं। मुझ अनजाने ने उसे जानने का प्रयत्न किया अर्थात् साधना मे प्रवृत्त हुआ तो हरि वियोग की विपत्ति मेरे ऊपर आ पड़ी।

शब्दार्थ—जिन्य = जिन्होंने। जाण्या = जाना। नींदड़ी = नींद।

जांण भगत का नित मरण, अण जांणे का राज।
सर अपसर समझै नहीं, पेट भरण सूँ काज ॥ ७ ॥

सन्दर्भ—ज्ञानी भक्त का नित्य मरण है।

भावार्थ—ज्ञानी का मरण है, क्योंकि वह हरि वियोग की वेदना का अनुभव करता है और अज्ञानियो को आनन्द होता है क्योंकि वे उस वेदना का अनुभव नही कर पाते हैं हरि-भक्ति से उनका कोई प्रयोजन नही है। सासारिक आवश्यकता की पूर्ति अर्थात् जीवन की पाशविक वृत्तियो को ही सन्तुष्ट करने मे जीवन व्यतीत कर देते हैं।

शब्दार्थ—जांण = ज्ञानी। अण जाने = अज्ञानी। राज = आनन्द से। सर अपसर = अवसर।

जिहि घटि जांण बिनाण है, तिहिं घटि आवटणां घणा।
बिन षंडै संग्राम है, नित उठि मन सौं झूझणां ॥ ८ ॥

संदर्भ—जो ज्ञानी है, उसके हृदय मे सताप की कमी नही है।

भावार्थ—जिसके हृदय मे ज्ञान विज्ञान है, अर्थात् जो विवेकी है उसके हृदय मे सताप की कमी नही, अर्थात् विरह अग्नि सदैव प्रज्ज्वलित रहती है। नित्य ही वह बिना तलवार के अपने मन से युद्ध किया करता है। (जिससे मन कुमार्ग की ओर प्रवृत्त न हो।)

शब्दार्थ—जांण-बिनाण = ज्ञान विज्ञान। आवटणा = औटना। घणा = अत्यधिक। षंड = तलवार। झूझणा = युद्ध करना।

राम बियोगी तन बिकल, ताहि न चीन्हैं कोइ।
तंबोली के पांन ज्यूँ, दिन दिन पीला होइ ॥ ९ ॥

सन्दर्भ—राम के वियोगी की वेदना को कोई नही जान पाता है।

भावार्थ—जो राम वियोगी होता है उसकी वेदना को कोई नही जान पाता है। तबोली के पान के सदृश वह नित्य पीला पड़ता जाता है।

शब्दार्थ—चीन्है = पहचानना।

पीलक दौड़ी सांइयां, लोग कहैं पिड रोग।
छांनै लंघण नित करै, राम पियारे जोग ॥ १० ॥

सन्दर्भ—राम के वियोग के कारण शरीर पीला पड गया है।

भावार्थ—साईं, अर्थात् हरि के वियोगानुभव के कारण, शरीर नित्य पीला पडता जा रहा है। लोग समझते हैं कि इसे पीलिया हो गया है। परन्तु वह छिप-छिप कर नित्य लंघन करता है जिससे कि प्रियतम के मिलन हो सके।

शब्दार्थ – पीलक = पीलापन । पिंड रोग = रक्त हीनता का विकार। छानै = क्षीण।

काम मिलावै राम कूँ, जे कोई जाँणै राषि।
कबीर बिचारा क्या करै, जाकी सुखदेव बोलै साषि ॥ ११ ॥

सन्दर्भ—कबीर ने अपने वचनो का समर्थन स्थान-स्थान पर वैष्णवो के पूज्य ऋषियो एवं देवताओ द्वारा कराया है।

भावार्थ—यदि कर्मों को उचित रीति से सम्पन्न किया जाए तो कर्म ही राम से मिला देते हैं। कबीर ऐसा कहकर कोई मिथ्या तत्व प्रतिपादित नही कर रहे हैं ? इसमे कबीर का क्या दोष ? इस कथन की साक्षी तो स्वयं शुकदेव जी ही दे रहे हैं।

शब्दार्थ—साषि = साक्षी।

कांमणि अंग बिरकत भया, रत भया हरि नांइ।
साखी गोरखनाथ ज्यूं, अमर भये कलि मांहि ॥ १२ ॥

प्रसंग—गुरु गोरखनाथ इन कथन के साक्षी है।

भावार्थ—जो कामिनी से विरक्त हो कर हरि मे अनुरक्त हो गया। वह कलियुग मे अमर हो गया। इसके साक्षी गुरु गोरखनाथ है।

शब्दार्थ—कांमणि = कामिनी। रत = अनुरक्त।

जदि बिषै पियारी प्रीति सूं, तब अंतरि हरि नांहिं।
जब अंतर हरि जी बसै, तब बिषिया सूं चित नांहि ॥१३॥

सन्दर्भ—विषय वासनाओ मे अनुरक्त मानव के हृदय में हरि का निवास हो सकता है।

भावार्थ—जब तक मनुष्य को सांसारिक वस्तुओ के प्रति अनुराग है तब तक हृदय मे हरि का निवास असम्भव है। जब हृदय मे हरि का वास हो जाता है, तब चित्त विषयो की ओर नही जाता है।

शब्दार्थ—विषै = विषय-वासनाएं। जदि = यदि। अन्तरि = अन्तर।

जिहिं घट मैं संसौ बस, तिहिं घटि रांम न जोइ।
रांम सनेही दास बिचि, तिणां न संचर होइ ॥१४॥

सन्दर्भ—जिस हृदय मे संशय है, वहाँ राम का निवास नही होगा।

भावार्थ—जिस हृदय मे संशय अर्थात् द्वैत भावना है, उसमे राम का निवास नही हो सकता है। राम एव भक्त दोनो के बीच मे तृण तक का भी संचार नहीं हो सकता है।

शब्दार्थ—विचि = मध्य मे। तिणा = तृण।

स्वारथ को सबको सगा, जब सगलाही जांणि।
बिन स्वारथ आदर करै, सो हरि की प्रीति पिछांणिं ॥१५॥

सन्दर्भ—हरि भक्त वही है, जो स्वार्थ रहित होकर सबका आदर करता है।

भावार्थ—संसारिक प्राणियो की यह रीति है कि स्वार्थ से प्रेरित होकर सभी अपने बन जाते हैं परन्तु जो स्वार्थ रहित होकर दूसरो का आदर करता है तो समझ लो कि उसके हृदय मे हरि की भक्ति विद्यमान है।

शब्दार्थ—सगला = सिगरा। स्वारथ = स्वार्थ।

जिहि हिरदै हरि आइया, सो क्यूं छांनां होइ।
जतन जतन करि दाबिये, तऊ उजाला सोइ ॥१६॥

संदर्भ—हरि की ज्योति को छिपाया नही जा सकता है।

भावार्थ—जिस हृदय मे हरि का पदार्पण हो गया है। उसके प्रकाश को कैसे छिपाया जा सकता है। चाहे जितना यत्न करके उस प्रकाश को छिपाया जाय तब भी उसका प्रकाश प्रकाशित ही होता रहेगा।

शब्दार्थ—छाना = छिपाना।

फाटे दीदै मैं फिरौं, नजरि न आवे कोइ।
जिहि घट मेरा साँइयाँ, सो क्यूं छाँना होई ॥१७॥

सन्दर्भ—महात्मा दूर से ही दृष्टिगत हो जाता है।

भावार्थ—मैं आँखें फाड़-फाड़ कर चारो ओर देखता हूँ परन्तु कोई दिखाई नही पड़ता है। परन्तु जिस घट मे मेरा साईं है, (हरि भक्त) वह छिपाया नही जा सकता है।

शब्दार्थ—फाटे = खोलकर। दीदै = नेत्र।

सब घटि मेरा साइयाँ, सूनी सेज न कोइ।
भाग तिन्हौं का है सखी, जिहि घट परगट होइ ॥१८॥

सन्दर्भ—सर्वत्र मे हरि का निवास है।

भावार्थ—सर्वत्र सभी प्राणियो मे साईं का निवास है, कोई भी हृदय शय्या उससे शून्य नही है। परन्तु हे सखी! भाग्यवान वही है जिसके हृदय मे वह प्रकट हो गये।

शब्दार्थ—परगट = प्रकट। भाग = भाग्य।

पावक रूपी रांम है, घटि घटि रह्या समाइ।
चित चकमक लागै नहीं, ताथैं धूंवां ह्वै ह्वै जाइ ॥१६॥

सन्दर्भ—अग्नि रूपी राम घट घट मे निवास करता है।

भावार्थ—राम उस अग्नि के समान है जो भस्मावृत रहकर प्रत्येक हृदय में समायी रहती है। परन्तु चित्त रूपी चकमक पत्थर उससे स्पर्श नही हो पाता है। इसी कारण अग्नि धुआँ दे देकर रह जाती है। तात्पर्य यह है कि चित्तवृत्तियाँ राम मे केन्द्रित होने पर ही उसके दर्शन सम्भव है।

शब्दार्थ—पावक = अग्नि।

कबीर खालिक जागिया, और न जागै कोइ।
कै जागै विषई विष भर्या, कै दास बंदगी होइ ॥ २० ॥

सन्दर्भ—ईश्वर तथा हरि भक्ति और विषयी जागते रहते हैं।

भावार्थ—कबीर दास जी का कथन है कि उनका स्वामी (ईश्वर) सदैव जागता रहता है और कोई नही। इस संसार मे या तो विषयी व्यक्ति नाना भोगो मे संलिप्त रह कर जागता है या फिर हरि भक्त जो सदैव भक्ति मे निमग्न रहता है।

शब्दार्थ—खालिक = ईश्वर।

कबीर चाल्या जाइ था, आगैं मिल्या खुदाइ।
मीरां मुझ सौं यौं कह्या, किनि फुरमाई गाइ ॥ २१ ॥५१४॥

सन्दर्भ—ईश्वर प्राप्ति के अनुभव का गान।

भावार्थ—कबीर का कथन है कि मैं अपनी धुन मे मस्त चला जा रहा था, अर्थात् सावन के मार्ग पर अग्रसर था कि आगे चलकर ईश्वर से भेंट हो गई। उन्होने मुझसे कहा कि तू अपने विचारो को गाकर क्यो नहीं प्रस्तुत करता है।

शब्दार्थ—खुदाइ = ईश्वर। चाल्या = चला।

———

३०. साध महिमा कौ अंग

चंदन की कुटकी भली, नां बॅबूर की अवरांउं।
वैश्नों की छपरी भली, नां साषत का बड गाउँ ॥ १ ॥

सन्दर्भ—वैष्णवो का छप्पर भला है, शाक्तो के बड़े-बड़े ग्राम अच्छे नही है।

भावार्थ—चन्दन की लकडी का एक मुट्ठा अच्छा है और बबूल का पूरा जंगल अच्छा नही है। इसी प्रकार वैष्णवो की एक कुटिया शाक्तो के बड़े-बड़े गाँवों से श्रेष्ठ है। तात्पर्य यह है कि अच्छी वस्तु का थोडी मात्रा मे ही प्राप्त होना अच्छा है।

शब्दार्थ—कुटकी = चदन की लकड़ी का मुट्ठा। बंबूर = बबूल। अवराउं = जगल।

पुरपाटण सूबस बसै, आनंद ठांयें ठांइ।
रांम सनेही बाहिरा, ऊजॅड़ मेरे भाइ ॥ २ ॥

सन्दर्भ—राम भक्त या राम प्रेमियो से रहित नगर उजाड है।

भावार्थ—कबीर की दृष्टि मे वह नगर उजाड़ है जिसमे राम के प्रेमी नही निवास करते हैं चाहे वह कितने ही सुन्दर ढग से बसा हुआ नगर हो, और स्थान स्थान पर आनन्द मनाये जा रहे हो।

शब्दार्थ—सूबस = बसा हुआ। बाहिरा = बिना। ऊंजड = उजाड़।

जिहि घरि साध न पूजिये, हरि की सेवा नाहि।
ते घर मड़हट सारपे, भूत बसै तिन मांहि ॥ ३ ॥

सन्दर्भ—साधु की पूजा एवं हरि सेवा आवश्यक है अन्यथा घर श्मशान के समान है।

भावार्थ—जिस घर मे साधु का सम्मान और सेवा तथा हरि भक्ति नहीं है। वे घर श्मशान के समान है और वहा भूत प्रेतो का निवास स्थान है अर्थात् वे घर श्मशान तुल्य शून्य और भयानक है तथा सासारिक क्लेशो के भूतों का वह [illegible] है।

शब्दार्थ—मड़हट = मरघट, श्मशान। घरि = घर।

है गै गैंवर सघन घन, छत्र धजा फरराइ।
वा सुख थैं भिष्या भली, हरि सुमिरत दिन जाइ ॥ ४ ॥

सन्दर्भ--हरि भक्ति मे लीन रहने वाला संसार के ऐश्वर्य प्राप्त प्राणी से श्रेष्ठ है।

भावार्थ--किसी के पास अनेक हाथी, घोड़े व प्रजा से पूर्ण गाव हो, समस्त ऐश्वर्य की सामग्री हो, शीश पर छत्र हो व महल की अट्टालिकाओ पर ध्वजा फहराती हो, परन्तु हरि भक्ति न हो तो सब व्यर्थ है उन सब की अपेक्षा हरि स्मरण करने वाला वह भिक्षुक अच्छा है जो दिन भर मांग कर खाता है, परन्तु हरि स्मरण मे सम्पूर्ण दिवस लीन रहता है।

शब्दार्थ--है = हय, घोड़े गै = गयंद, हाथी। सघन घन = घनी भूत जन-सख्या। भिष्या = भिक्षा।

है गै गैंवर सघन घन, छत्रपती की नारि।
तास पटंतर नां तुलै, हरिजन की पनिहारि ॥ ५ ॥

संदर्भ--वैष्णव की चेरी, दासी समस्त ऐश्वयो से युक्त रानी से श्रेष्ठ है।

भावार्थ--हाथी, घोड़े एवं समस्त ऐश्वयो से युक्त रानी से भी श्रेष्ठ वैष्णवो की चेरी है।

शब्दार्थ--पटतर = बरावर। हरिजन = वैष्णव।

क्यूँ नृप नारी नींदये, क्यूँ पनिहारी कौं मांन।
वा मांग संवारै पीव कौं, वा नित उठि सुमिरै रांम ॥ ६ ॥

सन्दर्भ--दासी का मान और रानी की निन्दा क्यो होती है।

भावार्थ--ऐश्वर्य युक्त राजा की रानी की निन्दा और दासी का सम्मान क्यो होता है? किस कारण दासी रानी से श्रेष्ठ बताई गई है? रानी लौकिक प्रियतम के हेतु श्रृङ्गार करती है और दासी नित्य अपने स्वामी राम का स्मरण करती है। इसलिए दासी श्रेष्ट है।

शब्दार्थ--मान = सम्मान।

कबीर धनि ते सुंदरी, जिनि जाया बैसनौ पूत।
रांम सुमरि निरभै हुवा, सब जग गया अऊत ॥ ७ ॥

सन्दर्भ--वह स्त्री धन्य है, जिसने वैष्णव पुत्र को जन्म दिया।

भावार्थ--कबीर दास जी का कथन है कि पुत्र को जन्म देने वाली सुन्दरी धन्य है। वह राम के नाम का स्मरण करके निर्भय हो जाता है। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण ससार तो निपूत ही रह गया।

शब्दार्थ--अऊत = निपूत।

कबीर कुल तौ सो भला, जिहि कुल उपजै दास।
जिहिं कुल दास न ऊपजै, सो कुल आक पलास ॥ ८ ॥

सन्दर्भ—कुल की शोभा दास से ही होती है।

भावार्थ—कबीर का कथन है कि वह कुल भला है अर्थात् श्रेष्ठ है जिस कुल मे हरि का सेवक जन्म ले। और जिस कुल मे हरि का सेवक जन्म न ले, वह कुल आक और प्लास (टेसू) के समान निष्प्रयोजन है।

शब्दार्थ—पलाश = टेसू। उपजै = उत्पन्न हो।

सापत बांभण मति मिलै, बैसनौ मिलै चँडाल।
अंक माल दे भेटिये, मांनों मिले गोपाल ॥ ९ ॥

सन्दर्भ—ब्राह्मण शाक्त से वैष्णव चाडाल श्रेष्ठ है।

भावार्थ--कबीर का कथन है कि शाक्त ब्राह्मणो से मिलने की अपेक्षा चाण्डाल वैष्णव से मिलना ही अच्छा है उस वैष्णव से मिलना इस प्रकार भेंट करनी चाहिए कि मानो ईश्वर से मिल रहे हो।

शब्दार्थ—बेसनौ = वैष्णव। बांमण = ब्राह्मण।

रांम जपत दालिद भला, टूटी घर की छांनि।
ऊँचे मंदिर जालि दे, जहाँ भगति न सारंगपानि ॥ १० ॥

सन्दर्भ—जहाँ राम की भक्ति न हो उन प्रसादो को जला देना चाहिए।

भावार्थ—राम का जप करते हुए दरिद्रता पूर्वक जीवन व्यतीत करना भी अच्छा है, चाहे घर का छप्पर भी टूट गया हो, अर्थात दरिद्रतर अवस्था भी राम-भक्ति करते हुए अच्छी है जिन ऊंचे-ऊचे प्रासादो मे राम का जप न होता हो उन्हें भस्म कर देना चाहिए।

शब्दार्थ—दालिद= दरिद्र सारगपानि = विष्णु (अनाम ब्रह्म से तात्पर्य है)।

कबीर भया है केतकी, भवर भये सब दास।
जहाँ जहाँ भगति कबीर की, तहाँ तहाँ राम निवास ॥ ११ ॥५२५॥

सन्दर्भ—भक्त केतकी के सदृश है और उसके दास भ्रमर के समान हैं।

भावार्थ—कबीरदास जी का कथन है कि मैं केतकी के समान हूँ और मेरे दास भ्रमर के समान हैं। जो नित्य ही मुझे घेरे रहते हैं तथा जहाँ मेरी (कबीर की) भक्ति है वहाँ राम का निवास समझो।

शब्दार्थ—केतकी = पुष्प। भंवर = भ्रमर।

३१. मधि कौ अंग

कबीर मधि अंग जेको रहै, तौ तिरत न लागै बार।
दुहु दुहु अंग सूँ लालि करि, डूबत है संसार ॥ १ ॥

सन्दर्भ—मध्यम मार्ग पर चलने वाला शीघ्र ही भवसागर को पार कर लेता है।

भावार्थ—कवीरदास जी का कथन है कि जीवन मे जो मध्यम मार्ग का अनुसरण करता है वह इस ससार सागर को शीघ्र ही पार कर लेता है उसे देर नही लगती है परन्तु जो दो अति विरोधी मतो को स्वीकार करता है वह संघर्ष मे पड कर नष्ट हो जाता है।

शब्दार्थ—मधि = मध्य मार्ग, समन्वयी मार्ग। तिरत = तरने में।

कबीर दुविधा दूर करि, एक अंग ह्वै लागि।
यहु सीतल वहु तपति है, दोऊ कहिये आगि ॥ २ ॥

सन्दर्भ—दुविधा मे सताप है, उसे दूर कर दो।

भावार्थ—कवीरदास का कथन है कि दुविधा अर्थात् सशय को दूर कर दो और मध्यम मार्ग का अनुसरण करो। क्योंकि दोनो अतिवादी मतो मे कौन श्रेयस्कर है और कौन अश्रेयस्कर है? यह दुविधा है दुविधा मे सताप है। दो विरोधी मत यदि मैं एक यदि अतिशीतल है और दूसरा अत्यन्त उत्तप्त मान लिए जाए तो भी दोनो ही अग्नि की भाँति जलाने वाले हैं। अतः मध्यम मार्ग को ही अपनाना चाहिए।

शब्दार्थ—सीतल = शीतल।

अनल अकांसां घर किया, मधि निरतर बास।
बसुधा, व्यौम विरकत रहै, बिनठा हर बिसवास ॥ ३ ॥

सन्दर्भ—जीवात्मामुक्त हो गई।

भावार्थ—आत्मा ईश्वर ज्ञान के आलोक से प्रकाशित होकर ब्रह्म रन्ध्र मे निवास करने लगी वह आकाश और पृथ्वी दोनो से विरक्त होकर उन्मन अवस्था मे पहुँच गई।

शब्दार्थ—अनल = अग्नि। अकासा = आकाश। मधि = मध्य। व्यौम = आकाश। विरकत = विरक्त। विनठा = विनष्ट। निसवास = विश्वास।

वासुरि गमि न रैंणि गमि, नां सुपनैं तरगंम।
कबीर तहाँ बिलंबिया, जहाँ छांहड़ो न धंम ॥ ४ ॥

सन्दर्भ—अगम-प्रदेश मे कबीर ने प्रवेश किया।

भावार्थ—जहाँ पर दिन-रात अथवा स्वप्न मे भी प्रवेश सम्भव नही है वहाँ पर कबीर ने प्रवेश किया।

शब्दार्थ—रैंणी = रात्रि। सुपनैं = स्वप्न मे।

जिहि पैडे पंडित गए, दुनियाँ परी बहीर।
औघट घाटी गुर कही, तिहिं चढ़ि रह्या कबीर ॥ ५ ॥

सन्दर्भ—सद्गुरु द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर कबीर चल कर कृतकृत्य हो गए।

भावार्थ—जिस मार्ग पर पडित लोग चले उसका अनुगमन ससार ने किया परन्तु सदगुरू द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलकर कबीर दुर्गम स्थान पर पहुँच गए।

शब्दार्थ—औघट = दुर्गम।

अगनृकथें हूँ रह्या, सतगुर के प्रसादि।
चरन कवँल की मौज मैं, रहिस्यूँ अन्तिरु आदि ॥ ६ ॥

सन्दर्भ—गुरु की कृपा से कबीर स्वर्ग नरक के प्रलोभनो से ऊपर उठ गए।

भावार्थ—सद्गुरु की कृपा से मैं स्वर्ग-नरक की कल्पना से दूर रहा अब तो मैं ईश्वर के चरण कमलो मे दिन-रात आनन्दपूर्वक रम रहा हूँ।

शब्दार्थ—अग = स्वर्ग। नृक = नरक। थैं = से। प्रसादि = कृपा से।

हिन्दू मूये राम कहि, मुसलमान खुदाइ।
कहै कबीर सो जीवता, दुह मैं कदे न जाइ ॥ ७ ॥

सन्दर्भ—कबीर सकीर्णता से परे अनहृद क्षेत्र मे सद्गुरु की कृपा से विचरण करने लगे।

भावार्थ—हिन्दू राम राम रटते-रटते मर गए और मुसलमान खुदा, खुदा कहते-कहते मर गए। कबीर कहते है कि वही जीवित है जो इन दोनो से परे ब्रह्म का उपासक है।

शब्दार्थ—मूये = मर गए।

दुखिया मूवा दुख कौं, सुखिया सुख कौं झूरि।
सदा अनंदी राम के, जिनि सुख दुख मेल्है दूरि ॥ ८ ॥

सन्दर्भ—राम के उपासक सबसे सुखी है।

भावार्थ—दुखी दुख से पीडित हैं और सुखी सुख की खोज मे दुखी हैं। सुख दोनो मे से किसी को न मिला। राम के भक्त दुःख-सुख की भावना का परित्याग करके आनन्द से विचरण करते हैं।

शब्दार्थ—अनंदी = आनन्द से।

कबीर हरदी पीयरी, चूना ऊजल भाइ।
राम सनेही यूँ मिले, दून्यूँ बरन गँवाइ॥ ९॥

सन्दर्भ—राम-सनेही संत-जन मध्यम मार्ग का अनुसरण करते हैं।

भावार्थ—कबीरदास कहते हैं कि हल्दी पीली होती है और चूना उज्ज्वल परन्तु संतजन इन दोनो सीमाओ का परित्याग करके प्रेम के रंग मे मन का अनुरंजन कर लेते हैं।

शब्दार्थ—दून्यू = दोनो।

काबा फिर कासी भया, रांम भया रहीम।
मोट चून मैदा भया, बैठि कबीरा जीम॥ १०॥

सन्दर्भ—कबीर ने भी मध्य मार्ग का अनुसरण किया।

भावार्थ—मध्य मार्ग का अनुगमन करने पर काबा, काशी और रहीम तथा राम मे अन्तर मिट गया। पाप पूर्ण कर्म सूक्ष्म तत्व मे परिवर्तित हो गए और इस प्रकार कबीर सूक्ष्म तत्व का उपभोग करने लगा।

शब्दार्थ—कासी = काशी।

धरती अरू असमान बिचि, दोइ तूँ बड़ा अबध।
षट दरसन संसै पड़्या, अरू चौरासी सिध॥११॥५२६॥

सन्दर्भ—धरती और और आकाश दो तुम्बियो के सदृश है जिन्हें बीच मे बांधना बहुत कठिन है।

भावार्थ—पृथ्वी और आकाश दो तुम्बियो के सदृश है जिन्हे मध्य से बांधना कठिन है। षट-दर्शन और चौरासी सिद्ध सशय सन्देह मे पड़े रह गए।

शब्दार्थ—अरु = और। तूंबड़ा = तुम्बियो।

---

३२. सारग्राही कौ अङ्ग

पीर रूप हरि नांव है, नीर आन व्यौहार।
हंस रूप कोइ साध है, तत का जांनण हार ॥१॥

सन्दर्भ—हंस रूपी साधु सार-तत्व के ज्ञाता होते हैं।

भावार्थ—दूध एवं जल के सदृश ईश्वर का नाम सांसारिक माया एक दूसरे मे मिले हुए है। हंस रूपी साधु ही इस सार तत्व के ज्ञाता होते हैं। और दूध एवं जल को अलग-अलग करके उसे पहचान लेते हैं। और क्षीर रूप ईश्वर के नाम को ग्रहण कर लेते हैं, माया रूपी जल को त्याग देते हैं।

शब्दार्थ—पीर = क्षीर। नांव = नाम। आन = अन्य। तत = तत्व।

कबीर साषत को नहीं, सबै बैशनों जांणि।
जा मुखि राम न ऊचरै, ताही तन की हांणि ॥२॥

सन्दर्भ—समस्त प्राणी वैष्णव ही है।

भावार्थ—कबीर दास जी का कथन है कि शाक्त कोई नही है, सभी को वैष्णव जानना चाहिए अर्थात् सभी वैष्णव है परन्तु जिसके मुख से राम नाम उच्चरित नही होता है, उसी का नाश होता है।

शब्दार्थ—ऊचरै = उच्चरित होना। सपित = शाक्त।

कबीर औगुंण नां गहै, गुंण ही कौं ले बीनि।
घट घट महु के मधुप ज्यूं पर आत्म ले चीन्हि ॥३॥

सन्दर्भ—गुणो को ही ग्रहण करना चाहिए।

भावार्थ—कबीर दास कहते हैं कि दूसरो के अवगुणो की ओर ध्यान नही देना चाहिए तथा उसके गुणो को चुन करके ग्रहण कर लेना चाहिए। जिस प्रकार मधुमक्खियां विविध सुमनो से मधु संचय करती है उसी प्रकार दूसरो के सद्गुणो को परमात्मा का अंश समझकर अपना लेना चाहिए।

शब्दार्थ—औगुण = अवगुण।

बसुधा बन बहु भांति है, फूल्यौ फल्यौ अगाध।
मिष्ट सुबास कबीर गहि, विषम कहै किहि साध ॥४॥५४०॥

सन्दर्भ—पृथ्वी विविधता से पूर्ण है, उसमे से सार तत्व का चयन कर लेना चाहिए।

भावार्थ—विविध प्रकार का वसुधा रूपी वन अपार फल फूलो से लदा हुआ है। कबीर का कथन है कि हमे मीठे फलो को ही ग्रहण करना चाहिए, क्योकि कटु फलो को ग्रहण करने से क्या लाभ ? अर्थात् इस संसार मे विविधता है, हमें प्रत्येक सद्गुणो को ग्रहण कर लेना चाहिए। ऐसी स्थिति मे उन्हे विषम क्यो कहे ?

शब्दार्थ—वसुधा = पृथ्वी। मिष्ट = मीठा।

---

३३. विचार कौ अङ्ग

राँम नाँम सब को कहै, कहिवे बहुत विचार।
सोई रांम सती कहै, सोई कौतिग हार ॥१॥

सन्दर्भ—राम नाम उच्चारण के पीछे विभिन्न विचारधारायें होती हैं।

भावार्थ—राम नाम तो सभी उच्चारण करते हैं। परन्तु उसके उच्चारण मे विभिन्न विचार रहते हैं। भक्त राम नाम का उच्चारण सती-भाव से करता है, राम के हेतु भक्त सती की भाँति अपने को भस्म कर देता है। केवल सती ही अपने पतिव्रत भाव का कौतुक दिखला सकती है।

शब्दार्थ—कौतिग हार = कौतुक वालो।

आगि कह्यां दाझै नहीं, जे नहीं चंपै पाइ।
जब लग भेद न जांणिये, रांम कह्या तौ कांइ ॥२॥

सन्दर्भ—जब तक यथार्थ का ज्ञान न हो जाए, राम नाम लेने से कुछ नही होता है।

भावार्थ—अग्नि, अग्नि कहने वाला अग्नि की ज्वाला का ज्ञान नही प्राप्त कर सकता है जब तक कि वह अग्नि पर पैर नही रखता है और जल जाता है, उसी प्रकार जब तक माया और ईश्वर का अन्तर स्पष्ट न हो जाए उसका यथार्थ ज्ञान न हो जाए तो यदि राम नाम का उच्चारण भी किया तो क्या हुआ ? अर्थात् उससे कोई लाभ नही।

शब्दार्थ—आगि = आग, अग्नि। दाझै = दग्ध होना। चांपै = रखना।

कबीर सोचि विचारिया, दूजा कोई नांहिं।
आपा पर जब चीन्हियां, तब उलटि समाना मांहिं ॥३॥

सन्दर्भ—संसार मे ईश्वर ही सब कुछ है।

भावार्थ—कबीर कहते हैं, कि गम्भीर विवेचन के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि संसार मे ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ नही है यह सब उसी का है। इस आत्म तत्व को जब जान लिया तब मेरी वृत्तियां अन्तर्मुखी होकर ईश्वर भक्त मे प्रवृत्त हो गई।

शब्दार्थ—दूजा = दूसरा।

कबीर पांणी केरा पूतला, राख्या पवन सँवारि।
नांनां वांणी बोलिया, जोति धरी करतारि ॥४॥

सन्दर्भ—मानव पानी के बुदबुदे के सदृश है।

भावार्थ—कबीर दास जी का कथन है, कि मनुष्य पानी के बुलबुले के समान है जिसको प्राण तत्व की वायु ने यह रूप दे रखा है। इस बुलबुले मे सृष्टिकर्त्ता निरंजन ने अपनी ज्योति स्थापित कर रखी है, जिसके कारण वह अनेक प्रकार से विविध रूपो मे अपने विचार प्रकट करता है।

शब्दार्थ—सवारि = सम्भाल कर। जोति = ज्योति।

नौं मण सूत अलूझिया, कबीर घर घर बारि।
तिनि सुलझाया बापुड़े, जिनि जाणीं भगति मुरारि ॥५॥

सन्दर्भ—ईश्वर भक्त ही इस भवजाल से मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

भावार्थ—कबीर दास जी का कथन है, कि प्रत्येक मानव संसार के कर्म जाल एवं विचार समूह रूपी नौ मन सूत को सुलझाने मे लगा हुआ है जो घर घर के द्वार पर उलझा हुआ पटा है अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति मायादिक प्रपंच रूपी उलझे हुए सूत को सुलझाने का प्रयत्न करता है, परन्तु इसे केवल वही सुलझा सका है जिसने ईश्वर की भक्ति की और उसमे ध्यान लगाया।

शब्दार्थ—बारि = द्वार।

विशेष—नौमण सूत = इसमें पंचविषय शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध,—तीन गुण सत् रज, तम एवं मन (समस्त सांसारिक बंधन और परितापों का उद्भावक)।

आधी साषी सिरि कटै, जोर बिचारी जाइ।
मनि परतीति न ऊपजै, तौ राति दिवस मिलि गाइ ॥ ६ ॥

सन्दर्भ—आस्था एवं विश्वास आवश्यक है।

भावार्थ—किसी के द्वारा प्रतिपादित अर्द्ध सत्य प्राणो का ग्राहक हो जाता है। कबीर दास कहते हैं यदि मन मे श्रद्धा प्रेम और विश्वास नही है तो सखियो का दिन रात एकाग्र होकर गान करने से कोई लाभ नही।

शब्दार्थ—परतीति = विश्वास।

सोई अषिर सोई बैयन, जन जू जू बाचवंत।
कोई एक मेलै लवणि, अमीं रसांइण हुंत॥ ७॥

सन्दर्भ—काव्य के विषय मे कबीर का व्यापक विचार।

भावार्थ—उन्ही अक्षरो और उस वाणी जिसका प्रयोग लोग नित्य पृथक्-पृथक् रूप से करते हैं, कोई बिरला एक व्यक्ति अर्थात् कवि उसमे ऐसा लावण्य ला देता है कि अमृतमयी रसयुक्त कविता बन जाती है।

शब्दार्थ—अषिर = अक्षर। बैयन = वचन। वाचवत = बोलते हैं। लवण = नमक, लावण्य, रसाइण = काव्य।

हरि मोत्यां की माल है, पोई काचै तागि।
जतन करी झंटा घणां, टूटैगी कहूँ लागि॥ ८॥

सन्दर्भ—हरि भक्ति से प्राप्य एव तर्क से अप्राप्य है।

भावार्थ—हरि उस मोतियो की माला के सदृश है जो कच्चे धागे मे पिरोई गई है, यदि उसके साथ यत्न करोगे, जोर लगाओगे तो अनेक झंझट उत्पन्न होंगे अर्थात् विचार सघर्ष से उलझने बढ जाएगी, सम्भव है कि इससे धागा टूट भी जाए।

शब्दार्थ—मोत्यां की = मोतियो की। काचै तागि = कच्चा धागा। झंटा = झझट।

मन नहीं छाड़ै बिषै, बिषै न छाड़ै मन कौं।
इनकौं इहै सुभाव, पूरि लागी जुग जन कौं॥९॥

सन्दर्भ—मन और विषय विकारो का सम्बन्ध है।

भावार्थ—कबीर कहते हैं कि मन विषय का परित्याग नही करता और विषय मन को नहीं छोडता है। अर्थात् मन विषय-वासनाओ मे उलझ गया है और विषय वासनाएं मन मे घर कर चुकी है। इनका स्वभाव ही ऐसा है। ये दोनों मनुष्य के साथ परिपूर्ण रूप से चिपटे हुए हैं।

शब्दार्थ—बिषै = विषय, वासना। सुभाव = स्वभाव।

खंडित मूल बिनास, कहौ किम बिगतह कीजै।
ज्यूँ जल मैं प्रतिब्यंब, त्यूँ सकल रांमहिं जांणीजै॥१०॥

संदर्भ—जल मे प्रतिविम्व के सदृश, सबमे राम है।

भावार्थ—संसार के प्रत्येक पदार्थ एवं तत्व मे उस राम का प्रतिविम्व उसी प्रकार है जिस प्रकार जल मे प्रतिविम्व होता है। अर्थात् दृश्यमान जगत उसी के प्रकाश से प्रकाशित है। यदि कोई नास्तिक इसका खडन करना चाहे तो प्रतिबिम्ब को खंडित करके विम्ब का उन्मूलन कैसे कर सकेगा अर्थात् जब प्रतिबिम्ब—सम्मुख है ससार के रूप मे तो विम्ब-ईश्वर भी अवश्य होगा।

शब्दार्थ— प्रतिव्यव = प्रतिविम्व।

> सो मन सो तन सो बिपै, सो त्रिभवन-पति कहूँ कस।
> कहै कबीर व्यदहु नरा, ज्यूं जल पूर्या सकल रस ॥११॥५४६॥

सन्दर्भ—निराकार निरंजन की वन्दना का उपदेश।

भावार्थ—कबीरदास कहते हैं कि जिन्हे हम अवतार मानते हैं उनमे मन शरीर तथा उससे सम्बन्धित विषय सब वही है उन्हें त्रिभुवन पति कैसे कहूँ ? इसलिए उस निराकार निरंजन की वन्दना करो जो रसो मे जल के सदृश समस्त ससार में समाया हुआ है।

शब्दार्थ—व्यंदहु = विद्यमान।

------

३४. उपदेश कौ अंग

> हरि जी यहै बिचारिया, साषी कहौ कबीर।
> भौसागर मैं जीव हैं, जे कोइ पकड़ै तीर ॥१॥

सन्दर्भ—सासियाँ भव सागर पार होने का सम्बल है।

भावार्थ—हरि ने यही विचार किया अर्थात् प्रेरणा दी कि कबीर तुम साखी, (अनुभव जनित ज्ञान) संसार के सम्मुख प्रस्तुत करो। ससार रूपी समुद्र मे अनेक जीव पड़े हैं जो भव सागर पार करने की आशा कर रहे हैं। सम्भव है कि कोई इन साखियों का सम्बल लेकर भव सागर पार हो जाए।

शब्दार्थ—बिचारिया = विचार किया।

भौसागर = संसार-समुद्र।

कली काल ततकाल है, बुरा करौ जिनि कोइ ।
अन बावैं लोहा दांहिणैं, बोवै सु लुणतां होइ ॥२॥

संदर्भ—कलियुग मे कर्मफल तत्काल प्राप्त होता है ।

भावार्थ—कलिकाल मे किए हुए कर्मों का फल तत्काल ही प्राप्त हो जाता है अतः कबीर प्राणियो को उपदेश देते हैं कि कोई कुत्सित कर्म न करो । जिस प्रकार किसान बाँयें हाथ मे फसल के पौधो को पकड़ता है और दाहिने हाथ मे अन्न काटने की हंसिया पकडता है और जो बोता है वही काटता है उसी प्रकार जैसे कर्म करोगे वैसा फल मिलेगा ।

शब्दार्थ—अन = अन्न । लोहा = हंसिया ।

कबीर संसा जीव मैं, कोई न कहै समझाइ ।
बिधि बिधि बांणीं बोलता, सो कत गया बिलाइ ॥३॥

संदर्भ—जीव की स्थिति क्षणिक है ।

भावार्थ—कबीरदास जी का कथन है कि जीव मे भ्रम है उसे कोई समझा कर नही बता सकता है । जीव के अस्तित्व के विषय मे विभिन्न आशकाएं उत्पन्न हो जाती है । जो जीव मृत्यु से पूर्व अनेक प्रकार की वाणियां बोलता था वह कहाँ विलीन हो गया ?

शब्दार्थ—संसा = सशय । बिलाइ = नष्ट हो गया ।

कबीर संसा दूरि करि, जाँमण मरण भरंम ।
पञ्चतत्त तत्तहि मिलै, सुरति समाना मंन ॥४॥

सन्दर्भ—संशय को दूर कर दो ।

भावार्थ—कबीरदास कहते हैं, कि हे मन संशय को दूर कर दो । जन्म-मरण का भ्रम इसी कारण है । सशय को दूर करने से जीवन मुक्त हो जायेगा तथा पंच तत्वो से विनिर्मित यह नश्वर शरीर उन्ही तत्वो मे मिल जायेगा और तब मन सुरति अवस्था मे पहुँच कर ईश्वर से साक्षात्कार करेगा ।

शब्दार्थ—जांमण मरण = जन्म-मरण ।

ग्रिही तौ च्यंता घणीं, बैरागी तौ भीष ।
दुहु कात्यां बिचि जीव है, दौ हनैं संतौ सीष ॥५॥

सन्दर्भ—साधु-शिक्षा चिन्ताओ को नष्ट कर सकती है ।

भावार्थ—गृहस्थ एव विरक्त दोनो को ही चिन्ता है प्रथम को गृहस्थी की तथा द्वितीय को भिक्षा की । अतः गृहस्थ एवं विरक्त (सन्यासी) दोनो अवस्थाओ मे

जीव उसी प्रकार नष्ट होता है जैसे कैंची के दोनो फलको के बीच मे फंसा हुआ वस्त्र। सन्तो की शिक्षा इस संशय को दूर कर देती है।

शब्दार्थ—च्यता = चिता। भीष = भिक्षा। हनैं = नष्ट करे।

वैरागी विरकत भला, गिरहीं चित्त उदार।
दुहूँ चूकां रीता पड़ै, ताकूं वार न पार ॥६॥

सन्दर्भ—गृहस्थ को उदार एवं सन्यासी को विरक्त होना चाहिए।

भावार्थ—वैरागी को विरक्त एवं गृहस्थ का उदार होना चाहिए। यदि ये दोनो अपने इन प्रकृत गुणो को त्याग देते हैं, तो सम्पूर्ण साधन व्यर्थ जाते हैं और इतना अनर्थ होगा कि उसका कोई ठौर-ठिकाना नही होगा।

शब्दार्थ—विरकत = विरक्त। गिरही = गृहस्थ।

जैसी उपजै पेड़ सूं, तसी निबहै ओरि।
पैका पैका जोड़तां, जुड़िसी लाप करोड़ि ॥७॥

सन्दर्भ—मार्ग पर सतत प्रयत्न करके चलने पर उद्देश्य की पूर्ति हो जाती है।

भावार्थ—पेड से जैसा सुन्दर फल गिरता है यदि उसे अन्त तक उसी रूप मे सुरक्षित रखा जाए, अर्थात् आत्मा ब्रह्म से जैसे अलग हुआ वैसा अन्त तक बना रहे। परन्तु इसके लिए सतत प्रयत्न की आवश्यकता है जैसे एक-एक पैसा जोडने पर लाखो एकत्र हो जाते है उसी प्रकार साधना के मार्ग पर अग्रसर होकर धीरे-धीरे चलकर भी उद्देश्य की पूर्ति सम्भव है।

शब्दार्थ—निबहै ओरि = अन्त तक निर्वाह। पैका = पैसा। जुडसी = जुट जाना।

कबीर हरि के नांव सूं, प्रीति रहै इकतार।
तौ मुख तैं मोती झड़ैं, हीरे अंत न पार ॥८॥

सन्दर्भ – उपदेश के मूल मे अनवरत भक्ति की अपेक्षा।

भावार्थ—कबीर दास का कथन है कि यदि साधक का हरि नाम मे निरन्तर एक समान प्रेम बना रहे, तो उसके वचनों मे मोती झडने लगेंगे, और हीरा अर्थात् उपदेशा का कोई अन्त न होगा।

शब्दार्थ—इकतार = एक समान, लगातार। नांव = नाम।

ऐसी बाणी बोलिये, मन का आपा खोइ।
अपना तन सीतल करै, औरन कौं सुख होइ ॥९॥

सन्दर्भ—वाणी का महत्व ।

भावार्थ—मन के अंह को अर्थात् अहंकार को विदूरित करके इतने सुन्दर बचन बोलने चाहिए जो अपने शरीर को शीतल करे और दूसरो के लिए भी सुखदायक हो अर्थात् श्रोता एवं वक्ता दोनो ही आह्लादित एवं प्रफुल्लित हो ।

शब्दार्थ—आपा = अपनत्व का भाव ।

> कोई एक राखै सावधान, चेतनि पहरै जागि ।
> बरतन बासन सूं खिसै, चोर न सकई लागि ।।१०।।५५६।।

सन्दर्भ—साधक की सजगता ।

भावार्थ—साधक को अपनी चेतना को इतना जाग्रत रखना चाहिए कि विषय-वासना रूपी चोर प्रविष्ट न हो सके और वस्त्र एवं बरतनो से यदि दूर रहो अर्थात् विषय-वासना से दूर रहो तो चोर कहीं आकर क्या लेगे ?

शब्दार्थ—चेतनि = चेतनता । बरतन-बासन = विषय-वासनाएं ।

---

३५. बेसास कौ अङ्ग

> जिनि नर हरि जठरांह, उदिकंथैं पंड प्रगट कियौ ।
> सिरजे श्रवण कर चरन, जीव जीभ मुख तास दियौ ।।
> उरध पाव अरध सीस, बीस पषां इम रषियौ ।
> अंन पान जहां जरै, तहां तैं अनल न चषियो ।।
> इहिं भाँति भयानक उद्र में, उद्र न कबहू छंछरै ।
> कृषन कृपाल कबीर कहि, इम प्रतिपालन क्यों करै ।।१।।

सन्दर्भ—जिस ब्रह्म ने जन्म दिया है, वही पालन पोषण करेगा ।

भावार्थ—जिस हरि ने माता के गर्भ मे रज और वीर्य से रचना किया, जिसने कान, हाथ, पैर, जीभ, मुख दिया और जिसने पेट के भीतर जठराग्नि से रक्षा की, अग्नि का स्पर्श तक न हो पाया । दस मास तक गर्भ मे ऊपर को पैर और नीचे को सिर करके लटकाए रखा । इस प्रकार भयानक उदर मे कभी खाली पेट नहीं रहने दिया । कबीर कहते हैं कि कृष्ण (हरि) कृपालु है, और कौन इस प्रकार पालन-पोषण कर सकता है ?

शब्दार्थ—जठरांह = पेट मे । उदिकंथैं = रज और वीर्य से । पंड = पिंड । तास = उसमे । उरध पाव अरध सीस = मातृ गर्भ मे शिशु की उल्टी स्थिति । अंन = अन्न । चपियौ = छुआ नही । उद्र = उदर । छंछरै = खाली रहा ।

भूखा भूखा क्या करै, कहा सुनावै लोग ।
भांडा घड़ि जिनि मुख दिया, सोई पूरण जोग ॥२॥

सन्दर्भ—समस्त अभाव का पूरक ब्रह्म है ।

भावार्थ—हे प्राणी ! भूख भूख क्यो कहकर अपने अभावों की व्यथा का गान कर रहा है ? जिस ब्रह्म ने उदर रूपी बरतन बनाया है वही इसको पूर्ण करेगा ।

शब्दार्थ—भाडा = पात्र (उदर) । घड़ि = बनाकर । मु = मुह ।

रचनहार कूं चीन्हि लै, खैवे कूं कहा रोइ ।
दिल मंदिर मैं पैसि करि, तांणि पछेवड़ा सोइ ॥३॥

सन्दर्भ—ब्रह्म को पहचानने की चेष्टा करनी चाहिए ।

भावार्थ—हे प्राणी ! जिस ब्रह्म ने तेरा निर्माण किया है उसे पहचानने की चेष्टा करना चाहिए । तू अभावो के पीछे क्यो रोता है, दिल रूपी मन्दिर मे ब्रह्म को पहचान कर विश्वास रूपी चादर ओढकर निश्चित हो जा ।

शब्दार्थ—खैवै = खाने को ।

रांम नांम करि बोंहड़ा, बांही बीज अघाइ ।
अंति कालि सूका पड़ैं, तौ निरफल कदे न जाइ ॥४॥

सन्दर्भ—राम नाम रूपी बीज की कृषि करने से खेती व्यर्थ नहीं जाती ।

भावार्थ—राम नाम रूपी बोहड़ा के द्वारा कर्म रूपी बीज को मन भरकर बो दो, यदि अन्ततोगत्वा सूखा भी पड जाए तो खेती व्यर्थ नही जायेगी ।

शब्दार्थ—बोहड़ा = फसल बोने की नलिका । बांही = बीज । अघाई = भरपूर ।

च्यंतामणि मन मैं बसै, सोई चित मैं आंणि ।
बिन च्यंता च्यंता करै, इहै प्रभू की बांणि ॥५॥

सन्दर्भ—ईश्वर को सबकी चिंता रहती है ।

भावार्थ—हे प्राणी ! ब्रह्म तेरे मन मे अज्ञात रूप से निवास करता है । वह स्वतः सबकी चिन्ता रखता है; यही उसका स्वभाव है ।

शब्दार्थ—आणि = प्रकट कर दे । बांणि = प्रकृति ।

कबीर का तूं चिंतवै, का तेरा च्यंत्या होइ।
अण च्यंत्या हरिजी करै, जो तोहि च्यंत न होइ ॥६॥

सन्दर्भ—ईश्वर अप्रत्याशित रूप से समस्त अभावों की पूर्ति करता है। हे प्राणी! तू व्यर्थ के लिए चिंता करता है। चिंता करने से क्या होगा? बिना सोचा हुआ अर्थात् अप्रत्याशित रूप से हरि जी सबकी ओर ध्यान रखते हैं।

शब्दार्थ—अणच्यंत्या = अप्रत्याशित।

करम करीमां लिखि रह्या, अब कछू लिख्या न जाइ।
मासा घटै न तिल बधै, जौ कोटिक करै उपाइ ॥७॥

सन्दर्भ—ईश्वर हमारे कर्मों का सच्चा मूल्यांकन करने वाला है।

भावार्थ—ईश्वर स्वतः हमारे कर्मों का लेखा-जोखा रखता है, इसलिए अब कुछ भी नही कहते बनता। कोटिशः उपाय करने पर भी कर्मों के लेखा मे अन्तर नही पडता है।

शब्दार्थ—करीमा = ईश्वर।

जाकौ जेता निरमया, ताकौं तेता होइ।
रती घटै न तिल बधै, जौ सिर कूटै कोइ ॥ ८ ॥

सन्दर्भ—ईश्वर सबको आवश्यकतानुसार देता है।

भावार्थ—ईश्वर ने जिसको जिस योग्य बनाया है उसको उतना ही देता है। न रत्ती घटता है, न तिल भर बढेगा चाहे कितना ही प्रयत्न मनुष्य कर ले।

शब्दार्थ—निरमया = निर्धारित किया।

च्यंता न करि अच्यंत रहु, साँई है संम्रथ।
पसु पंपेरू जीव जंत, तिनकी गांडि किसा ग्रंथ ॥ ९ ॥

सन्दर्भ—हे प्राणी! चिन्ता छोड दे, ईश्वर सबकी चिन्ता करता है।

भावार्थ—हे प्राणी! निश्चित होकर जीवन व्यतीत कर स्वामी बड़ा समर्थ है पशु-पक्षी जीव-जन्तु आदि की चिन्ता कौन करता है?

शब्दार्थ—सम्रथ = समर्थ, शक्तिमान। गाडि = गणना।

संत न बांधै गांठड़ी, पेट समाता लेइ।
सांई सूँ सनमुख रहै, जहाँ मांगै तहाँ देइ ॥ १० ॥

सन्दर्भ—सत सग्रह नही करते, केवल आवश्यकता भर ग्रहण करते हैं।

भावार्थ—सतजन आवश्यकतानुसार ग्रहण करते हैं। वे सग्रह नही करते हैं। वे ईश्वर की भक्ति मे लीन रहते हैं। जहाँ जब जैसी आवश्यकता होती है, स्वामी उन्हें देता है।

शब्दार्थ—गाठड़ी = पोटली ।

> राम नाम सूँ दिल मिली, जन हम पड़ी बिराइ ।
> मोहि भरोसा इष्ट का, बंदा नरकि न जाइ ॥ ११ ॥

सन्दर्भ—जब से राम नाम से अनुराग स्थापित हुआ है तब से संसार भूल गया ।

भावार्थ—राम नाम से अनुराग हो जाने पर अब तो संसार से विराग हो गया है । अब मुझे ब्रह्म का भरोसा हो गया है अब मैं नरक नहीं जाऊंगा ।

शब्दार्थ—बिराई = विराग ।

> कबीर तूँ काहे डरै, सिर परि हरि का हाथ ।
> हस्ती चढ़ि नहीं डोलिए, कूकर भुसैं जु लाष ॥ १२ ॥

सन्दर्भ—ब्रह्म की शरण मे जाकर तू अभय है ।

भावार्थ—हे प्राणी ! तेरे सिर पर ईश्वर का वरद हस्त है, तू क्यो विचलित होता है । क्या कुत्तो के भूकने के भय से तू हाथी पर चढना छोड देगा ।

शब्दार्थ—कूकर = कुत्ता । भुसैं = भौंके ।

> मीठा खांण मधूकरी, भाँति-भाँति कौ नाज ।
> दावा किसही का नहीं, बिन विलाइति बड़ राज ॥१३ ॥

सन्दर्भ—भिक्षार्जित अन्न मधुरान्न हैं ।

भावार्थ—भिक्षा मे प्राप्त अन्न विविधता पूर्ण और मधुर होता है । उस पर किसी एक का अधिकार नहीं है, और उसका भोग करने वाला राजा से भी बड़ा होता है ।

शब्दार्थ—दावा = अधिकार ।

> मांनि महातम प्रेम रस, गरवा तण गुण नेह ।
> ऐ सबहीं अह लागया जबहीं कह्या कुछ देह ॥ १४ ॥

संदर्भ—मांगने से महत्व घटता है ।

भावार्थ—मान, माहात्म्य प्रेम, गर्व गुण और स्नेह ये सब तभी समाप्त हो जाते हैं जब मनुष्य कुछ याचना करता है ।

शब्दार्थ—महातम = महात्म्य ।

> मांगण मरण समान है, बिरला बंचै कोइ ।
> कहै कबीर रघुनाथ सूँ, मतिर मँगावे मोहि ॥ १५ ॥

सन्दर्भ—याचना करना मृत्यु के समान है ।

भावार्थ—माँगना मृत्यु के समान है, परन्तु विरला ही माँगने से बच पाता है। कबीर कहते हैं कि हे ईश्वर ! माँगने से मुझे बचाए रखना।

शब्दार्थ—माँगण = माँगना।

पांडल पंजर, मन भँवर, अरथ अनूपम बास।
राम नाम सींच्यां अमीं, फल लागा बेसास ॥ १६ ॥

संदर्भ—राम नाम रूपी अमृत से सीचने पर विश्वास विकसित होता है।

भावार्थ—शरीर पाडुर-पुष्प के समान है, और मन भौरे के सदृश है, अर्थ रूपी अनुपम गन्ध प्रसारित है। राम नाम रूपी अमृत तत्व से सीचने पर विश्वास रूपी फल प्रस्फुटित होता है।

शब्दार्थ—पाडल = पुष्प विशेष।

मेर मिटी मुकता भया, पाया ब्रह्म विसास।
अब मेरे दूजा को नहीं, एक तुम्हारी आस ॥ १७ ॥

सन्दर्भ—ममता और अह मिट गया ब्रह्म की कृपा से।

भावार्थ—भेद भाव की भावना मिट गई और ब्रह्म विश्वास रूपी मुक्ता प्राप्त हो गया। हे नाथ ! अब तुम्हारे अतिरिक्त और मेरा कोई नही है।

शब्दार्थ—मुक्ता = मुक्त, मोती के समान उज्ज्वल।

जाकी दिल में हरि बसै, सो नर कलपै काँइ।
एकै लहरि समंद की, दुख दलिद्र सब जाइ ॥ १८ ॥

संदर्भ—हरि की कृपा से समस्त अभाव दूर हो जाते हैं।

भावार्थ—जिसके हृदय मे ब्रह्म का वास है वह क्यो दुखी है ? क्यो कलप रहा है ? हरि की एक कृपा पूर्ण लहर से समस्त दुख दरिद्र दूर हो जायेगा।

शब्दार्थ—कलपै = कलपना, दुखित होना।

पद गाये लै लीन ह्वै, कटी न संसय पास।
सबै पिछोड़े थोथरे, एक निनां बेसास ॥ १९ ॥

संदर्भ—विश्वास के विना सब सूना है।

भावार्थ—लीन होकर पद, साखियो का गान करते रहे, परन्तु सशय के पाश मे मन बँधा रहा। एक विश्वास के बिना समस्त साधना व्यर्थ हो गई।

शब्दार्थ- थोथरे = खाली।

गांवण ही मैं रोज है, रोवण ही मैं राग।
इक वैरागी ग्रिह मैं, इक गृही मैं बैराग ॥ २० ॥

सन्दर्भ--विरक्तो के लिए दुख और सुख सब बराबर है।

भावार्थ—गाने मे रोना और रोने मे गाना समाहित है। दुख मे सुख और सुख मे दुख समाहित है। विरक्तो के लिए दोनो समान है, कोई गृहस्थाश्रम मे रहते हुए भी विरक्त रहता है और कोई विरक्त होते हुए भी गृहस्थाश्रम मे अनुरक्त रहता है।

शब्दार्थ—गावण = गाना। रोवण = रोना।

> गाया तिनि पाया नहीं, अणगाया थै दूरि।
> जिनि गाया बिसवास सूं, तिन रांम रह्या भरपूरि॥ २१॥

संदर्भ—ब्रह्म अनिर्वचनीय है।

भावार्थ—जिसने ब्रह्म का प्रचार किया उसने ब्रह्म तत्व को प्राप्त नही किया और जिसने ब्रह्म का गुणगान नही किया वह उससे और भी दूर है। जिसने विश्वासपूर्वक गान किया है उसी ने ब्रह्म तत्व को प्राप्त किया है।

शब्दार्थ—बिसवास = विश्वास।

---

३६. पीव पिछांणन कौ अङ्ग

> संपटि मांहि समाइया, सो साहिब नहीं होइ।
> सकल मांड मैं रमि रह्या, साहिब कहिए सोइ॥ १॥

संदर्भ—कबीर का ब्रह्म, समस्त ब्रह्माण्ड मे रमा हुआ है।

भावार्थ—जो प्रच्छन्न है, मन्दिर मे बन्द है वह तो मेरा आराध्य नही है वरन् मेरा स्वामी समस्त ब्रह्माण्ड मे रमा हुआ है।

शब्दार्थ—संपटि = सम्पुट, मन्दिर में। मांड = ब्रह्माण्ड।

> रहै निराला मांड थैं, सकल मांड ता मांहिं।
> कबीर सेवै तास कूं, दूजा कोई नांहिं॥ २॥

सन्दर्भ—ब्रह्म संसार से अलग, पूरे संसार मे व्याप्त है।

भावार्थ—ब्रह्म, ब्रह्माण्ड से पृथक और समस्त ब्रह्माण्ड उसी मे रमा हुआ है। कबीर ऐसे ही ब्रह्म की आराधना मे अनुरक्त है।

शब्दार्थ—निराला = अलग।

भोलै भूली खसम कै, बहुत किया बिभचार।
सतगुर गुरू बताइया, पूरिबला भरतार ॥३॥

संदर्भ—माया के कारण ब्रह्म को पूर्णतया भुला दिया।

भावार्थ—माया के भ्रम मे पड कर प्रिय को भुला दिया और बहुत सा अनाचार किया। जब से सद्गुरु ने मार्ग बताया तब से प्रिय फिर प्राप्त हो गया।

शब्दार्थ—बिभचार = व्यभिचार।
भरतार = भर्त्ता, पति।

जाके मुह माथा नहीं, नहीं रूपक रूप।
पुहुप बास थैं पतला, ऐसा तत अनूप ॥ ४ ॥५८४॥

सन्दर्भ—कबीर का ब्रह्म निराकार और निर्विकार हैं।

भावार्थ—जो ब्रह्म मुख विहीन, मस्तक रहित, रूप-स्वरूप से परे हैं, जो पुष्प की गन्ध से भी झीना है। ऐसा अनुपम तत्व मेरा स्वामी है।

शब्दार्थ—पुहुप = पुष्प।

---

३७. बिर्कताई कौ अङ्ग

मेरै मन मैं पड़ि गई, ऐसी एक दरार।
फाटा फटक पषाण ज्यूं, मिल्या न दूजी बार ॥१॥

सन्दर्भ—सद्गुरु के प्रसाद से मेरा मन माया से पृथक हो गया।

भावार्थ—सद्गुरु की कृपा से मेरे मन मे एक दरार पड गई। मन माया से पृथक हो गया अब दोनों इस प्रकार से पृथक हो गए जैसे स्फटिक पत्थर टूट जाने पर नही मिलता है।

शब्दार्थ—फटक = स्फटिक।

मन फाटा बाइक बुरै, मिटी सगाई साक।
जौ परि दूध तिवास का, ऊकटि हूवा आक ॥२॥

सन्दर्भ—मन सगे सम्बन्धियो से विरक्त हो गया।

भावार्थ—जिस प्रकार बासी दूध फट कर खराब हो जाता है और फिर वह अपने मौलिक रूप मे नही परिवर्तित होता है, उसी प्रकार मेरा मन सम्बन्धियो से विच्छिन्न हो गया है।

शब्दार्थ—बाइक बुरे = बुरी बातो से। सगाई = सम्बन्ध। साक = साख। तिवास = तीन दिन का।

चंदन भागां गुण करै, जैसे चोली पंन।
दोइ जन भागां नां मिलैं, मुकताहल अरु मंन ॥३॥

सन्दर्भ—चन्दन, मोती और मन अपने-अपने स्वभाव को नही छोडते हैं।

भावार्थ—चन्दन टुकडे-टुकड़े होने पर भी अपने गुण को नही छोडता है, परन्तु मन और मोती टूट जाने पर पुनः नही मिलते हैं।

शब्दार्थ—भागा = टूटा हुआ।

पासि बिनंठा कपड़ा, कदे सुरांग न होइ।
कबीर त्याग्या ग्यांन करि, कनक कामनी दोइ ॥४॥

सन्दर्भ—विरक्त मन कभी भी पुनः नही मिल पाता है।

भावार्थ—यथा फटा हुआ कपडा पर रग नही चढता है, उसी प्रकार विरक्त मन माया के रग मे नही रंगा जा सकता। कबीर ने ज्ञान पूर्वक कनक और कामिनी दोनो का परित्याग कर दिया।

शब्दार्थ—बिनठा = विनष्ट हुआ। सुराग = अच्छा रंग।

चित चेतनि मैं गरक ह्वै, चेत्य न देखैं मंत।
कत कत की सालि पाड़िये, गल बल म्हर अनंत ॥५॥

संदर्भ—हे मन! चेतन ब्रह्म मे अनुरक्त क्यो नही होते?

भावार्थ—हे मन! ब्रह्म मे लीन होकर चेतन मे अनुरक्त होकर जीवन को सफल क्यो नही करते? इस ससार मे किस-किस को कठिनाइयो मे भाग लोगे।

शब्दार्थ—कत-कत = किसको-किसको।

आता है सो जाण दे, तेरी दसा न जाइ।
खेवटिया की नाव ज्यूं, घणें मिलैंगे आइ ॥६॥

संदर्भ—हे प्राणी अपने प्रति सचेत रहो।

भावार्थ—हे प्राणी जो आता है उसे जाने दे तू पहले अपनी दशा की ओर ध्यान दे। [illegible] नदी के मल्लाह की नाव की भांति तेरे कितने आकर मिलेंगे।

शब्दार्थ—दसा = दशा।

नीर पिलावत क्या फिरै, सायर घर घर बारि।
जो त्रिषावंत होइगा, तो पीवेगा झष मारि ॥७॥

संदर्भ—हे प्राणी ईश्वर भक्ति का प्यासा स्वय भक्ति रूपी जल का पान करेगा।

भावार्थ—हे साधक तू ईश्वर भक्ति का जल प्रत्येक को क्यो पिला रहा है। जो भक्ति का प्यासा होगा वह उस जल का पान स्वय कर लेगा। भक्ति जल का सागर अर्थात् ईश्वर सबके हृदय मे विद्यमान है।

शब्दार्थ—नीर = जल।

सत गंठी कोपीन है, साध न मानै संक।
रांम अमलि माता रहै, गिणैं इंद्र कौ रंक ॥८॥

संदर्भ—ब्रह्म के रग मे रंगा हुआ प्राणी इन्द्र की भी अवहेलना करता है।

भावार्थ—फटी, गाँठ लगी हुई कौपीन पहने हुए ब्रह्म के रंग मे और राम की प्रेम की मदिरा मे मस्त प्राणी इन्द्र को रंक मानता है।

शब्दार्थ—गिणैं = गिनता है।

दावै दाझण होत है, निरदावै निसंक।
जे नर निरदावै रहैं, ते गिणैं इंद्र को रंक ॥ ९ ॥

संदर्भ—संसार का परित्याग किया हुआ प्राणी, इन्द्र को भी रंक के बराबर मानता है।

भावार्थ—अधिकार प्रदर्शन से जलन होती है, अधिकार प्रदर्शन न करने वाला निसंक रहता है। ऐसा प्राणी इन्द्र को भी रंकवत मानता है।

शब्दार्थ—दावै = अधिकार।

कबीर सब जग हंढिया, मंदिल कंधि चढ़ाइ।
हरि बिन अपनां को नहीं, देखे ठोकि बजाइ ॥१०॥५८४॥

सन्दर्भ—हरि के बिना अपना कोई नहीं है।

भावार्थ—कबीरदास कहते हैं कि इस अधम पंच तत्वो से विनिर्मित शरीर का भार ढोते हुए, समस्त ससार को देखा, परन्तु यह भली प्रकार देख लिया है कि हरि के बिना इस ससार मे अपना कोई नही है।

शब्दार्थ—हंढिया = घूम लिया।

३८. समर्थाई कौ अङ्ग

नां कुछ किया न करि सक्या, नां करणें जोग सरीर।
जे कुछ किया सु हरि किया, ताथैं भया कबीर कबीर ॥१॥

सन्दर्भ—हरि जगत-नियन्ता है।

भावार्थ—न मैंने कुछ किया, न करने के योग्य हूँ, न कर सका हूँ। जो कुछ किया है वह हरि ने किया है। उन्ही की कृपा से कबीर कबीर हो गए।

शब्दार्थ—सरीर = शरीर।

कबीर किया कछु न होत है, अनकीया सब होइ।
जे किया कुछ होत है, तौ करता औरै कोइ ॥२॥

सन्दर्भ—हरि जगत नियन्ता है।

भावार्थ—कबीरदास कहते हैं कि जो मैं चाहता हूँ वह नही होता है और जो नही करना चाहता वह पूर्ण हो जाता है। यदि मेरे करने से कुछ होता तो कर्त्ता मैं ही होता, परन्तु मैं कर्त्ता नही हूँ, करता तो ब्रह्म है।

शब्दार्थ—करता = कर्त्ता।

जिसहि न कोई तिसहि तूँ, जिस तूँ तिस सब कोइ।
दरिगह तेरी सांईयां, नांम हरू मन होइ ॥३॥

सन्दर्भ—जिसका कोई नहीं है, उसका ईश्वर है।

भावार्थ—जिसका कोई नही है, उसका तू है और जिसका तू समर्थक है उसका सब कोई है। हे स्वामी! जिस पर तू कृपालु है, वह हलका होते हुए भी भारी बन जाता है।

शब्दार्थ—जिसहि = जिसका। तिसहि = उसका।

एक खड़े ही लहैं, और खड़ा बिलगाइ।
साईं मेरा सुलपनां, सूतां देइ जगाइ ॥४॥

सन्दर्भ—ईश्वर सबको आवश्यकतानुसार देता है।

भावार्थ—कुछ व्यक्तियों को प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। खड़े-खड़े मिल जाता है और प्रतीक्षा करते-करते व्याकुल हो जाते हैं। मेरा स्वामी बड़ा सुलक्षण वाला है, वह सोते को जगाकर देता है।

शब्दार्थ—सुलपना = सुलक्षण युक्त।

साँत समंद की मसि करौं, लेखनि सब बनराइ।
धरती सब कागद करौं, तऊ हरि गुण लिख्या न जाइ ॥५॥

सन्दर्भ—हरि के गुण = अनिर्वचनीय ।

भावार्थ—सात समुद्रो मे स्याही घोल लूँ और समस्त वृक्षो को लेखनी बना लूँ समस्त धरती को कागज के रूप मे बना लूँ, फिर भी हरि के गुण का उल्लेख नही हो सकता है।

शब्दार्थ—मसि = स्याही ।

अबरन कौं का बरनिये, मोपै लख्या न जाइ।
अपना बाना बाहिया, कहि कहि थाके माइ ॥६॥

संदर्भ—ब्रह्म अनिर्वचनीय है।

भावार्थ—निराकार निर्विकार निर्गुण ब्रह्म अनिर्वचनीय है। वह अलख है, सब लोग अपनी-अपनी अनुभूति का यथाशक्ति वर्णन करते हैं।

शब्दार्थ—अबरन = अवर्ण ।

झल बांवै, झल दाहिने, झलहि माँहि व्यौहार।
आगे पीछे झलमई, राखै सिरजणहार ॥७॥

संदर्भ—माया की अग्नि चारो ओर जल रही है।

भावार्थ—माया की अग्नि दाहिनी ओर जल रही है, बाँई ओर जल रही है। समस्त ससार का व्यापार माया की अग्नि मे ही संचालित हो रहा है। माया की अग्नि आगे जल रही है, पीछे जल रही है। रक्षक केवल ब्रह्म है।

शब्दार्थ—झल = अग्नि । व्यौहार = व्यापार ।

साई मेरा बाँणियाँ, सहजि करै व्यौपार।
बिन डांडी बिन पालड़ै, तौले सब संसार ॥८॥

संदर्भ—अप्रत्यक्षरूप से स्वामी सबके कर्मों का मूल्यांकन करता है।

भावार्थ—मेरा स्वामी वनिया हैं, वह सहजरूप से व्यापार करता है। बिना तराजू और बिना पलडा के वह समस्त ससार को तौलता है।

शब्दार्थ—बाणियाँ = वनियाँ ।

कबीर बारया नांव परि, कीया राई लूँण।
जिसहि चलावै पंथ तूँ, तिसहि भुलावै कौण ॥९॥

सन्दर्भ—ईश्वर जिस पथ पर चलाता है, उसी पथ पर प्राणी चलता है।

प्रकार की माया से सर्वथा अतीत है। जो उसको पिंड और ब्रह्माण्ड से अतीत बतलाता है, वही वास्तव मे कबीर के मतानुसार परम तत्व को जानता है।

अलंकार—(१) सभग पद यमक—गुण ·· निरगुण।
(२) गूढोक्ति—बार · बहियँ।
(३) अनुप्रास—अजर अमर अलख।
(४) सम्बन्धातिशयोक्ति—अलख जाई।
(५) पुनरुक्ति प्रकाश—घटि घटि।
(६) विरोधाभास—नातो समाई।

टिप्पणी—(i) गुण मे गुण है। तुलना कीजिए—

ज्ञान कहै अज्ञान बिनु तम बिन कहै प्रकास।
निर्गुन कहै सगुण बिनु सो गुरु तुलसीदास॥

(ii) इस पद मे कबीर ने निर्गुण-राम-सम्बन्धी धारणा स्पष्टतः व्यक्त हुई है।

(iii) इसमे निर्गुण और सगुण मे तात्त्विक भेद का निषेध किया गया है। निर्गुण को अभावात्मक अथवा शून्य मानने का भी खण्डन है। इस प्रकार इनके राम के भक्ति के आलम्बन होने मे कोई व्याघात उत्पन्न नही होता है।

(१८१)

पषा पषी कै पेषणं, सब जगत भुलानां॥
निरपष होइ हरि भजै, सो सीध सयांनां॥ टेक॥
ज्यूं षर सूं षर बंधिया, यूं बधे सब लोई।
जाकै आतम द्रिष्टि है, साचा जन सोई॥
एक एक जिनि जांणियाँ, तिनहीं सच पाया।
प्रेमी प्रीति ल्यौ लींन मन, ते बहुरि न आया॥
पूरे की पूरी द्रिष्टि, पूरा करि देखै।
कहै कबीर कछू समुझि न परई, ता कछू बात अलेखै॥

शब्दार्थ—पषा पषी=पक्ष, विपक्ष, तेरा, मेरा। षर, खर, गधा। मूर्ख लोई—लोग। सच=सत्य।

सन्दर्भ—कबीर कहते हैं कि वह परम तत्व अखण्ड और अनिर्वचनीय है।

भावार्थ—यह संसार परम तत्व को लेकर अपने पक्ष एव मत के आग्रह मे पड़ा हुआ भ्रमित हो रहा है अर्थात् सब अपनी-अपनी ढपली पर अपना-अपना राग बजा रहे हैं और भ्रम मे पड़े हुए भटक रहे हैं। जो व्यक्ति पूर्वाग्रह से रहित होकर-पक्ष-विपक्ष एवं मत मतान्तर अथवा मेरे-तेरे-की भावना से परे होकर भगवान का भजन करता है, वही ज्ञानी साधु है अथवा उसी व्यक्ति को साधु और सच्चा ज्ञानी समझना चाहिए।

जिस प्रकार एक गधा दूसरे गधे से बँधा रहता है और एक गधा दूसरे को

चाहे जिधर की ओर ले जाता है, उसी प्रकार ससार के लोग मूर्ख बने हुए एक दूसरे से बंधे हुए हैं और एक दूसरे की देखा देखी चाहे जिस मत एव वाद की ओर प्रवृत्त हो जाते हैं। जो व्यक्ति आत्मा का दर्शन करता है अथवा प्राणी मात्र को आत्म रूप समझता है, वही वास्तव मे सच्चा भक्त है। जिसने उस एक परम तत्व को अद्वैत रूप मे समझा है, उसी ने सत्य का साक्षात्कार किया है। जिस साधक का मन प्रभु के प्रेम मे लवलीन रहता है, उसका पुनरागमन नही होता है अर्थात् उसकी मोक्ष हो जाती है। ऐसी आप्तकाम एव आत्मज्ञानी स्वय पूर्ण होता है और पूर्ण-ब्रह्म का साक्षात्कार करता है। कबीर कहते हैं कि इतना विचार-विनिमय करने के बाद भी परम तत्व का रहस्य कुछ समझ मे नही आता है। वह सर्वथा अलक्ष्य एव अगम्य है।

अलकार—(i) वृत्यानुप्रास—पषा पषी पेषणे, सो साध सयाना, पूरे की पूरी पूरा।
(ii) उदाहरण—ज्यूँ ····लोई।
(iii) यमक—एक-एक।
(iv) अतिशयोक्ति—कहै—अलेखै।

विशेष—(i) ज्यूँ लोई। तुलना करें।—

ऐसी गति संसार की, ज्यों गाडर का ठाटा।
एक पडा जेहि खाड मे, सबै जाहि तेहि बाट। (कबीर)

(ii) निरपष होइ ····पयाना। तुलना करें—

कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ जुगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसीदास परिहरै तीन भ्रम सो आपन पहिचानै।
(गोस्वामी तुलसीदास)

(iii) एक एक पाया – तुलना करे—

"धर्म की रसात्मक अनुभूति का नाम भक्ति है। धर्म है ब्रह्म के सत्स्वरूप की व्यक्त प्रवृत्ति जिसकी असीमता का आभास अखिल-विश्व-स्थिति मे मिलता है।"

(iv) पूरे की देखे—जो आत्मस्वरूप को जानता है, वह स्वय को ब्रह्म मानता है। जो स्वय को ब्रह्म मानता है वह अद्वैत दर्शन करता है। जो अद्वैत दर्शन करता है, वह प्राणी मात्र को ब्रह्म रूप समझना है।

ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं। देखत ब्रह्म समान सब माहीं। —तुलसीदास

(v प्रेम-प्रीति " आया—तुलना करें—

प्रेम पंथ जो पहुँचै पारा। बहुरि न मिलै आइ एहि छारा। —जायसी

(v) कबीर अद्वैतवादी भक्त के रूप मे दिखाई देते हैं। गोस्वामी तुलसीदास प्रभृति भक्तो की भक्ति-पद्धति भी यही है। उच्चावस्था पर ज्ञान और भक्ति का भेद समाप्त होजाता है। श्रीमद्भागवत् की प्रार्थना 'जन्माद्यस्य' मे व्यास ने जिस अवस्था

का साक्षात्कार किया है, वह एक ही साथ ज्ञान, भक्ति और परम प्रेम के अद्वैत की अनुभूति है। कबीर कभी-कभी 'सहज' लय को बौद्धिक विषय बना देते है। इसी से कुछ समालोचको के मतानुसार भागवतकार की अनुभूति की भूमिका की अपेक्षा कबीर की अनुभूति किसी सीमा तक निम्न भूमिका पर दिखाई देती है। हमारे विचार से अनुभूति की यह भूमिका भी अखंड है। इसमे स्तर-भेद सम्भव नही है। भेद केवल अभिव्यक्ति का है। इस दृष्टि से भागवतकार की अपेक्षा कबीर अवश्य ही कुछ हल्के पडते हैं।

(१८२)

अजहूँ न संक्या गई तुम्हारी,
नांहि निसंक मिले बनबारी ॥ टेक ॥
बहुत गरब गरबे सन्यासी, ब्रह्मचरित छूटी नही पासी ॥
सुद्र मलेछ बसे मन मांही, आतमरांम सु चीन्ह्यां नाहीं ॥
संक्या डांइणि बसै सरीरा, ता कारणि रांम रमै कबीरा ॥

शब्दार्थ—सक्या=शका। डांइणि=डाकिनी, चुडैल, काली की एक अनुचरी।

सन्दर्भ—कबीर कहते है कि जब तक सशय है, तब तक भगवान का दर्शन असम्भव है।

भावार्थ—हे साधक, तुम्हारे मन का सदेह अभी भी नही गया है। इसी से सदेहातीत भगवान तुम्हे नही मिल रहे है, अथवा सदेह रहित हुए विना बनवारी के दर्शन नही होते है। सन्यासी अपने ज्ञान के गर्व मे बहुत गर्वीले बने रहते हैं। इसी ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए भी उनकी आसक्ति का बन्धन अथवा मोह का बन्धन नष्ट नही होता है और वे जीवन-मुक्त नही हो पाते हैं। उनके मन मे शूद्र-म्लेच्छ समझने की भावना रहती है और वह आत्मस्वरूप प्रभु का साक्षात्कार नही कर पाते है। इस शरीर मे शका रूपी डायन का वास है। उसी की निवृत्ति के हेतु कबीर राम की भक्ति करता है।

अलंकार—(i) विशेषोक्ति ···· ब्रह्मचरित पासी।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—पासी।
(iii) रूपक—संक्य डायनि।
(iv) छेकानुप्रास—नाहि निसक, गरब गरबै, राम रमै।

विशेष—(i) म्लेच्छ—यवनो को कहते थे। पश्चिम से आने वाले विदेशी आक्रमणकारी 'म्लेच्छ' कहे जाते थे।

(ii) छुआछूत के प्रति कबीर का विरोध मुखर है। उन्होने जीवन भर इस कुप्रथा का डट कर विरोध किया था।

(iii) संदेहशीलता के दुष्परिणाम को समझने के लिए रामचरितमानस में वर्णित शिव-सती प्रसंग स्मरणीय है। शिवजी के समझाने पर सती जब यह हृदयगम

न कर मकी कि व्यापक ब्रह्म नरतनधारी हो सकता है, तब उनका जीवन कष्टमय होगया। सती सब प्रकार पवित्र एव उदात्त थी। परन्तु बौद्धिकता जन्य सदेह शीलता से उनकी निवृत्ति नही हो पाई थी। इसी कारण उन्हे पुनरागमन के चक्र मे पडना पड़ा। शिवजी का कथन द्रष्टव्य है—

भोरेहु कहे न संसय जाही। विधि विपरीत भलाई नाहीं।
होइहि सोइ जो राम रचिराखा। को करि तर्क बढावे साखा।

उमा को तत्व-ज्ञान तब प्राप्त हुआ, जब उन्होने यह कहा—

तब कर अस बिमोह अब नाहीं। राम कथा पर रुचि मन माहीं।

और अन्त मे 'रामचरितमानस' का उपसहार शिव के प्रति उमा के इस कथन से होता है—

नाथ वृथा मम गत संदेहा। राम चरन उपजेउ नव नेहा।

(१८३)

सब भूले हो पाषंडि रहे,
तेरा बिरला जन कोई राम कहै ॥ टेक ॥
होइ अरोगि बूटी घसि लावै, गुर बिन जैसै भ्रमत फिरै ॥
है हाजिर परतीति न आवै, सो कैसे परताप धरै ॥
ज्यू सुख त्यू दुख द्रिढ़ मन राखै एकादसी इकतार करै ।
द्वादसी भ्रमै लष चौरासी, गर्भ बास आवै सदा मरै ॥
मै तै तजै तजै अपमारग चारि बरन उपरांति चढ़ै ।
ते नहीं डूबै पार तिरि लघै, निरगुण अगुण सग करै ॥
होइ मगन रांम रँगि राचै, आवागवन मिटै धापै ।
तिनह उछाह सोक नही व्यापै, कहै कबीर करता आपै ॥

शब्दार्थ—अपमार्ग=कुमार्ग। पाखड=वाह्याचार । धापै=सतुष्ट हो जाता है।

सदर्भ—कबीर राम-भक्ति का प्रतिपादन करते है।

भावार्थ—सब लोग व्यर्थ के वाह्याचारो मे भ्रमित हैं अर्थात् वे इस भ्रम मे हैं कि वाह्याचारो के द्वारा उनका उद्धार हो जाएगा। हे भगवान, तेरा कोई विरला जीव ही सच्चे मन से तेरा स्मरण करता है। अगर कोई व्यक्ति जडी-बूटी घिस कर प्रयोग मे लाता है (उपयुक्त उपचार करता है तो उसका रोग अवश्य ही नष्ट हो जाता है। और यदि वह ऐसा नही करता है, तो वह रोगी ही बना रहता है। ससार के लोगो की ठीक यही दशा है। वे गुरु के पास तो जाते नही हैं और इधर-उधर व्यर्थ ही भटकते फिरते हैं। वे ज्ञान-वैराग्य एव भक्ति रूपी बूटी के सेवन के अभाव मे नाना प्रकार के वाह्याचारो मे भटकते फिरते हैं। भगवान सर्वव्यापी हैं, परन्तु लोगो को इस बात पर विश्वास नही होता है। ऐसी स्थिति मे वे प्रभु के वास्तविक ऐश्वर्य एव उनकी सामर्थ्य को क्यो कर समझते हैं ? जैसे सुख मे रहते हैं,

उगी प्रकार मन को पक्का करके व्यक्ति को दु ख मे स्वस्थ चित्र बनाए रखना चाहिए और अपनी दसो इन्द्रियो एव ग्यारहवे मन को एकतान होकर भगवान मे लगा देना चाहिए। परन्तु इसके विपरीत वह तो अपने बारह अगो की पुष्टि लगा रहता है और चौरासीलाख योनियो मे भटकता रहता है। फलतः वह गर्भ-वास करता-हुआ सदैव आवागमन के चक्कर मे पडा रहता है। जो व्यक्ति मैं और 'तू' के भाव को त्याग देना है कुमार्ग (प्रवृत्ति मार्ग) को त्याग देता है। चातुवर्ण्य की उपेक्षा कर देता है, वह इस भव-सागर मे नही डूबता है और तैरकर पार लाघ जाता है। ससार की माया-मोह एव विषय-वासनाओ से असम्पृक्त रहता हुआ वह जीव मुक्तावस्था को प्राप्त होजाता है, वह निर्गुण एव गुणातीन ब्रह्म के साथ एकाकार होजाता है। वह भगवान मे तन्मय होकर राम के प्रेम मे रग जाता है और उसका आवागमन समाप्त होजाता है तथा उसको परम सुख की प्राप्ति हो जाती है। कबीरदास कहते हैं कि ऐसे सिद्ध जीव को उत्साह (सुख) और शोक प्रभावित नही करते हैं। वह स्वय कर्त्ता ईश्वर बन जाता है।

अलंकार—(i) परिकराकुर—राम।
(ii) छेकानुप्रास—एकादसी एकतार।
(iii) रूपक—राम रग।
(iv) उदाहरण—होइ अरोगि · · फिरै।
(v) अनुप्रास—राम रग्ग राचै।

विशेष—(i) गुरु की महिमा का प्रतिपादन है।
(ii) राम की भक्ति का प्रतिपादन है।
(iii) निर्गुण-सगुण के अभेद का प्रतिपादन है।
(iv) 'एकादशी' अद्वैत (निवृत्ति) का एव द्वादसी द्वैतभाव (प्रवृत्ति) का प्रतीक है। कबीर अद्वैत को सुख शान्ति कारक मानते हैं।
(v) धापै। तुलना करें—

जाकी कृपा लवलेप तें मतिमंद तुलसीदास हू।
पायो परम विश्राम राम समान प्रभु नाहीं कहूँ।—गोस्वामी तुलसीदास

(vi) एकादसी इकतार करे—समस्त ११ वृत्तियो को प्रभु मे केन्द्रित कर दे। ग्यारह वृत्तियां हैं—आंख, कान, नाक, त्वचा, हाथ, पाँव, गुदा, लिंग, मुख तथा मन।

(vii) द्वादसी भ्रम—शरीर के १२ प्रमुख अंग हैं—शिर, नेत्र, कर्ण, घ्राण, मुख, हाथ, पाँव, नाक कंठ त्वचा, गुदा, शिश्न।

(viii) ज्यूं तुग······करै—तुलना करें स्थित प्रज्ञ के इन लक्षणों से—

सुख दु:खे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि।
श्रीमद्भगवद्गीता २/३८

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो ।
रघुनाथ-कृपालु कृपा तें सत-सुभाव गहौंगो ।

× × ×

परिहरि देह-जनित चिंता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो ।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अविचल हरि भक्ति लहौंगो ।

विनयपत्रिका, गोस्वामी तुलसीदास

महारामायण मे रम भक्त' सन्तो का स्वभाव इस प्रकार बताया गया है—

शान्त, समान मनसश्च सुशीलयुक्त,
स्तोवक्षमागुण दयामृजु बुद्धि युक्तः ।
विज्ञान ज्ञान विरति परमार्थवेत्ता,
निर्धामकोऽभय मन सच रामभक्त ।

(१८४)

तेरा जन एक आध है कोई ।
काम क्रोध अरु लोभ बिर्वाजत, हरिपद चीन्हैं सोई ।। टेक ।।
राजस तांमस सातिग तीन्यूं, ये सब तेरी माया ।
चौथे पद कौं जे जन चीन्हें, तिनहि परम पद पाया ।।
असतुति निंद्या आसा छांड़ै, तजै मांन अभिमानां ।
लोहा कचन समि करि देखै, ते मूरति भगवानां ।।
च्यंतै तौ माधौ च्यंतामणि, हरिपद रमै उदासा ।
त्रिस्ना अरू अभिमांन रहित है कहै कबीर सो दासा ।

शब्दार्थ—विर्वाजत=रहित । चौथा पद=मोक्ष । चार पुरुषार्थ धर्म अर्थ काम तथा मोक्ष । प्रथम तीन-तीन गुणो द्वारा आबद्ध हैं । मोक्ष सबसे विर्वाजत है । चौथे पद का अर्थ 'सायुज्य' भी लिया जा सकता है । अभिप्रेत वही मोक्ष पद है ।

संदर्भ—कबीरदास भगवद्भक्त के लक्षणो का वर्णण करते हैं ।

भावार्थ—हे प्रभु ! कोई एक-आध व्यक्ति ही तेरा वास्तविक भक्त होता है । जो काम, क्रोध और लोभ से रहित होता है, वही भगवान के स्वरूप को पहिचानता है । रजोगुण, तमोगुण और सतोगुण—ये तीनो ही तेरी माया के स्वरूप हैं । जो व्यक्ति इन तीनो के परे चौथे पद मोक्ष (अथवा तुरीयावस्था) को जानता है वही परमपद का अधिकारी बनता है । जो स्तुति, निंदा एव आशा को छोड देता है, मानापमान का अभिमान नही रखता है तथा जो लोहा और स्वर्ण को समान दृष्टि से देखता है (अर्थात् लोभ के परे हो जाता है) वह स्वय ईश्वर रूप ही होता है । ऐसा व्यक्ति यदि किसी का चिन्तन करता है, तो केवल समस्त चिन्ताओ को मिटाने वाले चिन्तामणि रूप भगवान का ही चिंतन करता है और वह ससार के विषयो के प्रति उदास रह कर भगवान के चरणारविन्दो मे ही अनुरक्त रहता है। कबीर कहते

है इस प्रकार जो व्यक्ति सब प्रकार की इच्छा और अहकार से रहित होकर आचरण करता है, वही सच्चा भगवद् भक्त है।

अलंकार—(i) पदमैत्री— राजस तामस।
(ii) अनुप्रास—परम पद पाया।
(iii) रूपक—माधव चिन्तामणि।
(iv) विरोधाभास— रमै उदासा।

विशेष— इस पद मे पूर्वपद के समान सत, भगवद्भक्त अथवा स्थित प्रज्ञ के लक्षणो का वर्णन कुछ अधिक विस्तार के साथ किया गया है।

पुरुष नपुसक नारि का जीव चराचर कोइ।
सर्व भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ।

(v) तेरा जन एक आध है कोई - तुलना करे—

नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी। कोउ एक होइ धर्म व्रतधारी।
धर्मशील कोटिक महँ कोई। विषय विमुख विराग रत होई।
कोटि विरक्त मध्य श्रुति कहई। सम्यक ग्यान सकृत कोई लहई।
ग्यानवत कोटिक महँ कोऊ। जीवन मुक्त सकृत जग सोऊ।
तिन्ह सहस्र मह सब सुख खानी। दुर्लभ ब्रह्म लीन बिग्यानी।
धर्म सील विरक्त अरु ग्यानी। जीवन मुक्त ब्रह्मपद प्रानी।
सब ते सो दुर्लभ सुरराया। राम भगति रत गत मद माया।

(रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास)

(१८५)

हरि नांम दिन जाइ रे जाकौ,
सोई दिन लेखै लाइ रांम ताकौ॥ टेक॥
हरि नांम मै जन जागै, ताकै गोब्यद साथी आगै॥
दीपक एक अभगा, तामै सुर नर पड़ै पतंगा॥
ऊँच नीच सम सरिया, तायै जन कबीर निसतरिया।

शब्दार्थ—जागै=सजग रहता है। अभंगा=अखण्ड। सरिया=सरियाना या अर्थ व्यवस्थित करना। ठीक तरह से रखना है।

संदर्भ— कबीर राम-नाम की महिमा का गायन करते हैं।

भावार्थ - व्यक्ति का जो दिन भगवान के नाम-स्मरण मे व्यतीत होता है, उसका वही दिन सार्थक हुआ समझो। जो व्यक्ति हरि के नाम के प्रति सजग बना रहता है अर्थात् राम-नाम जिसका आधार है, उसके भगवान साथी हैं और रक्षक हैं। माया रूपी दीपक अबाध गति से जलता है, जिसमे देवता और मनुष्य रूपी पतंगे स्वाभाविक रूप से जलते रहते हैं। भगवान ने ऊँच-नीच सबको समान रूप से व्यवस्थित किया है अथवा भगवान ने ऐसी व्यवस्था की है कि ऊँच-नीच सबको

अपने उद्धार का समान अवसर प्राप्त हो सकता है। यही कारण है कि नीच कुल जुलाहा मे उत्पन्न होने पर भी भगवान के सेवक कबीर का उद्धार हो गया।

अलकार—(1) रूपकातिशयोक्ति—दीपक।

(11) रूपक—सुर नर पतगा।

विशेष—(1) पद का मुख्य भाव यह है कि—

जाति पाँति पूछै ना कोई। हरि को भजै सो हरि को होई।

(11) कबीर अन्यत्र कह चुके हैं—

माया दीपक नर पतग, भ्रमि भ्रमि इवै पडत।

(१८६)

जब थै आतम तत बिचारा।
तब निरबैर भया सबहिन थै, कांम क्रोध गहि डारा।। टेक ।।
व्यापक ब्रह्म सबनि मै एकै, को पडित को जोगी।
रांणां राव कवन सूं कहिये, कवन बैद को रोगी।
इनमै आप आप सबहिन मै, आप आपसू खेलै।।
नांनां भांति घड़े सब भांडे, रूप धरे धरि मेलै।
सोचि बिचारि सबै जग देख्या, निरगुण कोई न बतावै।।
कहै कबीर गुंणी अरु पडित, मिलि लीला जस गावै।

शब्दार्थ—रक=निर्धन।

सन्दर्भ - कबीरदास ब्रह्म की अनिवर्चनीयता का वर्णन करते है।

भावार्थ—जब से मैंने आत्म-तत्त्व का चिन्तन आरम्भ किया है, तब से सबके प्रति मेरा विरोध भाव समाप्त हो गया है अथवा यह कहिए कि मेरे हृदय मे सबके प्रति मैत्री भाव प्रस्फुटित हो गया है, और मैंने काम एव क्रोध को पकड कर निकाल दिया है। विश्व मे व्याप्त ब्रह्म सबमे एक ही है। फिर तात्त्विक दृष्टि से कौन पडित है और कौन योगी है ? किसे राणा कहे, किससे राव कहे, किससे वैद्य कहे और किसको रोगी बताएँ ? ये सब अन्तर ऊपरी और मिथ्या है। इन सबमे वही ब्रह्म तत्त्व है और शेष सब मे भी वही है। वह आत्मा-आत्मा से खेलता है अर्थात् वही खिलाडी है और वही लीला है। ईश्वर ने अनेक जीव रूपी वर्त्तन बनाकर रखे हैं, उन्हे विभिन्न रूप देकर उसने यहाँ रख दिया है। परन्तु इन सबमे एक ही तत्त्व है, केवल आकार मात्र का भेद है। मैंने खूब सोच-विचार कर सम्पूर्ण जगत देख लिया और अनेक से उस परम तत्त्व के बारे मे पूछा है, परन्तु उस अव्यक्त निर्गुण तत्व को ठीक तरह से कोई भी नही बता पाया है। (क्योंकि वह अगम्य एव अनिर्वचनीय है)। कबीर कहते हैं कि ज्ञानी और पडित सब मिलकर उसकी लीला का यशोगान करते हैं।

अलकार—(1) वक्रोक्ति—को पडित ... रोगी।

(11) सम्बन्धातिशयोक्ति—कोई न बतावै।

विशेष – (i) ज्ञानी भक्तों की भांति कबीरदास सिद्धान्तत. ब्रह्म को निर्गुण मानते हैं, परन्तु व्यवहार में उसके सगुण स्वरूप को स्वीकार करते हैं। यथा—

(i) सब विधि अगम विचारैं यातैं सूर सगुन लीला पद गावै। सूरदास

तथा — ज्ञान कहै अज्ञान बिनु, तम बिन कहै प्रकास।
निर्गुन कहै सगुन बिन। सो गुरु तुलसीदास। (तुलसीदास)

(ii) अद्वैतवाद का सबल प्रतिपादन है। निमित्त कारण एव उपादान कारण दोनों ही स्वय ब्रह्म है। लीला भी वही है, लीलाधारी भी वही है।

(iii) 'धर्म रथ' का निरूपण करते हुए गोस्वामी तुलसीदास ने भी लिखा है कि धर्माचरण के फलस्वरूप समस्त विपक्षी भाव समाप्त हो जाता है—

सखा धर्ममय असरथ जाकें। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें।

(iv) जगत के प्रतीयमान भेद मिथ्या हैं।

(१८७)

तू माया रघुनाथ की, खेलण चढ़ी अहेड़ै।
चतुर चिकारे चुणि चुणि मारे, कोई न छोड्या नेड़ै॥ टेक॥
मुनियर पीर डिगंबर मारे, जनत करता जोगी।
जगल महि के जगम मारे, तू र फिरै बलिवंती॥
वेद पढंतां बांह्मण मारा, सेवा करतां स्वामी।
अरथ करतां मिसर पछाड्या, तूं र फिरै मैमंती॥
सापित कै तूं हरता करता, हरि भगतन कै चेरी।
दास कबीर रांम कै सरनैं, ज्यूं लागी त्यूं तोरी॥

शब्दार्थ— अहेड़ै=शिकार। चिकारा=एक विशेष प्रकार का हिरण। डिगंबर=दिगबर, जैन-गुरु। मिसर=मिश्र, कथा वाचक। मैमंती=मद मत्त।

सन्दर्भ—कबीर कहते हैं कि केवल राम भक्ति के द्वारा ही माया से मुक्ति सम्भव है।

भावार्थ—हे रघुनाथजी की माया, तू इस जगत मे सबका शिकार करती फिरती है। तूने चुन-चुन कर श्रेष्ठ हिरण रूपी व्यक्तियो को मारा है और तूने अपने आस-पास किसी को नहीं छोड़ा है। तूने मुनि, (हिंदू चिन्तक), पीर (मुसलमानो के धर्म गुरु) जैनियो के धर्मगुरु तथा योगाभ्यास मे सलग्न योगियो को मार दिया है। तूने जगत मे निवास करने वाले जीवो (बटुक, वैखानस एव सन्यासियो,) को मारा है। तू अत्यन्त बलवान बनी हुई चारो ओर घूमती फिरती है।

तूने वेद पाठी ब्राह्मणों को मारा है, तूने सेवा करते-कराते स्वामियो महात्माओं को नहीं छोड़ा है। शास्त्रों के अर्थ समझाने वाले कथावाचक पंडित भी तुमसे पराजित हो गये हैं। तू अत्यन्त उन्मत्त बनी हुई फिरती है। शाक्त यहाँ तो तू कर्ता-धर्ता बन गई है (क्योंकि शाक्त-धर्म पूर्णत मायामय ही है।) परन्तु भक्तों की तुम दासी हो। कबीर कहते हैं कि भगवद् भक्त तो राम की शरण में रहता है।

तू जैसे ही उस पर अपना फदा डालती है, वैसे ही वह उस फदे को तोड डालता है। अथवा इस पंक्ति का अर्थ इस प्रकार भी हो सकता है। कबीरदास राम की शरण मे है। माया जैसे ही उसको प्रभावित करना चाहती है, वैसे ही राम की कृपा से उसका प्रभाव तुरन्त ही समाप्त हो जाता है।

अलंकार—(i) छेकानुप्रास—चतुर चिकारे।
(ii) पुनरुक्ति प्रकाश—चुणि चुणि।
(iii) रूपकातिशयोक्ति—चिकारे (अपने आप को श्रेष्ठ बनने वाले ज्ञानी)।
(iv) पदमैत्री—करता हरता।
(v) मानवीकरण—माया को सम्बोधन किया गया है।

विशेष—(i) अन्य समस्त साधनो की अपेक्षा भक्ति को श्रेष्ठ बताया गया है।

(ii) शाक्त के प्रति विरोध प्रकट है। कबीर कहते हैं कि शाक्त की बात क्या करें ? उसकी तो तू सर्वस्व ही है। शाक्त तो आग्रह पूर्वक माया मे लिप्त होता है।

(iii) हरि भगतन की चेरी—तुलना कीजिए—

व्यापि रहेउ ससार महुँ माया कटक प्रचंड।
सेनापति कामादि भट दंभ कपट पाखंड।
सो दासी रघुबीर कै समुझे मिथ्या सोपि।
छूट न राम कृपा बिनु नाथ कहउँ पद रोपि।
माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ। नारि वर्ग जानह सब कोऊ।
पुनि रघुबीरहि भगति पियारी। माया खलु नर्तकी बिचारी।
भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया।
तेहि बिलोकि माया सकुचाई। करि न सकइ कछु निज प्रभुताई।
(रामचरित्र मानस, गोस्वामी तुलसीदास)

(१८८)

जग सूं प्रीति न कीजिये, समझि मन मेरा।
स्वाद हेत लपटाइए, को निकसै सूरा ॥ टेक ॥
एक कनक अरु कामनीं, जग मैं दोइ फंदा।
इनपै जौ न बँधावई, ताका मैं बंदा ॥
देह धर इन माहि बास, कहु कैसै छूटै।
सीव भये ते ऊबरे, जीवत ते लूटे ॥
एक एक सूं मिलि रह्या, तिनही सचुपाया।
प्रेम मगन लै लीन मन, सो बहुरि न आया ॥

जहै कबीर निहचल भया, निरभै पद पाया ।
ससा ता दिन का गया, सतगुर समझाया ॥

शब्दार्थ—वदा=दास, सेवक । सीव=शिव, आनन्द तत्व ।

सदर्भ – कबीर कहते है कि ससार मे लिप्त रहने वाले की मुक्ति सम्भव नही है ।

भावार्थ—हे मेरे मन ! तुम समझ लो जगत के प्रति आसक्त नही होना चाहिए । सासारिक विषयो के स्वाद मे लिप्त होने पर जो माया के बन्धन से छूट सके, ऐसा कौन सा शूरवीर है । अर्थात् ऐसा कोई भी शूरवीर नही है । ससार मे माया के दो फदे है—स्वर्ण और नारी । जो इन बन्धनो मे नही बधता है (वही पूज्यनीय है) उसका सेवक (दास) होने को मैं तैयार हूँ । देह धारण करते ही मन का वास इनमे हो जाता है अर्थात् जन्म के साथ ही जीव ससारी बन जाता है । फिर बताओ, वह इनसे क्यो कर छूट सकता है ? केवल माया के बन्धन से बचते है, जो शुद्ध चैतन्य स्वरूप आत्मा मे प्रतिष्ठित होकर शिव रूप हो जाते हैं, और वे ही जीवन का सच्चा आनन्द प्राप्त करते है । जो एक परम तत्व मे तन्मय हो जाते हैं, वे ही सच्चे सुख-शान्ति को प्राप्त करते है । जिनका मन भगवान के प्रेम मे लवलीन रहता है, उनका ससार मे पुनरागमन नही होता है । कबीरदास कहते हैं कि भगवान के प्रेम मे लिप्त व्यक्तियो का मन स्थिर हो जाता है और वे अभय पद को प्राप्त करते हैं । जिस दिन उनको सद्गुरु उपदेश देते है उसी दिन उसके समस्त सशय समाप्त हो जाते हैं । और वे निर्मल बुद्धि को प्राप्त करते है ।

अलकार—(i) वक्रोक्ति—को निकसै सूरा ।
(ii) गूढोक्ति—कहु कैसे छूटै ।
(iii) यमक—एक एक ।
(iv) चपलातिशयोक्ति—ससा—समझाया ।

विशेष—तुलना कीजिए :—

ईश्वर अस जीव अविनासी । चेतन अमल सहज सुखरासी ।
सो माया बस भयउ गोसाईं । बँध्यो कीर मरकट की नाईं ।
जड़ चेतनहि ग्रन्थि परि गई । जदपि मृषा छूटत कठिनई ।
तब ते जीव भयउ ससारी । छूट न ग्रन्थि न होइ सुखारी ।
(गोस्वामी तुलसीदास)

(१८६)

रांम मोहि सतगुर मिलै अनेक कलानिधि, परम तत सुखदाई ।
कांम अगनि तन जरत रही है, हरि रसि छिरकि बुझाई ॥ टेक ॥
दरस परस तै दुरमति नासी, दीन रटनि ल्यौ आई ।
पाषंड भरम कपाट खोलि कै, अनभै कथा सुनाई ॥
यहु संसार गंभीर अधिक जल, को गहि लावै तीरा ।
नाव जिहाज खेवइया साधू, उतरे दास कबीरा ॥

शब्दार्थ— छिटकि=छिडक कर, सिंचित करके। अनभै=अनुभव।

सन्दर्भ—कबीर सतो की महिमा बताते हैं।

भावार्थ—हे भगवान मुझको सद्गुरु मिल गये हैं और उनकी कृपा से मुझे अनेक कलाओ के निधान एव सुखदायक परम तत्व का ज्ञान प्राप्त हो गया है। मेरा शरीर काम की अग्नि मे जल रहा था। सद्गुरु ने भक्ति का रस छिडक कर उसकी तपन को बुझा दिया। उनके दर्शन एव चरण-स्पर्श से मेरी दुर्बुद्धि का नाश हो गया (अर्थात् मेरी बुद्धि ठीक ठिकाने आगई)। अब मै दीनता पूर्वक अर्थात् अहकार से रहित होकर भगवन्नाम स्मरण मे लौ लगाए हुए हूं। सद्गुरु ने मेरे हृदय लगे हुए भ्रम और पाषण के किवाड खोल दिए हैं तथा अपनी अनुभूति जन्य राम की लीला सुनाई है अथवा अभय प्रदान करने के लिए उन्होने मुझको भागवत कथा का श्रवण कराया है। यह ससार रूपी सागर अत्यन्त गहरा है। उस सागर मे डूबते हुए मुझको पकड कर उनके अतिरिक्त किनारे पर और कौन ला सकता था? अर्थात् उस जल मे डूबने से बचाकर मुझे किनारे पर लाने वाला सद्गुरु के अतिरिक्त और कौन हो सकता है? राम-नाम रूपी जहाज एव साधु रूपी केवट के सहारे से ही यह भक्त कबीर भवसागर के पार उत्तर सका है।

अलकार—(1) रूपक—काम अगिनि, हरि रस, पाषड भरम कपाट, ससार जल, नाव जहाज, खेवइया, साधु पदमैत्री-दरस परस।

(111) वक्रोक्ति—को' तीरा।

विशेष—(1) गुरु एव सत्सग की महिमा का वर्णन है। तुलना कीजिए—

बिनु सत्संग विवेक न होई। राम कृपा बिन सुलभ कि सोई।

—गोस्वामी तुलसीदास

(१९०)

दिन दहु चहु के कारणै, जैसै सैबल फूले।
झूठी सूं प्रीति लगाइ करि, साचे कू भूले॥ टेक॥
जो रस गा सो परहर्या, बिड़राता प्यारे।
आसति कहूं न देखिहूं बिन नांव तुम्हारे॥
सांची सगाई रांम की, सुनि आतम मेरे।
नरकि पड़े नर बापुड़े, गाहक जम तेरे॥
हस उड़्या चित चालिया, सगपन कछू नांहीं।
माटीं सूं माटी मेलि करि, पीछै अनखांही॥
कहै कबीर जग अँधला, कोई जन सारा।
जिनि हरि मरम न जांणिया, तिनि किया पसारा॥

शब्दार्थ – परहरया=छोड दिया। बिडराता=इधर-उधर करना। बापडे =बेचारे। चालिया=हट गया। पसारा=व्यर्थ का फैलावा (प्रपच)।

सन्दर्भ - कबीर ससार की निस्सारता की ओर सकेत करते हैं।

भावार्थ—हे जीव, तू दस-पाँच दिन के वैभव के कारण सेमल के फूल की तरह व्यर्थ ही फूल रहा है। तू सच्चे स्वामी भगवान को भूल गया है और मिथ्या ससार के प्रति आसक्त हो रहा है। जो वास्तविक आनन्द था, उसको तो तूने इधर-उधर फैलाकर छोड दिया। हे भगवन मैं (प्रण करता हूँ कि) आपके नाम के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु को आसक्ति का पात्र नही समझूँगा। हे मेरे प्यारे आत्मा (मन भी हो सकता है। तू ध्यान से सुन ले। केवल राम का सम्बन्ध ही सच्चा सम्बन्ध है। जिन अन्य व्यक्तियो से तू सम्बन्ध मानता है, उनका ग्राहक तो केवल भ्रम है और वे सबके सब नरक मे जायेगे। जब हस रूपी प्राण तुझको छोड देगे, तब तेरी ओर से सबका मन हट जाएगा और किसी के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध नही रह जाएगा। तेरे वे तथाकथित सम्बन्धी तेरे शरीर की मिट्टी मे मिला कर पीछे से तेरे प्रति अवज्ञा प्रकट करेंगे। कबीर कहते हैं कि सासारिक सम्बन्धो मे फसे हुए सब लोग अधे हो रहे हैं और वास्तविकता को नही देखते हैं। कोई व्यक्ति ही श्रेष्ठ है जो सांसारिक सम्बन्धो के मिथ्यात्व को समझता है। जो व्यक्ति परम तत्व (भगवान) के मर्म को नही जानते हैं, वे व्यर्थ ही इन प्रपचो मे फँसे रहते हैं अर्थात् भगवान के स्वरूप को न जानने के कारण ही लोगो ने जगत् के सम्बन्धों का यह पसारा बना रखा है।

अलकार—(i) उपमा—जैसे सैवल।

(ii) पदमैत्री—यहुँ चहुँ जिनि तिनि।

(iii) सभग पद यमक—नरक नर, माटी माटी

विशेष—(i) जैसे सैवल फूलै—तुलना करें—

सेमर सुअना सेइया यह ढेंढ़ी की आस।
ढेंड़ी फूटि चटाक दै, सुअना चला निरास। (कबीर)

(ii) झूँठी भूले—कबीर ने अन्यत्र भी कहा है—

सांची प्रीति विखै—माया सूँ, हरि भगतनि सूँ हांसी।

(iii) माटी सू माटी मेलि—हिन्दू जलाकर राख कर देते हैं। मुसलमान जमीन मे गाड देते हैं। दोनों स्थितियो मे मिट्टी का यह पुतला मिट्टी मे ही मिल जाता है।

(iv) 'निर्वेद' सचारी भाव की व्यजना है। कबीर ने इस प्रकार का उद्बोधन प्राय व्यक्त किया है कि—"फूला फूला फिरै जगत मे रे मन कैसा नाता रे।" तथा—

फिरहु का फूले फूले फूले।
जो दस मास उरध मुख झूले सो दिन काहे भूले।
×   ×   ×   ×
जरि गौं जौ घर नारि सग है आगे सग सहेला।
मृतक थान लौं दियो खटोला फिरि पुन हस अकेला।

(१६१)

माधौ मै ऐसा अपराधी,
तेरी भगति होत नहीं साधी ।। टेक ।।
कारनि कवन आइ जग जनम्यां, जनमि कवन सचुपाया ।
भौ जल तिरण चरण च्यतामंणि, ता चित घड़ी न लाया ।।
पर निद्या पर धन पर दारा, पर अपवादैं सूरा ।
तार्थै आवागवन होइ फुनि फुनि, ता संग न चूरा ।।
कांम क्रोध माया मद मंछर, ए सतति हम मांहीं ।
दया धरम ग्यांन गुर सेवा, ए प्रभू सुपनै नांहीं ।।
तुम्ह कृपाल दयाल दमोदर, भगत बछल भौ हारी ।
कहै कबीर धीर मति राखहु, सासति करौ हमारी ।।

शब्दार्थ—सच=सुख । चिन्तामणि=वह पत्थर विशेष जो समस्त चिन्ताओ को दूर कर देता है । चूरा=छूरा । सासति=शास्ति । सग=आसक्ति । सतति=सदैव । मत्सर=डाह, जलन ।

सन्दर्भ – कबीर दीनता पूर्वक अपने उद्धार की याचना करते हैं ।

भावार्थ—हे प्रभु ! मैं ऐसा अपराधी हूँ कि मुझसे न तो आपकी भक्ति हो सकी और न किसी प्रकार की साधना ही हो सकी । पता नही, किन पापकर्मों के परिणाम-स्वरूप मेरा जन्म इस ससार मे हुआ । मैंने जन्म लेकर कौन सा सुख पाया। (तात्पर्य कोई नही) । मैंने ससार सागर से पार उतरने वाले भगवान के चरण रूपी चिन्तामणि मे घडी भर भी ध्यान नही लगाया (अन्यथा मेरी समस्त चिन्ताएँ दूर हो जातीं) । दूसरो की निन्दा करने मे, दूसरो के धन पर नजर लगाने मे, पराई स्त्रियो को ताकने मे तथा दूसरो पर लाच्छन लगाने मे मैं शूरवीर रहा हूँ—अर्थात् इन कर्मों को पूरे उत्साह के साथ करता रहा हूँ । इन्ही कर्मों के फलस्वरूप मेरा बार-बार आवागमन होता है, परन्तु इतने पर भी मैंने इन बुरे कामो के प्रति आसक्ति का त्याग नही किया है । काम, क्रोध, माया (अपने पराए का भाव), मोह, मद एव मत्सर—ये अवगुण मेरे भीतर स्थायी रूप से निवास करते है । इसके विपरीत दया, धर्म (सदाचरण), त्याग, गुरुसेवा आदि ये सब गुण तो मेरे पास स्वप्न मे भी नही फटक पाते हैं । हे दामोदर, तुम्ह कृपालु, दयालु, भक्तो के प्रिय एव ससार के विषयो से उत्पन्न दोषो को दूर करने वाले हो । कबीर कहते हैं कि आप मेरी बुद्धि को अपनी भक्ति मे स्थिर कर दें तथा मेरा सुधार करके मेरा उद्धार कर दें ।

अलंकार—(i) अनुप्रास—कारनि, कवन, कवन, जग जनम्या जनमि । चरण चिन्तामणि, चित ।
(ii) वक्रोक्ति—कवन सचु पाया ।
(iii) रूपक—भौजल, चरण चिन्तामणि, भौहारी ।
(iv) पुनरुक्ति प्रकाश—फुनि फुनि ।

(vi) उल्लेख—कृपालु, दयालु, दामोदर भगत बदन ।

विशेष—(i) 'दैन्य' की मार्मिक व्यंजना है । 'दैन्य' भक्तो का बहुत बडा वल है ।

(ii) 'दामोदर' जैसे सगुण सम्बोधन का प्रयोग सगुण-निर्गुण के अभेद की ओर सकेत करता है । इससे कबीर सगुण भक्त कवियो की पंक्ति मे बैठे हुए दिखाई देने लगते हैं ।

(१६२)

रांम राइ कासनि करौं पुकारा,
ऐसे तुम्ह साहिब जाननिहारा ।। टेक ।।
इद्री सबल निबल मै माधौ, बहुत करै बरियाई ।
लै धरि जांहि तहाँ दुख पइये, बुधि बल कछू न बसाई ।।
मै बपरौ का अलप मूढ मति, कहा भयो जे लूटे ।
मुनि जन सती सिध अरु साधिक, तेऊ न आयै छूटे ।।
जोगी जती तपी सन्यासी, अह निसि खोजै काया ।
में मेरी करि बहुत बिगूते, विषै बाघ जग खाया ।।
ऐकत छांड़ि जांहि घर घरनीं, तिन भी बहुत उपाया ।
कहै कबीर कछू समझि न परई, विषम तुम्हारी माया ।।

शब्दार्थ—वरियाई=हठधर्मिता, हठधर्मी, वरजोरी, जवरदस्ती । वापुरौ=वेचारा विगूते=नष्ट हो गये । विषम=कठिन, जो आसानी से समझ मे न आ सके । ऐकत=अकेली । विषै=विषय ।

संदर्भ- कबीर दैन्य की अभिव्यक्ति करते हैं ।

भावार्थ—कबीरदास कहते हैं कि हे राजा राम ! जब आप जैसा मेरे बारे मे सब कुछ जानने वाला है, तब मैं अन्य किसको अपनी पुकार सुनाऊँ, किसके सम्मुख अपनी व्यथा निवेदन करूँ ? हे माधव ! मेरी इन्द्रियाँ बहुत बलवान हैं, मैं (मेरा मन) निर्बल है । ये इन्द्रियाँ मेरे साथ बहुत जबरदस्ती करती है । ये इन्द्रियाँ मुझको खींचकर जहाँ कही भी ले जाती है, वहाँ मुझको केवल दुख ही मिलता है । मै सब कुछ जानता - समझता हूँ, परन्तु इनके आगे मेरे बुद्धि-विवेक थकित हो जाते हैं और मै विवश होकर इनके विषयो की ओर खिचा हुआ चला जाता हूँ । इन इन्द्रियो के फंदे मे बडे-बडे मुनि यती, सिद्ध, साधक आदि भी नही बच पाए तब मुझ अल्पज्ञानी, निर्बुद्धि, तुच्छ व्यक्ति की चलाई ही क्या है ? यदि मैं इनके द्वारा लूटा जाता हूँ तो इसमे मेरा क्या दोष है ? योगी, यती, तपस्वी और सन्यास धारण करने वाले दिन-रात अपने शरीरस्थ ब्रह्म की खोज मे लगे रहते हैं अथवा शरीर रक्षा का उपाय करते रहते है । मैं-मेरा के चक्कर में संसार मे न मालूम कितने लोग बर्बाद हो गये ! विषय रूपी शेर ने समस्त संसार को ही चट कर जाता है । जो घर और घरवाली (पत्नी) को छोड कर एकान्त मे चले जाते हैं, उनको

भी यह माया अनेक प्रकार से घेरती है। कबीरदास कहते हैं कि हे प्रभु तुम्हारी माया की लीला बडी टेढी है। वह कुछ भी समझ मे नही आती है।

अलंकार—(i) पदमैत्री—सबल—निवल।

(ii) छेकानुप्रास—बुधि बल, घर घरनी।

(iii) सम्बन्धातिशयोक्ति—कछू न बसाई, तेऊ न आए छूटे।

(iv) वृत्यानुप्रास—सती, सिद्ध, साधक, बहुत विगूते, विषय बाघ।

(vi) रूपक—विषय बाघ।

विशेष—(१) कबीरदास माया एव उसके सहयोगियो—इन्द्रियो के सम्मुख अपनी निर्बलता स्वीकार करते हैं।

(२) कबीर भक्तों की भाँति अपने उद्धार का उपाय केवल प्रभु की कृपा मे देखते हैं—"जाऊँ कहाँ तजि चरण तिहारे," इत्यादि भाव से प्रभु के दरबार मे ही पडे रहना चाहते हैं। राम का गुलाम कहलाकर भी यदि उद्धार न हुआ, तो इसमे भक्त का कुछ भी न बिगडेगा। इसमे भक्त की बदनामी होगी।

यह बड मास दास तुलसी कहुँ, नामहुँ पाप न जारो।

(३) यह पद वस्तुत कबीर की विनयोक्ति है। यह विनय का है। कबीर यदि प्रभु की माया के रहस्य को नही जान सके हैं, तो इसका कारण माया की जटिलता नही है, इसमे उनका कोई दोप नही है। अत. उनका अपराध क्षम्य है।

(१९३)

माधौ चले बुनांवन माहा,

जग जीते जाइ जुलाहा ॥ टेक ॥

नव गज दस गज गज उगनींसा, पुरिया एक तनाई ।

सात सूत दे गंड बहतरि, पाट लगी अधिकाई ॥

तुलह न तोली गज गजह न मापी, पहजन सेर अढ़ाई ।

अढाई मै जे पाव घटै तो, करकस करै बजहाई ॥

दिन की बैठि खसम सूं कीजै, अरज लगी तहां ही ।

भागी पुरिया घर ही छाडीं, चले जुलाह रिसाई ॥

छोछी नलीं कांमि नही आवै, लहटि रही उरझाई ।

छांड़ि पसारा रांम कहि बौरे, कहै कबीर समझाई ॥

शब्दार्थ—माहा=माया। नौ=नव द्वार। दस गज=दस इन्द्रियाँ। उगनीसा=उन्नीसा। पुरिया=पुरी, साडी। सात सूत=सप्त धातु। गड वहत्तर=वहत्तर गण्डे=७२×५=३६०। पाट=पाटरपाण, कलफ। पहजन=पवज्जण, स्वीकार करने को। करकस=कर्कशा, झगडालू स्त्री। वजहाई=वजाघात। रिसाई=रुष्ट होकर। छोछी नली=खाली नली। पसारा=प्रपच।

संदर्भ—कबीर दास संसार की निरर्थकता बताकर भगन्नाम-स्मरण पर बल देते हैं।

भावार्थ—हे माधव ! माया मुझ से वस्त्र बुनाने को चली अर्थात् उसने मुझ को जीविका के धन्धे मे लगा दिया। परिणाम स्वरूप यह संसार जुलाहे कबीर को जीतता जा रहा है अर्थात् मैं माया के वशीभूत होता जा रहा हूँ। माया ने नवद्वार रूपी नौ गज तथा दस इन्द्रियाँ रूप दस गज अर्थात् कुल उन्नीस गज सूत निकालकर इस शरीर रूपी साडी तैय्यार की। इस शरीर के निर्माण मे सप्त-धातुएँ रूपी सूत के ३६० नाडियाँ रूपी फेरे (गाँठें) दिए। इसके ऊपर वासना रूपी गहरी चमकवाली कलफ लगाई। इसको न कोई तौलने वाला है और न नापने वाला गजी इसको गज से नाप सका है। परन्तु है यह पक्की ढाई सेरी। इसके इन ढाई सेरो मे यदि पाव भर भी जरा सी भी कमी आती है, तो यह दुष्टा नारी संघर्ष करने लगती है। जाग्रतावस्था मे यह शरीर अपने स्वामी जीव के साथ बैठकी करता है और अपनी इच्छाओं की आवश्यकताएँ उससे निवेदित करके उन्हे पूर्ण करने के लिए विवश करता है। जब यह शरीर रूपी साडी संसार-रूपी घर छोड कर चली जाती है, तब जीव-रूपी जुलाहा भी इस शरीर से रुष्ट होकर चला जाता है। और ऐसा क्यो न न हो ? मृत शरीर रूपी खाली सूत की नली अब जुलाहे के किस काम की रह जाती है। वह नली सूत मे (अपने निर्माणकारी तत्त्वो) मे उलझी हुई पडी रहती है अर्थात् पचतत्त्वो के विषय-भोग के लिए अनुपयोगी निर्जीव शरीर उलझे हुए सूत की भाँति पड़ा रहता है। कबीर दास समझाकर कहते हैं कि हे जीव ! तू इस प्रपच को छोड और हे पागल, तू राम नाम का स्मरण कर।

अलंकार—(i) रूपकातिशयोक्ति—सम्पूर्ण पद।
(ii) वृत्यानुप्रास—जग जीतै जाइ जुलाहा, गज की आवृत्ति,
(iii) सबधातिशयोक्ति—तुलह—मापी।

विशेष—(i) 'निर्वेद' संचारी भाव की मार्मिक व्यजना है।

(ii) नौ = नवद्वार।

(iii) दस गज—पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (श्रवण, त्वचा, नेत्र, नासिका और रसना) तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ—हाथ, पैर, मुख, गुदा और उपस्थ।

(iv) उन्नीस—टिप्पणी संख्या (ii) तथा (iii) के योग करने से १६ आ जाते हैं।

(v) तागा—सप्त धातु—रस, रक्त, मांस, वसा, मज्जा, अस्थि तथा शुक्र।

(vi) विचारदास ने भी इसी प्रकार के भाव व्यक्त किए हैं, परन्तु उनके पदों में प्रतीकार्थ भिन्न हैं। यथा—

गज = वाणी.

नौ गज = नौ व्याकरण।

उन्नीस गज = अट्ठारह पुराण तथा महाभारत। तान = जाग्रत, [illegible]

बीज जाग्रत, स्वप्न जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति। अथवा—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, अहंकार तथा महत्व।

(VII) माहा— डा० माताप्रसाद गुप्त ने लिखा है कि 'माया' के मानवीकरण के कारण उसके नाम की 'या' की ध्वनि 'हा' में परिवर्तित होगई है।

(VIII) माधौ ' जुलाहा। कबीर ने कई पदो मे ससार को जीतने की बात कही है। उसके अनुसार इस पक्ति का अर्थ इस प्रकार होगा कि माया ने मुझको जीविका मे फसाना चाहा, परन्तु मैं उसमे लिप्त नही हुआ और इस प्रकार जुलाहा कबीर ने इस ससार को जीत लिया है।

(IX) इस पद की भाँति कई पदो मे कबीरदास ने जुलाहागीरी के प्रतीको का प्रयोग किया है। इससे स्पष्ट है कि कबीरदास के यहाँ जुलाहे का काम होता था।

(१९४)

बाजै जंत्र बजावै गुनीं,
राम ठांम बिन भूली दुनी ॥ टेक ॥
रजगुन सतगुन तमगुन तीन, पच तत ले साज्या बीन ।
तीनि लोक पूरा पेखनां, नांच नचावै एकै जनां ॥
कहै कबीर संसा करि दूरि, त्रिभवन नाथ रह्या भरपूरि ।

शब्दार्थ—प्रेक्षण=खेल। भरपूरि=व्याप्त। पेखना=दृश्यमान।

सन्दर्भ—कबीरदास सर्वव्यापी परमात्मा जगत का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—यह ससार-रूपी यन्त्र वजता है, और परमात्मा रूपी गुणी कलाकार उसको बजाता है। राम-नाम के बिना यह दुनिया उसके सगीत मे भूली हुई है अर्थात् उसके प्रपच मे फँसी हुई है। तीन गुणो (रजोगुण सतोगुण और तमोगुण) तथा पच महाभूतो (पृथ्वी, जल तेज वायु आकाश) को लेकर इस जगत रूपी वीणा का निर्माण किया है। तीनो लोको तथा इस समस्त दृश्यमान जगत को वही एक सूत्रधार नाच नचा रहा है। कबीरदास कहते हैं कि इस अविद्या को दूर करो अर्थात् यह बात भूल जाओ कि यह सहार विषय-वासनाओ द्वारा निर्मित है अथवा विषय-वासनाएँ तुम्हे तृप्ति कर सकती हैं। वास्तविक तत्त्व तो वह तीनो लोको का स्वामी है जो सर्वत्र व्याप्त हो रहा है।

अलकार—(1) रूपकातिशयोक्ति—जत्र, गुनी, वीन।

विशेष—तीन लोक—जना। तुलना करें—

जग पेखन तुम्ह देखन हारे। विधि हरि सभु नचावन बारे।
सोउ न जानहिं मर्म तुम्हारा। और तुम्हहिं को जानन हारा।

(१९५)

जंत्री जंत्र अनूपम बाजै,
ताका सबद गगन मैं गाजै ॥ टेक ॥

सुर की नालि सुरति का तूंबा, सतगुर साज बनाया ।
सुर नर गण गंध्रप ब्रह्मादिक, गुर बिन तिनहूँ न पाया ॥
जिभ्या तांति नासिका करही, माया का मैण लगाया ।
गमां बतीस मोरणां पांचौ, नीका साज बनाया ॥
जंत्री जत्र तजै नहीं बाजै, तब बाजै जब बावै ।
कहै कबीर सोई जन साचा, जंत्री सू प्रीति लगावै ॥

शब्दार्थ— जत्री=वादक, परमात्मा। जत्र = यन्त्र, जगत । गगन=सहस्रार। गध्रब=गन्धर्व मैण=मोम । गमा=गमक पैदा करने वाले । मोरणा = तारों को कसने वाली खूंटियाँ । बावै=बजाता है।

संदर्भ—कबीर भगवद्भक्ति का प्रतिपादन करते हैं ।

भावार्थ—परमात्मा रूपी वादक इस जगत रूपी बाजे को अनोखे ढग से बजाता है। इस वाद्य से उत्पन्न शब्द सहस्रार मे अनहदनाद के रूप मे सुनाई देता है।

अपने शरीर के भीतर इस शब्द को प्रकट करने का उपाय बताते हुए कबीर कहते हैं कि यह शरीर ही इस शब्द को प्रकट करने की वीणा है जिसमे श्वास (प्राणवायु) रूपी नली है और सुरति रूपी तुम्बा लगता है। अनहद नाद उत्पन्न करने का यह बाजा गुरु के निर्देशानुसार ही तैयार होता है । देवता, मनुष्य, गधर्व, ब्रह्मा-आदिक कोई भी गुरु की सहायता के बिना इसको तैय्यार नही कर सके हैं। इस वीणा मे जीभ रूपी तात है जिससे रामनाम का शब्द उत्पन्न होता है तथा नासिका ही करहीं (यत्र का अवयव विशेष-एक प्रकार की खूंटी) है और इसमे माया-रूपी मोम लगता है। बत्तीस दात ही गमक पैदा करने वाले गामा है तथा पाँचो ज्ञानेन्द्रियाँ ही तारो को कसने वाली खूटियाँ हैं। इस प्रकार यह शरीर रूपी बाजा बहुत ही सुन्दर बना हुआ है। जब चैतन्य रूपी वादक इस बाजे को छोड देता है, तब यह बाजा नही बजता है। जब वह इसको अपना लेता है, तब यह बजने लगता है। कबीर दास कहते हैं कि वही सच्चा भक्त है जो इस यन्त्र के वाहक अर्थात् परमात्मा मे प्रेम करता है।

अलंकार—(1) साग रूपक—पूरे पद मे ।

विशेष—(i) कायायोग और भक्ति का सुन्दर समन्वय है ।

(ii) कबीर का भक्त रूप स्पष्ट है ।

(iii) गुरु की महिमा द्रष्टव्य है —तुलना करें—

गुरु बिनु होय कि ज्ञान, ज्ञान कि होय विराग बिनु
गावहिं वेद पुरान, भव कि तरिय हरि भगत बिनु ॥

—गोस्वामी तुलसीदास

(iv) अनहद नाद— देखें टिप्पणी पद सं० १५७ ।

(v) सुरति— देखें टिप्पणी पद सं० १६२ ।

(१९६)

अवधू नादै व्यद गगन गाजै, सबद अनाहद बोलै ।
अंतरि गति नही देखै नेड़ा, ढूंढ़त बन बन डोलै ।। टेक ।।
सालिगरांम तजौं सिव पूजौ, सिर ब्रह्मा का काटौं ।
सायर फोडि नीर मुकलांऊँ, कुँवा सिला दे पाटौं ।।
चंद सूर दोइ तूबा करिहूँ, चित चेतनि की डांडी ।
सुषमन तती बाजण लागी, इहि बिधि त्रिष्णां षांडी ।।
परम तत आधारी मेरे, सिव नगरी घर मेरा ।
कालहि षंडूं मीच बिहंडूं, बहुरि न करिहूँ फेरा ।।
जपौ न जाप हतौं नहीं गूगल, पुस्तक ले न प्रढ़ांऊं ।
कहै कबीर परंम पद पाया, नहीं आंऊं नहीं जाऊं ।।

शब्दार्थ—व्यद=विन्दु, शरीर । नादै=शब्द होता है । नेडा=निकट, पास । विखडित=छोटे-छोटे टुकडे करना । हुनता=हविष्य के रूप मे अग्नि मे डालना । नेडॆ=पास । सायर=तालाब । कुँवा=सहसार ।

संदर्भ—कबीर कायायोग द्वारा मोक्ष प्राप्त करने की बात कहते हैं ।

भावार्थ– हे अवधूत (नाथ पथी सिद्ध योगी) । इस शरीर रूपी आकाश मे शब्द गरज रहा है, और इस प्रकार अनहद नाद की ध्वनि हो रही है । परन्तु जो अन्तर्मुखी नही है अर्थात् जो पास मे ही होने वाले शब्द को अपने भीतर नही देखते हैं, वे अज्ञान बना उसको ढूँढते हुए वन-वन मारे फिरते हैं । मैं वाह्याचार के प्रतीक शालिग्राम को त्याग करके परम तत्त्व के प्रतीक शिवजी का ध्यान करता हूँ । मेरी दृष्टि मैं ब्रह्मा का भी सिर कट गया है, अर्थात् ब्रह्मा का भी अस्तित्व मिट गया है । मैं मूलाधार-चक्र के सीमित सागर की सीमाओ को तोडकर उसके आनन्द रूप जल को विषयवासनाओ से मुक्त कर दूँगा और सहस्रार को खेचरी मुद्रा रूपी शिला से ढक दूँगा, जिससे उससे निस्सृत अमृत रूपी जल व्यर्थ न बह जाए। अनहद नाद सुनने के लिए चन्द्र-सूर्य के दो तूम्बे तथा चित्त मे प्रतिविम्बित चेतन को उस वीणा की डण्डी बनाऊँगा । इस प्रकार सुषुम्ना की बीणा बजने लगेगी और उस वीणा से प्रकट अनहद नाद द्वारा मैं तृष्णा को नष्ट कर दूँगा । वह परमतत्त्व ब्रह्म ही मेरा सहारा है और शिव की नगरी मे मेरा घर है । अब मैं काल को नष्ट (टुकँडे-टुकडे) कर दूँगा और मृत्यु को पराजित (सूक्ष्म टुकडो मे खण्डित) कर दूँगा । मैं न जप करता हूँ, न गुगाल आदि के द्वारा हवन ही करता हूँ और न वेद-शास्त्रो का पठन-पाठन ही करता हूँ । कबीर कहते है कि मुझको परमपद (मोक्ष) की प्राप्ति हो गई है और आवागमन से मेरा छुटकारा होगया है ।

अलंकार—(i) रूपक—व्यद गगन, सुषमन तती, चद सूर तूंवा, चित चेतनि की डाडी ।

(ii) पुनरुक्ति प्रकाश—बन वन,

(iii) छेकानुप्रास—गगन गाजै, चित चेतन ।

(v) पदमैत्री—खड्ग बिहड्ग , आऊ जाऊँ ।

विशेष—(i) प्रतीको का प्रयोग है ।

(ii) कायायोग के साधनो से आध्यात्मिक आनन्द की प्राप्ति तथा उन प्रतीको के माध्यम से आध्यात्मिक साधना का वर्णन है ।

(iii) अनहद नाद— देखें टिप्पणी पद संख्या १५७ ।

(iv) शून्य— देखें टिप्पणी पद संख्या १६४ ।

(v) नाद विंदु— देखे टिप्पणी पद संख्या १८ ।

(vi) वाह्योपचारो का विरोध है ।

(vii) सालिगराम" " काटौं – कहना यह है कि कबीर शालिगराम की पूजा छोडने से कबीर का तात्पर्य यह है कि वह सीमित तत्त्व की औपचारिक उपासना का त्याग कर देंगे और ब्रह्मादिक जो माया जनित देव हैं, उनका अस्तित्व ही मिटा देंगे ।

(viii) सायर फोडि " ""पाटौ—मूलाधार चक्र के जल का शून्य-शिखर के सरोवर-जल से सम्मिलन करूँगा अर्थात् विषयानंद को साधनाजन्य आनद एवं आध्यात्मिक आह्लाद मे समाहित कर दूँगा । गगन कूप की बूंदो को टपक-टपक कर चण्डाग्नि मे भस्म नही होने दूँगा अर्थात् उसकी शक्ति को विषय-वासनाओ मे नष्ट नही होने दूँगा । उससे आध्यात्मिक आनन्द प्राप्त करता रहूँगा ।

(viii) बन बन डोलै । तुलना करें—

कस्तूरी कुण्डल बसै मृग ढूँढै बन माहि ।
ऐसे घट घट राम हैं दुनियां देखे नांहि । (कबीरदास)

(१६७)

बाबा पेड़ छाडि सब डालीं लागे, मूंढे जंत्र अभागे ।
सोइ सोइ सब रैंणि बिहांणी, भोर भयौ तब जागे ।। टेक ।।
देवलि जांऊ तौ देवी देखौं, तीरथि जांऊ त पाणीं ।
ओछी बुधि अगोचर वांणीं, नहीं परम गति जांणी ।।
साध पुकारैं समझत नांहीं, आंन जन्म के सूते ।
बांधे ज्यूं अरहट की टोडरि, आवत जात बिगूते ।।
गुर बिन इहि जग कौंन भरोसा, काकै संगि ह्वै रहिये ।
गनिका कै घरि बेटा जाया, पिता नांव किस कहिये ।।
कहै कबीर यहु चित्र बिरोध्या, बूझी अंमृत वांणी ।
खोजत खोजत सतगुर पाया, रहि गई आंवण जांणीं ।।

शब्दार्थ—पेड़=मूल वस्तु । परमतत्त्व, ब्रह्म । डाली=शाखाएँ=अन्य देवता अर्थात् व्यक्त रूप । मूंढे=मूर्ख । जंत्र=शरीर, दृश्यमान जगत । रैंणि=रात । बिहांणी=समाप्त की । देवलि=देवालय । ओछी=तुच्छ । सूते=सोए हुए । अरहट=

रहट। टीडरि= घटिका, बर्तन । बिगूते=बर्बाद कर दिया। गनिका=वेश्या। चित्र= दृश्यमान जगत। विरोध्या=विरोध किया। रहि गई= यही पडी रह गई अर्थात् उससे छुटकारा हो गया।

सन्दर्भ—कबीर का कहना है कि दृश्यमान जगत से विमुख होकर ही परम पद की प्राप्ति होती है।

भावार्थ— रे बाबा ! यह ससार पेड को छोडकर डालियो मे उलझा हुआ है अर्थात् इस दुनियाँ के लोग जगत के मूलाधार ब्रह्म का ध्यान न करके बाह्योपचारो मे फसे हुए हैं। ये अभागे एव मूर्ख लोग शरीर के प्रति आसक्त होकर रह गए हैं। इन्होने सो-सो कर (अज्ञान मे) सम्पूर्ण जीवन-रूपी रात्रि व्यतीत कर दी और अब अन्तिम समय मे इन्हे कुछ विवेक हुआ है। तब ये जागे है—होश मे आए हैं। (अब इस अल्प समय मे हो ही क्या सकता है ? बाह्योपचारो की निरर्थकता की ओर सकेत करते हुए कबीरदास कहते है कि मैं मदिर मे जाता हूँ) तो वहाँ केवल देवी की मूर्ति दिखाई देती है (ज्ञान की बात कुछ नही मिलती)। और यदि तीर्थों मे जाता हूँ, तो वहाँ केवल पानी मे स्नान करने की चर्चा होती है—वहाँ भी ज्ञानार्जन की कोई बात नही दिखाई देती है। जीव अपनी छोटी एव सकुचित बुद्धि तथा असमर्थ वाणी द्वारा उस परमतत्त्व को न पहचान पाता है और न उसका वर्णन ही कर पाता है। सिद्धि को प्राप्त साधुजन पुकार-पुकार कर उस परम तत्त्व की चर्चा करते हैं, परन्तु मद बुद्धि जीवो की समझ मे कुछ नही आता है। ये लोग तो कई जन्मो से इसी प्रकार अज्ञानान्धकार मे सोते हुए चले आ रहे है। ये तो अज्ञान जन्य आवागमन रूपी चक्र से रहट के पात्रो की भाँति बधे हुए हैं, और इन्होने बार बार जन्म लेकर तथा बार-बार मृत्यु का आलिंगन करके अपने जीवन को नष्ट कर लिया है। गुरु के अतिरिक्त ससार मे और किसकी बात का विश्वास किया जाए ! और किसके साथ रहा जाय ? अनेक मतवादो मे पडे हुए व्यक्तियो की सच्ची आस्था किसी के प्रति नही हो पाती है। ठीक ही है, वेश्या के यहाँ जन्म लेने वाला पुत्र किसको अपना पिता कहेगा ? कबीर कहते हैं कि मैंने इस जगत का विरोध किया अर्थात् मैं इस ससार के प्रति आसक्त नही हुआ। इससे मैं सद्गुरु की अमृतमयी वाणी को समझ सका हूँ। खोजते-खोजते अन्त मे मैंने सतगुरु को प्राप्त कर लिया और आवागमन यही पडा रह गया। अर्थात् जन्म मृत्यु के चक्र से मेरी मुक्ति हो गई अर्थात् मुझको परम पद की प्राप्ति हो गई।

अलंकार—(i) लोकोक्ति—पेड छाडि डाली लागै।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—पेड, डाली, जत्र।
(iii) पुनरुक्ति प्रकाश— सोइ सोइ। खोजत-खोजत।
(iv) विशेषोक्ति की व्यजना—साधु · समुझत नाही।
(v) उदाहरण—बाधे ज्यू टीडरिया।
(vi) वक्रोक्ति—गुरु बिन · रहिये।

(viii) निदर्शना—गनिका—कहिए।

विशेष—(i) वाह्योपचार एव मतवाद का विरोध अभिव्यक्त है। तुलना करे —

श्रुति सम्मत हरि भक्ति-पथ संजुत विरति विवेक।
ते परिहर्रांहि विमोह बस कल्पहिं पंथ अनेक।
(गोस्वामी तुलसीदास)

(ii) गुरु की महिमा का प्रतिपादन है।

(iii) मोइ सोइ‥ जागे। तुलना कीजिए—

रात गंवाई सोइ कर दिवस गंवायो खाय।
हीरा जनम अमोल का कौड़ी बदले जाय। (कबीरदास)

मोहि मूढ मन बहुत विगोयो।

× × × ×

डासत ही गई बीति निसा सब, कबहुँ न नाथ नींद भरि सोयो।
(गोस्वामी तुलसीदास)

(iv) खोजत ‥‥जोणी। तुलना कीजिए—

सन्मुख होहि जीव मोहि जबही। जन्म कोटि अध नासहिं तबहीं।
(गोस्वामी तुलसीदास)

(१९८)

भूली मालिनी,
हे गोव्यद जागतौ जगदेव, तूं करै किसकी सेव ॥ टेक ॥
भूली मालनि पाती तोड़ै, पाती पाती जीव।
जा मूरति कौं पाती तोड़ै, सो मूरति नर जीव ॥
टांचणहारै टांचिया, दै छाती ऊपरि पाव।
जे तूं मूरति सकल है, तौ घड़णहारे कौं खाव ॥
लाडू लावण लापसी, पूजा चढ़ै अपार।
पूजि पुजारा ले गया, दे मूरति कै मुहि छार ॥
पाती ब्रह्मा पुहपे विष्णु, फूल फल महादेव।
तीनि देवौं एक मूरति, करै किसकी सेव ॥
एक न भूला दोइ न भूला, भूला सब ससारा।
एक न भूला दास कबीर जाकै रांम अधारा।

शब्दार्थ—जागतौ = चेतन। टांचण हारै = गढने वाला, टांकी से काट कर बनाने वाला संगतराश। सकल = सच्ची एवं शक्ति सम्पन्न। घडण हारा = गढ़ने वाला। लाडू = लड्डू। लावण = लावन = घी। लपसी = लपटा—थोड़ा घी डालकर बनाया हुआ आटे का पतला हलवा। छार = धूल।

संदर्भ—कबीरदास बाह्योपचार के प्रति विरोध प्रकट करते है।

भावार्थ—हे मालिनी, (पुजारिन) तू भ्रम में पड़ी हुई है। तू तनिक यह तो

विचार कर कि जगत का सचेतन जीव मात्र ही भगवान है। पत्र-पुष्प तोडकर तू इस जड मूर्ति के रूप मे किसकी सेवा कर रही है। मालिन अज्ञान के वशीभूत होकर फूल पत्ती तोडती है। वह यह जानती ही नही है कि प्रत्येक पत्ती मे जीव है— अर्थात् पत्ती तोडकर वह हिंसा करती है। जिस पत्थर की मूर्ति के लिए वह पत्थर तोडती है, वह तो निर्जीव है। जिस कारीगर ने टाँकी से पत्थर को काट काट कर मूर्ति को बनाया है, उसने कार्य-काल मे इस मूर्ति की छाती पर पैर रखकर ही यह कार्य किया है। यदि यह मूर्ति सच्ची और शक्ति सम्पन्न होती, तो छाती पर पैर रखने वाले उस कारीगर को अवश्य ही खा जाती। इस मूर्ति के ऊपर लड्डू मिठाई, लपसी आदि के रूप मे बहुत सा पुजापा चढाया जाता है। पुजारी इस मूर्ति की पूजा करके इस मूर्ति की आँखो मे धूल झोक कर इस समस्त चढावे को लेकर चलता बनता है। पत्ती ब्रह्मा हैं, पुष्प विष्णु हैं तथा फल-फूल महादेव हैं। इन तीनो मे एक ही देव विराजता है। अब आप ही स्वय विचारें कि किसको किस देव पर चढा कर पूजा जाए ? (सर्वत्र एक ही परम तत्व व्याप्त है)। अज्ञान जनित इस वाह्योपचार मे एक या दो व्यक्ति नही अपितु समस्त सारा ससार ही भ्रमित है। इस भ्रम मे केवल एक कबीरदास नही भूले हैं, क्योकि उन्होने परमतत्त्व राम का आश्रय ग्रहण किया है।

अलंकार— (1) गूढोक्ति— तू-सेव।
(11) पुनरुक्ति प्रकाश—पाती पाती।
(111) वक्रोक्ति—तौं ···खाव।
(1V) अनुप्रास—लाड्डू, लावण, लापसी, मे ला की आवृत्ति।

विशेष—(1) मुहावरो का प्रयोग—छाती ऊपर पाव, दै मूरति मुह छार।
(11) मूर्ति पूजा का विरोध है एव सच्ची उपासना की स्थापना है।
(111) मगलेनी मे 'लक्षणा' है।
(1V) पाती महादेव।

अद्वैतवाद का प्रतिपादन है। त्रिमूर्ति की कल्पना अद्वैतवाद के अनुकूल है। कबीर का विरोध बुतपरस्ती अथवा अज्ञान जन्य मूर्ति पूजा से है।

कबीर पेडो मे भी जीवन मानते हैं। इससे अधिक भगवान की सर्वव्यापकता क्या हो सकती है ?

तुलना करें—

पत्रे ब्रह्मा कलो बिसनो फल मध्दे रुद्रम देवा।
तीनि देव का छेद किया तुम्हें करहु कौन की सेवा। (गोरखवानी)

(v) एक न भूला ·· · अधार।

पाठान्तर देख लीजिए—

मालिनी भूली जग भुलाना हम भुलाने नाहिं।
कहु कबीर हम राम राखे क्रिया करि हरि राइ।

(१६६)

सेइ मन समझि समर्थ सरणांगता,जाकी आदि अंति मधि कोइ न पावै ।
कोटि कारिज सरै देह गुंण सबजरै, नैक जो नांव पतिब्रत आवै ।। टेक ।।
आकार की ओट आकार नही ऊबरै, सिव बिरंचि अरु बिष्णु तांई ।
जास का सेवक तास कौं पाइहै, इष्ट कों छांडि आगे न जांहीं ।।
गुणमई मूरति सेई सब भेष मिली, निरगुण निज रूप बिश्रांम नांही ।
सनेक जुग बदिगी बिबिध प्रकार की, अति गुण का गुंणहीं समाहीं ।।
पांच तत तीनिगुण जुगतिकरि सांनियां, अष्टबिन होत नहीं क्रम काया ।
पाप पुन बीज अंकूर जांमै मरै, उपजि बिनसै जेती सर्ब माया ।।
क्रितम करता कहै परम पद क्यू' लहै, भूलि भ्रम मै पड़्या लोक सारा ।
कहै कबीर रांम रमिता भजे, कोई एक जन गए उतरि पारा ।।

शब्दार्थ—पातिव्रत=एकनिष्ठता । त्रिगुणमयी मूर्ति=प्रतिमा । निजु=ठीक-ठीक । साना=मिश्रित । कृत्रिम=बनावटी, प्रतिमा आदि । कोई-एक बिरला ।

संदर्भ—कबीरदास राम नाम की महिमा का प्रतिपादन करते हैं ।

भावार्थ—रे मन, तू इस समर्थ भगवान की शरण मे जाकर सेवा कर जिसका, आदि अंत और मध्य कोई नही पा सकता है । पातिव्रत धर्म के समान पूरी निष्ठा के साथ उसका नाम भजने से तुम्हारे करोड़ो कार्य सिद्ध होगे और शरीर की समस्त आवश्यकताएँ पूरी हो जाएँगी (भाव यह है कि उसका नाम स्मरण करने से तुम्हारा परलोक सुधर जाएगा और इस लोक मे सुख की प्राप्ति होगी) । भले ही आकार (मूर्ति) शिव, ब्रह्मा और विष्णु तक का हो, परन्तु आकार (प्रतिमा, मूर्ति आदि) की पूजा करने से आकारधारी इस शरीर का उद्धार सम्भव नही है । जो भगवान के जिस स्वरूप की पूजा करता है, वह उसी स्वरूप को प्राप्त होता है । वह उसके आगे नही जा सकता है, क्योंकि आदर्श ही साध्य होता है । भगवान के सगुण स्वरूप की पूजा करने पर भक्त को सब प्रकार के भेषों की (सारूप्य मुक्ति) की प्राप्ति हो सकती है, परन्तु निर्गुण मे एवं आत्मस्वरूप मे उसकी प्रतिष्ठा नही हो सकती है । अनेक युगो तक विविध प्रकार की प्रतिमाओ की पूजा करने पर भक्त इस सगुण मे ही समाहित होता है । शरीर निर्माण के लिए पाँचो तत्वों तथा तीनो गुणो को युक्तिपूर्वक मिलाया गया है । इन आठों के बिना शरीर की उत्पत्ति का क्रम ही नही बैठता है । पाप और पुण्य के बीजो के अंकुर (अर्थात् पाप-पुण्य के फल) इस शरीर मे उत्पन्न होते हैं और इसमे ही मरते हैं अर्थात् इस शरीर को ही पाप-पुण्य के फल भोगने पड़ते हैं । इस जगत मे जो कुछ भी उत्पन्न होता है और नष्ट होता है, सब माया का ही प्रसार है । जब लोग इन बनाई हुई प्रतिमाओं को ही परमात्मा मानते हैं तब फिर उनको अव्यक्त परम पद की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है ? यह सारा संसार इस सोपाधिक को ही परम

तत्व मानने के भ्रम मे भूला हुआ है। कबीर कहते हैं कि कोई बिरला ही सब मे रमने वाले राम को भजता है और भवसागर के पार उतरता है।

अलंकार—(i) अनुप्रास--सेइ समधि समर्थ सरणागता।
(ii) सम्बन्धातिशयोक्ति—कोइ न पावै।
(iii) चपलातिशयोक्ति कोटि—आवै।
(iv) रूपक—पाप— अकुर।
(vi) गूढोक्ति—क्तिम लहैं।

विशेष— (i) निर्गुण निरुपाधि ब्रह्म का प्रतिपादन है। समस्त साकार जगत (त्रिमूर्ति तक) उसी एक परम तत्व का अभिव्यक्त रूप है।

(ii) जास का सेवक' जाही।—तुलना करें—

यो यो यां या तनुं भक्त श्रद्धार्याचितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धातामेव विदधाम्यहम्ं।
वहूना जन्म नामन्ते ज्ञानवान्सां प्रपद्यते।
वासुदेव सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभ।

(श्री भगवद्गीता ७/२१,५)

(२००)

राम राइ तेरी गति जांणीं न जाई।
जो जस करिहै सो तस पहहै, राजा रांम नियाई।। टेक।।
जैसी कहै करै जो तैसी, तौ तिरत न लागै बारा
कहता कहि गया सुनता सुंणि गया, करणीं कठिन अपारा।।
सुरही तिण चरि अमृत सरवै, लेर भवगहि पाई।
अनेक जतन करि निग्रह कीजै, बिषै बिकार न जाई।।
संत करै असंत की सगति, तासू कहा बसाई।
कहै कबीर ताके भ्रम छूटै, जे रहे रांम ल्यौ लाई।।

शब्दार्थ—नियाई=न्यायी, न्यायकर्त्ता। सुरही=सुरभी, गाय। तिण=तृण, घास। असृत=अमृत, दूध। सखै=सुवित करती है। लेर=लार की तरह जमीन पर टपकने वाली कोई भी वस्तु। पृथ्वी पर गिर जाने वाले दूध को सर्प चाट लेता है। भवगहि=सर्प। निग्रह=दमन, निवारण। लौ=सच्ची लग्न।

सदर्भ—कबीरदास भगवद्प्रेम का प्रतिपादन करते हैं।

भावार्थ—हे जगत के स्वामी राम, तेरी लीला किसी की समझ मे नही आती है। परन्तु एक बात अवश्य है। तुम बडे न्यायकारी हो। जो जैसा करता है, उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है। व्यक्ति जैसा करता है, यदि वैसा ही करे, तो उसको इस भवसागर से पार उतरते देर न लगे। परन्तु इस ससार मे प्राय ऐसा देखा जाता है कि उपदेश देने वाला उपदेश दे जाता है और सुनने वाला सुन लेता है, परन्तु इसके अनुसार आचरण करने वाला अत्यन्त कठिनाई से दिखाई

देता है। गाय घास खाकर अमृतोपम दूध देती है और इसको चाटकर सर्प भी बल प्राप्त करता है—उसके भी विष की वृद्धि होती है। अभिप्रेत अर्थ यह है कि दुष्ट जन अच्छी से अच्छी बात का दुरुपयोग करते है। अनेक प्रकार के उपायो द्वारा वासना को दमन करने पर भी विषयो के प्रति आसक्ति नि.शेष नही हो पाती है। जो साधु-वेष धारण करके भी दुष्टो की सगति करता है, उसके लिए क्या कहा जाए और क्या किया जाए ? कबीरदास कहते हैं कि जो व्यक्ति भगवान राम मे पूर्ण रूप से अनुरक्त होते हैं, उन्ही का मोह भ्रम नष्ट होता है।

अलंकार - (i) सम्बन्धातिशयोक्ति—राम ' जाई।
(ii) पदमैत्री—जस तस।
(iii) दृष्टान्त—कहता न जाई।
(iv) विशेषोक्ति—अनेक ···जाई।
(v) रूपकातिशयोक्ति—अमृत, भवगम।
(vi) सभग पद यमक—सन्त असन्त।
(vii) गूढोक्ति—तासू ' बसाई।

विशेष—जैसी कहै ' अपारा।

तुलना कीजिए—

कर्म प्रधान विश्व कर राखा। जो जस करइ सो तस फल चाखा।
तथा— परउपदेस कुसल बहुतेरे। जे आचरहि ते नर न घनेरे।
(गोस्वामी तुलसीदास)

(२०१)

कथणीं बदणीं सब जंजाल,
भाव भगति अरु रांम निराल ॥ टेक ॥
कथै बदै सुणै सब कोई, कथें न होई कीयें होइ ।
कूड़ी करणी राम न पावै, साच टिकै निज रूप दिखावै ॥
घट मै अग्नि घर जल अवास, चेति बुझाइ कबीरादास ।

शब्दार्थ- कथणी==कहना, धर्मोपदेश। बदणी=देश सम्बन्धी आचरण अर्थात् बाह्योपचार। कूड़ी=निकामी, व्यर्थ की। करणी=आचरण। बदै=विवाद, अवास=निवास स्थान। अग्नि=वासनाओ की अग्नि। जल=आनन्द रूपी जल।

संदर्भ—कबीरदास कहते है कि आत्म-ज्ञान के द्वारा ही कल्याण सम्भव है।

भावार्थ—धर्मोपदेश एव बाह्योपचार सब व्यर्थ का झमेला है। भगवान राम का स्वरूप एव उनके प्रति भक्ति भाव—ये दोनो अनोखी वस्तु हैं। धर्मोपदेश, विचार तथा ध्यान सब करते हैं, परन्तु वास्तविक लाभ तो सदाचरण से होता है, इनके करने मात्र से कुछ नही होता है। व्यर्थ के निकम्मे आचरणो (कुकर्मों) से भगवान नहीं मिलते है। सत्याचरण का ही प्रभाव स्थायी होता है और उसी स

द्वारा आत्म-स्वरूप का साक्षात्कार होता है। जीव के शरीर मे वासना रूपी अग्नि रहती है और जीव का मूल निवास-स्थान आत्मानन्द रूपी जल है। कबीर कहते हैं कि हे जीव, तू चेत जा और आत्मानन्द के जल से वासना की अग्नि को बुझा दे।

अलकार—(1) भेदकातिशयोक्ति—भाव—निराल।
(ii) पदमैत्री—व्यथै बदै सुणै कथैं।
(iii) रूपकातिशयोक्ति—अग्नि, जल।

विशेष—(1) कबीर कायायोग द्वारा अमृत-पान की विधि तो बताते हैं, परन्तु उनके मतानुसार कायायोग की साधना पर्याप्त नही है। ज्ञान और भक्ति का योगदान अनिवार्य है। इस प्रकार वह भक्ति को ही साध्य मानते हैं और ज्ञानी भक्त ठहरते हैं।

(ii) इस पद मे भी कबीर ने यही कहा है कि—
पर उपदेस कुसल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे।

तथा— **सूधे मन सूधे वचन सूधी सब करतूति।**
रघुवर सूधी सकल बिधि, रघुबर प्रेम प्रसूति।

एव— **निर्मल मन जन सो मोहि पावा।**
मोहि कपट छल छिद्र न भावा।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(२०२)

ऐसी रे अवधू की वांणीं,
ऊपरि कूवटा तलि भरि पांणी ॥ टेक ॥
जब लग गगन जोति नही पलटै, अविनासी सू चित नहीं चिहुटै ॥
जब लग भवर गुफा नही जानै, तौ मेरा मन कैसै मानै ।
जब लग त्रिकुटी संधि न जांनै, ससिहर कै घरि सूर न आनै ॥
जब लग नाभि कवल नही सोधै, तौ हीरै हीरा कैसै बेधै ।
सोलह कला संपूरण छाजा, अनहद कै घरि बाजै बाजा ॥
सुषमन कै घरि भया अनंदा, उलटि कवल भेटे गोव्यदा ।
मन पवन जब परचा भया, ज्यू नाले रांषी रस मइया ॥
कहै कबीर घटि लेहु विचारी, औघट घाट सींचि ले क्यारी ॥

शब्दार्थ—कूवरा=कूप, कुआँ। गगन=शून्य। जोति=ज्योतिस्वरूप ब्रह्म-रन्ध्र। त्रिकुटी=दोनो भौहो के बीच का स्थान, आँख नाक और मस्तिष्क का सन्धि-स्थल। ससिहर=चन्द्रमा, पिंगला नाडी। सूर=सूर्य अथवा इडा नाडी। नाभिकवल=नाभि मे स्थित मणिपूरक चक्र। इस चक्र पर चिन्तन करने वाला साधक इच्छाओ का स्वामी होजाता है। कहते है कि वह साधक अपनी इच्छाओ

के अनुसार अन्य शरीर मे प्रवेश कर सकता है। उस साधक को स्वर्ण-निर्माण, की सामर्थ्य और गुप्तधन की दृष्टि भी प्राप्त होजाती है।

सन्दर्भ—इस पद मे हठयोग के साधक अवधूत का कथन है। कुण्डलिनी से ब्रह्म रन्ध्र तक पहुँचने की प्रक्रिया का वर्णन है।

भावार्थ—ऊपर सहस्रार का कूप है और नीचे रहने वाली कुण्डलिनी इसका पानी भरती है। जब तक सहस्रार रूपी गगन मे शुद्धात्मा की ज्योति प्रतिफलित होकर साधक को दिखाई नही देती तब तक अविनाशी ब्रह्म के प्रति उसका मन अनुरक्त नही होता है।

कबीरदास अपने आपको साधक मानकर कहते है कि जब तक मुझे ब्रह्मरन्ध्र का ज्ञान प्राप्त न हो, तब तक भला मुझे (अथवा किसी साधक को) किस प्रकार संतोष प्राप्त हो सकता है ? जब तक साधक त्रिकुटी की सधि से परिचित होकर सहस्रार स्थित चन्द्र और मूलाधार स्थित सूर्य को पास-पास नही लाता है—पिंगला और इडा नाडियो के मध्य समन्वय स्थापित नही करता है, जब तक वह नाभिस्थित मणिपूरक चक्र का चिंतन नही करता है, तब तक वह शुद्ध चित्त रूपी हीरे द्वारा शुद्धात्मा रूपी हीरे को कैसे वेध सकता है ? अभिप्रेत भाव यह है कि आज्ञा-चक्र मे स्थित त्रिकुटी का ज्ञान प्राप्त होजाने पर इडा और पिंगला का अन्तर समाप्त हो जाता है तथा मणिपूरक चक्र पर चिन्तन करने पर ही ब्रह्म की प्राप्ति सम्भव होती है। सोलह कला से युक्त चन्द्र जहाँ सहस्रार पर सुशोभित रहता है, वही अनाहत का वाद्य भी बजता है। भाव यह है कि ब्रह्मरन्ध्र वाले सहस्रदल कमल मे ब्रह्म का निवास है। सिद्धि प्राप्त कर लेने पर योगी को वही पर अनाहदनाद (The voice of the silence) सुनाई पडता है। सिद्धि मिलने पर ही सुषुम्ना मे आनन्द उत्पन्न होता है तथा सहस्रार के उलटे कमल मे गोविन्द को प्राप्त करता है। साधना द्वारा जब मन और प्राण वायु मिल जाते है, तब मन और परमात्मा मिलकर इस प्रकार एक होजाते हैं जिस प्रकार नाले-नालियो का जल गगा के बहते हुए जल मे मिलकर एक मेल होजाता है। कबीरदास कहते हैं कि इस प्रकार अपने शरीर के भीतर ही सब कुछ समझलो तथा सहस्रार के घाट-रहित स्थान मे मोक्ष की क्यारी को आनन्दामृत से सींच लो।

अलंकार—(i) असगति—ऐसी ... वाणी।
(ii) रूपक—भवर गुफा, नाभि कमल, हीरै मन, हीरै पवन, औघट घाट क्यारी।
(iii) विरोधाभास की व्यजना—औघट घाट।
(iv) यमक—हीरै हीरा।
(v) उदाहरण—ज्यू भइया।

विशेष—(i) कबीरदास ने हठयोग की प्रक्रिया को बड़े ही पाण्डित्यपूर्ण ढग पर रोचक शैली मे समझाया है। उन्होने बताया है कि किस प्रकार इसी शरीर मे

षट्-चक्र-वेधन—जो कि प्रकारान्तर से शरीर-साधन ही है—के द्वारा परमात्मा की प्राप्ति होती है।

(ii) अनहद नाद के लिए देखें टिप्पणी पद स० १५७

(iii) शून्य के लिए देखे टिप्पणी पद स० १६४

(iv) त्रिकुटी के लिए देखे टिप्पणी पद स० ७

(v) भँवर गुफा के लिए देखे टिप्पणी पद स० ३, ४

(vi) ज्यूँ नाले राषी रस मइया—साधक के चित्त के परमात्म तत्त्व के साथ मिलकर एक हो जाने की तुलना प्राय नाले के पानी के गगाजल मे मिल जाने से की जाती है। भक्त कवियो ने भी इस प्रकार का कथन प्राय: किया है। यथा—

हमारे प्रभु ! औगुन चित न धरौ।

× × ×

इक नदिया इक नार कहावत, मैलो नीर भरौ।
जब मिलिगे तब एक बरन मे, सुरसरि नाम धरौ। —महात्मा सूरदास

(vii) 'उलटि कँवल' का अर्थ कुछ टीकाकारो ने इस प्रकार किया है—"इस प्रकार कुण्डलिनी के नीचे से ऊपर चलने के कारण—उलटे मार्ग द्वारा गोविंद से सहस्रदल मे भेंट होती है।" हमारे विचार से यह अर्थ उचित नही है। चन्द्र प्रक्रिया का सम्यक् ज्ञान न होने कारण ही इस प्रकार के अर्थ की सम्भावना की जा सकती है। 'चक्र' वस्तुत कुण्डलिनी के शक्ति केन्द्र (Transformers) हैं। इनकी बनावट सीधी तश्तरी (concave) मानी जाती है। जब चक्र गतिशील होता है, तो उलटा (convex) हो जाता है और कुण्डलिनी की शक्ति को अगले चक्र मे प्रेषित कर देता है। स्पष्ट है कि जब सहस्रदल कमल चक्र पूर्णतया गतिशील होगा, तब वह भी उलटा (convex) हो जाएगा और तभी ब्रह्म ज्योति का साक्षात्कार होगा—तभी Mind और Supramental का सम्बन्ध स्थापित होगा। गौतम बुद्ध प्रभृति सिद्ध पुरुषो की प्रतिमाओ, मूर्त्तियो आदि मे सिर के ऊपर एक गुमटी सी निकली हुई रहती है। यह गुमटी उलटे हुए (convex) सहस्रार चक्र का द्योतन करती है।

(२०३)

मन का भ्रम मन ही थैं भागा,
सहज रूप हरि खेलण लागा ॥ टेक ॥
मै तै तै मै ए द्वै नाही, आपै अकल सकल घट मांहीं ॥
जब थैं इनमन उनमन जांनां, तब रूप न रेष तहां ले बांनां ।
तन मन मन तन एक समांनां, इन अनभै माहै मन मांनां ॥
आतमलीन अषडित रांमां, कहै कबीर हरि मांहि समांनां ।

शब्दार्थ - हरि=आत्माराम, परमात्मा। उनमन=मन की अवस्था विशेष। रूप-न-रेख=रूप रेख। बाना=आकार। अनभै=अभय।

संदर्भ—कबीरदास सिद्धावस्था का वर्णन करते है।

भावार्थ—मन की साधना के द्वारा ही मन मे व्याप्त भ्रम समाप्त हो गया है तथा जीव अपने सहज आनन्द रूप को प्राप्त करके परमात्मा के रूप मे क्रीडा करने लगा है अर्थात् 'मैं'- -जीव और 'तू' ब्रह्म एक हो गए हैं—पृथक् नही रह गए है। यह विश्वास दृढ हो गया है कि 'मैं' और 'तू'— जीव और ब्रह्म अथवा 'मैं' और 'मैं नही'— ये दो नही हैं तथा मायारहित वह अखण्ड परम तत्व ही समस्त अन्त करणो मे तथा सर्वत्र व्याप्त है। जब से इस मन ने उस मन को जान लिया है अर्थात् व्यष्टि-जीव ने समष्टि-जीव का साक्षात्कार कर लिया अर्थात् मन योग की 'उन्मनि' अवस्था को प्राप्त हो गया है, तब से जीव रूप-रेखा तथा आकारादि की मर्यादाओ के ऊपर उठकर उस मायातीत अवस्था मे तन्मय हो गया है। अब शरीर उस चेतन मे समा गया है और चेतन का प्रकाश सम्पूर्ण शरीर मे व्याप्त हो गया है। इस निर्भय परम तत्त्व के साक्षात्कार की अवस्था मे व्यष्टि-चेतन उस परम चेतन मे समाहित हो गया है। कबीर कहते हैं कि मन आत्म-लीन होकर अखण्ड परमात्मा-रूप राम और हरि मे तन्मय हो गया है। यही मेरी सिद्धावस्था है।

अलंकार—(i) विरोधाभास की व्यजना—मन का भ्रम'' 'भागा, मैं तै '' ' ' नाही।

(ii) रूपक—सहज रूप हरि।

(iii) पदमैत्री—सकल अकल, इनमन उनमन, तन मन मन तन।

(iv) सभग पद यमक—इन मन उन मन।

(v) वृत्यानुप्रास—मन मन माहैं मन माना।

विशेष—(i) अद्वैतावस्था का वर्णन है।

(ii) विश्व चेतना स्वरूप राम की प्राप्ति ही जीवन का परम लक्ष्य है। गीताकार ने इसी को लक्ष्य करते हुए कहा है कि—' यत्प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परम मम् अथवा सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेक शरण व्रज।''

(iii) सहज रूप ··· लागा—भावुक कवि इस अद्वैतावस्था का वर्णन काव्योचित रससिक्त शैली मे करते आए हैं। यथा—

राधिका, कान्ह को ध्यान धरै, तब कान्ह ह्वै, राधिका के गुन गावै।
त्यो अँसुवा बरसे बरसाने को पाती लिखै लिखि राधिकै ध्यावै।
राधे ह्वै आवत है छिन में वह प्रेम की पाती लै छाती लगावै।
आपु में आपुन ही उरझै, सुरझै, बिरुझै समुझै, समुझावै।
(देव)

यह पूर्ण आत्म-लीन की अवस्था है।

(iv) मन, उन्मन आदि नाथ-सम्प्रदाय की पारिभाषिक शब्दावली के माध्यम से परम तत्त्व की प्राप्ति का वर्णन किया गया है।

'उन्मनि'— योग की सिद्धावस्था है, जिसमे मन समाधिस्थ हो जाता है।

'आज्ञाचक्र' के समीप ही कारण शरीर से सम्बन्धित सात कोष माने गये हैं। इनमे 'उन्मनी' भी एक है। साधक इस 'उन्मनी' कोष मे पहुँचने पर पुनराग-मन को प्राप्त नही होता है, और वह समाधिस्थ होकर अजर अमर हो जाता है। इम स्थिति को प्राप्त होने वाला साधक निरन्तर अमृत रस-पान किया करता है। कबीर ने इस 'उन्मनि' शब्द का बार-बार प्रयोग किया है। उन्होने स्वय इस अवस्था का वर्णन इस प्रकार किया है कि—

उन्मनि ध्यान घट भीतर पाया, अवधू मेरा मन मतिवारा।
उन्मनि चढ़ा गगन रस पीवै, त्रिभुवन भया उजियारा।

नाथ-पथी हठयोगी भी इस शब्द का प्रचुर प्रयोग करते थे। इस अवस्था मे वे भी आनन्द की अनुभूति मानते थे। एक स्थल पर स्वयं गुरु गोरखनाथ ने इसके विषय मे लिखा है कि—

उन्मनि लागा होइ आनन्द।

वास्तव मे 'उन्मनि' को तुरीयावस्था कहा जा सकता है। इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए साधक त्रिकुटी पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है और ध्यान-मग्न अथवा आत्म-चेतना के केन्द्रित हो जाने के फलस्वरूप साधक का शरीर एकदम वाह्य बातो के प्रति विरक्त एव उदासीन हो जाता है। इस अवस्था को प्राप्त करके साधक द्वैत भाव भूल कर पूर्ण अद्वैतावस्था की अनुभूति मे रमने लगता है। जैसा कि कबीर ने लिखा है कि—

उन्मनि मनुआँ सुन्य समाना, दुविधा दुर्गति भागी।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि उन्मनि अवस्था शून्य मे केन्द्रित अर्थात् समाहित होने मे समर्थ होती है। मन की समस्त दुविधाएँ समाप्त हो जाती है, मन एक दम निश्चल एव शात हो जाता है। द्वैत अथवा भेद बुद्धि जनित उसके समस्त सकल्प-विकल्प नष्ट हो जाते है। कबीर ने 'उन्मनि' शब्द का प्रयोग ध्यानमग्नावस्था, समाधि एव विशेपण रूप मे प्रयुक्त होने पर 'समर्थस्थिति' के रूप मे ही अधिकतर किया है।

(२०४)

आत्मां अनदी जोगी,
पीवै महारस अंमृत भोगी ।। टेक ।।
ब्रह्म अगनि काया परजारी, अजपा जाप उनमनीं तारी ।।
त्रिकुट कोट मै आसण मांड़ै, सहज समाधि बिषै सब छांड़ै ।।
त्रिवेणी त्रिभूति करै मन मजन, जन कबीर प्रभू अलष निरजन ।।

शब्दार्थ—महारस=प्रेमरस।

सन्दर्भ—कबीर कायायोग के द्वारा प्रभु भक्ति की प्राप्ति करते है।

भावार्थ—योगी आत्मस्वरूप मे प्रतिष्ठित होकर आनन्द प्राप्त करता है।

वह ज्ञान और भक्ति के समन्वय से उत्पन्न प्रेम के महारस का पान करते [illegible] बनता है और कायायोग एवं ध्यान योग द्वारा प्राप्त होने वाले अमृत का [illegible] करता है। वह ज्ञान की अग्नि मे शरीर को जलाने वाली वासनाओ को भस्म कर देता है तथा अजपा जाप (अनहद नाद) मे लवलीन रहता है। वह ज[illegible] विमुख होकर चेतना को त्रिकुटी मे स्थित कर देता है और इस प्रकार समा[illegible] हो जाता है। सहज समाधि मे स्थित होकर वह समस्त विषयो को त्याग देता [illegible] वह इडा, पिंगला एव सुषुम्ना के मिलन-बिन्दु रूप त्रिवेणी मे अवगाहन करत[illegible] तथा आनन्द की विभूति को अपने अन्त करण मे रमाकर मन को वासनाओं [illegible] रहित करके पवित्र करता है। कबीर अलख निरंजन प्रभु की भक्ति करता है।

अलंकार—(i) रूपक—महारस अमृत, ब्रह्म अग्नि, त्रिवेणी विभूति।

(ii) विरोधाभास—अजपा जाप।

विशेष—(i) भक्तो की भाँति कबीरदास निर्गुण ब्रह्म की भक्ति कर[illegible] और सेव्य-सेवक भाव का आरोप करते है।

(ii) कायायोग, ज्ञान एव भक्ति की त्रिवेणी दृष्टव्य है।

(iii) अमृत—देखें टिप्पणी पद स० ४

अजपा जाप—देखे टिप्पणी पद स० १५७

उन्मनी—देखें टिप्पणी पद स० २०३

त्रिकुटी—देखे टिप्पणी पद स० ४

अलख निरंजन—देखें टिप्पणी पद स० १४२ व १६८

सहज समाधि—देखे टिप्पणी पद स० ७

(iv) त्रिवेणी—देखे टिप्पणी पद स० ४, ७

(v) इस पद मे कायायोग और भक्ति का सुन्दर समन्वय है।

(२०५)

या जोगिया की जुगति जु बूझै,

रांम रमै ताकौं त्रिभुवन सूझै ॥ टेक ॥

प्रगट कंथा गुपत अधारी, तामै मूरति जीवनि प्यारी ॥

है प्रभू नेरै खोजै दूरि, ग्यांन गुफा मैं सींगी पूरि ॥

अमर बेलि जो छिन छिन पीवै, कहै कबीर सो जुगिजुगि जीवै।

शब्दार्थ—कंथा = गुदड़ी। कंथा धारी = योगी। अधारी = ग[illegible] लकड़ी। नेरै = पास। सींगी = शृंगी, योगियो द्वारा प्रयुक्त सींग का [illegible] अमरबेलि = ज्ञानरूपी बेलि।

संदर्भ—कबीरदास कायायोग की महिमा का वर्णन करते है।

भावार्थ—इस कायायोग की साधना करने वाले साधक योगी की [illegible] के रहस्य को जानकर जो राम मे रमण करता है अर्थात् जो [illegible] है उसको तीनो लोक दिखाई देने लगते है अर्थात् वह तीनो [illegible]

ाक्षात्कार करता है। बाहर से दिखाई देने वाली गुदड़ी वस्तुतः योगी के शरीर प्रतीक है। उसकी लकड़ी नामक 'अधारी' वह आधार है जिसमे अवस्थित होकर परम तत्त्व की साधना करता है। उसी मूल तत्त्व मे उसकी प्राण-प्यारी मूर्ति :जमान है। वे प्रभु जीव के सदैव पास (हृदय) मे ही रहते हैं, परन्तु जीव उनको र-उधर (अपने आप से पृथक् स्थलो मे) खोजता रहता है। अनहद नाद रूपी ा अन्त करण (सहस्रार) रूपी गुफा मे उपलब्ध है, परन्तु जीव शृंगी मे शब्द के उस अनहद नाद को सुनना चाहता है अर्थात् वह अपने स्वरूप मे प्रतिष्ठित की अपेक्षा शृंगीनाद का श्रवण करता है। अभिप्रेत अर्थ यह है कि इस प्रकार ायोगी आत्म स्वरूप मे प्रतिष्ठित होने की अपेक्षा वहिरग मे ही उलझा रहता परन्तु जो साधक ज्ञान और भक्ति रूपी महारस की अमर बेलि के रस को क्षण पीता रहता है, वह अमरत्व को प्राप्त होता है।

अलकार—(i) छेकानुप्रास—जोगिया जुगति।

(ii) रूपकातिशयोक्ति—कथा, अधारी, गुफा।

(iii) रूपक—अमर बेलि।

(iv) पुनरुक्ति प्रकाश—छिन छिन, जुगि जुगि।

विशेष—(i) कथा, शृंगी, आधारी—ये योगियो की साधना एव वेष के री उपकरण हैं।

(ii) कबीर ने अपने स्वभावानुसार इस पद गे भी वाह्याचार के प्रति विरोध : किया है।

(iii) है प्रभु ... दूरि—तुलना करे—

कस्तूरी कुंडल बसै, मृग ढूँढै बन माँहि।
ऐसे घट घट राम हैं, दुनियाँ देखे नाँहि। — कबीरदास

— अपुनपौ आपुन ही में पायो।

× × ×

राजकुमारि कंठ मनि-भूषन, भ्रम भयौ, कहूँ गवायो।
दियो बताइ और सखियन, तब तन को ताप नसायो। —सूरदास

(iv) राम रमै ... सूझै—प्रभु का साक्षात्कार विश्व-चेतना की प्राप्ति की ते है। श्रीमद्भगवद्गीता के 'विश्वरूप-दर्शन योग' के अन्तर्गत यही बात स्पष्ट ाई है। भगवान राम के मुख मे प्रविष्ट करने वाले कागभुसु डि भी समस्त ण्ड का दर्शन करते हैं—

उदर माझ सुनु अडज राया। देखेउँ बहु ब्रह्माड निकाया।

× × ×

भिन्न भिन्न मै दीख सबु अति बिचित्र हरिजान।
अगनित भुवन फिरेउँ प्रभु राम न देखेउँ आन।

× × ×

तब ते मोहि न व्यापी माया। जब तें रघुनायक अपनाया। (रामचरितमानस)

(v) अमर वेलि·······जीवै—श्रद्धालु साधक को सर्वत्र श्रेष्ठ बताया गया गया है। तुलना करें—

योगनामपि सर्वेषां मद्गते नान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मत.।
(श्रीमद्भगवद्गीता ६/४७)

(२०६)

सो जोगी जाकै मन मैं मुद्रा
राति दिवस न करई निद्रा ।। टेक ।।
मन मै आसण मन सैं रहणां, मन का जप तप मन सूं कहणां ।।
मन मै षपरा मन मै सींगी, अनहद बेन बजावै रंगी ।।
पंच परजारि भसम करि भूका, कहै कबीर सो लहसै लंका ।।

शब्दार्थ—मुद्रा = खेचरी मुद्रा। लहसै = विजय प्राप्त करना। पच = पचाग्नि। भूका = शरीर—शारीरिक आवश्यकताएँ।

संदर्भ—कबीर सच्चे योगी का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—सच्चा योगी वही है जो कुण्डल आदि बाहरी मुद्राओं को त्याग कर मन मे खेचरी मुद्रा धारण करता है अर्थात् जो परम तत्त्व की प्राप्ति के अनुरूप मन की अवस्थिति बना लेता है। ऐसा साधक योगी रात और दिन कभी नही सोता है अर्थात् वह सदैव सजग रहता है और कभी भी अज्ञान मे नही फँसता है। वह मन मे ही आसन जमाता है और उसी मे अवस्थित रहता है अर्थात् वह आत्म-स्वरूप मे ही अवस्थित हो जाता है। वह मन मे जप-तप करता है। और अपने जप-तप को अपने मन को ही सुनाता है। वह मन मे ही खप्पर (भिक्षा-पात्र) रखता है और मन की ही शृंगी वजाता है। ज्ञान भक्ति रूपी महारस का प्रेमी यह योगी अनहद नाद की वीणा अपने मन मे ही वजाता है। कवीरदास कहते हैं कि जो योगी पंचाग्नि मे शरीर को जलाकर भस्म कर देता है वही लकारूपी ससार पर विजय प्राप्त करता है अर्थात् अद्वैतावस्था को प्राप्त होता है।

अलंकार—(i) अनुप्रास—मन की आवृत्ति (३री पक्ति)।
(ii) पदमैत्री—जप तप, रहणां कहणा।
(iii) रूपक—अनहद बेन।
(iv) रूपकातिशयोक्ति—पच, लंका।
(v) छेकानुप्रास—जोगी जाके, पंच परमारि, भसम भूका।

विशेष—(i) मुद्रा आसन, खपरा, सीगी, बेन, पच, भसम—ये योगियो की साधना एवं वेष के बाहरी उपकरण एव आचार हैं।

(ii) इस पद मे कबीर ने अन्त.साधना और बाह्याचार का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है।

(iii) मुद्रा—खेचरी मुद्रा। योग की अगभूत एक मुद्रा जिसमे जीभ उलट कर तालू मे लगाई जाती है और दृष्टि त्रिकुटी पर स्थापित की जाती है।

(iv) मन मैं · कहणा—तुलना कीजिए—

वाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा
विन्दत्यात्मनि यत्सुखम्।
स ब्रह्मयोग युक्तात्मा
सुखमक्षयमश्नुते।

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्माश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवो।
प्राणायानौ समैकृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ।
यत्रोपरमते चित्त निरुद्धं योगसेवय।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनितुष्यति।

(श्रीमद्भगवद्गीता ५/२१, ५/२७, ६/२०)

भावुक कवि जन इसी अद्वैतावस्था का वर्णन काव्यात्मक शैली मे करते आए हैं—

राधिका, कान्ह को ध्यान धरै तब कान्ह ह्वै राधिका के गुन गावै।
ज्यों अँसुवा बरसे बरसाने को पाती लिखै लिखि राधिकै ध्यावै।
राधे ह्वै जावत है छिन मैं वह प्रेम की पाती लै छाती लगावै।
आपु में आपुन ही उरझै, सुरझै, बिरुझै, समुझै, समुझावै। —देव

(v) अनहद – देखें टिप्पणी पद स० १५७।

(vi) पच परिजारि··· · भूका—इस पक्ति का अर्थ इस प्रकार भी किया जा सकता है कि जो योगी काम क्रोधादि पच विकारो को समाप्त करके शरीर की आवश्यकताओ से मुक्त हो जाता है वह द्वैत रूपी लका पर विजय प्राप्त करता है।

(vii) लंका—ससार अथवा द्वैत भाव। 'रामचरित मानस' मे गोस्वामी तुलसीदास ने लका' का प्रयोग उस शरीर के लिए किया है, जिसमे 'अहकार' रूप रावण का निवास है। यथा—

सखा धरम मय अस रथ जाकें।
जीतन्ह कहँ न कतहुँ रिपु ताकें।

स्पष्ट है कि गोस्वामीजी 'विपक्षी भाव' से रहित हो जाने को ही शत्रु पर विजय मानते हैं।

(viii) ज्ञान के क्षेत्र मे जो अद्वैत है, योग के क्षेत्र मे वही समाधि है।

(ix) इस पद के अन्तर्गत डा० भगवतस्वरूप मिश्र की टिप्पणी द्रष्टव्य है। यथा—

"बाहरी उपकरणो मुद्रा, शृगी आदि को तत्त्व-प्राप्ति का मूलत' साधन मानने का खण्डन किया गया है। इनके मूल प्रतीकार्थो को ग्रहण करके इनको आभ्यतर साधनो के रूप मे अपनाने का संदेश दिया गया है। 'मुद्रा' निम्नलिखित

तीनो अर्थो मे गृहीत शब्द था। (i) भ्रू-स्पर्श आदि अग-स्थिति रूप मुद्रा, (ii) कुण्डल आदि शरीर पर धारण करने वाली वस्तुएँ, (iii) मैथुन तथा बिन्दु रक्षा के तान्त्रिक अनुष्ठानो के लिए स्वीकृत सह-साधिका नारी। कबीर इन तीनो को तत्त्व प्राप्ति का साधन नही मानते। ऐसी शृगी और खपरा के बाह्य रूप भी तत्व प्राप्ति के साधन नही। अत कबीर इनको आध्यात्मिक अर्थ दे रहे हैं।"

(२०७)

बाबा जोगी एक अकेला,
जाकै तीर्थ व्रत न मेला ॥ टेक ॥
झोली पत्र बिभूति न बटवा, अनहद बेन बजावै ॥
मांगी न खाइ न भूखा सोवै घर अगनां फिरि आवै ॥
पांच जनां की जमाति चलावै, तास गुरू मै चेला ॥
कहै कबीर उनि देसि सिधाये, बहुरि न इहि जगि मेला ॥

शब्दार्थ—पच जना=पाँच जन=पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ। जमात=समूह। चलावै=नियन्त्रित करता है।

सन्दर्भ—कबीरदास सिद्ध योगी का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—योगी ससार मे अपने ढग का एक अनोखा ही व्यक्ति होता है। उसको तीर्थ, व्रत, मेला इत्यादि से कोई प्रयोजन नही होता है। उसे झोली, पत्र, बटुआ, विभूति आदि बहिरग साधनो की कोई आवश्यकता नही होती है। वह तो आत्म-स्वरूप मे स्थित होकर अनहद-नाद रूपी वीणा बजाता है। वह न तो भीख माँगता है और न भूखा ही सोता है। (उसको अपने स्थान पर बैठे-बैठे और बिना माँगे हुए जीवन-यापन के साधन उपलब्ध हो जाते हैं)। वह अपने घट रूपी घर के हृदय रूपी आँगन मे ही वापिस आ जाता है अर्थात् वह सब ओर से अपना मन हटा कर आत्म स्वरूप मे स्थित हो जाता है। वह अपनी पाँचो ज्ञानेन्द्रियो के समूह को अपने नियन्त्रण मे रखता है। कबीरदास ऐसे ही योगी के चेले बनने को तैय्यार हैं, जो अपनी साधना के द्वारा इस संसार को छोडकर उस देश को चले गये हैं अर्थात जिन्होंने परमतत्त्व का साक्षात्कार कर लिया है और पुन. इस ससार में नही आएँगे अर्थात् जो आवागमन के चक्र मे फिर नही पडेंगे।

अलंकार—(i) भेदकातिशयोक्ति की व्यजना—एक अकेला।
(ii) रूपक—अनहद बेन।
(iii) विरोधाभास—मागी खाइ ' भूका।
(iv) रूपकातिशयोक्ति—पाच जना।

विशेष— (i) इस पद में भी बाह्य साधना के प्रतीको (तीर्थ, व्रत, मेला, झोली, पत्र विभूति, बटुआ बेन) को आभ्यन्तर-साधना-परक अर्थ दिए गए हैं।
(ii) आत्म स्वरूप स्थिति एव निस्पृहता योगी के प्रमुख लक्षण हैं।

(iii) उन देसि सिधाए—इस वाक्यांश में 'रहस्य भावना' की मार्मिक व्यंजना है। तुलना कीजिए—

देखि मानसर रूप सोहावा। हिय हुलास पुरइनि होइ छावा। (जायसी)
चकई री! चलि चरन-सरोवर जहाँ न प्रेम-वियोग।
निसि दिन राम नाम की वर्षा भय रुज नहिं दुख सोग। (सूरदास)

(iv) पाँच जना—कान, आँख, नाक, जिह्वा तथा त्वचा। (शब्द, रूप, गंध, रस तथा स्पर्श)

(२०८)

जोगिया तन कौ जंत्र बजाइ,
ज्यूं तेरा आवागवन मिटाइ॥ टेक॥
तन करि तांति धर्म करि डांडी, सत की सारि लगाइ।
मन करि निहचल आंसण निहचल, रसनां रस उपजाइ॥
चित करि बटवा तुचा मेषली, भसमैं भसम चढ़ाइ।
तजि पाषंड पांच करि निग्रह, खोजि परम पद राइ॥
हिरदै सींगी ग्यांन गुंणि बांधौ, खोजि निरंजन साचा।
कहै कबीर निरंजन की गति, जुगति बिनां प्यंड काचा॥

शब्दार्थ—जन्त्र=यन्त्र, वाद्य, बाजा। ज्यू=जिससे। आवागवन=जन्म मृत्यु का चक्र। तत=परम तत्त्व। सारि=लोहा। निहचल=निश्चल, एकाग्र और दृढ। प्यंड=पिंड, शरीर। काचा=कच्चा, व्यर्थ, निष्प्रयोजन। वटवा=वटने वाला। मेषली=मेखला, करधनी। पाँच पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ—आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा। गुणि=रस्सी।

सन्दर्भ—कबीरदास गेरुआ वस्त्रधारी साधुओं से कहते हैं कि सच्ची साधना से ही परमेश्वर की प्राप्ति होती है। अतः साधना करो, ढोंग छोड़ दो।

भावार्थ—कबीरदास कहते हैं कि हे गेरुआ वस्त्र-धारी साधुओ! तुम इन शृंगी आदि बाजों को बजाना छोड़कर अपने शरीर का ही बाजा बजाओ और उससे अनहदनाद की ध्वनि उत्पन्न करो, जिससे आवागमन का तेरा चक्र समाप्त हो जाए अर्थात् तुझे मोक्ष की प्राप्ति हो जाए। कबीरदास अब उस वाद्य-यन्त्र को बजाने का उपाय बताते हुए कहते हैं कि तत्त्व ज्ञान की ताँत बनाओ, धर्माचरण की डंडी बनाओ तथा उसमें सत्य का लोहा लगाओ, फिर मन और आसन को स्थिर करो एवं जीभ में मधुर वाणी का रस उत्पन्न करो। अपने मन को वटवा बनाओ, त्वचा को ही मेखला समझ लो, और इस मिट्टी के शरीर पर काम, क्रोध, मद, लोभ और मोह को जलाकर उसकी भस्म चढ़ाना आरम्भ करो। समस्त बाहरी दिखावों को छोड़कर पाँचों इन्द्रियों के ऊपर नियन्त्रण करो और तब परम पद के राजा या ब्रह्म (हरि) की खोज करो। अपने हृदय को शृंगी बाजा बनाओ और ज्ञान की करधनी को धारण करो अर्थात् अपने आपको ज्ञानाचरण की सीमाओं में बाँध दो

और फिर सत्य रूप अविकारी निरंजन की खोज करो। कबीरदास कहते हैं कि मेरे मतानुसार ब्रह्म की गति का ज्ञान प्राप्त किए बिना यह शरीर कच्चे घडे के समान निष्प्रयोजन सिद्ध होता है अर्थात् जो व्यक्ति ब्रह्म की खोज मे नही लगता है, उसका जीवन व्यर्थ है।

अलकार—(i) साग रूपक—पूरा पद। शरीर और वाद्य के मध्य साम्य द्वारा।

(ii) पदमैत्री—सत तत।

(iii) सभग पद यमक रस रसना, गति जुगति।

विशेष—(i) कबीरदास सन्यासियो को सच्चा योगी बनने को कहते हैं। बाह्याचार के प्रति कबीर का विरोध स्पष्ट है।

(ii) योग की प्रक्रियाओ के लिए देखे टिप्पणी पद सख्या ४, १५७, १६४ तथा २०२।

(२०६)

अवधू ऐसा ग्यांन बिचारी,
ज्यूं बहुरि न ह्वै संसारी ॥ टेक ॥
च्यत न सोज चित बिन चितवै, बिन मनसा मन होई।
अजपा जपत सुनि अभि अंतरि, यहु तत जानैं सोई ॥
कहै कबीर स्वाद जब पाया, बंक नालि रस खाया।
अमृत झरै ब्रह्म परकासै, तब ही मिलै रांम राया ॥

सदर्भ—कबीरदास राम-मिलन के मार्ग का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—रे साधक योगी! तुम ऐसा ज्ञान धारण करो जिससे तुम्हे इस ससार मे फिर दोबारा न आना पड़े। उस परम तत्व का चिन्तन करो जो बिना चित्त के ही सम्पूर्ण विश्व की चिन्ता करता है तथा जिसका मन तृष्णा आदि के विक्षेपो से रहित है। जो योगी अपने हृदय एव शून्य मण्डल मे अपने माया रहित आत्मस्वरूप मे अवस्थित रह कर अजपा (बिना बोले) जाप करता है, वही परम तत्त्व को जानता है। कबीर कहते हैं कि जब व्यक्ति इस तत्त्व के साक्षात्कार का स्वाद एक बार चख लेता है तो वह आध्यात्मिकता की ब्रह्मनाल का रस पीने के लिए निरन्तर आतुर बना रहता है और उसका स्वाद लेता रहता है। जब ज्ञान का यह अमृत निरन्तर भरता रहता है और ब्रह्म ज्योति का प्रकाश होता रहता है तभी यह मानना चाहिए कि भगवान राम मिल गये हैं। कायायोग का ब्रह्मनाल से प्राप्त रस तथा कमलो से प्राप्त ज्योति माया के विषय-जगत की ही वस्तुएँ हैं।

अलंकार—(i) विभावना—च्यंत ... होई।

(ii) विरोधाभास—अजपा जाप।

विशेष—'अजपा जाप' से तात्पर्य है 'अनहद नाद'। देखें टिप्पणी पद सं० १७५।

(२१०)

गोब्यन्दे तुम्हारे बन कन्दलि, मेरो मन अहेरा खेलै ।।
बपु बाड़ी अनगु मृग, रचिही रचि मेलै ।।टेक।।
चित तरउवा पवन षेदा, सहज मूल बांधा ।
ध्वांन धनक जोग करम, ग्यांन बांन सांधा ।।
षट चक्र कंवल बेधा, जारि उजारा कीन्हां ।
कांम क्रोध लोभ मोह, हाकि स्यावज दीन्हां ।।
गगन मण्डल रोकि बारा, तहाँ दिवस न राती ।
कहै कबीर छांड़ि चले, बिछुरे सब साथी ।।

शब्दार्थ—कदलि = कदली, केला । अहेरा = शिकार । वपु = शरीर । वाडी = वाटिका । अनग = मृग । तरउवा = साथ लगे रहने वाला, पदाति । खेदा = खदेडने वाला, श्वापदो को आखेट-स्थल की ओर भगाकर ले जाने वाला । मूल = मूलाधार चक्र । ध्वान = ध्यान । धनक = धनुष । स्यावज = सावज, शिकार ।

सन्दर्भ—कबीर शिकार के साथ रूपक बाँधते हुए कायायोग की साधना का वर्णन करते हैं ।

भावार्थ—हे गोविन्द ! तुम्हारे इस कदली वन मे अर्थात् जगत् मे मेरा साधक मन रूपी शिकारी शिकार खेल रहा है । इस शरीर रूपी बाटिका मे कामदेव रूपी पशु पर यह साधक मन ताक-ताक कर बाण चलाता है । इस शिकार मे चित्त रूपी तरउवा पवन रूपी खेदा की सहायता से पशुओ को खदेड कर एक स्थान पर बाँध देता है । भावार्थ यह है कि चित्त की चेतना ही वह पदाति है जो इस वन से भली भाँति परिचित है । वह इस साधक मत का मार्ग-दर्शन करता है । प्राणायाम की पवन ने इन विकाररूपी पशुओ को खदेड कर एव एक स्थान पर एकत्र करके उन्हे सहज स्वरूप की जड से बाँध दिया है । इस शिकार के लिए साधक ने ध्यान रूपी धनुष लेकर योग-रूपी कर्म से ग्यान रूपी बाण का सधान किया है अर्थात् लक्ष्य-भेद (विकार-शून्य सहज अवस्था की प्राप्ति) के प्रति उसको साधा है । इस साधक शिकारी ने कुण्डली जगा कर षटकमल चक्रो का भेदन कर लिया है और ज्ञानाग्नि प्रज्वलित करके प्रकाश कर दिया है । काम क्रोध लोभ मोह रूपी जानवरो का हाँका कर दिया गया है अर्थात् उनका शिकार कर दिया गया है । गगनमण्डल को रोककर शिकार का यह बाडा बनाया गया है । वहाँ न दिन है, न रात है । समाधिस्थ होने पर साधक को दिनरात का ज्ञान नही रहता है । दूसरी ओर शिकार करते समय दिनरात का विचार नही रह जाता है । कबीर कहते है कि साधक मन अब अद्वैतावस्था को प्राप्त हो गया है और उसके समस्त विकार रूपी साथी छूट गए है । इस पद का अर्थ अन्य प्रकार भी किया जा सकता है । इस शिकार मे अर्थात् उस सहज अवस्था की प्राप्ति मे अन्य साधनाओ तथा कर्मो मे रत अन्य साधक बिछुड गए हैं अर्थात् वे उस अवस्था

नही पहुँच पाते हैं। केवल ज्ञानी साधक ही सहजावस्था को प्राप्त होता है।

अलंकार—(i) सांग रूपक—सम्पूर्ण पद।
(ii) पुनरुक्ति प्रकाश—रुचि-रुचि।
(iii) पदमैत्री—ग्यान वान।

विशेष—(i) द्वितीय पंक्ति का पाठान्तर इस प्रकार है—रचिहीं रचि मेलै। का अर्थ होता है कि जिसमे इसे तूने भली भाँति रचकर भेज दिया है।

(ii) षटचक्र—देखे टिप्पणी पद संख्या ४, ७

(iii) गगन मण्डल—देखे टिप्पणी पद संख्या १६४

(iv) सहज रूप—देखे टिप्पणी पद संख्या ५, १५५

(v) पवन खेदा—देखे टिप्पणी पद संख्या ८

(vi) तुलना करें—कूटस्थ चित्त ही कबीर का साधक मन है—

रघुवर कहेउ लखन भल घाटू।
करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू।
लखन दीख पय उतर करारा।
चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा।
नदी पनच सर सम दम नाना।
सकल कलुष कलि साउज नाना।
चित्रकूट जनु अचल अहेरी।
चुकइ न घात मार मुठ भेरी।

(रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास)

द्रष्टव्य—योग साधना के अन्तर्गत प्राय अष्टचक्रो का उल्लेख प्राप्त होता परन्तु कबीर प्राय षट्चक्रो का ही वर्णन करते है। इन्होने शून्यचक्र एवं सुरति न को छोड दिया है। कबीर के द्वारा संकेतित षट्चक्र निम्नस्थ प्रकार हैं—

(i) मूलाधार—इसका स्थिति-स्थान योनि माना गया है। इसमे चार होते है। यह रक्त वर्ण का होता है। इसका लोक 'भू' है। इसका ध्यान करने क प्रकार की ध्वनि होती है, वह क्रमश वं, शं, षं, सं की होती है। उससे लाभ होने पर मनुष्य वक्ता, सर्वविद्या विनोदी, आरोग्य, मनुष्यो मे श्रेष्ठ, आनन्दित तथा काव्य-प्रबंध मे समर्थ हो जाता है।

(ii) स्वाधिष्ठान चक्र—इसका स्थिति-स्थान पेडू माना गया है। इसमे दल होते हैं। यह सिंदूर वर्ण का होता है। इसका लोक 'भुव' है। इसका ध्यान मे जो विशेष प्रकार की ध्वनि उत्पन्न होती है, वह क्रमश. भ, यं, रं, लं, वं होती है। इसके सिद्ध लाभ मे अहंकार विकार का नाश, योगियो मे श्रेष्ठ, रहित और गद्य-पद्य की रचना मे समर्थ विशेषगुण मनुष्य मे उत्पन्न हो ते है।

(iii) मणिपूरक चक्र—इसका स्थिति-स्थान नाभि कहा गया है। इसमे

दस दल होते हैं। यह नील वर्ण का होता है। इसका लोक 'स्व' है। इसका ध्
करने से क्रमश ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, की ध्वनियाँ झकृत होती
इसके सिद्ध लाभ होने से मनुष्य सहार पालन मे समर्थ तथा वचन-रचना मे
हो जाता है, और उसकी जिह्वा पर सरस्वती निवास करती है।

(iv) अनाहत चक्र—इसका स्थिति-स्थान हृदय मे होता है। इसमे द
दल होते हैं। यह अरुण वर्ण का होता है। इसका लोक 'मह' है। इ
ध्यान करने से एक प्रकार का अन्हद नाद झकृत होता है। वह क्रमश क, ख
घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ का होता है। इसके सिद्ध लाभ होने मे म
वचन रचना मे समर्थ, ईशित्व सिद्धि प्राप्त योगेश्वर, ज्ञानवान, इन्द्रियजित्,
शक्ति सम्पन्न हो जाता है।

(v) विशुद्ध चक्र—यह चक्र कण्ठ-स्थान मे स्थित होता है। इसके १६
होते हैं। यह धूम्र वर्ण का होता है। इसका लोक 'जन' है। इसका ध्यान क
क्रमश अ से लेकर अ तक सोलह स्वरो की अनहद ध्वनि झकृत होती है।
ध्यान सिद्ध होने पर मनुष्य काव्य-रचना मे समर्थ, ज्ञानवान्, उत्तम वक्ता,
चित्त, त्रिलोकदर्शी, सर्वहितकारी, नीरोग, चिरजीवी और तेजस्वी होता है।

(vi) आज्ञा चक्र— इसका स्थिति-स्थान दोनो भ्रुवो के मध्य है। इस
दल होते हैं। यह श्वेतवर्ण होता है। इसका लोक तप है। इसका ध्यान क
ह, क्ष का अनहद नाद क्रमश ध्वनित होता है। इसके सिद्ध लाभ से यो
वाक्य सिद्धि प्राप्त होती है।

(२११)

साधन कचू हरि न उतारै,
अनभै ह्वै तौ अर्थ बिचारै ॥टेक॥
बांणी सुरंग सोधि करि आणौं, आणौ नौ रग धागा ।
चन्द सूर एकन्तरि कीया, सोवत बहु दिन लागा ॥
पच पदार्थ छोड़ि समानां, हीरै मोती जड़िया ।
कोटि बरस लूं कचू सीया, सुर नर धधै पड़िया ॥
निस बासुर जे सोवै नांही, ता नरि काल न खाई ।
कहै कबीर गुर परसादै, सहजे रह्या समाई ॥

शब्दार्थ—कचू=कचुकी। अनभै=अभय, भय रहित।

सन्दर्भ – कबीर कहते हैं कि साधना और गुरु की कृपा के द्वारा
स्वरूप की प्राप्ति होती है।

भावार्थ—भगवान से यही प्रार्थना है कि वह साधन-धाम शरीर रूपी
को आत्मा से विलग न करे। जो जन्म-मरण के भय से मुक्त है, वही मेरे इ
के वास्तविक अर्थ को समझ सकता है, (क्योकि प्रभु की प्राप्ति अनेक ज
साधना के फलस्वरूप प्राप्त होती है तथा साधना के लिए 'साधन धाम म

द्वारा' मानव शरीर नितान्त आवश्यक है। जन्म-मरण वस्त्र-परिवर्तन मात्र है)। इस शरीर रूपी कंचुकी के वस्त्र को बनाने के लिए खोज कर बहुत सुन्दर करघा तथा नौ रग के धागे लाए गए हैं। अर्थात् इस शरीर को साधना के योग्य बनाने के लिए गुरु के सुन्दर उपदेश रूपी धागे द्वारा नव-द्वारो को आपूरित किया गया है। चन्द्र और सूर्य नाडियो को एक स्थान पर सुषुम्ना के साथ मिलाया गया है। इस प्रकार से साधन योग्य यह शरीर तैय्यार करने मे बहुत समय लगा है। पाँचो इन्द्रियो के विषयो (रूप, रस, शब्द, स्पर्श, गध) का त्याग करके साधना रूपी वस्त्र को ज्ञान और भक्ति के हीरे-मोतियो से युक्त किया गया है। जिन दिनों अनेक देवता और अन्य मनुष्य सासारिक विषयो मे फसे हुए थे, उन दिनो करोडो वर्षो तक साधना करके इस साधना योग्य शरीर को तैयार किया गया है। जो व्यक्ति रात-दिन सजगता पूर्वक साधना करके इस शरीर के द्वारा साधना करता है, उसको काल नही खाता है अर्थात् वह अमर हो जाता है। कबीर कहते हैं कि गुरु की कृपा के फलस्वरूप वही व्यक्ति सहज-स्वरूप को प्राप्त होता है।

अलकार—(i) साग रूपक—सम्पूर्ण पद मे।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—साधन, नौ रंग, हीरै मोती।
(iii) छेकानुप्रास— सहजै, समाई।

विशेष—(i) 'कचुकी' से ईश्वर के प्रति पतिभाव की व्यजना है। साधक निष्ठापूर्वक पतिरूपी परमेश्वर की आराधना करे। अन्तःकरण को भक्ति-भावना और ईश्वर-प्रेम के उपयुक्त बना लेना ही इस शरीर रूपी कचुकी को तैय्यार करना है।

(ii) कोटि बरस " सीया—तुलना कीजिए—

कोटि जन्म मुनि जतन कराहीं। अत राम कहि आवत नाहीं।
(गोस्वामी तुलसीदास)

बहूना जन्म नामन्ते ज्ञान वान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभ।
(श्रीमद्भगवद्गीता ७/१९)

(iii) निस बासुर सोवै नाही—तुलना कीजिए—

या निशा सर्वभूताना तस्याम् जागर्ति संयमी।
यस्याम जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुने।
(श्रीमदभगवद्गीता २/६९)

(२१२)

जीयत जिनि मारै मुवा मनि ल्यावै,
मास बिहूंणा घरि मत आवै हो कंता ॥टेक॥
उर बिन पुर बिन चच बिन, बपु बिहूनां सोई।
सो स्यावज जिनि मारै कता, जाकै रगत मास न होई॥

पेली पार के पारधी, ताकी धुनही पिनच नही रे ।
ता बेलि को ढूंक्यौ मृग लौ, ता मृग कैसी सनहीं रे ।।
मारचा मृग जीवता राख्या, यहु गुर ग्यांन मही रे ।
कहै कबीर स्वामी तुम्हारे मिलन कौं, बेली है पर पात नहीं रे ।।

शब्दार्थ—जिनि=मत । मुवा=मृत, मरा हुआ । बिहूणा=रहित । मास =गोसास, इन्द्रियो द्वारा प्राप्त होने वाला भक्ति एव ज्ञान का रस । स्यावज =शिकार । रगत=रक्त । पैली पार के=श्रेष्ठ । पारधी=शिकारी । धुनही =धनुही, धनुष । पिनच=प्रत्यचा । वेली=वेल । पान पत्ते । विक्षेप=सकल्प-विकल्प ।

सदर्भ—जीवात्मा अपने ही साधक-रूप को पति मानकर कह रही है ।

भावार्थ—हे मेरे प्रियतम, मन रूपी मृा को जीवित मत मारो और मरे हुए मृग को भी घर मत लाओ । अभिप्रेत यह है कि मन का दमन उचित नही है। दमित मन निर्जीव हो जाता है । उसका भी कोई उपयोग नही है । भावुक मन ही जीवन का लक्षण है । यदि मन निर्जीव होजाएगा, तब फिर ईश्वर के प्रति प्रेम करने का साधन ही क्या रह जाएगा ? यदि शरीरस्थ मनोवेग समाप्त हो जाएँगे ? तब फिर ईश्वर के प्रति ललक कहाँ रह जाएगी ? परन्तु तुम मास रहित भी घर मत आना अर्थात् तुम मन का उन्नयन करना, जिससे वह निर्जीव तो हो नही और उसी के द्वारा तुमको भक्ति और ज्ञान रूपी महारस की प्राप्ति हो जाए । जब तक भक्ति और ज्ञान के महारस द्वारा समस्त इन्द्रियाँ आप्लावित न हो जाएँ, तब तक तुम अपनी साधना मे लगे रहना मेरे बारे मे चिन्तन तक न करना, क्योकि जब तक रास्ता पूरा न होजाए, तब तक घर पहुँचना कैसा ?

इस तुच्छ साधना से कुचले हुए मन-रूपी मृग के न हृदय है, न खुर है, न मुख है और न शरीर है । हे पति, उस जन्तु का शिकार मत कर जिसमे न रक्त है, और न मांस ही है । तुम अत्यन्त श्रेष्ठ शिकारी हो तुम्हारे धनुष मे प्रत्यचा ही नही है । अर्थात् तुम कृच्छ्र साधनाओ के बिना ही इस मन-रूपी मृग को अपने वश मे कर लेने की सामर्थ्य रखते हो । इस वशीभूत मन-रूपी मृग ने सासारिक माया-रूपी बेल के वासना-रूप पत्तो को नष्ट कर दिया है । इस साधक-मन रूपी मृग के अब सिर नही है अर्थात् अहकार एव विषयो को ग्रहण करने की इसकी सामर्थ्य समाप्त होगई है ।

गुरु के ज्ञान की यही महिमा है कि साधक ने इस मन-रूपी मृग को मार भी लिया है और जीवित भी रखा है, अर्थात् इसकी विषय-भोग की आकांक्षा एव उनमे लिप्त होने की भावना नष्ट होगई है, पर यह भगवद् भक्ति के अनुरूप विषयो को ग्रहण करता है । कबीरदास कहते है कि हे स्वामी ! अब आपसे मिलने

के समय मेरे पास स्वानुभूति रूपी वेल मात्र है, उसके विक्षेप रूपी पत्ते नष्ट हो चुके हैं।

अलंकार—(i) साग रूपक—सम्पूर्ण पद।
(ii) विरोवाभास—जीवन ......कता, मार्या......राख्या, वेलि 'पात नही।
(iii) विभावना की व्यजना—उर बिन... ...सोई, मृग कै सीस नही रे, धुनही पिनच नही रे।
(iv) अनुप्रास—तृतीय पक्ति, व की आवृत्ति।

विशेष— (i) वैराग्य की कुछ साधनाओ मे मन को कुचल कर विषयो से असम्पृक्त करना न उचित है और न सम्भव ही है। कबीरदास ने इसी मनोवैज्ञानिक तथ्य का प्रतिपादन किया है। उनका कहना है कि भावनाओ का उन्नयन करके विषयो को भक्तिमय बना देना ही काम्य है।

(ii) उर बिन... विहू ना—मन का हृदय उसकी सरसता है, 'खुर' आदि से व्यजित आकार भी संकल्प-विकल्प एव वासना रूप ही हैं। वे सब इस कृच्छ साधना से छिप गए हैं। ऐसे पशु का शिकार ही क्या करना, क्योकि विषयो से वचित की गई इन्द्रियाँ मृतवत् प्रतीत होती हैं।

(iii) रगत न मारा—उस साधना मे तल्लीन मत होओ जिसमे केवल ज्ञान-वैराग्य की शुष्कता है और प्रेम भक्ति के रस का अभाव है। इन पक्तियो मे कबीर का भावुक भक्त उभर आया है।

(iv) ता वेल को...ली—विक्षेपरहित माया पर साधक मन का अधिकार होगया है—उसको वह देख भर रहा है।

(v) तुम्हरे मिलन... पात नही रे—अब मेरी मनस्थिति विक्षेपरहित है। पत्ते रहने पर वेल के वृक्ष को परिवेष्ठित करने मे कुछ व्यवधान रहता है, परन्तु पत्तो के अभाव मे वेल पूरी तरह से वृक्ष से लिपट सकती है। अतएव विक्षेपरहित जीवात्मा अपने साध्य प्रियतम से पूर्णतया आवद्ध (एकाकार) होने की स्थिति को प्राप्त होगई है। मायारहित जीव अपने पति परमेश्वर मे पूर्णत तदाकार होने को प्रस्तुत है।

(vi) इन पक्तियों मे सूफियो के रहस्यवाद की व्यजना है। भक्तजन भी आवरणरहित होकर ही प्रभु-मिलन को काम्य मानते हैं। ब्रज की गोपियो ने भी कृष्ण को तभी प्राप्त किया था, जब उन्होने पूर्ण नग्नावस्था को सहर्ष स्वीकार कर लिया था। द्रौपदी के रक्षार्थ कृष्ण तभी आए थे जब उसने अपनी धोती की गाँठ का ध्यान छोड़कर दोनो हाथ ऊँचे करके मुरारी को पुकारा था। आवरणरहित साधक मन ही [illegible] है।

(vii) [illegible] साधना से (हठयोगी साधना) का [illegible] प्रेरणा है।

(viii) भाव साम्य के लिए देखे—

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिन ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ।

(श्रीमद्भगवद्गीता २/५६)

(२१३)

धीरौ मेरे मनवां तोहि धरि टांगौं,
तै तौ कियौ मेरे खसम सूं षांगौं ।। टेक ।।
प्रम की जेवरिया तेरे गलि बांधूं, तहां लै जांउं, तहां मेरौ माधौ ।।
काया नगरी पैसि किया मै बासा, हरि रस छाड़ि विषै रसि माता ।।
कहै कबीर तन मन का ओरा, भाव भगति हरि सूं गठजोरा ।।

शब्दार्थ—खागौं = खोट, बुराई । जेवरिया = रस्सी । माता = मत्त, लिप्त । गठ-जोरा = ग्रथि-बधन, विवाह ।

संदर्भ—साधक कबीर ज्ञान की उत्पत्ति का वर्णन करते हैं ।

भवार्थ—कबीर कहते हैं कि रे मेरे विषयी मन, तू जरा धैर्य धारण कर अथवा तू जरा ठहर जा । मैं तुझको अभी पकड कर टाँगता हूँ अर्थात् दण्डित करता हू । 'धरि टागौ' का अर्थ 'उलटा टाँगना' भी हो सकता है । तब इसका अर्थ इस प्रकार होगा कि मै तुझे विषयाभिमुख न रहने देकर आत्माभिमुख करता हूँ । तुमने मेरे पति भगवान के साथ खोटाई (बुराई) की है ।

मै तेरे गले मे भगवद्प्रेम की रस्सी डालूगा और बाँधकर तुझे वहाँ ले जाऊगा जहाँ मेरे माधव हैं ।

मन उत्तर देता है कि मैंने इस कायारूपी नगरी मे प्रविष्ट होकर भक्ति रस को छोड दिया था, और मै विषय-रस मे लिप्त होकर अपने आपको भूल गया था। पर अब मैंने तन-मन भगवान को अर्पित कर दिए है और मेरी भाव भक्ति का गठबन्धन भगवान से होगया है ।

अलकार—(i) छेकानुप्रास—धीरौ धरि, भाव भगति, मेरो माधौ ।
(ii) रूपक—प्रेम की जेवरिया, काया नगरी हरिरस ।
(iii) पदमैत्री—तन मन ।

विशेष—(i) मन का मानवीकरण ।

(ii) खसम—सत सम्प्रदाय का प्रतीक है । दाम्पत्य भाव के आवरण मे भक्ति-भावना की व्यजना है । यह सूफियों का प्रभाव है ।

(iii) भाव साम्य देखे—

अबलौं नसानी, अब न नसैहौं ।
राम-कृपा भव-निसा सिरानी, जागें पुनि न डसैहौं ।
× × ×
परवस जानि हँस्यो इन इन्द्रिन, निज वस ह्वै न हँसैहौं ।

मन मधुकर मन कै तुलसी रघुपति-पद-कमल बसैहौं।
—गोस्वामी तुलसीदास

(२१४)

पारब्रह्म देख्या हो तत बाड़ी फूली, फल लागा बडहूली ।
सदा सदाफल दाख बिजौरा कौतिकहारी भूली ॥ टेक ॥
द्वादस कूंवा एक बनमाली, उलटा नीर चलावै ।
सहजि सुषमनां कूल भरावै, दह दिसि बाड़ी पावै ॥
ल्यौकी लेज पवन का ढीकू, मन मटका ज बनाया ।
सत की पाटि सुरति का चाठा, सहजि नीर मुकलाया ॥
त्रिकुटी चढ्यौ पाव ढौ ढारै, अरध उरध की क्यारी ।
चंद सूर दोऊ पांणति करिहै, गुर मुषि बीज बिचारी ॥
भरी छाबड़ी मन बैकुंठा, सांई सूर हिया रगा ।
कहै कबीर सुनहु रे संतौ, हरि हम एकै संगा ॥

शब्दार्थ—बडहूली = बडहुल, बडे-बडे। सदाफल = हमेशा फलने वाला। दाख = अंगूर। द्वादस कूंवा = बारह कुएँ, यहाँ १२ पखुडी वाले अनाहत चक्र से तात्पर्य है। कूल = किनारा। लौ = ध्यान। लेज = रस्सी। पवन = प्राणायाम। ढीकू = ढीकुली। पाट = पाटी। चाठा = कुए का किनारा। मुकलाया = मुक्त किया, बहाया। पाव ढौ ढारै = पानी बहाकर क्यारियो को भलीभाँति भरना। अरध = नीचे। उरध = ऊपर। पाणति = पानी को फैलाना। मुषि = मुख। छाबड़ी = डलिया। बैकुंठा = बैकुंठ को प्राप्त, अत्यधिक उल्लसित। सूर = शूर। हिया रगा = हृदय प्रेम से रंग गया।

संदर्भ—पूर्व पद के समान।

भावार्थ—परब्रह्म के दर्शन से अन्त करण रूपी बगिया आनंदित होगई है और उसमे विभिन्न सिद्धियो के बडे-बडे फल लग गए है अर्थात् वह पुरुषार्थ चतुष्टय रूपी बडे फलो से युक्त होगई है। अथवा यो कहिए कि उसमे मोक्ष-रूपी बडहल का फल लग गया है।

इसमें सत्य संकल्प आदि के प्रतीक सदाफल अंगूर, बिजौरे जैसे फल हमेशा के लिए लग गए है। जीवात्मा इन विभिन्न ऐश्वर्यों एवं सिद्धियो के फलों को देख कर आश्चर्यचकित है। इसमें बारह कुएँ है और केवल साधक मन रूपी केवल एक माली है। अथवा यह कहिए कि हृदयस्थ अनाहत चक्र के द्वादश दल ही बारह कुएँ है। साधक मन इनसे आनन्द रूपी जल खींच कर उलटा बहाता है। इसमे जल ऊपर से निकलता है नीचे से नहीं। इस साधना से चेतना का प्रवाह आनन्द की खोज में बहिर्मुख न रह कर अन्तर्मुखी एवं आत्ममुखी होजाता है। यही उलटा नीर चलाना है।

इस प्रकार [illegible] सुषुम्ना [illegible] भर कर [illegible] नाड़ियाँ भर आती है। कबीर

की वाडी इस जल से दशो दिशाओ मे सर्वत्र अभिषिक्त हो जाती है। अर्थात् समस्त इन्द्रियाँ इस आनद के जल से आप्लावित होजाती हैं।

ध्यान की रस्सी, प्राणायाम की ढीकुली, मन का घडा, सतोगुण की पटिया, तथा सुरति रूपी कूप का किनारा—जल निकालने के इन साधनो से साधक रूपी वनमाली ने सहज आनन्द का बहुत सा जल बहा दिया है। त्रिकुटि मे अवस्थित यह साधक अपने पैर से पुर ढुरकाकर नाडियो अथवा इन्द्रियो रूपी नीची-ऊँची सब क्यारियो को पानी देता है। चन्द्र और सूर्य नाडियाँ इस पानी को विभिन्न नालियो के द्वारा चारो ओर फैलायेगी, तथा सत् गुरु के मुख से निकले हुए विचार-पूर्ण शब्द अर्थात् ज्ञानोपदेश ज्ञान और भक्ति के बीज रूप हैं अर्थात् ईश्वर के प्रति जाग्रत अनुराग से जनित सरसता मे गुरु के मुख से निकले हुए उपदेश ही बीजो के रूप मे विकीर्ण होकर भक्ति एव तत्वज्ञान के रूप मे पल्लवित होगे। मन की डलिया अब आत्मबोध भक्ति आदि के फलों से भर गई है, और हृदय इस प्रकार उल्लसित है मानो उसे स्वर्ग मिल गया हो। मन शूरवीर परमात्मा के प्रेम मे रग गया है। कबीरदास कहते हैं कि हे सतो ! सुनो। अब मै और हमारे प्रभु परमात्मा एक साथ ही रहने लगे है।

अलंकार—(i) रूपकातिशयोक्ति—फल, कौतिक हारी, छाबडी।
(ii) सभग पद यमक—सदा सदाफल।
(iii) चपलातिशयोक्ति—देखा ..... फूलीं।
(iv) छेकानुप्रास—सहजि सुषुम्ना, दह दिसि, साईं सूर, हरि हम।
(v) रूपक—लौ ..... चाठा, बीज बिचारा।
(vi) वृत्यानुप्रास—सुनहु सतौ सगा।

विशेष—(i) हरि हम एकै सगा—सालोक्य मुक्ति की व्यजना है। वैसे व्यग्य भाव यही है कि कबीर और भगवान का तादात्म्य होगया है। अन्यत्र भी लिखा है कि—

तब हम वैसे, अब हम ऐसे, इहै जनम का लाहा।
ज्यूं जल में जल पैसि न निकसै, यूं ढरि मिल्या जुलाहा।

तथा— बालम आओ हमारे गेह रे।

× × ×

एकमेक ह्वै सेज न सोवै, तब लगि कैसा नेह रे।

नित्य दर्शन की आकाक्षा करने वाले भक्तजन सालोक्य मुक्ति की ही कामना करते आए हैं।

(ii) नाथ सम्प्रदाय के प्रतीको का प्रयोग है।

(iii) कायायोग की सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्रेम एव तत्व दर्शन से प्राप्त हो जाती है। कबीर का भक्त रूप स्पष्ट ही व्यजित है।

(२१५)

रांम नांम रंग लागौ, कुरंग न होई ।
हरि रंग सौ रंग और न कोई ॥ टक ॥
और सबै रंग इहि रग थै छूटै, हरि रग लागा कदे न खूटै ॥
कहै कबीर मेरे रंग रांम राई, और पतग रग उड़ि जाई ।

शब्दार्थ—कुरग=फीका, भद्दा । कदे=कभी । खूटै=छूटता है । पतग = पतगी, कच्चा ।

सन्दर्भ—कबीरदास राम-प्रेम की महिमा का प्रतिपादन करते हैं ।

भावार्थ—राम नाम के प्रति प्रेम हो जाने पर अन्य किसी के प्रति आसक्ति उत्पन्न नहीं होती है । राम प्रेम एक ऐसा रग है जो कभी हल्का नही होता है । भगवान के प्रेम के समान अन्य किसी का प्रेम नही है । हरि-प्रेम हो जाने पर अन्य समस्त वस्तुओ के प्रति आकर्षण समाप्त हो जाता है । हरि प्रेम का रग एक बार लगने पर कभी भी कहीं छूटता है । कबीर कहते हैं कि भगवान राम का प्रेम रूपी रग मेरे ऊपर चढ गया है । अन्य समस्त रग तो अस्थायी है । वे सब उड़ जाते हैं । अभिप्रेत यह है कि राम के प्रति प्रेम स्थायी रहता है । इसी से कबीरदास ने राम से प्रेम कर लिया है ।

अलकार—(i) सभग पद यमक—रग कुरंग ।
(ii) अनन्वय -हरि रग सौ कोई ।
(iii) अनुप्रास—अन्तिम दो चरण ।
(iv) विशेषोक्ति की व्यजना—कदे न खूटै ।
(v) रूपक—हरि रग ।

(२१६)

कबीरा प्रेम कूल ढरै, हंमारे राम बिना न सरे ।
बांधि लै धोरा सींचि लै क्यारी ज्यू तू पेड़ भरै ॥ टेक ॥
काया बाड़ी मांहै माली, टहल करै दिन राती ।
कबहू न सोवै काज सबारे, पांणतिहारी माती ॥
सेझ कूवा स्वांति अति सीतल, कबहूं कुवा वनहीं रे ।
भाग हमारे हरि रखवाले, कोई उजाड़ नहीं रे ॥
गुर बीज जमाया कि रखि न पाया, मन की आपदा खोई ।
औरै स्यावढ करै पारिसा, सिला करै सब कोई ॥
जो घरि आया तो सब ल्याया, सबही काज सवारचा ।
कहै कबीर सुनहु रे संतो, थकित भया मैं हारचा ॥

शब्दार्थ [illegible]=[illegible] । सरै=काम चलता है । धोरा=कुण्ड, [illegible] [illegible] । [illegible] पानी को [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] न पाया=[illegible]

निपाया । कुवाव=बुरी हवा, कुवायु । स्यावढ=सावढ, स्वामी, साधक से तात्पर्य । खारिसा=खालिस, एकाधिकार । सिला=सिलोच्छ । फसल कटने के बाद खेत मे पडे हुए दाने, इच्छवृत्ति । औरै=निराला । स्वाति=शाति । सभै=सहजै ।

सन्दर्भ—कबीरदास भगवद्‌प्रेम का वणन करते हैं ।

भावार्थ—कबीर के राम-प्रेम के किनारे ढल गए हैं । अब राम के बिना उनका काम नही चलता है । रे जीव, तू प्रेम-जल को प्रवाहित करने योग्य नाली बना ले अथवा अपने मन-मानस को प्रेम जल के प्रवाह-योग्य माध्यम बना ले और अपनी जीवन रूपी क्यारी मे इस प्रेम-जल को भर ले जिससे तेरा मन रूपी वृक्ष किसी प्रकार रससिक्त हो जाए । यह शरीर ही वाटिका है और साधक जीव ही माली है जो इस प्रेम-वाटिका की रखवाली करता है । यह माली दिन रात वाटिका की सेवा करता है । यह रखवाला कभी नही सोता है । और अपने काम को सब तरह से ठीक रखता है अथवा अपने काम के प्रति सदैव सजग रहना है और उसकी कभी उपेक्षा नही करता है, जबकि जल की नालियो को इधर-उधर मोडकर क्यारियो मे पानी देने वाली उसकी इन्द्रियाँ अत्यन्त मस्त है । और वे इस प्रेम-जल का सम्यक् उपयोग नही करती हैं । वे अपने रग मे मस्त हैं और प्रेम-जल का बहुत बडा भाग व्यर्थ ही नष्ट होता रहता है । इस खेती की सिचाई के लिए सहज-स्वरूप का अत्यन्त शीतल और मधुर जल वाला कुआ है । वहाँ पर कभी भी कुवायु नही चलती है अर्थात् वहाँ लू आँधी आदि का भय नही है—सदैव शान्ति का साम्राज्य रहता है । (सहज आनन्द स्वरूप का नित्य लक्षण ही यह है) ।

इस प्रेम की बाडी के रखवाले स्वय भगवान हैं । यही हमारा परम सौभाग्य है । इसी से कोई भी इस वाडी को नष्ट नही कर पाता है ।

गुरु ने इस बाडी मे प्रेम का बीज बोया है । साधक मन ने उस खेती को निष्पादित किया अथवा उससे उत्पन्न खेती के फलो को प्राप्त किया है और मन के समस्त सशय आदि नष्ट हो गए हैं । खेती पर पूर्ण अधिकार करने वाला साधक निराला ही होता है – वह कुछ भिन्न प्रकार का ही होता है । सामान्य साधक तो खेत मे पडे हुए अनाज के दानो को ही – सामान्य सिद्धियो को ही—प्राप्त करके सतुष्ट हो जाते हैं । जो सम्पूर्ण फसल को एकत्र करके लाता है, सब काम ठीक करता है और उसी का घर आना सार्थक है । अभिप्रेत यह है कि जो पूरी तरह से भगवान मे लवलीन हो जाता है, वही सहज स्वरूप को प्राप्त होता है और उसी की साधना सफल मानी जाती है । कबीर कहते हैं कि हे सतो ! सुनो, मैं तो प्रेम-साधना का उपदेश देते-देते थक कर हार गया हूँ – मैं प्रेम का उपदेश देते-देते थक गया हूँ । ससार के लोगो पर कुछ भी असर नही हुआ है । अत मैं हार मान कर बैठ गया हूँ ।

अलकार—(i) साग रूपक—प्रथम चार पक्तिया ।

(ii) रूपकातिशयोक्ति—माली, पेड़, वीज ।

(iii) भेदकातिशयोक्ति—औरै स्यावढ ।

विशेष—(i) प्रतीको का प्रयोग है ।

(ii) स्यावढ एव 'मिला' शब्दो के द्वारा जैन एव हिन्दू धर्मावलम्बी साधको के प्रति सकेत है ।

(iii) 'घर आना' मुहावरा है । तात्पर्य है स्व-स्वरूप-स्थिति ।

(iv) हरि से तात्पर्य आत्माराम है ।

(v) भाग हमारे······खोई— भाव साम्य देखिए—

जतन बिनु मिरगनि खेत उजारे ।

× × ×

बुधि मेरी किरषी, गुरु मेरो बिझुका, अक्खिर दोइ रखवारे ।
कहै कबीर अब जान न देहौं, बरियाँ भली सँभारे ।

(कबीरदास)

(२१७)

राजा राम बिनां तकती घो घो ।
राम बिनां नर क्यूं छूटौगे, जम करै नग घो घो घो ।। टक ।।
मुद्रा पहरयां जोग न होई, घूंघट काढ्यां सती न कोई ।
माया कै संगि हिलि मिलि आया, फोकट साटै जनम गँवाया ।।
कहै कबीर जिनि पद हरि चीन्हां मलन प्यड थे निरमल कीन्हां ।।

शब्दार्थ—साटै=सट्टा । फोकट=व्यर्थ । प्यड=शरीर । नग=श्रेष्ठ व्यक्ति ।

संदर्भ—कबीर का कहना है कि राम नाम के बिना जीवन व्यर्थ है ।

भावार्थ—राम की कृपा के बिना मनुष्य का शरीर "घों-घों" करके जलता है और दुनिया देखती रहती है अथवा कोई भी उसकी रक्षा नही कर सकता है । राम की कृपा के बिना मनुष्य किसी तरह भी मृत्यु के फंदे से नही बच सकता है । यमराज बड़े-बड़ो को घो-घो कर (असहाय बनाकर) जला देता है । केवल मुद्रा धारण करने मात्र से योग की साधना नही होती है । घूँघट निकाल लेने मात्र से कोई स्त्री सती नही कहलाती है । जीव भगवान मे ध्यान न लगाकर माया के साथ हिल-मिल जाता है, और इस प्रकार सट्टे के व्यापार की भाँति अपने जन्म को व्यर्थ ही नष्ट कर देता है । कबीरदास कहते है कि जिन्हें भगवान के स्वरूप का साक्षात्कार हो जाता है, अथवा जिन्होंने हरि के चरणो मे ध्यान लगा लिया है, उन्हीं का जन्म सार्थक है, उन्होंने इस पाप-मलिन शरीर को पुण्य-स्थान बना लिया है ।

अलंकार—(i) पुनरुक्तिप्रकाश—घो घो ।

(ii) वक्रोक्ति—नर क्यू छूटोगे ।

(iii) पदमैत्री—हिलि मिलि ।

विशेष—मुद्रा······कोई—बाह्याचार का विरोध है । कबीर बार-बार यही

कहते हैं कि बाहरी वेष धारण करने से नही अपितु सच्ची भावना से व्यक्ति भक्त अथवा साधक बनता है। ठीक ही है—

जप माला छापें तिलक सरें न एको काम।
मन काचे नाचे वृथा साँचै राचै राम। (बिहारी)

(२१८)

है कोई रांम नांम बतावै,
बस्तु अगोचर मोहि लखावै ॥ टेक ॥
रांम नांम सब कोई बखांनै, रांम नांम का मरम न जांनै ॥
ऊपर की मोहि बात न भावै, देखै गावै तौ सुख पावै ।
कहै कबीर कछू कहत न आवै, परचै बिनां मरम को पावै ।

शब्दार्थ—अगोचर = इन्द्रियो के लिए अगम्य। लखावै = दिखावै। ऊपर की बात = कही सुनी अथवा पढी-पढाई। परचै = परिचय।

सन्दर्भ—कबीर कहते हैं कि आत्मानुभूति के बिना राम का रहस्य समझ मे नही आता है।

भावार्थ—क्या कोई ऐसा सन्त है जो मुझे राम नाम के रहस्य को समझा-कर उस अगम्य एव अगोचर परम तत्व का साक्षात्कार करा दे ? वैसे राम-नाम की चर्चा तो सभी लोग करते हैं परन्तु राम नाम के वास्तविक रहस्य को कोई नही जानता है। सुनी-सुनाई अथवा पढी-पढाई बातो की चर्चा मुझको अच्छी नही लगती है। यदि कोई व्यक्ति भगवान के स्वरूप का साक्षात्कार करके इसका वर्णन करता है तो उसकी बात सुनकर मुझको आनन्द की प्राप्ति होती है अथवा आत्मानुभव करने वाले की बात सुनना ही मुझको रुचिकर प्रतीत होता है। कबीर कहते हैं कि उस परम तत्व (भगवान) के विषय मे कुछ कहते नही बनता है अर्थात् वह शब्दातीत है। साक्षात्कार के बिना उसके वास्तविक स्वरूप का ज्ञान किसी को प्राप्त नही होता है।

अलकार—(i) वक्रोक्ति— प्रथम एव अतिम पक्ति।
(ii) विरोधाभास—वस्तु · लखावै।
(iii) विशेषोक्ति की व्यजना—राम नाम जानै।
(iv) पदमैत्री—भावै पावै, आवै पावै।
(v) अनुप्रास—कहै कबीर कछू कहत।

विशेष – (i) कबीर सच्ची अनुभूति प्राप्त करने के लिए सदैव उत्सुक रहा करते थे। वाह्याचार उन्हे किसी भी दशा मे रुचिकर नही था। वाह्याडम्बर को वह प्राय ढोग ही मानते थे।

(ii) राम का स्वरूप वर्णनातीत एव अगम्य है। उसका मर्म कोई नही जानता है। यह तो गूगे का गुड है। इसकी अगम्यता का वर्णन दार्शनिक एव भक्तजन समान रूप से करते आए हैं। देखें—

जगु पेषन तुम देखन हारे। विधि हरि सभु नचावन वारे।
सोउ न जानहि मर्म तुम्हारा। और तुम्हहि को जाननिहारा।
—गोस्वामी तुलसीदास

(२१६)

गोव्यंदे तूं निरंजन तूं निरंजन तूं निरजन राया ।
तेरे रूप नहीं रेख नाही मुद्रा नहीं माया ।। टेक ।।
समद नाही सिषर नाहीं, धरती नाहीं गगनां ।
रवि ससि दोउ एकै नांही, बहत नांही पवनां ।।
नाद नाही व्यंद नाही, काल नांहीं काया ।
जब तैं जल व्यब न होते, तब तू ही राम राया ।।
जप नांही तप नांही, जोग ध्यांन नहीं पूजा ।
सिव नांही सक्ती नांही, देव नही दूजा ।।
रुग न जुग न स्यांस अथरवन, बेद नहीं व्याकरनां ।
तेरी गति तूंही जांनै, कबीर तो सरनां ।।

शब्दार्थ—निरजन=निर्लिप्त। मुद्रा=भावसूचक मुखचेष्टा । समद=समुद्र। सिषर=शिखर, पर्वत या पर्वत की चोटी। व्यद=विंदु, शरीर।

सन्दर्भ—कबीर भगवान को शब्दातीत अथवा वर्णनातीत बताते हैं।

भावार्थ—हे परमात्मा! तू सब प्रकार माया से अतीत एव निर्लिप्त तथा अलक्ष्य है। न तुम्हारा कोई आकार है और न तुम्हारे आकार की कोई रूप-रेखा ही है। तुम्हें प्राप्त करने के लिए कोई शारीरिक चेष्टा एव मन की मुद्रा ही निर्धारित की जा सकती है। तुम्हे माया भी नही व्यापती है। न तुम्हारे शुद्ध स्वरूप मे समुद्र है, न शिखर (पर्वत) है, न पृथ्वी है और न आकाश ही है। उसमे सूर्य तथा चन्द्र मे एक भी नहीं है, न वहाँ पवन की गति है, न वहाँ शब्द है, न रूप है, न काल है, न काया है। तुम्हारे शुद्ध स्वरूप मे न जल रह जाता है और न उसमे पडने वाला प्रतिबिम्ब रह जाता है। उस समय न जप रहता है न तप रहता है, न योग रहता है न ध्यान और उपासना का ही अस्तित्व रह जाता है। उस समय न शिव रह जाते हैं और न शक्ति रह जाती है। उस समय तेरे अतिरिक्त अन्य कोई दूसरा देवता रह ही नही जाता है। उस समय ऋगवेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद तथा शब्द का प्रतिपादक व्याकरण कुछ भी नही रह जाते हैं। कबीरदास कहते हैं कि हे प्रभु! अपनी सीमा तू ही जानता है। मै तो केवल तेरी शरण मे आया हूँ।

अलंकार—अनुप्रास—आवृत्ति।

विशेष—(i) अद्वैतवाद का सहज-स्वाभाविक प्रतिपादन है। अद्वैतावस्था मे ज्ञाता, ज्ञेय तथा ज्ञान का भेद मिट ही जाता है।

(ii) तू निरजन ... राया—मन-वचन-कर्म तीनों मे एकाग्रता बताई है।

(iii) शास्त्रोचित भाषा मे 'नेति नेति' की शैली पर 'ब्रह्म' का प्रतिपादन है।

(IV) नही माया—माया के द्वारा लिप्त होते ही देश-काल की सीमाएँ आ जाती हैं। इसी से कबीर कहते है कि तुझे माया व्यापती नही है और तू रूप-रेख आदि के परे बना रहता है।

(V) जल मे' ' ' होते—शुद्ध चैतन्यावस्था मे मूल प्रकृति और उसमे चैतन्य के प्रतिविम्ब स्वरूप जगत दोनो का अभाव रहता है। प्रतिविम्ब का हेतु उपाधि है। अत' अभाव के अभाव मे उस समय प्रतिविम्ब नही होता है।

(VI) तेरी गति सरना—तुलना कीजिए—

सोइ जाने जेहि देउ जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हहि होइ जाई।
तुम्हरिह कृपा तुम्हहि रघुनन्दन। जानत भगत भगत उर चन्दन।

—गोस्वामी तुलसीदास

(VII) इस पद के नीचे लिखी गई यह टिप्पणी सर्वथा सार्थक है—'स्वगत सजातीय एव विजातीय इन तीनो प्रकार के भेदो से रहित अद्वैत-तत्व का ज्ञान और भक्ति के मिश्रण वाली शैली मे प्रतिपादन है। 'सदेव सोम्य अग्रे आसीत्' से तुलना कीजिए। कबीर इसमे 'सत्' भी नही कहना चाहते। यह भी निर्वचन हो जाएगा। परमतत्व 'नाद' और बिन्दु से भी परे है। इसी सर्वातीत तत्व का प्रतिपादन है।

(२२०)

राम कै नांइ नींसांन बागा, ताका मरम न जानै कोई।
भूख त्रिषा गुण बाकै नांहीं, घट घट अंतरि सोई॥ टेक॥
बेद बिर्बाजत भेद बिर्बाजत, बिर्बाजत पाप रु पुंन्यं।
ग्यांन बिर्बाजत ध्यान बिर्बाजत, बिर्बाजत अस्थूल सुन्य॥
भेष बिर्बाजत भीख बिर्बाजत, बिर्बाजत डंयभक रूप।
कहै कबीर तिहू लोक बिर्बाजत, ऐसा तत्त अनूपं॥

शब्दार्थ—नाइ=नाम। नीसान=निशान, नगाडा। बागा=बजता है। त्रिषा=प्यास। बिवर्जित=परे। डिंभ=दम्भ।

सन्दर्भ—कबीर दास परमतत्त्व की अपरिमेयता एव निर्लिप्तता का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—रामनाम का जो नगाडा बजता है, उसका वास्तविक रहस्य कोई नही समझता है, अर्थात् रामनाम के सर्वत्र व्याप्त सगीत को कोई नही समझ रहा है। वह घट-घट मे व्याप्त है, उसको भूख प्यास आदि भौतिक आवश्यकताएँ नही सताती हैं। वह वेदो से परे है, वह समस्त भेदो (लौकिक सीमाओ) से परे है, वह पाप-पुण्य (लौकिक नियमो) से परे है, वह ज्ञान से परे है (सामान्य लौकिक ज्ञान (अपरा ज्ञान) के द्वारा उसको नही जाना जा सकता है), वह स्थूल और शून्य (लौकिक विज्ञान, जो पदार्थ को स्थूल और सूक्ष्म की सीमाओ मे बाधता है) से परे है, न उसका कोई रूप है और न उसको इस लोक मे किसी से प्राप्त ही किया जा सकता है (वह आत्मानुभूति का विषय है)। वह समस्त बाह्याचारो के परे है, अर्थात् किसी

भी प्रकार के बाह्याचार द्वारा उसके रूप का साक्षात्कार नही किया जा सकता है। कबीरदास कहते हैं कि फिर वह तीनो लोको से परे है। वह परम तत्त्व ऐसा अनोखा है।

अलकार—(i) सबधातिशयोक्ति—मरम न जानै कोई।
(ii) पुनरुक्तिप्रकाश—घट-घट।
(iii) पदमैत्री—विवर्जित की पुनरावृत्ति।

(२२१)

राम राम राम रमि रहिये,
साषित सेती भूलि न कहिये ॥ टेक ॥
का सुनहां कौं सुमृत सुनाये, का साषित प हरि गुन गांये।
का कऊवा कौं कपूर खवांयें, का विसहर कौ दूध पिलांये ॥
सापित सुनहां दोऊ भाई, बो नींदै वौ भौंकत जाई।
अंमृत ले ले नींव स्यंचाई, कहै कबीर वाकी बांनि न जाई ॥

शब्दार्थ—सापित = शाक्त। सेती = से। सुनहा = श्वान, कुत्ता। सुमृति = धर्मशास्त्र। बिसहर = सर्प। नींव = नीम। स्यंचाई = सींचा जाए। बानि = स्वाभाविक गुण।

सन्दर्भ—कबीर दास शाक्तो के प्रति अपना विरोध प्रकट करते हैं।

भावार्थ—राम मे मन वचन, कर्म से (सब प्रकार) रमे रहो परन्तु भूलकर भी राम नाम की चर्चा शाक्त से मत करो। वह इसका पात्र नही है, उससे राम नाम की चर्चा सर्वथा व्यर्थ है। जैसे कुत्ते को धर्मशास्त्र सुनाने से क्या लाभ है, वैसे ही शाक्त के समक्ष हरिगुण-गान का क्या उपयोग हो सकता है? कौए को कपूर खिलाने से तथा सर्प को दूध पिलाने से क्या लाभ है? शाक्त और कुत्ता दोनो भाई हैं। शाक्त सदैव भगवान के भक्तो की निन्दा करता है और कुत्ता सदैव दूसरो पर भौंकता रहता है। कबीर कहते हैं कि नीम के वृक्ष को चाहे अमृत से सींचा जाए, परन्तु वह अपनी स्वाभाविक कड़ुवाहट नही छोड़ता है।

अलकार—(i) पुनरुक्तिप्रकाश—राम राम राम ले-लो।
(ii) अनुप्रास—राम राम रमि, सुनहा, सुमृत सापित।
(iii) क्रम—सापित सुनहा ... नींदै भौंकत।
(iv) उदाहरण—का सापित ... गाये।
(v) दृष्टान्त—का कऊवा ... पिलाये।
(vi) पर्यायोक्ति—का सुनहा ... पिलाये।
(vii) विशेषोक्ति—अमृत लेले ... न जाई।

विशेष—(i) अमृत लै लै ... जाई—इस पक्ति मे लोक प्रचलित इस लोकोक्ति को परिष्कृत रूप मे प्रस्तुत किया गया है—

जिसके जो स्वभाव जाइहै जी सों। नीम न मीठो होइ सींच गुड़ घी सों।

(ii) इस पद का समभाव देखिए—

छाडि मन हरि-विमुखन कौ सग ।
जिनके सग कुबुधि उपजत है, परत भजन मे भग ।
कहा होत पय पान कराये, विष नाहिं तजत भुजंग ।
कागहिं कहा कपूर चुगाये, स्वान न्हवाये गंग ।
खर को कहा अरगजा-लेपन, मरकट भूषन अंग ।
गज को कहा न्हवाये सरिता, बहुरि धरै खेहि छंग ।
पाहन पतित वान नहिं वेधत, रीतौ करत निषग ।
'सूरदास' खल कारी कामरि, चढत न दूजौ रग । —सूरदास

(२२२)

अब न बसूं इहिं गांइ गुसाई,
तेरे नेवगी खरे सयांनें हो राम ।। टेक ।।
नगर एक तहां जीव धरम हता, बसै जु पंच किसानां ।
नैनूं निकट श्रवनूं रसनूं, इंद्री कह्या न मानैं हो रांम ।।
गांइ कु ठाकुर खेत कु नेपै, काइथ खरच न पारै ।
जोरि जेवरी खेति पसारै, सब मिलि मोकौं मारै हो राम ।।
खोटौ महतौ विकट बलाही, सिर कसदम का पारै ।
बुरौ दिवांन दादि नहिं लागै, इक बांधै इक मारै हो रांम ।।
धरमराइ जब लेखा मांग्या, बाकी निकसीं भारी ।
पांच किसानां भाजि गये हैं, जीव धर बांध्यौ पारी हो रांम ।।
कहै कबीर सुनहु रे संतौ, हरि भजि बांधौं भेरा ।
अबकी बेर बकसि बंदे कौं, सब खत करौ नबेरा ।।

शब्दार्थ—गाइ=गाँव शरीर अथवा ससार से तात्पर्य है । नेवगी=नेगी, हिसाब लेने वाले कर्मचारी । जीवधरम हता =जीवात्मा जिसका धर्म नष्ट हो गया है अथवा जीवो के धर्म नष्ट हो गए हैं । नैंनू =नेत्र । स्वामी=काल । निकट=नाक । गसनू =जीभ । इन्द्री= इन्द्रीय, त्वचा से तात्पर्य है । गाइ कु ठाकुर=गाँव का ठाकुर, 'मन' से तात्पर्य है । स्वेत=शरीर । नेपै=नाप रहा है । काइथ=कायस्थ, पटवारी । बकसि= रहम, दया करो अथवा क्षमा कर दो । जोरि जेवरी=जर्जर बधन । लेखा=हिसाब । पाँच किसाना = पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ । खत=बकाया हिसाब । नबेरा=चुकता ।

संदर्भ—कवीरदास ससारजन्य कष्टो की ओर सकेत करते हुए अपने राम से निवेदन करते हैं कि वह अव इस ससार (अथवा जन्म-मरण के चक्र) से छुटकारा चाहते हैं ।

भावार्थ—कवीरदास कहते हैं कि हे राम ! मैं अब इस शरीर रूपी गाँव मे नही रहूंगा, क्योकि आपके नेग लेने वाले (उगाही करने वाले) कर्मचारी अत्यधिक

नगर है—इसमे प्रत्येक कर्म का पूरा हिसाब देना पडता है यानी यहाँ कारण-कार्य का नियम ऐसे निर्बाध रूप से कार्य करता है कि प्रत्येक कर्म का उपयुक्त फल मिलता है। यह एक ऐसा नगर है जहाँ रहने वाले प्रत्येक जीवात्मा का धर्म भ्रष्ट होगया है और यहाँ पाँच किसान (नेत्र, कान, नाक, मुँह तथा त्वचा) रहते हैं, जो जीव रूपी स्वामी का कहना नही मानते है। इस गाँव का ठाकुर काल समय-समय पर इस शरीर रूपी खेत को नापता रहता है और मन रूपी पटवारी अपना हिस्सा नही छोडता है। भाव यह है कि काल तो प्रत्येक क्षण सिर पर सवार रह कर यह देखता है कि शरीर कही खराब तो नही हो गया है और मन रूपी पटवारी मुझसे शरीर का ब्यौरा माँगता रहता है। वस्तुस्थिति यह है कि यह शरीर प्रत्येक क्षण क्षीण होता रहता है और इस कारण काल ठाकुर का भय मुझे हर घडी सताता रहता है। साथ ही पटवारी के डर के कारण मैं मनचाहे ढग पर शरीर का उपभोग भी नही कर सकता हूँ। मेरे मन ने मेरे इस शरीर को विषय-वासनाओ के जर्जर बधनो से बुरी तरह जकड दिया है जिसके कारण मेरे शरीर को अत्यधिक कष्ट होता रहता है। इस गाँव का उधार देने वाल मेहता अर्थात् प्रारब्ध कर्म अत्यन्त दुष्ट है और क्रियमाण कर्मरूपी बलाही (कर्मचारी) भी बडा दुष्ट है। वह मुझे विषय मार्गो मे उलझाता रहता है। वह तो अच्छे-अच्छे जमीदारो के सिर के बाल भी नोच लेता है—उनसे प्रेम एव सद्वृत्तियो की निधि छीन कर उन्हे दरिद्र कर देता है। इस नगर का बुद्धि-रूप दीवान भी व्यथाओ के प्रति सहानुभूति रखता हुआ न्याय नही कर पाता है। पिछले जन्मो का अनुभव यह है कि शरीरात होने के अवसर पर धर्मराज ने जब मुझसे इस शरीर का पूरा हिसाब-किताब मागा तो मेरी ओर बहुत बकाया निकला था। उस समय मेरे शरीर रूपी खेत को नष्ट करने वाले इन्द्रिय रूपी पाँचो किसान मुझे छोड कर भाग गए और हे राम! बेचारा जीवात्मा ही सब प्रकार के बन्धनों से बाँध दिया गया। इसीलिए कबीरदास कहते है कि हे साधुओ! मेरा कहना गाँठ बाँधलो और भगवान (हरि) का भजन करके इस भवसागर से पार उतरने के लिए बेडा बाँधो। इसके पश्चात् वह भगवान से प्रार्थना करते हुए कहते है कि हे राम! इस बार तो इस जीव (मुझको) क्षमा कर दीजिए। अगले जन्म मे मैं आपका पूरा हिसाब चुकता कर दूँगा—अपने शरीर को विषय-भोगो से बचाकर अधिक अच्छा करके रखूँगा।

अलंकार—(i) सांगरूपक—पूरा पद।

(ii) रूपकातिशयोक्ति—गाढ।

विशेष—(i) सन्त सम्प्रदाय के अनेक प्रतीकों का प्रयोग है।

(ii) कबीरदास ने ज्ञानेन्द्रियो के नाम इस प्रकार लिए है मानो उनके प्रति आत्मीय स्वभाव रख रहे हो।

(iii) [illegible] करने से शरीर प्राप्त हो जाता है। इसी को काल द्वारा खेत का नापना कहा गया है। खेत नापने की भाँति शरीर नापना एक नया मुहावरा

गढ लिया है। गर्दन नापने का अर्थ होता है—प्राण लेने की तैयारी। 'शरीर नापना' भी इसी अर्थ मे प्रयुक्त किया गया है। भाव यह है कि शरीर क्षीण होते देखकर काल उसको नष्ट करने की योजना बनाता रहता है अर्थात् ज्यो-ज्यो शरीर क्षीण होता जाता है। त्यो-त्यो अन्त काल निकट आता जाता है।

(iv) विषय के बन्धन जर्जर होने के कारण यद्यपि सहज ही तोडे जा सकते हैं तथापि वे शरीर के लिए बहुत कष्टकारी होते हैं और जीवात्मा इनमे फँसा रहता है। यही विरोधाभास है।

(v) शरीरान्त होने पर स्थूल शरीर नष्ट हो जाता है। अतएव समस्त इन्द्रियाँ नष्ट हो चुकी होती हैं। कर्म का हिसाब जीवात्मा को देना पडता है। काम-मनस को अपने कर्मफल को पूरा करना पडता है। पिछले कृत्यो के परिणाम सामने आने पर काम-मनस को अपार कष्ट होता है, क्योकि उसकी इच्छाशक्ति बनी रहती है। काम-मनस की यह विवशता ही प्रेतयोनि, नरक-निवास आदि नामो से अभिहित की जाती है।

(vi) समभाव के लिए सूरदास का यह पद देखें—

अबकी माधव मोहि उधारो।
मगन हौं भव अम्बुनिधि में कृपासिंधु मुरारी।
नीर अति गम्भीर माया लोभ लहरि तरंग।
लिए जात अगाध जल में गहे ग्राह अनंत।
मीन इन्द्रिय अतिहि काटत कोट अघ सिर भार।
पग न इत-तन धरन पावत उरझि मोह सेवार।
काम क्रोध समेत तृष्णा पवन अति झकझोर।
नहिं चितवन देत तिय सुत नाम नौका ओर।
थक्यो बीच बेहाल विह्वल सुनहु करुना मूल।
स्याम भुज गहि काढि डारहु 'सूर' ब्रज के कूल।

अन्य भक्तो ने भी इस जन्म की दारुण व्यथा का वर्णन करते हुए प्रभु से उद्धार करने की कामना प्रकट की है।

(२२३)

ता भै थै मन लागौ रांम तोही,
करौ कृपा जिनि बिसरौ मोही ॥ टक ॥
जननीं जठर सह्या दुख भारी, सो सक्या नहीं गई हमारी ।
दिन दिन तन छीजै जरा जनावै, केस गहैं काल बिरदंग बजावै ॥
कहै कबीर करुणांमय आगै, तुम्हारी क्रिया बिना यहु बिपति न भागै ।

शब्दार्थ—भै = भय। जठर = उदर, पेट। छीजै = नष्ट हो जाता है। जरा = वृद्धावस्था। बिरदग = मृदग।

सन्दर्भ—कबीर भगवान से उद्धार की प्रार्थना करते हैं।

भावार्थ—हे प्रभु राम ! संसार अथवा जन्म-मरण के भय के कारण यह मेरा मन तुम्हारे प्रति अनुरक्त हो रहा है । माता के गर्भ मे रहने पर मैंने बहुत दुःख सहा था । उस कष्ट का स्मरण मुझे अभी तक है और उसका भय मेरे हृदय मे समा गया है । दिन प्रतिदिन यह शरीर क्षीण हो रहा है और मुझे वृद्धावस्था के आगमन का ज्ञान कराता है । काल मेरे बाल पकड़कर मृदंग बजा रहा है अर्थात् मृत्यु मेरे सिर पर सवार है और मेरे अन्त समय को निकट आता देखकर आनन्द मना रही है । कबीर कहते हैं कि अब मैं करुणामय भगवान की शरण मे हूँ । हे भगवान ! तुम्हारी कृपा के बिना इस संसार का दुःख दूर नही हो सकता है ।

अलंकार—पुनरुक्तिप्रकाश – दिन दिन ।

विशेष—कबीर इस पद मे एक सच्चे भक्त के रूप मे दिखाई देते हैं । दैन्य भक्तो का बड़ा बल है । वे सदा से प्रभु की कृपा पर अवलम्बित रहते आए हैं । यथा—

(i) तुलसिदास रघुनाथ-विमुख नहि मिटै विपति कबहूँ ।
(ii) तुलसिदास बस होइ तबहि जब प्रेरक प्रभु बरजै ।

तथा— अब हौं नाच्यौ बहुत गोपाल ।

× × ×

सूरदास की सबै अविद्या, दूरि करौ नन्दलाल । —सूरदास

(२२४)

कब देखूं मेरे राम सनेही,
जा बिन दुख पावै मेरी देही ॥ टेक ॥
हूं तेरा पंथ निहारूं स्वांमी, कब रमि लहुगे अंतरजांमीं ।
जैसें जल बिन मीन तलपै, ऐसें हरि बिन मेरा जियरा कलपै ॥
निस दिन हरि बिन नींद न आवै, दरस पियासी रांम क्यूं सचुपावै ।
कहै कबीर अब बिलंब न कीजै, अपनौं जांनि मोहि दरसन दीजै ॥

शब्दार्थ—रमि=रमण करके । लहुगे=अपनाओगे । कलपै=व्यथित होता है । सचु=चैन, सुख-शांति ।

संदर्भ—कबीरदास भगवान के साक्षात्कार के प्रति अपनी आतुरता व्यक्त करते है ।

भावार्थ—मैं अपने प्रिय राम का कब दर्शन करूँगा ? उनके बिना मेरा यह भौतिक शरीर (स्थूल शरीर भाव शरीर एव मन का समुच्चय) अत्यन्त कष्ट का अनुभव कर रहा है । हे स्वामी, मैं तुम्हारी बाट देख रहा हूँ । हे अन्तर्यामी, आप मेरे हृदय मे रमण करके मुझको अपनाने की कृपा कब करेंगे ? जैसे जल के अभाव मे मछली तड़पती है वैसे ही राम के दर्शन के बिना मेरा मन व्यथित हो रहा है । दर्शन के वियोग मे मुझे रात दिन नींद नही आती है । राम के दर्शनो के अभाव मे मैं सुख किस प्रकार प्राप्त कर सकता हूँ ? कबीर की विरहिणी जीवात्मा

कहती है कि हे प्रभु ! अब देर मत कीजिए। मुझको अपना समझकर अब शीघ्र ही दर्शन दीजिए।

अलंकार—(i) उदाहरण—जैसें ....कलपै।

(ii) गूढोक्ति—क्यूँ सचुपावै।

विशेष— पत्नी के रूप मे ईश्वर प्रेम का वर्णन है। जीवात्मा दाम्पत्य विरह का अनुभव करती है। यह रहस्यवादी भक्ति की व्यजना है।

तुलना कीजिए—

कब की बैठी जोवती, वाट तिहारी राम।
जिय तरसै तुव मिलन कूँ, मन नाहीं विश्राम। —कबीर
अवहूँ मया दिस्टि करि, नाह निठुर ! घर आउ।
मन्दिर उजार होत है नव कै आइ बसाउ। —जायसी
पिया बिनु नागिन कारी रात।
× × ×
मन्त्र न फुरै जन्त्र नहिं लागे आयु सिरानी जात।
सूर स्याम बिनु बिकल बिरहिनी मुरि मुरि करवट खात। —सूरदास
घडी एक नहिं आवड़े, तुम दरसण बिनु मोइ।
तुम हो मेरे प्राण जी, कासूँ जीवण होइ।
× × ×
धान न भावै नींद न आवै, विरह सतावै मोइ।
घायल सी घूमत फिरूँ, दरद न जाणै कोइ।
× × ×
पथ निहारूँ, डगर बुहारूँ, ऊभी म.रग जोइ।
मीरां के प्रभु कबरे मिलोगे, तुम मिलियां सुख होइ। —मीरांबाई

(२२५)

सो मेरा रांम कबै घरि आवै,
ता देखें मेरा जिय सुख पावै ॥ टेक ॥
बिरह अगिनि तन दिया जराई, बिन दरसन क्यूं होइ सराई।
निस बासुर मन रहै उदासा, जैसे चातिग नीर पियासा ॥
कहै कबीर अति आतुरताई, हमकौं बेगि मिलौ राम राई ॥

शब्दार्थ—सराई=शीतल।

सदर्भ—पूव छन्द (२२४) के समान।

भावार्थ—विरहविकला जीवात्मा कहती है कि 'हे मेरे पति राम, मेरे घर कब आओगे ? जिससे आपके दशन करके मेरा हृदय सुख प्राप्त करे। विरह रूपी अग्नि ने मेरे शरीर को जला दिया है। आपके दशन रूपी जल के विना वह किस प्रकार शीतलता (शाति) का अनुभव कर सकता है ? जिम प्रकार चातक स्वाति

नक्षत्र के जल के लिए प्यासा रह कर व्याकुल रहता है उसी प्रकार आपके अभाव मे मेरा हृदय रात-दिन बेचैन बना रहता है। कबीरदास की जीवात्मा कहती है कि राम से मिलने के लिए मुझे अत्यधिक विकलता है। हे स्वामी राम! आप शीघ्र ही मुझ से मिले।

अलंकार—(i) रूपक—विरह-अगिनि।
(ii) वक्रोक्ति—क्यू होइ सहाई।
(iii) उदाहरण—निस बासुर पियासा।
(iv) पदमैत्री—जराई सराई, उदासा पियासा।

विशेष—(i) पद सख्या २२४ के समान।

(ii) समभाव के लिए देखे—

बलि सांवरी सूरत मोहनी मूरत, आँखिन को कबौं आइ दिखाइए।
चातक सी मरं प्यासी परी, इन्हैं पानिप रूप सुधा कबौं प्याइए।

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

(iii) सगुण और साकार तथा अवतारी एव शरीरधारी भगवान की भक्ति के वर्णन की भांति निर्गुण और निराकार की भक्ति की व्यजना की गई है।

(२२६)

मै सासने पीव गौंहनि आई।
साई सगि साध नहीं पूगी, गयौ जोबन सुपिना की नांई॥ टेक॥
पंच जनां मिलि मडप छायौ, तीनि जनां मिलि लगन लिखाई।
सखी सहेली मगल गांवै, सुख दुख माथै हलद चढ़ाई॥
नानां रंगे भांवरि फेरी, गांठि जोरि बावै पति ताई।
पूरि सुहाग भयौ बिन दूलह, चौक कै रंगि धर्‍यौ सगौ भाई॥
अपने पुरिष मुख कबहूं न देख्यौ, सती होत समझी समझाई।
कहै कबीर हूं सर रचि मरिहूं, तिरौं कत ले तूर बजाई॥

शब्दार्थ—गौहनि=गौने। पच जना=पाच महाभूत तीनि जना=तीन गुण (सत, रज, तम)। सखी सहेली=वासना व आशा। हलदी=सुख-दुख अथवा सांसारिक जीवन। बावै=संचित कर्म रूपी बाबा। सर=चिता। सगा भाई=मन।

संदर्भ—कबीर कहते हैं कि जीवात्मा किस प्रकार स्थूल शरीर को धारण करती है और संसार में लिप्त रहने के बाद वह जीवन की निरर्थकता का अनुभव करती है।

भावार्थ—अपने प्रियतम से प्रणय का आनंद लेने के लिए मैं (जीवात्मा) इस संसार रूपी ससुराल में गौने आई हूँ। परन्तु पति के साथ आनंद लेने की मेरी अभिलाषा पूर्ण नहीं हुई और मेरा जीवन रूपी यौवन यों ही स्वप्न की भांति व्यतीत हो गया।

सांसारिक कर्मों के विवाह के रूपक का निर्वाह करते हुए कबीर कहते हैं

कि पाचो तत्वो (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश) ने इस विवाह मण्डल की रचना की थी और तीनो गुणो ने मिलकर इसकी लगन लिखी अर्थात् गुणो की अभिव्यक्ति के साथ ही द्वैत भाव उत्पन्न होगया और मेरा प्रियतम का सम्बन्ध अव्यक्त से व्यक्त होगया। वासना और आशा रूपी सखियो ने मगल गान किया—मेरे ससारी बनने पर वासना और आशा को अपनी अभिव्यक्ति का अवसर प्राप्त होगया—इससे वे आनन्दित हो उठी। उन्होने ही सुख-दुःख रूपी हल्दो जीवात्मा के शरीर पर चढा दी और उसको ससार मे प्रवृत्त होने के लिए सब तरह तैय्यार कर दिया। अनेक प्रकार के राग-रग ही इस विवाह के भाँवर हैं। सचित-कर्म रूपी बाबा ने ईश्वर-रूप पति की प्राप्ति के लिए गठ बधन कर दिया अर्थात् यह जन्म दिया। परन्तु पति के वास्तविक सहवास के बिना ही जीवन-रूप सम्पूर्ण सुहाग व्यतीत होगया। चौक पर बैठते ही अर्थात् विवाह के होते ही मैने काम रूपी सगे भाई को पति रूप मे वरण कर लिया। अज्ञानी जीवात्मा ने ईश्वर-रूप अपने पति के वास्तविक दर्शन कभी नही किए। पर सच्ची भक्ति न होने पर भी अन्य साधनाओ मे फँसी हुई जीवात्मा अपने आपको सती मानने का दम्भ करती रही। जीवात्मा कहती है कि अब मुझे बोध होगया है। कि अब मै चिता रचकर मरूँगी और पति को साथ लेकर तुरही बजाती हुई भवसागर के पार होजाऊँगी।

अलंकार—(i) उपमा— सुपने की नाई।

(ii) रूपक—सुख-दुख हलदि।

(iii) साग रूपक—पच जना—नाई।

विशेष—(i) सासरे पीव, पच जना इत्यादि प्रतीको का सफल प्रयोग है।

(ii) सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण का मिश्रण ही जीवन-सृष्टि है। यही लगन लिखना है।

(iii) जीवन मे व्यष्टि जीव बारम्बार अपने शुद्ध स्वरूप मे प्रतिष्ठित होता रहता है। उस समय उसे आनन्द की अनुभूति होती है। दो वृत्तियो की सधियो मे जीव अपने शुद्ध स्वरूप मे प्रतिष्ठित होने से आनन्द का अनुभव करता है। जीव और ईश्वर का यह मिलन ही विवाह है और यही जीवन है। जीवन मे यह आनन्द इन्द्रियो के माध्यम से प्राप्त होता है। यही मण्डप-निर्भाव है।

(iv) ससार मे आते ही जीव माया द्वारा आवृत्त होकर ब्रह्म से विलग हो जाता है। यही जीवात्मा का विधवा हो जाना है।

(v) जीव-भाव के साथ ही माया के कारण जीवात्मा मोह और अज्ञान मे फस जाती है। इसी से वह जीवात्मा का भाई है।

(vi) इस पद मे ज्ञान और प्रेम की अग्नि मे अपने अज्ञान को भस्म करना ही चिता रचकर मरना है तथा ईश्वर के साथ प्रणय एव तन्मयता के अनुभव को तुरी बजाकर कत के साथ तिरना कहा गया है। सती होने के कारण ही वह स्वय

अपने हाथों ही चिता बनाने तथा तुरी बजाकर मोक्षधाम को जाने की बात कहती है।

(vii) पूरि—दूलह-जीव की संज्ञा होना और जीव का ब्रह्म से विमुख या विलग हो जाना दोनों ही कार्य एक साथ होते हैं। शुद्ध चैतन्य माया से सपृक्त होते ही 'जीव' कहलाता है। माया का आवरण पड़ते ही जीव का शुद्ध बुद्ध आनन्द स्वरूप तिरोहित हो जाता है। इसी से कहते हैं कि जीवात्मा चौक पर बैठते ही विधवा हो जाती है। इस रूपक मे कबीर की दार्शनिक-दृष्टि की तीक्ष्णता सचमुख स्पृहणीय है।

(२२७)

धीरें धीरें खाइबौ अनत न जाइबौ,
रांम रांम रांम रमि रहिबौ ॥ टेक ॥
पहली खाई आई माई, पीछें खैहूँ सगौ जवाई ।
खाया देवर खाया जेठ, सब खाया सुसर का पेट ॥
खाया सब पटण का लोग, कहै कबीर तब पाया जोग ।

शब्दार्थ—खाइबौ=नष्ट करना। अनत = अन्यत्र, और कही। माई= माता, माया से तात्पर्य है। जवाई=जीव से तात्पर्य है। पटण=नगर।

संदर्भ—कबीर का कहना है कि माया तथा माया से उत्पन्न विकारो पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् ही योगावस्था प्राप्त हो सकती है।

भावार्थ—कबीर कहते हैं कि धीरे-धीरे करके माया तथा सासारिक सम्बन्धो को समाप्त करना है। इसके लिए केवल राम-नाम का स्मरण करते हुए उस परम तत्व राम मे ही रमण करना है। अन्य किसी साधना को अपनाने की आवश्यकता नहीं है। मैं इसी कल्याण मार्ग को अपनाऊँगा पहले माया-रूपी माता तथा धाय को खाया। फिर माया से उत्पन्न विषय-वासना रूपी पुत्री के पति जीव रूपी जमाई को समाप्त किया। साधक जीव ने अहंकार रूपी जेठ तथा चंचल रूपी देवर को भी खा लिया। इसके पश्चात् अज्ञान-रूपी श्वसुर के पेट मे उत्पन्न समस्त परिवार (लोभ, मोह, क्रोध, काम इत्यादि) को खाया। इसके बाद मैंने इस शरीर रूपी नगर में माया से उत्पन्न जो अनेक विकार रूपी नगरवासी रहते थे, मैंने उन सबको खाया। कबीर कहते हैं कि इनने विकारो पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् ही मुझे योग दशा की प्राप्ति हुई है।

अलंकार—(i) पुनरुक्ति प्रकाश—धीरे धीरे। राम राम राम।
(ii) पदमैत्री—खाइबौ जाइबौ, खाई आई, माई, जवाई।
(iii) रूपकातिशयोक्ति—आई माई जवाई देवर जेठ श्वसुर।

विशेष—मायायोग—योग से योगसाधना तथा ईश्वर-प्राप्ति दोनों ही अर्थ अभिप्रेत हैं।

(iv) कबीर ने प्रतीक द्वारा सुन्दर रूपक बांधा है।

(v) खाने वाली डाकिनी जीवात्मा है । यह मायाजन्य समस्त परिवार को समाप्त करती है । विभिन्न सम्बन्धियो को खाने के बाद योग की प्राप्ति होती है । इसका आशय यह है कि ससार के जितने भी सम्बन्ध हैं जब तक उन्हे समाप्त करके एक मात्र स्वामी (हरि) मे चित्त को लगा कर उनका स्मरण नही किया जाता है, तब तक उनसे संयोग नही होता है ।

(vi) इस पद मे यह भी ध्वनित है कि सासारिक सम्बन्धो से विमुख होकर ही भगवान की प्राप्ति हो सकती है। ठीक ही है । दो घोडो की सवारी असम्भव है । उस दुनियाँ मे जाने के लिए इस दुनियाँ को छोडना ही पडेगा ।

(vii) तीन बार 'राम' शब्द कहने का अभिप्राय यह है कि मनसा, वाचा कर्मणा 'राम' के प्रति प्रकृति एव अनुरक्ति होनी चाहिए ।

(२२८)

मन मेरौ रहटा रसनां पुरइया,
हरि कौ नांउ लै लै काति बहुरिया । टेक ।।
चारि खूंटी दोइ चमरख लाई, सहजि रहटवा दियौ चलाई ।
सासू कहै काति बहू ऐसैं, बिन कातै निसतरिबौ कैसैं ।।
कहै कबीर सूत मल काता, रहटां नहीं परम पद दाता ।

शब्दार्थ—रहटा=चरखा । रसना=जीभ । पुरइया=सूत पूरने वाली तकुली । चार खूँटी =अन्तःकरण । चतुष्टय —मन, बुद्धि, चित्त अहकार । चमरख= चर्म के टुकडे जिनमे से होकर तकुआ घूमता है । यहाँ तात्पर्य है प्रवृत्ति एव निवृत्ति मार्ग ।

संदर्भ – कबीर अपनी आत्मा को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि वह ' तू प्रभु का नाम ले लेकर प्रभु-प्रभु का सूत कात ।

भावार्थ—मेरा मन ही चरखा है और जीभ ही सूत पूरने वाली तकुली है । हे आत्मा रूपी बहू तू राम का नाम लेती हुई इस चरखे के द्वारा भक्तिमय जीवन के सूत कात । मन, बुद्धि, चित्त एव अहकार ही इस चरखे की चार खूँटियाँ हैं तथा प्रवृत्ति एव निवृत्ति मार्ग वे चमडे के टुकडे हैं जिनमे होकर यह चरखा घूमता है । इस चरखे को सहज समाधि के मार्ग पर चलादो । भाव यह है कि साधक जीभ से राम का नाम ले, अन्त करण चतुष्टय को प्रवृत्ति एव निवृत्ति मार्ग के मध्य समन्वित करदे और सहज समाधि प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हो जाए ।

गुरु रूप सास साधक जीव रूप बहू को चेतावनी दे रही है कि इस चरखे रूपी मन से भक्ति रूपी सूत कात अन्यथा जीवन का निस्तार नहीं है अर्थात् बिना ऐसा किए हुए जीवन सफल नही होगा । कबीरदास कहते हैं कि यदि इस जीवन रूपी चरखे से भक्ति रूप सूत भली प्रकार काता जाए, तो यह जीवन रूपी चरखा केवल भक्ति रूपी सूत कातने का साधन ही न होकर मोक्ष प्रदान करने का माध्यम बन जाएगा ।

अन्तिम पंक्ति का अर्थ एक अन्य प्रकार भी किया जा सकता है। कबीर कहते हैं कि मैंने यह जीवन सूत्र अच्छी प्रकार काता है। मुझे यह सामान्य चरखा नहीं अपितु परम पद का दाता— साधन धाम मोक्ष का द्वार—प्रतीत हुआ है।

अलंकार—(i) सांगरूपक – पूरे पद मे।

(ii) पुनरुक्ति प्रकाश लै लै।

(iii) छेकानुप्रास—चारि चमरख, काति कातैं।

(iv) गूढोक्ति – निसतरिबो कैसें।

(v) अपन्हुति - रहटा नहीं परम पद दाता।

(vi) पदमैत्री — लाई चलाई, ऐसें कैसें, काता दाता।

विशेष — (i) पाठान्तर—चौथी पंक्ति—द्यौ माल तागा बरिस दिन कुकुरी, लोग बोलैं भल कातल बपुरी।

(ii) सासू इसका अभिप्राय गुरु के उपदेश-श्रवण से उत्पन्न 'बोधवृत्ति' भी हो सकता है।

(iii) बिन कातैं निसतरिबो कैसे—इसका अभिप्राय यह भी हो सकता है— मनन, निदिध्यासन, निरन्तर के नाम स्मरण एवं अनुराग के बिना इस जीवन मे निस्तार नहीं है।

(iv) कबीर जुलाहे का काम करते थे। यहां उन्होने जुलाहे के काम आने वाली सामग्री को लेकर प्रतीक-विधान किया है। यह प्रतीक विधान सर्वथा सार्थक और सफल है। जीवन सचमुच एक चरखा है जिसकी सार्थकता सुन्दर सूत कातने मे ही है। ज्ञान और भक्ति मय जीवन ही मानव-योनि की सार्थकता है। मानव-तन बड़े भाग्य से मिलता है। यह पाप का हेतु भी हो सकता है और मोक्ष का द्वार भी बनाया जा सकता है। कबीर कहते हैं कि मैंने इसको परम पद प्राप्ति का साधन बना लिया है। तुम भी मेरे अनुभव से लाभान्वित होने का प्रयत्न करो।

(२२६)

अब की घरी मेरो घर करसी,
साध संगति ले मोकौं तिरसी ।। टेक ।।
पहली को चाल्यौ भरमत डोल्यौ, सच कबहूँ नहीं पायौ ।
अब की धरनि धरी जा दिन थैं, सगली भरम गमायौ ।।
पहली नारि सदा कुलवंती सासू सुसरा मांनैं ।
देवर जेठ सबनि की प्यारी, पिय को मरम न जांनैं ।।
अब की धरनि धरी जा दिन थैं, पीय सूं बांन बन्यूं रे ।
कहै कबीर भाग बपुरी को, आइरु रांम सुन्यूं रे ।।

शब्दार्थ — [illegible] । घर करसी = घर बसाएगी । [illegible] हुआ । [illegible] [illegible] । सासू सुसरा – माया-

मोह। देवर जेठ=अहकार वासनायम मन इत्यादि बहान। बन्यू =बालक बन गया। ठीक-ठीक निर्वाह हो रहा हे। बपुरी=बेचारी।

संदर्भ—कबीरदास ज्ञानोदय की अवस्था का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—साधक जीव कहता है कि मैंने गुरु के उपदेश के फलस्वरूप निवृत्ति (बोध-वृत्ति) रूप स्त्री को पत्नी रूप मे रख लिया है। इसके ढग को देखकर मुझे विश्वास हो गया है कि यह मेरा घर बसायेगी और साधु-सगति के द्वारा यह मेरा उद्धार करेगी। मेरी पहली पत्नी प्रवृत्ति (आसक्ति) थी। उसके मारे तो इधर-उधर भटकता फिरता रहा और मुझे कभी भी सुख प्राप्त नही हुआ अथवा कभी भी सत्य का साक्षात्कार नही हुआ। अबकी बार जिस दिन से मैंने इस गृहिणी को रखा (निवृत्ति मार्ग को अपनाया है) उसी दिन से मेरा सम्पूर्ण भ्रम नष्ट हो गया है। सासारिक आसक्ति रूप पहली पत्नी कुल की मर्यादा का बहुत ध्यान रखने वाली थी। वह मायामोह रूप सास-श्वसुर का कहना मानती थी। वह अहकार एव वासनामय मन रूपी देवर तथा जेठ को प्रिय थी। परन्तु वह जीव रूप अपने पति की वास्तविक आवश्यकता को नही समझती थी। परन्तु अबकी बार जिस दिन से मैंने निवृत्ति (बोध वृत्ति) रूपी इस नवीन गृहिणी को अपनाया है, उसी दिन से मेरा बानक बन गया है - मेरे जीवन मे सामञ्जस्य उपस्थित हो गया है। कबीर कहते हैं कि यह इस बेचारी का ही सौभाग्य है कि भगवान राम ने सुन ली है अर्थात् मेरी वृत्ति राम के प्रति हो गई है।

अलकार—(i) साग रूपक—सम्पूर्ण पद।
(ii) पदमैत्री—घाल्यौ डोल्यौ।
(iii) चपलातिशयोक्ति की व्यजना—अबकी गमायौ।
(iv) छेकानुप्रास - घरनि-घरी, बाँन बन्यू।

विशेष—(i) लोक प्रचलित उक्ति है।

(ii) पारिवारिक जीवन के प्रतीको को लेकर बहुत ही सुन्दर रूपक खडा किया है।

(iii) पहली नारि मानै—यह सत्य है कि कुल वशी नारी को मर्यादा के निर्वाह का बहुत अहकार भी रहता है और ध्यान भी रहता है। फलत. वह पति के लिये बडा सिर दर्द बनी रहती है। वह केवल अपनी मर्यादा का ध्यान रखती है। वह यह नही देखती है कि मेरे पति की सीमायें क्या हैं और उसके आग्रह पर कुल मर्यादा के निर्वाह मे पति को कितनी व्यथा हो रही है। शुद्ध चैतन्य का अधिष्ठित एव सम्पूर्ण विश्व मे व्याप्त मूला अविद्या की ही यह तूला अविद्या (आसक्ति) पुत्री है। अत बडे कुल की पुत्री होने के कारण यह कुलवती (कुलीन) है और इस कुलीनता के प्रति वह सदैव सजग रहती है।

(iv) जीव मूलत ज्ञान-स्वरूप एव निसग है। मूल अविद्या उसको उस दिशा मे नही बढ़ने देती है। पर जाग्रत बोध-वृत्ति जीव के वास्तविक स्वरूप की प्रतिष्ठा

से सहायक होती है। यही पति के साथ उसका सामंजस्य है और इसी से साधक जीव के जीवन में समन्वय स्थापित हो जाता है।

(v) ज्ञानोदय की दशा का बहुत ही सुन्दर चित्रण है।

(vi) इस पद में कबीर के व्यक्तिगत पारिवारिक जीवन की छाया है। कबीर की दो स्त्रियाँ थीं। पहली का नाम लोई था, जो कुरूप थी। दूसरी स्वरूपवान और सुलक्षणा थी। इसका नाम धनिया था जिसे लोग रमजनिया कहते थे। कबीर इसके प्रति बड़े अनुरक्त थे। सन्त-साक्ष्य में उपलब्ध गृहस्थ जीवन सम्बन्धी कबीर की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

मेरी बहुरिया को धनिया नाउ। लैराख्यो रमजनियाँ नाउ।
तथा—हम तुम बीच भयौ नहिं कोई। तुमहिं सुकंत नारि हम सोई।
कहत कबीर सुनहु रे लोई। अब तुमरी परतीति न होई।

(२३०)

मेरी मति बौरी रांम बिसारयौ, किहि बिधि रहनि रहूँ हो दयाल।
सेजैं रहूँ नैन नहीं देखौं, यहु दुख कासौं कहूँ हो दयाल॥ टेक॥
सासु की दुखी ससुर की प्यारी, जेठ के तरसि डरौं रे
नणद सहेली गरब गहेली, देवर कै बिरह जरौं हो दयाल॥
बाप सावकौ करै लराई माया सद मतिवाली।
सगौ भईया लै सलि चढ़िहूँ, तब ह्वै हूँ पीयहि पियारी॥
सोचि विचारि देखौं मन मांहीं, औसर आइ बन्यूं रे।
कहै कबीर सुनहु मति सुंदरि, राजा रांम रमूं रे॥

शब्दार्थ—गहेली = ग्रस्त। सगौ भईया—सहज बाधा। सलि = चिता।

संदर्भ—कबीर कहते हैं कि इस जीवन की सार्थकता यही है कि राम के प्रति प्रेम किया जाय।

भावार्थ—विषयासक्ति के कारण मेरी बुद्धि पागल हो गई है, (ठिकाने नहीं रही है) और इस कारण मेरे पति राम ने मुझको भुला दिया है। हे दयालु प्रभु! मैं अपना जीवन किस प्रकार व्यतीत करूँ? मैं सदैव अपने पति ईश्वर की शैय्या पर ही रहती हूँ परन्तु फिर भी उस ईश्वर रूपी पति को आँखों से नहीं देख पाती हूँ। पति के साथ निरंतर उसी की सेज पर सोते हुये भी उसे न देख सकने (उसके द्वारा उपेक्षित रहने की असह्य व्यथा मैं किसको सुनाऊँ? मैं माया-रूप सास से दुःखी हूँ तथा अज्ञान रूपी श्वसुर को प्रिय हूँ। मैं मोह रूपी जेठ के त्रास से निरन्तर भयभीत रहती हूँ। बुद्धि रूप ननद मेरी सखी है। वह दुराग्रहों से ग्रस्त तथा अभिमानी है। हे दयालु प्रभु! मैं वासनात्मक मन रूपी देवर के विरह से व्यथित हूँ अर्थात् विषय वासनाओं के लिए सदैव तृषित रहती हूँ। (जन्म का हेतु) अहंकार रूपी पिता निरन्तर झगड़ा करता रहता है। माया रूपी माता नित्य नशे में चूर रहती है। मैं तो अब सहज बोध-रूप सगे भाई के साथ चिता पर चढ़ूँगी। तब मैं

अपने प्रियतम की प्यारी हो पाऊंगी। अर्थात् तब मेरे समस्त अज्ञान नष्ट हो जायेंगे। मैंने खूब सोच-विचार करके देख लिया है कि अब इस ससार से छुटकारा पाने का अवसर आ गया है। कबीर कहते हैं कि हे मेरी बुद्धि रूपी सुन्दरी, अब तुम स्वामी राम के साथ रमण करो।

अलंकार – (i) रूपकातिशयोक्ति अलकार—अनेक प्रतीकात्मक उपमानो का प्रयोग है।

(ii) विशेपोक्ति की व्यजना - सेजै · देखौं।

(iii) विरोधाभास—बाप ··· लराई।

(iv) पदमैत्री—सहेली, गहेली।

(v) अनुप्रास—माया मद मतवाली।

विशेष—(i) सेजै रहूँ ······ देखौं—ईश्वर और जीव का शाश्वत अभेद है। यह फिर भी अज्ञान द्वारा आवृत्त हो जाने के कारण जीव ईश्वर से विलग सा बना रहता है। अज्ञान के कारण ही जीवात्मा प्रभु का साक्षात्कार नही कर पाता है और दु खी बना रहता है—

ईस्वर अस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी।
सो मायावस भयउ गोसाईं। बँध्यौ करि मरकट की नाईं।
तब ते जीव भयउ संसारी। छूट न ग्रंथि न होइ सुखारी।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(ii) अन्तिम पक्ति का अर्थ एक अन्य प्रकार भी किया जा सकता है। आत्मा या विवेक रूपी सुन्दरी अपने आपको सम्बोधन करके कहती है कि, 'रे सुन्दरी अब तुम विषयाशक्ति का कुपरिणाम देख चुकी। अब तुम भगवान राम के साथ रमण करो।'

(iii) दाम्पत्य भाव का आवरण इस विरह-वेदना का विम्ब-विधायक बन गया है।

(iv) *यहाँ अर्द्ध प्रबुद्ध जीवात्मा द्वारा अपनी वृद्ध अवस्था एवं मुक्त होने की* विकलता का मर्मस्पर्शी एव सागोपाग वर्णन कराया गया है।

(v) यह पद उलटबाँसी जैसा है। अन्तिम पक्ति मे पद की कुँजी मिल जाती है। पहले चरण मे मति (बुद्धि) की शिकायत है और अत मे उसी को सही दिशा मे उन्मुख किया गया है।

(ix) तुलना करें—

एकहि पलग पर कान्ह रे, मोर लख दूर देस मान रे।

(विद्यापति)

(२३१)

अवधू ऐसा ग्यांन बिचारी,
तार्थं भई पुरिष थैं नारी॥ टेक॥

नां हूं परनी नां हूं क्वारी, पूत जन्यूं द्यौ हारी ।
काली मूंड कौ एक न छोड्यौ, अजहूं अकन कुवारी ।।
वाम्हन कै बम्हनेटी कहियौं, जोगी कै घरि चेली ।
कलमां पढ़ि पढ़ि भई तुरकनीं, अजहूँ फिरौं अकेली ।।
पीहरि जांऊं न रहूं सासुरै, पुरषहि अंगि न लांऊं ।
कहै कबीर सुनहु रे संतौ, अंगहि अग न छूवांऊं ।।

शब्दार्थ—अवधू=अवधूत, वाम पथी सिद्ध योगी । परनी=परिणीता, विवाहिता । क्वारी=अविवाहिता । काली मूड को कामनी । द्यौहारी=दिन दिन, नित्यप्रति । अकन=अखण्ड । कलमा=वह वाक्य जो मुसलमानो के धर्म-विश्वास का मूल मन्त्र है - ला इलाह इल्लिलाह, मुहम्मद रसूलिल्लाह ।

सन्दर्भ—कबीरदास माया के स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं ।

भावार्थ—हे नाथ पथी सिद्ध योगी ! तुम इस रहस्य पर विचार करो जिससे यह ज्ञान हो सके कि चैतन्य पुरुष से इस माया-रूपी नारी का जन्म किस प्रकार हुआ ? माया स्वय कहती है कि वह न विवाहिता है और न कुमारी ही है । मैं हमेशा अनेक पुत्रो को जन्म देती रहती हूँ । मुझ काली मूड वाली (कामिनी) ने एक भी नवयुवक को नही छोडा है, अर्थात् प्रत्येक समझदार व्यक्ति पर अपना आवरण डाला है । इस प्रकार सबने मेरा उपभोग किया है, परन्तु फिर भी मैं अखण्ड कुमारी बनी हुई हूँ । मेरा प्रभाव सवव्यापी है । ब्राह्मण के घर में ब्राह्मणी कही जाती हूँ और योगी के घर चेली हूँ अर्थात् योगी को चेली बनकर घेरती हूँ । ला इलाह इल्लिलाह, मुहम्मद रसूल लिल्लाह धर्म-विश्वास मूलक मन्त्र को पढ कर मुसलमान विवाह करता है और मैं मुसलमानी के रूप मे उसके यहाँ पहुँच जाती हूँ । न मैं पीहर जाती हूँ, और न सुसराल ही जाती हूँ—मेरा इहलोक और परलोक मे भी आना-जाना नही है । मैं चैतन्य स्वरूप परम पुरुष के अगो का स्पर्श नहीं करती हूँ अर्थात् शुद्ध बुद्ध चैतन्य से सर्वदा दूर रहती हूँ । कबीरदास कहते हैं कि हे सन्तो ! माया का यह कथन सत्य है कि मैं अपने अगों को परमपुरुष के अगो से नही छुआती हूँ । अभिप्राय यह है कि माया और चैतन्य एक दूसरे से सदैव असंपृक्त रहते हैं ।

अलंकार—(i) मानवीकरण—माया का ।
(ii) विरोधाभास की व्यजना—नाहूँ परनी……जन्यू द्यौहारी, काली-छोड्यो…… कुवारी, फिरौ अकेली ।
(iii) श्लेष—बाम्हन……तुरकनी ।
(iv) पुनरुक्ति प्रकाश—पढ़ि पढ़ि ।
(v) सम्बन्धातिशयोक्ति—पीहरि सासुरै ।
(vi) सभंग पद यमक—अंगहि अग ।

विशेष-- (I) माया के ससारी तथा तात्त्विक रूप का सुन्दर प्रतिपादन किया गया है।

(II) यह पद उलटवासी जैसा है। इसमे परस्पर विरोधी बातें कह कर अनिर्वचनीय माया के स्वरूप की व्याख्या की गई है।

(III) कबीर के मतानुसार नारी ही माया का व्यक्त स्वरूप है। व्यग्य यह है कि माया से बचने के लिए साधक को 'नारी' से दूर रहना चाहिए। नारी से सपृक्त होते ही ब्रह्म शुद्धबुद्ध चेतन न रह कर 'जीव' भाव को प्राप्त हो जाता है।

(IV) विविध मनोविकार ही माया के पुत्र हैं।

(V) माया का पीहर मोह या अज्ञान है। इसकी ससुराल 'आत्मज्ञान' है।

(VI) तुलसी प्रभृति भक्त कवियो ने भी माया को नारी बताया है—

माया भगति सुनहु तुम दोऊ। नारिवर्ग जाने सब कोउ।

यह माया सबको अपने वश मे करने वाली है —

यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा।
यत्सत्नादमृषैव भाति सकल रज्जौ यथाहेर्भ्रम।

(VII) ना हूँ · ब्यौहारी—परम पुरुष से विवाहित होने का तात्पर्य है चैतन्य के साथ पूर्ण तादात्म्य हो जाना अर्थात् माया का अभाव। यदि माया चैतन्य से पूर्णत असम्प्तक्त रहती है, तो कुमारी कहलानी चाहिए। परन्तु ऐसा भी नहीं है। इसी कारण ब्रह्म की भाँति ब्रह्म की माया भी अनिवर्चनीय है।

माया हमेशा अनेक पुत्रो को जन्म देती रहती है। इसका तात्पर्य यह है कि वह सब जीवो के जीवभाव का कारण है। यह चैतन्य-पुरुष के साथ सहवास का ही परिणाम है।

माया ने किसी को नही छोडा, परन्तु कोई भी इसको भोग नही सका। ठीक ही है—"भोगा· न भुक्ता वयमेव भुक्ता." । माया असत् रूप है। असत् का भोग क्या ? अतएव जीव कभी भी माया का भोग कर ही नही पाता है, माया का भोग भी मायाजनित भ्रम ही हैं। पारमार्थिक दृष्टि से असत् माया कभी भी चैतन्य का स्पर्श नही कर पाती है। अत सर्वव्यापी है।

(VIII) बाह्मन · फिरौं अकेली—ब्राह्मण आदि के साथ माया का सत्य सम्बन्ध नही हो पाता है—जीवात्मा का सम्बन्ध होता ही नहीं है। इसी कारण वह अकेली ही रहती है। वह किसी से बद्ध नही है—न जीव से न ब्रह्म से। इसी से वह न पीहर जाती है और न ससुराल ही जाती है। माया की दृष्टि से आवागमन भी मिथ्या है।

(IX) पुरषहि···· ···न छुवाऊँ—इन पक्तियो मे माया की चर्चा वस्तुत: एक वेश्या के रूप में की गई है। वह भी एक चतुर पातुरी के रूप मे, जो शरीराग का का स्पर्श नही करने देती है और नजरो से ही दिल वहलाती रहती है।

(४) इस पद मे काव्योचित शैली मे शाकर मायावाद का प्रतिपादन किया गया है।

(२३२)

मीठी मीठी माया तजी न जाई,
अग्यांनी पुरिष कौं भोलि भोलि खाई ॥ टेक ॥
निरगुंण सगुंण नारी, ससारि पियारी,
लषमणि त्यागी गोरषि निवारी ॥
कीड़ी कुंजर मै रही समाई,
तीनि लोक जीत्या माया किनहूँ न खाई ॥
कहै कबीर पद लेहु विचारी,
ससारि आइ माजा किनहूँ एक कही पारी ।

शब्दार्थ—भोलि=भुलावा देकर। निवारी=निवारण किया, हटा कर दूर कर दिया। कीरी=चीटी। कुंजर=हाथी। पारी=खारी, कडुवी।

सदर्भ—कबीरदास माया के सर्वव्यापी प्रभाव का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—यह मधुर एव आकर्षक लगने वाली माया किसी से छोड़ते नही बनती है। यह अज्ञानी व्यक्तियो को तरह-तरह के भुलावो मे डाल कर खाती रहती है। यह एक ऐसी नारी है जिसके सगुण और निर्गुण दोनो ही रूप हैं। यह समस्त ससार को प्यारी लगती है। लक्ष्मण ने इस माया का परित्याग किया और गुरु गोरखनाथ ने इसे अपने हृदय से हटा दिया। यह चीटी से लेकर हाथी तक मे—छोटे-छोटे प्राणी से लेकर बडे से बडे जीव मे—समा रही है। इसने तीनो लोको के प्राणियो को अपने वश मे कर रखा है। इसको कोई भी समाप्त नही कर सका है। कबीरदास कहते हैं कि इस पद मे कथित मेरे कथन पर गम्भीरता पूर्वक विचार करो। ससार जन्म लेने वाले समस्त प्राणियो को यह मधुर लगती है। कोई विरले ही इसको कडुवा बताकर इसकी ओर आकर्षित नही हुआ है।

अलंकार—(i) पुनरुक्ति प्रकाश—भोलि-भोलि।
(ii) निरगुण सगुण—विरोधाभास।
(iii) संबंधातिशयोक्ति—माया किनहूं न खाई।

विशेष—(i) वासना एवं असत रूप होने के कारण माया निर्गुण और सगुण रूप विलक्षण नारी है। इसमे विरोधी तत्व हैं।

(ii) कबीर ने अन्यत्र भी लिखा है कि—

सुपना डरपत रहु मेरे भाई।
× × ×
या मजारी मुगध न मानै, सब दुनियां डहकायो।
राणा-राव रंक को ग्रासै, करि-करि प्रीत सवायो।
सास्त्रीन मांहि ते मेरी अचानक, काहू न देति दिखाई।

(२३३)

मन के मैलौ बाहरि ऊजलौ किसौ रे,
खांडे की धार जन कौ धरम इसौ रे ।। टेक ।।
हिरदा कौ बिलाव नैन बग ध्यानीं,
ऐसी भगति न होइ रे प्रांनीं ।।
कपट की भगति करै जिन कोई,
अंत की बेर बहुत दुख होई ।।
छांडि कपट भजौ रांम राई,
कहै कबीर तिहूँ लोक बड़ाई ।।

शब्दार्थ—खाडे=तलवार । जन=भक्त । बिलाव=बिल्ली । बग=बगुला ।

संदर्भ—कबीर सच्ची निश्छल भक्ति का प्रतिपादन करते है ।

भावार्थ—यदि मन विषय-वासना के विकारो से दूषित है, तो शरीर को साफ-सुथरा रखने से क्या लाभ है ? ईश्वर-प्रेम का यह मार्ग भक्त के लिए तलवार की धार के समान है । यदि व्यक्ति का मन बिल्ली की तरह विषय-वासनाओ से ग्रस्त एव हिंसा वृत्ति से पूर्ण है और वह बगुले की भाँति धोखा देने के लिए आँखें बन्द करके ध्यान लगाता है, तो हे साधक ! ऐसे व्यक्ति से भक्ति नही हो सकती है । केवल धोखा देने के लिए दिखावे की भक्ति किसी को नहीं करनी चाहिए । ऐसी भक्ति के फलस्वरूप बहुत कष्ट उठाने पडते हैं । कबीरदास कहते हैं कि, हे जीव ! तू समस्त कपट छोड कर राजा राम का भजन करो । इससे तुम्हारा यश तीनो लोको मे फैलेगा ।

अलंकार—(i) विषम—मन····ऊजलौ ।
(ii) उपमा—खाडे की धार ।

विशेष—(i) वाह्याचार एव दम्भ का विरोध है तथा निर्मल मन द्वारा प्रभु भक्ति का प्रतिपादन है—

जप माला छापै तिलक सरै न एक काम ।
मन कांचे नाचै वृथा सांचे राचै राम । —विहारी

सूधे मन सूधे वचन सूधी सब करतूनि ।
तुलसी सूधी सकल विधि रघुवर प्रेम प्रसूति ।
(गोस्वामी तुलसीदास)

(ii) खाडे की धार समभाव के लिए देखें—

प्रेम को पथ कठोर महातलवार की धार पै धावनो है । (घनानन्द)

ग्यान पथ कृपान की धारा । परत खगेस होत नहिं वारा ।
(गोस्वामी तुलसीदास)

(२३४)

चोखौ वनज व्यौपार करीजै,
आइनै दिसावरि रे रांम जपि लाहौ लीजै ।। टेक ।।
जब लग देखौं हाट पसारा,
उठि मन बणियों रे, करि ले बणज सवारा ।।
वेगे हो तुम्ह लाद लदांनां,
औघट घाटा रे चलनां दूरि पयांनां ।
खरा न खोटा नां परखानां,
लाहे कारनि रे सब मूल हिरांनां ।।
सकल दुनी मै लोभ पियारा,
मूल ज राखै रे सोई बनिजारा ।।
देस भला परिलोक बिरानां,
जन दोइ चारि नरे पूछौ साध सयांनां ।।
सायर तीर न वार न पारा,
कहि समझावै रे कबीर बणिजारा ।।

शब्दार्थ—चोखौ=चोखा, अच्छा, लाभकारी । वनज=वाणिज्य । दिसावरि =देसावर, विदेश । लाहौ=लाभ । हाट = बाजार । सवारा=सिदौसी, जल्दी ही । औघट=अवघट=अटपटा । पयाना=प्रमाण, चलना, जाना । वेगे = शीघ्र ही । लाहे=लाभ । मूल=मूलधन, गांठ की पूँजी । हिराना=गवांना । खोगया, नष्ट हो गया । बनिजारा=वाणिज्य करने वाला । सयाना=चतुर । सायर=सागर । तीर=किनारा ।

सन्दर्भ—कबीर कहते है कि इस ससार मे रह कर धर्मपूर्ण आचरण ही हितकारी है ।

भावार्थ—कबीर जीव की तुलना एक व्यापारी वणिक के साथ करते हुए कहते है कि हे जीव ! तुमको अच्छा—लाभकारी वाणिज्य व्यापार करना चाहिए । इस इहलोक रूपी विदेश मे आकर भगवान राम के नाम का स्मरण करते हुए लाभकारी व्यापार करना चाहिए । जब तक इस जगत और जीवन के बाजार का पसारा है, अथवा जब तक जीवन रूपी बाजार चल रहा है, उसी समय मे तू उठकर जल्दी से अपना लाभकारी व्यापार कर ले । तुमको शीघ्र ही लदना-लदाना होगा अर्थात् तुमको जल्दी ही अपना ठाट समेट कर इस जीवन-रूपी बाजार से उठकर चल देना होगा और काफी दूर चल कर अटपटे घाट पर पहुँचना होगा । तुमने न खरा-खोटा देखा । न कुछ परखा । लाभ के लोभ मे तुमने अपनी गांठ की पूँजी (मूलधन) भी गँवा दी । तात्पर्य है कि तुमने इस जगत मे खरे-खोटे की परख नहीं की और [illegible] कि लोभ मे तुमने अपने मूल चैतन्य-स्वरूप को भी भुला दिया । यह व्यापार तो गांठ की पूँजी गँवाने के समान ही हुआ । सारी

दुनियाँ मे लोभ सबको प्यारा है अर्थात् सारा ससार लोभी है। व्यजना यह है कि लाभ का लोभ कोई बुरी बात नहीं है। परन्तु सफल व्यापारी वही है जो अपने मूलधन की रक्षा कर ले। अर्थात् जो अपने चैतन्य स्वरूप को बनाए रखे उसी जीव का जीवन सार्थक है। अपना देश ही अच्छा है, विदेश तो पराया ही रहता है। यह बात तुम दो चार साधु और समझदार व्यक्तियो से भले ही पूछ लो। इस पक्ति का अथ इस प्रकार भी हो सकता है कि इस जगत् मे दो चार ही भक्त है। भले ही सयाने साधुओ से पूछ कर देख लो। उनका भी यही मत है। इस भवसागर के किनारे का कही भी आदि अत नही है—तू ऐसे सागर के तीर पर खडा है जिसका वार-पार नही है। कबीरदास इस जीवरूपी बनिए को यह बात समझाकर कह रहे हैं।

अलकार – (i) सागरूपक—पूरा पद।

(ii) रूपकातिशयोक्ति सायर।

विशेष—(i) राम की भक्ति के द्वारा ही यह जीवन सार्थक बनाया जा सकता है और इस भव-सागर के पार जाना सम्भव हो सकता है।

(ii) जब लग—सवारा—रे जीव अपने कर्त्तव्यो को शीघ्र ही पूरा कर ले। तुम्हे अपने पारमार्थिक कल्याण के लिए पूर्ण प्रयास करना है। साधना का यह मार्ग अत्यन्त दुर्गम है। वह स्थान भी दृश्यमान जगत से विलक्षण है। अत औघट घाट है। वह स्थान ससार की वासनाओ से दूर भी है।

(२३५)

जौ मैं ग्यांन बिचार न पाया,
तौ मैं यौंही जन्म गँवाया ॥ टेक ॥
यहु ससार हाट करि जांनूं, सबको बणिजण आया ।
चेति सकै सो चेतौ रे भाई मूरिख मूल गँवाया ॥
थाके नैन बैन भी थाके, थाकी सुदर काया ।
जांमण मरण ए द्वै थाके, एक न थाकी माया ॥
चेति चेति मेरे मन चचल, जब लग घट मै सासा ।
भगति जाव पर भाव न जइयौ, हरि के चरन निवासा ॥
जे जन जांनि जपैं जग जीवन, तिनका ग्यांन न नासा ।
कहै कबीर वै कबहूँ न हारैं, जांनि न ढारैं पासा ॥

शब्दार्थ – हाट=बाजार, पेठ, व्यापार करने की जगह। भक्ति=स्थूल भक्ति=वाह्याचार=औपचारिक भक्ति। भाव=भक्ति-भाव। पासा=चौसर के खेल मे फेंका जाने वाला वह चौपहला लम्बोतरा हड्डी या लकडी का बना टुकडा जिस पर बिंदिया बनी होती हैं। पासा ढारना=विरोधी को हराने वाला दाँव डालना।

संदर्भ—कबीरदास सच्ची भक्ति के स्वरूप और उसकी महिमा का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—कबीर कहते हैं कि अगर मैंने ज्ञान का रहस्य न समझा, तो मैंने अपना जीवन व्यर्थ ही गँवा दिया। मैं तो इस ससार को कर्म रूपी व्यापार स्थल (हाट) करके जानता हूँ और यहाँ समस्त प्राणी कर्म-व्यापार के हेतु आए हैं। हे जीव, सजग होकर समझ सको, तो सावधान होकर समझ लो। मूर्ख लोग इस ससार रूपी हाट मे आकर अपने मूल (गाँठ की पूजी) को भी गँवा देते हैं—अर्थात् वे अपने चैतन्य स्वरूप को विस्मृत कर बैठते हैं। इस कर्म-व्यापार मे नेत्र, वाणी, सुन्दर शरीर—सब थक जाते हैं। उनके जन्म-मरण भी थक जाते हैं अर्थात् व्यक्ति बार-बार जन्म लेते-लेते और मरते-मरते भी ऊब जाते हैं, परन्तु यह माया—ससार के प्रति आसक्ति नही थकती है। हे मेरे चचल मन, जब तक इस शरीर मे प्राण हैं, तब तक (इसी बीच मे) तू सावधान होकर वस्तु-स्थिति को समझ ले। चाहे औपचारिक भक्ति न कर सको, परन्तु भक्ति की भावना बनाए रखना जिससे भगवान के चरणो मे मन का निवास बना रहे। जो लोग ससार के प्राणाधार भगवान के वास्तविक स्वरूप को समझ कर प्रभु का स्मरण करते हैं, उनके ज्ञान और विवेक नष्ट नही होते हैं। कबीरदास कहते हैं कि जो जानबूझ कर किसी को पराजित करने का प्रयत्न नहीं करते है, उसकी इस जीवन मे कभी पराजय नही होती है। अभिप्राय यह है कि जो व्यक्ति विरोधी भाव या शत्रु भाव से रहित हैं, उनकी सदैव विजय ही विजय होती है।

अलकार (i) रूपक—ससार हाट।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—वणिजन, मूल।
(iii) पदमैत्री—नैन बैन, जाव भाव।
(v) अनुप्रास—थाके थाके थाकी, जे जन जानि जपै जग जीवन। कहैं कबीर कबहू।
(iv) पुनरुक्ति प्रकाश—चेति चेति।
(vii) विरोधाभास—भगति जाव पर भाव न जइयौ।

विशेष—थाके नैन ...... माया।—तुलना करें—

माया मरी न मन मरे, मरि मरि जात सरीर।
आसा तृष्णा ना मरी कह गए दास कबीर।

'आसक्ति' कर्म का बन्धन तैयार करती है। यही माया है। कर्म का बन्धन 'तृष्णा' का हेतु होता है। तृष्णा जन्म लेने की प्रेरणा प्रदान करती है। इसी से कहा है कि 'माया' नहीं थकती है।

(ii) भगति जाव भाव न जइयौ—भक्ति-भाव से तात्पर्य है कि प्रभु की भक्ति के प्रति प्रेम [illegible] का अनुभव। औपचारिकता भले ही छोड़ दो, परन्तु भक्ति का भाव मन में बना रहना चाहिए—

सो अनन्य गति जाके मति न टरह अनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत। (रामचरितमानस)

(iii) जानि न ढारै पासा—जगत के प्रति सेवा का भाव होने के कारण विरोध-भावना अथवा द्वैत भाव स्वयमेव समाप्त हो जाते हैं। धर्मशील एव सच्चे भक्त का लक्षण ही यह है कि विपक्षी की भावना निर्मूल हो जाए और सब आत्मीय प्रतीत होने लगे—

सखा धर्ममय अस रथ जाकें। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके।
महा अजय ससार रिपु जीति सकइ सो बीर।
जाके अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मति धीर।
(रामचरितमानस, तुलसी)

इसी से कबीर ने कहा है कि जीतता वही है जो किसी को हराने का प्रयत्न नही करता है।

(२३६)

लावौ बाबा आगि जलावौ घरा रे,
ता कारनि मन धंधै परा रे ।। टेक ।।
इक डांइनि मेरे मन मे बसै रे, नित उठि मेरे जीय को डसै रे ।
या डांइन्य के लरिका पांच रे, निस दिन मोहि नचांवे नाच रे ।।
कहै कबीर हूं ताकौ दास, डांइनि कै सगि रहै उदास ।

शब्दार्थ—लावौ=लाओ। घराने=घर, काम मनस ससार। धधै=झझट, वन्धन। डाइन=चुडैल। डसै=डसती है, काटती है। पाँच लडके=काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर। नाच नचाना=परेशान करना।

संदर्भ- कबीर विषयासक्ति से विरत होने का उपदेश देते हैं।

भावार्थ—हे बाबा! मुझे ज्ञान की अग्नि ला दो, जिससे मैं विषय-वासनाओ के घर काम-मनस (Mindelity) को जलाकर भस्म करदूँ। इसके कारण ही यह मन अनेक झझटो (वन्धनो) मे पडा हुआ है। आसक्ति रूपी एक चुडैल मेरे मन मे घुस कर बैठ गई है। वह नित्य प्रति अपना सिर उठा कर मेरे अन्त करण को काटती-कचोटती है। इस चुडैल के काम क्रोध, लोभ, मोह और मत्सर-नामक पाँच लडके हैं, जो मुझे दिन-रात तरह-तरह से परेशान करते रहते हैं। कबीर कहते हैं कि मैं उस व्यक्ति का दास हूँ अथवा उस व्यक्ति को अपना गुरु वनाने को तैय्यार हूँ जो इस आसक्ति-रूपी चुडैल की ओर न तो ध्यान देता हूँ और न उससे प्रभावित ही होता हूँ।

अलकार—(i) रूपकातिशयोक्ति—आगि, घर, डायनि, लरिका पच।

विशेष—(i) मुहावरा—नाच नचाना।

(ii) आसक्ति पर विजय अत्यन्त कठिन है।

(२३७)

बंदे तोहि बंदिगी सौ कांम, हरि बिन जांनि और हरांम ।
दूरि चलणां कूंच बेगा, इहां नही मुकांम ॥ टेक ॥
इहा नही कोई यार दोस्त, गांठि गरथ न दाम ।
एक एकै संगि चलणां, बीचि नहीं बिश्रांम ॥
संसार सागर बिषम तिरणां, सुमरि लै हरि नांम ।
कहै कबीर तहां जाइ रहणां नगर बसत निधांन ॥

शब्दार्थ बंदे दास, भक्त। बंदिगी=सेवा, भक्ति। हराम=शरअ (मुसलमान धर्म शास्त्र) के विरुद्ध, निषिद्ध। कूच=रवानगी। बेगा=शीघ्र। मुकाम =वास स्थान, घर। गरथ=सम्पत्ति। निधान=कृपानिधान, भगवान।

सन्दर्भ—कबीरदास संसार के प्रति उदासीन होकर भगवान को याद करने का उपदेश देते हैं।

भावार्थ—रे भक्त! तुझे तो भगवान की भक्ति से काम है। भगवान की भक्ति के अतिरिक्त अन्य सब बातो को तुम निषिद्ध यानी धर्मशास्त्र के विरुद्ध समझो। तेरा गन्तव्य बहुत दूर है। अतएव यहाँ से जल्दी ही रवाना हो जाओ। इस संसार मे तुम्हारे वास-स्थान नही है अथवा यहाँ टिकासरा लेना उचित नही है। इस दुनियाँ मे तुम्हारा कोई हितैषी एवं शुभचिंतक भी नही है और यहाँ पर खर्च करने के लिए तेरे पास विशेष सम्पत्ति भी नही है (क्योंकि तुम अपने पुण्यों का क्षय कर चुके हो)। तुमको इस यात्रा मे अकेले ही चलना है और बीच मे कही विश्राम-स्थल भी नही है। इस संसार रूपी सागर को पार करना बहुत कठिन काम है। तुम उसको पार करने के लिए भगवान का नाम स्मरण करो। कबीर कहते है कि तुमको तो वहां जाकर रहना है जिस नगर मे स्वयं कृपानिधान भगवान निवास करते हैं।

अलंकार—(i) रूपक—संसार सागर।
(ii) साग रूपक—बटोही साधक का रूपक।

विशेष—(i) कबीर का कहना है कि भक्त को संसार के प्रति एकदम विमुख हो जाना चाहिए, क्योंकि परम धरम की प्राप्ति ही उसका एक मात्र लक्ष्य है।

(iii) यह संसार भक्त के लिए नहीं है। यह माया का स्थान है। माया और [illegible] का [illegible] में कोई [illegible] नही होता है। इसी कारण साधक का कोई [illegible] नहीं होता है। [illegible] कवीन्द्र की यह पंक्ति पूज्य बापू के [illegible]"

[illegible]

(२३८)

झूठा लोग कहैं घर मेरा ।
जा घर मांहैं बोलै डोलै, सोई नहीं तन तेरा ॥ टेक ॥
बहुत बंध्या परिवार कुटुंब मै, कोई नही किस केरा ।
जीवत आँखि मूंदि किन देखौ, ससार अब अँधेरा ॥
बस्ती मै थै मारि चलाया, जंगलि किया बसेरा ।
घर कौं खरच खबरि नही भेजी, आप न कीया फेरा ॥
हस्ती घोड़ा बैल बांहणी, सग्रह किया घणेरा ।
भीतरि बीबी हरम महल मै, साल मिया का डेरा ॥
बाजी की बाजीगर जांनै कै बाजीगर का चेरा ।
चेरा कबहूँ उझकि न देखै, चेरा अधिक चितेरा ॥
नौ मन सूत उरझि नही सुरझै, जनमि जनमि उरझेरा ।
कहै कबीर एक रांम भजहु रे, बहुरि न ह्वैगा फेरा ॥

शब्दार्थ—बध्या=बधे हुए । केरा=का । बाहणी=सवारी । हरम=अन्त पुर ।

सन्दर्भ—कबीर ससार की असारता का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि जीवन की सार्थकता भगवद्-भजन मे ही है ।

भावार्थ—हे जीव, दुनियाँ के लोग व्यर्थ ही कहते है कि यह घर मेरा है । जिस शरीर रूपी घर मे यह जीव बोलता है और क्रियाशील रहता है, वह शरीर भी तुम्हारा नही है । तुम परिवार और कुटुम्ब के प्रति बहुत आसक्त हो, पर यह नही जानते हो कि कौन किसका है—अर्थात् तुम यह नही जानते हो कि कोई किसी का नही है । तुम अपने जीवन मे आँख बन्द करके देखलो । तुम्हे चारो ओर अधेरा ही अधेरा दिखाई देगा । कहने का अभिप्राय यह है कि तुम एक बार झूठ-मूठ ही मर कर देखो । तुम्हे ज्ञात हो जाएगा कि तुम्हारा कोई नही है । मृतक तुल्य व्यक्ति को मार कर शहर के बाहर निकाल देते हैं और उसको जगल मे रहना पडता है । वह भी घर को न खर्च भेजता है और न खबर ही भेजता है । सब लोग उसको इस प्रकार भूल जाते हैं कि घर लौट कर आने को इसका मन ही नही होता है । वह फिर लौट कर आता ही नही है ।

हाथी, घोडे, बैल, बैली (सवारी) कितने भी धन का सग्रह किया जाए, सब व्यर्थ है । महल के अन्तपु र के भीतर विषय भोग के लिए पत्नी एव सुन्दरियाँ रहती हैं, परन्तु मृततुल्य पति को अब वहाँ स्थान नही रह जाता है । उन्हे महल के बाहर परकोटे मे कही न कही स्थान दे दिया जाता है । जीवन के इस विचित्र व्यवहार को देखकर कबीर कहते हैं कि यह जगत केवल एक तमाशा है । इसे या तो ईश्वर रूपी बाजीगर समझता है अथवा उसका भक्त कोई तत्वज्ञ ही जानता है । चेता स्वय बहुत बडा चित्रकार या बाजीगर बन जाता है । वह ससार-रूपी

खेल के प्रति भूल कर भी आसक्त नही होता है। यह जीवन उलझे हुए नौ मन सूत की भांति है। जीव इसकी गुत्थियो को जन्म जन्मान्तर तक सुलझाने का प्रयत्न करते रहते हैं। कबीर कहते है कि हे जीव, तुम किसी अन्य साधना के फेर मे मत पडो, केवल एक राम का भजन करो जिससे तुम्हारा पुनर्जन्म न हो और कही तुम्हे इन उलझन मे न पडना पडे।

अलंकार—(i) रूपक घर तन।
(ii) गूढोक्ति—नही किस केरा।
(iii) पुनरुक्ति प्रकाश—जनमि जनमि।
(v) रूपकातिशयोक्ति—बाजी, बाजीगर, नौ मन सूत।

विशेष—(i) नौ मन सूत मुहावरा है। कतिपय आलोचको ने इसका प्रतीकात्मक अर्थ किया है—पांच ज्ञानेन्द्रिय तथा अन्त करण चतुष्टय (मन, बुद्धि, चित्त एव अहकार)।

(२३९)

हावड़ि धावड़ि जनम गवावै,
कबहूँ न रांम चरन चित लावै ॥ टेक ॥
जहां जहां दांम तहा मन धावै, अगुरी गिनतां रैनि बिहावै ।
तृया का बदन देखि सुख पावै, साध की सगति कबहू न आवै ॥
सरग के पथि जात सब लोई, सिर धरि पोट न पहुँच्या कोई ।
कहै कबीर हरि कहा उबारै, अपणैं पाव आप जौ मारै ॥

शब्दार्थ—हावड़ि धावड़ि=आपा धापी, दौड धूप। दाम=धन। धावै=दौडता है। बिहावै=व्यतीत करता है। तृया=त्रिया, स्त्री। पोट=गठरी।

सन्दर्भ—कबीर कहते है कि विषय-भोग के प्रति आसक्त जीव का उद्धार सम्भव नही है।

भावार्थ—यह अभागी जीव विषय-वासनाओ की दौड धूप मे ही अपना जन्म व्यतीत कर देता है। वह कभी भी भगवान के चरणो मे चित्त नही लगाता है। वह जहाँ भी धन देखता है, वही उसका मन दौडता है। धन के लोभ की चिन्ता मे वह अगुलियो पर घंटे-घंटो गिनगिन कर रातें व्यतीत करता है। कामग्रस्त होकर नारी का मुख देखने मे सुख का अनुभव करता है और साधुओ की सगति कभी नही करता है। सब लोग स्वर्ग के मार्ग पर जाना चाहते है, परन्तु वे यह नही विचारते है कि सिर पर पाप-कर्म की पोटली रखकर कोई भी वहाँ नही पहुँच पाता है। कबीर कहते है कि जो व्यक्ति स्वय अपने पैरो मे कुल्हाडी मारता है अर्थात् जान बूझ कर पाप-कर्म मे प्रवृत्त होता है, उसका उद्धार भगवान भी कैसे कर सकते है।

अलकार—(i) पुनरुक्ति प्रकाश—[illegible]।
(ii) [illegible]।

(iii) लोकोक्ति—अपणै पाव आप मारना ।

(iv) रूपकातिशयोक्ति—पोट ।

विशेष—(i) मुहावरो का प्रयोग—हावडि धावडि, अगुली पर गिनना ।

(ii) उद्धार के लिए सत्कर्म आवश्यक है। भगवान भी उन्ही का उद्धार करते हैं जो स्वय अपने उद्धार मे प्रयत्नशील होते हैं "God helps those who help themselves

(२४०)

प्रांणी काहे कै लोभ लागि, रतन जनम खोयौ ।
बहुरि हीरा हाथि न आवै, रांम बिनां रोयौ ।। टेक ।।
जल बूंद थै ज्यनि प्यड बाध्या, अगिन कुंड रहाया ।
दस मास माता उदरि राख्या, बहुरि लागी माया ।।
एक पल जीवन की आशा नांही, जम निहारे सासा ।
बाजीगर ससार कबीरा जांनि ढारौ पासा ।।

शब्दार्थ—काहे कै=किसके । बहूरि= फिर । हीरा=हीरा रूपी मानव । जीवन । प्यड=शरीर । बाध्या=तैय्यार किया । अगिन कुड=गर्भ । जानि=सोच समझकर । ढारौ पासा=आचरण करो ।

संदर्भ—कबीर कहते हैं कि विवेकपूर्ण आचरण ही जीवन का सर्वस्व है ।

भावार्थ—हे प्राणी ! तूने किस लोभ के वशीभूत होकर रत्नरूपी जीवन नष्ट कर दिया । हीरा रूपी यह मानव जीवन फिर दुबारा प्राप्त नही होगा । राम की भक्ति न करने के कारण अब केवल पश्चाताप ही तुम्हारे हाथ रह गया है । भगवान ने वीर्य और रज की बूँद से तुम्हारा शरीर उत्पन्न किया और उसको गर्भ की अग्नि मे सुरक्षित रखा । दस महीने तक भगवान माता के पेट मे उस गर्भ की रक्षा करते रहे । परन्तु तुमने उन भगवान का ध्यान तो किया नही, और जन्म लेते ही माया मे लिप्त हो गए । तुमने यह विचार नही किया कि इस जीवन का पलभर भी भरोसा नही है । इसको ले जाने के लिए यम एक-एक श्वास गिनता रहता है, अर्थात् यमराज सदैव यह देखते रहते हैं कि कब श्वासें पूरी हो और मै इस जीव को लेजाऊँ । कबीर कहते हैं कि यह ससार बाजीगर की तरह धोखा देने वाला है । इसमे विवेक पूर्वक आचरण करना चाहिए ।

अलकार—(i) रूपक—रतन जनम ।

(ii) रूपकातिशयोक्ति—हीरा, अगिन कुड ।

(iii) उपमा—बाजीगर ससार ।

विशेष—(i) मुहावरो का प्रयोग—हाथ आना, पासा ढारना ।

(ii) गर्भवास के कष्ट तथा ससार की असारता का वर्णन करके कबीर भय-दर्शन द्वारा जीव को सदाचरण की प्रेरणा प्रदान करते हैं ।

(iii) वैराग्य एव निर्वेद की व्यजना है ।

(२४१)

फिरत कत फूल्यौ फूल्यौ ।
जब दस मास उरध मुखि होते, सो दिन काहे भूल्यौ ।। टेक ।।
जौं जारै तौ होई भसम तन, रहत कृम ह्वै जाई ।
काचै कुंभ उद्यक भरि राख्यो, तिनकी कौन बड़ाई ।
ज्यूं माषी मधु संचि करि, जोरि धन कीनो ।
मूये पीछैं लेहु लेहु करि, प्रेत रहन क्यूं दीनू ।।
ज्यूं घर नारी संग देखि करि, तब लग संग सुहेलौ ।
मरघट घाट खेंचि करि राखे, वह देखिहु हंस अकेलौ ।।
रांम न रमहु मदन कहा भूले, परत अंधेरै कूवा ।
कहै कबीर सोई आप बधायौ, ज्यूं नलनी का सूवा ।।

शब्दार्थ—उरध मुख=ऊपर को मुख किए हुए अर्थात् उलटा मुख किए हुए। माषी=मक्खी, शहद की मक्खी से तात्पर्य है। घर नारी=ब्याहता स्त्री, ब्याही हुई। सजन सहेली=स्वजन एवं साथी। कूवा=कुँआ, यहाँ तात्पर्य अज्ञान का कुआ। नलिनी=पोले बाँस की नली जो तोता पकड़ने के काम मे आती है।

सन्दर्भ—संसार के बाह्य आकर्षक रूप पर मोहित एवं ऐश्वर्य मे मदमत्त मानव को कबीरदास सावधान करते हैं।

भावार्थ—हे भोले मानव! तू गर्व मे फूला हुआ क्यो फिर रहा है? क्या तू उस व्यथा को भूल गया जो तुझे गर्भ मे दस माह तक उलटे लटके रहने के कारण हुई थी? जन्म के समय जितनी व्यथा हुई थी, मृत्यु के समय भी वैसी ही व्यथा होगी, यह संकेत करते हुए कबीर कहते हैं कि मरने पर तेरा शरीर जब जलाया जायगा, तब भस्म होकर समाप्त हो जाएगा और यदि जलाया नही गया, और यों ही पड़ा रहा, तो उसे कीड़े-मकोड़े खा जाएँगे। इस शरीर की इतनी ही महिमा है जितनी महिमा पानी से भरे हुए कच्चे घड़े की होती है जो शीघ्र ही फूट जाता है। जिस प्रकार मधुमक्खी तनिक-तनिक (थोड़ा-थोड़ा) करके शहद इकट्ठा करती है, उसी प्रकार तुमने भी थोड़ा-थोड़ा करके कुछ धन संचित कर लिया है; तुम्हारे मरते ही सब लोग 'लेवो, लेवो' कहते हुए इस धन को आपस में बाँट लेंगे और तुम्हारे इस शरीर को उठाकर बाहर फेंक देंगे, क्योंकि प्रेत को कौन घर मे रखना चाहेगा? भाव यह है कि तुम्हारा प्राणान्त होते ही लोग तुम्हारे इस धन को लेने की बात करने लगेंगे और तुम्हारे शरीर को प्रेत कह कर घर के बाहर तुरन्त कर देंगे। मर जाने पर विवाहिता पत्नी भी घर की देहली (द्वार) तक साथ देती है और रिश्तेदार-नातेदार एवं मित्र लोग उसको घर से बाहर ले जाते हैं। कुटुम्ब के लोग मरघट (श्मशान घाट) तक ले जाते हैं। और इसके बाद जीवात्मा अकेला रह जाता है। कबीरदास कहते हैं कि हे मद मस्त हुए और अन्धे हुए भोले मानव! तू अपना मन राम में क्यों नहीं रमाता है? क्यों राम नाम का जप नहीं

करता है ? मोह मे पडा हुआ तू, क्यो अपने आपको काल के अंधे कुएँ मे डालने की तैयारी कर रहा है ? कबीरदास कहते है कि मनुष्य अपने आ को सासारिक बन्धनो मे उसी प्रकार बँधा देता है जिस प्रकार तोता स्वय आकर अपने आपको नलिनी मे कैद हो जाता है ।

अलंकार—(i) गूढोत्तर – फिरत कत कहा परत ।

(ii) पुनरुक्ति प्रकाश — फूल्यौ-फूल्यौ, जोरि जोरि, लेहु लेहु ।

(iii) उपमा—ज्यूँ माषी, ज्यूँ सूवा ।

(iv) रूपक - अँधेरे कुआ ।

विशेष—(i) इस पद मे ससार की असारता का प्रतिपादन है ।

(ii) वैराग्य एव निर्वेद की व्यजना है ।

(iii) जीव एव जीवन की तुच्छता का वर्णन है ।

(iv) कहै कबीर··· ··· नलिनी को सूवा । शुक को पकडने के लिए पहले बधिक एक घूमने वाली लगा देता है —उसे पौनी या नलिनी कहते हैं । शुक आकर उप पर बैठ जाता है । वह उलटा हो जाता है और नली के घूमने के साथ वह भी फिरने लगता है। इससे वह समझता है कि नली से बँध गया हैं । बस, इसी बीच मे बधिक आकर शुक को पकड लेता है । यही दशा मानव की है । वह सासारिक प्रपच मे स्वय लिप्त होता है और समझता यह है कि ससार ने उसे पकड रखा है । अस्तु ।

(v) तोते के नलिनी मे स्वय आकर बद्ध होने का कथन सूरदास ने भी किया है—

अपुनपौ आपुन ही बिसर्‌यो ।
× × ×
हरि-सौरभ मृग नाभि बसत है, द्रुम-तृण सूँघि फिर्‌यो ।
× × ×
मरकट मूँठि छाँड़ि नहिं दीनी, घर-घर द्वार फिर्‌यो ।
सूरदास, नलिनी को सुवटा, कसि कौने पकड्‌यो ।

(२४२)

जाइ रे दिन हीं दिन देहा,
करि लै बौरी रांम सनेहा ।। टेक ।।
बालापन गयौ जोबन जासी, जुरा मरण भौं सकट आसी ।
पलटे केस नैन जल छाया, मूरिख चेति बुढ़ापा आया ।।
रांम कहत लज्या क्यूं कीजै, पल पल आउ घट तन छीजै ।
लज्या कहै हू जम की दासी, एकै हाथि मुदिगर दूजै हाथि पासी ।
कहै कबीर तिनहू सब हार्‌या, रांम नाम जिनि मनहु बिसार्‌या ।।

शब्दार्थ—जाइरे=क्षीण हो रही है । जुरा=जरा, बुढापा । आसी=आएगा। पलटे केस=बालो का रग बदल गया है अर्थात् बाल सफेद हो गए है । लज्या=लज्जा ।

सन्दर्भ—कबीरदास मानव को चेतावनी देते हुए कहते है कि उसे रामनाम का स्मरण करना चाहिए।

भावार्थ—री पागल जीवात्मा ! दिन प्रतिदिन यह शरीर क्षीण हो रहा है। हे पगली ! भगवान राम के प्रति मन को अनुरक्त कर ले। तुम्हारा बचपन तो नष्ट हो ही गया है, जवानी भी चली जाएगी और बुढापा तथा मृत्यु का भय उपस्थित होगे। तुम्हारे बाल सफेद हो गए है, नेत्रो मे कमजोरी के कारण सदैव पानी डबडबाता रहता है। हे मूर्ख ! अब भी होश मे आजा। देख, बुढापा तो आ ही धमका है। राम-नाम का उच्चारण करते हुए तुझ को शर्म क्यो लगती है। प्रत्येक क्षण तेरी आयु कम हो रही है और तेरा शरीर दुर्बल होता चला जा रहा है। लज्जा कहती है कि मैं यमराज की दासी हूँ। इसी कारण इसको राम-नाम कहने से पराङ्मुख करती रहती हूँ। मेरे एक हाथ मे मुगदर है और दूसरे हाथ मे फदा है। जिनमे यमराज को इसे मारकर बाँधकर ले जाने मे विलम्ब न लगे)। कबीरदास कहते हैं कि जिन्होने मन से भी राम-नाम को भुला दिया है, उनका जीवन सर्वथा निरर्थक हो गया है।

अलकार—(i) मानवीकरण—लज्जा कह्यौ।
(ii) पुनरुक्ति प्रकाश—पल-पल।

विशेष—(i) व्यजना यह है कि राम-नाम के स्मरण से मृत्यु पर विजय हो जाती है।

(ii) निर्वेद सचारी भाव की व्यजना है।

(२४३)

मेरी मेरी करतां जनम गयौ,
जनम गयौ परि हरि न कह्यौ ॥ टेक ॥
बारह बरस बालापन खोयौ, बीस बरस कछू तप न कीयौ।
तीस बरस कै रांम न सुमिर्‌यौ फिरि पछितानौं बिरध भयौ ॥
सूकै सरवर पालि बंधावै, लुणै खेत हठि बाड़ि करै।
आयौ चोर तुरंग मुसि ले गयौ मोरी राखत मुगध फिरै ॥
सीस चरन कर कंपन लागे, नैन नीर अस राल बहै।
जिभ्या बचन सूध नहीं निकसै, तब सुकरित की बात कहै ॥
कहै कबीर सुनहु रे संतौ, धन संच्यौ कछू संगि न गयौ।
आई तलब गोपाल राइ की, मैंडी मंदिर छाड़ि चल्यौ ॥

शब्दार्थ—मेरी मेरी = यह मेरा, वह तेरा का भाव। बिरध = वृद्ध, बुड्ढा। सरवर = तालाब। पालि = पार मिट्टी का बाँध। लुणै = काटा हुआ। बाड़ = मेड़, रक्षा करने की व्यवस्था से अभिप्राय है। हठि = हठ पूर्वक जिद करके। तुरंग = घोड़ा। मुसि = चोरी करके ले जाना। मोरी = मोरी जिसमें घोड़ा बंधा हुआ था।

मुगध=मूर्ख । राखत=रक्षा करता हुआ । अगराल=असधार, आँसुओ की धार । जिम्या=जीभ । सुकरति=सुकृत, पुण्य । तलव=बुलावा ।

सदर्भ—कबीर जीवन की क्षण भगुरता का प्रतिपादन करते है और कहते हैं कि राम-नाम का स्मरण अवश्य करना चाहिये ।

भावार्थ—हे जीव ! अहभाव तथा अपना-तेरी के फेर मे तेरा सम्पूर्ण जीवन व्यतीत हो गया । तूने अपना सम्पूर्ण जीवन इसी प्रकार व्यर्थ गँवा दिया, परन्तु भगवान का नाम नही लिया । प्रारम्भ के बारह वर्षो तक तो तू बालक बना रहा और वह समय बालकपन के नाम पर खेलकूद मे नष्ट कर दिया । इसके बाद बीस वर्ष की अवस्था तक (किशोरावस्था मे) किसी प्रकार की साधना नही की । तीस वर्ष की अवस्था तक (अथवा युवावस्था मे) तूने राम का भजन न किया इसके बाद तेरी वृद्धावस्था आ गई और अब तू पश्चाताप करने लगा । जीवन व्यतीत हो जाने पर पश्चाताप करना व्यर्थ है । यह तो तालाब के सूख जाने के बाद उसके चारों ओर मेड बाँधने के समान है अथवा काटे हुए खेत की रखवाली के लिए उसके चारो ओर बाड लगाना है । यह तो ऐसा ही है जैसे चोर आकर किसी का घोडा चुरा कर ले गया हो और उसका मूर्ख स्वामी उसकी रास पकडे घूम रहा हो (और इस भ्रम मे हो कि घोडा उसके अधिकार मे है ।) अब तो सिर, पैर, हाथ सभी अग काँपने लगे हैं और आँखो से बराबर पानी बहता रहता है । जीभ (मुख) से ठीक तरह बोला नही जाता है । पूर्ण शक्तियो के नष्ट हो जाने के बाद अब तू पुण्य-कृत्य की बात करता है । कबीरदास कहते हैं कि हे सतो ! अनेक व्यक्तियो ने धन का सचय किया । वह धन-सम्पत्ति किसी के साथ नही गई । भगवान का बुलावा आते ही उन्हे गृह द्वार छोडकर चला जाना पडा । अथवा इस जीव ने भी बहुत सी सम्पत्ति एकत्र कर रखी है । अन्य जीवो की भाँति इसके साथ भी कुछ नही जाएगा और भगवान का बुलावा आने पर इसको भी घर-द्वार, महल, मन्दिर सब कुछ छोडकर चल देना पडेगा ।

अलकार—(i) पुनरुक्ति प्रकाश—मेरी मेरी ।
(ii) वृत्यानुप्रास—बारह बरस बालपन, बीस बरस ।
(iii) दृष्टान्त—सूकै ... फिरै ।

विशेष—समभाव के लिए शकराचार्य का भज गोविन्द स्तोत्र देखें - अग गलित तलितं गुड इत्यादि ।

(२४४)

जाहि जाती नांव न लीया,
फिरि पछितावै गौ रे जीया ।। टेक ।।
धधा करत चरन कर घाटे, आउ घटी तन खीना ।
विषै बिकार बहुत रुचि मांनी, माया मोह चित दीन्हां ।।

जागि जागि नर काहे सोवै, सोइ सोइ कब जागैगा ।
जब घर भीतरि चोर पड़ेगे, तब अंचलि किसकै लागेगा ।।
कहै कबीर सुनहु रे संतौ, करि ल्यौ जे कछु करणां ।
लख चौरासी जोनि फिरौंगे, बिनां रांम की सरनां ।।

शब्दार्थ—जाति जाती=व्यर्थ जाते हुए । जीया=जीव । चरन=पाँव । कर=हाथ । थारे=क्षीण हो गये, थक गये । आउ=आयु ।

संदर्भ— कबीरदास जीव को रामभक्ति की ओर प्रेरित करते हैं ।

भावार्थ— रे जीव ! जीवन व्यर्थ जाते हुए देखकर भी यदि तूने भगवान का नाम नही लिया तो बाद मे तुम्हे पछताना पडेगा । ससार के धन्धो को करते-करते तेरे हाथ-पाँव दुर्बल हो गए है, आयु घटती जा रही है और शरीर क्षीण हो गया है । विषय-विकारो के प्रति तू सदैव अनुरक्त रहा और माया-मोह मे उलझा रहा, अर्थात् मैं मेरा' के चक्कर मे पडा रहा । रे जीव ! जागजा । अज्ञान निद्रा मे क्यो सो रहा है । आखिरकार इस अज्ञान-रूपी निद्रा को तू कब छोडेगा ? अर्थात् यदि अब भी नही जागा, तो आखिर कब जागेगा ? जब इस शरीर रूपी घर मे यम-दूत रूपी चोर तेरे जीवन को ले जाने के लिए घुस आँयेंगे, तब तू उस समय अपने रक्षार्थ किसकी शरण मे जायगा ? कबीर कहते हैं कि हे सतो ! सुनो जो कुछ भगवन्नाम-स्मरण करना है, उसे कर लो । राम की शरण मे गए बिना तुमको बार-बार जन्म लेकर चौरासी लाख योनियो मे निरन्तर भटकते रहना पडेगा ।

अलकार—(i) पुनरुक्तिप्रकाश—जागि जागि ।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—घर चोर ।
(iii) गूढोक्ति— अंचलि किसके लागेगा ।

विशेष—'निर्वेद' सचारी भाव की मार्मिक व्यजना है ।

(२४५)

माया मोहि मोहि हित कीन्हां,
तायें मेरो ग्यांन ध्यांन हरि लीन्हा ।। टेक ।।
संसार ऐसा सुपिन जैसा, जीव न सुपिन समांन ।
सांच करि नरि गांठि बांध्यौ, छाड़ि परम निधांन ।।
नैन नेह पतंग हुलसै पसू न पेखै आगि ।
काल पासि जु मुगध बांध्या, कलंक कांमिनीं लागि ।।
करि बिचार बिकार परहरि, तीरण तारण सोइ ।
कहै कबीर रघुनाथ भजि नर, दूजा नांहीं कोइ ।।

शब्दार्थ— [illegible] । हुलसै=उल्लसित होना है । पासि=[illegible], फंदा । परिहरि=त्याग कर । तीरण=तरणि, नौका । तारण तारने वाला । कलंक=[illegible] ।

सन्दर्भ—कबीर कहते हैं कि माया द्वारा मोहित मनुष्य को समझ लेना चाहिये कि एक मात्र राम-भजन द्वारा ही उसका उद्धार सम्भव है।

भावार्थ—जीव कहता है कि मैंने मुग्ध हो-होकर माया से प्रेम किया। इसी कारण उसने मेरा ज्ञान (आत्म-बोध) एव विवेक (ईश्वर का ध्यान) हरण कर लिया। यह संसार ऐसा अस्थायी है जैसा स्वप्न होता है और यह जीवन स्वप्न की भाँति मिथ्या है। परन्तु फिर भी मैंने परम निधान (सबके आश्रय) प्रभु को छोडकर ससार को सच्चा समझकर गाँठ मे बाँधा अर्थात् सासारिकता के प्रति आसक्त हुआ। पतिगा नेत्रो की वासना की तृप्ति के फलस्वरूप पतगा प्रसन्न होता है और इस विषय-सुख के कारण वह पशु उसकी ओर जाते समय यह नही देखता है कि अग्नि उसको जला देगी। हे मूर्ख जीव ! तू जो काल-पाश मे बाधा गया है, वह कनक और कामिनी के प्रति आसक्त होने के कारण बाधा गया है। कबीर कहते हैं कि तू विचार करके काम, क्रोध, लोभ, मोह, मदादि विकारो को छोड दे और रघुनाथजी का भजन कर। वही ससार से तारने वाले हैं—नाव भी हैं और तारने वाले भी हैं। इस जगत मे अन्य कोई ऐसा नही है जिसका आश्रय ग्रहण किया जा सके।

अलंकार—(i) उपमा—ससार सुपिन ऐसा, जीवन सुपन समान।
(ii) पुनरुक्ति प्रकाश—मोहि मोहि।
(iii) रूपक—काल-पाशि।
(iv) उदाहरण—नैह नेह ·· लागि।
(v) छेकानुप्रास—नैह नेह, तिरण तारण।
(vi) अनन्वय की व्यजना—दूजा नाही कोइ।
(vii) वृत्यानुप्रास—माया मोहि मोहि, पतग पसू पेखै।
(viii) पदमैत्री—सुपिन जीवन, करि विचार बिकार।

विशेष—(i) निर्वेद एव वैराग्य का प्रतिपादन है।
(ii) कबीर एक ज्ञानी भक्त की भाँति भगवद्भजन का उपदेश देते हैं।

(२४६)

ऐसा तेरा झूठा मीठा लागा,
ताथै साचे सू मना भागा ॥ टेक ॥
झूठे के घरि झूठा आया, झूठा खांन पकाया।
झूठी सहन क झूठा वाह्या, झूठै झूठा खाया।
झूठा ऊठण झूठा बैठण, झूठी सबै सगाई।
झूठे के घरि झूठा राता, साचे को न पत्याई ॥
कहै कबीर अलह का पगुरा, साचे सू मन लावौ।
झूठे केरी सगति त्यागौ, मन बछित फल पावौ ॥

शब्दार्थ—सहन=सहनक=थाली। वाह्या=किया। पगुरा=बच्चा।

सन्दर्भ—कबीर सबको झूठा कहकर भगवान के प्रति अनुरक्त होने को कहते हैं ।

भावार्थ—हे मनुष्य तेरा ऐसा स्वभाव बन गया है कि तुझे झूठ ही मधुर लगता है अथवा हे मनुष्य तेरी वृत्ति मिथ्या आनन्दो मे अत्यधिक रमती है । फल यह हुआ कि तू सत्य से सत्यानन्द से पराङ्मुख हो गया । इस मिथ्या ससार मे झूठा जीव आया (ससार और जीव भाव ही मिथ्या हैं ।) वह मिथ्या विषय-वासनाओ मे पड गया । इसी को लक्ष्य करके कबीर कहते हैं कि इस मिथ्या ससार ने उसके लिये झूठी विषय-वासना रूपी भोजन तैयार किया । माया रूपी झूठी थाली मे झूठा भोजन परोसा गया और झूठे जीव ने उसमे विषय-वासना रूपी झूठे भोजन का भोग किया । यह उठना-बैठना एव समस्त सम्बन्ध झूठे (परमार्थतः मिथ्या) है । इस प्रकार झूठे रग मे झूठा अनुरक्त हो गया है । वह सत्य तत्व पर विश्वास नही करता है । कबीर कहते है कि हे खुदा के बच्चो (परमात्मा के पुत्रो) ! तुम परम तत्व स्वरूप सत्य मे मन लगाओ और इस मिथ्या ससार के प्रति अपनी आसक्ति का त्याग कर दो । इसी से तुमको मन वाञ्छित फल (मोक्ष) की प्राप्ति होगी ।

अलकार—(i) रूपकातिशयोक्ति एव यमक की व्यजना—'झूठा' ।

विशेष—(i) जगत, जीव-भाव, विषय-वासना आदि सबको 'मिथ्या' कहने वाले कबीर ने प्रकारान्तर से शकर के 'मायावाद' का प्रतिपादन किया है ।

(ii) 'निर्वेद' सचारी की व्यंजना है ।

(iii) वैराग्य का प्रतिपादन है ।

(२४७)

कौंण कौंण गया राम कौंण कौंण न जासी,
पड़सी काया गढ माटी थासी ।। टेक ।।
इद्र सरीखे गये नर कोड़ी, पांचो पांडों सरिषी जोड़ी ।
ध्रू अविचल नहीं रहसी तारा, चद सूर की आइसी बारा ।।
कहै कबीर जग देखि समारा, पड़सी घट रहसी निरकारा ।

शब्दार्थ—जासी = जाएगा । गढ = किला । पड़सी = गिरेगा । थासी = हो जाएगा । कोडी = करोड़ों । घट = शरीर अथवा दृश्यमान जगत ।

सन्दर्भ—कबीर ससार की नश्वरता का प्रतिपादन करते हैं ।

भावार्थ—हे राम ! इस जगत मे कौन-कौन नही चला गया और कौन-कौन नहीं चला जाएगा ? (अथवा इस [illegible] मे कितने लोग चले गये हैं । कौन नही जाएगा ?) शरीर-रूपी गढ [illegible] गिर पड़ेगा और मिट्टी हो जाएगा । इन्द्र के समान [illegible] करोड़ों [illegible] चले गये । पाँचो पाण्डवो जैसी जोड़ियाँ चली गईं । यह ध्रुव तारा भी स्थिर नहीं रहेगा । चन्द्र और सूर्य के [illegible] भी अवसर आएगा । कबीरदास कहते हैं कि [illegible] इस [illegible] ससार को [illegible], यह घटाकाश

(दृश्यमान जगत) गिर कर समाप्त हो जाएगा और एक मात्र निराकार परम तत्त्व ही रह जाएगा। (वही शाश्वत सत्य है।)

अलंकार—(i) गूढोक्ति—कौण कौण गया।
(ii) वक्रोक्ति—कौण कौंण न जासी।
(iii) रूपक - काया गढ।
(iv) उपमा—इन्द्र सरीखे, पाडौ सीखी।

विशेष—(i) ध्रू अविचल नही रह सी—शास्त्र विरुद्ध कथन होने के कारण यहाँ 'दुष्क्रात्व' दोष है।

(ii) शाकर ब्रह्मवाद—'ब्रह्म सत्य' जगन्मिथ्या का प्रतिपादन है।

(iii) 'राम' के द्वारा 'आत्मा' को सम्बोधित किया गया है।

(२४८)

तथैं सेवियै नारांइणां,
प्रभू मेरौ दीनदयाल दया करणा ।। टेक ।।
जौ तुम्ह पंडित आगम जांणौं, विद्या व्याकरणां ।
तंत मत सब ओषदि जाणौं, अंति तऊ मरणां ।।
राज पाट स्यंघासण आसण, बहु सुदरि रमणां ।
चदन चीर कपूर बिराजत, अंति तऊ मरणां ।।
जोगी जती तपी संन्यासी, बहु तीरथ भरमणां ।
लुचित मुडित मोनि जटाधर, अति तऊ मरणां ।।
सोचि बिचारि सबै जग देख्या, कहू न ऊबरणां ।
कहै कबीर सरणाई आयौ, मेटि जामन मरणां ।।

शब्दार्थ—तार्थै=इसलिए । सेवियै=सेवा कीजिए । आगम=शास्त्र । चीर=वस्त्र । लुचित=जिन्होने अपने बालो को नोच-नोच कर निकाल दिया है । जामन=जन्म ।

संदर्भ—कवीर दृश्यमान जगत की नश्वरता का वर्णन करते है ।

रे मानव ! नारायण की सेवा इसलिए करनी चाहिए क्योकि वे प्रभु दीनो पर दयालु हैं तथा दया एव करुणा करने वाले हैं । तुम भले ही पडित हो, शास्त्रो के ज्ञाता हो, विद्या व्याकरण जानते हो, तन्त्र-मन्त्र एव सम्पूर्ण आयुर्वेद का तुम्हे ज्ञान है, परन्तु फिर भी तुम्हे अन्त मे मरना ही है । तुम्हारे राज-पाट है, तुम सिंहासन पर विराजते हो, अनेक सुन्दरियो के साथ रमण करते हो, चदन और कपूर से चर्चित वस्त्रो से सुशोभित होते हो, तव भी तुम्हे अत मे मरना ही है । चाहे कोई योगी है, यति है, तपस्वी है, सन्यासी है, अनेक तीर्थों मे भ्रमण किया हुआ व्यक्ति है, लुचित मुडित, मौनी, जटाधारी किसी भी प्रकार का साधु है, पर अतत. उसको भी मरना है । कवीर कहते हैं कि मैंने सोच समझकर सारा ससार ढूँढ़ लिया है,

परन्तु मृत्यु से किसी प्रकार नही बचा जा सकता है। अत हे भगवन् ! मै तुम्हारी शरण म आया हूँ। जन्म-मरण के चक्र से मेरी रक्षा करो।

(२४६)

पांडे न करसि बाद बिबाद,
या देही बिन सबद न स्वाद ॥ टेक ॥
अंड ब्रह्मंड खड भी माटी, माटी नवनिधि काया ।
माटी खोजत सतगुर भेट्या, तिन कछू अलख लखाया ॥
जीवत माटी मूवा भी माटी, देखौ ग्यांन बिचारी ।
अति कालि माटी मैं बासा, लेटै पांव पसारी ॥
माटी का चित्र पवन का थंभा, ब्यंद संजोगि उपाया ।
भांनै घड़ै सवारै सोई यहु गोब्यद की माया ॥
माटी का मंदिर ग्यान का दीपक, पवन बाति उजियारा ।
तिहि उजियारै सब जग सूझै, कबीर ग्यांन बिचारा ॥

शब्दार्थ—थंभा=स्तम्भ, खम्भा, सहारा। ब्यंद=बिंदु, वीर्य। भानै=टूटे हुए। बाति=बत्ती। उजियारा=प्रकाशित है।

संदर्भ-- कबीरदास ससार की असारता का वर्णन करते हैं।

भावार्थ-- कबीर कहते है कि अरे पण्डित ! तुम वाद-विवाद (शास्त्रार्थ) मत करो। इस शरीर के विना न शब्द रह जाएगा और न स्वाद रह जाएगा—न तो शास्त्रार्थ ही रह जाएगा और न शास्त्रार्थ का आनन्द ही रह जाएगा। तुम्हारा शास्त्रार्थ तो अवलम्बित है शरीर और शरीर की स्थिति यह है कि यह समष्टि जगत और इस विश्व का प्रत्येक अण—सभी कुछ मिट्टी है। यह नवनिधियो को भोगने वाला शरीर भी मिट्टी ही है। इसी मिट्टी के ससार मे खोजते-खोजते (विभिन्न साधनाओं मे भटकते हुए) सद्गुरु से मेरी भेट हो गई। उन्होने मुझको उस अलक्ष्य परम तत्व का कुछ ज्ञान करा दिया। रे मानव ! तू ज्ञान पूर्वक मनन करके देख। यह शरीर जीवित अवस्था मे भी मिट्टी है और मरने पर भी मिट्टी है। इस शरीर को अन्त मिट्टी मे ही मिल जाना पड़ता है और अन्त समय मे यह जीव जमीन पर (मिट्टी मे) पैर फैला कर लेट जाता है। यह शरीर मिट्टी का ही पुतला है और प्राण वायु का आधार लेकर खड़ा है तथा पिता के वीर्य एव रज की बूदो के सयोग से यह उत्पन्न किया गया है। भगवान की यही लीला है कि वही घड़े-रूपी शरीरों को नष्ट करता है और वही इनका निर्माण करता है। कबीरदास ज्ञान पूर्वक विचार कर कहते है कि मिट्टी के इस शरीर रूपी मन्दिर मे ज्ञान रूपी दीपक जलता है। प्राण वायु की बत्ती इसमे प्रकाशित है- इस ज्ञान दीपक के प्रकाश के द्वारा ही सम्पूर्ण ससार का [illegible] होता है।

अलंकार—(i) छेकानुप्रास— वाद विवाद, सबद स्वाद।
(ii) पदमैत्री — अंड ब्रह्मंड खंड। मूवा माटी।

(iii) रूपकातिशोक्ति—माटी।
(iv) विरोधाभास – अलख लखाया, जीवत मारी मूवा माटी।
(v) रूपक—माटी का चित्र पवन का थभा।
(vi) माटी का मन्दिर, ज्ञान का दीपक, पवन बाति।
(vi) रूपकातिशयोक्ति— चित्र।

विशेष—(i) ससार की नश्वरता का वर्णन है।

(ii) पवन ब ति— प्राण के आवागमन से ही यह शरीर चेतन प्रतीत होता है। इसी से प्राण वायु को इसका आधार भी कहा है और उसकी बत्ती के साथ समता की है।

(२५०)

मेरी जिभ्या बिस्न नैन नाराइन, हिरदै जपौं गोबिंदा।
जम दुवार जब लेख मांग्या, तब का कहिसि मुकंदा॥ टेक॥
तूं ब्रांह्मण मै कासी का जुलाहा, चीन्हि न मोर गियाना।
तैं सब मांगे भूपति राजा, मोरे रांम धियाना॥
पूरब जनम हम ब्रांह्मन होते, वोछे करम तप हींना।
रांम देव की सेवा चूका, पकरि जुलाहा कींन्हां॥
नौंमी नेम दसमीं करि सजम, एकादसी जागरणां।
द्वादसी दांन पुनि की बेलां, सर्व पाप छ्यौ करणां॥
भौ बूड़त कछू उपाइ करीजै, ज्यू तिरि तीरा।
रांम नांम लिखि भेरा बांधौ, कहै उपदेस कबीरा॥

शब्दार्थ – मुकुन्द = कृष्ण, विष्णु।

सदर्भ— कबीर कर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हैं।

भावार्थ—कबीर कहते हैं कि मेरी जीभ विष्णु का, नेत्र नारायण का तथा हृदय गोविन्द का जप करते हैं। परन्तु हे जीव! तुम तो भगवान का जप करते नही हो। तुम से यम के द्वार पर जब कर्मों का हिसाब मागा जाएगा, तब क्या तुम यह कह सकोगे कि तुमने जीवन मे विष्णु का नाम-स्मरण किया था? तुम तो ब्राह्मण हो और मैं काशी मे उत्पन्न जुलाहा हूँ। तुम मेरे ज्ञान को नही समझते हो। तुम जैसे सब लोग भगवान से पृथ्वी के आधिपत्य एव राज्य की याचना करते हैं (अर्थात् सासारिक सुखोपभोग की आकाक्षा करते हैं) पर मुझे तो केवल भगवान राम का ध्यान ही चाहिए। पूर्व जन्म मे हम भी ब्राह्मण थे। हमारे कर्म ओछे थे और हम तप से रहित थे। भगवान राम की सेवा करना हम भूल गए। अत भगवान ने पकड कर हमको जुलाहा बना दिया। तुम नवमी के दिन नियमादिक का पालन करते हो। दशमी को संयम करते हो, एकादशी को जागरण करते हो, द्वादशी को दान-पुण्य का अवसर मानते हो और इस प्रकार सब पापो का क्षय करने का साधन करते हो। इनसे पुण्य-सचार का अहकार वहन करते हो, (पर ये पाप-क्षय के पूर्ण

सब सफल साधन नहीं हैं।) अत भव-सागर मे डूबने से बचने के लिए कोई अन्य उपाय करना चाहिए जिसमे तैर कर इसे पार करके दूसरे किनारे पर पहुँच सको। कबीर का उपदेश तो यही है कि राम-नाम के स्मरण की नाँव तैय्यार करो जिससे इस भव-सागर को पार कर सको।

अलकार—(i) गूढोक्ति—तब का—मुकन्दा।
(ii) रूपक—राम-नाम मेरा।

विशेष— (i) भक्ति का प्रतिपादन है। वही एक ऐसा साधन है जिससे भव-सागर को पार किया जा सकता है।

(ii) इस पद के अनुसार उच्च जाति मे पैदा होने से नही उच्च कर्म करने से ही व्यक्ति उच्च बनता है।

(iii) पूरब जनम ·····कीन्हा – इन पक्तियो मे कर्म-फल सिद्धान्त एवं पुनर्जन्म के भारतीय सिद्धात की स्पष्ट स्वीकृति है।

(iv) भक्ति ही उच्चतम कम है। यह व्यजित है।

(v) मेरी जिभ्या गोविंदा—तुलना कीजिए—

सिय-राम सरूप अगाध अनूप, विलोचन मीनन को जलु है।
स्रुति राम कथा, मुख राम को नाम हिये पुनि रामहिं को थलु है।
मति रामहि सो, गति रामहि सो, रति राम सों रामहि को बलु है।
सबको न कहै, तुलसी के मते, इतनो जग जीवन को फलु है।
(गोस्वामी तुलसीदास)

(२५१)

कहु पाडे सुचि कवन ठांव,
जिहि घरि भोजन बैठि खाऊ ॥ टेक ॥
माता जूठी पिता पुनि जूठा, जूठे फल चित लागे।
जूठा आवन जूठा जानां, चेतहु क्यू न अभागे ॥
अंन जूठा पांनी पुनि जूठा, जूठे बैठि पकाया।
जूठी कड़छी अन परोस्या, जूठे जूठा खाया ॥
चौका जूठा गोबर जूठा, जूठी को ढीकारा।
कहै कबीर तेई जन सूचे, जे हरि भजि तजहि विकारा ॥

शब्दार्थ—पाडे=पण्डित। सुचि=शुचि=पवित्र। ठाऊँ=स्थान। कारा=रेखा, लीक। सूचे=पवित्र।

संदर्भ—कबीर कहते है कि भगवद् भजन के अतिरिक्त सब शुद्ध [illegible] है।

भावार्थ—हे पण्डित ! कहो, कौन-सा स्थान पवित्र है जहाँ पर बैठ कर मैं [illegible] माता [illegible], पिता जूठा है [illegible] [illegible] जूठे पर [illegible] है। [illegible] जूठा है, [illegible] जूठा है। अब [illegible]

कुछ जूठा है, तो हे अभागे जीव, अब तो चेत कर। अन्न और पानी सब जूठे हैं और इनको पकाने वाले जूठे हैं। जूठी कडछी से यह अन्न परोसा गया है। खाने वाला भी जूठा है और जिस गोबर से इस चौके की जूठन उतारी गई हे वह गोबर भी जूठा है। इस चौके मे जो लीक लगाई गई है, वह भी जूठी है। इस प्रकार सम्पूर्ण ससार मे जूठन का ही अधिकार है। कबीरदास कहते हैं कि वे ही व्यक्ति पवित्र हैं जो भगवान का भजन करके अपने हृदय के सम्पूर्ण विकारो का त्याग कर देते हैं।

अलकार—(1) गूढोक्ति—कवन ठाउ ?
(11) 'जूठा' शब्द की पुनरावृत्ति के कारण अनुप्रास एव पदमैत्री की छटा दृष्टव्य है।

विशेष—(1) ससार का कोई भी स्थान, कोई भी व्यक्ति एव इसकी कोई भी वस्तु नितान्त नवीन एव अछूती नही है। सभी कुछ उच्छिष्ट एव मुक्त है। जीव भी शुद्ध चैतन्य नही है वह भी माया द्वारा आवृत है। जीव विषयो से मुक्त है ही। विषयो का भोग अनादि काल से हो रहा है। अत' वे जूठे हैं। उन्ही विषयो के सस्कार मन मे हैं, उन्ही का भोग मन करता है। अत मन 'जूठन' का भोग करता है। इस प्रकार कबीर ने 'सर्व उच्छिष्टम्' की भावना को जगाकर जगत् के प्रति वैराग्य' का प्रतिपादन किया है।

(11) भगवान का भक्त विषयो का स्पर्श नही करता है। अत वह 'जूठन' से बच जाता है। अपने स्वरूप मे प्रतिष्ठित भक्त ही 'जूठन' के भाव से बच सकता है।

(111) वैराग्य के साथ वाह्याचार के प्रति निरर्थकता के भाव को भी जगाना इस पद का उद्देश्य प्रतीत होता है।

(२५२)

हरि बिन झूठे सब ब्यौहार,
केते कोऊ करौ गँवार ।। टेक ।।
झूठा जप तप झूठा ग्यांन, रांम बिन झूठा ध्यांन ।
बिधि नखेद पूजा आचार, सब दरिया मै वार न पार ।
इंद्री स्वारथ मन के स्वाद, जहाँ साँच तहाँ मांडै बाद ।।
दास कबीर रह्या ल्यौ लाइ, भर्म कर्म सब दिये बहाइ ।।

शब्दार्थ—गँवार=अज्ञानी, मूर्ख। नखेद=निषेध विधि=शास्त्र जिन कामो को करने का आदेश देता है। निषेध=शास्त्र मे जिन कामो की मनाई है। माडै =सजोते हैं। दरिया=नदी।

सन्दर्भ—कबीरदास वाह्याचार का विरोध करते हैं।

भावार्थ—भगवान की भक्ति के बिना समस्त सासारिक व्यवहार झूठे (व्यर्थ) हैं। अज्ञानी व्यक्ति उनके प्रति चाहे जितने आसक्त क्यो न

हो जाएँ (अथवा राम भक्ति के विना समस्त साधनाएँ व्यर्थ हैं। मूर्ख लोग चाहे जितना उनका पालन करे । सारा जप-तप झूठा है, सम्पूर्ण शास्त्र-ज्ञान व्यर्थ है । राम की भक्ति के विना समस्त ध्यान एव साधना झूठी है। शास्त्रों के द्वारा निर्धारित विधि-निषेध, पूजा-आचार का कोई अन्त नही है । ये सब नदी मे डुबा देने योग्य हैं । स्वार्थी व्यक्तियो ने इन्द्रियो के भोग एवं मन को प्रसन्न करने के लिए अनेक 'वादो' और पूजा पद्धतियो का विकास कर रखा है । कबीरदास कहते हैं कि इसी मे मैंने समस्त भ्रमो को नष्ट करके और अन्य प्रकार की साधनाओ मे मुँह मोड कर भगवान मे अपना मन लगा दिया है ।

अलंकार—गूढोक्ति एव विशेषोक्ति की व्यजना -

विशेष—प्रथम चरण ।

वाह्याचार का विरोध है । सच्ची भक्ति का प्रतिपादन है ।

(२५३)

चेतनि देखै रे जग धंधा ।
रांम नांम का मरम न जांनै, माया कै रसि अंधा ॥ टेक ॥
जनमत हीरू कहा ले आयो, मरत कहा ले जासी ।
जैसे तरवर वसत पखेरू, दिवस चारि के वासी ॥
आपा थापि अवर कौं निंदै, जन्मत हीं जड़ काटी ।
हरि की भगति विनां यहु देही धव लोटै ही फाटी ॥
कांम क्रोध मोह मद मछर, पर अपवाद न सुणियें ।
कहै कबीर साध की संगति, रांम नांम गुण भणियें ॥

शब्दार्थ—वसत=वसते है । पखेरू=पक्षी । थापि=स्थापना करके, बड़ाई करके । धव लोरै=देह धौलोरे—दौड़ धूप । फाटी=विदीर्ण हो गई, नष्ट हो गई । भणिये = कहिए ।

सन्दर्भ—कबीर का कहना है कि जीव को ससार के प्रपच त्याग कर राम की भक्ति करनी चाहिए ।

भावार्थ - हे जीव ! तू केवल संसार के धन्धो के प्रति आसक्त है । अथवा रे जीव, तू जागकर क्यो नहीं देखता है कि यह संसार एक जाल है । तू राम के नाम के वास्तविक मूल्य को नही जानता है और मायाजन्य सुखों में लिप्त होकर वास्तविक स्थिति को न देखने के कारण अंधा हो रहा है । जन्म के साथ तू अपने साथ कौन सा धन-हीरा लाया था और मरने पर अपने साथ क्या ले जाएगा ? जिस प्रकार पक्षी चार दिन के मेहमान की तरह वृक्ष पर चार दिन तक (कुछ ही दिन) विश्राम करते हैं उसी प्रकार यह जीव भी इस संसार में चार दिनों का मेहमान है । तू [illegible] प्रशंसा करता है और दूसरों की बुराई करता है । इस प्रकार अपने बड़प्पन की भावना [illegible] धारण करके तू जन्म के साथ

ही अपनी जड़ काटती है अर्थात् अपने उद्गम स्थल ब्रह्म से अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया है। हरि की भक्ति बिना यह देह विषयो के पीछे दौड-धूप करते हुये नष्ट हो गई है। कबीरदास चेतावनी देते हुये कहते हैं कि हे जीव, तू काम, क्रोध, मोह, मद और मत्सर की ओर ध्यान मत दे और साधुओ की सगति करो तथा राम के नाम का गुणगान करो।

अलंकार—(i) उदाहरण—जैसे'' ' वामी।

(ii) वक्रोक्ति—जनमत ' जासी।

विशेष—(i) जड काटी, धव लौटे—मुहावरो का सुन्दर प्रयोग है।

(ii) व्यक्ति को चाहिए कि वह ससार के प्रति आसक्त न होकर भगवान की भक्ति करे। साधु-सगति एव भगवन्नाम-स्मरण के द्वारा मिथ्यात्व का विश्वास होता है और उसके प्रति आसक्ति समाप्त हो जाती है।

(२५४)

रे जम नांहि नवै व्यौपारी,
जे भरैं जगाति तुम्हारी ।। टेक ।।
बसुधा छांड़ि बनिज हम कीन्हों, लाद्यो हरि को नांऊ ।
रांम नांम की गूंनि भराऊं, हरि कैं टांडै जांऊं ।।
जिनकै तुम्ह अगिवानी कहियत, सो पूंजी हम पासा ।
अबै तुम्हारौ कछु बल नांही, कहै कबीरा दासा ।।

शब्दार्थ—जगाति=पेशावर से आने वाले माल पर लगने वाला कर, आयात कर। गूनि=बोरा। टाडै=सार्थ, कारवाँ, काफिला। अगिवानी=आगे आगे चलने वाले।

सन्दर्भ—कबीर ज्ञान प्राप्ति की दशा का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—हे यम! हम वे व्यापारी नही है जो तुम्हारी चुगी दें। मैंने ससार के प्रति आसक्ति का परित्याग करके आत्म-बोध मे जीवन लगाया है (निज व्यापार किया है) और मैंने हरि नाम की खेप लादी है अर्थात् मेरे मन-मानस मे हरि-नाम व्याप्त है। मैंने राम-नाम रूपी सामग्री से जन्म रूपी बोरी भर ली है और हरि भक्तो के काफिले (समूह) के साथ (मोक्षधाम) को जाऊँगा (जिन भगवान के नाम पर तुम जीवधारियो को लिवा ले जाने के लिये आते हो, वे उन भगवान की भक्ति रूपी पूँजी ही हमारे पास है (जिस पर तुम्हारा कोई इजारा नही है) कबीर दास यमराज को सम्बोधित करके कहते हैं कि अब हमारे ऊपर तुम्हारा कोई वश नही चलेगा (पिछले जन्मो की बात अब नही रही है।)

अलंकार—(i) रूपक—रामनाम की गूनि।

(ii) गूढोक्ति—नाहिन वैव्यापारी।

विशेष—(i) जे धरैं जगाति—अज्ञान के कर्म पाप-पुण्य होते हैं। उनके अनुसार यम जीव का हिसाब-किताब लेकर उसको नरक-स्वर्ग भेजते हैं। परन्तु

'आत्म-बोध' का साधक-कर्म-निर्लिप्त रहता है। अत: उस पर यमराज का कोई अधिकार नही रहता है। यमराज के अधिकार की सीमा मे आकर उसके निर्णय के अनुसार व्यवहार करने को विवश होना ही 'यमराज की चुंगी भरना' है।

(२५५)

मीया तुम्ह सौं बोल्या बणि नहीं आवे।
हम मसकीन खुदाई बदे, तुम्हारा जस मनि भावै ॥ टेक ॥
अलह अवलि दीन का साहिब, जोर नहीं फुरमाया।
मुरिसद पीर तुम्हारै है को कहौ कहाँ थै आया ॥
रोजा करै निवाज गुजारै, कलमै भिसत न होई।
सतरि कावे इक दिल भीतरि, जे करि जानै कोई ॥
खसम पिछांनि तरस करि जिय मै, माल मनी करि फीकी।
आपा जानि सांई कूं जांनै, तब ह्वै भिस्त सरीकी ॥
माटी एक भष धरि नांनां, सब मै ब्रह्म समानां।
कहै कबीर भिस्त छिटकाई, दोजग ही मन मानां ॥

शब्दार्थ—मीया=मिया, मालिक, सम्मानित जन का बोधक (श्रीमन् की भाँति)। मसकीन=मिस्कीन=दीन, अकिंचन। बदे—सेवक, दास। अवलि—सर्व प्रथम। फुरमाया=आज्ञा दी। मुरिसद=मुरशिद=सीधा मार्ग दिखाने वाला, गुरु। पीर=महात्मा, सिद्ध। कलमा=वह वाक्य जो मुसलमानो के धर्म-विश्वास का मूल मन्त्र है—ला इलाह इल्लिल्लाह, मुहम्मद, रसूलिल्लाह। भिसत=बहिश्त, स्वर्ग। सतरि=सत्तर। काबे=मक्का की एक चौकोर इमारत जिसकी नींव इब्राहीम की रखी हुई मानी जाती है। खसम=स्वामी। तरस=करुणा। माल मनी=माल-मन, वैभव के प्रति आसक्ति। फीकी=कम, मद। सरीकी=सम्मिलित शिरकतदार=शामिल होने का अधिकारी। छिटकाई=आसक्ति छोड दी। दोजख=नरक। मन माना=मन को आश्वस्त कर लिया है।

सदर्भ—कबीर इस पद मे विशेष रूप से मुसलमानो के बाह्याचार का विरोध करके एकत्व का प्रतिपादन करते है।

भावार्थ—हे मियां जी (आदरणीय मुसलमान साधक), तुमसे कुछ कहते नही बनता है (तुम से बहस कौन करे) हम अकिंचन लोग तो भगवान के सेवक है, तुम हमको चाहे जैसा समझ लो। भगवान तो सर्वप्रथम दीन व्यक्तियो का स्वामी है। उसने किसी पर जोर आजमाने (दीनो पर अत्याचार करने) की आज्ञा नही दी है। शक्ति के प्रयोग का मार्ग बताने वाले तुम्हारे कौन से गुरु एवं महात्मा है और वे कहाँ से आए है? रोजा रखने, नमाज पढ़ने और कलमा पढ़ने आदि से स्वर्ग की प्राप्ति नही होती है। यदि कोई ठीक तरह से समझना चाहेगा तो उसकी समझ मे यह बात आ जाएगी कि प्रत्येक व्यक्ति के हृदय के भीतर सत्तर (अनेक) काबे स्थित है। अपने स्वामी भगवान को पहिचान कर (कि वे ही सबके उद्गम [illegible]

हृदय मे दया-करुणा का भाव जगा और सासारिक वैभव के प्रति अपनी आसक्ति को कम (तिरोहित) कर दे। अपने स्वरूप को पहिचान कर जब तू अपने स्वामी भगवान के स्वरूप को समझेगा, तब कही जाकर तू स्वर्ग की प्राप्ति का अधिकारी बनेगा। मिट्टी (उपादान कारण मूल प्रकृति) एक ही है और उसी से विभिन्न रूपात्मक योनियो रूपी वर्तनो का निर्माण हुआ है। इस प्रकार समस्त दृश्यमान जगत मे ब्रह्म समाया हुआ। कबीर कहते हैं कि (इसी विवेक के फलस्वरूप) मैंने स्वर्ग के प्रति आसक्ति को त्याग दिया है और नरक के प्रति मन को आश्वस्त कर लिया है, अर्थात् सबको समान समझने के फल स्वरूप मुझको यदि नरक मे जाना पडेगा तो मुझे किसी प्रकार का दु ख नही होगा।

अलंकार—(i) छेकानुप्रास—अलह अवलि।
(ii) गूढोक्ति—मुरशिद आया।

विशेष—(i) जोर नही फुरमाया—सबके मूल स्थान भगवान से क्या पीर मुरशिद नही आये, जो वे उसी भगवान से आने वाले अन्य प्राणियो पर जोर-जबरदस्ती करने का उपदेश देते हैं ?

(ii) दो जग ही मन माना—इस पक्ति का अर्थ इस प्रकार भी किया जा सकता है—

रे मिया, तुमने जोर जुल्म और वाह्याडम्बरो मे विश्वास करके वास्तव मे स्वर्ग छोडकर नरक मे ही अपना मन लगा लिया है, और इस कारण तुमको नरक ही मिलेगा।

वैसे कबीरदास सदा यही कहते आए हैं कि मै तो नरक मे भी ब्रह्म के आनन्द रूप का साक्षात्कार कर लूँगा। इस कारण मेरे लिए स्वर्ग-नरक समान हैं। ज्ञानोदय के फलस्वरूप मेरी भेद-बुद्धि समाप्त हो गई है—

अनजाने को नरक सरग है, जाने को कुछ नाहीं।
जेहि डर को सब लोग डरत हैं, सो डर हमरे नाही।

(iii) मुसलमान धर्म के वाह्याचारो का इतना सबल विरोध कबीर जैसे साहसी साधक ही कर सकते हैं। अन्यथा हिन्दुओ की तरह मुसलमानो के धार्मिक विश्वासो के विरुद्ध मुँह खोलना आसान नही है।

(iv) माटी एक ···समाना—एकेश्वरवाद एव अद्वैतवाद का सुन्दर समन्वय है।

(v) सतरि कावे इक दिल भीतरि—तुलना करें—

हमारें तीरथ कौन करे ?
मन में गगा मन में जमुना भटकत कौन फिरे ? इत्यादि

तथा— दिल के आइने में है तस्वीरेयार।
जब जरा गरदन झुकाई देख ली।

(२५६)

अलह ल्यौ लांयें काहे न रहिये,
अह निसि केवल रांम नांम कहिये ॥ टेक ॥
गुरमुखि जलमां ग्यांन मुखि छुरी, हुई हलाल पंचू पुरी ॥
मन मसीति मै किनहूँ न जांनां, पच पीर मलिम भगवांनां ॥
कहै कबीर मै हरि गुन गाऊं, हिंदू तुरक दोऊ समझाऊँ ॥

शब्दार्थ—ल्यौ=लौ, लगन। अह=दिन। हलाल=विहित, शरई रीति से पशुवध। कलमा=वह उक्ति जो मुसलमानों के धर्म-विश्वास का मूल मंत्र है—ला इलाह इल्लिल्लाह, मुहम्मद रसूलल्लिलाह। मसीत=मस्जिद।

सन्दर्भ—कबीरदास अन्तर्मुखी होने का उपदेश देते हैं।

भावार्थ—हे भाई! तुम भगवान में लौ लगाकर क्यों नहीं रहते हो? दिन रात केवल राम-नाम कहते रहो। गुरु के मुख से कलमा का उपदेश सुन कर तथा ज्ञान रूपी छुरी से पाँचों इन्द्रियों के विषयों रूपी पशुओं का वध करके ईश्वरार्पण कर देना चाहिये। मन रूपी मस्जिद के भीतर झाँक कर किसी ने नहीं देखा है। वहाँ पर पच पीरों के स्वामी भगवान का स्थायी निवास है। कबीर कहते हैं कि मैं (बाह्याचारों को त्याग कर) भगवान का गुण-गान करता हूँ तथा हिन्दू मुसलमान दोनों को ऐसा ही करने को कहता हूँ।

अलंकार— (i) गूढोक्ति—काहे न कहिए।
(ii) रूपक—ग्यान मुखि छुरी, मनमसीति।
(iii) रूपकातिशयोक्ति—पचूपुरी।
(iv) छेकानुप्रास—पंचू पुरी, पचपीर, मन-मसीति।

विशेष—(i) कबीर बाह्याचारों को छोड़कर सच्चे मन से भगवान की याद करने का उपदेश बार-बार देते हैं और आशा करते हैं कि हिन्दू-मुसलमान पारस्परिक भेद-भाव को भूल जायेंगे।

> हिन्दू-तुरक की एक राह है, सतगुरु इहै बताई।
> कहत कबीर सुनो, हो सन्तो! राम न कहूँ खुदाई।

(ii) इस पद में निश्चित रूप से मुस्लिम बाह्याचारों के प्रति विरोध व्यक्त किया है।

(iii) पाँच इन्द्रियों एवं उनके विषय इस प्रकार हैं—कान—शब्द, जिह्वा—रस, आँख—रूप, नाक—गंध तथा त्वचा—स्पर्श।

(iv) 'कलमा' में [illegible] का प्रतिपादन है—अद्वैत ज्ञान है। अतः कबीर के [illegible] इस्लाम के प्रति सहानुभूति तथा प्रेम भावना का [illegible] है। [illegible] के प्रति वैराग्य है। [illegible]।

(२५७)

रे दिल खोजि दिलहर खोजि, नां परि परेसानी मांहि ।
महल माल अजीज औरति, कोई दस्तगीरी क्यूं नांहि ।।टेक।।
पीरां मुरीदां काजियां, मुलां अरू दरवेस ।
कहाँ थें तुम्ह किनि कीये, अकलि है सब नेस ।।
कुराना कतेवां अस पढ़ि पढ़ि, फिकरि था नही जाइ ।
टुक दम करारी जे करै, हाजिरां सूर खुदाइ ।।
दरोगां बकि हूंहि खुसियाँ, बे अकलि बकहिं पुमांहि ।
इक साच खालिक म्यानें, सो कछू सच सूरति मांहि ।।
अलह पाक तू, नापाक क्यू अब दूसर नांहीं कोइ ।
कबीर करम करीम का, करनीं करै जांनै सोइ ।।

शब्दार्थ—दिल हर=प्रियतम । सहर - शहर । माल=धन-दौलत । अजीज =अजीज, प्रियजन । दस्तगीरी=हाथ पकडने वाला, सहायक । पीरा=गुरु । मुरीदा=चेला । काजी=मुसलमान न्यायाधीश जो शरा के अनुसार मामलो का निर्णय करे, निकाह पढाने वाला मौलवी । मुला=मुल्ला, मसजिद मे रहने या नमाज पढाने वाला, मस्जिद, की रोटियाँ खानेवाला । अकलि है सब नेस (नेस्त ।, नेस्त= नष्ट, विवेक शून्यता । दरवेस=दरवेश, फकीर । कतेवाँ=किताबे । टुक =जरा, थोडा । दम करारी=दम का धैय, आत्म-नियन्त्रण । सूर=आनद । हाजिरा= उपस्थित, साक्षात्कार । दरोग = झूठा । हुहि खुसिया = खुशी होते है । बेअकलि= मूर्ख । पुमाहि = प्रमत्त, गर्व करते है । सचु=सत्य । साचु=सत्यता । खलक= सृष्टि । खालिक=सृष्टि कर्त्ता । म्यानै=मे, मध्य । सैल=मकल, समस्त । सूरत= रूप । पाक=पवित्र । नापाक - अपवित्र । कम=करम दया । करीम =दयालु ।

संदर्भ—कबीरदास मुसलमानो के वाह्याचार का विरोध करते है और ब्रह्मवाद का प्रतिपादन करते हैं ।

भावार्थ - रे हृदय (मन), तू अपने आपको खोज और उसको खोज जो इस दिल मे रहता है । अर्थात् तू अपने प्रियतम को खोज । (व्यर्थ की) अन्य परेशानियो मे मत पडे । सहर, धन-दौलत, प्रियजन, पत्नी कोई भी तेरा सहायक नही है । हे पीरो (धर्म गुरुओ), चेलाओ, काजियो, मस्जिद की रोटियाँ खाने वाले मुल्लाओ तथा खुदा के नाम पर दर-दर भीख माँगने वाले फकीरो, तुमको कहाँ से और किसने बनाया है ? तुम्हारी सब अक्ल मारी गई है अर्थात् तुम्हारी सब बातें विवेक शून्य हैं । कुरान तथा अन्य धर्म ग्रन्थो को पढ पढ कर तुम्हारी चिन्ताएँ दूर नही हो सकती हैं । जो अपने ऊपर थोडा सा नियन्त्रण कर लेते है, उन्हे ईश्वरीय आह्लाद का साक्षात्कार हो जाता है । मिथ्या बातो अर्थात् शास्त्र की बातो को बक बक कर लोग प्रसन्न होते है । अज्ञानी व्यक्ति ही इस प्रकार की बाते करके गव करते हैं । जिस प्रकार 'सत्य' मे सत्यता निहित होती है, उसी प्रकार सृष्टि समाई हुई है और

वह (सृष्टि कर्ता) सृष्टि के समस्त रूपों (दृश्यमान जगत) में व्याप्त है। यदि परमात्मा (अल्लाह) पवित्र है, तो तू (जीव) अपवित्र किस प्रकार हुआ ? अब तू समझ ले कि संसार में अल्लाह (परम तत्त्व) के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। कबीरदास कहते हैं कि उस दयालु की जिस पर दया होती है वही उसकी लीला (करनी) के रहस्य को जान सकता है।

अलंकार—(i) पुनरुक्ति प्रकाश—खोजि खोजि। पढि पढि। बकि बकि।
(ii) विशेषोक्ति—कुराना ...... नही जाइ।
(iii) दृष्टान्त—सचु...... माहि।
(iv) सभग पद यमक—पाक नापाक।
(v) गूढोक्ति—तू नापाक क्यूँ।
(vi) अनुप्रास—करम करीम करनी करै।

विशेष—(i) बाह्याचार का विरोध है।
(ii) आत्म-बोध का उपदेश है।
(iii) शाकर अद्वैतवादी ब्रह्मवाद का प्रतिपादन है—सैल सूरति माहि—सर्वम् खल्विदम्ब्रह्म। अब दूसर नाही कोई—एकोऽहं द्वितीयो नास्ति। जीवो ब्रह्मैव ना पर। अलह पाक तू नापाक क्यू—'अहं ब्रह्मास्मि'। (ईश्वर अंश जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी)। इसी आधार पर सूफी धर्म ने भी 'अनहलक' की आवाज उठाई थी।
(iv) कम करीम का—जानै सोइ।

ज्ञानी भक्त की भाँति कबीरदास ज्ञान-प्राप्ति के लिए प्रभु के अनुग्रह पर अवलम्बित है।

तुलना कीजिए—

यह गुन साधन ते नहि होई। तुम्हरी कृपा पाव कोइ कोई।
सोइ जानहि जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हहि होइ जाई।

तथा— है स्रुति विदित उपाय सकल सुर, केहि केहि दीन पियारे।
तुलसिदास यहि जीव मोह-रजु, जोई बाँध्यो सोइ छोरै।
(गोस्वामी तुलसीदास)

तथा— अबिगत गति जानी न परै।

× × ×

सूर पतित तरि जाइ छनक मैं प्रभु जो नेकु ढरै।—सूरदास

(२५८)

खालिक हरि कहीं दर हाल।
पंजर जसि करद दुसमन, मुरद करि पैमाल ॥ टेक ॥
भिस्त हुसकी दोजगा, दुंदर दराज दिवाल।
पहनांम परदा ईत आतम, जहर जंगम जाल ॥

हम रफत रहबरहु समां, मै खुर्दा सुमां बिसियार ।
हम जिमां असमांन खालिक, गुंद मुसिकल कार ।।
असमान म्यांनै लहग दरिया, तहाँ गुसल करदा बूद ।
करि फिकर रह सालक जसम, जहां स तह्यां मौजूद ।।
हम चु बूंदनि बूंद खालिक, गरक हम तुम पेस ।
कबीर पनह खुदाइ की, रह दिगर दावानेस ।।

शब्दार्थ– खालिक=सृष्टिकर्त्ता । दर हाल=इसी समय । पच=पाँच तन्मायाएँ (मूल पच महाभूतो का सूक्ष्म रूप) अथवा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ । रजसि=रजिश करके । मुरद=मुर्दा । मिस्त=वहिश्त=स्वर्ग । दोजगा=दोजख, नरक । दुंद=द्वन्द्व=अशाति । ईत=ईति=दुख दुरापद । आतस=आतिश, अग्नि । जगम=जन्तु । रफत=जाने वाले । खुर्दा=अत्यल्प । बिसिमार=महान । असमान=आसमान, ब्रह्मरध्र । दरिया=नदी । गुसल=स्नान । वूद=जानो । वू दनि=जानना वूद=जानना है । गरक=गरक = तन्मय, लीन । पेस = पेश, सामने, समक्ष । पनह=शरण । दिगर=दीगर=दूसरा । दावा=अधिकार । नेस=नेस्त, नही है । पैमाल=पामाल, पैरो से कुचलना । दराज=लम्वी । आतस=आतिस, अग्नि, ताप । सुमो=तू । रहवर=मार्ग दर्शक । लहग=चर्बी । वू द अस्तित्व ।

सदर्भ – कबीर भगवान के प्रति अनन्य समर्पण को अभिव्यक्ति करते हैं ।

भावार्थ— सृष्टिकर्त्ता हर जगह मौजूद है । वह इस समय यहाँ भी है । हड्डियो के इस ढाँचे के अर्थात् इस असार शरीर ने मेरे साथ दुश्मन जैसा व्यवहार किया है और पैरो से कुचल कर मुझ को मुर्दा (मृतकतुल्य) बना दिया है । स्वर्ग और नरक उसी के हैं । यह ससार रूपी लम्वी दीवाल उसी की छाया है । समस्त भेदभाव, दुरापद, ताप, पशुओ के जहर आदि इस ससार रूपी जाल मे भरे पडे हैं । हम राहगीर हैं । तू हमारा रहनुमा (मार्गदर्शक) है । मैं अत्यन्त छोटा हूँ, तू अत्यन्त महान है । हम जमीन (नीचे) हैं । सृष्टिकर्त्ता ऊपर आसमान के समान हैं । दोनो को एक करना बडा ही कठिन काम है । आसमान मे चरवी की नदी वहती है और उसमे आत्म तत्त्व स्नान करता है अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र मे होकर अमृत झरता है और आत्मस्वरूप जीव उसका भोग करता है । इस शरीर द्वारा तू उस मालिक की चिन्ता कर और धर्म एव नीति का आचरण कर । उसका साक्षात्कार तुझको हर स्थान पर होगा । स्वय अपने को जानना तुझ सरजन हार को जान लेना है । हम तुम्हारे सम्मुख तुम्हारे ध्यान मे मग्न हैं ।

कबीर कहते हैं कि मैं भगवान की शरण मे हूं यहाँ कोई दूसरा दावेदार नही है ।

विशेष—(i) कबीर प्रभु के प्रति पूर्ण समर्पण भाव दिखाते हैं ।

(ii) हम रफत काल—तुलना कीजिए—

राम सो वड़ो है कौन मोसो कौन छोटो ।

राम सो खरो है कौन मोसो कौन खोटो।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(iii) लहग दरिया—ब्रह्माण्ड मे से स्रवित रस धारा को चर्वी का दरिया कहना युक्ति सगत ही है।

एवं— हैं स्रुति विदित उपाय सकल सुर, केहि केहि दीन निहोरै।

(२५६)

अलह रांम जीऊँ तेरे नाँई,
बंदे ऊपरि मिहर करौ मेरे सांई। टेक॥
क्या ले माटी भुँइ सूं मारै, क्या जल देह न्हवायें।
जोर करै मसकीन सतावै, गुन हीं रहै छिपाये॥
क्या तु जू जप मजन कीये, क्या मसीति सिर नांयें।
रोजा करै निमाज गुजारै, क्या हज काबै जांयें॥
ब्राह्मंण ग्यारसि करै चौबीसौं, काजी महरम जांन।
ग्यारह मास जुदे क्यू कीये, एकहि मांहि समांन॥
जौर खुदाइ मसीति वसत है, और मुलिक किस केरा।
तीरथ मूरति रांम निवासा, दुहु मै किनहू न हेरा॥
पूरिब दिसा हरी का वासा, पछिम अलह मुकांमा।
दिल ही खोजि दिलै दिल भींतरि, इहां रांम रहिमांनां॥
जेती औरति मरदां कहिये, सब मै रूप तुम्हारा।
कबीर पंगुड़ा अलह रांम का, हरि गुर पीर हमारा॥

शब्दार्थ- नाँई=नाम पर। बंदे=सेवक पर, दास पर। मिहर=मेहर बानी। साँई=स्वामी। मिट्टी=शरीर भुंइ सूं मारै=जमीन पर पटका जाए। जोर करै=जुल्म करता है। मसकीन=दीन, दुःखी। मजन=मज्जन, शरीर की [illegible] शुद्धि के लिए मन्त्र पढ़ते हुए कुशादि से जल छिड़कना। मसीति=मस्जिद। हज=[illegible] नियत काल पर काबे के दर्शन और प्रदक्षिण करना, मक्के की यात्रा। काबा=मक्के की एक चौकोर इमारत जिसकी नींव इब्राहीम की रखी हुई मानी जाती है। महरम=मुहर्रम मुसलमानी साल का पहला महीना जिसकी दसवीं तारीख को इमामहुसैन शहीद हुए थे। मुलिक=मुल्क, नगर। हेरा। पंगुड़ा=दास सेवक।

संदर्भ- कबीर बाह्याचार की निरर्थकता बताते हुए भगवान की अनन्य भक्ति का प्रतिपादन करते हैं।

भावार्थ- हे अल्लाह! हे राम! मैं तुम्हारा नाम स्मरण करके ही जीता हूँ। हे मेरे स्वामी! अपने इस सेवक पर कृपा करो। जो व्यक्ति जुल्म करके दीन-दुखियों को सताता है और बाह्याचार (पूजा-पाठ आदि) के द्वारा अपने [illegible] को छिपाना चाहता है [illegible] क्या किया जाए? उसके शरीर को लेकर पृथ्वी पर

परका जाए अथवा उसको पानी मे डुबा दिया जाए ? इस पंक्ति का अर्थ इस प्रकार भी किया जा सकता है कि उस व्यक्ति के शरीर पर किसी तीर्थ-स्थान की मिट्टी मलने से अथवा उसको तीर्थ-जल से स्नान कराने से क्या लाभ है ? ऐसे पाखण्डी एव अत्याचारी व्यक्ति को सम्बोधित करते हुए कबीर कहते हैं कि तुम्हारे वजू (जू--नमाज से पहले यथाविधि हाथ-पाँव और मुँह धोना) । जप मार्जन (जल छिडक कर पवित्र होना), से क्या लाभ है ? तुम मसजिद मे जाकर सिर झुकाते हो, इससे क्या लाभ है ? रोजा रखने, नमाज पढने, तथा हज एव काबे जाने (तीर्थाटन) से क्या लाभ है ? ब्राह्मण वर्ष की चौबीसो एकादशियो को उपवास रखता है और काजी मोहर्रम के पूरे महीने भर इमामहुसैन की शहादत के लिए शोक मनाता है । पर इनका क्या उपयोग है ? रमजान के महीने को छोडकर शेष ग्यारह महीनो को अलग क्यो कर दिया ? सभी महीने समान हैं—(सभी मे धार्मिक कृत्य करने चाहिए ।) अगर खुदा केवल मस्जिद मे ही रहता है, तो शेष समस्त ससार किसका है ? हिन्दुओ के अनुसार तीर्थों मे और मूर्तियो मे भगवान (राम) का निवास है । परन्तु उसके दर्शन तो दो मे से किसी मे भी किसी ने नही किए हैं । हिन्दुओ के मतानुसार पूर्व दिशा मे भगवान का निवास है । मुसलमानो की राय मे पश्चिम मे अल्लाह का निवास-स्थान है । (इस प्रकार हिन्दू और मुसलमान दोनो ही भगवान को मानो सर्वव्यापी नही मानते हैं) हे मानव, तुम अपने हृदय को ही ढूँढो । वही तुमको राम और रहीम (ईश्वर और खुदा) दोनो के दर्शन हो जाएगे । कबीर कहते हैं कि हे प्रभु । ससार के जितने भी नारी-पुरुष (नर-मादा) हैं, उन सबके भीतर तुम्हारा स्वरूप विद्यमान है अथवा वे सब तुम्हारे ही अव्यक्त रूप के व्यक्त रूप हैं । (मैं तो राम ईश्वर और अल्लाह दोनो का ही दास हूँ । भगवान मेरे गुरु और पीर दोनों ही हैं ।

अलकार—(1) गूढोक्ति-क्या ले · · सम्पूर्ण पद ।

विशेष—(1) वाह्याचार की निरर्थकता एव राम रहीम का प्रभेद वताकर कबीर ने हिन्दू और मुसलमानो की एकता का प्रतिपादन किया है ।

(11) कबीर भगवान को सर्वव्यापी बताते हैं और इसी आधार पर प्रभु-भक्ति का निर्वाह करना चाहते हैं—

सो अनन्य गति जाके मति न टरै हनुमंत ।
मै सेवक सचराचर रूप-स्वामि भगवंत ।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(111) क्या ले माटी मुँह सूँ मारै—भक्त जन तीर्थ की परिक्रमा 'लेट-लेट' कर भी लगाते हैं—इसको दडौती परिक्रमा कहते हैं । ऐसा करते हुए उनके शरीर मे जमीन की मिट्टी चिपक जाना स्वाभाविक है । सम्भवत. कबीर का सकेत इस ओर भी हो सकता है ।

(२६०)

मैं बड़ मैं बड़ मैं बड़ मांटी,
मण दसना जट का दस गांठी ॥ टेक ॥
मैं बाबा का जोध कहाऊं, अपणी मारी गीद चलांऊं ।
इनि अहंकार घणें घर घाले, नाचत कूदत जमपुरि चाले ॥
कहै कबीर करता की बाजी, एक पलक मै राज बिराजी ।

शब्दार्थ— नाटका=नाज - टका । टका=रुपया (बगला प्रयोग) । जोध= योद्धा । गीद—गेंद । घणे—बहुत से । घाले—नष्ट किए । बाजी—खेल, लीला । बिराजी—राज्य रहित ।

संदर्भ—कबीर संसार की असारता का वर्णन करते हैं ।

भावार्थ— अहंकारवश व्यक्ति कहने लगता है कि "मैं बड़ा हूँ, मैं बड़ा हूँ ।" परन्तु यह बड़प्पन मिट्टी (व्यर्थ, अत्यन्त अल्प मूल्य) है । दस मन अनाज एवं गांठ में दस रुपए होने के कारण होने वाले बड़प्पन का आधार सर्वथा तुच्छ है । मैं बाबर का योद्धा हूँ अर्थात् गांव के मुखिया का कृपापात्र हूँ और जो अपनी मनमानी करता हूँ । इस प्रकार के अहंकार के फलस्वरूप अनेक घर (परिवार) नष्ट हो गये । ये अहंकारी नाचते कूदते मर गए । कबीरदास कहते हैं कि यह सब उस सृष्टिकर्ता की लीला है । एक पल के भीतर वह राजा को बिना राज का कर देता है । इस पंक्ति का अर्थ इस प्रकार भी किया जा सकता है— जब भगवान की बाजी पड़ती है, तब वह एक क्षण मे ही सब कुछ उलट-पुलट कर देता है ।

अलंकार— (i) अनुप्रास— प्रथम पंक्ति । घणे घर घाले ।

विशेष— (i) 'निर्वेद संचारी' भाव की व्यंजना ।

(ii) मुहावरों का प्रयोग— (i) बड़ माटी (ii) बाबा का जोध । (iii) अपनी मारी गेंद चलाना । (iv) घर घालना ।

(२६१)

काहे बीहौ मेरे साथी, हूँ हाथी हरि केरा ।
चौरासी लख जाके मुख मैं, सो च्यंत करैगा मेरा ॥ टेक ॥
कहौ कौन पिवै कहौ कौन गाजै, कहाँ थैं पाणी निसरै ।
ऐसी कला अनंत है जाकै, सो हंम कौं क्यूं बिसरै ॥
जिनि ब्रह्मंड रच्यौ बहु रचना, बाव बरन ससि सूरा ।
पाइक पंच पुहमि जाकै प्रकटै, सो क्यूं कहिये दूरा ॥
नैन नासिका जिनि हरि सिरजे दसन बसन बिधि काया ।
साधू जन कौं सो क्यूं बिसरै, ऐसा है रांम राया ॥
को काहू का मरम न जानै, मैं सरनांगति तेरी ।
कहै कबीर बाप रांम राया, हुरमति राखहु मेरी ॥

शब्दार्थ— [illegible], [illegible] । [illegible] । [illegible]

निसरै=निस्सृत होता है, बरसता पाइक=पावक। बाव=वायु। बरन=वरुण। पाइक=पाँच। प्रहमि=पृथ्वी। हुरमति=हुरमत, असमत, इज्जत।

भावार्थ— कबीर माया-मोह को सम्बोधित करते हुए कहते है कि "मेरे साथी, तुम मुझे क्यो सताते हो ? मैं तो भगवान का साथी हूँ। जिसके भीतर चौरासी लाख योनियाँ समाई हुई हैं। अर्थात् जन्म-मरण का सम्पूर्ण नरक जिसके सहारे चल रहा है, वही भगवान मेरी चिंता करेगा। कहो, समुद्र मे जल कौन भरता है ? बादलो के रूप मे गर्जना कौन करता है ? तथा यह वर्षा का जल कहाँ से बरसता है। अर्थात् वही सब कुछ करता है। जिस भगवान की ऐसी विशाल शक्ति है, वह हमको कैसे भूल जाएगा ? जिसने इस ब्रह्माड मे अनेक रचनाएँ की हैं, जिसने वायु, वरुण, चन्द्र और सूर्य को बनाया है, जिससे पाँचो अग्नियाँ और यह पृथ्वी प्रकट हुई हैं, उस भगवान को दूर कैसे कहा जा सकता है ? (क्योकि वह तो सर्वव्यापी एव सर्व नियता है।) जिस भगवान ने आँख, नाक, दाँत आदि अग, वस्त्र एव शरीर आदि बनाए हैं, वह भगवान साधु भक्तो को भला कैसे भुला सकता है ? भगवान राजाराम तो बडे ही उदार हैं। कोई किसी का रहस्य नही जानता है। मैं तो भगवान की शरण मे हूँ। कबीर कहते है कि हे पिता ! राजा राम, माया के इन चक्करो से मेरी इज्जत की रक्षा करो।

(1) पदमैत्री—साथी, हाथी। दसन बसन।

(ii) गूढोत्तर—कहो कौन कहिए दूरा।

(iii) वक्रोक्ति—साधूजन बिसरै।

विशेष— (1) हाथी हरि केरा=मैं उनकी सवारी हूँ तथा उनकी प्रेरणा पर चलता हूँ। सत्य ही है। यह स्थूल शरीर 'आत्म तत्व' का वाहन है।

(ii) पच अग्नि—प्रकाश, उष्णता गरमी, पित्त एव जठराग्नि।

(iii) भगवान की शरणागति एव उनके प्रति पूर्ण समर्पण भाव का चित्रण है।

(२६२)

राग सोरठि

हरि कौ नाँव न लेह गँवारा,
क्या सोचै बारंबारा ।। टेक ।।
पंच चोर गढ मंझा, गढ लूटें दिवस र सझा ।।
जौ गढपति मुहकम होई, तौ लूटि न सकै कोई ।।
अँधियारै दीपक चहिये, तब बस्त अगोचर लहिये ।।
जब बस्त अगोचर पाई, तब दीपक रह्या समाई ।।
जौ दरसन देख्या चहिये, तौ दरपन मजत रहिये ।
जब दरपन लागै काई, तब दरसन किया न जाई ।।
का पढिये का गुनियें, का बेद पुराना सुनिये ।।
पढे गुनें मति होई, मै सहजै पाया सोई ।।

कहै कबीर मैं जांनां, मै जांनां मन पतियानां ॥
पतियानां जौ न पतीजै, तौ अंधै कू का कीजै ॥

शब्दार्थ—गँवारा=अज्ञानी, मूर्ख । पच चोर=पाँच विकार (काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर) । गढ=शरीर रूपी दुर्ग । मुहिकम=दृढ, वस्तु । मति=बुद्धि ।

संदर्भ—कबीरदास कहते है कि ज्ञान प्राप्ति के लिए मन की शुद्धि परम आवश्यक है ।

भावार्थ—हे मूर्ख जीव ! भगवान का नाम क्यो नही लेता है ? तू इस बारे मे बार-बार क्या सोचता है ? अथवा तू यह क्यो बार-बार सोचता है कि सासारिक चिताओ से मुक्त होने के लिए क्या करना चाहिए । इस शरीर-रूपी दुर्ग मे काम, क्रोध, लोभ, मद एव मत्सर रूपी पाँच चोर हैं । ये इसको दिन-रात लूट रहे है । अगर दुर्ग का स्वामी मजबूत हो, तो दुर्ग को कोई नही लूट सकता है । अभिप्राय यह है कि ये पच विकार जीव की चेतना एव स्व-स्वरूप-स्थिति की क्षमता को नष्ट कर रहे हैं । यदि जीव-चैतन्य अपने स्वरूप मे दृढता पूर्वक स्थित रहे, तो इसकी क्षमता को कौन नष्ट कर सकता है ? अविद्या रूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिए ज्ञान रूपी दीपक चाहिए । उसी के द्वारा अगोचर परम तत्व की प्राप्ति होती है । उस परम तत्व के साक्षात्कार मे यह ज्ञान रूपी दीपक भी इसी परम तत्व मे समाहित हो जाता है । अगर कोई उस परम तत्व का साक्षात्कार करना चाहता है, तो उसे अपने अन्त करण रूपी दर्पण को स्वच्छ बनाए रखना चाहिए । जब दर्पण के ऊपर मैल जम जाता है—जब अन्त.करण मलिन हो जाता है, तब उस परम तत्व का साक्षात्कार नही होता है । पढने और मनन (स्वाध्याय) करने से क्या होता है ? वेद-पुराण सुनने से क्या होता है ? पढने एवं मनन करने से मतवाद रूपी अहंकार उत्पन्न हो जाता है और तब परम तत्व का साक्षात्कार सम्भव नही होता है । उसका साक्षात्कार मुझको तो सहज भाव से हो गया है । अथवा यह कहिए कि जो ज्ञान शास्त्राध्ययन से होता है, वह मुझे सहज ही प्राप्त हो गया है । कबीर कहते है कि मैंने उस परम तत्व को जान लिया है और उस परम तत्व मे मेरी निष्ठा दृढ हो गई है । उस परम तत्व का ज्ञान प्राप्त होने पर उसके प्रति जिसके मन में श्रद्धा-विश्वास दृढ नही होता है, उस अज्ञानी का क्या किया जाए ?

अलंकार—(i) रूपकातिशयोक्ति—चोर, गढ, गढ़पति, दीपक ।
(ii) रूपक—वस्तु अगोचर ।
(iii) विरोधाभास—अगोचर लहिए ।
(iv) पदमैत्री—दरसन दरपन ।
(v) वक्रोक्ति—का पढ़िये—गुनियें ।
(vi) वक्रोक्ति—अंधै कू का कीजै ।

विशेष—(i) [illegible] का निरूपण है ।
(ii) सहज—[illegible] ।

(iii) मन चित बुद्धि एव अहकार के समुच्चय का नाम अन्त करण है ।

(iv) ज्ञान-दीपक—अह ब्रह्मास्मि की वृत्ति । तुलना कीजिए—

एहि बिधि लेसै दीप तेज रासि बिग्यान मय ।
जातहि जासु समीप जरहि मदादिक सलभ सब ।
सोहस्मि इति बृत्ति अखंडा । दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा ।
आतम अनुभव सुख सु प्रकासा । तब भवभूत भेद भ्रम नासा ।
प्रबल अविद्या कर परिवारा । मोह आदि तम मिटइ अवारा ।
तब सोइ बुद्धि पाइ उँजियारा उर गृँह बैठि ग्रंथि निरुआरा ।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(२६३)

अधे हरि बिन को तेरा,
कवन सूं कहत मेरी मेरा ।। टेक ।।
तजि कुलाक्रम अभिमानां, झूठे भरमि कहा भुलांनां ।।
झूठे तन की कहा बड़ाई, जे निमष मांहि जरि जाई ।।
जब लग मनहिं बिकारा, तब लगि नही छूटै ससारा ।।
जब मन निरमल करि जांनां, तब निरमल माहि समानां ।।
ब्रह्म अगनि ब्रह्म सोई, अब हरि बिन और न कोई ।।
जब पाप पु नि भ्रम जारी, तब भयौ प्रकास मुरारी ।।
कहै कबीर हरि ऐसा, जहाँ जैसा तहाँ तैसा ।।
भूलै भरमि परै जिनि कोई, राजा रांम करै सो होई ।।

शब्दार्थ—निमष=निमिष, पल ।

सन्दर्भ—कबीरदास ज्ञानी भक्त की भांति भगवान के प्रति अनन्यता का प्रतिपादन करते हैं ।

भावार्थ—हे मूर्ख ! भगवान को छोड कर तेरा कौन है ? इस ससार मे तुम किसको अपना कह रहे हो ? उच्च कुल मे उत्पन्न होने का अभिमान छोड दो । इस कुलीनता के झूठे भ्रम मे व्यर्थ ही भूल रहे हो । उस नाशवान शरीर के प्रति आसक्ति क्या करना (यह आसक्ति व्यर्थ है) । जो एक क्षणभर मे जल कर नष्ट हो जाता है । जब तक मानव के मन मे विकार (काम, क्रोध, लोभ आदि) हैं, तब तक इस ससार (आवागमन एव उससे उत्पन्न कष्ट) से छुटकारा नही है । जब व्यक्ति विषय-वासनाओ एव विकारो को त्याग कर अपने मन को निर्मल कर लेता है, तव वह शुद्ध मन शुद्ध तत्व मे समा जाता है । जो ब्रह्म का ज्ञान कराने वाली ज्ञानाग्नि है वही वस्तुत ब्रह्म है । ज्ञान उत्पन्न होने पर ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कुछ रह ही नही जाता है । जब पाप-पुण्य (कर्म) का भ्रम नष्ट हो जाता है—अथवा जब व्यक्ति निष्पृह होकर कर्म करने लगता है, तव मात्र भगवान का साक्षात्कार कराने वाली ज्योति रह जाती है । कबीर कहते है कि भगवान का

स्वरूप ऐसा है कि जो जैसा है उसको वह वैसा ही दिखाई देता है अर्थात् उसका स्वरूप अनिर्वचनीय है। व्यक्ति अपने चेतना विकास के अनुसार उसकी अनुभूति करता है। किसी को कर्त्तापन के भ्रम मे नही पडना चाहिए। समझ लेना चाहिए कि राजा राम जैसा करते है वैसा ही होता है अर्थात् मानव कुछ नही करता है, सब कुछ भगवान का ही किया हुआ होता है।

अलकार—(i) वक्रोक्ति अन्वे – मेरा।
(ii) गूढोक्ति—कहाँ भुलाना।
(iii) रूपक—ब्रह्म अग्नि।

विशेष—(i) जाति पाँति का विरोध है।

(ii) मन की शुद्धि का प्रतिपादन है।

(iii) अद्वैतवाद का प्रतिपादन किया गया है—जब मन ' '' कोई। साथ ही ब्रह्म की अनिर्वचनीयता का प्रतिपादन किया गया है—'जहाँ जैसा तहाँ तैसा। कबीर ने अन्यत्र भी कहा है कि—ऐसा नही वैसा वो। मैं किस विधि कहूँ कैसा लो।''

(iv) इस पद मे प्रधानत ज्ञान और भक्ति का प्रतिपादन है। कतिपय पक्तियो मे सासारिक नैरात्म्यवाद की ओर भी सकेत किया गया है।

(२६४)

मन रे सरचौ न एकौ काजा,
तार्थे भज्यौ न जगपति राजा ॥ टेक ॥
वेद पुरांन सुमृत गुन पढि, पढ़ि पढ़ि गुनि मरम न पावा ।
संध्या गाइत्री अरु षट करमां, तिन थै दूरि बतावा ॥
बनखंडि जाई बहुत तप कीन्हां, कंद मूल खनि खावा ।
ब्रह्म गियानी अधिक धियानीं, जम कै पटै लिखावा ॥
रोजा किया निमाज गुजारी, बंग दे लोग सुनावा ।
हिरदै कपट मिलै क्यू साईं, क्या हज काबै जावा ॥
पहरचौ काल सकल जग ऊपरि, माहि लिखे सब ग्यांनी ।
कहै कबीर ते भये षालसै, राम भगति जिनि जानी ।

शब्दार्थ—सरचौ = हुआ। तार्थे = इनमे। षट करमा = ब्राह्मणो के छः कर्म (अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह)। षालसा—खालसा, वह भूमि या इलाका जिसका प्रबंध सरकार स्वयं करे और जो किसी की जागीर या जमींदारी न हो। जानि = [illegible]।

प्रसंग—कबीर [illegible] बाह्याचार का त्याग करके सच्ची प्रभु भक्ति का [illegible] करते है।

भावार्थ—[illegible] स्वामी भगवान का भजन नहीं किया। [illegible] पूर्ण नहीं हुई। [illegible], पुराण, स्मृतियों को [illegible]

रहे तथा उनका मनन करते रहे परन्तु उस परम तत्व के रहस्य को नही समझ सके। तुमने सध्या की, गायत्री मन्त्र का जप किया और शास्त्र विहित ब्राह्मणोचित छओ कर्म (अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह) किए। परन्तु यह परम तत्व इनसे भी परे बताया गया है। तुमने घर छोड कर वन मे जाकर कठोर तपस्या की, वहाँ तुम कदमूल-फल खोद कर खाते रहे। ब्रह्मज्ञानी बन कर तुमने अनेक प्रकार से ध्यान लगाया, परन्तु इन समस्त वाह्याचारो के फलस्वरूप तुम अपने कर्म बन्धन मे वृद्धि करते रहे और पाप-पुण्य का हिसाब रखने वाले रामराज के खाते को बढाते रहे। तुमने रोजा रखे नमाज पढी तथा जोर से अजान की आवाज भी लगाकर लोगो को सुनाई। परन्तु इन सबका भी कोई विशेष फल नही निकला। ठीक ही है। जब हृदय मे कपट भरा हुआ हो, तो भगवान कैसे मिल सकते हैं ? कपट पूर्ण हृदय लेकर काबा और हज जाने से क्या लाभ हो सकता है ? समस्त ससार के ऊपर काल का प्रभाव छाया हुआ है - जगत की सारी भूमि पर यमराज का पट्टा है। उसके अन्तर्गत समस्त ज्ञानी भी सम्मिलित है। कबीरदास कहते हैं कि जो राम के भक्त हैं, वे उस पट्टे से मुक्त हैं अर्थात् उनकी व्यवस्था स्वय भगवान करते हैं, उनकी जमीन पर यमराज का इजारा नही है।

अलंकार—(i) पुनरुक्ति प्रकाश—पढि पढि,
(ii) विशेषोक्ति—वेद पुरान न पावा,
(iii) छेकानुप्रास —खनिखावा जिनि जानी।
(iv) पदमैत्री—गियानी धियानी,
(v) वक्रोक्ति - मिलै क्यूँ जावा।
(vi) मानवीकरण—काल का मूर्तीकरण।
(vii) रूपक—काल।

विशेष—(i) हिन्दुओ और मुसलमानो दोनो के वाह्याचारो का विरोध है।

(ii) कर्मरहित होना ही मोक्ष है।

(iii) सध्या—प्रात , दोपहर, या शाम का वह समय जब दिन के भागो का मेल होता है तथा इन समयो पर किये जाने वाले धार्मिक कृत्य।

(iv) गायत्री—वैदिक स्तोत्र जिसमे आठ आठ वर्णों के तीन चरण होते हैं, इसका उपदेश उपनयन सस्कार के अवसर पर द्विज बालक को दिया जाता है।

(v) काबा—मक्के की एक चौकोर इमारत जिसकी नीव इब्राहीम की रखी हुई मानी जाती है।

(vi) हज्ज - नियत काल पर काबे के दर्शन और प्रदक्षिणा करना—मक्के की यात्रा।

(vii) सब ज्ञानी—ब्रह्म ज्ञानी छोड कर अन्य सब प्रकार के ज्ञानियो से तात्पर्य है—बौद्धिक ज्ञानी, ज्ञान के अहकारी इत्यादि।

(२६५)

मन रे जब तें राम कह्यौ,
पीछैं कहिबे कौं कछू न रह्यौ ।। टेक ।।
का जोग जगि तप दांनां, जौ तें रांम नांम नही जांनां ।।
कांम क्रोध दोऊ भारे, ताथैं गुरु प्रसादि सब जारे ।।
कहै कबीर भ्रम नासी, राजा रांम मिले अविनासी ।।

सन्दर्भ—कबीर राम-नाम की महिमा का वर्णन करते हैं ।

भावार्थ—रे मन, जब से तूने राम नाम कहना आरम्भ कर दिया है उसके बाद अन्य कुछ कहने के लिए रह ही नहीं गया है । (उसी मे सब कुछ कह दिया है ।) यदि राम के नाम का महत्त्व न जाना, तो योग, जप, तप तथा दान करने से क्या लाभ है ? काम और क्रोध दोनो अत्यन्त प्रबल होते हैं । इसलिए मैंने गुरू की कृपा से उन्हे नष्ट कर दिया है । कबीरदास कहते हैं कि काम क्रोध के समाप्त हो जाने के फलस्वरूप मेरे समस्त भ्रमो का नाश हो गया है और अब मुझे अविनाशी भगवान राम की प्राप्ति हो गई है ।

विशेष—जब तक 'काम' है, तब तक विकार है । जब तक विकार हैं तब तक मोह एव भ्रम का रहना स्वाभाविक ही है । यही माया का प्रपच है । समभाव के लिए देखें—

ध्यायतो विषयान्प्र स. सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्सजायते काम कामात्क्रोधोऽभिजायते ।
क्रोधाद्भवति संमोह समोहात्स्मृतिविभ्रम ।
स्मृतिभ्र शाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।
रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ।

(श्रीमद्भगद्गीता—२/६२—६४)

(२६६)

रांम राइ सो गति भई हंमारी,
मो पै छूटत नहीं ससारी ।। टेक ।।
यूं पखी उड़ि जाइ आकासां, आस रही मन मांही ।
छूटी न आस टूट्यौ नहीं फंधा, उडिबौ लागा कांहीं ।।
जो सुख करत होत दुख तेई, कहत न कछू बनि आवै ।
कुंजर ज्यूं कसतूरी का मृग, आपै आप बँधावै ।।
कहै कबीर नही बस मेरा, सुनिये देव मुरारी ।
इत भैभीत डरौं जम दूतनि, आये सरनि तुम्हारीं ।।

शब्दार्थ—लागौ काही=क्या लाभ ?

संदर्भ— कबीर दु ख-निवृत्ति हेतु भगवान की शरण को एक मात्र अवलम्बन मानते हैं।

भावार्थ—रे राजा राम ! मुझसे ससार का मोह छोडते नही बनता है। मेरी भी हालत उस पक्षी की तरह हो गई है जो आकाश मे ऊचा उड तो जाता है परन्तु भोजन-वासना के कारण उसका मन पृथ्वी से बँधा रहता है। मन से वासना जाती नही है। इस कारण मोह का बन्धन टूटता नही है। तब आकाश में उडने से—ज्ञान-ध्यान से क्या लाभ है ? मैं जो काम सुख-प्राप्ति के लिए करता हूं, वे दु ख के हेतु बन जाते हैं। जैसे हाथी हथिनी के प्रति मोह के कारण अपने आपको बँधा देता है तथा कस्तूरी-मृग सुगन्ध की वासना के वशीभूत होकर इधर-उधर भटकता रहता है, वैसे ही जीव भी मोह एव वासनाओ के कारण अपने आपको सासारिक प्रपचो मे फँसा देता है तथा अपनी वासनाओ के वशीभूत होकर चारो ओर भटकता फिरता है। कबीरदास कहते हैं कि हे मुरारी। मेरी प्रार्थना सुनो। सासारिक वासनाओ पर मेरा कोई वश नही चल रहा है। मैं सासारिक बन्धनो से भयभीत हू तथा यम के दूतो से डरा हुआ हूँ। इसलिए तुम्हारी शरण मे आया हू।

अलंकार - (i) उदाहरण—सोगति मनमाही।
(ii) अन्योन्य—छूटी न आस ····फदा।
(iii) गूढोक्ति—लागौ काही।
(iv) विरोधाभास—जो सुख···· दुख तेई।
(v) सम्बन्धातिशयोक्ति—कहत न···· आवै।
(vi) उपमा—कु जर ज्यू कस्तूरी का मृग।

(२६७)

रांम राइ तूं ऐसा अनभूत अनूपम, तेरी अनभै थैं निस्तरिये।
जे तुम्ह कृपा करौ जगजीवन, तौ कतहू न भूलि न परिये ।। टेक ।।
हरि पद दुरलभ अगम अगोचर, कथिया गुर गमि विचारा।
जा कारंनि हम ढूढत फिरते, आथि भर्‌यो ससारा ।।
प्रगटी जोति कपाट खोलि दिये, दगधे जंम दुख द्वारा।
प्रगटे विस्वनाथ जगजीवन, मैं पाये करत विचारा ।।
देख्यत एक अनेक भाव है, लेखत जात अजाती।
बिह कौं देव तवि ढूंढत फिरते, मडप पूजा पाती ।।
कहै कबीर करुणांमय किया, देरी गलियां बहु विस्तारा।
रांम कै नांव परंम पद पाया, छूटै विघन विकारा ।।

शब्दार्थ—अनभै=अनुभूति। गमि=अनुभूति द्वारा प्राप्ति। आथि=व्याप्त। जात=जन्मा। अजाती=अजन्मा। बिह=उस। तब=पहले। गलिया=विभिन्न मत-पथ।

संदर्भ—कबीरदास मत-पथों की व्यर्थता की ओर संकेत करके राम भक्ति का प्रतिपादन करते है ।

भावार्थ—रे मेरे स्वामी राम, आप ऐसे साक्षात् अनुभूतिस्वरूप एवं अनुपम हो कि तेरी अनुभूति मात्र से भवसागर पार किया जाता है । हे जगत् के प्राण, यदि तुम कृपा करते रहो तो कही भी भूलकर भी जीव माया के बन्धन मे नही पडता है । भगवान का स्वरूप अत्यन्त दुर्लभ दुष्प्राप्य एव इन्द्रियातीत है । गुरु ने अपनी अनुभूति से प्राप्त ज्ञान के आधार पर यह विचार प्रकट किया है । जिस परम तत्त्व को हम ढूँढते फिरते हैं, वह सम्पूर्ण ससार मे व्याप्त है । गुरु के उपदेश द्वारा मेरे हृदय मे जो ज्ञान ज्योति प्रकट हुई है, उसके द्वारा मेरे अन्त करण के किवाड खुल गए है आन्तरिक चक्षु खुल गए हैं और उसके द्वारा यम के कष्ट-कर्मफल के बन्धन समाप्त हो गए है । अब जगत के प्राण विश्वनाथ प्रकट हो गए है । मैने विवेक पूर्वक चिन्तन करते हुए उनको प्राप्त किया है । वही एक परम तत्त्व अनेक भावो (रूपो) मे देखा जाता है । वह अजन्मा भी जन्मा हुआ सा वर्णित है । उसी देवता को हम पहले मडप मे फूल पत्ती की पूजा के द्वारा प्राप्त करना चाहते थे । कबीर कहते हैं कि हे करुणामय ! तेरे नाम पर जो अनेक मत-पथ प्रचलित हैं, मैं उनमे भटकता रहा और इसी कारण तेरे साक्षात्कार मे मुझको इतनी देर हो गई । राम के नाम के द्वारा मैने परम पद की प्राप्ति कर ली है और मेरे समस्त विघ्न (कचन कामिनी आदि) एव विकार (काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर आदि) दूर हो गए हैं ।

अलंकार— (i) अनुप्रास - अनभूत अनुपम अनभै, अगम अगोचर । दगधे दुख द्वारा । परम पद पाया ।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—कपाट ।
(iii) विरोधाभास- जात्य अजाती ।

विशेष – (i) वाह्याचार की निरर्थकता की ओर सकेत है । तुलना करें—

तुलसिदास ब्रत दान ग्यान तप, सुद्धिहेतु स्रुतिगावै ।
राम-चरन अनुराग-नीर-बिनु मल अति नास न पावै ।
एव— **नाहिन आवत आन भरोसो ।**

× × ×

बहुमत सुनि बहु पथ पुराननि जहाँ तहाँ झगरो सो ।
गुरु कह्यो राम-भजन नीको मोहि लागत राजडगरो सो ।

× × ×

राम नाम बोहित भव-सागर चाहै तरन तरोसो ।

—गोस्वामी तुलसीदास

(२६८)

रांम राइ को ऐसा बैरागी,
हरि भजि मगन रहै विष त्यागी ।। टेक ।।

ब्रह्मा एक जिनि सिष्टि उपाई, नांव कुलाल धराया ।
बहु बिधि भांडै उनहीं घड़िया, प्रभू का अन्त न पावा ।।
तरवर एक नांनां बिधि फलिया, ताकै मूल न साखा ।
भौजलि भूलि रह्या रे प्रांणीं, सो फल कदे न चाखा ।।
कहै कबीर गुर बचन हेत करि, और न दुनियां आथी ।
माटी का तन मांटी मिलि है, सबद गुरू का साथी ।।

शब्दार्थ—कुलाल=कुम्हार । भांडै=वर्त्तन । घडिये=गढ़े, बनाए । भौजलि=भव-जल, ससार-रूपी जल । कदे=कभी । आथी=अस्तित्व वाली ।

संदर्भ—कबीर ससार की निरर्थकता तथा गुरु की महिमा का प्रतिपादन करते हैं।

भावार्थ—हे राम-ऐसा वैरागी बहुत कठिनाई से मिलता है जो विपयो को छोडकर भगवान के भजन मे मग्न रहे। एक ब्रह्मा हुए जिन्होने सृष्टि उत्पन्न की और अपने आपको कुम्हार कहलवाया। उन्होने अनेक शरीर रूपी वर्त्तनो को बनाया, परन्तु वह भी भगवान के वास्तविक स्वरूप को नही जान सके। ससार-रूपी एक वृक्ष मे अनेक प्रकार की विषय-वासनाओ के फल लगे हैं। इस वृक्ष की न जड है और न उसके शाखाएँ ही हैं। यह प्राणी ससार के इन फल रूपी विपयो की मृग तृष्णा के जल मे अपने वास्तविक स्वरूप एव वास्तविक लक्ष्य को भूला हुआ है। विषय रूपी ये फल उसको खाने के लिए कभी नही प्राप्त होते है अर्थात् वह विषयो के द्वारा सच्चे सुख की प्राप्ति कभी नही कर पाता है। कबीरदास कहते हैं कि गुरु के वचनो पर विश्वास करो। शेष ससार अस्तित्वहीन (मिथ्या) है। मिट्टी का यह शरीर मिट्टी मे ही मिल जाएगा। केवल गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान ही हमारा सच्चा साथी है।

अलंकार—(i) वक्रोक्ति—को ऐसा वैरागी।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—कुलाल, भाडे, तरवर।
(iii) निदर्शना—भौजल ... चाखा।
(iv) विभावना—तरवर एक ... साखा।
(v) रूपक—भौजल।

विशेष—(i) निर्वेद सचारी भाव की व्यजना है।

(ii) तुलना कीजिए—

जगु देखन तुम पेखन हारे। विधि हरि सभु नचावन वारे।
तेउ न जानइ मर्म तुम्हारा। और तुम्हे को जाननि हारा।

(२६६)

नैक निहारि हो माया बीनती करै,
दीन बचन बोलै कर जोरे, फुनि फुनि पाइ परै ।। टेक ।।

कनक लेहु जेहु जेता मनि भावै, कांमनि लेहु मन हरनीं ।
पुत्र लेहु विद्या अधिकारी, राज लेहु सब धरनीं ।।
अठि सिधि लेहु तुम्ह हरि के जनां, नवै निधि है तुम्ह आगे ।
सुर नर सकल भवन के भूपति, तेऊ लहै न मांगै ।।
तै पापणी सबै संघारे, काकौ काज संवारचौ ।
जिनि जिनि सग कियौ है तेरौ, को येसासि न मारचौ ।।
दास कबीर रांम कै सरनै, छाडी झूठी माया ।
गुर प्रसाद साध की संगति, तहां परम पद पाया ।।

शब्दार्थ— फुनि फुनि=पुनः पुनः, बार बार । कनक=स्वण । कामनि=कामिनी स्त्री । ये सासि=विश्वास ।

सन्दर्भ— कबीरदास ज्ञान दशा का वर्णन करते है ।

भावार्थ—माया भगवान के भक्तो से प्रार्थना करती है, अत्यन्त दीन वचन बोलती है और बार-बार पैर पड़ती हुई कहती है कि हे हरि भक्तो ! जरा मेरी ओर कृपा की दृष्टि कर दो । जैसा और जितना सुवर्ण चाहिए ले लो, मन-भावनी और मन-हरण करने वाली कामिनी स्त्री ले लो, तुम विद्वान पुत्र लो, सम्पूर्ण पृथ्वी का राज्य ले लो । आठो सिद्धियाँ और नव निधियाँ ले लो । हे हरि के भक्तो जिन वैभवो और सिद्धियो को देवता, मनुष्य एव सम्पूर्ण पृथ्वी के राजा मागने पर भी प्राप्त नही कर पाते हैं, वे सब तुम्हारे समक्ष तुम्हारी सेवा मे प्रस्तुत हैं । भक्त जन उत्तर देते हुए कहते हैं कि हे पापिन तूने सबको नष्ट किया है । क्या तूने आज तक किसी का काम बनाया है ? जिन-जिन लोगों ने विश्वास करके तेरा साथ किया है उन सबको तूने विश्वासघात करके मारा ।" भक्त कबीर का कहना है कि वह तो भगवान राम की शरण मे है । उन्होंने झूठी माया को त्याग दिया है । गुरु की कृपा और साधु जनो की सगति के द्वारा कबीर ने परम पद प्राप्त कर लिया है ।

अलंकार—(i) गूढोत्तर—पूरा पद ।
(ii) पुनरुक्ति प्रकाश—पुनि-पुनि ।
(iii) मानवीकरण—माया ।
(iv) पदमैत्री—लेहु जेहु लेहु ।
(v) विशेषोक्ति की व्यजना—लहै न मार्जै ।

विशेष—(i) प्रश्नोत्तर शैली मे माया और भक्ति के पारस्परिक सम्बन्ध का सुन्दर निरूपण है । इसमे उपनिषद् का प्रभाव स्पष्ट है ।

(ii) कबीर बताते हैं कि माया ज्ञान प्राप्ति की अन्तिम अवस्था तक प्रलोभन देकर साधक को पथ भ्रष्ट करना चाहती है । इसी से तो कहते हैं कि सिद्धि के प्रत्येक फूल के पीछे वासना का सर्प छिपा रहता है । वह जाने कब सिर निकाल कर काट ले । इसी कारण साधक को अन्त समय तक सावधान रहने का उपदेश दिया जाता है ।

(iii) माया वीनती करै—समभाव के लिए देखें—

भागती फिरती थी दुनिया जब तलब करते थे हम।
अब जो नफरत हमने की, वह खुद बखुद आने को है।

(iv) आठ सिद्धियाँ—योग सिद्धि से मिलने वाली आठ सिद्धियाँ या अलौकिक शक्तियाँ— अणिमा, महिमा, गरिमा, लछिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व।

(v) नौ निधियाँ—कुबेर की नौ निधियाँ—पद्म, महापद्म, शख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील, और खर्व।

(vi) कबीरदास माया के प्रति सदा सावधान रहने का उपदेश बराबर देते आए हैं। यथा—

सुवटा ! डरपत रहु मेरे भाई।
× × ×
या मजारी मुगध न मानै, सब दुनियाँ डहकायी।
× × ×
कहत कबीर, सुनहु रे सुवटा ! उबरै हरि-सरनाई।

कबीर ऐसे स्थलो पर ज्ञानी भक्त के रूप मे उभर कर एकदम सामने आ जाते हैं।

(२७०)

तुम्ह घरि जाहु हमारी बहनां,
बिष लागै तुम्हारे नैनां ॥ टेक ॥
अजन छाडि निरजन राते, नां किसही का दैनां।
बलि जांउ ताकी जिनि तुम्ह पठई, एक माइ एक बहनां ॥
राती खांडी देख कबीरा, देखि हमारा सिंगारौ।
सरग लोक थै हम चलि आई, करन कबीर भरतारौ ॥
सर्ग लोक मै क्या दुख पडिया, तुम्ह आई कलि मांही।
जाति जुलाहा नाम कबीरा, अजहू पतीजौ नांही ॥
तहां जाहु जहां पाट पटबर, अगर चंदन घसि लीनां।
आइ हमारे कहा करौगी, हम तौ जाति कमीनां ॥
जिनि हम साजे साज्य निवाजे, बांधे काचै धागै।
जे तुम्ह जतन करौ बहुतेरा, पांणी, आगि न लागै ॥
साहिब मेरा लेखा मांगै, लेखा क्यू करि दीजै।
जे तुम्ह जतन करौ बहुतेरा, तौ पांहण नीर न भीजै।
जाकी मै मछी सो मेरा मछा, सो मेरा रखवालू।
टुक एक तुम्हारै हाथ लगाऊं, तौ राजा रांम रिसालू ॥
जाति जुलाहा नाम कबीरा, बनि बनि फिरौं उदासी।
आगि पासि तुम्ह फिरि फिरि बैसो, एक माइ एक मासी ॥

शब्दार्थ— विष=काम वासना का जहर। अंजन=माया, विषयासक्ति। राती=प्रेमिका। खाडी=खडी हूँ। अथवा खाडी का अर्थ रमणी। पतीजो विश्वास। पटबर=रेशमी वस्त्र। पाट=रेशमी वस्त्र। रिसालू=अप्रसन्न हो जाएगा।

सन्दर्भ— कबीर माया को दुत्कारते है।

भावार्थ—कबीर माया को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि, रे बहिन, तुम अपने घर जाओ। तुम्हारे नेत्र मुझे जहर मालूम होते हैं (अर्थात् तुम्हारी ओर देखते हुए मुझे डर लगता है)। मैंने तो सासारिकता का त्याग करके माया से रहित निरजन परमतत्त्व के प्रति अनुराग कर लिया है। अब मुझे किसी से कुछ लेना-देना नही है। मैं तो उसकी सूझ-बूझ पर बलिहारी जाता हूँ जिसने तुमको मुझे अपनी ओर आकर्षित करने के लिए भेजा है। तुम तो मेरी माता और बहिन के समान हो। (शरीर को बनाने वाली होने के कारण माया जीव की माता है तथा निर्माता ईश्वर की पुत्री होने के कारण माया जीव की बहिन है।" माया कबीर को उत्तर देती हुई कहती है कि, 'हे कबीर देखो तो सही! मैं तुम पर आसक्त नारी की भाँति खडी हूँ। तुम मेरे शृगार की ओर तो देखो मैं कबीर को पति रूप मे वरण करने के लिए स्वर्ग लोक से चलकर यहाँ आई हूँ।" कबीर कहते हैं "वहाँ स्वर्ग लोक मे तुम्हारे ऊपर ऐसी क्या विपत्ति आ पडी जो तुम यहाँ मृत्यु लोक मे आ गई हो। मेरे पास क्या रखा है ? मैं जाति का जुलाहा हूँ। मेरा नाम कबीर (बुजुर्ग बड्ढा) है। अब तो तुझको मेरी तुच्छता एव असमर्थता पर विश्वास हो जाना चाहिए। तुम उनके पास जाओ जो रेशमी वस्त्र धारण करते हैं और अगर तथा घिसे हुए चन्दन का लेप करते है। हमारे यहाँ आकर तुम क्या करोगी ? हम तो एक बहुत ही निम्न जाति मे उत्पन्न जुलाहे है। जिन भगवान ने हमको बनाया है और इस सुन्दर स्वरूप द्वारा सजाया है उन्होने मुझको अपने प्रेम के डोरे मे बांध लिया है। तुम कितना भी प्रयत्न करो, परन्तु मेरे मन मे तुम्हारे प्रति आसक्ति उत्पन्न नही होगी। पानी में आग नही लग सकती है ? मेरा स्वामी जब मुझ से मेरे कार्यों का हिसाब-किताब मागेगा, तब मैं उनको क्या हिसाब दे सकूँगा। मुझे आकर्षित करने के लिए कुछ भी करो, परन्तु मैं तुम्हारे प्रति कभी भी आकर्षित नही हो सकूँगा, क्योकि पानी के द्वारा पत्थर कभी भी गीला नही हो सकता है। मैं भगवान की मछली हूँ, भगवान ही मुझको पकड़ने वाला मछवा है और वह मेरा रक्षक भी है। अगर मैं रच मात्र भी तुम्हारा स्पर्श कर लूँ तो राजा राम मुझ से अप्रसन्न हो जाएँगे। कबीर कहते हैं कि मैं जाति का जुलाहा हूँ। मेरा नाम कबीर है। मैं ससार से विमुख होकर जगलो मे मारा-मारा घूमता हूँ। (अर्थात् जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे विषयो से उदासीन होकर घूम रहा हूँ। तुम आस-पास से हटकर दूर बैठो। एक तो तुम मेरी माता (शरीर के नाते) हो और ऊपर से सगी माता के समान होने के कारण मेरी मौसी हो।

अलंकार—(1) पद मैत्री—अजन निरजन।

(ii) रूपकातिशयोक्ति —विष।
(iii) पुनरुक्ति प्रकाश—बनि बनि।
(iv) निदर्शना—पानी आगि न लागै।
(v) दृष्टान्त—जे तुम्ह · भीजै।

विशेष—(i) इस पद पर उपनिषद की प्रश्नोत्तर शैली के द्वारा ज्ञान तत्त्व का प्रतिपादन है।

(ii) इसमे कबीर के चरित्र की शुद्धि एव दृढता व्यंजित हैं।

(iii) ना किसी का देनां समभाव देखे—

काहू की बेटी सो बेटा न ब्याहब काहू की जाति बिगारौं न सोऊ।
माँगि कै खैवो मसीत को सोइबौ, लेबे को एक न देबे को दोऊ।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(२७१)

ताकूं रे कहा कीजै भाई,
तजि अमृत बिषै सूं ल्यो लाई ॥ टेक ॥
बिष सग्रह कहा सुख पाया,
रचक सुख कौं जनम गँवाया ॥
मन बरजै चित कह्यौ न करई,
सकति सनेह दीपक मै परई ॥
कहति कबीर मोहि भगति उमाहा,
कृत करणीं जाति भया जुलाहा ॥

शब्दार्थ—सकति = आसक्ति।

सन्दर्भ कबीरदास कहते है कि आसक्ति के वशीभूत जीव अपना जीवन नष्ट कर देता है।

भावार्थ—उस व्यक्ति के लिए क्या किया जाए अथवा उसको किस प्रकार समझाया जाए, जो राम-भक्ति रूपी अमृत को छोड कर विषयासक्ति रूपी विषय के प्रति आकर्षित रहता है ? जीव को इन्द्रिय भोगो के सग्रह से क्या सुख मिल सकता है ? ऐसा व्यक्ति जरा से क्षणिक सुख के लिए अपने सम्पूर्ण जीवन को नष्ट कर देता है। मन (विवेक बुद्धि) के मना करने पर भी उसका प्रवृत्यात्मक चित्त नही मानता है और वह आसक्ति के वशीभूत होकर विषयरूपी दीपक मे गिर जाता है। कबीर कहते है कि मेरे हृदय मे भक्ति का उत्साह जाग्रत हो गया है। जाति का जुलाहा मैं अपने कर्मों के द्वारा कृत-कार्य हो गया हूँ। अर्थात्, मैं जुलाहा जैसी निम्न जाति मे भले ही उत्पन्न हुआ, परन्तु भक्तिपूर्ण आचरण करके मैंने अपना जीवन सार्थक कर लिया है।

अलकार—(i) गूढोक्ति— ताकू भाई, विष पाया।
(ii) विशेषोक्ति की व्यजना—मन··· ···करई।

(iii) रूपकातिशयोक्ति—तजि अमृत···· लाई ।

(iv) रूपक—सकति सनेह दीपक ।

विशेष—(i) जातिवाद की निरर्थकता का प्रतिपादन है । कबीर बार-बार यही कहते है कि—

जागति पाँति पूछै नहि कोई । हरि कहँ भजै सो हरि का होई ।

वह तो अन्यत्र भी कह चुके हैं कि—

गुरु प्रसाद साधु की सगति जग जीतै जाय जुलाहा ।

(ii) मन बरजै · करई—इस पद मे कबीर ने व्यक्ति के अन्तर मे होने वाले सघर्ष की ओर बडी ही कुशलता के साथ सकेत किया है । निश्चयात्मकता बुद्धि सन्मार्ग का निर्धारण करती है, परन्तु प्रवृत्यात्मक मन उस ओर नही जाता है । फलत हमारे बुद्धि जगत एव भाव-जगत के मध्य—हमारी कथनी और करनी के मध्य सदैव सघर्ष चलता रहता है । हम सब प्राय. सोचते ठीक है, परन्तु अपनी विषयासक्ति के प्रबल होने के कारण तदनुसार आचरण नही कर पाते हैं । इसी कारण अपने जीवन और पुण्य-क्षेत्र को क्षीण करते रहते है ।

(२७२)

रे सुख इब मोहि बिष भरी लागा,
इनि सुख डहके मोटे मोटे छत्रपति राजा ।। टेक ।।
उपजै बिनसै जाइ बिलाई, सपति काहू कै सगि न जाई ।।
धन जोबन गरब्यौ संसारा, यहु तन जरि बरि ह्वै है छारा ।
चरन कवल मत राखि ले धीरा, रांम रमत सुख कहै कबीरा ।।

शब्दार्थ—इब=अब । डहके=डहके=धोखा खाया । बिनसै=नष्ट होता है । बिलाई=विलीन होता है । कवल=कमल । मोटे=बडे । मत=मति, बुद्धि ।

संदर्भ—कबीर का साधक जीवात्मा अपने मन को सम्बोधित करके कहता है कि राम ·भक्ति मे ही वास्तविक आनन्द है ।

भावार्थ रे मन ! सासारिक सुख अब मुझे जहर से भरा हुआ लगता है । इन इन्द्रिय सुखो के द्वारा बडे-बडे छत्रपति राजाओ ने धोखा गया है अथवा वे इनके द्वारा ठगे गए हैं । ये सासारिक सुख-सम्पति उत्पन्न होती है, क्षीण होती है और अन्तत सर्वथा नष्ट हो जाती है । यह सम्पत्ति किसी के साथ नही जाती है । धन एव यौवन के मद मे ससार के समस्त प्राणी गर्वित रहते हैं । उन्हे समझ लेना चाहिए कि यह (पचभौतिक) शरीर जल-बल कर राख हो जाएगा । कबीरदास कहते हैं कि हे जीव, तू अपनी बुद्धि को स्थिर करके भगवान के चरणारविंद मे लगा दे । राम मे अनुरक्त होने मे ही वास्तविक सुख की प्राप्ति होती है ।

अलंकार—(i) पुनरुक्ति प्रकाश—मोटे-मोटे ।

(ii) पदमैत्री—जरि-बरि ।

(iii) रूपक—चरन कवल ।

(iv) छेकानुप्रास—राम रमत ।

विशेष—निर्वेद एव वैराग्य की व्यजना है ।

(२७३)

इब न रहू माटी के घर मैं,
इब मैं जाइ रहू मिलि हरि मैं ।। टेक ।।
छिनहर घर अरु झिरहर टाटी, घन गरजत कंपै मेरी छाती ।।
दसवैं द्वारि लागि गई तारी, दूरि गवन आवन भयौ भारी ।।
चहूँ दिसि बैठे चारि पहरिया, जागत मुसि गये मोर नगरिया ।।
कहै कबीर सुनहु रे लोई, भांनड़ घड़ण सवारण सोई ।।

शब्दार्थ पाटी का घर=पचभौतिक जगत । छिनहर=जीर्ण=टूटा फूटा । झिरहर—झिरीवाला, सूराखो वाला । दसवाँ द्वार—ब्रह्मरन्ध्र । घन—बादल, काल । तारी—त्राटिका । गवन—अबन—जीवन-मरण । चारि—अहँकार चतुष्टय, मन, चित्त बुद्धि अहकार । मुसि गये—नष्ट-भ्रष्ट कर गये । भानण—भजन करने वाला । घडण—गढने वाला, बनाने वाला । सवारण—सवारने वाला अर्थात् पालन (रक्षा) करने वाला ।

संदर्भ—कबीरदास सासारिकता की निस्सारता का प्रतिपादन करते हुए प्रभु भक्ति का सकल्प करते हैं ।

भावार्थ—अब मैं इस मिट्टी के घर अर्थात् मृण्मय शरीर के प्रति आसक्त नही रहूँगा । अब मैं भगवान मे तदाकार हो जाऊँगा । वासनाओ का भडार यह शरीर रूपी घर अत्यन्त जीर्ण है और इसके ऊपर जो वासनाओ का आवरण है, वह भी छेदो वाला है अर्थात् वासनाएँ भी मेरी रक्षा नही कर सकती है । काल रूपी बादल जब गरजते हैं अर्थात् जब मुझे मृत्यु का स्मरण आ जाता है, तब मेरा हृदय काँपने लगता है । गुरु की कृपा से माटिका लग गई है । इससे ब्रह्मरन्ध्र के द्वारा अब प्राण बाहर नही जा सकेंगे । इस कारण आवागमन का चक्र समाप्त हो गया है । इस ससार की स्थिति तो यह है कि मन, चित्त, बुद्धि एव अहकार रूपी चार पहरेदार चारो ओर से इस शरीर की रक्षा करते रहते हैं अर्थात् अन्त करण चतुष्टय के वशीभूत मनुष्य किसी प्रकार मरना नही चाहता है, परन्तु इन पहरेदारो के सजग रहते हुए भी काल रूपी चोर इस शरीर रूपी नगर को लूट ले जाता है । कबीरदास कहते हैं कि हे लोई ! सुनो मनुष्य सर्वथा विवश है । सबका नाश, सृजन एवं पालन करने वाला केवल वही एक ईश्वर ही है ।

अलंकार—(i) रूपकातिशयोक्ति—माटी का घर,
(ii) घन चारि पहरिया, नगरिया ।
(iii) विरोधाभास—चहु दिसि ....नगरिया ।

विशेष—(i) निर्वेद संचारी भाव की व्यजना है ।

(ii) लोई कबीर की पत्नी का नाम है। कुछ लोग लोई को कबीर की शिष्या मानते है। इस प्रकार इस पद मे चरितपरक सकेत है।

(iii) समभाव देखिए—

अवलौं नसानी, अब न नसैहौं।

× × ×

मन मधुकर पन कै तुलसी रघुपति-पद-कमल बसैहौं।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(२७४)

कबीर बिगरचा रांम दुहाई,
तुम्ह जिनि बिगारौ मेरे भाई ॥ टेक ॥
चदन कै ढिग बिरष जु भैला, बिगरि बिगरि सो चंदन ह्वैला ॥
पारस कौं जे लोह छिवैगा, बिगरि बिगरि सो कचन ह्वैला ॥
गगा मै जे नोर मिलैगा, बिगरि बिगरि गंगोदिक ह्वैला ॥
कहै कबीर जे रांम कहैला, बिगरि बिगरि सो रांमहि ह्वैला ॥

शब्दार्थ—ह्वैला=हो जाएगा। पारस=वह पत्थर जिसके स्पर्श से लोहा स्वर्ण बन जाता है। छिवैला=छुएगा, स्पर्श करेगा।

सदर्भ—कबीरदास सत्सग की महिमा का वर्णन करते है।

भावार्थ—राम की दुहाई देकर सच कहता हूँ कि भगवद् भक्ति करके मैं तो बिगड ही गया हूँ अर्थात् ससार के उपयुक्त नही रह गया हूँ। पर मेरे भाइयो! अब तुम मेरी तरह भगवद् भक्ति के मार्ग पर चल कर मत बिगडना। तुम संसार मे ही अनुरक्त बने रहो—यही व्यजना है। प्रकृति का नियम ही यह है कि जो वृक्ष चन्दन के वृक्ष के पास होगा, वह चन्दन के सम्पर्क के कारण धीरे-धीरे परिवर्तित होकर चन्दन ही बन जाएगा। जो लोहा पारस का स्पर्श करेगा, वह क्रमश. परिवर्तित होकर स्वर्ण हो जाएगा। जो पानी गगा मे मिलेगा, वह गगा जल के रूप मे परिवर्तित हो जाएगा। कबीरदास कहते हैं कि जो व्यक्ति राम का नाम लेगा, वह धीरे-धीरे (अज्ञान से मुक्त होकर) राम-रूप हो ही जाएगा।

अलकार—(i) पुनरुक्ति प्रकाश—बिगरि-बिगरि।
(ii) तद्गुण—चन्दन ह्वैला, पारस ह्वैला, गगा ह्वैला। रामहि ह्वैला।

विशेष—(i) बिगारि' मे लक्षण लक्षणा है तथा ससारी व्यक्तियो के प्रति तीक्ष्ण व्यग्य है।

(ii) सत्सग की महिमा का वर्णन है—तुलना करें—

(क) सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परस कुघात सुहाई।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(ख) हमारे प्रभु ! औगुन चित न धरौ ।

× × ×

इक लोहा पूजा में राखत इक घर बधिक परो ।
सो सुविधा पारस नहिं राखत, कंचन करत खरो ।
इक नदिया इक नारि कहावत, मैलो नीर भरो ।
जब मिलिगे तब एक बरन भे, सुरसरि नाम परो ।

(महात्मा सूरदास)

(२७५)

रांम राइ भई बिकल मति मोरी,
कै यहु दुनी दिवानी तेरी ।। टेक ।।
जे पूजा हरि नांहीं भावै सो पूजनहार चढ़ावै ।।
जिहि पूजा हरि भल मांनै, सो पूजनहार न जांनै ।।
भाव प्रेम की पूजा, तायै भयौ देव थै दूजा ।।
का कीजै बहुत पसारा, पूजी जै पूजनहारा ।।
कहै कबीर मैं गावा, मै गावा आप लखावा ।।
जो इहि पद मांहि समांना, सो पूजनहार सयांना ।।

शब्दार्थ—विकल = व्याकुल, खराब । दुनी = दुनियाँ । दिवानी = दीवानी, पागल । पूजनहार = पूजने वाले, पुजारी लोग ।

सदर्भ—कबीर का कहना है कि साधक मानव को शुद्ध, आत्म स्वरूप की आराधना करनी चाहिए ।

भावार्थ—हे स्वामी राम, मेरी बुद्धि ही खराब हो गई है अथवा तुम्हारी यह सारी दुनिया ही पागल है । भगवान को जो सेवा-पूजा प्रिय नही है, उसी प्रकार की पूजा उसको पूजने वाले करते हैं । जो पूजा भगवान को प्रिय है, उस पूजा को ये पूजने वाले जानते ही नही हैं । भावपूर्वक एव प्रेमपूर्वक पूजा करने के लिए ही जीव ब्रह्म से पृथक हुआ है अथवा प्राणी का जन्म हुआ है । बहुत अधिक बातें बनाने से क्या लाभ है । पूजने वाले को अपने शुद्ध स्वरूप—शुद्ध बुद्ध आत्मा की पूजा करनी चाहिए । कबीर कहते हैं कि मैंने इस पूजा के वास्तविक रहस्य को गाकर स्पष्ट कर दिया है । जो लोग इस पद मे किए गए वर्णन के अनुसार प्रभु की आराधना करते हैं, वे ही ज्ञानी एव चतुर पूजने वाले हैं ।

अलकार—(i) सदेह—कै तेरी ।
(ii) विषम की व्यञ्जना—जे पूजा ····चढावै ।
(iii) रूपक—भाव-प्रेम की पूजा ।
(iv) गूढोक्ति—का कीजै ··· पसारा ।

विशेष—(i) अद्वैत मत का काव्य मय प्रतिपादन है ।
(ii) वाह्याचार का विरोध व्यजित है ।

(iii) सच्ची भक्ति-भावना का प्रतिपादन है ।

(iv) सच्चा ईश्वर प्रेम ही जीवन का चरम फल है । यह सीधी-सी बात लोगो की समझ मे नही आती है । इसी बात को देखकर कबीर हैरान हैं ।

(२०६)

रांम राइ भई बिगूचनि भारी,
भले इन ग्यांनियन थै संसारी ।। टेक ।।
इक तप तीरथ औगांहै, इक मांनि महातम चांहै ।।
इक मै मेरी मै बीझै, इक अहंमेव मै रीझै ।
इक कथि कथि भरम लगांवै, संमिता सी बस्त न पावै ।।
कहै कबीर का कीजै, हरि सूझै सो अंजन दीजै ।।

शब्दार्थ—बिगूचनि=उलझन, कठिनाई, असमंजस, औगाहैं=अवगाहन (स्नान) करते हैं । मानि=मान, सम्मान । बीझै=बीधे, बधते हैं । अहमेव="मैं ही हूँ"—मिथ्याभिमान । कथि कथि=विभिन्न सिद्धान्तो का प्रतिपादन करना । समिता=समाप्त अथवा सवित् आत्मबोध । वस्त=वस्तु । अजन=काजल, लक्षण से ज्ञान, आँखो की दृष्टि को शुद्ध करे ।

संदर्भ—कबीर के विचार से 'विवेक' ही भगवद् प्राप्ति का उचित सोपान है ।

भावार्थ—हे भगवान, मेरे सामने तो बडी भारी कठिनाई उपस्थित हो गई है । इन तथाकथित ज्ञानियो (ढोगी एव पाखण्डी लोगो) की अपेक्षा तो ये ससारी लोग (गृहस्थ लोग) ही अच्छे हैं । इन ज्ञानियो मे कोई तो तप करते हैं, कोई तीर्थों मे स्नान करते हैं, कोई मान चाहते हैं और कोई अपने आपको (भगत जी आदि) कहलाकर) बडा दिखाना चाहते हैं । इनमे बहुत से मैं मेरा' के मोह-बन्धन मे फँसे हुए हैं और किन्ही को अपनी शेखी बघारने की लत पड गई है । इनमे कुछ लोग विभिन्न धार्मिक सिद्धान्तो का वर्णन करते हुए अपने आपको भ्रम मे फँसाए हुए हैं । परन्तु इनमे कोई भी ऐसा नही है जिसको आत्म-बोध अथवा समभाव जैसी वस्तु की प्राप्ति हो गई हो । कबीरदास कहते हैं कि तथाकथित ज्ञान और ज्ञानियो से छुटकारा कैसे हो ? यथार्थ बात तो यह है कि उस ज्ञान की प्राप्ति की जानी चाहिए जिससे भगवान का दर्शन प्राप्त हो सके ।

अलकार—(i) पुनरुक्ति प्रकाश—कथि कथि ।

विशेष—(i) 'अजन' ज्ञान का प्रतीक है ।

(ii) अहकारी एव ढोगी ज्ञानी की अपेक्षा वह गृहस्थ कही अधिक अच्छा है जो निष्ठा पूर्वक अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करता है । सच्चे गृहस्थ की प्रशसा एव ढोगी ज्ञानी की भर्त्सना है ।

(iii) इसमे तत्कालीन सामाजिक जीवन की भी एक झलक प्राप्त हो जाती है ।

(२७७)

काया मंजसि कौन गुनां,
घट भीतरि है मलनां ॥ टेक ॥
जौ तूं हिरदै सुध मन ग्यांनीं, तौ कहा बिरोलै पांनी ।
तू बी अठसठि तीरथ न्हाई, कड़वापन तऊ न जाई ॥
कहै कबीर बिचारी, भवसागर तारि मुरारी ॥

शब्दार्थ—मजसि=मज्जसि, धोता है। कौन गुना=किस उपयोग के लिए बिलोलै=बिलोडित करता है, मथना अर्थात् पानी मे से किसी वस्तु को प्राप्त करने का प्रयत्न करना। तूबी=तु बी, कडवी लौकी।

संदर्भ—कबीर वाह्याचार की निरर्थकता का प्रतिपादन करते हैं।

भावार्थ—पूजा-पाठ आदि वाह्याचारो मे लिप्त व्यक्तियो को सम्बोधित करते हुए कबीरदास कहते हैं कि "तुम्हारे शरीर के भीतर तो मैला भरा हुआ है। तब फिर तुम शरीर को बाहर से क्यो धोते हो? अभिप्राय यह है कि जब हृदय के भीतर विषय-वासना रूपी मैल भरा हुआ है, तब तीर्थों मे मल मल कर स्नान करने से कोई लाभ नही है। यदि तुम हृदय से शुद्ध और विवेक पूर्ण मन वाले हो, तब फिर तुम इन तीर्थों के जल को मथ कर क्या प्राप्त करना चाहते हो? अभिप्रेत यह है कि जल को मथने पर कुछ भी हाथ नही लगता है। जल-मथन तो वही करता है जो एक दम मूर्ख होता है। अत जो तीर्थों मे स्नान करके मोक्ष की आशा करते है, वे निरे अज्ञानी हैं। विवेकी ऐसा मूर्खतापूर्ण व्यवहार कदापि नही करेगा।

जल मे स्नान करके मोक्ष की आशा करने वालो को लोक-व्यवहार का दृष्टात देकर कवि समझता है कि कडुवी लौकी जल मे तैरती हुई इधर-उधर अनेक तीर्थो मे भले ही स्नान करले, परन्तु उसका कडुवापन नही जा पाता है। इसी प्रकार तीर्थ-स्नान से मानव मन की वासनाओ का मैल समाप्त नही हो पाता हैं। कबीर कहते हैं कि इन्ही सब बातो का विचार करके मैं भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि हे मुरारि, तुम मुझको इस ससार रूपी सागर से पार उतार दो अर्थात् आवागमन के चक्र से मेरा उद्धार कर दो।

अलंकार—(i) गूढोक्ति—काया गुना, जौत पानी।
(ii) दृष्टात—तूबी · जाई।
(iii) विशेषोक्ति—तऊ न जाई।
(iv) रूपक—भवसागर।
(vi) परिकराकुर—मुरारि।

विशेष—(i) लक्षण—विरोलै पानी।
(ii) वाह्याचार का विरोध है।
(iii) पाठान्तर—हिरदै कपट मुख ग्यानी। झूठे कहा विलोवसी पानी।

(२७८)

कैसै तूं हरि कौ दास कहायौ,
करि बहु भेषर जनम गंवायौ ।। टेक ।।
सुध बुध होइ भज्यौ नहि सांई, काछ्यौ डयंभ उदर कै तांई ।।
हिरदै कपट सू नही साचौ, कहा भयौ जे अनहद नाच्यौं ।।
झूठे फोकट कलू मंझारा, रांम कहैं ते दास नियारा ।।
भगति नारदी मगन सरीरा, इहि बिधि भव तिरि कहै कबीरा ।।

शब्दार्थ - काछ्यौ = वेष धारण किया । डयभ = दंभ, पाखण्ड । उदर के ताई = उदरपूर्ति के लिए । अनहद = अनाहत नाद के नाम पर अथवा वेहद । कलू = कलियुग । नियारा = न्यारे, अनोखे ।

सदर्भ—कबीरदास नारद द्वारा प्रतिपादित प्रेमा भक्ति का प्रतिपादन करते हैं ।

भावार्थ—रे साधु का वेष धारण करके अपने आपको भक्त कहने वाले प्राणी ! तुम अपने आपको भगवान का भक्त क्योकर कहलाते हो ? तुमने तो तरह-तरह के अनेक वेष धारण करके अपना सम्पूर्ण जीवन नष्ट किया है । तुमने कभी भी शुद्ध बुद्धि द्वारा भगवान का भजन नही किया । तुमतो उदर पूर्ति के निमित केवल पाखण्ड करके अनेक वेष धारण करते रहे हो । तेरे हृदय मे कपट है और तुमने भगवान से कभी सच्चा प्रेम नही किया है । यदि तू केवल दिखाने के लिए हृदय मे उठने वाले संगीत का नाम लेकर तरह तरह से नाचता रहा है, तो इससे क्या लाभ है ? इस झूठे एव निस्सार कलियुग मे राम का नाम लेने वाले सच्चे भक्त और ही होते है अर्थात् सच्चे भक्तो के लक्षण न्यारे ही होते हैं । कबीर कहते है कि अपने शरीर को नारद द्वारा कथित प्रेमा भक्ति मे तन्मय करो और इस प्रकार इस संसार-सागर के पार हो जाओ ।

अलंकार—(i) गूढोक्ति—कैसे······कहायो ।
(ii) पदमैत्री—सुध बुध ।
(iii) वक्रोक्ति—कहा भयौ ·· नाच्यौ ।
(iv) भेदकातिशयोक्ति—दास नियारा ।
(vi) रूपक—भव ।

विशेष—(i) अनहद—देखें टिप्पणी पद स० १५७ ।
(ii) वाह्याचार का स्पष्ट विरोध है ।
(iii) इस पद मे कबीर "नारदी भक्ति" की चर्चा करते हुए वैष्णव भक्तो के एक दम निकट आ जाते हैं । कतिपय आलोचको के मतानुसार 'भगति नारदी' मे कबीर का तात्पर्य 'नारद-भक्ति-सूत्र' मे वर्णित भक्ति के प्रकार से नही है । परन्तु हमारे मतानुसार कबीर का तात्पर्य 'नारद भक्ति सूत्र' मे वर्णित भक्ति-पद्धति से ही

है। कबीर की विचार-धारा (मगन-सरीरा आदि) हमे तो एक दम उसी के अनुकूल दिखाई देती है—

तदर्पिता खिला चारता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति ।
सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा अमृत स्वरूपा च।

(२७९)

रांम राइ इहि सेवा भल मांनै,
जै कोई रांम नांम तत जांनै ।। टेक ।।
रे नर कहा पषालै काया, सो तन चीन्हि जहां थैं आया ।।
कहा बिभूति जटा पट बांधें, काजल पैस हुतासन साधें ।।
र रांम मां दोई अखिर सारा कहै कबीर तिहूं लोक पियारा ।।

शब्दार्थ—तत=तत्त्व, रहस्य। पषालै=प्रक्षालित करता है, धोता है। पट=वस्त्र। हुतासन=अग्नि, हवन करना अथवा पचाग्नि की साधना।

सन्दर्भ— कबीरदास राम नाम की महिमा का वर्णन करते है।

भावार्थ—जिसको राम-नाम के तत्व का ज्ञान है, उसी की सेवा (भक्ति) को भगवान राम अच्छा समझते हैं। रे मानव ! तू इस शरीर को क्यो धो रहा है ? उस परम तत्त्व को जानने का प्रयत्न कर जो तेरा उद्गम कारण है अर्थात् जहाँ से तेरा जन्म हुआ है। भस्म रमाने, जटा रखने तथा विशेष प्रकार के वस्त्र धारण करने से क्या होता है ? तीर्थों के जल मे स्नान करने से अथवा पचाग्नि मे तपने से किंवा हवन करने का भी कोई उपयोग नही है। 'रकार' और 'मकार' अर्थात् 'राम' ये दो अक्षर ही सार पदार्थ हैं। कबीर कहते हैं कि तीनो लोको में ये दो अक्षर ही प्रिय वस्तु हैं—ये ही सुन्दर एव मगलकारी है।

अलकार—(i) गोढोक्ति—रे नर आया।
(ii) वक्रोक्ति—कहा पषालै साधे।
(iii) पदमैत्री—बांधै साधै।

विशेष—(i) वाह्याचार का विरोध है।
(ii) ज्ञान-लक्षण भक्ति ही श्रेष्ठ है।
(iii) 'राम-राम' के स्मरण मे ही जीवन की सार्थकता है। तुलना कीजिए—

आखर मधुर मनोहर दोऊ। बरन बिलोचन जन जिय जोऊ।
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। लोक लाहु परलोक निबाहू।

× × ×

एकु छत्रु एकु मुकुटमनि सब बरननि पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजत दोउ।

× × ×

राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजियार। - गोस्वामी तुलसीदास

(२८०)

इहि विधि रांम सूं ल्यौ लाइ ।
चरन पाषे निरति करि, जिभ्या बिनां गुंण गाइ ॥टेक॥
जहाँ स्वांति बूंद न सीप साइर, सहजि मोती होइ ।
उन मोतियन मैं नीर पोयौ, पवन अम्बर धोइ ॥
जहाँ धरनि बरषै गगन भीजै, चन्द सूरज मेंल ।
दोइ मिलि तहाँ जुड़न लागे, करत हंसा केलि ॥
एक बिरष भीतरि नदी चाली, कनक कलस समाइ ।
पंच सुवटा आइ बैठे, उदै भई वनराइ ॥
जहाँ बिछुट्यौ तहाँ लाग्यौ, गगन बैठो जाइ ।
जन कबीर बटाऊवा जिनि मारग लियौ चाइ ॥

शब्दार्थ—ल्यौलाइ = लौ लगा । साइर= सागरा । नीर=पानी, काति । हंसा=शुद्ध बुद्ध जीवात्मा । विरष=वृक्ष । नदी = सुषुम्ना । कनक-कलश=सोने का कलशा, सहस्रार । पच सुवटा=पाच तोते (पच प्राण—प्राण, अपान, उदान, समान तथा व्यान) । वनराइ=वनराजी, विभिन्न सद्वृत्तियाँ । जन=भक्त । बटाऊवा=पार्थक । चाइ=चाव पूर्वक । मारग लीयौ=मार्ग अपना लिया है ।

सन्दर्भ—कबीरदास कायायोग की साधना का वर्णन करते हैं ।

भावार्थ—रे साधक ! तू भगवान राम मे इस प्रकार लौ लगा । उनके चरण-कमलो के समीप नृत्य कर । जीभ के बिना उनका गुण-गान कर अर्थात् मन मे उनके गुणो का स्मरण कर । जहाँ न स्वाति नक्षत्र के जल की बूँद गिरती है, न सीपी है और न सागर है, वही मोक्ष रूपी मोती सहज रूप से प्राप्त होता है । अभिप्राय यह है कि आत्म समर्पण करने पर कार्य-कारण सम्बन्धो से प्रतीत सहज अनुभूति रूप मोती प्राप्त होगा । उस मोती मे परमानन्द रूप काति समायी हुई है और प्राण रूप पवन एव ज्ञान-रूप आकाश उसे निर्मल रखते हैं । अभिप्राय यह है कि प्राण-साधना एव ज्ञानानुभूति के द्वारा उसको सम्पूर्ण विकारो से रहित बना दिया गया है ।

इस अवस्था मे कुण्डलिनी रूपी पृथ्वी से अमृत झरता है और ब्रह्मरन्ध्र रूप गगन उस अमृत का पान करता है । अभिप्राय यह है कि कुण्डली-शक्ति के जाग्रत होने पर शून्य-गगन-मडल अमृत की वर्षा से अभिसिंचित हो जाता है । इस अवस्था मे चन्द्र और सूर्य (इडा-पिंगला) नाड़ियाँ मिलकर तदाकार होने लगती हैं तथा ज्ञानी जीवात्मा आनन्दमग्न हो जाता है । इस शरीर रूपी वृक्ष मे सुपुम्ना रूपी नाडी प्रवाहित होती है और सहस्रार रूपी स्वर्ण कलश आध्यात्मिक आनन्द द्वारा आपूरित हो जाता है ।

इस अवस्था मे पचप्राण यहाँ केन्द्रित हो जाते हैं और अन्त.करण मे सद्वृत्तियो का उदय हो जाता है, मानो वनस्थली हरी-भरी हो उठी हो । (कतिपय

आलोचक 'पंच सुवटा' का अर्थ "पाच ज्ञानेन्द्रियाँ" करते हैं। तब भी इसके मूल भावार्थ मे कोई अन्तर नही पडता है। तब इसका अर्थ इस प्रकार होगा कि पाँचो इन्द्रियाँ रूपी तोते यहाँ आकर बैठ जाते हैं, अर्थात् इन्द्रियाँ बाह्य विषयो से विमुख होकर इस आनन्दानुभूति का भोग करने लगती हैं।) कबीर कहते हैं कि मेरी चेतना की अवस्थिति शून्य मे हो गई है अर्थात् आत्म चेतना का पर्यवसान विश्व-चेतना मे हो गया है। मैं जहाँ से बिछुडा था, वही आकर बैठ गया हूं अर्थात् मे अब तक भगवान (परमात्मा) से वियुक्त था, अब उसी मे समाहित (तन्मय) हो गया हूँ। यह भक्त कबीर परमपद के मार्ग का पाथिक है। उसको अपना अभीप्सित मार्ग मिल गया है और उसने उसको पूरे उत्साह के साथ अपना लिया है।

अलंकार—(i) विभावना—जिभ्या ·· गाइ, जहाँ ····होइ, पवन अबर · घोइ।

(ii) श्लेष पुष्ट रूपक—मोती।

(iii) रूपकातिशयोक्ति—पवन, अम्बर, हसा, सुवटा।

(iv) विरोधाभास— धरनि वरसै भीजै, चद सूरज मेलि,

(v) जहाँ बिछट्यो ·· लाग्यो।

विशेष—(i) रूपको तथा प्रतीको का प्रयोग है।

(ii) कुण्डलिनी शक्ति पृथ्वी से उद्भूत होती है। इसी से उसको 'धरती' कहते हैं।

(iii) इस पद मे 'उलटवासी' की पद्धति अपनाई गई है।

(iv) काया योग की सिद्धियो का वर्णन है।

(v) जहाँ ·· · लाग्यो – अद्वैतावस्था की ओर सकेत है।

(vi) निर्विकल्प समाधि का वर्णन है। इसी को भूमा का सुख भी कहा गया है।

(vii) कनक कलस—विश्व-चेतना की अवस्था की अनुभूति को ही अरविन्द ने 'स्वर्ण-वर्षा' कहा है।

(viii) पच सुवटा आई बैठे—इन्द्रियों का अन्तर्मुखी होना ज्ञान-प्राप्ति दशा का महत्त्वपूर्ण लक्षण है—

हौं अपनापौ तब जानिहौं, जब मन फिरि परि है।

तथा— सन्मुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।

—गोस्वामी तुलसीदास

(ix) कुण्डलिनी—देखें टिप्पणी पद २१९।

(x) विश्ववृक्ष—देखें टिप्पणी पद ११, १६४।

(xi) जहाँ बिछड्यो—देखें टिप्पणी पद २६।

(xii) शून्य—देखें टिप्पणी पद १६४।

(२८१)

ताथै मोहि नाचिबौ न आवै,

ऊभर था ते सूभर भरिया, त्रिष्णां गागरि फूटी ।
हरि चिंतन मेरौ मदला भींनौं, भरम भोयन गयौ छूटी ।।
ब्रह्म अगनि मै जरी जु ममिता, पाषड अरू अभिमानां ।
काम चोलनां भया पुराना मोपै होइ न आना ।।
जे बहु रूप किये ते कीये, अब बहु रूप न होई ।
थाकी सौंज संग के बिछुरे रांम नांम मसि धोई ।।
जे थे सचल अचल ह्वै थाके, करते बाद बिबादं ।
कहै कबीर मै पूरा पाया, भया रांम परसादं ।

शब्दार्थ—ऊभर=खाली । सूभर=शुभ्र । मदला=मन रूपी बाजा । भोयन=वह आटा जो ध्वनि मे ठनक उत्पन्न करने के लिए मदल पर लगाया जाता है । सौज=राज, सज्जा, भोग-सामग्री । सग=विषय विकार रूपी साथी । मसि= पापकालिमा । परसाद=कृपा ।

संदर्भ—कबीरदास ज्ञान-दशा का वर्णन करते हैं ।

भावार्थ—कबीर कहते है कि मुझ पर भगवान की कृपा हो गई है । इससे अब मुझ से ससार के भाँति-भाँति के नाच नही नाचे जाते है । मेरा जो चित्त रूपी घडा भक्ति के जल से शून्य था वह अब भक्ति के शुभ्र जल से भर गया है और मेरी तृष्णा-रूपी गगरी फूट गई है । हरि के चिन्तन के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले आनद जल से मेरा मन रूपी मदला बाजा भीग गया है और वह मन्द पड गया है । भ्रम-रूपी भोयन (आटा) से मेरे मन रूपी मदला की मुक्ति हो गई है । ज्ञान की अग्नि मे ममता, पाखण्ड और अभिमान जल गए हैं । कामवासना रूपी मेरा वस्त्र पुराना पड गया है । अब मेरे पास अन्य कोई वस्त्र नही है—अर्थात् मैं अब काम-वासना रहित हो गया हूँ । अब तक मैंने इच्छाओ के वशीभूत होकर जो अनेक जन्म धारण कर लिए सो कर लिए परन्तु अब वे रूप मैं धारण नही करूँगा । कर्म-भोग रूपी मेरी समस्त सामग्री समाप्त हो गई है और विषय-विकार रूपी साथियो से मेरा छुटकारा हो गया है तथा राम-नाम ने मेरे समस्त पूर्व कलुषो को धो दिया है । जो वासनाएँ अब तक चचल थी और आपस मे झगडती रहती थी अर्थात् जिनके कारण मेरा मन चचल बना रहता था, वे अब उदात्तीकृत हो गई हैं और निष्क्रिय हो गई हैं । कबीरदास कहते हैं कि मुझ पर राम की कृपा हो गई है और मुझे पूर्ण परम तत्त्व का साक्षात्कार प्राप्त हो गया है ।

अलंकार—(i) सभग पद यमक—ऊभर सूभर । सचल अचल ।
(ii) रूपक—त्रिष्णा गागर, भरम भायन ।
(iii) ब्रह्म अगिनि, काम चोलना ।
(iv) रूपकातिशयोक्ति—मदला, सौज ।

(v) अनुप्रास—भरम, भोयन भीनौं ।
(vi) श्लेष पुष्ट रूपक—मसि ।
(vii) विरोधाभास—अचल है याके ।

विशेष—(i) ज्ञान दशा का मार्मिक वर्णन है ।

(ii) तार्थे भरिया— समभाव देखै—
अध जल गगरी छलकत जाए ।

(iii) मन का मर्दल न बजाना और ताल न देना विविध जागतिक कार्यों के लिए उसका सहयोग न देना है । चित्त के घट का भरना सतोष से पूरित होना है । मन के मर्दल के भीगने का तात्पर्य उसका शिथिल होना है । सग के लोग विषय विकार हैं अथवा ससार के सम्बन्धी भी हो सकते हैं ।

(iv) ज्ञान और भक्ति का समन्वय ही जीवन की सार्थकता है । यही कबीर का दर्शन है । कबीर जीवन के सामान्य क्रिया कलापो के प्रति नवीन दृष्टि उत्पन्न करना ही ज्ञान-प्राप्ति का लक्षण मानते हैं ।

(v) तुलना कीजिए—

अबलौं नासानी, अब न नसैहौं ।
राम-कृपा भव-निसा सिरानी, जागे पुनि न डसैहौं ।
पायो नाम चारु चिंतामनि, उर करते न खसैहौं ।
स्यामरूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहि कसैहौं ।
परवस जानि हँस्यो इन इन्द्रिन, निज बस ह्वै न हँसैहौं ।
मन मधुकर पन कै तुलसी रघुपति-पद-कमल बसैहौं ।
(गोस्वामी तुलसीदास)

तथा— अब मैं नाच्यौ बहुत गोपाल ।
काम-क्रोध को पहिरि चोलना, कण्ठ विषय की माल ।
× × ×
सूरदास की सबै अविद्या, दूर करौ नन्दलाल ।

(२८२)

अब क्या कीजै ग्यांन बिचारा,
निज निरखत गत ब्यौहारा ।।टेक।।
जाचिग दाता इक पाया, धन दिया जाइ न खाया ।
कोई ले भरि सकै न मूका, औरनि पै जानां चूका ।।
तिस बाझ न जीव्या जाई, वो मिलै त घालै खाई ।
वो जीवन भला कहाई, बिन मूवां जीवन नांहीं ।।
घसि चदन बनखडि बारा, बिन नैननि रूप निहारा ।
तिहि पूत बाप इक जाया, बिन ठाहर नगर बसाया ।।
कहै कबीर सो पाया, प्रभु भेटत आप गंवाया ।।

शब्दार्थ—निज निरखत=आत्म ज्ञान । गत=समाप्त । मूका=मुट्ठी (मुक्का) । बाझ=बिना ।

सन्दर्भ—कबीरदास ज्ञान-बोध की चर्चा करते हैं ।

भावार्थ—अब विवेक-विचार आदि की क्या आवश्यकता है ? आत्म-स्वरूप का साक्षात्कार हो जाने पर सम्पूर्ण सासारिक व्यवहार (विधि-निषेध) समाप्त हो गए है । इस साधक रूपी याचक जीव को परमात्मा रूपी एक ऐसा दाता मिल गया है जिसका दिया हुआ ज्ञान-भक्ति रूपी धन भोग करने पर भी समाप्त नही होता है। उस धन को कोई अपनी मुट्ठी मे भी नही भर सकता है अर्थात् उसके ऊपर एकाधिकार भी नही कर सकता है तथा उस धन को प्राप्त करने के पश्चात् किसी अन्य के पास याचना करने के लिए जाने की आवश्यकता भी नही रह जाती है। अर्थात् अन्य साधनाओ को अपनाने की आवश्यकता नहीं रह जाती है। उस धन के विना जीवित नही रहा जाता है। यदि वह धन मिल जाता है तो हमारे सासारिक अस्तित्व (अहम् भाव) को मार कर समाप्त कर देता है। भक्ति पूर्ण यह जीवन ही अच्छा कहलाता है और बिना मरे इस जीवन की प्राप्ति नही होती है अर्थात् जब तक व्यक्ति का अहभाव (सासारिकता के प्रति आसक्ति) नही मर जाता है, तब तक वह भक्ति के आनद पूर्ण जीवन का अधिकारी नही बन पाता है। जब व्यक्ति भक्ति के चन्दन को घिसकर ज्ञान और वैराग्य की अग्नि प्रकट करता है और उससे विषय विकारो के जगल को जला डालता है, तब उसको साधना रूपी नेत्रो के बिना ही सहज भाव से हृदय मे भगवान का साक्षात्कार हो जाता है। वह भक्त एक उस पुत्र के समान है जो परमात्मज्ञान रूपी पिता को जन्म देता है तथा स्थान के बिना ही नगर बसा देता है अर्थात् सासारिकता मे लिप्त हुए बिना ही ससार के व्यवहार चलाता रहता है। जो जीवित रहते हुए मरना जानता है अर्थात् शरीर को रखते हुए सासारिकता (आसक्ति) का परित्याग करके ससार के लिए मृत हो जाता है, वही साधक पाँचों प्राणो द्वारा प्राप्त सामूहिक सुख का वास्तविक आनद प्राप्त करता है। कबीरदास कहते हैं कि भगवान की खोज मे मैंने अपने ससारी रूप को नष्ट करके उस परम तत्त्व को प्राप्त किया है।

अलकार—(i) वक्रोक्ति—अब ' विचारा।
(ii) विशेषोक्ति—धन खाया।
(iii) सम्बन्धातिशयोक्ति—कोई ''मूका।
(iv) विरोधाभास—तिरुवाभ ' ' खाई, बिन मूवा '' '' नाही, घसि बारा, तिहि ' जाया, जीवत ।' ' जानै तथा प्रभु भेटत'''' गवाया।
(v) विभावना—बिन '' ' ''निहारा, बिन ठाहर''''''''बसाया।

विशेष—(i) यह पद उलटवासी का है।

(ii) प्राप्त किया हुआ धन आत्मा, भूति का है। दाता आत्मा है। इस प्रकार इस पद मे विभिन्न प्रतीको का सुन्दर प्रयोग है।

(iii) भक्ति किसी सिद्धि का साधन नही है। इसी से लिखा है कि धन दिया जाहू न खाया तथा "औरनि पै जाना चूका।"

(iv) चदन को घिस डालने तथा वन खड को जला डालने का आशय उपासना के बाह्य उपकरणो को समाप्त करना भी हो सकता है।

(v) पच शैल— पच प्राण, प्राण, अपान, उदान समान और व्यान।

(vi) इस पद मे कबीरदास ने ईश्वर और जीव का तथा ज्ञान और भक्ति का अभेद व्यक्त किया है। यह भी बताया है कि भक्ति से ज्ञान-बोध का जन्म होता है।

(vii) समभाव देखिए—

जग जाँचिये कोऊ न जाँचिए जो जिय जाँचिये जानकी जानहि रे।
जेहि जाँचत जाचकता जरि जाइ जो जारति जोरि जहा नहि रे।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(२८३)

अब मै पायौ राजा रांम सनेही,
जा बिनु दुख पावै मेरी देही ॥टेक॥
वेद पुरान कहत जाकी साखी, तीरथि व्रति न छूटै जम की पासी ॥
जाथै जनम कहत नर आगै, पाप पुनि दोऊ भ्रम लागै ॥
कहै कबीर सोई तत जागा, मन भया मगन प्रेम सर लागा ॥

शब्दार्थ—पासी=पाश, बन्धन। जन्म=दिव्य जन्म।

सदर्भ—कबीर भगवत् प्रेम की प्राप्ति का वर्णन करते हैं।

भावार्थ— अब मुझे मेरे प्रेमी भगवान राम की प्राप्ति हो गई है। उनके बिना मेरा जीवन दुखी रहता था। वेद, पुराण इस बात के साक्षी हैं कि तीथ-व्रत आदि के द्वारा काल-चक्र का बन्धन नही छूट पाता है। भाव-प्रेम के द्वारा मनुष्य को दिव्य योनि प्राप्त होती है अर्थात् मुक्तावस्था प्राप्त होती है। इसके उदय हो जाने पर पाप-पुण्य दोनो ही भ्रम प्रतीत होने लगते है क्योकि ये दोनो ही बन्धन कारक हैं। कबीर कहते हैं कि मेरे मन मे तत्त्व ज्ञान जाग गया है। भगवत्प्रेम रूपी बाण मेरे हृदय मे समा गया है और मेरा मन उसी मे तन्मय हो गया है।

अलकार—रूपक—प्रेम सर।

विशेष—(i) सच्चे भगवत्प्रेम की महिमा का वर्णन है।

(ii) बाह्याचार की निरर्थकता के प्रति सकेत है। समभाव के लिए देखें—

जौं लौं मन-कामना न छूटै।
तौ कहा जोग-जग्य-ब्रत कीन्हे, बिनु कन भुस को कूटै।
कहा स्नान किये तीरथ के, अग भसम जट-जूटै।

कहा पुरान जु पढे अठारह, उरध धूम के घूटै ।
जग सोभा की सकल वड़ाई, इन ते कछु न खूटै ।
करनी और कहनी कछु औरे, मन दसहूँ दिसि टूटै ।
काम क्रोध मद लोभ सत्रु हैं, जो इतननि सों छूटै ।
सूरदास तव ही तम नासै, ग्यान-अगिनि-झर फूटै ।

—महात्मा सूरदास

(२८४)

बिरहिनी फिरै है नाथ अधीरा,
उपजि बिनां कछू समझि न परई, बांझ न जांनै पीरा ॥टेक॥
या बड़ बिथा सोई भल जांनै, रांम बिरह सर मारी ।
कैसो जांनै जिनि यहु लाई, कै जिनि चोट सहारी ॥
संग की बिछुरी मिलन न पावै सोच करै अरु काहै ।
जतन करै अरु जुगति बिचारै, रटै रांम कूं चाहै ॥
दीन भई बूझै सखियन कौं, कोई मोहि राम मिलावै ।
दास कबीर मीन ज्यूं तलपै, मिलै भलै सचुपावै ॥

शब्दार्थ—उपजि=विरह जन्य अधीरता की उत्पत्ति । बड=बडी । सहारी =सहन की । काहै=कराहती है ।

सन्दर्भ—कवीरदास की आत्मा रूपी पत्नी अपने पति राम के वियोग मे व्याकुल है ।

भावार्थ— हे नाथ ! यह विरहिणी आपके वियोग मे अधीर हुई मारी-मारी घूम रही है । जिसके हृदय मे विरह की यह पीडा उत्पन्न नही हुई है वह मेरी इस व्यथा को नही समझ सकता है । ठीक ही है, बाँझ नारी प्रसव की पीडा को नही जान सकती है । इस वडी व्यथा को वही अच्छी तरह समझ सकती है, जिसको राम के विरह का वाण लगा है । प्रेम की पीडा की अनुभूति या तो उसे होनी है जिसने यह प्रेम-पीडा को उत्पन्न किया है अथवा वह जिसने इसकी चोट को सहन किया है । हे भगवान, आपकी साथिन यह जीवात्मा आपसे बिछुड गई है और आपसे मिल नही पा रही है । इसी कारण वह चिन्तित है और कराह रही है । वह आपसे मिलने के लिए उपाय सोचती है और तरह-तरह की तरकीवो पर विचार करती है। वह निरन्तर प्रियतम राम को ही रटती रहती है और उन्ही मे पूर्णत अनुरक्त है। यह अत्यन्त दीन वनी हुई अन्य भक्त आत्माओ रूपी सखियो से मिलन का उपाय पूछती रहती है और अनुनय करती है कि मुझे कोई भी राम से मिला दे । भक्त कवीरदास कहते हैं कि यह जीवात्मा राम के वियोग मे जल से वियुक्त मछली की तरह तडपती है । उनसे मिलने पर ही इसको सच्चे सुख की प्राप्ति होगी ।

अलंकार—(i) निदर्शना—बाँझ न जानै पीरा ।
(ii) रूपक—विरहसर

(iii) उपमा— मीन ज्यू तलपै।

विशेप—इस पद मे रहस्य भावना एव भक्ति भावना का सुन्दर समन्वय है। इसमे समन्वित प्रेमानुभूति का विप्रलम्भ रूप है। समभाव के लिए देखिए—

मैं हरि बिन क्यो जिऊँ री माई।
पिव कारन बौरी भई, ज्यौं घुन काठहि खाइ।
× × ×
मीरां के प्रभु लाल गिरधर। मिलि गये सुख दाइ। —मीरावाई

(२८५)

जातनि बेद न जानैगा जन सोई,
सारा भरम न जांनै रांम कोई ॥टेक॥
चषि बिन दिवस जिसी है सञ्झा, व्यावन पीर न जांनै बझा।
सूझै करक न लागै कारी, बैद बिधाता करि मोहि सारी॥
कहै कबीर यहु दुख कासनि कहिये, अपनें तन की आप ही सहिये॥

शब्दार्थ—करक=पीडा।

सन्दर्भ—कबीर की विरहिणी आत्मा भगवत्दर्शन के लिए व्याकुल है।

भावार्थ— जिसके हृदय मे विरह की पीडा है वही भगवत्प्रेमी उसको समझ सकता है। शेष समार को भ्र. मात्र है। राम के प्रेम की अनुभूति तो किसी किसी को होती है। नेत्रहीन के लिए तो जैसा दिन है वैसी ही सध्या है अर्थात् अन्धे के लिए तो दिन-रात समान हैं। वन्ध्या नारी प्रसव की पीडा नही समझ सकती है। विरहिणी को अपनी पीडा भर दिखाई देती है और वह उसको बुरी भी नही लगती है। विरहिणी जीवात्मा कहती है कि हे भगवान रूपी वैद्य, मेरी व्यथा को ठीक कर दो तुम वैद्य बन कर आओ और दर्शन रूपी औपधि द्वारा मुझे स्वस्थ कर दो। कबीर कहते हैं कि इस प्रेम पीडा को किससे कहूँ। अपनी व्यथा स्वय ही सहनी पडती है।

अलकार— दृष्टान्त—चषि वझा।

विशेष—(i) समभाव देखिए—

घायल की गति घायल जानै और न जानै कोय।
तथा—घायल-सी घूमत फिरूँ, दरद न जाणे कोइ।
धान न भावै, नींद न आवै विरह सतावै मोइ। —मीरावाई

(ii) अपने तन को आपन सहिये। ठीक ही है—

रहिमन मन की विथा मन मे राखौ गोइ।
लोग हँसाई सव करै वांट न लेहै कोई। —रहीम

(२८६)

जन की पीर हो,
राजा रांम भल जांनै, कहूँ काहि को मांनै ॥टेक॥

नैन का दुख बैन जांनै, बैन का दुख श्रवनां ।
प्यंड का दुख प्रांन जांनै, प्रांन का दुख मरनां ॥
आस का दुख प्यासा जांनै, प्यास का दुख नीर ।
भगति का दुख रांम जांनै, कहै दास कबीर ॥

सन्दर्भ—कबीरदास की विरह-व्यथा वर्णनातीत है।

भावार्थ—भक्त के हृदय की पीडा को भगवान राम अच्छी तरह जानते हैं। उसको किससे कहूँ और उस पर कौन विश्वास करेगा ? प्रियतम को न देखने के कारण जो दुख होता है, उसका वर्णन वाणी द्वारा किया जाता है। वाणी द्वारा वर्णित दुःख को सुनकर कानो को दुख होता है अर्थात् दुख का वर्णन सुनने वाला दुखी होता है। शरीर के कष्ट को प्राण समझते है और प्राणो की व्यथा का ज्ञान मरने पर हो पाता है। आशा मे कितनी व्यथा समाई रहती है, इसका अनुभव पानी की आशा मे जीवित रहने वाला प्यासा व्यक्ति जानता है। प्यासे व्यक्ति की व्यथा को जल समझता है। कबीरदास कहते हैं कि भक्ति के कारण उत्पन्न होने वाली व्यथा का ज्ञान राम को ही है। भाव यह है कि जल ही यह जानता है कि उसके बिना उसके प्यासे को कितना कष्ट होता है। इसी प्रकार भगवान राम यह जानते हैं कि उनके प्रेमी भक्त को उनके दर्शन के अभाव मे कितनी व्यथा होती है।

अलंकार—(i) निदर्शना—नैन का दुख ' राम जानै ।
(ii) वक्रोक्ति—कहूँ काहि को मानैं ।

विशेष—(i) लाक्षणिक शैली का प्रयोग है।
(ii) रहस्य भावना की अभिव्यक्ति है।
(iii) मार्मिक व्यथा की मार्मिक व्यंजना हैं।
(iv) शब्द विधान मे प्रवाह एवं सगीतात्मकता है।

(२८७)

तुम्ह बिन रांम कवन सौं कहिये,
लागी चोट बहुत दुख सहिये ॥टेक॥
बेध्यौ जीव बिरह कै भालै, राति दिवस मेरे उर सालै ॥
को जांनैं मेरे तन की पीरा, सतगुर सबद बहि गयौ सरीरा ॥
तुम्ह से बैद न हमसे रोगी, उपजी बिथा कैसे जीवै बियोगी ॥
निस बासुरि मोहि चितवत जाई, अजहूँ न आइ मिले रांमराई ॥
कहत कबीर हमकौं दुख भारी, बिन दरसन क्यूं जीवहि मुरारी ॥

संदर्भ—कबीरदास की जीवात्मा पत्नी की विरह-व्यथा का वर्णन है।

भावार्थ—हे राम ! तुम्हारे अतिरिक्त मैं अपने मन की व्यथा किससे कहूँ ? विरह-व्यथा की चोट मुझे गहरी लगी है और उसके कारण मुझे बहुत दुःख सहन करना पड रहा है। विरह रूपी भाले ने मेरे जीवात्मा को वेध दिया है और यह व्यथा रात-दिन मेरे हृदय मे कसकती रहती है। मेरे अन्तःकरण मे जो विरह-व्यथा

है, उसको कोई नही जानता है। सद्गुरु का सदुपदेश रूपी वाण मेरे हृदय मे समा गया है। (उसी से प्रेम की यह पीडा उत्पन्न हुई है)। हे भगवान, तुम्हारे समान कोई प्रेम का उपचार करने वाला वैध नही है और मेरे समान कोई अन्य प्रेम से व्यथित रोगी नही है। मेरे मनमे उत्कट प्रेम-व्यथा उत्पन्न हो गई है। अब मैं आपके वियोग मे किस प्रकार जीवित रह सकती हूँ ? रात-दिन मुझे आप की राह देखते हुए व्यतीत होते हैं। हे राजा राम, आप अभी भी आकर मुझसे नही मिले हैं। कबीर कहते हैं कि इस विरह के कारण हमको बहुत भारी दुख है। हे मुरारी ! आपके दर्शनो के विना मैं किस प्रकार जीवित रह सकूँगा ?

अलकार—(i) रूपक—बिरह कै भालै ।
(ii) वक्रोक्ति—को जाने पीरा, बिन मुरारी ।
(iii) अनन्वय—तुमसे ····रोगी ।
(iv) गढोक्ति—उपजी······ बियोगी ।
(v) परिकराकुर—मुरारी ।

विशेष—(i) रहस्य भावना की व्यजना है।
(ii) भक्ति के विप्रलम्भ-पक्ष का मार्मिक वर्णन है।
(iii) "विरह कै भालै"—सदृश कथन पर फारसी की ऊहात्मक शैली का स्पष्ट प्रभाव है।

(२८८)

तेरा हरि नांमै जुलाहा,
मेरे रांम रमण का लाहा ॥टेक॥
दस सै सूत्र की पुरिया पूरी, चद सूर दोइ साखी ।
अनत नांव गिनि लई मजूरी, हिरदा कवल मै राखी ॥
सुरति सुमृति दोइ खूटी कीन्ही, आरंभ कीया बमेकी ।
ग्यान तत की नली भराई, बुनित आतमां पेषी ॥
अविनासी धंन लई मजूरी, पूरी थापनि पाई ।
रस बन सोधि सोधि सब आये निकटै दिया बताई ॥
मन सूधा कौ कूच कियौ है, ग्यान बिथरनीं पाई ।
जीव की गांठि गुढी सब भागी, जहां की तहां ल्यौ लाई ॥
बेठि बेगारि बुराई थाकी अनभै पद परकासा ।
दास कबीर बुनत सच पाया, दुख ससार सब नासा ॥

शब्दार्थ—राम-रमण=आत्मा मे रमना। चद सूर=इडा पिंगडा।

सन्दर्भ—कबीरदास आत्म-दर्शन का वर्णन करते हैं।

हे भगवान ! मैं तेरे नामरूपी वस्त्र के बुनने वाला जुलाहा हूँ। इस व्यवसाय मे मुझको यह लाभ है कि मुझे राम मे रमण करने का (आत्म-साक्षात्कार) का अवसर प्राप्त होता है। मैंने हज़ार सूत्रो की पुटरी भरली है अर्थात् अन्त करण की

सहस्रो भावनाएँ ही इस नाम स्मरण द्वारा आपूरित हो गई हैं। वे ही इस वस्त्र की उपादान बन गई है। सूत को उलझने से बचाने के लिए इडा और पिंगला नामक दोनो नाडियो को दो डडो (गोडो) का रूप दिया गया है। इस वस्त्र को बुनने के परिश्रमिक के रूप मे मैंने अनत नाम-स्मरण के रूप मे प्राप्त किया है, अर्थात् तुम्हारे अनत नामो को गिन कर उन्हे मैंने अपनी मजदूरी के रूप मे लिया है। इस अमूल्य निधि को मैंने अपने हृदय मे ही रखा है। हरि-स्मरण रूपी इस वस्त्र के लिए मैंने सुरति और स्मृति की दो खूटियाँ बना ली हैं। इस प्रकार विवेक-रूपी वस्त्र बुनना आरम्भ कर दिया है। मैंने ज्ञान तत्व से नली भरली है और इस प्रकार इस वस्त्र को बुनते हुए मैंने आत्मसाक्षात्कार किया है। इस बुनाई की मजदूरी मे मुझको अविनाशी भगवान की प्राप्ति रूपी धन प्राप्त हुआ है और मैं पूर्ण रूपेण आत्मस्थित हो गया हूँ। अन्य साधक इस आत्म तत्व को इधर-उधर सब जगह अनेक साधनाओ-रूपी अरण्यो और वनो मे खोजते रहो मैंने इस तत्व को निकट ही बता दिया अर्थात् मैंने उन साधको के स्वरूप मे ही इस तत्व का सहज रूप से निर्देश कर दिया। मैंने शुद्ध मन की कूची बनाई है और ज्ञान की बिथरनी (सूत को अलग सलग रखने वाला यन्त्र) पाई है और इस प्रकार जीव के मन की गाठो और ममता की घुडियाँ समाप्त हो गई है और जहाँ की तहाँ लय लग गई है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रेम की कूची से मैंने विषय वासनाओ एव वाह्याडम्बर के ऊपरी मैल को साफ किया है, तथा विवेक के द्वारा मन मे किसी प्रकार की द्विविधा उत्पन्न नही होने दी है। इस प्रकार अहकार की गाँठो और ममता के बन्धनो से मुक्त होकर जीव की लौ आत्मस्वरूप मे लग गई है। माया के फेर मे जो बैठे-ठाले के व्यर्थ के काम थे, वे भी समाप्त हो गए हैं और इस प्रकार आत्मा मे अभय पद प्रकाशित हो गया है। कबीरदास कहते हैं कि इस हरि-स्मरण रूपी वस्त्र को बुनते हुए मुझे परम सुख (परम सत्य के साक्षात्कार) की प्राप्ति हुई है और दु:ख-रूप ससार का नाश हो गया है।

अलंकार— (i) रूपकातिशयोक्ति— सम्पूर्ण पद।
(ii) साग रूपक—दस=पाई।
(iii) विरोधाभास—अनत नाउ गिनि लई।

विशेष—(i) साधना के प्रतीको का प्रयोग है।

(ii) नाम स्मरण की महिमा का निर्देश है। इसमे ज्ञान और योग दोनो का योग है। साधक कबीर का आत्म-विश्वास दृष्टव्य है।

(२८६)

भाई रे सकहु न तनि बुनि लेहु रे,
पीछै रांमहि दोस न देहुरे ।।टेक।।
करगहि एक बिनांनी ता भीतरि पंच परांनी ।।
तामै एक उदासी, तिहि तणि बुणि सबै बिनासी ।।

जे तूं चौसठि बरियां धावा, नही होइ पच सूं मिलांवा ॥
जे तैं पांसै छसै तांणी, तौ तूं सुख सूं रहै पराणी ।
पहली तणियां ताणां पीछै बुणिया बांणां ॥
तणि बुणि मुरतब कीन्हां, तब रांम राइ पूरा दीन्हां ॥
राछ भरत भई संझा, तारुणी त्रिया मन बधा ॥
कहै कबीर बिचारी, अब छोछी नली हमारी ॥

शब्दार्थ- तनि=तानकर। करगहि=शरीर रूपी करघा। बिनानी=विज्ञानी एव विवेकी। उदासी=उदासीन (प्रनिविम्बित चैतन्य से तात्पर्य है। आत्मा छसैं ताणी=छ चक्रो मे प्राण-सचार करोगे। मुरतब=मुरत्तब, तैयार। राछ=ताने का तराव उठाने गिराने का जुलाहो का औजार। सझा=सन्ध्या। तरुणी त्रिया=युवती पत्नी। छोछी=छूँछी, खाली।

सन्दर्भ—कबीरदास कायायोग के द्वारा ज्ञान-प्राप्ति का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—कबीरदास ससारी जीवो को चेतावनी देते हुए कहते है कि रे भाई, यदि कर सको तो हरि-स्मरण रूपी ताना-बाना (वस्त्र) बुन लो। बाद मे भगवान (भाग्य) को दोष मत देना इस वस्त्र को बुनने के लिए तुम्हारे पास मानव-शरीर रूपी करछा है जो विज्ञानमय एव विवेकी है। इस करछे मे पाँच प्राण (प्राण, अपान, उदान, समान एव व्यान) रूपी पाँच प्राणी हैं। इसमे एक आत्मा (प्रतिविम्वित चैतन्य) भी है, जो साक्षी स्वरूप उदासीन है। ससारी जीव ने अपने प्रकार के विषय-विकारो मे फस कर उसको नष्ट कर दिया है। अगर तुम चौसठ बार (६४ घडी) अर्थात् दिन रात भी प्राणायाम करोगे, तब भी उन पाँच प्राणो से तुम्हारा संयोग नही हो पाएगा। अगर तुम षट्चक्रो मे प्राण-सचार रूप बाना बुनोगे तो हे प्राणी! तुझको परम आनन्द की प्राप्ति होगी। (अगर तुम पाँचो प्राणो को उसी साधना की ओर उन्मुख करने रूप ताना तानोगे बाद मे मन सहित बुनोगे, तो तुम्हे परम आनन्द की प्राप्ति होगी)। यही क्रम है कि पहले ताना तनना चाहिए, बाद मे बाना। अर्थात् पहले इन्द्रियो के विषयों को वश मे करना चाहिए। बाद मे वृत्तियों को ईश्वरोन्मुख। इस प्रकार के ताने-बाने से हरि-स्मरण रूप वस्त्र बुनने पर स्वयं राम ही पूर्ण तत्व के दर्शन रूप पारिश्रमिक देंगे। सामान्य जीवों की दशा यह है कि राछ भरते-भरते ही सायकाल हो जाता है अर्थात् बुनाई से सम्बन्धित औजारो को भरने मे ही समस्त दिन व्यतीत कर देते हैं। तात्पर्य यह है कि वे पूजा-पाठ आदिक बाह्याचार मे ही पूरी आयु व्यतीत कर देते हैं। उसके बाद सायकाल होते ही उन्हे अपनी युवती पत्नी का मोह सताने लगता है, और वे सोने की तैयारी करने लगते हैं। तात्पर्य यह है कि जीवन की सध्या आजाने के पश्चात् वे मृत्यु की गोद मे सो जाते हैं। कबीरदास विचार पूर्वक कहते हैं कि हमने तो ठीक तरह से बुनकर वस्त्र पूरा कर दिया है और अब हमारी नली एक दम खाली है अर्थात् हमारे समस्त कर्म निश्शेष हो गए हैं और हमारा पुनर्जन्म नही होगा।

अलंकार—(i) रूपक—करघा रूपी शरीर।
(ii) व्यतिरेक—करगहि एक बिनानी।
(iii) पदमैत्री—तणि वुणि, तणिया ताणां बुणियाँ वाणा।
(iv) विशेषोक्ति की व्यजना—जेतू ··· मिलावा।

विशेष—(i) जुलाहे के व्यापार को लेकर साधना का रूपक बाँधा है। अपने प्रति प्रेम एव अपने धर्म के प्रति आस्था भगवत्प्राप्ति का मूल मन्त्र है। कबीर ने जुलाहा का काम करते हुए मोक्ष पद की प्राप्ति की। ठीक ही है—

श्रेयान्स्वधर्मो विगुण. परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेय परधर्मो भयावहः।
(श्रीमद्भगवद्गीता, ३/३५)

कागभुसुडि जी ने भी तो यही कहा था—

यातें यह तन मोहि प्रिय भयउ राम पद नेह।
निज प्रभु नैनन देखेउँ, गयेउ सकल संदेह।
(रामचरितमानस)

(ii) राछ भरत बधा—तुलना कीजिए—

मोहि मूढ मन वहुत विगोयो।
याके लिए सुनहु करुनामय, मै जग जनमि जनमि दुख रोयो
× × ×
डासत ही गई बीति निसा सब, कइहूँ न नाथ नींद भरि सोयो।
(गोस्वामी तुलसीदास)

(२९०)

वै क्यूं कासी तजै मुरारी,
तेरी सेवा चोर भये बनवारी ॥टेक॥
जोगी जती तपी सन्यासी, मठ देवल बसि परसै कासी॥
तीन बार जे नित प्रति न्हावै, काया भीतरि खबरि न पांवै॥
देवल देवल फेरी देहीं नांव निरंजन कबहुँ न लेहीं॥
चरन बिरद कासी कौंन देहूं, कहै कबीर भल नरकहि जैहू॥

शब्दार्थ—देवल=देवालय। अरसै=स्पर्श, उपयोग। बिरद=यश।

सन्दर्भ—कबीरदास वाह्याचारी दभियो की निंदा करते हैं।

भावार्थ—हे मुरारी, जिन लोगो ने भगवान की सेवा मे चोरी की है वे काशी को क्यो छोडने लगे? तात्पर्य यह है कि जिन्होने भगवान का नाम नही लिया है, वे काशीवास द्वारा ही अपने उद्धार की आशा कर सकते हैं। योगी, यती, तपस्वी, सन्यासी ये सब मठो और देवालयो मे रहते हुए काशी-वास का उपभोग करते हैं। वे नित्य प्रति तीन वार स्नान (गगा स्नान) करते हैं, परन्तु अन्तःकरण मे विराजमान परम तत्व की ओर ध्यान नही देते हैं। वे मदिर-मदिर घूमते फिरते

हैं, परन्तु निराकार निर्गुण ब्रह्म का नाम कभी नही लेते है। कबीर कहते हैं कि (मोक्ष की प्राप्ति तो भगवान के चरणो की कृपा से सम्भव है) भगवान के चरणों का यह यश मैं काशी को कभी नही दूँगा, चाहे मुझे नरक मे ही क्यो न जाना पड़े।

अलंकार—(1) पुनरुक्ति प्रकाश—देवल देवल।

विशेष—(1) मुक्ति का श्रेय भगवान को ही है, काशी को नही। अनन्य भक्त की भाँति कबीरदास अपने इष्टदेव की महिमा को अक्षुण्ण मानते हैं। वह तो अन्यत्र भी कह चुके है कि 'जो कासी तन तजै कबीरा, रामहिं कहा निहोरा ?"

(ii) काशी मे मृत्यु होने पर मुक्ति हो जाती है। इस रूढिबद्ध धारणा का खण्डन है।

(iii) इस पद मे मगहर के पूर्व काशी-त्याग का उनका सकल्प व्यक्त हुआ है, क्योंकि काशी-वास से मुक्ति-लाभ मे इनका विश्वास बिल्कुल नही था।

(२६१)

तब काहे भूलौ बनजारे,
अब आयौ चाहै संगि हमारे ।।टेक।।
जब हंम बनजी लौंग सुपारी, तब तुम्ह काहे बनजी खारी ।
जब हम बनजी परमल कसतूरी, तब तुम्ह काहे बनजी कूरी ।।
अमृत छाड़ि हलाहल खाया, लाभ लाभ करि मूल गँवाया ।।
कहै कबीर हम बनज्या सोई, जाथै आवागमन न होई ।।

शब्दार्थ—बनजारे=व्यापार करने वाला।

संदर्भ—कबीरदास अज्ञानी साधक को एक नादान व्यापारी के रूप मे सम्बोधित करते हैं।

भावार्थ - रे साधक रूपी व्यापारी, उस समय तो तू इधर-उधर की साधनाओं मे भटकता रहा और अब (जीवन की सन्ध्या समय) तू मेरा अनुयायी बनना चाहता है ? जब हम यम-नियम (भक्ति) रूप लौंग सुपारी का व्यापार करते थे, उस समय तुम विषय वासना रूप नमक के व्यापार मे उलझे रहे। जब हम ज्ञान और भक्ति रूप कस्तूरी एव अन्य सुगन्धित वस्तुओ का व्यापार करते थे, तब तुम व्यर्थ की साधनाओ रूप कारी जैसी घास के व्यापार मे फँसे रहे। तुमने भक्ति-रूपी अमृत छोडकर विषय-वासना रूप विष का पान किया है। तुमने अत्यधिक मुनाफे के चक्कर मे गाँठ की पूँजी भी गँवादी है अर्थात् तुमने सासारिक लाभ के लोभ मे अपने शुद्ध स्वरूप रूप मूल धन को भी खो दिया है। कबीरदास कहते हैं कि हमने तो भगवत्प्रेम रूपी उसी व्यापार को किया जिससे ससार मे आवागमन नही होता है अर्थात् जिससे फिर ससार मे जन्म नही लेना पडता है।

अलकार—(1) रूपकातिशयोक्ति—लौंग सुपारी, खारी, अमल कस्तूरी, कूरी, अमृत, हलाहल मूल।

(ii) गूढोक्ति—अब·······हमारे।

(iii) पुनरुक्ति प्रकाश—लाभ लाभ।

विशेष—(i) कबीरदास विषयासक्त व्यक्तियों को सावधान करते हैं।

(ii) कबीर की यथार्थवादी दृष्टि द्रष्टव्य है।

(२६२)

परम गुर देखो रिदै बिचारी,
कछू करो सहाइ हमारी ॥टेक॥
लावानालि तंति एक समि करि, जन्त्र एक भल साजा।
सति असति कछू नही जानू, जैसे बजावा तैसे बाजा ॥
चोर तुम्हारा तुम्हारी आग्या, मुसियत नगर तुम्हारा।
इनके गुनह हमह का पकरौ, का अपराध हमारा ॥
सेई तुम्ह सेई हम एकै कहियत, जब आपा पर नहीं जांना।
ज्यू जल मै जल पैसि न निकसै, कहै कबीर मन मांनां ॥

शब्दार्थ—रिदै=हृदय। सहाइ=सहायता। लवा=लौकी के तूबा। नालि=नली, डडा। तत=तांत, अनेक शिराएँ। एक समि=एकत्र। सत असत=सही गलत। चोर=काम क्रोधादि। मुसियत=लूटते है। सेई=वही।

सन्दर्भ—कबीरदास परमात्मा को सम्बोधित करके कहते हैं कि "जो कुछ है सब तोर।"

भावार्थ—हे परम गुरु परमात्मा, आप अपने हृदय पर हाथ रख कर विचार करो कि मेरी क्या गलती है। और मेरी कुछ सहायता करो। आपने अनेक अग रूपी तुम्बा, मेरु दण्ड रूपी नालि तथा विभिन्न शिराएँ रूपी तात एकत्र करके यह शरीर रूपी सुन्दर बाजा तैयार किया। इस शरीर रूपी बाजे से निकलने वाली ध्वनि भली है अथवा बुरी, यह मैं कुछ नही जानता हूँ। आप इसको जिस प्रकार बजाते हैं, उस प्रकार यह बजता रहता है। कहने का तात्पर्य यह है कि मैं प्रत्येक कार्य आपकी प्रेरणा से करता रहता हूँ। औचित्यानौचित्य का विचार मैं नही करता हूँ। इस शरीर मे काम क्रोधादि विकार रूप जो चोर रहते हैं, वे भी तुम्हारी ही प्रेरणा स्वरूप रहते हैं। वे तुम्हारे ही नगर रूपी इस शरीर को लूटते रहते हैं। इन चोरो के अपराध के लिए आप मुझको क्यो दण्डित करना चाहते हैं? यदि ये चोर आपकी प्रेरणा से इस नगर को नष्ट कर रहे हैं, तो इसमे मेरा क्या दोष है? जो आप हैं, वही मैं हूँ। मैं तो अपने और पराए का भेद जानता ही नही हूँ। कबीर कहते हैं कि जिस प्रकार जल मे प्रवेश करने वाला जल उसी के साथ एकाकार हो जाता है और फिर उससे पृथक नही किया जा सकता है, उसी प्रकार मैं भी आपके साथ तदाकार हो गया हूँ।

अलंकार—(i) साग रूपक—लवानालि　　बाजा।

(ii) सभग पद यमक—सत असति।

(iii) असगति की व्यजना—इनके……हमारा ।

(iv) उदाहरण—ज्यूँ… माना ।

विशेष—(i) यन्त्र शरीर है चोर पच विकार हैं। नगर शरीर या मन है।

(ii) कबीर के हृदय मे तो यह विश्वास सुदृढ जम गया है कि जो कुछ भगवान और गुरू हैं, वही हक है। जीवात्मा और परमात्मा अभिन्न है। जीवात्मा उस परम तत्त्व से कभी पृथक् नही हो सकता। कबीर कहते हैं कि हमारा जीवात्मा परम तत्त्व से पूर्णत तदाकार हो गया है। अद्वैतवाद का सुन्दर प्रतिपादन है।

(iii) जीव के निर्लिप्त भाव, अकर्तापन, समर्पण एव परम तत्त्व के विलय का सुन्दर एव भावपूर्ण चित्रण है।

(२९३)

मन रे आइर कहां गयौ,
ताथै मोहि बैराग भयौ ॥टेक॥
पंच तत ले काया कीन्हीं, तत कहा ले कीन्हां ।
करमौं के बसि जीव कहत है, जीव करम किनि दीन्हां ॥
आकास गगन पाताल गगन, दसौं दिसा गगन रहाई ले ॥
आंनद मूल सदा परसोतम, घट बिनसै गगन न जाई ले ॥
हरि मैं तन है तन मै हरि है, है सुनि नांहीं सोई ॥
कहै कबीर हरि नांम न छाड़ूं, सहजै होइ सो होई ॥

शब्दार्थ—गगन=शून्य अथवा चैतन्य ।

संदर्भ—कबीर परम तत्व की सर्वव्यापकता पर विचार करते हैं।

भावार्थ—रे मन ! तुम आकर कहाँ चले गये ? अर्थात् ईश्वरोन्मुख मन स्थिति कहाँ चली गई ? यह सोचकर कि मन अस्थिर एव चचल वस्तु है, मुझे इस मन के प्रति वैराग्य हो गया है। पच तत्वों (पृथ्वी, जल, वायु, तेज तथा आकाश) के द्वारा इस शरीर का निर्माण हुआ है। परन्तु विचारणीय यह है कि उन पच तत्वो को कहाँ से निर्मित किया गया है ? उनका मूलभूत कारण क्या है ? कहा जाता है कि जीव कर्मों के वशीभूत रहता है। परन्तु जीव को कर्मो के वशीभूत किसने किया ? आकाश के मूल मे गगन है, पाताल के मूल मे गगन है। तथा दशो दिशाओ मे भी वही गगन विराजमान है। इस प्रकार पुरुषोत्तम भगवान ही शाश्वत अनन्द के मूल स्थान है। शरीर नष्ट होता है परन्तु उसका गगन तत्व नष्ट नही होता है। शरीर भगवान मे है, एव शरीर मे भगवान व्याप्त है। शरीर है भी और नही भी है (शरीर वास्तव मे नही है।) कबीर कहते हैं कि मैं भगवान का नाम स्मरण नही छोड़ूँगा। उससे जो जैसा होगा वैसा अपने आप हो जाएगा। अर्थात् जो तत्व जैसा है वह तत्व सहज रूप मे वैसा ही है। उसका निरूपण करने मे वाणी असमर्थ है। वह सहज भाव से ही प्राप्य है।

अलंकार—(i) गूढोक्ति—पच तत्व दीन्हा ।

(ii) अनुप्रास—गगन की पुनरावृत्ति ।

विशेष—परम तत्व की अनिवर्चनीयता का सुन्दर वर्णन है । और ठीक ही है—

जो समझ में आगया वह लाइन्तहा कैसे हुआ ?
जो जहन मे आ गया, वह खुदा कैसे हुआ ?

(२९४)

हमारे कौन सहै सिरि भारा,
सिर की सोभा सिरजनहारा ।।टेक ।
टेढ़ी पाग बड जूरा, जरि भए भसम कौ कूरा ।।
अनहद की गुरी बाजी, तब काल द्रिष्टि भै भागी ।।
कहै कबीर रांम राया, हरि कै रंगि मूंड मुडाया ।।

शब्दार्थ—सिरि भारा=सिर पर बोझा । जूटा=जूडा, केश-विन्यास की पद्धति विशेष । पुरी=तन्त्री, बाजा । कालद्रिष्टि=मृत्यु । मू ड मुडाया=वलिदान होने की तैय्यारी अथवा विरक्त होना ।

सन्दर्भ—कबीर वाह्याचार का विरोध और भगवत्प्रेम का प्रतिपादन करते हैं ।

भावार्थ - मै सिर पर पगडी आदि का बोझा क्यो सहूँ, जब मेरे सिर की शोभा वह सृष्टिकर्त्ता है । भाव यह है कि पगड़ी इत्यादि धारण करके शिर को सजाना व्यथ है । शिर की शोभा तो इसी मे है कि वह भगवान के सामने झुकता रहे । सँवार कर लगाई गई तिरछी पगडी और सँवार कर वनाया हुआ बालो का जूडा, सब जल कर भस्म का ढेर हो जाते हैं । जब अनहद नाद का बाजा बजता है, तभी मृत्यु भय भागता है । कबीर कहते हैं कि मैने तो भगवान राम के प्रेम मे अनुरक्त होकर सब कुछ त्याग दिया है ।

अलकार—(i) गूढोक्ति—हमारे ' भारा ।
(ii) अनुप्रास—सिर सोभा सिरजन हारा ।

विशेष—(i) लक्षणा—सिरि भार, मू ड मुडाया ।
(ii) निर्वेद की व्यजना ।
(iii) अनहद—देखें टिप्पणी पद संख्या १५७ ।
(iv) वाह्याचार दम्भ के लक्षण है । आन्तरिक अनुभूति ही काम्य है ।

(२९५)

कारनि कौंन संवारै देहा,
यहु तनि जरि बरि ह्वै है खेहा ।।टेक।।
चोवा चंदन चरचत अंगा, सो तन जरत काठ कै संगा ।।
वहुत जतन करि देह मुद्याई, अगिन दहै कै जंवुक खाई ।।
जा सिरि रचि रचि बांधत पागा, ता सिरि चंच संवारत कागा ।।
कहि कबीर तन झूठा भाई, केवल रांम रह्यो ल्यौ लाई ।।

शब्दार्थ—खोहा=धूल। चोवा=सुगन्धित द्रव कई गध द्रव्यो को मिलाकर बनाया जाने वाला एक सुगन्धित द्रव्य। मुट्याई=पुष्ट की। जम्बुक=गीदड। चंच=चोच।

सदर्भ—कबीर ससार की असारता का प्रतिपादन करते हैं।

भावार्थ—इस शरीर का साज-शृगार किस लिए किया जाए? यह शरीर जल भुनकर राख की ढेरी हो जाएगा। जिस शरीर पर सुगन्धित द्रव्यो और चन्दन का लेप किया जाता है, वही शरीर चिता मे लकडियो के साथ जल जाता है। जिस शरीर को अनेक यत्न करके पुष्ट किया जाता है, वह शरीर अग्नि मे जल जाता है अथवा उसको गीदड खाते हैं। जिस सिर पर सजा-सजा कर पगडी बाधी जाती है, उस सिर पर कौए अपनी चोच सँवारते है (मारते हैं)। कबीर कहते हैं कि हे भाई! तब यह शरीर नाशवान और मिथ्या है। हमे केवल राम के प्रति ही अपनी लौ (अपना ध्यान) लगाना चाहिए।

अलंकार—(i) गूढोक्ति—कारन देहा।
(ii) अनुप्रास—चोवा चन्दन चरचत।
(iii) पुनरुक्ति प्रकाश—रचि रचि।

विशेष—'निर्वेद' एव वैराग्य-भाव की मार्मिक व्यजना है।

(२६६)

धन धंधा ब्यौहार सब, माया मिथ्यावाद।
पांणी नीर हलूर ज्यूं, हरि नांव बिना अपवाद ।।टेक।।
इक रांम नांम निज साचा, चित चेति चतुर घट काचा ।।
इस भरमि न भूलसि भोली, बिधना की गति है औली ।।
जीवते कूं मारन धावै, मरते कौं बेगि जिलावै ।।
जाकै हुहि जम से बैरी, सो क्यू सोवै नींद घनेरी ।।
जिहि जागत नींद उपावै, तिहि सोवत क्यूं न जगावै ।।
जलजत न देखिसि प्रानीं, सब दीसै झूठ निदानीं ।।
तन देवल ज्यू धज आछै, पड़िया पछितावै पाछै ।।
जीवत ही कछू कीजै, हरि रांम रसाइन पीजै ।।
रांम नांम निज सार है, माया लागि न खोई ।।
अति कालि सिरि पोटली, ले जात न देख्या कोई ।।
कोई ले जात न देख्या, बलि विक्रम भोज ग्रस्टा ।।
काहू कै संगि न राखी, दीसै बीसल की साखी ।।
जब हंस पवन ल्यौ खेलै पसरचौ हाटिक जब मेलै ।।
मानिख जनम अवतारा, नां ह्वै है बारबारा ।।
कबहू ह्वै किसा बिहाना, तर पंखी जेम उडानां ।।
सब आप आप कूं जाई, को काहू मिलै न भाई ।।

मूरखि मनिखा जनम गवाया, बर कौडी ज्यूं डहकाया ।।
जिहि तन धन जगत भुला ा, जग राख्यौ परहरि माया ।।
जल अजुरी जीवन जैसा, ताका है किसा भरोसा ।।
कहै कबीर जग धधा, काहे न चेतहु अधा ।।

शब्दार्थ—ब्योहार सब=समस्त क्रिया कलाप। मिथ्यावाद=नाशवान। हबूर= हिलोर, लहर। अपवाद=निंदा। घट=शरीर। काचा=कच्चा। भोली =मूर्ख जीवात्मा। औली= विचित्र, अनोखी। घनेरी=गहरी। जल जन्त=जल जन्तु, ज.ल के जीव। देवल=देवायल, मन्दिर। धज=ध्वज। हाटिक=स्वर्ण। मानिख=मनुष्य। बिहाना=छोडकर। डह ाया=खो देता है। अजुरी=अजलि। ताका=उसक। गरिहठ=सम्मानित।

सन्दर्भ—कबीर जीवन और जगत की निस्सारता का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—धन, ससार के धन्धे तथा समस्त क्रिया कलाप मायारूप और नाशवान हैं। ये सब पानी मे उठने वाली लहर के समान क्षणिक हैं। भगवान के नाम के बिना ये समस्त पदार्थ निंदा के हेतु हैं। केवल राम नाम ही मूलत सत्य है। रे चतुर, तू अपने मे विचार करके देखले। यह शरीर कच्चे घडे के समान है। रे भोली जीवात्मा ! तू इस शरीर को सब कुछ समझने की भूल मत कर। यह भ्रम है। भगवान की लीला बडी ही विचित्र है। यह जीवित को मारने के लिए उद्यत रहती है। अथवा मार देती है तथा मरते हुए को जीवन-दान कर देती है। जिस जीव का यमराज के समान शत्रु हो अर्थात् जिसके सिर पर मृत्यु सदैव नाचती रहे, वह किस प्रकार निश्चिन्त होकर सो सकता है। जो जागते हुए भी नीद उत्पन्न करता है अर्थात् ज्ञान स्वरूप होते हुए भी अज्ञान द्वारा ग्रस्त रहता है, उसको सोते हुए से क्यो न जगाया जाए ? अर्थात् अज्ञान द्वारा ग्रस्त प्राणियों को ज्ञान अवश्य दिया जाना चाहिए ! गुरुज्ञान के द्वारा मोह निद्रा मे ग्रस्त व्यक्ति ज्ञान और भक्ति की ओर अग्रसर हो सकते हैं। प्राणी जल मे छिपे हुए जन्त-जन्तुओ को नही देख पाता है और वे जन्तु इस को खा जाते है। उसी प्रकार सासारिक व्यवहार के पीछे छिपे हुए नाश को प्राणी नही देख पाता है, और अन्तत नाश होने पर ससार का मिथ्यात्व प्राणी की समझ मे आता है। यह शरीर देवालय की भाँति अपने अहकार रूप ध्वजा को फहराता रहता है। शरीर के पडने पर अर्थात् मृत्यु के समय केवल पश्चाताप मात्र ही शेष रह जाता है। अतएव व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने जीवन काल मे ही ज्ञान-भक्ति का कुछ आचरण करे। उसे राम रूपी रसायन का पान करना चाहिए। राम-नाम का स्मरण ही वास्तव मे सार तत्व है। माया मे फँस कर मनुष्य को अपना जीवन नही खोना चाहिए। सासारिक वैभव एकत्र करने वालो को हमने अन्तकाल मे उस गठरी को अपने सिर पर ले जाते हुए नही देखा है। (सबको खाली हाथ ही जाते देखा है)। बलि, विक्रमादित्य भोज जैसे सम्मानित राजाओ मे से भी किसी को इस वैभव को साथ ले जाते हुए

नही देखा। इस धन-दौलत ने किसी का भी साथ नही दिया। राजा भी इसकी साक्षी (गवाही) हैं। जब जीवात्मा प्राणायाम के द्वारा शून्य तत्व मे लौ लगा कर क्रीडा करता है, तब उसको सर्वत्र व्याप्त आनन्द रूप सुवर्ण की प्राप्ति होती है। मनुष्य का जन्म बार-बार नही मिलता है। ये जीवन क्षण भगुर है। ये प्राण किसी समय शरीर को छोडकर ऐसे चले जाएँगे जैसे वृक्ष को छोडकर पक्षी उड जाता है। ससार का प्रत्येक प्राणी अपने-अपने रास्ता अकेला ही जाना है। परलोक-गमन के मार्ग मे कोई किसी से नही मिलता है। मूर्ख जीव मनुष्य का जन्म (विषय भोग मे) व्यर्थ ही गँवा देता है और कौडी के मूल मे ही उसको खो देता है। जिस शरीर और धन के कारण ससार के लोग अपने आप को भूले हुए हैं और जगत जिसकी रक्षा मे लीन है, उसी माया का परित्याग करो। यह जीवन हाथ की अजलि मे भरे हुए पानी के समान क्षण-स्थायी है। इसका क्या भरोसा ? कबीर कहते हैं कि यह ससार व्यर्थ का प्रपच है। रे अज्ञानी जीव, तू क्यो नही चेतता है—होश मे आता है ?

अलंकार—(i) छेकानुप्रास—धन धधा, माया मिथ्यावाद।
(ii) कछू कीजै, राय रसायन, जगत जग। जल जीवन। मूरख मनिषा।
(iii) उपमा—हलूर ज्यू। जम से। देवल जूँ। पखी जेम। कौडी ज्यूँ। जाल अजुरी जैसा।
(iv) वृत्यानुप्रास—चित चेति चतुर, भरमि भूलसि भोली। पडिया पछतावै पाछै।
(vi) श्लेशपुष्ट रूपक—घट।
(vii) वक्रोक्ति—क्यूँ घनेरी। तिहि जगावै।
(viii) विरोधाभास—जगत नीद उपावै।
(ix) दृष्टान्त - जलजत " निदानी।
(x) रूपकातिशयोक्ति की व्यजना—धज। हाटिक।
(xi) रूपक—राम रसाइन।
(xii) गूढोक्ति—ताका भरोस।
(xiii) पदमैत्री—राम नाम, धधा अधा।

विशेष—(i) जीवन और जगत की असारता का प्रतिपादन है।
(ii) 'निर्वेद' की मार्मिक व्यजना है।
(iii) जीवन की क्षणिकता को व्यक्त करने के लिए जल अजुरी जीवन जैसा" बडी ही सार्थक उपमा का प्रयोग किया गया है।
(v) हस, पवन, हाटिक - नाथ सप्रदाय के प्रतीको का प्रयोग है।
(iv) मानेख जनम बारबारा—तुलना करें—

बड़े भाग मानुष तन पावा। सुरदुरलभ सद् ग्रन्थन गावा।
(गोस्वामी तुलसीदास)

(vi) वर कौड़ी····डहकाया—समभाव देखें—

रात गँवाई सोय कर, दिवस गँवायो खाय।
हीरा जनम अमोल था, कौड़ी बदले जाय।

(vii) वलि—यह एक पौराणिक पात्र है। यह एक प्रसिद्ध प्रतापी दानी राजा थे। विष्णु ने वामन अवतार धारण करके इनसे तीन पग पृथ्वी दान माँगी थी। दो पगो मे विष्णु ने समस्त पृथ्वी नाप ली थी और तीसरा पग इनके सिर पर रखा और वलि को पाताल भेज दिया। इस प्रकार इनकी दानशीलता की ओट मे विष्णु ने वलि को छला था। बलि विरोचन के पुत्र और प्रहलाद के पौत्र कहे जाते है।

(viii) राजा विक्रमादित्य, राजा भोज तथा राजा बीसलदेव ऐतिहासिक पात्र है।

विक्रम—यह एक बडे प्रतापी और प्रसिद्ध राजा हुए हैं। महाकवि कालिदास इन्ही के दरबार के नवरत्नो मे एक थे—ऐसा कहा जाता है। विक्रम सवत् के प्रस्थापक आप ही थे। आपके विषय मे 'सिहासन बत्तीसी' और अनेक दन्तकथायें प्रचलित है।

भोज—यह उज्जैन के राजा थे जिन्होने अपनी राजधानी धारा बनाई थी। इनका पालन-पोषण इनके चाचा राजा मुज द्वारा हुआ था। राजा भोज एक सुयोग्य शासक थे। वह स्वय बहुत बडे विद्वान थे और विद्वानो का आदर करते थे। उनकी राजसभा के पण्डितो की भी वहुत सी कथाएँ प्रचलित हैं।

बीसलदेव—बीसलदेव अजमेर के चौहान राजा थे। इनका नाम विग्रहराज चतुर्थ भी है। इनका समय सवत् १२२० के आसपास है।

यह बडे ही प्रतापी और वीर राजा थे। इन्होने मुसलमानो के विरुद्ध कई चढाइयाँ की थी और कई प्रदेशो को खाली कराया था। इनके वीरचरित का वहुत कुछ वर्णन इनके राजकवि सोमदेव-रचित 'ललित विग्रहराज' नाटक मे है। जिसका कुछ अश वडी-वडी शिलाओ पर खुदा मिलता है। नरपति नाल्ह ने इन्ही के चरित को लक्ष्य करके 'बीसलदेव रासो' की रचना की थी।

(२९७)

रे चित चेति च्यंति लै ताही,
जा च्यतत आपा पर नांहीं ॥टेक॥
हरि हिरदै एक ग्यांन उपाया, तार्थं छूटि गई सब माया ॥
जहां नाद न व्यंद दिवस नाहीं राती, नहीं नरनारि नही कुल जाती।
कहै कबीर सरब सुख दाता, अविगत अलख अभद विधाता ॥

शब्दार्थ—च्यति=ध्यान कर, चिन्तन कर। ताही=उसी का। आपा पर =अपना-पराया।

सन्दर्भ—कबीरदास परम तत्त्व के साक्षात्कार का वर्णन करते है।

भावार्थ—रे चित तुम सावधान होकर उस परम तत्व का ध्यान करो जिसके चिन्तन से अपने-पराए का भेद नष्ट हो जाता है। मेरे हृदय मे भगवान ने वह ज्ञान उत्पन्न कर दिया है जिससे सम्पूर्ण माया-मोह का वन्धन नष्ट हो गया है। उस परम तत्व के साक्षात्कार की अवस्था मे न नाद है, और न बिन्दु (शरीर) है। उस अवस्था मे नर, नारी, कुल एव जाति किसी प्रकार का भी भेद नही है। (वह सम अवस्था है।) कबीर कहते हैं कि उस परम तत्व का साक्षात्कार सब सुखो का देने वाला है। उस परम तत्व को ज्ञानेन्द्रियो द्वारा नही जाना जा सकता है, उसको स्थूल दृष्टि द्वारा देखा नही जा सकता है, सामान्य बुद्धि द्वारा उसका निरूपण नही किया जा सकता है क्योकि वह पूर्ण एकत्व (अभेद को प्राप्त है, और वही सबका सिरजनहार हैं।

अलंकार— अनुप्रास—चित चेति च्यति, अविगत अलख अभेद।

विशेष—(i) परम तत्व एव उसकी अनुभूति अनिर्वचनीय है।

(ii) 'परा तत्व' के साक्षात्कार की अवस्था मे नाद और बिन्दु के भी न होने की बात कह कर कबीर ने परम तत्व को 'कायायोग' द्वारा प्राप्त अवस्था से भी अतीत बता दिया है।

(२९८)

सरवर तटि हसणी तिसाई
जुगति बिनां हरि जल पियां न जाई ।।टेक।।
पीया चाहै तौ लै खग सारी, उडि न सकै दोऊ पर भारी ।।
कुंभ लीयैं ठाढी पनिहारी, गुन बिन नीर भरै कैसे नारी ।।
कहै कबीर गुर एक बुधि बताई, सहज सुभाइ मिलै राम राई ।।

शब्दार्थ—तिसाई=तृषिता, प्यासी। खग=पक्षी। हसिनी=आत्मा। जुगति युक्ति, साधना, भक्ति। पीया=पीना। सारी=गमन करने वाला। कुंभ=घडा। गुण=नाम स्मरण।

भावार्थ—आत्मानन्द रूपी तालाब के तट पर बैठी हुई जीवात्मा रूपी हसिनी प्यासी है। इसमे आश्चर्य की क्या बात है? साधना रूपी युक्ति के विना परमानन्द रूपी जल का पान सम्भव नही होता है। रे जीवात्मा रूपी हसिनी, यदि तू उस जल को पीना चाहती है, तो तू वहाँ तक गमन कर। परन्तु वस्तु स्थिति यह है द्वैत भाव एव सशय के कारण तेरे दोनो पख उडने मे असमर्थ हैं। कुण्डली रूपी पनिहारिन साधना रूपी घडा लिए खडी है, परन्तु भगवान के नाम-स्मरण रूपी रस्सी के अभाव मे वह अमृत-जल नही भर सकती है। कबीर कहते हैं कि मेरे गुरू ने इस आनन्दामृत पान की भक्ति रूपी एक युक्ति बता दी है। उसी के द्वारा भगवान राम सहज भाव से प्राप्त हो गए है।

अलकार— (i) रूपकातिशयोक्ति—सम्पूर्ण पद।
(ii) विरोधाभास—सरवर.... ससाई।

विशेष—(i) नाथ पथ के प्रतीको का प्रयोग है।

(ii) कायायोग की साधना की अपेक्षा भक्ति की श्रेष्ठता एव सुगमता का प्रतिपादन है।

(iii) कुण्डलिनी – देखें टिप्पणी पद सं० २१६।

(iv) कायायोग की साधना के लिए देखे टिप्पणी पद संख्या ४।

(२६६)

भरथरी भूप भया बैरागी।
विरह बियोग बनि बनि ढूंढै, वाकी सुरति साहिब सौं लागी ॥ टेक ॥
हसती घोड़ा गांव गढ़ गूडर, कनड़ा पा इक आगी।
जोगी हवा जांणि जग जाता, सहर उजीणीं त्यागी ॥
छत्र सिंघासण चवर ढुलंता राम रग बहु आगी।
सेज रमेणी रभा होरी, तासौं प्रीति न लागी ॥
सूर बीर गाढा पग रोप्या, इह बिधि माया त्यागी।
सब सुख छाडि भज्या इक साहिब, गुरु गोरख ल्यौ लागी ॥
मनसा बाचा हरि हरि भाखै, गंध्रप सुत बड भागी।
कहै कबीर कुदर भजि करता, अमर भए अणरागी ॥

शब्दार्थ—भूप=राजा। सुरति=लय, लगन। साहिब=स्वामी, ब्रह्म। हसती=हाथी। गूडर=गढी, छोटा किला। उजीडी=उज्जैन। गाढा = दृढ। रोप्या, लगाया। कुदर=कुदरत, ईश्वरीय शक्ति।

संदर्भ– कबीरदास राम-भजन की महिमा का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—राजा भर्तृहरि वैरागी हो गया। उसकी लगन ब्रह्म से लग गई थी और वह भगवान के वियोग मे विरह-दु.ख से पीडित होकर अपने प्रभु को वन-वन ढूँढता फिरा। हाथी, घोडा, ग्राम, किला, गढी, ऐश्वर्य आदि उपकरण उसके लिए अग्नि स्वरूप थे। समस्त ससार जानता है कि वह जोगी हो गए थे और उन्होने (अपनी राजधानी) उज्जैन नगर का त्याग कर दिया था। उनके पास छात्र, सिंहासन चारो ओर डोलते हुए चँवर आगे होते हुए अनेक प्रकार के राग रग तथा शैय्या पर रम्भा जैसी सुन्दरी रमणियाँ थी। उन सबके प्रति वह राजा आसक्त नही हुआ। उन सबके विरोध मे उस वीर शूरमा ने अपने पाँव दृढता पूर्वक जमा दिये अर्थात् उनका आकर्षण उसको टस से मस नही कर सका और इस प्रकार उसने माया (समस्त आसक्तियो) का परित्याग कर दिया। उसने समस्त सासारिक सुखो को त्याग कर एक भगवान का भजन किया और गुरु गोरखनाथ मे ही अपनी लौ लगा दी। मन और वाणी से उसने भगवान का भजन किया। वह गंधर्व सुत बडा ही भाग्यशाली था कवीर कहते है कि वह ईश्वर के प्रति अनुरक्त राजा ईश्वरीय शक्ति का स्मरण करते हुए अमर पद को प्राप्त हुआ।

अलकार—(i) अनुप्रास– भरथरी, भूप भया, बिरह वियोग बनि बनि वाकी, गाँव, गढ, गूडर ।

(ii) पुनरुक्ति प्रकाश—बनि बनि, हरि हरि ।

(iii) रूपक—रमैणी रभा ।

विशेष—(i) राम भक्ति के प्रति आस्था स्पष्ट है ।

(ii) कबीर पौराणिक आख्यानो के महत्व को स्वीकार करते हैं ।

(iii) भरथरी – यह उज्जैन के राजा थे जिन्हे अपनी रानी पिंगला का चरित्र देखकर वैराग्य उत्पन्न हो गया था । अतएव यह अपना सब राज-पाट अपने भाई विक्रमादित्य को देकर योगी हो गए थे । यह बडे ही विद्वान थे । इनके द्वारा लिखे हुए तीन शतक-शृगार शतक, नीति शतक एव वैराग्य शतक—बहुत प्रसिद्ध हैं।

(iv) गोरखनाथ—यह नाथ सम्प्रदाय के प्रवर्तक एव नौ नाथो मे सर्वप्रथम माने जाते हैं । कबीर ने अनेक स्थलो पर इनको सद्गुरु के रूप मे इनका उल्लेख किया है । कहते हैं कि इन्होने अपने गुरु मत्स्येन्द्रनाथ का उद्धार किया था । कहा भी जाता है—"जाग मच्छेन्द्र गोरख आया ।"

गोरखनाथ के समय के सम्बन्ध मे विद्वानो मे मतभेद है । उनका समय विक्रम की १० वी और १३ वी शताब्दी के बीच माना जाता है ।

राग केदारो

(३००)

सार सुख पाइये रे,
रगि रमहु आत्मांरांम ।। टेक ।।
बनह बसे का कीजिये, जे मन नही तजै बिकार ।
घर बन तत समि जिनि किया, ते बिरला संसार ।।
का जटा भसम लेपन कियें, कहा गुफत मै बास ।
मन जीत्यां जग जीतिये, जौ विषया रहै उदास ।।
सहज भाइ जे उपजै, ताक किसा मांन अभिमान ।
आपा पर समि चीनियै, तब मिलै आतमांरांम ।।
कहै कबीर कृपा भई, गुर ग्यांन कह्या समझाइ ।
हिरदै श्री हरि भेटियै, जे मन अनतै नहीं जाइ ।।

शब्दार्थ—सार - सच्चा । तत = इसलिए । समि = समाना विषया = विषयो के प्रति ।

सदर्भ - कबीरदास अ त. साधना का प्रतिपादन करते हैं ।

भावार्थ—रे जीव, अपने आत्माराम के प्रेम मे रग कर उसी मे रम जाओ और इस प्रकार वास्तविक सुख की प्राप्ति करो । अगर मन के विकार (काम, क्रोध, लोभ मोह एव मत्सर) नही छूटते हैं, तो सन्यासी बन कर वन मे जाकर रहने से

क्या लाभ हो सकता है ? ऐसे व्यक्ति समार मे बहुत थोडे ही है जिन्होने सच्ची साधना की दृष्टि से घर को ही वन के समान कर लिया है। जटा रखने, भस्म रमाने अथवा गुफा मे वास करने से कोई लाभ नही होता है। यदि विषयो के प्रति उदास रह कर मन को जीत लिया जाए, तो ससार को जीत लिया जाता है। जिसके हृदय मे भगवान के प्रति स्वाभाविक प्रेमानुभूति उत्पन्न हो जाती है अथवा सहज की अनुभूति जाग जाती है, वे मानापमान के परे हो जाते हैं—उनको न किसी प्रकार का अहकार रह जाता है और न उन्हे किसी प्रकार के मान-मर्यादा की इच्छा शेष रह जाती है। जब व्यक्ति अपने और पराए को समान समझने लगता है, तभी उसे आत्म-स्वरूप का साक्षात्कार होता है—अर्थात् समबुद्धि के द्वारा ही आत्मदर्शन सम्भव है। कबीर कहते हैं कि हमारे ऊपर तो गुरू की कृपा हो गई है। उन्होने हमे आत्म-ज्ञान समझा दिया है। अगर मन इधर-उधर न भटके तो हृदय मे ही भगवान के दर्शन हो जाते हैं।

अलंकार—(i) वक्रोक्ति—का······ बास।
(ii) अनुप्रास—जीत्या जग जीतिये।
(iii) सभग पद यमक—भाव अभिमान।

विशेष—औपनिषदिक ज्ञान का प्रभाव स्पष्ट है। उपनिषद् और गीता मे अनेक स्थानो पर समबुद्धि का प्रतिपादन किया गया है तथा मानापमान रहित होना सफल साधक का लक्षण बताया गया है। यथा – देखे श्रीमद्भगवद्गीता के ये वचन—

दु खेदवनुद्विग्नमना सुखेषु विगतस्पृह ।
वीतराग भयक्रोध स्थितधीर्मुनिरुच्यते । (७/५६)
तथा— निर्ममो निरहंकार. स शान्तिमधिगच्छति । (२/७१)
तथा— "आत्मवत् सर्वभूतेषु य पश्यति स पश्यति।"
—श्रीमद्भगवद्गीता

(३०१)

है हरि भजन कौ प्रवांन।
नींच पांवै ऊंच पदवी, बाजते नींसान॥ टेक॥
भजन कौ प्रताप ऐसो, तिरे जल पाषान।
अधम भील अजाति गनिका, चढ़े जात बिवांन।
नव लख तारा चलै मंडल, चलै ससिहर भांन।
दास धूकौं अटल पदवी, रांम को दीवांन॥
निगम जाकी साखि बोलै, कहै संत सुजांन।
जन कबीर तेरी सरनि आयौ राखि लेहु भगवांन॥

शब्दार्थ—प्रवान=प्रमाण। नीसान=निशान, डंका। पाषान=पत्थर धू=ध्रुव। दीवान=शाहीदरबार, प्रधानमत्री।

संदर्भ– कबीरदास भगवद्भजन के प्रभाव का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—यह हरि के भजन के कल्याणकारी प्रभाव का प्रमाण है कि नीच व्यक्ति भी डके की चोट उच्च पद को प्राप्त हो जाता है। भगवान के भजन का ऐसा प्रभाव है कि पत्थर भी पानी मे तैरने लगते है। अधम भील (गुह निषाद, शबरी) एव निम्न जाति की वेश्या भी विमान पर बैठकर वैकुण्ठ चले गये। नौ लाख तारो का समूह, चन्द्रमा और सूर्य सब निरन्तर गतिशील बने हुए हैं, पर भक्त ध्रुव की पदवी अटल है—ध्रुवतारा अपने स्थान पर स्थिर बना रहता है, उसको अन्यान्य ग्रह नक्षत्रो की भाँति भ्रमित नही होना पडता है। वह भगवान राम के दरबार मे उच्च आसन पर प्रतिष्ठित है। उसकी भक्ति की साक्षी वेद देते हैं तथा सत एव ज्ञानी सब उसका गुणगान करते हैं। कबीर कहते हैं कि हे भगवान, यह दास आपकी शरण मे आया है। उसको अपने चरणो मे स्थान दे दीजिए।

अलकार— विरोधाभास— नीच पदवी।

विशेष—(i) **भील**— केवट, गुह और निषाद एक ही व्यक्ति हैं। यह जाति का भील था। वनवास के समय इसने राम की बहुत सेवा की थी। उसके प्रेमपूर्ण व्यवहार से प्रभावित होकर राम उसे भाई के समान मानने लगे थे।

(iii) **गणिका**— यह पिंगला नाम की वेश्या थी। एक बार वह शृंगार किए हुए आधी रात तक अपने प्रेमी की प्रतीक्षा करती रही, परन्तु वह नही आया। इससे उसके ऊपर बहुत गहरा प्रभाव पडा। उसको बडी आत्मग्लानि हुई। उसने वेश्यावृत्ति छोड दी, और वह भगवान का भजन करने लगी। कहते हैं कि एक बार तोते को 'राम' पढाते हुए उसको भगवान ने स्वर्ग भेज दिया था।

अजाति—अनेक ऐसे भक्त हो गए है जिनका जन्म निम्न जाति अथवा मूढ योनि मे हुआ था, परन्तु भजन के प्रभाव से वे स्वर्ग के अधिकारी हुए। इनमे कतिपय नाम अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। यथा—कुब्जा, जटायु, जामवन्त, वाल्मीकि।

ध्रुव—राजा उत्तानपाद के दो रानियाँ थी—सुनीति और सुरुचि। सुनीति के ध्रुव और सुरुचि से उत्तम नामक पुत्र उत्पन्न हुए। राजा सुरुचि को अधिक प्यार करते थे। इस कारण उनको उत्तम भी अधिक प्रिय था। एक दिन राजा उत्तानपाद उत्तम को गोद मे खिला रहे थे। उसी समय ध्रुव भी वहाँ पहुँच गया और राजा की गोद मे चढने का प्रयत्न करने लगा। यह देखकर सुरुचि ने व्यंग्य किया कि तप करने पर ही राजा की गोद मे बैठने का सौभाग्य प्राप्त होता है। यह कहते हुए उसने ध्रुव को एक ओर धकेल दिया। ध्रुव रोता हुआ अपनी माता के पास पहुँचा और रोते हुए उसने अपने अपमान का हाल अपनी माता को सुनाया। माता ने भी उसको तप करके उच्च आसन प्राप्त करने की सलाह दी। ध्रुव ने कठोर तप करके भगवान के दर्शन किए और अटल पद प्राप्त किया।

तिरे जल पाषान— नील और नल दोनो वानर भाइयो को यह वरदान था कि उनके द्वारा स्पर्श किया हुआ पत्थर डूबेगा नही। इन्ही दोनो ने लका पर

चढाई के समय सागर पार करने के लिए सेतु बाँधा था। यह राम की कृपा द्वारा ही सम्भव हो सका था।

(iii) यह पद ज्यो का त्यो सूरसागर मे भी मिलता है। अन्तर केवल 'कबीर' और 'सूर' का है। कबीर ने लिखा है कि 'जन कबीर तेरी सरनि आयो', और सूर लिखते हैं कि, "सूर हरि को सरन आयो।" देखिए—

हे हरि भजन को परवान।
नीच पावै ऊँच पदवी बाजते निशान।
भजन को परताप ऐसे जन तरै पाषान।
अजामिल और भील गणिका चढ़े जात विमान।
चलत तारे सकल मण्डल चलत शशि अरु भान।
भक्त ध्रुव को अटल पदवी राम के दीवान।
निगम जाको सुयश गावत सुनत संत सुजान।
सूर हरि को शरण आयो राखि ले भगवान।

(सूरसगतिसार – पद ८०)

(३८२)

चलौ सखी जाइये तहां,
जहां गय पांइयै परमांनद। टेक॥
यहु मन आमन धूमनां, मेरो तन छीजत नित जाइ।
च्यंतामणि चित चोरियौ, ताथै कछू न सुहाइ॥
सु नि सखी सुपनें की गति ऐसी, हरि आए हम पास।
सोवत ही जगाइया, जागत भए उदास॥
चलु सखी विलम न कीजिये, जब लग सास सरीर।
मिलि रहिये जगनाथ सू, यूं कहै दास कबीर।

शब्दार्थ—आमन=आने=जाने। घूमना=घूमने वाला। छीजै=क्षीण होता है।

सन्दर्भ—कबीरदास मन को भगवद् प्रेम के लिए प्रेरित करते हैं।

भावार्थ—हे जीवात्मा (सखि)। इस ससार को छोडकर वहाँ चलो जहाँ परमानन्द की प्राप्ति होती है। यह मेरा मन तो अत्यन्त चचल है – यह निरतन्र आने जाने वाला और घूमने वाला है (कभी अनुकूल रहता है और कभी प्रतिकूल हो जाता है)। और यह शरीर निरन्तर क्षीण होता जाता है। चिंतामणि स्वरूप भगवान ने मेरा मन चुरा लिया है। इस कारण मुझको ससार की कोई वस्तु अच्छी नहीं लगती है। रे सखि! सुन, स्वप्न मे कुछ ऐसा हुआ कि भगवान मेरे पास आए और उन्होंने मुझको सोते से जगा लिया। परन्तु जगते ही मेरा मन उदास हो गया। रे सखि, जब तक इस ससार मे प्राण हैं, तब तक जल्दी से यह काम कर

लो। देर मत करो। भगवान से मिलने के लिए चल पडो। कबीर कहते है कि प्राण रहते हुए जल्दी ही भगवान के साथ तदाकार होने का प्रयत्न करना चाहिए।

अलंकार—रूपकातिशयोक्ति 'सखि, च्यतामणि।

विशेष—(i) सोवत " उदास—इस स्वप्नवत् जगत मे अचानक भगवत्प्रेम जाग गया और ऐसा प्रतीत हुआ कि पति रूप भगवान मेरे समीप ही आ गए थे। भगवान के इस प्रकार आगमन से अज्ञान की निद्रा समाप्त हो गई। यह बोध हुआ कि मैं भगवान से बिछुड कर व्यर्थ ही इतने दिनों से भटक रही थी। इस आत्मग्लानि के कारण मन का उदास हो जाना स्वाभाविक ही है। अथवा यह कहिए कि आत्मबोध के फलस्वरूप मेरा मन ससार के प्रति उदासीन हो गया।

(ii) स्वप्न और जागरण के रूपक मे कवि ने लौकिक स्तर के दाम्पत्य प्रेम के बिम्बो द्वारा अलौकिक एव रहस्यवादी प्रेम तथा ज्ञान एव भक्ति की समन्वित हृदय स्पर्शी एव सशक्त व्यजना की है।

(iii) समभाव देखें—

चकई री ! चलि चरन-सरोवर जहाँ नहिं प्रेम वियोग।
निसि दिन राम नाम को भक्ती भय रुज नहि दुख सोग।

तथा — सुवा चलिवा वन को रस पीजै।
जा वन राम नाम अमृत रस श्रवण पाय भरि लीजै। (सूरदास)

(iv) सोवत • उदास—इसी कोटि के लौकिक दाम्पत्य प्रेम की अभिव्यक्ति देखिए—

हौं सपनें गई देखन कौं, कहू नाचत नद-जसोमति को नट।
वा मुसकाय कै भाव बताय कै, मेरोई खैचि खरो पकरो पट।
तौ लगि गाइ बगाइ उठी, कहि देव, वधूनि, मथ्यौ दधि को मट।
जागि परी तौन कान्ह कहूँ, न कदब, न कुंज, न कालिन्दी को तट। (देव)

(३०२)

मेरे तन मन लागी चोट सठौरी ॥
बिसरे ग्यान बुधि सब नाठी, भई बिकल मति बौरी ॥ टेक ॥
देह बदेह गलित गुन तीनूं, अचत अचल भइ ठौरी ।
इत उत जित कित द्वादस चितवत, यहु भई गुपत ठगौरी ॥
सोई पै जांनै पीर हमारी, जिहि सरीर यहु ब्यौरी ।
जन कबीर ठग ठग्यौ है बापुरौ, सुंनि समानी त्यौरी ॥

शब्दार्थ—सठौरी=सही स्थान, मर्म। ज्ञान=सामान्य ज्ञान। नाठी=नष्ट हो गई। ठगौरी=जादू। ब्यौरी=विवृत, व्यक्त। सुनि=शून्य। त्यौरी=त्रिकुटी।

सन्दर्भ—कबीरदास ज्ञान दशा का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—मेरे शरीर और मन पर (गुरु उपदेश एव प्रभु की) चोट ठीक

स्थान (मर्म) पर लगी है। इससे मेरी समस्त लौकिक ज्ञान, एव विवेक नष्ट हो गए हैं और मेरे बुद्धि प्रभु के विरह मे व्याकुल होकर पागल हो गई है। मेरी देह विदेह हो गई है अर्थात् इस शरीर एव उसके सुखो के प्रति मेरी आसक्ति समाप्त हो गई है और तीनो गुण समाप्त हो गए हैं। जो अवयव चल रहे थे, वे जहाँ के तहाँ स्थिर हो गए हैं अर्थात् मेरे शरीरांगो ने कार्य करना बन्द कर दिया है। शरीर के बारह अगो की क्रियाएँ अस्त-व्यस्त हो गई हैं। इस गुप्त मार्मिक चोट ने जादू का काम किया है। हमारी व्यथा को वही समझ सकता है जिसके शरीर मे यह पीडा व्यक्त हुई हो अर्थात् जिसको यह व्यथा भोगनी पड़ी हो। कबीरदास कहते हैं कि मैं भक्त तो प्रभु प्रेम के जादू रूपी ठग द्वारा ठग लिया गया हूँ और मेरी त्रिकुटी शून्य मे लग गई है, अर्थात् मेरी समस्त चित्तवृत्तिया अन्तर्मुखी हो गई हैं।

अलंकार—(i) सभग पद यमक—देह वदेह।
(ii) विरोधाभास—चलत अचल भई।
(iii) पदमैत्री इत उत जित कित।
(iv) रूपक – ठग।

विशेष – (i) बारह अग पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, मन एव बुद्धि।

(ii) तीन गुण—सत्त्व गुण, रजोगुण तथा तमोगुण।
(iii) त्रिकुटी—देखे टिप्पणी पद स० ३, ४, ७।
(iv) शून्य—देखें टिप्पणी पद स० १६४।
(v) सोई वै—व्यौरी "जागे लगे सोई जाने विथा" अथवा दरद न जानै जाके फटी विवाई ना।

(vi) सोई व्यौरी ईश्वर प्रेम एव ज्ञान की दशा मे अवधूत व्यक्ति की सासारिक विपयो के प्रति आसक्ति नही रह जाती है। इससे वह ससार के व्यवहार मे पटु न रहकर पागल एव मूर्ख प्रतीत होते हैं।

(३०४)

मेरी अंखियां जान सुजांन भई।
देवर भरम सुसर संग तजि करि हरि पीव तहां गई॥ टेक॥
बालपनें के करम हमारे, काटे जानि दई।
बांह पकरि करि कृपा कीन्ही, आप समीप लई॥
पानीं की बूंद थें जिनि प्यड साज्या, ता सगि अधिक करई।
दास कबीर पल प्रेम न घटई, दिन दिन प्रीति नई॥

शब्दार्थ—जानि=जानबूझ कर। दई=भगवान। प्यड=शरीर। साजा=बनाया।

सन्दर्भ—कबीर ज्ञान दशा का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—भगवान के प्रेम मे अनुरक्त जीवात्मा कहती है कि प्रभु-दर्शन

के प्रभाव से मेरी दृष्टि अब विवेक पूर्ण एव सुविज्ञ हो गई है। अर्थात् अब मैं अपने-पराए को पहिचानने लगी हूँ। मैं भ्रम रूपी देवर और अज्ञान रूपी श्वसुर का साथ छोड़कर अपने पति भगवान के पास पहुँच गई हूँ। बाल्यावस्था मे अथवा अज्ञानावस्था मे किए हुए मेरे कर्मों के दोषो को भगवान ने जानबूझ कर समाप्त कर दिया है। उन्होने मेरे ऊपर कृपा की और मेरी बाँह पकड कर अपने पास स्थान दे दिया है। जिस भगवान ने पानी की एक बूँद (वीर्य) द्वारा मेरे इस शरीर का निर्माण किया, उन्ही भगवान के साथ मै अब रमण करने लगी हूँ। दास कबीर कहते हैं कि भगवान के प्रति मेरा प्रेम एक क्षण के लिए भी कम नही होता है। उसके प्रति मेरी प्रीति दिन प्रतिदिन नवीन ही बनी हुई है। अर्थात् उसमे मुझको नित्य नए आनन्द की प्राप्ति होती है।

अलंकार— (i) रूपक—देवर भरम।
(ii) पुनरुक्ति प्रकाश—दिन दिन।

विशेष (i) रहस्यबादी शैली पर दाम्पत्य प्रेम का सुन्दर चित्रण है।
(ii) प्रेम भक्ति एव ज्ञान दशा का मार्मिक वर्णन है।
(iii) नाथ सम्प्रदाय के प्रतीको का प्रयोग है।
(iv) भगवान की कृपा का उल्लेख 'पुष्टि भक्ति' के प्रभाव का व्यजक है।

(३०५)

हो बलिया कब देखोंगी तोहि।
अह निस आतुर दरसन कारनि, ऐसी व्यापै मोहि ।। टेक ।।
नैन हमारे तुम्ह कू चांहैं, रती न मानै हारि।
बिरह अगिन तन अधिक जरावै ऐसी लेहु बिचारि ।।
सुनहुं हमारी दादि गुसाई,, अब जिन करहु बधीर।
तुम्ह धीरज मै आतुर स्वामीं काचै भांडै नीर ।।
बहुत दिनन कै बिछुरे माधौ, मन नहीं बांधै धीर।
देह छतां तुम्ह मिलहु कृपा करि आरतिवत कबीर ।।

शब्दार्थ—दादि=दाद, विनती। बधीर=बधिरता, अनसुनी। भाडै=बर्तन। छता=अछत, रहते हुए। आरतिवत=दुखी।

सन्दर्भ—कबीर की जीवात्मा प्रभु-दर्शन के लिए अपनी आतुरता व्यक्त करती है।

भावार्थ—हे भगवान! मैं आपकी बलिहारी जाती हूँ। मैं आपके दर्शन कब कर सकूगी? आपकी विरह मे वियोग व्यथा मुझे इतना सता रही है कि तुम्हारे दर्शनो के लिए मैं दिन-रात व्याकुल रहती हूँ। मेरे नेत्र केवल तुम्हे ही देखना चाहते हैं और इसमे वे रत्ती भर भी पीछे हटने को तैय्यार नही हैं। विरहाग्नि मेरे शरीर को बहुत जलाती है। इस बात पर आप विचार करलें (कही ऐसा न हो कि मैं इसके कारण जल कर मर जाऊँ और आपको दर्शन न देने का पछतावा

हो) । हे स्वामी, हमारी विनती सुन लीजिए तथा अब अधिक अनसुनी मत कीजिए। हे भगवान ! आप तो धैर्य-स्वरूप है परन्तु मैं आतुर हू—दर्शन करने के लिए उतावली हो रही हूँ। मेरे प्राण इस शरीर के बाहर चाहे जब निकल सकते हैं जिस प्रकार कच्चा घडा चाहे जब फूट सकता है और उसमे भरा हुआ पानी बाहर निकल सकता है। हे माधव, तुम मुझसे बहुत दिनो के बिछुडे हुए हो, अर्थात् मे तुमसे अनेक जन्मो पूर्व बिछुडी थी। अब मेरा मन अधिक धैर्य धारण नही कर सकता है। कबीरदास की जीवात्मा कहती है कि मैं बहुत ही दुःखी हूँ। आप शरीर मे प्राण रहते हुए मुझसे मिलने की कृपा करे—अर्थात् इस जीवन मे ही मेरा उद्धार करने की कृपा करे।

अलंकार—(i) गूढोक्ति" हो तोहि।

(ii) रूपक—विरह अगिन।

(iii) उपमा काचैं भाडैं नीर।

विशेष—(i) भगवत्प्रेम का बिम्ब-विधायक एव मर्म स्पर्शी वर्णन है।

(ii) इसमे सूफी शैली की दाम्पत्य प्रेम परक विरह-व्यथा की तीव्रता की सफल अभिव्यक्ति हुई है।

(iii) मिलन की आतुरता कबीर ने कई स्थानो पर व्यजित की है। 'कबीर' शरीर रहते ही भगवान के दर्शन की इच्छा करते हैं। इसका अर्थ है कि वह मोक्ष की इच्छा न करके जीवन मुक्त होना चाहते हैं। यह आकाक्षा सगुण भक्तो जैसी है।

(३०६)

वै दिन कब आवैंगे माइ।
जा कारनि हम देह धरी है, मिलिवो अंगि लगाइ ॥ टेक ॥
हौं जांनूं जे हिल मिलि खेलूं, तन मन प्रांन समाइ।
या कांमनां करौ परपूरन, समरथ हौ रांम राइ ॥
मांहि उदासी माधौ चाहै, चिपबत रैंनि बिहाइ।
सेज हमारी स्यघ भई है, जब सोऊ तब खाइ ॥
यहु अरदास दास की सुंनिये, तन की तपनि बुझाइ।
कहै कबीर मिलै जे सांई मिलि करि मगल गाइ ॥

शब्दार्थ—स्यघ = सिंह, बाघ। अरदासि = अर्जी, प्रार्थना।

सन्दर्भ—कबीर की प्रभु-मिलन की आतुरता का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—री सखि ! वह दिन कब आएगा जब मैं इस शरीर धारण करने के उद्देश्य को पूरा कर सकूँगी ? जिस भगवान की प्राप्ति के लिए यह मानव शरीर मिला है, उससे अग से अग मिलाकर कब मिलना हो सकेगा ? मेरे मन की यह तीव्र आकाक्षा है कि मैं अपने पति भगवान के साथ हिल-मिल कर खेलू और अपने तन, मन प्राण को पति रूप परमेश्वर मे समाहित कर दू ! हे स्वामी राम ! आप सब तरह समर्थ हो। मेरी मनोकामना को पूर्ण कर दो। मैं इतने दिनो तक

आपसे न मिल सकने के कारण मेरा मन एक दम गिर गया है। इस उदासी को दूर करने के लिए मैं अपने पति माधव का सान्निध्य चाहती हू । उनकी बाट देखते हुए मैं सारी रात व्यतीत हो जाती है। मेरी शय्या तो बाघ की तरह प्रतीत होती है। जब भी उस पर लेटना चाहती हूँ, तब ही वह मुझको काट लेने को दौडती है। हे भगवान, इस दासी की प्रार्थना सुन लीजिए और विरहाग्नि मे उत्पन्न इस शरीर की जलन को शात कर दीजिए। कबीर कहते है कि अगर मुझे स्वामी राम मिल जाएँ, तो मैं उनके साथ मिलकर मगल के गीत गाऊँ।

अलंकार—(i) पदमैत्री—हिल मिल। तन मन प्रान।

(ii) रूपक—स्यघ भई है।

विशेष– (i) प्रभु के प्रति दाम्पत्य प्रेम परक विरह-व्यथा का मार्मिक वर्णन है।

(ii) सूफियो की शैली पर जीवात्मा के विरह की व्यजना है।

(iii) इस पद मे भक्त कवियो की पद्धति पर 'मनोराज्य' की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। यथा--

मैं हरि बिन क्यो जिऊँ री माइ।

× × ×

पिय ढूँढन बन-बन गयी, कहूँ मुरली धुनि आइ।
मीराँ के प्रभु लाल गिरधर! मिलि गये सुखदाइ।

तथा— **नन्हीं नन्हीं बूंदन मेहा बरसै, शीतल पवन सुहावन की।**
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, आनन्द-मगल गावन की। (मीराबाई)

(iv) जीवात्मा का ब्रह्म से तदाकार हो जाना ज्ञानमार्गियो के निकट परम पुरुषार्थ है। परन्तु भक्त और रहस्यवादी का दृष्टिकोण थोडा सा भिन्नता के लिए रहता है। वह ब्रह्म के साक्षात्कार से उत्पन्न रागात्मक अनुभूति मे तन्मय होना चाहता है। कबीर के इस पद मे ज्ञान, भक्ति और रहस्य भावना तीनो का समन्वय दिखाई देता है। इस त्रिवेणी का सस्पर्श ही ज्ञानी भक्त कबीर का सर्वस्व है। दाम्पत्य भाव का रूपक इस अनुभूति को व्यक्त करने का सबसे अधिक सफल एव सशक्त माध्यम है। कबीर ने इसी पद्धति का अवलम्बन किया है।

(v) प्राण समाई—पति परमेश्वर के विभिन्न गुणो मे तन्मय होकर रसास्वादन करने की व्यजना है।

(vi) रैन विहाई—'रैन' का अर्थ यदि मोह-निद्रा हो, तो इसके द्वारा अज्ञान मय जीवन की सुन्दर व्यजना हुई है। कही अज्ञान निद्रा फिर से सताने लगे—इसी कारण कबीर ने 'चितवत् रैन विहाइ'- वाली बात कही है। यथा—

मै बिरहिणी बैठी जागूँ जागत सब सोवै री आली।

× × × ×

तारा गिण-गिण रैन बिहागी सुख की घड़ी कब आवै।

मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, मिलि कै विछुणि न जावै ।
(मीरावाई)

(vii) सेज ···तब खाई—यह लौकिक बिम्ब-विधान द्रष्टव्य है । शय्या माया रूप है ।

(viii) या " ···राम राई—लौकिक प्रेम के प्रतीको के माध्यम से आध्यात्मिक विप्रलम्भ का वर्णन है ।

(३०७)

बालम आव हमारे ग्रेह रे,
तुम्ह बिन दुखिया देह रे ।। टेक ।।
सब को कहै तुम्हारी नारी, मोकौं इहै अदेह रे ।
एकमेक ह्वै सेज न सोवै तब लग कैसा नेह रे ।।
आन न भावै नींद न आवै, ग्रिह बन धरै न धीर रे ।
ज्यूं कांमीं कौं काम पियारा, ज्यूं प्यासे कूं नीर रे ।।
है कोई ऐसा परउपगारी, हरि सूं कहै सुनाइ रे ।
ऐसे हाल कबीर भये हैं, बिन देखे जीव जाइ रे ।।

शब्दार्थ—अदेह=अदेशा, दुख, अथवा संदेह । आन=अन्न ।

सदर्भ—कबीरदास प्रेमी भक्त की विरह व्यथा का वर्णन करते हैं ।

भावार्थ—जीवात्मा वियोगिनी पत्नी के रूप मे अपने पति भगवान को बुलाती हुई कहती है कि, हे प्राण वल्लभ, तुम हमारे घर आओ । तुम्हारे वियोग मे यह शरीर अत्यन्त दुखी है । सब लोग मुझे तुम्हारी पत्नी कहते हैं और आप मुझे दर्शन तक नही देते है । मुझे इसी बात का बहुत दुख है । अथवा मुझको इनके इस कथन पर विश्वास नही होता है, क्योकि जब तक मैं तुम्हारे साथ आलिंगन मे आबद्ध होकर एक ही चारपाई पर न सोऊँ, तब तक कैसे विश्वास किया जाए कि हमारे बीच मे दाम्पत्य-सम्बन्ध है अथवा आप मुझको पत्नी के रूप मे प्रेम करते हैं ? न तो मुझे भोजन अच्छा लगता है और न मुझको नीद ही आती है । घर मे अथवा वन मे कही भी मेरे मन को धैर्य (चैन) धारण करते नही बनता है । जैसे कामी पुरुष को अपनी वासना की तृप्ति का माध्यम प्रिय होता है तथा जल के प्रति प्यासे व्यक्ति की आसक्ति होती है, उसी प्रकार मुझे अपने प्रियतम के प्रति अदम्य आसक्ति सताती है । क्या कोई ऐसा उपकारी है जो मेरी यह विरह-व्यथा भगवान को सुना दे । कबीर कहते है कि भगवान को साक्षात्कार के बिना मेरी दशा बहुत ही दयनीय हो गई है । पति-परमेश्वर के दर्शन के बिना मैं मरणासन्न हो रहा हूँ—मेरे प्राण चाहे जब निकल सकते हैं ।

अलकार—उदाहरण—ज्यूं नीर रे ।

विशेष—(i) प्रतीक विधान द्वारा आत्मा-परमात्मा के दाम्पत्य प्रेम की सुन्दर अभिव्यक्ति है । बालम, गेह, नारी, सेज इत्यादि प्रतीक है ।

(ii) आन न भावै—कुछ आलोचकों ने 'आन' का अर्थ 'अन्य' करके इस वाक्याश का अर्थ इस प्रकार किया है—मुझे अन्य किसी की उपासना अभीप्सित नही है। हमारे विचार से "नींद न आवै" के साथ "आन न भावै" का अर्थ 'अन्य अच्छा नही लगता है," ही अर्थ उपयुक्त होना चाहिए। समभाव की अभिव्यक्ति अन्यत्र देखिए—

घान न भावै नींद न आवै, विरह सतावै मोइ।
घायल-सी घूमत फिरूँ दरद न जाणे कोइ। (मीराबाई)

(iii) ज्यूँ कामी कौं काम पियारा—तुलनात्मक दृष्टि से देखिए—

कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लागहु मोहि राम।
(गोस्वामी तुलसीदास)

(iv) है कोउ...... "सुनाइ रे—तुलना करें—

प्रीतम कूँ पतियाँ लिखूँ रे कउवा ! तू ले जाइ।
जाइ प्रीतम सूँ ये कहैं रे, विरहणि धान न खाइ।
× × ×
वेगि मिलो प्रभु अंतर जामी, तुम बिन रह्यौ न जाइ। (मीराबाई)

(३०८)

माधौ कब करिहौ दया।
कांम क्रोध अहंकार व्यापै, नां छूटै माया ॥ टेक ॥
उतपति ब्यंद भयौ जा दिन थैं, कबहू सच नहीं पायौ।
पंच चोर संगि लाइ दिए हैं, इन संगि जनम गंवायौ ॥
तन मन डस्यौ भुजंग भांमिनी, लहरी वार न पा'ा।
सो गारडू मिल्यौ नही कबहू, पसर्यौ विष विकराला ॥
कहै कबीर यहु कासूं कहिये, यह दुख कोइ न जानै।
देहु दीदार बिकार दूरि करि तब मेरा मन मांनै ॥

शब्दार्थ—साँच=सुख। भुजग=सर्प। भामिनी=सुन्दरी। गारडू=सर्प का जहर उतारने वाला। विकरारा=विकराल, भयकर। दीदार=साक्षात्कार-दर्शन।

सन्दर्भ—कवीर एक भक्त की तरह भगवान की तरह से दर्शन देने की प्रार्थना करते हैं।

भावार्थ—हे भगवान ! आप मेरे ऊपर दया करके मुझको कब दर्शन देंगे ? काम क्रोध और अहकार ने मुझको घेर रखा है और माया मुझसे छोडते नही बनती है। जिस दिन से बिन्दु (पिता के वीर्य) से मेरा जन्म हुआ है, उस दिन से मुझे कभी भी सच्चे सुख की प्राप्ति नही हुई है। पाँच चोर (काम, क्रोध, लोभ, मोह एव मत्सर) जन्म से मेरे साथ लगे हुए हैं। इनके साथ मैंने अपना सम्पूर्ण

जीवन व्यर्थ ही व्यतीत कर दिया है। सुन्दरी नारी रूपी साँप ने मेरे शरीर और मन को डस लिया है और काम रूपी विष की लहर ऐसी फैल रही है कि उसका कोई आदि अन्त (ओर छोर) नही है। उस विष को दूर करने वाला कोई भी गुरु रूप गारूडी अब तक नही मिल सका है। यह भयानक विष मेरे शरीर मे फैल गया है। कबीर कहते है कि मैं दुख का वर्णन किससे करूँ। मेरे इस दुख को कोई नही जानता है। हे भगवान! मेरे समस्त अवगुणो को दूर करके मुझे अपने दर्शन दीजिए। तभी मेरा मन सुख-शांति का अनुभव कर सकेगा।

अलकार—(i) रूपक - भुजग भामिनी, गुर गारडू।

(ii) छेकानुप्रास—काम क्रोध।

(iii) रूपकातिशयोक्ति—चोर, लहरी, विष।

विशेष—(i) इसे हम विनय का पद कह सकते हैं।

तुलना करे—

नाचत ही निस दिवस मरयो।
तब ही तें न भयो हरि। थिर जब तें जिव नाम धर्यो।
×   ×   ×
जेहि गुन तें बस होहु रीझि कोई, सो मोहि सब बिसरयो।
तुलसिदास निज भवन-द्वार प्रभु, दीजै रहन पर्यो।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(३०९)

मै जनभूला तूं समझाइ
चित चचल रहै न अटक्यौ, विषै बन कूं जाइ ॥ टेक ॥
ससार सागर मांहि भूल्यौ, थक्यौ करत उपाइ।
मोहनी माया बाघनी थै, राखि लै रांम राइ ॥
गोपाल सुनि एक बीनती, सुमति तन ठहराइ,
कहै कबीर सुनि यहु कांम रिप है, मारै सबकूं ढाइ ॥

शब्दार्थ—बाघनी=शेरनी। राखि लै=रक्षा करो।

सदर्भ—कबीर भगवान से रक्षा की प्रार्थना करते है।

भावार्थ—हे भगवान! मैं तेरा यह सेवक माया-मोह मे पडकर अपने स्वरूप को भूल गया हूँ। तुम मुझे विवेक-बुद्धि दो। यह मेरा चचल चित्त तुझसे अटकता नही है अर्थात् तेरे प्रति अनुरक्त नही होता है और वह बार-बार विषय-रूपी वन की ओर भाग कर जाता है। मैं इस ससार रूपी सागर मे भटक गया हूँ। उद्धार की चेष्टा करते करते थक गया हूँ। हे राजा राम! मोहिनी माया रूपी बाघिन से मेरी रक्षा कीजिए! हे गोपाल, मेरी एक विनती सुन लीजिए। मेरे मन मे सुबुद्धि को स्थिर कर दो अथवा मुझको स्थिर बुद्धि प्रदान कर दो। कबीर कहते हैं

कि यह काम रूपी शत्रु हम सबको पछाड कर नष्ट कर रहा है। (इसी से बचाने की आवश्यकता है।)

अलंकार—(i) रूपक—विषै वन, ससार सागर, माया वाघिनी। काम रिपु।

(ii) परिकराकुर—गोपाल।

(ii) छेकानुप्रास—चित्त चचल, ससार सागर, मोहिनी माया, राम राइ।

विशेष—यह विनय भक्ति का पद है।

(३१०)

भगति बिन भौजलि डूबत है रे।
बोहिथ छाड़ि बैसि करि डूंडै, बहुतक दुख सहै रे ॥ टेक ॥
बार बार जम पै ढहकावै, हरि को ह्वै न रहै रे।
चोरी के बालक की नाई, कासू बात कहै रे॥
नलिनी के सुवटा की नांई, जग सूं राचि रहै रे।
बंसा अगनि बंस कुल निकसै, आपहि आप दहै रे॥
खेवट बिनां कवन भौ तारे, कैसे पार गहै रे।
दास कबीर कहै समझावै, हरि की कथा जीवै रे॥
रांम कौ नांव अधिक रस मीठौ, बारबार पीवै रे॥

शब्दार्थ—भौजलि भवजल, ससार सागर। बोहिथ=वोहित, जहाज। डूंडै=डूंड पर, ठूंठ पर, लकडी के लठ्ठे पर। डहकावै=धोखा खाता है, ठगा जाता है। राचि=आसक्त। वमा अगनि=वासो की रगड़ उत्पन्न होकर वन मे लगने वाली अग्नि।

संदर्भ—कवीरदास राम की भक्ति का पतिपादन करते हैं।

भावार्थ—रे जीव! तू भगवान की भक्ति के विना इस ससार सागर मे डूब रहा है। तूने भक्ति रूपी जहाज वो छोडकर अन्य साधन रूपी काठ के लट्ठो पर वैठकर इस भवसागर को पार करने का विफल प्रयत्न किया। इसी कारण तुझको अनेक दुख सहने पडे हैं। तू बार-बार यमराज के द्वारा ठगा जाता है अर्थात् वार वार जन्म-मरण के चक्कर मे पडता है, परन्तु भगवान का भक्त होकर नही रहता है। दासी पुत्र की भाँति तू किसी को भी अपना पिता नही कह सकता है अर्थात् विभिन्न साधनाओ मे भटकने वाला व्यक्ति किसी एक साधन के प्रति निष्ठावान नही रह पाता है। यदि 'वाप' के स्थान पर वात पाठ हो, तो इस पक्ति का अर्थ इस प्रकार होगा। तूने भगवान की भक्ति से जी चुराया है। तेरी हालत उस वालक की भाँति है जो चोरी करता है और लज्जा के कारण किमी के सामने मुँह नही खोल पाता है। हे जीव! काठ की नली पर क्रीडा करने वाले तोते की भाँति तू इस माया मय जगत के प्रति आसक्त वना हुआ है। जैसे वडवाग्नि वासो की ही रगड से प्रकट

होती है और उन्ही को भस्म कर देती है, उसी प्रकार कामग्नि प्राणी मे ही उत्पन्न होती है और उसी को नष्ट कर देती है। भगवान रूपी केवट के बिना इस संसार रूपी सागर से कोई पार नही कर सकता है। बिना भगवान के तू किस प्रकार पार जा सकेगा ? कबीरदास समझाकर कहते हैं कि भगवान के गुण-गान के सहारे ही सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत किया जा सकता है। राम के नाम-स्मरण द्वारा प्राप्त होने वाला रस बडा ही मीठा होता है, उसको बारम्बार पीना चाहिए अर्थात् भगवान का नाम-स्मरण निरन्तर करते रहना चाहिए।

अलंकार - (i) रूपक—भौजलि, भौ।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—वोहिथ, डूडै, खेवट।
(iii) पुनरुक्ति प्रकाश—बार-बार।
(iv) उपमा—बालक की नाई, सुवटा की नाई।
(v) दृष्टान्त—दंसा' ' दहै रे।
(vi) वक्रोक्ति—कवन गहै रे।

विशेष—(i) इस पद मे कवीर की भक्ति-भावना व्यक्त है।

(ii) नलिनी को सुवटा—तोतो को पकडने के लिए शिकारी बाँस की पोनिया लटका देते हैं। जैसे ही तोता पौनी पर बैठता है, वैसे ही पौनी घूम जाती है और तोते का सिर नीचे और पाँव ऊपर हो जाते हैं। इस पौनी को ही नलिनी कहते हैं। तोता पौनी को छोडता नही है और डर के मारे वही लटकता रहता है। इसी प्रकार जीव भी उद्धार की सामर्थ्य होते हुए भी ससार के प्रति आसक्त बना रहता है। अज्ञान वश ससार मे आवद्ध जीव को 'नलिनी का सुवटा' कहना कवि-परम्परा है। यथा—

अपनपौ आपुन ही बिसर्‌यो।
× × ×
मरकट मूँठि छाँड़ि नहिं दीनी, घर-घर द्वार फिर्‌यो।
सूरदास, नलिनी को सुवटा, कहि, कौने पकर्‌यो। (सूरदास)

(iii) कवीर ने अनन्य भक्ति पर जोर दिया है।

(३११)

चलत कत टेढौ टेढौ रे।
नऊं दुवार नरक घरि मूँदे, तू दुरगंधि को बैढौ रे ॥टेक॥
जे जारै तौ होइ भसम तन, रहित किरम जल खाई।
सूकर स्वाँन काग कौ भखिन, तामैं कहा भलाई ॥
फूटे नैन हिरदै नाही सूझै, मति एकै नही जांनी।
मया मोह ममिता सूँ बाँध्यौ, बूडि मूवौ बिन पांनी ॥
बारू के घरवा मैं बैठो, चेतत नहीं अयांनां।
कहै कबीर एक रांम भगती बिन, बूडे बहुत सयांनां ॥

शब्दार्थ—नरक=मल, मला । मूँदे=आपूरित । बैठो=ढेर, थाला । किरम=कृमि, कीडे । भिखन=भोजन । मुवौ=मर गये ।

सदर्भ—कबीर शरीर की असारता बताकर राम भक्ति का प्रतिपादन करते हैं ।

भावार्थ—रे मानव, तुम क्यो इतरा रहे हो ? तुम्हारे शरीर की इन्द्रियो रूपी नौ द्वार (दो आँख, दो कान, दो नासा-द्वार, मुख तथा मल मूत्र के द्वार) मैले से भरे हुए है और इस प्रकार तू गन्दगी का ढेर अथवा पाला है। मरने पर यदि इस शरीर को जलाया जाएगा, तो यह भस्म का ढेर हो जाएगा और जो शेष बचेगा, उसको जल के कीडे-मकोडे खाएँगे । यह शरीर, सुअरो, कुत्तो तथा कौओ का भोजन है । इस पर गर्व करने से क्या लाभ है ? ससार की यह निस्सारता देखने के लिए तुम्हारी आँखे फूट गई हैं, हृदय मे तुम्हे इसकी अनुभूति नही होती है तथा ज्ञान की बातो से तुम्हारा कोई सम्बन्ध नही है । तू माया मोह और ममता के वशीभूत बना हुआ है और इस प्रकार तुम इस ससार सागर मे बिना पानी के ही (अकारण ही) डूब गये हो । रे प्राणी, यह शरीर रेत का महल है । तुम इसमे बैठे हुए अपने आपको सुरक्षित समझते हो । रे मूर्ख, तुम होश मे आकर समझते ही नहीं हो कि यह शरीर क्षण-भगुर है । कबीरदास कहते हैं कि राम भक्ति का अवलम्बन ग्रहण न करने के कारण बहुत से तथा कथित चतुर (दुनियादार) लोग इस भवसागर मे डूब गये ।

अलंकार—(i) गूढोक्ति—चलत ' रे ।
(ii) रूपकातिशयोक्ति —नव द्वार। बारू के घरवा ।
(iii) छेकानुप्रास—दुवार, दुरगधि ।
(iv) वक्रोक्ति—तामैं ···· भलाई ।
(v) विभावना— बूडि पानी ।
(vi) विरोधाभास—बूडे सयाना ।

विशेष—(i) बूढ़े बिन पानी— वस्तुत यह ससार असत् है । इसमे विषय जल भी परमार्थत है नही । जीव मिथ्या विषयो मे ही डूबा रहता है । यही बिना जल के भव-सागर मे डूबना है ।

(ii) बारू के घरवा मे बैठो—समभाव देखें—

मोम को मन्दिर माखन को मुनि बैठो हुतासन आसन दीन्हे । (देव)

(३१२)

अरे परदेसी पीव पिछांनि ।
कहा भयौ तोकौं समझि न परई, लागी कैसी बांनि ।।टेक।।
भोमि बिडाणी मैं कहा रातौ, कहा कियो कहि मोहि ।
लाहै कारनि मूल गमावै, समझावत हूँ तोहि ।।

निस दिन तोहि क्यूं नीद परत है, चितवत नांही ताहि ।
जम से बेरी सिर परि ठाढे, पर हथि कहाँ बिकाइ ।।
झूठे परपंच मै कहा लागौ, ऊठे नांहीं चालि ।
कहै कबीर कछू बिलम न कीजै, कौने देखी काल्हि ।।

शब्दार्थ—बानि = आदत । भोमि = भूमि । बिडाणो = बिरानी, पराई । रातो = अनुरक्त । लाहै = लाभ । काल्हि = कल का दिन ।

सन्दर्भ—कबीर जीवन और जगत की क्षण भगुरता के प्रति जीव को सावधान करते हैं ।

भावार्थ—रे परदेशी जीवात्मा, तू अपने प्रियतम को पहचान । तुम्हे क्या हो गया है । तुझको अक्ल (विवेक बुद्धि) क्यो नहीं आती है । सासारिक विषयो मे लिप्त रहने की तेरी यह क्या आदत पड गई है । तू पराई भूमि मे क्यों अनुरक्त हो गये हो । मुझे बताओ तो सही कि इस प्रकार आसक्त होकर तुमको क्या लाभ हुआ है । सासारिक विषयो के सुख रूपी लाभ के लोभ मे तुमने अपने मूलधन रूपी सहज शुद्ध बुद्ध स्वरूप को भी नष्ट कर दिया है । यह बात मैं तुमको समझाकर कहता हूँ । तुम्हे रात दिन नीद क्यो आती है अर्थात् तुम सदैव अज्ञान के वशीभूत हुए परम तत्त्व को क्यो भूले रहते हो ? तुम उस परम तत्त्व को जानने का प्रयत्न क्यो नही करते हो ? तेरे सिर पर यमराज सदृश प्रबल शत्रु खडा हुआ है और तू अपने वास्तविक स्वरूप को भूल कर माया के हाथो क्यो विक गया है । हे जीव ! तुम ससार के इस झूठे प्रपच मे क्यो फँसे हुए हो ? संसार से विमुख होकर भगवान की भक्ति करने के लिए क्यो नही चल पडते हो ? कबीर कहते है कि ईश्वर भक्ति मे देर मत करो । इस कार्य को अभी और यही करो । कल किसने देखा है अर्थात् कल का क्या भरोसा है ?

अलकार—गूढोक्ति—सम्पूर्ण पद ।

विशेष—(i) प्रतीको का प्रयोग है—परदेशी, पीव, भोमि विडाणी, भूल ।

(ii) ससार की क्षण भंगुरता का प्रतिपादन है ।

(iii) शात रस की व्यंजना है ।

(iv) परदेशी—मूल स्थान ब्रह्म से बिछुड कर जगत मे आने वाली जीवात्मा परदेशी है ।

(v) पराई—जीवात्मा का निवास स्थान तो ब्रह्म है । संसार तो माया का निवासस्थल है । इसी कारण वह जीवात्मा के लिए पराई भूमि है ।

(vi) कहा कियो कहि मोहि—इस कथन मे जीवात्मा की भारी भूल अभिव्यंजित है ।

(vii) जम से वैरी—समभाव देखें—

जम करि गॅह नरहरि पर्‌यो, महि घरि हरि चित लाउ ।
विषय वृषा अजहूँ तज्यो नरहरि के गुन गाउ । (बिहारी)

(viii) ऊठै नाही चालि—अन्तर्मुखी होने की ओर संकेत है। यथा—

हौं अपनायौ तब जानिहौं जब मन फिरि परिहै।

तथा—सन्मुख होहि जीव मोहि जब ही। जन्म कोटि अध नासहि तब ही।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(i) कौने देखी काल्हि। इस भाव को व्यक्त करने वाले अनेक कथन लोक मे प्रचलित है। यथा—

(क) जिसके बीच में रात। उसकी क्या बात ?

(ख) सामान सौ बरस का, पल की खबर नही।

(ग) करना है सो आज कर, आज करै सो अब।
पल में प्रलय होयगी, बहुर करेगा कब ? (कबीर)

(३१३)

भयौ रे मन पाँहुनडौ दिन चारि।
आजिक काल्हिक माँहि चलैगो, ले किन हाथ सँवारि ॥टेक॥
सौंज पराई जिनि अपणावै, ऐसी सुणि किन लेह।
यहु ससार इसौ रे प्रांणी, जैसी धूंवरि मेह॥
तन धन जोबन अँजुरी कौ पानी, जात न लागै बार।
सेंबल के फूलन परि फूल्यौ, गरब्यो कहा गवार॥
खोटी खाट खरा न लीया, कछू न जानीं साटि।
कहै कबीर कछू बनिज न कीयौ, आयौ थौ इहि हाटि॥

शब्दार्थ—पाहुँनडौ = पाहुना, मेहमान। सौंन = सम्पत्ति। धूंवरि = धुआँ। खाटै = सग्रह किया। साटि = विनिमय। वनिज = व्यापार। हाटि = बाजार।

सन्दर्भ - कबीरदास जीवन की निस्सारता का प्रतिपादन करते हैं।

भावार्थ—रे जीव, तुम इस ससार मे चार दिन के मेहमान हो। आज-कल मे ही तुमको इस ससार से चला जाना है। फिर तुम अपने हाथो को बुरे कामो से क्यो नही हटा लेते हो ? तुम पराई वस्तुओ के प्रति आसक्त होने की चेष्टा मत करो (यह ससार तुम्हारा घर नही है। और जब इसकी वस्तुएँ तुम्हारी क्यो कर हो सकती हैं ?)। तू मेरी इस सलाह को क्यो नही सुनता है ? रे प्राणी यह ससार तो धुँए के समूह द्वारा निर्मित बादल के समान है, जो न जल देता है, न शीतलता। वह तो केवल धोखा ही है। शरीर, सम्पत्ति और यौवन अजलि मे भरे हुए जल के समान है, जो धीरे-धीरे रिसकर स्वयमेव शीघ्र ही समाप्त हो जाता है। इस ससार का वैभव सैमर के फूल की तरह है जिसका वाह्य तो बहुत आकर्षक है, परन्तु जिसमे सारतत्त्व बिल्कुल नही है। इस मिथ्या एव सारहीन सासारिक वैभव के ऊपर हे अज्ञानी ! तू क्यो गर्व करता है ? तूने विषय वासना रूपी खोटी वस्तुओ का तो सग्रह किया और ज्ञान-मुक्ति रूपी, खरी वस्तुओ को ग्रहण नही किया। तुम्हे जीवन मे विनिमय करना नही आया अर्थात् तुम्हे यह ज्ञान नही हुआ

कि क्या खरीदना चाहिए और क्या नही खरीदना चाहिए । कवीरदास कहते है कि तुम इस ससार रूपी बाजार मे आकर तुमने लाभ का कुछ भी व्यापार नही किया अर्थात् तुम शुभ कर्मो को अर्जन बिल्कुल नही कर सकते ।

अलकार—(1) गूढोक्ति—ले ·· सवारि ।
(11) उपमा—जैसी धूँवरि मेह, अजुरी कौ पानी ।
(111) रूपकातिशयोक्ति—सैंवल के फूलन ।
(1V) अनुप्रास—खोटी खाटैं खरा
(V) रूपक—हाटि ।

विशेष—(1) प्रतीको का प्रयोग है—खोटी, खरा, बनिज ।
(11) संसार की असारता का वर्णन है ।
(111) विषय—लिप्त जीव की भर्त्सना की गई है ।
(1V) धूँवरि मेह । समभाव की अभिव्यक्ति देखे—

जग नभ-बाटिका रही है फलि फूलि रे ।
धुवाँ कैसे धौरहर देखि तू न भूलि रे ।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(V) सेंबर के फूलन । समभाव के लिए देखें—

सेमर सुअना सेइया मुइ ढेंढी की आस ।
ढेंढी फूट चटाक दै सुअना चला निरास । (कबीर)

(३१४)

मन रे रांम नांमहि जांनि ।
थरहरी थूनी परयो मदर सूतौ खूटी तांनि ।।टेक।।
सैन तेरी कोई न समझै, जीभ पकरी आंनि ।
पाँच गज दोवटी माँगी, चूंन लीयौ सांनि ।।
बसदर पाषर हाँडी, चल्यौ लादि पलांनि ।
भाई बध बोलाई बहु रे, काज कीनौं आंनि ।।
कहै कबीर या मै झूठ नांहीं, छाडि जिय की बांनि ।
रांम नांम निसंक भजि रे, न करि कुल की कांनि ।।

शब्दार्थ—थरहरी=हिलती हुई । थूनी=खम्भा । सूतौ=सोता है । खूँटी तानि=वेफिक्री के साथ । सैन=इशारा । वैसदर=अग्नि । पलानि=पलायन ।

सन्दर्भ—कबीर समार की निस्सारता का वर्णन करते हैं ।

भावार्थ—रे मन, तू राम-नाम से अपना नाता जोड । इस शरीर रूपी मन्दिर का प्राण-रूपी आधार स्तम्भ हिलने लगा है । यह शरीर रूपी मन्दिर गिरने ही वाला है और तू निश्चिन्त होकर सो रहे हो अर्थात् तुम्हे मौत का ध्यान ही नही है । अन्त समय का वर्णन करते हुए कबीर कहते हैं कि तेरी जीभ को यमदूतो ने आकर पकड लिया है अर्थात् तेरा वोल वन्द हो गया है तू अपना मन्तव्य प्रकट करने

के लिए शोर करता है, परन्तु उन इशारो को कोई नही समझता है। तुम्हारी शव-यात्रा की तैयारी हो रही है। पाँच गज कफन मगाया जा चुका है। पिण्ड-दान के लिए आटा मान लिया गया है। खाली हाँडी मे अग्नि रख ली गई है और लोग तुझको लाद कर श्मशान की ओर चल दिए हैं। बहुत से भाई-बन्धुओ को बुलाकर तेरी अन्त्येष्टि क्रिया सम्बन्धी समस्त कार्य सम्पन्न कर दिए हैं। कबीरदास कहते हैं कि मेरे इस कथन मे कुछ भी झूठ नही हैं। तू विषय-वासना मे लिप्त बने रहने की अपनी आदत को छोड दे। और निश्चिन्त होकर भगवान राम का भजन कर। कुल की मिथ्या-मान-मर्यादा के अहकार मे मत फँस।

अलकार—(i) रूपक—थूँनी, मन्दिर।

(ii) अनुप्रास—करि कुल की कानि।

विशेष—(i) वैराग्य भावना का प्रतिपादन है।

(ii) शात रस की व्यजना है।

(iii) बिम्ब-विधान द्वारा अन्त समय का सजीव चित्रण है।

(iv) मृत के साथ श्मशान तक जानेवाले उपकरणो का वर्णन यह घोषित करता है कि कबीर लोक-व्यवहार से पूर्णत परिचित थे। यह उनके गृहस्थ होने का भी प्रमाण है।

(v) जिस भाँति वल्लभाचार्य ने भक्ति के मार्ग मे 'कुलकानि' परित्याग की बात कही, उसे हम कबीर मे भी पाते हैं। मीराबाई ने तो सचमुच कुल की कानि छोड ही दी थी—

छाँड़ि दयी कुल की कानि कहा करिहै कोई।
सतन ढिग बैठि-बैठि, लोक-लाज खोई।

इसी बात को गोस्वामी जी ने थोडे से फेर के साथ कहा है—

जो पै रहनि राम सो नाहीं।

× × ×

कीरति, कुल करतूति, भूति भलि सील सरूप अलोने।
तुलसी प्रभु-अनुराग-रहित जस सालन साग सलोने।

(३१५)

प्राणीं लाल औसर चल्यौ रे बजाइ।
मुठी एक मठिया मुठि एक कठिया, सग काहू के जाइ ।।टेक।।
देहली लग तेरी मिहरी सगी रे, फलसा लग सगी माइ।
मड़हट लूँ सब लोग कुटबी, हस अकेलौ जाइ।।
कहां वे लोग कहां पुर पटण, बहुरि न मिलबौ आइ।
कहै कबीर जगनाथ भजहु रे, जन्म अकारथ जाइ।।

शब्दार्थ—लाल=सुन्दर। औसर=दाव। पट्टण=बाजार। बजाइ=खेलकर।

संदर्भ कबीर जीवन की नश्वरता एव सगे-सम्बन्धियों के साहचर्य की क्षणिकता की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए जीव को भगवत्भजन की प्रेरणा देते है।

भावार्थ—यह सुन्दर प्राणी अपना जीवन-दाव खेलकर अब जा रहा है। उसकी एक मुट्ठी मे आटे का पिण्ड है और एक हाथ उसकी काठी (जनाजे) पर रख दिया गया है। परन्तु यह आटे का पिण्ड भी किसी के साथ नही जाता है। घर की देहरी तक पत्नी सगी रहती है अर्थात् देहरी तक रोती हुई पत्नी जाती है और दरवाजे तक माता सगी रहती है। सब कुटुम्बी लोग श्मशान तक जाते हैं, परंतु आगे की यात्रा मे यह जीव अकेला ही जाता है। ये सब सगे-सम्बन्धी, नगर, बाजार कहाँ साथ जाते है ? वे सब यही रह जाते हैं। इन सबसे फिर मिलना नही होता है। कबीर कहते हैं कि इन सब बातो पर विचार करके जगत के स्वामी भगवान का भजन करो। भजन के बिना यह जन्म व्यर्थ ही जा रहा है।

अलकार - (i) अनुप्रास—मुठी मठि मठिया।

(ii) पदमैत्री—मठिया कठिया।

(iii) गूढोक्ति —(i) कहाँ वे ····परण।

विशेष— शात रस की व्यजना है। 'निर्वेद' भाव का परिपाक द्रष्टव्य है।

(ii) फलसा का पाठान्तर 'दुआरै' है। इसीसे इसका अर्थ 'द्वार' कर दिया है।

(iii) प्राणी लाल औसर चल्यौ रे बजाय। डा० माताप्रसाद गुप्त ने इस पक्ति का अर्थ इस प्रकार किया है। औसर-अवसर-नृत्य-सगीतादि की सभा है। 'लाल' है ललक्क-रवपूर्ण। रे प्राणी, तू रवपूर्ण अवसर (सगीत का कार्यक्रम) बजाकर अब वापिस चल पडा है। उनके द्वारा इस अर्थ की कल्पना का आधार यह पाठान्तर है—चारि दिन अपनी नउबति चलै बजाइ।"

हम तो 'लाल' का अर्थ महाशय करते हैं। हे प्राणी लाल अथवा प्राणी महाशय ! कह कर तीव्र सम्बोधन की व्यजना की गई है। बजाई का अर्थ है—'अजाम देकर'। अर्थ होगा—तुमको जो मानव जन्म देकर एक श्रेष्ठ अवसर प्रदान किया गया था, उसको पूरा करके हे प्राणी महाशय चल दिए और तुमने इस जन्म को व्यर्थ गँवा दिया। जो समय बचा है, उसीमे भगवान का नाम लेलो। इसी भाव को अभिप्रेत मानकर हमने उपर्युक्त अर्थ किया है। हमारे विचार से उपर्युक्त अर्थ ही युक्तियुक्त है। डा० गुप्त द्वारा किए गए अर्थ मे हमको खीचतान अधिक दिखाई देती है। नौबत बजाने वाली कबीर की यह साखी इस प्रकार है—

कबिरा नौबत आपनी दिन दस लेहु बजाय।
ये पुर पट्टन ये गली बहुरि न देखौ आय।

(३१६)

रांम गति पार न पावै कोई।
च्यंतामणि प्रभु निकटि छाड़ि करि, भ्रंमि भ्रमि मति बुधि खोई ॥टेक॥

तीरथ बरत जप तप करि करि, बहुत भांति हरि सोधै ।
सकति सुहाग कहौ क्यू पावै, अछता कत विरोधै ।।
नारी परिष बसै इक संगा, दिन दिन जाइ अबोलै ।
तजि अभिमान मिलै नही पीव कूं, ढूढ़त बन बन डोलै ।।
कहै कबीर हरि अकथ कथा है, बिरला कोई जांनै ।
प्रेम प्रीति बेधी अंतर गति, कहूँ काहि को मांनै ।।

शब्दार्थ - सोधै=खोजे । गति=महिमा । सुहाग=सौभाग्य ।

संदर्भ—कबीर ज्ञान-दशा का वर्ण करते है ।

भावार्थ—राम की महिमा का रहस्य कोई नही पाता है । लोग अपने स्वरूप से अभिन्न प्रभु रूपी चिन्तामणि (मनचाही वस्तुएँ देने वाणी मणि) को छोड कर इधर-उधर विभिन्न साधनाओ एव सिद्धियो मे भटकते रहते हैं और इस प्रकार अपनी विवेक-बुद्धि भी खो देते हैं । तीर्थ, व्रत, जप-तप आदि करते हुए लोगो ने भगवान को वहुत प्रकार से खोजा, (परन्तु उन्हे भगवान की प्राप्ति नही हुई) । कोई नारी अपने पति का विरोध करते हुए भला पति-मिलन सोभाग्य-सुख क्यो कर प्राप्त कर सकती है ? जो स्त्री और पुरुष साथ-साथ रहते हुए आपस मे बिन बोले ही समय व्यतीत करते है, उनके जीवन मे आनन्द कहाँ से आसकता है ? व्यजना यह है कि जो जीवात्मा अपने पति परमात्मा के साथ निरन्तर रहते हुए भी उससे विमुख रहती है, उस आत्मा सुन्दरी को प्रेमानन्द और परमानन्द की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है ? यह जीवात्मा उस नारी के समान है जो मान वश प्रियतम से विमुख रहती है और प्रेमानन्द की प्राप्ति के लिए इधर-उधर चारो ओर मारी-मारी फिरती है । यह जीवात्मा अपने पृथकत्व के भाव को त्याग कर परमात्मा मे अपने अस्तित्व को तो मिलती नही है और आत्मानन्द की प्राप्ति के लिए जगलो मे जाकर तपस्या आदि करती है । कबीर कहते हैं कि भगवान के प्रेम की महिमा वर्णनातीत है । इसके महत्व को कोई बिरला ही जान पाता है । मेरा अन्त करण उस प्रेम-प्रीति द्वारा बिद्ध हो गया है । इस अनुभूति का वर्णन मै किससे करूँ और कौन इस पर विश्वास करेगा ।

अलकार – (i) सम्बन्धातिशयोक्ति—राम ·· ····कोई ।
(ii) रूपक—च्यतामणि प्रभु ।
(iii) पुनरुक्ति प्रकाश—भ्रमि भ्रमि, करि करि, दिन दिन, वन वन ।
(iv) वक्रोक्ति—सकति ··· विरोधै । को मानै ।
(v) निदर्शना—सकति ··· ··डोलै ।
(vi) विरोधाभास—अकथ कथा ।
(vii) गूढोक्ति—कहूँ काहि ।
(viii) रूपकातिशयोक्ति—नारी, पुरुष ।

विशेष—(i) वाह्याचार का विरोध व्यक्त है

(ii) जीवात्मा और परमात्मा का अभिन्नत्व प्रतिपादित है। पृथकत्व भाव भ्रम है। इसकी निवृत्ति द्वारा ही जीव का कल्याण सम्भव है। सूफी कवि कहते आए हैं—"इशरते कतरा है दरिया मे फना हो जाना।"

(iii) च्यातमणि—खोई। समभाव देखे—

कस्तूरी कुण्डल बसै, मृग ढूढ़ै बन माँहि।
ऐसे घट घट राम हैं दुनियाँ देखे नाँहि।

(iv) विरला कोई जाने। तुलना करे—

नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी। कोउ एक होइ धर्म ब्रतधारी।
धर्म सील कोटिक महँ कोई। विषय विमुख बिराग रत होई।
कोटि विरक्त मध्य स्रुति कहई। सम्यक ज्ञान सकृत कोउ लहई।
ग्यानवंत कोटिक महँ कोऊ। जीवनमुक्त सकृत जग सोऊ।
तिन्ह सहस्र महँ सब सुख सानी। दुर्लभ ब्रह्म लीन बिग्यानी।

इत्यादि—गोस्वामी तुलसीदास

(३१७)

रांम बिनां संसार धंध कुहेरा,
सिरि प्रगट्या जांम का पेरा॥ टेक॥
देव पूजि पूजि हिंदू मूये, तुरक मूये हज जाई।
जटा बांधि बांधि योगी मूये, इनमैं किनहूँ न पाई॥
कवि कवीनै कविता मूये, कापड़ी के दारौं जाई।
केस लूंचि लूंचि मूये बरतिया, इनमै किनहूँ न पाई॥
धन सचते राजा मूये, अरू ले कंचन भारी।
बेद पढें पढि पंडित मूये, रूप भूले मूई नारी॥
जे नर जोग जुगति करि जांनै खोजै आप सरीरा।
तिनकूं मुकति का ससा नाहीं, कहत जुलाह कबीरा॥

शब्दार्थ—धंध=धुंध, धुंए का आवरण। कुहेरा=कुहासा, कुहारा। जाम=जम। पेरा=पेरने (दबाव डाल कर रस निचोडने) वाला यन्त्र, लक्षण से आरा अथवा फंदा। हज=मक्के की यात्रा। कापडी=कार्यटिक, तीर्थयात्री। लूंचि-लूंचि=नोच-नोच कर। वरतिया=व्रत करने वाले, जैन साधु।

संदर्भ—कबीर आत्म-साक्षात्कार का प्रतिपादन करते हैं।

भावार्थ—भगवान राम की भक्ति के विना यह संसार धुंध और कोहरे के समान निस्सार है। भावार्थ यह है कि राम भक्ति के अतिरिक्त अन्य समस्त साधनाएँ अज्ञान सशय एव दिग्भ्रम मे डालने वाली हैं। मानव को समझ लेना चाहिए कि यमराज का आरा उसके सिर के ऊपर निरन्तर लटकता रहता है। देवता पूज-पूज कर हिन्दू मर गये हैं, मुसलमान मक्का की यात्रा कर करके मर गये तथा योगी

जटा-जूट बाँध बांध कर मर गये, परन्तु किसी को भी मोक्ष की प्राप्ति नही हुई। कविगण कविता करके मर गये, तीर्थ यात्री केदारनाथ मे जाकर मर गये, जैन मतावलम्बी व्रती साधुओ ने बाल नोच नोच कर प्राण दे दिए, परन्तु इनमे से भी किसी को मोक्ष की प्राप्ति नही हुई। धन एकत्र करते हुए और बहुत सा स्वर्ण बटोरते हुए राजे मर गये, वेदो का अध्ययन करते हुए पडित मर गये, रूप के अहकार मे नारियाँ मर गई, परन्तु उद्धार किसी का नही हुआ। जो व्यक्ति भगवान से मिलने की युक्ति जानना चाहते हैं, वे अपने शरीर के भीतर ही भावान (परम-तत्व) को खोजते हैं। जुलाहा कबीर कहता है कि जो व्यक्ति अपने घर के भीतर भगवान को खोजते हैं उन्हे निश्चित रूप से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

अलकार—(i) रूपक—ससार धध कुहेरा।
(ii) पुनरुक्ति प्रकाश=पूजि पूजि, बोधि बोधि, लू चि लू चि।
(iii) वृत्यानुप्रास—कवि कवीनै कविता कापडी,।

विशेष—(i) धध कुहेरा—"असत् एव अचित्" अभिप्रेत है।
(ii) वाह्याचार की निरर्थकता प्रतिपादित है।
(iii) अह-भावना एव आसक्ति के प्रति तीव्र विरोध व्यक्त है।
(iv) जुलाहा—जात्याभिमानियो के प्रति व्यग्य है।

(३१८)

कहू रे जे कहिबे की होइ।
नां को जानैं नां को मानै, तार्थं अचिरज मोहि ॥ टेक ॥
अपनें अपनें रंग के राजा, मानत नांही कोई।
अति अभिमांन लोभ के घाले, चले अपन पौ खोइ ॥
मै मेरी करि यहु तन खोयो, समझत नहीं गवार।
भौजलि अधफर थाकि रहे हैं, बुड़े बहुत अपार ॥
मोहि आग्या दई दयाल दया करि काहू कूं समझाइ।
कहै कबीर मै कहि हार्‌यौ, अब मोहि दोस न लाइ ॥

शब्दार्थ—घाले=मारे हुए, वशीभूत। भौजल=भव जल, भवसागर। अधफर=फर=युद्ध-लक्षण से मार्ग।

संदर्भ—कवीरदास ससार के व्यक्तियो के अज्ञान के प्रति अपना क्षोभ प्रकट करते है।

भावार्थ—मै तो वे ही बातें कहता हूँ जो कहने योग्य होती हैं। परन्तु उनको न तो कोई समझता है और न उन पर कोई विश्वास ही करता है। इसी से मुझे आश्चर्य होता है। सभी लोग अपने अपने रग मे मस्त हैं। इसी लिए कोई मेरी बात को मानता नही है। वे अत्यन्त अभिमान और लोभ के वशीभूत हैं। उन्होने अपनत्व को खो दिया है अर्थात् वे अपने शुद्ध आत्म-स्वरूप को भूल गये है। ये मूर्ख वास्तविकता तो समझते नही हैं। इन्होने "मैं और मेरी" के फेर मे ही

अपना समस्त जीवन नष्ट कर दिया है। ये लोग भव-सागर मे आधे रास्ते पर पहुँच कर थक गये है और इनमे बहुत से तो इस भव-सागर मे डूब चुके हैं। कबीर कहते हैं कि दयालु भगवान ने कृपापूर्वक मुझको आज्ञा दी है कि मैं भव-सागर में डूबते हुए इन व्यक्तियो मे से कुछ को तो विवेक-बुद्धि दे दूं। मैं कह-कह कर थक गया हूँ। मेरी बात कोई नही सुनता है। अत अब मुझको कोई दोष न दे (कि मैंने अपने कर्त्तव्य का पालन नही किया)।

अलकार—(1) पदमैत्री—ना जानै, ना मानै, घाले चले।
(ii) पुनरुक्ति प्रकाश—अपने अपने।
(iii) वृत्यानुप्रास—दई, दयाल, दया, करि काहूँ कूँ।
(v) छेकानुप्रास —अति अभिमान।
(vi) रूपक—भौजलि।
(vii) पुनरुक्तिवदाभास—बहुत। अपार।

विशेष—(1) रग के राजा—मुहावरा है—तुलना करे—

मारग सोइ जाकहँ जो भावा। पडित सोइ जो गाल बजावा।

(गोस्वामी तुलसीदास)

यह लोकोक्ति भी प्रचलित है—"अपनी अपनी ढफली और अपना अपना राग।"

(ii) विभिन्न साधनाओ मे पडे हुए मानव अपने जीवन को नष्ट करते रहते हैं—यही इस पद का अभिप्रेत अर्थ है। यही बात गोस्वामी तुलसीदास ने कही है—

श्रुति सम्मत हरि भक्ति पथ सजुत बिरति बिवेक।
जे परिहरहिं बिमोह बस कल्पहिं पथ अनेक।

(iii) कबीर को ज्ञानोपदेश की प्रेरणा भगवान की मगल-विधायिनी शक्ति से प्राप्त हुई थी। इस कथन मे कबीर का आत्म-विश्वास भी व्यक्त है, साथ ही उनकी गर्वोक्ति की छाया भी है। ये दोनो तत्व कबीर के व्यक्तित्व पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। कबीर पूरे आत्म विश्वास के साथ यह मानते थे कि उन्हे आत्म-साक्षात्कार हो गया था तथा वह परमात्मा के सदेश-वाहक थे।

(iv) कबीर ने उन लोगो पर गहरा व्यग्य किया है जो प्रभु के स्वरूप को जाने बिना ही उसके विषय मे तरह-तरह की बाते कहते रहते हैं।

(३२९)

एक कोस बन मिलांन न मेला
बहुतक भाँति करै फुरमाइस, है असवार अकेला ॥ टेक ॥
जोरत कटक जुधेरत सब गढ़ करतब झेली झेला ।
जोटि कटक गढ़ तोरि पातिसाह, खेलि चल्यौ एक खेला ॥

कूंच मुक़ाम जोग के घर मैं, कछू एक दिवस खटांनां ।
आसन राखि बिभूति साखि दे, फुनि ले मटी उडांनां ।।
या जोगी की जुगति जु जांनै, सो सतगुर का चेला ।
कहै कबीर उन गुर की कृपा थैं, तिनि सब भरम पछेला ।।

शब्दार्थ—मिलान=मिलाने की क्रिया । असवार=जीवात्मा रूपी सवार । फुरमायस=अनुनय-विनय, प्रार्थना । कटक=सेना, विकारो की सेना । गढ=शरीर रूपी किला । झेली झेला=झेलना । बादशाह=साधक जीव । कूंच=यात्रा । मुकाम=गन्तव्य स्थान, परम पद । खटाना=कस के काम किया । फुनि=फिर । पछेला=पीछे छोड दिया । मटी=मटिया, समाधिस्थ चेतना ।

संदर्भ—कबीर परमपद की प्राप्त का निरूपण करते है ।

भावार्थ—(माया-मोह मे फँसा हुआ) यह जीवन एक कोश का बीहड जगल है । इसमे न तो कोई परमात्मा से मिलने की क्रिया ही बताता है और न कोई उससे मिल ही पाता है । जीवात्मा-रूपी यह घुडसवार अपनी जीवन-यात्रा मे अकेला ही है । वह ससार रूपी जगल को पार करने के लिए अनेक साधनाओ मे भटकता है । (काम, क्रोध, लोभ, मोह एव मत्सर) विकार पूरी सेना एकत्र करके जीव को शरीर-रूपी गढ मे ही घेर लेते हैं । गढ मे आबद्ध जीव का धर्म ही अनेक कष्टो को झेलना है । परन्तु साधक जीव रूप राजा अपनी साधना रूपी सेना का सचय करके उस शरीर रूपी किले के घेरे को तोडकर बाहर आ जाता है अर्थात् देहाध्यास एव विषयासक्ति को छोड देता है । इस प्रकार वह जीवन के इस सघर्ष को खेल के रूप खेलकर अपने गन्तव्य परमपद की ओर प्रस्थान कर देता है । इस यात्रा मे वह कायायोग मे निवास करता है और कायायोग की साधना मे उसको कुछ समय तक कठिन श्रम करना पडता है । उसके बाद अपने आसन पर शरीर की मिट्टी को साक्षी रूप छोडकर वह अपनी समाधिस्थ चेतना को लेकर चला जाता है । जो इस प्रकार के योग करने वाले साधक की साधना को समझता है, वही सद्गुरु का सच्चा शिष्य है अर्थात् सद्गुरु की कृपा प्राप्त करके ही यह साधना की जा सकती है । कबीर कहते हैं कि उसी गुरु की कृपा से योगी साधक सम्पूर्ण भ्रमो को पीछे छोड कर परम पद को प्राप्त करता है ।

अलकार—(i) रूपकातिशयोक्ति—पूरा पद ।
(ii) छेकानुप्रास—मिलाननि मेला, असवार अकेला, झेली झेला, खेलि खेला । जोगी, जुगति ।

विशेष—(i) जीवन-सग्राम का सुन्दर रूपक है । इस पद मे पारमार्थिक जीवन क्रम का उल्लेख है ।

(ii) कायायोग साध्य न होकर साधन मात्र ही है ।

(iii) गुरु की महिमा व्यजित है ।

(IV) ले मठी उडाना—समाधिस्थ चेतना द्वारा वह ब्रह्मलीन हो जाता है—

झल उठी झोली जली खपरा फूटिम फूटि ।
जोगी था सो रमि गया, आसन रही विभूति ।

राग मारू

(३२०)

मन रे रांम सुमिरि, रांम सुमिरि, रांम सुमिरि भाई ।
रांम नांम सुमिरन बिनां, बूड़त है अधिकाई ॥ टेक ॥

दारा सुत ग्रेह नेह, सपति अधिकाई ।
यामै कछू नांहि तेरौ, काल अवधि आई ॥
अजामेल गज गनिका, पतित करम कीन्हां ।
तेऊ उतरि पारि गये, रांम नांम लीन्हां ॥
स्वांन सूकर काग कीन्हौ, तऊ लाज न आई ।
रांम नांम अमृत छाड़ि, काहे बिष खाई ॥
तजि भरम करम विधि नखेद, रांम नांम लेही ।
जन कबीर गुरु प्रसादि, रांम करि सनेही ॥

शब्दार्थ—नखेद=निषेध । दारा=स्त्री । करम=कर्म-काण्ड ।

संदर्भ—कबीर राम-नाम की महिमा का प्रतिपादन करते हैं ।

भावार्थ—रे मेरे भाई मन, राम का स्मरण करो, राम का स्मरण करो, राम का स्मरण करो । राम नाम के स्मरण के बिना इस भव सागर मे और अधिक डूब जाओगे अर्थात् माया मोह मे अधिकाधिक लिप्त होते जाओगे । स्त्री, पुत्र, घर एव इनके प्रति स्नेह तथा अतुल सम्पत्ति इनमे तेरा कुछ भी नही है । अपना समय आने पर ये सब नष्ट हो जाएँगे । अथवा तेरे जीवन की अवधि समाप्ति के निकट आ रही है और ये सब तुझ से छूट जाएँगे । अजामिल, हाथी और पिंगला वेश्या ने नीच कर्म किए । परन्तु राम का नाम लेने से वे भी ससार-सागर के पार हो गए । अर्थात् उनका भी उद्धार हो गया । रे जीव, तुम कुत्ता, सूअर, कौआ आदि जैसी निम्न योनियो मे भटक चुके हो, परन्तु तुमको तब भी पाप कर्म करते हुए शर्म नही आती है । तुम राम भक्ति रूपी अमृत को छोडकर विषयासक्ति रूपी विष का सेवन करते हो । तुम अन्य साधनाओ के द्वारा उद्धार की सम्भावना के भ्रम तथा कर्म काण्ड के विधि-निषेध को छोडकर राम के नाम का स्मरण करो । भक्त कबीरदास कहते हैं कि तुम गुरु की कृपा-प्राप्त करो और भगवान राम के प्रति अनुरक्त हो जाओ ।

अलकार—(I) पुनरुक्ति प्रकाश—राम सुमिरि की आवृत्ति ।
(II) गूढोक्ति—तेऊ पार—लीन्हा ।
(III) रूपक—राम नाम अमृत ।

(IV) रूपकातिशयोक्ति - विष ।

(V) पदमैत्री—भरम करम ।

विशेष—(I) कबीर ज्ञानी भक्त के रूप मे प्रकट हैं ।

(II) तजि करम विधि निषेद - कबीर शास्त्र विहित कर्मकाण्ड के प्रति विरोध प्रकट करते हैं ।

(III) पौराणिक आरकानो की परम्परा का प्रयोग है । यहाँ कबीर वैष्णव भक्तो की परम्परा मे दिखाई देते है—

मै हरि पतित पावन सुनै ।

× × ×

व्याध गनिका गज अजामिल साखि निगमन भने ।
और अधम अनेक तारे जात कापै गने ।
जानि नाम अजानि लीन्हें नरक जमपुर मने ।
दास तुलसी सरन आयो, राखिये अपने ।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(IV) प्रयुक्त पौराणिक आख्यान इस प्रकार हैं—

अजामेल (अजामिल)—अजामिल एक ब्राह्मण था । वह बडा पापी था । उसके पुत्र का नाम 'नारायण' था । मृत्यु के समय उसने अपने पुत्र 'नारायण' को नाम लेकर पुकारा । 'नारायण' की पुकार सुनते ही भगवान के दूत वहाँ आगए और यमदूतो से उसको छुडाकर भगवान के धाम को ले गये । इस प्रकार भगवन्नाम स्मरण मात्र से अजामिल का उद्धार हो गया ।

(ख) गज (गजेन्द्र या गजराज)—हाथियो का एक अत्यन्त बलवान राजा था । उसे अपने बल का बडा घमण्ड था । एक बार जब वह नदी मे पानी पी रहा था, तब एक मगर ने उसका पैर पकड लिया । हाथी ने पूरा जोर लगाया, परन्तु मगर ने उसका पैर नही छोडा । उलटे वह हाथी को जल के भीतर खीच ले गया । जब हाथी की सू ड का ऊपरी भाग ही पानी के ऊपर रह गया, तब आर्त स्वर से उसने भगवान को पुकारा । उसकी पुकार सुन कर भगवान उसके रक्षार्थ भागे और उन्होने सुदर्शन चक्र द्वारा मगर का वध करके गजराज का उद्धार किया ।

(ग) गनिका—यह पिंगला नाम की वेश्या थी । एक बार अपने व्यवसाय से निराश होकर उसने भगवान के भजन का सकल्प कर लिया था और इसका उद्धार हो गया ।

इसकी कथा एक अन्य प्रकार भी है । यह वेश्या अपने तोते को राम-राम पढा रही थी । बस, इसी राम-नाम उच्चारण से उसका उद्धार हो गया था—सुवा पढ़ावत गणिका तारी । तारी मीराबाई । इत्यादि ।

(३२१)

रांम नांम हिरदै धरि, निरमोलिक हीरा ।
सोभा तिहूं लोक, तिमर जाय त्रिबधि पीरा ।। टेक ।।
भिसनां नै लोभ लहरि, कांम क्रोध नीरा ।
मद मछर कछ मछ, हरषि सोक तीरा ।।
कांमनी अरू कनक भवर, बोये बहु बीरा ।
जन कबीर नवका हरि, खेवट गुरु कीरा ।।

शब्दार्थ—निरमोलिक—अमूल्य, वहुमूल्य, । तिमर=तिमिर, अन्धकार, अज्ञान । वोये=डुवोये । कीरा=कीट=शुकदेव । यदि पाट कोरा है, तो अर्थ 'केवल' होगा ।

सदर्भ—कवीरदास गुरुप्रसाद और हरि कृपा द्वारा भव सागर पार करने का उपदेश देते है ।

भावार्थ—कबीरदास कहते हैं कि रे जीव, तुम हृदय मे राम नाम रूपी वहुमूल्य हीरे को अपने हृदय मे धारण करो । इससे तीनो लोकों मे तेरी शोभा (इज्जत) होगी तथा तेरा अज्ञानान्धकार एव तेरे तीनो प्रकार (दैहिक, दैविक, भौतिक) कष्ट नष्ट हो जाए गे । (भव सरिता मे) काम और क्रोध रूपी जल भरा हुआ है, इसमे लोभ और तृष्णा की लहरे उठती रहती हैं, इसमे मद और मतसररूपी मछलियां और कछुए है, सुख और दुःख इसके किनारे हैं तथा इसमे कामिनी और कचन रूपी भँवरें पड रही हैं । इस भव नदी मे अनेक वीर डूब चुके है । भगवान के भक्त कवीरदास कहते हैं कि भव-नाम की नाव तथा गुरु शुकदेव रूपी केवट के सहारे ही इसको पार किया जा सकता है । अथवा यह कहिए कि इसको पार करने के लिए भगवन्नाम ही नाव है और केवल गुरु ही इस नौका का केवट है ।

अलंकार—(i) साग रूपक—पूरा पद ।
(ii) व्यतिरेक की व्यजना—निरमोलक हीरा ।
(iii) छेकानुप्रास—तिमिर, त्रिविध । लोभ लहरि, काम कोध, मद मछर ।
(iv) पदमैत्री—कछ मछ ।
(v) वृत्यानुप्रास—वोये वहु वीरा ।
(vi) श्लेष पुष्ट रूपक—तिमर

विशेप—(i) त्रिविध पीर—दैहिक=शारीरिक । दैविक=देवकृष्ठ । भौतिक=अत सम्वन्धी ।

(ii) त्रिपना—तृष्णा भोग की इच्छा, अप्राप्त वस्तु को पाने की तीव्र इच्छा । बुद्ध ने इनी को 'तनहा' कहा है । इसी के वशीभूत होकर जीवात्मा जन्म धारण करने को प्रेरित होता है ।

(iii) हरषि सोक तीरा—प्रत्येक कार्य की परिप्रगति इष्ट की प्राप्ति (सुख) अथवा इष्ट के वियोग एव अनिष्ट की प्राप्ति (दुख) मे होती है।

(iii) वीर काम क्रोधादि पर विजय प्राप्त करने के लिए साधना करने वाला ही 'वीर' है। जैन धर्म के 'जिन' का अर्थ 'वीर' ही है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी लिखा है कि—

महा अजय संसार रिपु जीति सकय सो वीर।

(रामचरितमानस)

(३२२)

चलि-मेरी सखी हो, वो लगन रांम राया।
जब तब काल बिनासै काया ॥ टेक ॥
जब लग लोभ मोह की दासी, तीरथ व्रत न छूटै जम की पासी।
आवैंगे जम के घालैंगे बांटी, यहु तन जरि वरि होइगा माटी ॥
कहै कबीर जे जनहरि रगिराता, पायौ राजा राम परम पद दाता।

शब्दार्थ—लगन=प्रेम। बोटी=कुचल कर।

सदर्भ—कबीरदास भगवद् भक्ति का प्रतिपादन करते हैं।

भावार्थ—रे मेरी जीवात्मा सखी! तू राजा राम के प्रेम मे मग्न हो जाओ। यह काल किसी भी क्षण इस शरीर को नष्ट कर सकता है। तुम जब तक लोभ और मोह की दासी हो तथा वीर-व्रत आदि के फेर मे पडी हुई हो, तब तक यम के बन्धन से मुक्त नही हो सकोगी। यम दूत आएँगे और तुमको कुचल कर (पीस-पास कर) मार डालेंगे। तुम्हारा यह शरीर जल-जल कर मिट्टी हो जाएगा। कबीरदास कहते हैं कि जो लोग राम के प्रेम पे अनुरक्त हैं, वे उन राजा राम को प्राप्त करते हैं जो परम पद को देने वाले हैं।

अलकार—(i) रूपकातिशयोक्ति सखी।
(ii) जरि वरि, जब तव, वाटी माटी।
(iii) विशेषोक्ति की व्यजना तीरथ पासी।
(iv) वृत्यानुप्राम—पायौ, परम पद।

विशेष—(i) वाह्याचार का विरोध है।

(ii) राम-भक्ति की महिमा का प्रतिपादन है।

(iii) सखी' शब्द जीवात्मा अथवा अन्त करण की वृत्ति के लिए उप-लक्षण है।

(३२३)

तू पाक परमांनदे।
पीर पैकंबर पनह तुम्हारी, मै गरीब क्या गदे ॥ टेक ॥
तुम्ह दरिया सबही दिल भीतरि, परमांनद पियारे।
नेक नजरि हम ऊपरि नांही, क्या कमिबखत हमारे ॥

हिमकति करैं हलाल बिचारै, आप कहावै मोटे ।
चाकरी चोर निवालै हाजिर, सांई सेती खोटे ।।
दांइम दूवा कम्द बजावै, मैं क्या करू भिखारी ।
कहै कबीर मै बंदा तेरा, खालिक पनह तुम्हारी ।।

शब्दार्थ—पीर=मुसलमानो के धर्म गुरु, धर्मगुरु। पैकवर=पैगबर—पैगामवर, ईश्वर का दूत (मुहम्मद साहब)। गदे=गदा (फारसी), भिखारी, रक निर्धन। दरिया=नदी। कमिबखत=दुर्भाग्य। हिकमति=चिकित्सा, युक्तियाँ। हलाल=पशु हिंसा। मोटे=बडे। निवालै=भोजन के समय। साई=स्वामी। सेती=से, प्रति। खोटे=बुराई करने वाले। दांइम=दामन (अरबी शब्द), सदैव, उम्रभर। दूवा=छुरी, चाकू। दूवा=दुआ। बदा=सेवक। खालिक=सृष्टिकर्त्ता।

सन्दर्भ—कबीरदास भगवान से शरणागति की प्रार्थना करते हैं।

भावार्थ—हे भगवान तू पवित्र और परमानन्द स्वरूप हो। धर्मगुरु और मोहम्मद साहब जैसे तेरे सदेश-वाहक भी जब तेरी शरण मे रहते है, तब मुझ गरीब भिखारी की तो गिनती ही क्या है ? हे प्यारे परमानन्द, तुम दया की नदी स्वरूप होकर सबके हृदय मे निवास करते हो। यह मेरा कैसा दुर्भाग्य है कि मेरे ऊपर आपको जरा भी दया दृष्टि नही है। लोग दूसरो को उद्धार की युक्तियाँ वताते हैं और स्वय हृदय मे हिंसा धारण करते है। ऐसे ही व्यक्ति बडे कहे जाते हैं। व्यक्ति भगवान की सेवा से जी चुराते हैं, अर्थात् कर्त्तव्य का पालन ठीक तरह से नही करते है परन्तु भोजन के समय सदैव प्रस्तुत दिखाई देते हैं और इस प्रकार स्वामी के प्रति सदोष व्यवहार करते हैं। ये लोग उम्र भर दुआ मागते हैं और छुरी चलाते हैं (हिंसा करते हैं। इन्ही का सम्मान होता है)। इन लोगो पर मुझ भिखारी का क्या वश चल सकता है ? कबीरदास कहते है कि मैं तो सेवक हूँ। हे सृजन हार, मैं तुम्हारी शरण मे हूँ—मेरे ऊपर अनुग्रह कर दीजिए।

अलंकार—(i) अनुप्रास—पीक पैकवर पनह।
(ii) छेकानुप्रास—पाक परमानन्दे, दरिया दिल, चाकरी चोर साई सेती, दाइम दूवा, हिकमति हलाल।
(iii) वक्रोक्ति—मैं ··· गदे ?
(v) श्लेप पुष्ट रूपक ·· दरिया।
(iv) गूढोक्ति—क्या·· ··हमारे।
(vi) विपम—चाकरी उजावै।

विशेष—(i) धर्म के ठेकेदारो के प्रति करारा व्यग्य है।

(ii) इस पद मे कवीर ने काजी-मुल्लाओ के मास भक्षण के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त किया है।

(iii) फारसी-अरवी के शब्दो के प्रयोग ने भावाभिव्यक्ति को सर्वथा स्वाभाविक वना दिया है।

(३२४)

अब हम जगत गौहन तैं भागे,
जग की देखि गति रांमहि ढूंरि लागे ।। टेक ।।
अयांन पनै थैं बहु बौरानें, संमझि परी तब फिरि पछितानें ।
लोग कहौ जाकै जो मनि भावै, लहै भुवगम कौन डसावै ।।
कबीर बिचारि इहै डर डरिये, कहै का हो इहां नै मरिये ।

शब्दार्थ – गौहन=गोहन, सग साथ । ढुरि लागे=ढुलक गये, झुक गये । अयाँन=अज्ञान । भुवगम=सर्प, मोह भ्रम ।

सन्दर्भ—कबीरदास ज्ञान-दशा का वर्णन करते हैं ।

भावार्थ—अब मै जगत के प्रति आसक्ति को त्याग रहा हूँ । ससार का जो दुःख दायी ढग है, उसको देखकर अब मै भगवान की ओर झुक गया हू । अज्ञान के कारण मैंने माया मोह के वशीभूत होकर अनेक पागलपन के काम किये । परन्तु अब ज्ञान हो जाने पर मैं अपने किए हुए कर्मों पर पश्चाताप कर रहा हूँ । मेरे बारे मे लोग जो चाहें सो कहे । परन्तु मैं अब भगवद्प्रेम के मार्ग को नही छोड़ूँगा । ज्ञान प्राप्त हो जाने पर भ्रम एव मोह रूपी सर्प कोई क्योकर डसावेगा ? कबीर खूब सोच-समझ कर कहते हैं कि विषय-वासना रूपी सर्प के डर से डरते रहना चाहिए। किसी के कहने से क्या होता है ? विषयासक्ति मे फँस कर अपना जीवन नष्ट नही करना चाहिए ।

अलंकार—(i) रूपकातिशयोक्ति—भुवगम ।
(ii) वक्रोक्ति पुष्ट निदर्शना लहै ' डसावै ।
(iii) गूढोक्ति—कहै का हों ।

विशेष—ज्ञान-प्राप्ति के पश्चात् विषयासक्ति का सर्प सदृश भयावह प्रतीत होना सर्वथा स्वाभाविक है । विषयासक्ति और ज्ञानावस्था परस्पर विरोधी हैं । समभाव की अभिव्यक्ति देखें—

मैं अब नाच्यो बहुत गुपाल ।
काम क्रोध को पहिरि चोलना कण्ठ विषय की माल । (सूरदास)
तथा— अबलौं नसानी, अब न नसैहौं ।
× × ×
मन मधुकर पन कै तुलसी, रघुपति-पद-कमल बसैहौं ।
(गोस्वामी तुलसीदास)

(३२५)

राग भैरूं

ऐसा ध्यान धरौ नरहरी,
सबद अनाहद च्यतन करी ।। टेक ।।
पहली खोजौ पंचे बाइ, बाइ ब्यंद ले गगन समाइ ।।
गगन जोति तहां त्रिकुटी संधि, रवि ससि पवनां मेलौ बंधि ।।

मन थिर होइत कवल प्रकासै कवला मांहि निरंजन बासै ।।
सतगुरु सपट खोलि दिखावै, निगुरा होइ तो कहां बतावै ।।
सहज लछिन ले तजो उपाधि, आसण दिढ़ निद्रा पुनि साधि ।।
पुहुप पत्र जहां हीरा मणीं, कहै कबीर तहां त्रिभुवन धणीं ।।

शब्दार्थ—बाइ=पच प्राण । व्यंद=बिंदु, शरीर । गगन=शून्य, ब्रह्मरन्ध्र रवि ससि=सूर्य और चन्द्र नाडिया, इडा पिंगला । कवल=कमल, सहस्रार कमल । प्रकाश=खिलता है । निरजन=निर्गुण निराकार ब्रह्म । सपट=संपुट, पुष्प कोष, डब्बा । निगुरा=बिना गुरु का जिसने गुरु से दीक्षा न ली हो । उपाधि=जगत के धर्म । निद्रा=समाधि । पुहुप पत्र=सहस्रदल कमल । हीरा मणि आत्मानन्द रूप द्वबहु मूल्य पदार्थ ।

सदर्भ—कबीरदास कायायोग का वर्णन करते है ।

भावार्थ—रे जीव, भगवान नरहरि का गम्भीर रूप से ध्यान करो और अनहद शब्द का चिन्तन करो । पहले पच प्राणो के स्वरूप का अनुसन्धान करो और शरीर की प्राणवायु लेकर ब्रह्मरन्ध्र मे समाहित करो । त्रिपुटी की सन्धि मे ही गगन ज्योति (दिव्य ज्योति) के दर्शन होते हैं । सुषुम्ना मे ऊपर की ओर चढने वाली प्राणवायु इडा और पिंगला नाडियो के मध्य समन्वय स्थापित कर देती है । इससे मन स्थिर होता है और सहस्रार कमल प्रकाशित होता है । उसी कमल मे निराकार निरजन का निवास है । सत्गुरु इस कमल का संपुट होकर साधक शिष्य को निरंजन के दर्शन करा देता है । परन्तु जिसने गुरु से दीक्षा नही ली है, उसको इस विषय मे क्या बताया जाए अर्थात् गुरु के बिना निरजन का दर्शन हो ही नही सकता हैं । अत. गुरु से दीक्षा लेकर सहज स्वरूप का साक्षात्कार करो और सासारिक उपाधियों (स्थूल जगत के धर्मो) को छोड दो । आसन जमा कर बैठ ज़ाओ और समाधिस्थ होने का प्रयत्न करो (अज्ञान रूपी निद्रा पर अधिकार करने की साधन करो) । कवीर कहते हैं कि सहस्रार कमल के पत्तो के मध्य मे ही आनन्द रूप हीरा-मणि है और वही पर त्रिभुवन पति का निवास है (उसी परम तत्व मे ध्यान लगाओ और उसी का चिन्तन करो ।

अलंकार—(1) वक्रोक्ति—निगुरा ......बतावै ।

विशेष—(i) नाथ सम्प्रदाय के प्रतीको का सुन्दर प्रयोग है ।

(ii) कायायोग की साधना का सुन्दर वर्णन ।

(iii) कायायोग साधन मात्र है ।

(iv) पचवायु—पच प्राण । यथा-प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान ।

(३२६)

इहि विधि सेविये श्री नरहरी,
मन की दुविध्या मन परहरी ।। टेक ।।
जहां नहीं जहां नहीं तहां कछू जांणि, जहां नही तहां लेहु पछांणि ।।

नांहीं देखि न जइये भागि, तहां नहीं तहाँ रहिये लागि ।।
मन मजन करि दसवै द्वारि, गंगा जमुना संधि बिचारि ।।
नादहि ब्यंद कि ब्यदहि नाद, नादहि ब्यद मिलै गोब्यंद ।।
गुणातीत जस निरगुन आप, भ्रम जेवड़ी जग कीयौ साप ।।
तन नांहीं कब जब मन नांहि, मन परतीत ब्रह्म मन मांहि ।।
परहरि बकुला ग्रहि गुन डार, निरखि देख निधि वार न पार ।।
कहै कबीर गुर परम गियांन, सुंनि मंडल मै धरौ धियांन ।।
प्यड परें जीव जैसे जहां, जीवन ही ले राखौ तहां ।।

शब्दार्थ—दसवै द्वारि=ब्रह्मरन्ध्र । जेवडी=रस्सी । बकुला=वल्कल, त्रिगुणात्मक आवरण । ग्रहि=पकडो । गुनडार=तात्त्विक गुण ।

सदर्भ—कबीरदास कायायोग की साधना का वर्णन करते हैं ।

भावार्थ—भगवान नरहरि की सेवा इस प्रकार करनी चाहिए कि मन की दुविधाओ का मन त्याग कर दे । जहाँ पर तुमको कुछ भी दृष्टिगोचर नही होता है, वहाँ भी उस तत्व वस्तु को पहचानो । उसी अगोचर तत्व मे जगत् है । उसको पहचानने का प्रयत्न करो । जहाँ तुमको कुछ भी न दिखाई दे, वहाँ से भागो मत । जहाँ गोचर तत्व न हो, वहाँ उसकी अनुभूति प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील बने रहना चाहिए । (शून्य में विराजमान परमतत्व मे अपना मन रमाओ) । मन को आसक्ति रहित करके पवित्र करो और उसको ब्रह्मरन्ध्र मे पहुँचा दो । इडा और पिंगला के मिलन-स्थल (त्रिपुटी) पर ध्यान एकाग्र करो । इस प्रकार ध्यान करो कि नाद-रूप परमतत्व ही सृष्टि-तत्व रूप विन्दु है अथवा बिन्दु ही नाद है । इनमे से कौन सा तत्व-नाद अथवा बिन्दु-यथार्थ एव मूल तत्व है । यह भी ध्यान करो कि ये नाद और बिन्दु दोनों गोविन्द (परम प्रभु) मे ही समाहित हैं । इस स्थिति की प्राप्ति होने पर न देवी-देवता रह जाते हैं और न पूजा एव जप रह जाते हैं, न भाई-बन्धु रह जाते है और न माता-पिता ही रह जाते हैं । स्वयं साधक गुणातीत होकर निर्गुण ब्रह्म के समान हो जाता है । यह जगत तो केवल रस्सी मे भ्रम से आरोपित सर्प सदृश ही प्रतीत होने लगता है । जब सकल्प-विकल्पात्मक मन का लय हो जाता है, तब शरीर भी नही रह जाता है । (उसका पुनर्जन्म नही होता है) । आत्मस्वरूप के प्रति निष्ठा जागने पर ब्रह्म-साक्षात्कार होने लगता है । त्रिगुणात्मक उपाधियों को छोडकर तात्विक गुण की डाल को पकड लो और फिर उस अनन्त परमतत्व के दर्शन करो । कबीर कहते हैं कि परम ज्ञानी गुरू का उपदेश है कि शून्यमण्डल मे अपना ध्यान एकाग्र करो । इस शरीर को छोडने पर जीव जिस अवस्था को प्राप्त होता है, उस अवस्था की प्राप्ति इस शरीर द्वारा ही कर लो । भाव यह है कि उपाधि के समाप्त होने पर व्यष्टि चैतन्य जिस परम चैतन्य मे लवलीन हो जाता है, शरीर धारण किए हुए ही जीव-चैतन्य की उसी परम चैतन्य मे प्रतिष्ठा वनाए रखने की साधना ही काम्य है ।

अलंकार—(i) विरोधाभास—मन की ···परहरी । व्यंज ····तहाँ ।
(ii) विभावना की व्यजना—जहाँ 'पछाणि । जहाँ ···लागि ।
(iii) सदेह की व्यजना—नादहिं ··· नाद ।
(iv) सभग पद यमक—व्यद गो व्यंद । नादहिं नाद ।
(v) उपमा—गुणातीत जस आप ।
(vi) रूपक—भ्रमजेवणी ····साप । परिहरि ··· ···डाटि ।
(vii) अतिशयोक्ति—वार न पार ।
(viii) पदमैत्री—निरखि देखि, वार न पार ।

विशेष—(i) नाथ सम्प्रदाय के प्रतीको का वर्णन है ।

(ii) कायायोग की प्रक्रिया का वर्णन है उसके माध्यम से ज्ञान, उपासना एव भक्ति का समन्वय प्रस्तुत किया है ।

(iii) नाद सूक्ष्म जीव तत्व है और बिन्दु सूक्ष्म शरीर तत्व है ।

(iv) व्यष्टि की चेतना का विश्व चेतना मे पर्यवसान ही साध्य है । इसी का प्रतिपादन है ।

(३२७)

अलह अलख निरंजन देव,
किहि गिधि करौं तुम्हारी सेव ।।टेक।।
बिश्न सोई जाको विस्तार, सोई कृस्न जिनि कीयौ ससार ।
गोब्यद ते ब्रह्मंडहि गहै, सोई रांम जे जुगि जुगि रहै ।।
अलह सोई जिनि उमति उपाई, दस दर खोलै सोई खुदाई ।
लख चौरासी रब परवरै, सोई करीम जे एती करै ।।
गोरख सोई ग्यांन गमि गहै, महादेव सोई मन की लहै ।
सिध सोई जो साधै इती, नाथ सोई जो त्रिभुवन जती ।।
सिध साधू पैकंबर हूवा, जपै सु एक भेष है जूवा ।
अपरंपार का नांउ अनत, कहै कबीर सोई भगवत ।।

शब्दार्थ—अलह=अल्लाह, अलभ्य । 'अलख' एवं 'निरजन' के सदर्भ मे 'अलभ्य' ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है । अलख=अलक्ष्य । निरजन=माया रहित । उमति=उम्मत=सम्प्रदाय । रब=परमेश्वर, पालन पोषण करने वाला ।

संदर्भ—कबीरदास नामो की विभिन्नता बताते हुए ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन करते हैं ।

भावार्थ—हे अलभ्य, अलक्ष्य तथा मायारहित भगवान ! मैं आपकी सेवा किस प्रकार करूँ ? विष्णु वही है जो सर्वत्र व्याप्त है, कृष्ण वही है जिसने सारे ससार की सृष्टि की है, गोविन्द वही है जो ज्ञान से ब्रह्माण्ड को ग्रहण करता है, राम वही है जो युग युगान्तर तक व्याप्त है । अल्लाह वही है जिसने पैगवर के नाम पर सम्प्रदाय उत्पन्न किया । जो इस शरीर के दस द्वारो (अथवा दसम् द्वार ब्रह्मरन्ध्र)

को खोलकर ज्ञान प्रदान करता है, वही 'खुदा' है। जो चौरासीलाख योनियो का पालन-पोषण करता है, वही वास्तव मे 'रब' (ईश्वर) है। इतनी उदारता दिखाने वाला ही वास्तव मे करीम (दया करने वाला) है। गोरख वही है जो ज्ञान द्वारा प्राप्त तत्व का साक्षात्कार कर लेता है। जो मन की बात को अन्तर्यामी होकर ग्रहण करता है, वही महादेव है। सिद्ध पुरुष वही है जो साधना द्वारा इतने तत्वो को जानता है। 'नाथ' वही है जो त्रिभुवन (सर्वज्ञ) यती (सयतेन्द्रिय) बन कर रहता है। सिद्ध, साधु, पैगम्बर आदि जो भी हुए हैं, वे सब एक ही तत्व का जप करते हैं। उसके भेष तो भिन्न-भिन्न रहे हैं अर्थात् ये भेद तो बाहरी आडम्बर मात्र हैं। वह तत्व अपार है और उसके अगणित काम हैं। कबीर कहते हैं कि अनेक कामो द्वारा अभिव्यक्त वह एक परम तत्व ही भगवान है।

अलंकार—(i) छेकानुप्रास—अलह, अलख, विष्णु विस्तार दस दर।
(ii) पुनरुक्तिप्रकाश—जुगि जुगि।
(iii) वृत्यानुप्रास—सिध साई साधै।
(iv) एक ही तत्व के अनेक नाम।
(v) परिकरांकुर—कई नाम साभिप्राय है, जैसे अलह, अलख, करीम।

विशेष—(i) विष्णु आदि विभिन्न भगवान न होकर विभिन्न तत्व हैं। यह है कबीर की वैज्ञानिक बुद्धिवादी दृष्टि।

(ii) परमात्मा मायारहित है। जीवन की क्रियाएँ माया द्वारा आबद्ध या ससीम है। इसी से परमात्मा की सेवा सम्भव नही है। उसका तो ध्यान मात्र ही किया जा सकता है।

जो जहन में आगया, वह खुदा कैसे हुआ ?

(iii) उस एक परम तत्व के ही विभिन्न कार्यों के कारण विभिन्न नाम हैं। एक ही व्यक्ति पिता, पुत्र, पति, चाचा भाई आदि कहा जाता है।

(iv) अद्वैतवाद का सुन्दर प्रतिपादन है।

(v) इस पद मे कबीर ने विभिन्न सम्प्रदायों मे भगवान के लिए प्रयुक्त होने वाले विभिन्न कामो के मूल मे रहने वाली भावना का उद्घाटन किया है। वे भगवान के विभिन्न गुणों के बोधक शब्द हैं। जो जिस गुण का साक्षात्कर कर लेता है, वह उसी के आधार पर भगवान का नामकरण कर लेता है। इस प्रकार वे विभिन्न नाम इन गुणों की उपाधि से उसी एक तत्व के व्यजक हैं। प्रत्येक नाम के द्वारा उसी एक ही तत्व की उपासना ही वास्तव मे सच्ची उपासना है। शेष केवल साम्प्रदायिक आडम्बर मात्र हैं। इस प्रकार कबीर ने बौद्धिक दृष्टि से एव दार्शनिक आधार पर समस्त सम्प्रदाय के उपास्य एव उपासना मे तात्विक अभेद स्थापित किया है।

(३२८)

तहां जौ रांम नांम ल्यौ लागै,
तौ जुरा मरण छूटै भ्रम भागै ।।टेक।।
अगम निगम गढ़ रचि ले अबास, तहुवां जोति करै परकास ।
चमकै बिजुरी तार अनत, तहां प्रभू बैठे कवलाकंत ।।
अखड मंडिल मंडित मड, त्रि स्नांन करै त्रीखड ।
अगम अगोचर अभिअतरा, ताकौ पार न पावै धरणींधरा ।।
अरध उरध बिचि लाइ ले अकास, तहुवां जोति करै परकास ।
टारचौ टरै न आवै जाइ, सहज सु नि मैं रह्यौ समाइ ।।
अबरन बरन स्यांम नहीं पीत, हाहू जाइ न गावै गीत ।
अनहद सबद उठै झणकार, तहां प्रभू बैठे समरथ सार ।।
कदली पुहुप दीप परकास, रिदा पंकज मै लिया निवास ।
द्वादस दल अभिअंतरि म्यत, तहां प्रभू पाइसि करिलै च्यत ।।
अमिलन मलिन घांम नहीं छांहां, दिवस न राति नहीं है तहाँ ।
तहाँ न ऊगै सूर न चद, आदि निरजन करै अनंद ।।
ब्रह्मंडे सो प्यंडे जांनि, मांनसरोवर करि असनांन ।
सोहं हसा ताकौ जाप, ताहि न लिपै पुन्य न पाप ।।
काया मांहै जांनै सोई जो बोलै सो आपै होई ।
जोति माँहि जे मन थिर करै, कहै कबीर सो प्रांणीं तिरै ।।

शब्दार्थ—गढ=कपाल, शून्य, ब्रह्मरन्ध्र । बिजुरी=बिजली । कुण्डलिनी त्रिखण्ड=तीनो लोक, तीनो गुण । त्रिअस्नान=तीनो कालो मे (सदैव) स्नान करते हैं । धरणधिरा=शेषनाग । रिदा=हृदय ।

संदर्भ—कबीरदास प्रतीको के माध्यम से परम तत्त्व की अनुभूति-दशा की व्यंजना करते हैं ।

भावार्थ—सहस्रार कमल मे विराजमान राम मे यदि ध्यान लगजाता है, तो जरा-मरण का वन्धन छूट जाता है और समस्त अज्ञान जन्य भ्रम समाप्त हो जाता है । ब्रह्मरन्ध्र रूपी किले मे एक आवास बना हुआ है । वहाँ तक चेतना का पहुँचना अत्यत कठिन है और वहाँ पहुँचने पर समस्त गति समाप्त हो जाती है । (अर्थात् वहाँ पहुँच जाने पर पुनरावर्तन नही होता है) । वही पर ब्रह्म-ज्योति का प्रकाश होता है । वहाँ पर कुण्डलिनी रूपी बिजली चमकती है और अनन्त तारागण भी खिले हुए हैं । वही पर भगवान कमलाकात विराजमान हैं । वही पर प्रकाश के अखण्ड मण्डलो से मडित परम ब्रह्म की ज्योति के दर्शन होते हैं । इस ज्योति मे तीनो कालों मे (सदैव) इसके त्रिगुण रूप निमज्जित रहते हैं । यह अगम्य और अगोचर प्रकाश आभ्यन्तर तत्व है (गुहानिहित है) । शेषनाग भी इसका पार नही पा सके हैं । पिण्ड और ब्रह्माण्ड के मध्य मे व्याप्त गगन-तत्त्व का ध्यान करो । वही

पर ज्योति का प्रकाश भी है। सहज रूप से शून्य मे प्रतिष्ठित रहने वाला यह चैतन्य-स्वरूप तत्व टस से मस नहीं होता है और न उसका आवागमन ही होता है। न तो उसे वर्णहीन कहा जा सकता है और न उसका कोई वर्ण (रग) ही बताया जा सकता है अर्थात् वह वर्णनातीत है। वह न काला है, न पीला है। वहाँ पर न हा-हू (शोरगुल) है और न गीत-नाच ही है। अर्थात् वहाँ पर लौकिक शब्द नहीं होता है। वहाँ पर अनाहद नाद की मधुर झकार होती है। वही पर समर्थ एव सारभूत तत्व भगवान विराजमान हैं। कदली पुष्प के समान हृदय-कमल मे उस दीपक स्वरूप ज्योति का प्रकाश है। हृदय-कमल मे स्थित अनाहद चक्र के बारह पंखडी वाले कमल के भीतरी भाग पर ध्यान केन्द्रित करो और उसी का चिन्तन करो। वही तुमको प्रभु का साक्षात्कार होगा। वहाँ न अपवित्रता है और न पवित्रता, न धूप है, न छाँह है, न दिन है न रात है, वहाँ न सूर्य का उदय होता है और न चन्द्रमा ही उदित होता है। ऐसे स्थल पर वह आदि निरजन पुरुष आनद पूर्वक निवास करता है। जो कुछ ब्रह्माण्ड मे है उसको पिण्ड मे जान लो। इस अभेद-ज्ञान रूप मुक्तावस्था को प्राप्त करके जो आत्म-स्वरूप रूपी मान-सरोवर मे स्नान करते हैं, निमग्न हो जाते हैं और ज्ञान स्वरूप होकर सोऽह (जीव-ईश्वर के अभेद द्वार व्यजित चैतन्य) का शाश्वत ध्यान करते हैं, वे पाप-पुण्य से लिप्त नही होते हैं अर्थात् वे कर्म-बन्धन से परे हो जाते हैं। शरीर मे उस परम तत्व को विराजमान जानकर, जो राम का नाम बोलता है वह आत्म-स्वरूप हो जाता है। कबीर कहते हैं कि जो व्यक्ति उस परम ज्योति मे मन को दृढतापूर्वक लगा देते हैं अथवा जिनका मन अविचल भाव से इस परम ज्योति मे लग जाता है, वे इस भवसागर से पार हो जाते हैं।

अलकार—(i) रूपकातिशयोक्ति—प्राय सम्पूर्ण पद मे नाथ पथ के प्रतीको का प्रयोग हुआ है।

(ii) सभग पद यमक—अबरन बरन, अमलिन मलिन,

(iii) पदमैत्री—अबास परकास, अगम निगम, अरध उरध। म्यत च्यत।

(iv) वृत्यानुप्रास—अगम अगोचर अभिअतरा, सहज सुनि समाइ, गाहन गावै गीत,

(v) सम्बन्धातिशयोक्ति—पार न-धरणीधरा।

(vi) विशेषोक्ति—टार्‌यौ टरै न।

(vii) छेकानुप्रास—टारयौ टरै। समरथ सार,

(viii) रूपक—रिदा पकज। मानसरोवर।

विशेष—(i) परम तत्व को इन्द्रयातीत एव वर्णनातीत बताया है। वह लौकिक वाणी के प्रतीत है।

(ii) तार अनत— प्रतीयमान विरोधो का वहाँ सामजस्य है।

(iii) 'हुउ'—गीत—वह शब्द लोक-वाणी के परे है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने 'हुंउ' का अर्थ 'हाहू -- एक गधर्व विशेष लिखा है और इस पंक्ति का अर्थ इस प्रकार किया है— "जहाँ पर न हाहू (गधर्व-विशेष) जाता है और न वह गीत गाता है।"

(iv) तहाँ न – ससार की इन सब वस्तुओं, प्रमेयों और वच्चो से परे का वह तत्व है।"

(v) जरा मरण छूटै तथा तहाँ न ऊगै सूर—इत्यादि। समभाव के लिए देखें—

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।

(श्रीमद्भगवत्गीता—१५/६)

(vi) नाथपथी प्रतीको का प्रयोग है।

(३२९)

एक अचंभा ऐसा भया,
करणीं थैं कारण मिटि गया ।।टेक।।
करणी किया करम का नास, पावक माँहि पुहुप प्रकास ।।
पुहुप माँहि पावक प्रजरै, पाप पुंन दोऊ भ्रम टरै ।।
प्रगटी बास वासना घोइ, कुल प्रगट्यौ कुल घाल्यौ खोइ ।।
उपजी च्यत च्यत मिटि गई, भौ भ्रम भागा ऐसी भई ।।
उलटी गंग मेर कूं चली, धरती उलटि अकासहि मिली ।।
दास कबीर तत ऐसा कहै, ससिहर उलटि राहु कौं गहै ।।

शब्दार्थ—करणी=कार्य, साधना। कारण=(i) अज्ञान, (ii) जन्म-मरण का मूलभूत कारण। पावक =(i) अग्नि, ज्ञान की अग्नि, (ii) मूलाधार चक्र की चण्डाग्नि। पुष्प=(i) अनासक्ति का आनद (ii) सहस्रार कमल। पावक=(i) ज्ञानाग्नि, (ii) निरजन रूपी परमतत्व। वास-वासना=(i) वासना-रूप दुर्गंध, (ii) कमल से निकलने वाली सुगध। कुल प्रगट्यौ=साधको के कुल का ज्ञान प्रकट हो गया है। कुल घाल्यौ=अज्ञान के कुल का नाश हो गया है। च्यत=ज्ञान। च्यत=सासारिक चिन्ताएँ। धरती=(i) जड माया, (ii) मूलाधार चक्र। आकाश =(i) ब्रह्म, (ii) शून्य चक्र, ब्रह्मरन्ध्र। ससिहर=चन्द्रमा (i) चैतन्य सहस्रार से निस्सृत अमृत। राहु=(i) अज्ञान, (ii) विषयो का विष।

सन्दर्भ—इस पद मे कबीर आत्म-स्वरूप प्राप्ति की साधना का वर्णन करते हैं। इस साधना के दो पक्ष हैं—(i) ज्ञान एवं भक्ति तथा (ii) काया योग। इस पद का अर्थ दोनों ही पक्षो मे पूर्णतः घटित हो जाता है। यथा—

ज्ञान एवं भक्ति परक अर्थ—एक ऐसे आश्चर्य की वात होगई कि कार्य के द्वारा कारण समाप्त हो गया अर्थात् साधना के द्वारा अज्ञान का नाश होगया। साधना ने कर्तृत्व के अभिमान एव कर्मो के प्रति फलासक्ति को समाप्त कर दिया

और ज्ञान रूपी साधना की अग्नि मे अनासक्ति का आनन्द रूपी पुष्प विकसित हो गया। अनासक्ति के इस पुष्प के मध्य ज्ञान की अग्नि जलती है। इससे पाप-पुण्य दोनो ही प्रकार की फलासक्ति भ्रमरूप होकर समाप्त होगई है। उस कमल की सुगन्ध के प्रकट होने से समस्त विषय-वासना समाप्त होगई है और कुल सासारिक वन्धनो को समाप्त करके पूर्ण ज्ञान का उदय हो गया है। चिंतामणि स्वरूप भगवान का बोध जाग गया है और सासारिक चिन्ताएँ समाप्त होगई हैं। इससे कुछ ऐसी अनोखी बात होगई है कि सासारिक भ्रम दूर हो गया है। इन्द्रियो के प्रवाह (विषयासक्ति) की गगा उल्टी होकर (विषयो से पराङ्मुख होकर) हिमालय पर्वत (उद्गम स्थल) की ओर चल दी है, अर्थात् इन्द्रियाँ अन्तर्मुखी होकर अपने मूलभूत कारण शुद्ध चैतन्य की ओर अभिमुख होगई हैं। जड माया (सासारिक विषय-वासनाओ की प्रवृत्ति) जो अभी तक बहिर्मुख थी, अब अन्तर्मुख होकर ज्ञान और भक्ति मे समाहित होगई है। भक्त कबीर उस रहस्य का उद्घाटन करते हुए इस प्रकार कहते हैं कि इस स्थिति के प्राप्त होने पर चन्द्रमा उलट कर राहु को ही ग्रस लेता है अर्थात् चैतन्य अपने आपको आवृत्त करने वाले अज्ञान को खा जाता है।

काया योग परक अर्थ—एक ऐसा आश्चर्य घटित होगया है कि योग की साधना से जन्म-मरण का मूलभूत कारण समाप्त हो गया। इससे कर्म के बन्धन भी समाप्त होगये। मूलाधार चक्र की चण्डाग्नि द्वारा विभिन्न चक्र विकसित होगये उनमे स्फूर्ति आगई। चक्र तेज युक्त हो गये और इससे पाप एव पुण्य का भ्रम समाप्त हो गया। इस पक्ति का अर्थ इस प्रकार भी किया जा सकता है कि—मूलाधार चक्र की चण्डाग्नि से सहस्रार कमल विकसित हो गया। इस कमल के निरजन रूपी परमतत्त्व अग्निवत् प्रज्वलित हो गया है और पाप-पुण्य का भ्रम समाप्त हो गया है।

इस कमल मे निकली हुई सुगध ने सासारिक वासनाओ का कलमष धो डाला है। अथवा समस्त वासनाओ को समाप्त करके इन विभिन्न कमल-चक्रो की सुगध प्रकट हुई है। अब पूर्ण तत्त्व का प्रकाश हो गया है तथा ससार मिट गया है। साधना से प्राप्त ज्ञान-रूपी चिन्तामणि के प्राप्त होने पर साँसारिक चिन्ताओ से मुक्ति मिल गई है और सबसे विचित्र बात यह हुई कि सासारिक सशय भी समाप्त हो गये हैं। कुंडलिनी मूलाधार चक्र से उत्थित होकर सहस्रार की ओर चल दी है तथा कुण्डलिनी रूपी पृथ्वी की शक्ति शून्य-गगन तत्त्व मे समाहित हो गई है। सहस्रार-कमल मे उदित चन्द्रमा का अमृत विषयो के विषरूप राहु को आत्मसात् कर रहा है अर्थात् अमृत्व पूर्ण आत्मानुभव मोह को नष्ट कर रहा है। कबीरदास ने ऐसे ही कायायोग के रहस्य को स्पष्ट किया है।

अलकार—(1) रूपकातिशयोक्ति—प्राय समस्त पद—करणी, कारण, पावक पुहुप इत्यादि।

(ii) विरोधाभास—करणी तें कारण का मिटना, करणी तें कारण का नास। उपजी च्यत—गई। ससिहर—गहै।

(iii) विषय—पावक माहि पुहुप प्रकास, पुहुप माहि पावक प्रज रै।

(iv) वृत्यानुप्रास—करणी क्रिया करम, पावक पुहुप प्रकास। पुहुप पावक प्रजरै पाप पुन्य, भौ भ्रम, भागा।

(v) रूपक—वास—वासना, भौ भ्रम।

(vi) श्लेष—आद्यन्त

(vii) यमक—कुल कुल, च्यत च्यत

(viii) भेदकातिशयोक्ति की व्यजना—ऐसी भई।

विशेष—(1) इस पद मे उलट बासी शैली की प्रतीकात्मकता दर्शनीय है।

(ii) प्रतीको के माध्यम से परम तत्व की अनुभूति दशा की सुन्दर व्यजना है।

(iii) इस पद मे कायायोग की साधना का सुन्दर वर्णन है।

(iv) चक्र—देखे टिप्पणी पद सख्या ४, २१०

विकास देखे टिप्पणी पद सख्या ४।

उलट बासी—देखे टिप्पणी पद स ८०

शून्य गगन तथा निरजन—देखे टिप्पणी पद स १६४।

चिंतामणि—देखे पद स० १२३। समभाव के लिए यह पद द्रष्टव्य है—

अबलौं नसानी, अब न नसैहौं।
राम कृपा भव-निसा सिरानी, जागे पुनि न डसैहौं।
पायो नाम चारुचिंतामनि, उर कर तें न खसैहौं।
स्यामरूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहिं कसैहौं।
परवस जानि हँस्यौ इन इन्द्रिन, निज बस ह्वै न हँसैहौं।
मन मधुकर पन कै तुलसी, रघुपति-पद-कमल बसैहौं।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(v) इस पद की कई पक्तियो के श्लिष्ट प्रयोग से ज्ञानयोग और कायायोग दोनो का अथ निकलता है। परन्तु विशेपता यह है कि दोनो का प्राप्य भ्रम नाश, ज्ञान तथा ईश्वर प्रेम है।

(३३०)

है हजूरि क्या दूरि बतावै,
दुंदर बाँधें सुन्दर पावै ॥टेक॥
सो मुलनां जो मन सूं लरै, अह निसि काल चक्र सूं भिरै॥
काल चक्र का मरदै मांन, तां मुलनां कूं सदा सलांम॥
काजी सो जो काया विचारै, अहनिसि ब्रह्म अगनि प्रजारै॥

सुप्पनै बिंद न देई झरनां, ता काजी कूं जुरा न मरणां ।।
सो सुलितांन जु द्वै सुर तांनै, बाहरि जाता भीतरि आनै ।।
गगन मंडल मै लस्कर करै, सो सुलितांन छत्र सिरि धरै ।।
जोगी गोरख गोरख करै, हिंदू रांम नाम उच्चरै ।।
मुसलमांन कहै एक खुदाइ कबीरा कौ स्वांमी घटि घटि रह्यौ समाइ ।।

शब्दार्थ - हजूरि=समीप । दु दर=द्वन्द्व, भेदभाव । बाध=वश मे करले, अपने नियन्त्रण मे करले । मुलना=मुल्ला, मसजिद मे नमाज पढाने वाला । बिंद न देई झरना=काम के वशीभूत न होना । जुटा=जटा, वृद्धावस्था । सुलतान= बादशाह । लसकर=लशकर, सेना ।

सन्दर्भ—कबीर पैगम्बरी मुसलमानो को उनकी सकुचित वृत्ति के प्रति सावधान करते हैं ।

भावार्थ—रे मुल्ला, वह भगवान तो तेरे पास है । तुम उसको दूर (सातवें आसमान पर) क्यो बताते हो ? जो अहकार जन्य भेद-भावना पर नियत्रण कर लेता है अर्थात् सम्प्रदाय-भावना के परे हो जाता है वही उस सुन्दर परम तत्व का साक्षात्कार करता है । असली मुल्ला वही है जो अपने मन के विकारो से सघर्ष करता है और रात-दिन काल चक्र से लडता है अर्थात् मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहता है । जो काल चक्र का मान नष्ट कर देता है अर्थात् मृत्यु (मृत्यु के भय) को जीत लेता है, वह मुल्ला सदैव वदनीय है । वास्तविक काजी वही है जो अपने शरीर मे विद्यमान चैतन्य-तत्त्व का चिन्तन करता है और इस प्रकार रात-दिन ज्ञानाग्नि को प्रज्वलित करता रहता है । जो काजी स्वप्न मे भी वीर्यपात नही होने देता अर्थात् कभी भी काम के वशीभूत नही होता है, उसको न वृद्धावस्था सताती है और न मृत्यु ही उसको व्यापती है । वास्तविक बादशाह वही है जो अपने श्वास प्रश्वास रूपी दो स्वरो को नियन्त्रित रखता है और बाहर जाते हुए प्राणो को पूरक एव कुम्भक द्वारा भीतर ले जाता है, इस प्रकार नाव को ऊद्ध्वं गति देते हुए युद्ध करता है । वही सुलतान सिर पर छत्र धारण करता है, अर्थात् राज्य का अधिकारी बनता है, जो शून्य मण्डल मे जाकर अपना डेरा डाल देता है अर्थात् अपनी चेतना को ब्रह्मरन्ध्र मे स्थित कर देता है । गोरखपथी योगी 'गोरख' जपता है, हिन्दू राम-नाम का उच्चारण करता है, मुसलमान कहते हैं कि उनका खुदा ही एक मात्र परमात्मा है, परन्तु कबीरदास कहते हैं कि उनका स्वामी (भगवान) प्रत्येक घट मे समाया हुआ है अर्थात् वह सर्वव्यापी है ।

अलकार—(i) गूढोक्ति—है—बतावै ।
(ii) पदमैत्री—दु दर सुन्दर,
(iii) रूपकातिशयोक्ति—द्वसुर, लसकर
(iv) यमक—गोरख गोरख,
(v) पुनरुक्ति=घट घट

विशेष—(i) इस पद मे साम्प्रदायिक भावना के ऊपर करारी चोट है।

(ii) कबीर का कहना है कि सभी सम्प्रदायो मे भेद-बुद्धि है। अतः ये अपने ईश्वर को एक विशेष रूप मे सीमित करके देखते हैं।

(iii) विभिन्न शब्दो के व्युत्पत्तिपरक अर्थ देकर मूल धर्म-भावना के उद्बोधन का प्रयास है।

(३३१)

आऊँगा न जाऊँगा, मरूँगा न जीऊँगा।
गुरु के सबद मै रमि रमि रहूँगा ।।टेक।।
आप कटोरा आपै थारी, आपै पुरिखा आपै नारी ।।
आप सदाफल आपै नींबू, आपै मुसलमांन आपै हिंदू ।।
आपै मछ कछ आपै जाल, आपै झींवर आपै काल ।।
कहै कबीर हम नांहीं रे नांही, नां हम जीवत न मुवले मांहीं ।।

शब्दार्थ—मुवले=मरे हुए। सदाफल=नारियल।

सन्दर्भ—कबीरदास जीवन के मिथ्यात्व द्वारा एक परम तत्त्व की सत्ता का प्रतिपादन करते हैं।

भावार्थ—शुद्ध चैतन्य का प्रतिनिधित्व करते हुए कबीर कहते हैं कि मैं, न जन्म लूँगा, न मरूँगा और न यह सामान्य जीवन ही व्यतीत करूँगा। मैं गुरु के उपदेश द्वारा प्रतिपादित परम तत्व (राय) मे ही रमता रहूँगा। आत्मा तत्व को सब कुछ बताते हुए वह कहते हैं कि वही थाली है और वही कटोरा है। वह स्वय ही पुरुष है, और वही नारी है। वही सदैव फलने वाला नारियल है, वही नीबू है, वही मुसलमान है और वही हिन्दू है। वही मछली है, वही कछुआ है। वही उनको फँसाने वाला जाल है, वही उस जाल को फैलाने वाला मछुआ है तथा वही उनको मारने वाला काल है। कबीरदास कहते हैं कि हमारा कोई किसी प्रकार का अस्तित्व नही है। हम न जीवित कहे जा सकते हैं और न मरे हुए ही कहे जा सकते हैं।

अलंकार—(i) पद मैत्री—आइगा—जीऊँगा। मछ कछ।
(ii) पुनरुक्तिवदाभास—जाऊँगा मरूँगा।
(iii) उल्लेख—एक ही तत्व का विभिन्न रूपों मे वर्णन होने के कारण।
(iv) पुनरुक्ति प्रकाश—नाही रे नाही,

विशेष—(i) समस्त दृश्यमान जगत (रूपात्मक जगत) के मूल मे एक ही तत्व की सत्ता बताकर 'अद्वैत वाद' का प्रतिपादन है।

(ii) आऊँगा—रहूँगा—शुद्ध चैतन्य सर्वव्यापी एव सदा रहने वाला तत्व है। अत उसका न आने का प्रश्न है और न जाने का, न जन्म का और न मरण का। जड माया चैतन्य मे विना गतिशील नही हो सकती है। जड मे गति, और

जन्म मृत्यु आदि की धारणा ही क्योंकर की जाए ? अत जन्मादिक, लोक-परलोक मे जाना आदि प्रतीति मात्र है ।

(iii) कहै कबीर माँही । जीव की पृथक सत्ता केवल मिथ्या प्रतीति मात्र है । पर वह माया के ससर्ग से पृथक लगना है । शुद्ध आत्मतत्व के लिए जन्म-मरण शब्दो का व्यवहार व्यर्थ एव अनुपयुक्त है । प्राण तथा इन्द्रिय-व्यापार से असपृक्त होने के कारण साधक जीव सामान्य व्यवहार मे जीवित नही है । परन्तु ससार का व्यवहार करते हुए प्रतीत होने के कारण मरे हुए भी नही कहे जा सकते हैं । इसी से न हम जीवित हैं और न मरे हुओ मे ही हैं ।

(३३२)

हंम सब माँहि सकल हम मांही,
हम थैं और दूसरा नाही ।।टेक ।
तीनि लोक मै हमारा पसारा, आवागमन सब खेल हमारा ।।
खट दरसन कहियत हम भेखा, हमही अतीत रूप नही रेखा ।।
हमही आप कबीर कहावा, हमही अपनां आप लखावा ।।

सदर्भ—कबीर उसे अवस्था का वर्णन करते हैं जब अश-अशी, भक्त भगवान, आत्मा-परमात्मा मे कोई अन्तर नही रह जाता है ।

भावार्थ—हम सभी मे हैं और सब हम मे हैं । हम से भिन्न और कोई नही है । तीनो लोको मे हमारा ही प्रसार है तथा यह जन्म मृत्यु मेरी लीला मात्र है । छ दर्शन हमारे ही वेष कहे जाते हैं अर्थात् छ हो दर्शनो मे हमारे (शुद्ध चैतन्य) के ही विभिन्न रूपो का वर्णन है । हम अर्थात् चैतन्य सबसे परे का तत्व है । हमारा न कोई रूप है और न कोई आकार है । हम स्वय ही कबीर कहे जाते हैं और हमी ने अपना आत्म तत्व विभिन्न रूपो मे दिखाया है ।

शब्दार्थ—अलंकार—यमक— आप-आप

विशेष—(i) तीन लोक—आकाश, पृथ्वी, पाताल

(ii) षट्दर्शन— साख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमासा और वेदात ।

(iii) उस स्थिति का वर्णन करता है जब साधक 'अह' ब्रह्मास्मि का उद्घोष कर उठता है ।

(iv) अद्वैतवाद का सुन्दर प्रतिपादन है ।

(v) वह परमतत्त्व सर्वथा वर्णनातीत है । इसी से विभिन्न प्रकार से उसका वर्णन करके वाणी की असमर्थता प्रकट की गई है ।

(३३३)

सो धन मेरे हरि का नांउ,
गाँठि न बाँध्यौ बेचि न खांउ ।।टेक।।
नांउ मेरे खेती नांउ मेरे बारी, भगति करौं मै सरन तुम्हारी ।।
नांउ मेरे सेवा नांउ मेरे पूजा, तुम्ह बिन और न जांनौं दूजा ।।

नांउ मेरे बंधव नाँव मेरे भाई, अत बिरियाँ नाँव सहाई ।।
नांउ मेरे निरधन ज्यूं निधि पाई, कहै कबीर जैसैं रंक मिठाई ।।

शब्दार्थ—बारी=वाटिका । बधन=बान्धव ।

संदर्भ—कबीरदास प्रभु-नाम की महिमा का प्रतिपादन करते हैं ।

भावार्थ मेरे पास हरि का नाम रूपी वह धन है जिसे मैं न गाँठ मे बाँधता हूँ और न बेचकर खाता हूँ । यह नाम ही मेरी खेती है और यही मेरी बारी है । मैं तुम्हारी ही भक्ति करता हूँ और तुम्हारी शरण मे हूँ । आपका नाम ही मेरी सेवा है, नाम ही पूजा है । मैं आपके अतिरिक्त अन्य किसी देवता को नही जानता हूँ । भगवान का नाम ही मेरे लिए बान्धव है और भगवन्नाम ही मेरा भाई है । अन्त समय मे मुझको आपके नाम का ही सहारा है । भगवान का नाम मेरे लिए निरधन को प्राप्त हो जाने वाले खजाने के समान है । कबीर कहते हैं कि (गुरु के द्वारा प्राप्त) भगवन्नाम मेरे लिए ऐसे ही है जैसे किसी भिखारी को मिठाई मिल गई हो ।

अलंकार—(1) रूपक—हरि को नाँउ धन ।
(11) व्यतिरेक—गाँठि—खाउँ ।
(111) उल्लेख—नाम का विभिन्न रूपो मे वर्णन है ।
(1V) उपमा—नाँउ' ' मिठाई ।

विशेष—(1) गाँठि न बाँध्यौ वेचि न खाउँ तथा नाम मेरे सेवा आदि कथन के द्वारा कवि यह कहना चाहता है कि हरि का नाम साधन न होकर साध्य ही है । सामान्य धन की भाँति न तो वह उसका सग्रह (Hoardings) ही करते हैं और न उसके वदले वह किसी अन्य उपयोगी वस्तु को प्राप्त करने की आशा ही करते हैं । हरिनाम के द्वारा कवीर भुक्ति-मुक्ति कुछ भी प्राप्त नही करना चाहते है ।

(11) खेती-बारी सासारिक वैभव से तात्पर्य है ।

(111) इस पद मे अनन्यता की अभिव्यक्ति है तथा भक्ति को साधन एव साध्य दोनो ही वताया गया है । गोस्वामी तुलसीदास भी भक्ति का सबसे बडा फल भक्ति ही मानते हैं । यथा—

जो जगदीस तो अति भलौ जो महीस बड़ भाग ।
तुलसी चाहत जनम भर राम-चरन अनुराग ।

वस्तुत भक्त के सहजशील का सजीव चित्रण है—

धर्म न अर्थ न काम रुचि गति न चहौं निर्वान ।
जनम-जनम रति राम पद यह वरदान न आन ।

(३३४)

अब हरि हूँ अपनौं करि लीनौं,,
प्रेम भगति मेरौ मन भीनौं ।।टेक।।
जरै सरीर अग नहि मोरौं, प्रान जाइ तौ नेह न तौरौं ।।

च्यंतामणि क्यू पाइए ठोली, मन दे रांम लियौ निरमोली ।।
ब्रह्मा खोजत जनम गँवायौ, सोइ रांम घट भीतरि पायौ ।।
कहै कबीर छूटी सब आसा, मिल्यौ राम उपज्यौ बिसवासा ।।

शब्दार्थ—भीनौं=भीग गया है, युक्त हो गया है। मोरौं=मोड़ूँगा। ठोली=योही विना परिश्रम के। निरमोली=अमूल्य। आसा=सासारिक आशाएँ अथवा अन्य प्रकार की साधनाओ से मुक्ति प्राप्त होने की आशा।

सदर्भ—कबीर प्रभु-भक्ति के प्रति अपनी दृढ निष्ठा व्यक्त करते हैं।

भावार्थ—अब भगवान ने मुझको अपना बना लिया है और मेरा मन उनके प्रेम एव उनकी भक्ति के रस मे पूरी तरह निमग्न (भीग) गया है। प्रेम-भक्ति के मार्ग पर चलते हुए मेरा शरीर जल भी जाए, तब भी मैं इससे अपने अगो को नही मोड़ूगा—इस मार्ग को नही छोड़ूँगा। यदि प्रभु की भक्ति मे मुझे अपने प्राण देने पडे, तब भी मैं भगवान के प्रति प्रेम को समाप्त नही करूँगा। हरि-रूपी चिन्तामणि ऐसे ही बिना परिश्रम के क्या कभी प्राप्त होती है? मैंने अमूल्य राम-नाम को अपना मन देकर प्राप्त किया है। मैंने जिस भगवान को इधर-उधर विभिन्न साधनाओ मे खोजते हुए अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत कर दिया। उसी भगवान को मैंने अपने हृदय के भीतर प्राप्त कर लिया है। कबीरदास कहते है कि अब मेरी समस्त सासारिक आशाएँ समाप्त हो गई हैं। राम का साक्षात्कार हो जाने से अब मेरे मन मे यह विश्वास उत्पन्न हो गया है कि मेरा उद्धार हो जाएगा।

अलकार—(i) विशेषोक्ति की व्यजना—जरै ' तोरौ।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—च्यतामणि।
(iii) वक्रोक्ति—क्यू पाइए ठोली।

विशेष—भक्ति के उदय की आनन्दावस्था का वर्णन है।

(३३५)

लोग कहैं गोब्रधनधारी,
ताकौ मोंहि अचभौ भारी ।।टेक।।
अष्ठ कुली परबत जाके पग की रैनां, सातौं सायर अंजन नैनां ।।
ऐ उपमां हरि किती एक औपै, अनेक मेर नख ऊपरि रोपै ।।
धरनि अकास अधर जिनि राखी, ताकी मुगधा कहै न साखी ।।
सिब बिरचि नारद जस गावै, कहैं कबीर वाको पार न पावै ।।

शब्दार्थ—रैना=रेणु-धूलि। सायर=सागर। ओपै=शोभित। मेर=सुमेरु। रोपै=गाडना, जमाना। अधर=बिना किसी आधार के। मुगधा=मूर्ख। साखी=साक्ष्य, साक्षात्कार।

सन्दर्भ—कबीर भगवान को वाणी के परे बताते हैं।

भावार्थ—लोग भगवान को गोवर्धन पर्वत को धारण करने वाला कह कर उसकी शक्ति का वर्णन करते हैं। उनकी इस बुद्धि पर मुझे बहुत आश्चर्य होता है।

सम्पूर्ण अष्ट कुल के पर्वत उस परमात्मा के पैर की धूल मात्र हैं और सातों समुद्र उसके नेत्रो के अजन मात्र हैं। उन भगवान ने अनेक सुमेरु पर्वत अपने नाखून के ऊपर टिका रखे हैं। ऐसे शक्तिशाली भगवान के लिए गोवर्धन धारी की उपमा कहाँ तक उपयुक्त हो सकती है? जिसने पृथ्वी और आकाश को बिना किसी आधार के (निरावलब) टिका रखा है, उन भगवान के साक्षात्कार का वर्णन अज्ञानी मूर्ख कदापि नही कर सकते हैं, अर्थात् मूर्ख उनके स्वरूप की क्या साखी देंगे? कबीरदास कहते है कि शिव, ब्रह्मा और नारद उस परमब्रह्म के यश का निरन्तर गान करते हैं परन्तु उसकी शक्ति का पार वे भी नही पा सकते है।

अलंकार—(i) परिकराकुर—गोवर्धन धारी।
(ii) अतिशयोक्ति—अष्ट कुली' 'नैना।
(iii) वक्रोक्ति—किती एक ओपै।
(iv) व्यतिरेक—अनेक मेर·······रोपै।
(v) विभावना की व्यजना—धरनि·······राखी।
(vi) सम्बन्धातिशयोक्ति—पार न पावै।

विशेष—(i) असीम ब्रह्म को ससीम मानने की धारणा का प्रत्याख्यान किया गया है। इस प्रकार सगुण भक्ति का विरोध है।

(ii) असीम तत्त्व का ससीम एवं सगुण बिम्बो से प्रतिपादन है।

(३३६)

राम निरंजन न्यारा रे,
अंजन सकल पसारा रे ॥टेक॥
अजन उतपति वो उंकार, अंजन मांड्या सब बिस्तार ॥
अंजन ब्रह्मा सकर इंद, अजन गोपी संगि गोव्यद ॥
अंजन बाणी, अंजन बेद, अजन कीया नांनां भेद ॥
अंजन विद्या पाठ पुरांन, अंजन फोकट कथहि गियांन ॥
अजन पाती अंजन देव, अंजन की करै अजन सेव ॥
अंजन नाचै अंजन गावै, अंजन भेष अनंत दिखावै ॥
अंजन कहौं कहाँ लग केता, दांन पुनि तप तीरथ जेता ॥
कहै कबीर कोइ बिरला जागै, अंजन छाड़ि निरंजन लागै ॥

शब्दार्थ—निरजन = माया रहित तत्त्व। अंजन = माया।

सन्दर्भ—कबीर कहते हैं कि यह समस्त ससार माया का ही पसारा है।

भावार्थ—माया रहित राम समस्त जगत से परे एव भिन्न है। यह समस्त जगत केवल माया का प्रसार है। ओंकार की उत्पत्ति माया से है, माया ने ही इन विभिन्न नाम-रूपो मे विस्तार किया है। ब्रह्मा, शकर, इन्द्र तथा गोपियो के साथ रहने वाला कृष्ण सभी कुछ माया ही है। वाणी और वेद माया ही हैं। माया ने ही ये विभिन्न रूपात्मक भेद किए हैं अथवा माया के आश्रय से ही यह रूपात्मक जगत

ब्रह्म से भिन्न प्रतीत होता है। माया ही विद्या, पाठ और पुराण है। यह व्यर्थ का वाचिक ज्ञान भी माया ही है। पूजा करने के साधन पत्रादिक तथा पूज्य देव-माया ही हैं। माया रूप पुजारी माया रूप देवता की सेवा करता है। माया ही नाचती है और माया ही गाती है। माया ही अनन्त भेषो मे अपने आपको प्रदर्शित करती है। माया के बारे मे कहाँ तक कहूँ और उसके कितने रूपों का वर्णन करूँ ? दान, पुण्य, तप, तीर्थ आदि जितने जो कुछ हैं, सब माया ही हैं। कबीर कहते हैं कि किसी विरले को ही माया सम्बन्धी यह बोध होता है। और वही माया का परित्याग करके माया रहित तत्त्व (निरजन) मे लीन होता है (उसके प्रति अनुरक्त होता है)।

अलंकार—उल्लेख माया का विभिन्न रूपो मे वर्णन है।

विशेष—प्रकारान्तर से शाकर अद्वैत के मायावाद का प्रतिपादन है। जो कुछ भी अभिधेय है, वह सब माया है। उससे अतीत एव केवल अनुभूति गम्य ही निरजन तत्त्व है।

(३३७)

अंजन अलप निरजन सार,
यहै चीन्हि नर करहु विचार ॥टेक॥
अंजन उतपति बरतनि लोई, बिना निरंजन मुक्ति न होई ॥
अंजन आवै अंजनि जाइ निरजन सब घट रह्यो समाइ ॥
जोग ध्यांन तप सबै विकार, कहै कबीर मेरे रांम अधार ॥

शब्दार्थ—अजन=माया, दृश्यमान जगत। बरतनि=बरतना, व्यवहार करना।

सन्दर्भ— कबीर कहते हैं कि माया रूप जगत मिथ्या है। केवल माया रहित तत्त्व ही सार तत्त्व है।

भावार्थ—माया अथवा माया जनित जगत अल्प एव मिथ्या है। निरजन (ब्रह्म) भूमा एव सार तत्व है। रे मानव, यह समझकर चिन्तन करो अथवा इस प्रकार विवेक पूर्वक ब्रह्म को जानने के लिए चिन्तन करो। लोग माया के द्वारा ही उत्पन्न होते हैं और माया-जनित ससार मे ही व्यवहार करते हैं। निरजन के प्रति अनुरक्त हुए बिना मुक्ति नही होती है अथवा निरजन अवस्था मे अवस्थित हुए बिना मोक्ष नही होती है। माया ही जन्म लेती है और माया ही मरती है अर्थात् यह आवागमन तो माया का ही है। यह माया रहित निरजन ही समस्त अन्त करणो मे कूटस्थ रूप से अवस्थित है। जोग, ध्यान, तप आदि सब माया के ही विकार हैं। कबीर कहते हैं कि पाया रहित राम ही मेरे आधार है अर्थात् उस परम तत्व की अनुभूति ही मेरा एक मात्र साधन और साध्य है।

अलंकार—अनुप्रास—'अ' की आवृत्ति होने के कारण।

विशेष—(1) शाकर अद्वैत का प्रतिपादन है। 'ब्रह्म-सत्य जगन्मिथ्या' का सरल शैली मे प्रतिपादन है।

(ii) समभाव के लिए देखें—

मैं अरु मोर तोर तै माया । जेहि बस कीन्हे जीव निकाया ।
गो गोचर जहँ लगि मन जाई । सो सब माया जानेहु भाई ।
तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ । विद्या अपर अविद्या दोऊ ।
एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा । जा बस जीव परा भव कूपा ।
एक रचइ जग गुन बस जाकें । प्रभु प्रेरित नहि निज बल ताकें ।
ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं । देखत ब्रह्म समान सब माहीं ।

× × ×

माया ईस न कहूँ जान-कहिअ सो जीव ।
बंध मोच्छ प्रद सर्ब पर माया प्रेरक सीव ।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(३३८)

एक निरंजन अलह मेरा,
हिंदू तुरक दहूँ नही मेरा ।।टेक।।
राखूं ब्रत न महरम जांनां, तिसही सुमिरू जो रहै निदांना ।
पूजा करूं न निमाज गुजारूं, एक निराकार हिरदै नमसकारू ।।
नां हज जांऊं न तीरथ पूजां, एक पिछांण्या तौ का दूजा ।।
कहै कबीर भरम सब भागा, एक निरंजन सूँ मन लागा ।।

शब्दार्थ— निदान=अत मे । पिछाण्या= पहचान लिया । नेरा=पास ।

सन्दर्भ—कबीर परम तत्व निरजन के प्रति अनुरक्त होने का उपदेश देते हैं ।

भावार्थ—मेरी निष्ठा तो एकमात्र मायारहित अल्लाह (परमात्मा) मे है । हिन्दू और मुसलमान दोनो मे कोई भी उसके निकट नही पहुँच पाए हैं । अथवा इसका अर्थ इस प्रकार भी किया जा सकता है कि मुझे हिन्दू अथवा मुसलमान किसी भी सम्प्रदाय से कोई वास्ता नही है । मे न व्रत रखता हूं और न मे मुहर्रम मे विश्वास रखता हूँ । मैं तो केवल उसका स्मरण करता हूँ जो एकमात्र सत्य होने से अन्तत अवशिष्ट रह जाता है । अर्थात् जो माया एव उसके सम्पूर्ण प्रपच के लुप्त हो जाने के पश्चात् अवशिष्ट रह जाता है । मे न किसी देवता की पूजा करता हू और न मसजिद मे जाकर नमाज ही पढता हूँ । मैं तो एक मात्र निराकार परमात्मा को हृदय मे धारण करके नमस्कार करता हूँ । न मैं हज (मक्का) जाता हूँ और न तीर्थों मे जाकर पूजा ही करता हूँ । अब मैंने तो एक परम तत्त्व को पहचान लिया है, तब फिर अन्य किसी देवता अथवा किसी साधना की क्या आवश्यकता है ? कबीरदास कहते है कि मेरे समस्त भ्रम नष्ट हो गये हैं और एक मात्र तत्त्व निरंजन मे मेरा हृदय रम गया है ।

अलकार—वक्रोक्ति—एक' ····क्या दूजा ?

विशेष --(i) वाह्याचार का विरोध है। हिन्दू और मुसलमान दोनो के धार्मिक लोकाचार की निरर्थकता का प्रतिपादन है।

(ii) राम अल्लाह आदि शब्दो के द्वारा व्यग्य भगवान के स्वरूप के प्रति कबीर की निष्ठा है। यही इस पद का प्रतिपाद्य है।

(iii) निर्गुण निराकार ब्रह्म के प्रति कबीर की अनन्य निष्ठा किसी भी सगुणोपासक भक्त की अनन्यता से किसी प्रकार कम नही है। यथा—

मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई। (मीराबाई)

(३३९)

तहां मुझ गरीब की को गुदरावै,
मजलसि दूरि महल को पावै ।।टेक।।
सतरि सहज सलार हैं जाकै, असी लाख पैकंबर ताकै ।।
सेख जु कहिय सहस अठ्यासी, छपन कोड़ि खेलिबे खासी ।।
कोड़ि तेतीसूँ अरू ख्यिलखांनां, चौरासी लख फिरै दिवांनां ।।
बाबा आदम पै नजरि दिलाई, नबी भिस्त घनेरी पाई ।।
तुम्ह साहिब हम कहा भिखारी, देत जवाब होत बजगारी ।।
जन कबीर तेरी पनह समांनां, भिस्त नजीक राखि रहिमांनां ।।

शब्दार्थ — गुदरावै=निवेदन करना, सेवा मे पहुँचाना। मजलिस—सभा। सलार=सरदार। भिस्त—वहिश्त, स्वर्ग। खवास=मुसाहिब। नवी=पैगम्वर।

संदर्भ—कबीर अपनी दीनता की दुहाई देकर भगवान से शरणागति की प्रार्थना करते हैं।

भावार्थ—वहाँ भगवान तक मुझ गरीब की प्रार्थना को कौन पहुँचाएगा। उसकी सभा बहुत दूर है। फिर उसके महल तक किसी की पहुँच किस प्रकार हो सकती है ? अथवा उसमे कोई कैसे स्थान प्राप्त कर सकता है ? उस परमात्मा के सत्तर हजार सैनिक सरदार हैं, अस्सी लाख पैगम्बर हैं, अठासी हजार शेख हैं एवं छप्पन करोड मनोरजन करने वाले मुसाहिब हैं। इनके अतिरिक्त तैंतीस करोड अन्य प्रजाजन हैं। उसके चौरासी लाख मन्त्री हैं। इन सबमे से बाबा आदम पर खुदा की जरा सी नजर पडी और उस पैगम्बर को बहुत बडा स्वर्ग प्राप्त हो गया। हे भगवान तुम मालिक हो, और मैं भिखारी मात्र, आपको उत्तर देते हुए वदकारी (बुराई) होती है। कबीर कहते हैं कि यह सेवक आपकी शरण मे आया है। हे कृपालु ! आप इसको स्वर्ग के पास अर्थात् अपने निकट स्थान देने की कृपा करें।

अलंकार— (i) वक्रोक्ति—तहाँ गुदरावै।
(ii) गूढोक्ति—मजलिस' पावै। तुम''' भिखारी।
(iii) अनुप्रास—सतरि सहस सलार।

विशेष—(i) सगुणोपासक भक्तों के समान सालोक्य मुक्ति की कामना अभिव्यक्त है।

(11) ईश्वर के असीम वैभव और अपनी अल्पता का मार्मिक उल्लेख है। इस उल्लेख के द्वारा साधक भगवान से कृपा की प्रार्थना करता है कि वह उसे अपने निकट रखले।

(३४०)

जौ जाचौं तो केवल रांम,
आंन देव सूं नांहीं कांम ॥टेक॥
जाकै सूरिज कोटि करै परकास, कोटि महादेव गिरि कविलास॥
ब्रह्मा कोटि बेद ऊचरै, दुर्गा कोटि जाकं मरदन करै॥
कोटि चद्रमां गहै चिराक, सुर तेतीसूं जीमै पाक॥
नौग्रह कोटि ठाढे दरबार, धरमराइ पौली प्रतिहार॥
कोटि कुबेर जाकै भरै भंडार, लक्ष्मीं कोटि करै सिंगार॥
कोटि पाप पुनि ब्यौहरै, इंद्र कोटि जाकी सेवा करै॥
जगि कोटि जाकै दरबार, गध्रप कोटि करै जैकार॥
विद्या कोटि सबै गुंण कहैं, पारब्रह्म कौ पार न लहैं॥
बासिग कोटि सेज बिसतरै, पवन कोटि चौबारै फिरै॥
कोटि समुद्र जाकै पणिहारा, रोमावली अठारह भारा॥
असखि कोटि जाकै जमावली, रांवण सेन्यो जाथैं चली॥
सहसबांह के हरे परांण, जरजोधन घाल्यौ खै मांन॥
बावन कोटि जाके कुटवाल, नगरी नगरी खेत्रपाल॥
लट छूटी खेलै बिकराल, अनत कला नटवर गोपाल॥
कंद्रप कोटि जाकै लांवन करै, घट घट भीतरि मनसा हरै॥
दास कबीर भजि सारगपान, देहु अभै पद मांगौं दांन॥

शब्दार्थ—जाचौं=माँगता हूँ। चिराक=चिराग, दीपक। खैमान=क्षयमान। कन्दर्प=कामदेव। लावण्य, प्रसाधन शार्ङ्गपाणि=धनुप धारण करने वाले, राम।

सन्दर्भ—कबीर अनन्त सामर्थ्यवान् भगवान की प्रार्थना करते हैं।

भावार्थ – यदि मैं याचना करता हूँ, तो केवल राम से ही करता हूँ। अन्य देवताओ से मुझे कुछ भी लेना-देना नही है। उन राम के यहाँ करोडो सूर्य प्रकाश करते है, करोडो महादेव जिनके कैलास पर्वत पर रहते हैं, कोटि ब्रह्मा जिसके यहाँ वेद-पाठ करते हैं, जिनकी आज्ञा से करोडो दुर्गा दुष्टों का दमन करती हैं, जिनके समक्ष करोडो चन्द्रमा दीपक लिये रहते हैं, तैंतीस करोड़ देवता जिनकी कृपा का प्रसाद प्राप्त करते हैं, करोडो नवग्रह जिनके दरवार मे खडे रहते हैं, जिनके दरवाजे पर धर्मराज प्रतिहारी का काम करते हैं, करोडों कुवेर जिनका भण्डार भरते हैं, जिनको प्रसन्न करने के लिए करोड़ो लक्ष्मी श्रृगार करती हैं, करोड़ो पाप-पुण्य जिनके सकेत पर होते रहते हैं, करोडो इन्द्र जिनकी सेवा मे रहते

हैं, जिनके दरबार मे करोडो यज्ञ होते रहते हैं तथा करोडो गधर्व जिनका जय-जयकार करते हैं। करोडों विधाता जिनका गुणगान करते रहते हैं, उस परम ब्रह्म का किसी ने भी पार नहीं पाया है। उनके लिए करोडो शेष नागो ने सेज बिछा रखी है। और करोडो पवन उनके महल मे हवा करते हैं करोडो समुद्र उनके यहाँ पानी भरने वाले हैं, अठारह वनराजी जिनकी रोमावली हैं, जिसके असख्य करोड यमो की सेना है, जिनसे रावण की सेना भी पराजित हुई है, जिसने सहस्रबाहु के प्राणो का हरण किया था, और दुर्योधन, को जिसने क्षयमान करके नष्ट कर डाला था, बावन करोड जिसके कोटपाल है और नगरी-नगरी मे जिसके क्षेत्रपाल है जिनकी विकराल लटें (मेघों के रूप मे) भयकर नृत्य करती हैं। वह राम अनन्त कला से युक्त नटवर गोपाल हैं, करोड कामदेव उनका सौन्दर्य प्रसाधन करते हैं और उसी से घट-घट मे रहने वाली इच्छाओ को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। कबीरदास उन्ही धनुषधारी राम का भजन करते हैं और उनसे अभय पद के दान की याचना करते हैं।

अलंकार—(1) व्यतिरेक एव आतिशयोक्ति—पूरा पद।

विशेष—यह सगुण भक्तो की सी प्रार्थना है। इसमे प्रभु के विराट-दर्शन जैसी झाँकी प्राप्त होती है।

(11) समभाव के लिए देखें—

रुद्रादित्या वसवोयेच साध्या।
विश्वेऽश्विनं मरुतञ्चोहम पाश्च।
गन्धर्व यक्षासुर सिद्ध सँघा।
वीक्षन्ते त्वा विस्मिताञ्चैव सर्वे। (श्रीमद्भगवद्गीता)

उदर माझ सुनु अंडज राया। देखेउँ बहु ब्रह्मांड निकाया।
अति बिचित्र तहँ लोक अनेका। रचना अधिक एकते एका।
कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा। अगनित उडगन रवि रजनीसा।
अगनित लोकपाल जम काला। अगनित भूधर राम बिसाला।
सागर सरि सर विपिन अपारा। नाना भाँति सृष्टि विस्तारा।

इत्यादि (रामचरितमानस)

जाके विलोकत लोकप होत विलोक, लहैं सुर-लोग सु-ठौरहि।
सो कमला तजि चंचलता करि कोटि कला, रिझवै सुर मौरहि।
ता को कहाय, कहै तुलसी, तू लजाहि न माँगत कूकुर-कौरहि।
जानकी जीवन को जन है जरि जाऊ सो जीह, जो जाँचत औरहि।

तथा—जग जाचिए कोउ न जाँचिये जो जिय जाँचिए जानकी जानहि रे।
जेहि जाँचत जाचकता जरि जाहि जेहि भारत जोरि जहाँ नहिरे।

(कवितावली—गोस्वामी तुलसीदास)

(३४१)

मन न डिगै ताथै तन न डराई,
केवल रांस रहे ल्यौ लाई। टेक।
अति अथाह जल गहर गभीर, बांधि जजीर जलि बोरे है कबीर ।।
जल की तरँग उठि कटि है जजीर, हरि सुमिरन बैठे हैं कबीर ।।
कहै कबीर मेरे संग न साथ, जल थल मै राखै जगनाथ ।।

शब्दार्थ—डिगै=विचलित होता है। ल्यौ=लगन, लौ।

सन्दर्भ—कबीर सिद्धावस्था का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—मेरा मन अब विषय-वासनाओ के कारण विचलित नही होता है अर्थात् मैं अब सासारिक सुखों के प्रति आसक्त नही रहा हूँ। इसी कारण मुझ को अब अपने शरीर की ओर से भी भय नही है अर्थात् मुझको इस बात की जरा भी आशका नही है कि मेरी ज्ञानेन्द्रियाँ मुझ को विषयों के प्रति प्रवृत्त हो जाएँगी। मैने केवल भगवान राम के प्रति अपनी लगन लगा रखी है। यह ससार रूपी जल अत्यन्त गहरा और गम्भीर था। कर्मों की शृखला ने कबीर को बाँध कर इसमे डुबो दिया था। इस ससार रूपी जल मे ही ईश्वर भक्ति की लहर उठी और कर्म-बन्धन की वह जजीर टूट गई। कबीर संसार-सागर से निकलकर हरि-स्मरण रूपी तट पर जाकर बैठ गये हैं। कबीर कहते हैं कि मेरा कोई संगी-साथी नहीं है अर्थात् ससार के किसी भी व्यक्ति के प्रति मैं अनुरक्त नही हूँ। जल-थल मे सर्वत्र मेरी रक्षा करने वाले तो एक मात्र जगत के स्वामी भगवान ही हैं।

अलंकार—(i) पदमैत्री—मन न—डराई।

(ii) रूपक – हरि सुमिरन तट।

(iii) रूपकातिशयोक्ति की व्यंजना—जल जजीर।

(iv) विभावना की व्यजना—जल की तरंग—जंजीर।

विशेष—(i) मन पर नियन्त्रण आवश्यक है। मन पर नियन्त्रण होते ही इन्द्रियाँ वश मे हो जाती हैं।

(ii) भक्ति के लिए संसार त्याग की आवश्यकता नही है। भक्ति तो मन की दशा विशेष है। जल की तरंग उठि मे यही व्यंजना है।

(iii) जल की तरंग कटि हैं जंजीर। मन के अन्तर्मुखी होते ही समस्त कर्मों का क्षय हो जाता है। यथा—

सम्मुख होइ जीव मोहि जब हीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।
(रामचरितमानस)

(iv) तट बैठे हैं कबीर—तट पर बैठने का अभिप्रेत है—तटस्थ दृष्टि हो जाने। व्यक्ति ससार मे लिप्त नही रहता है। वह समस्त घटनाओ का द्रष्टापात्र हो जाता है। कबीर का कहना है कि राम-भजन के प्रभाव से वह राग द्वेष से मुक्त हो गये हैं।

(३४२)

भलै नीदौ भलै नीदौ भलै नीदौ लोग,
तन मन रांम पियारे जोग ।।टेक।।
मैं बौरी मेरे रांम भरतार, ता कारनि रचि करौं स्यगार ।।
जैसै धुबिया रज मल धोवै, हर तप रत सब निंदक खोवै ।।
न्यंदक मेरे भाई बाप, जन्म जन्म के काटे पाप ।।
न्यंदक मेरे प्रांन अधार, बिन बेगारि चलावै भार ।।
कहै कबीर न्यदक बलिहारी, आप रहै जन पार उतारी ।।

शब्दार्थ—नीदौ=निंदा करो । बौरी=पागल । रज=मिट्टी । हरत-परत=विभिन्न प्रयत्नो द्वारा । वेगारि= मजदूरी ।

सन्दर्भ—कबीरदास निंदक को साधक का उपकारी वताते हैं ।

भावार्थ—ईश्वर के प्रति दाम्पत्य भाव मे तन्मय आत्मा सुन्दरी कह रही है कि भले ही मेरी निंदा करो, भले ही मेरी निंदा करो, लोगो भले ही मेरी निंदा करो । मेरे तन और मन प्यारे राम के सयोग मे अनुरक्त रहते हैं । राम मेरे पति हैं और मैं उनके पीछे पागल हू उनको रिझाने के लिए मैं अच्छी तरह रुचि पूर्वक शृगार करती हू । जिस प्रकार धोवी कपडो के मैल मिट्टी को धोता है, उसी प्रकार निंदा करने वाला व्यक्ति विविध प्रकार से निंदा करके भगवान की तपस्या मे लगे हुए साधक के समस्त अवगुणों को दूर कर देता है । निंदक को मैं माता-पिता की भाँति अपना हितैषी मानता हू क्योकि वह जन्म जन्मान्तर के पाप दूर कर देता है । निंदक मुझे प्राणो के समान प्रिय है क्योकि वह विना किसी प्रकार का पारिश्रमिक लिए ही मुझे अवज्ञा का भार सहन करने योग्य वना देता है । कबीरदास कहते हैं कि मैं निन्दक पर बलिहारी जाता हू । वह स्वयं तो भवसागर मे रह जाता है और भक्त जन को भवसागर के पार उतार देता है ।

अलंकार—(i) पुनरुक्ति प्रकाश—प्रथम पंक्ति । जनम जनम ।

(ii) उदाहरण—जैसे—खोवै ।

(iii) उल्लेख—निंदक का विभिन्न रूपों मे वर्णन ।

(iv) विभावना की व्यजना—बिन वेगारि—भार ।

(v) व्याज स्तुति—सम्पूर्ण पद ।

विशेष—(i) इस पद मे व्याज स्तुति द्वारा दिखाया है कि निंदा पाप कर्म है एव वन्धन का हेतु है ।

(ii) निंदा के प्रति सहिष्णु व्यक्ति अपने दोषो के प्रति जागरूक हो जाता है और अपने अवगुणो को क्रमश दूर करता रहता है । रहीम ने भी इसी प्रकार का कथन किया है ।

निंदक नियरे राखिए आंगन कुटी छवाइ ।
बिन पानी साबुन विना निरमल करै सुभाइ ।

(iii) मैं बौरी राम भरतार। इसमे सूफियो की पद्धति पर दाम्पत्य-प्रेम की व्यजना है। समभाव देखें—

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर-मुकुट, मेरो पति सोई।
छांडि दई कुल की कानि, कहा करि है कोई।

तथा— मैं हरि बिन क्यों जिऊंरी माइ।
पिव कारन बौरी भई, ज्यों घुन काठहि खाइ। (मीराबाई)

(३४३)

जौ मै बौरा तौ रांम तोरा,
लोग मरम का जांनै मोरा ॥टेक॥
माला तिलक पहरि मनमानां, लोगनि रांम खिलौनां जांना ॥
थोरी भगति बहुत अहकारा, ऐसे भगता मिलै अपारा ॥
लोग कहै कबीर बौराना, कबीरा कौ मरम रांम भल जांनां ॥

शब्दार्थ—का=क्या।

सन्दर्भ—कबीर का कहना है कि वाह्याडम्बर वाले उपासक की अपेक्षा सच्चे भक्त राम के अधिक निकट रहते हैं।

भावार्थ—हे राम मैं जो पागल हो रहा हूँ, वह तो तुम्हारे ही प्रेम मे पागल हूँ। ससार के लोग मेरे इस पागलपन का रहस्य क्या समझें? (वे मुझ को सामान्य पागल समझते हैं और मेरे ज्ञान-भक्ति की बात नही जानते हैं।) मनमाने ढंग से माला-तिलक धारण करने वाले लोग राम को खिलौना समझ कर तरह-तरह से सजाते हैं अर्थात् यह काहिए कि औपचारिक पूजा के नाम पर लोग राम की प्रतिभा को खिलौना समझ कर माला-तिलक से सजाते हैं। ऐसे दिखावटी लोगो मे सच्ची भक्ति तो वहुत कम होती है और इनमे अहकार की माया बहुत होती है। ऐसे अहकारी भक्त वहुत मिलते हैं। लोग कहते हैं कि कबीर पागल हो गया है, परन्तु कवीर के इस पागलपन के रहस्य को (वास्तविक कारण को) भगवान राम अच्छी तरह जानते हैं।

अलंकार—(i) गूढोक्ति—का जानै।

(ii) रूपक की व्यजना—राम खिलौना जाना।

विशेष—(i) वाह्याचार का विरोध है।

(ii) भगवान का भक्त सासारिक व्यवहार मे चतुर नही रह जाता है, वह पागल सा दिखाई देता है।

(iii) माला ··· खिलौना—खिलौना जैसे व्यक्ति की विभिन्न वासनाओ की तृप्ति का साधन होता है, उसी प्रकार वाह्य पूजा करने वाला भक्त भगवान की मूर्ति को अपनी कतिपय वासनाओं की तृप्ति का साधन मान बैठता है।

(३४४)

हरिजन हस दसा लिये डोलै,
निर्मल नांव चवै जस बोलै ।।टेक।।
मान सरोवर तट के बासी, रांम चरन चित आंन उदासी ।।
मुकताहल बिन चच न लांवै, मौंनि गहै कै हरि गुन गांवै ।।
कऊवा कुबधि निकट नही आवै, सो हस। निज दरसन पावै ।।
कहै कबीर सोई जन तेरा, खीर नीर का करै नबेरा ।।

शब्दार्थ—हँस=ज्ञानी, शुद्ध विवेकी । आन=अन्य वस्तुएँ । चवै=चुवै, निस्सृत होता है ।

संदर्भ—कबीर सच्चे भक्त का वर्णन करते है ।

भावार्थ—भगवान के भक्त हस की भाँति ससार मे विचरण करते है अर्थात् वे जीवन मे विवेकपूर्ण आचरण करते हैं । उनके मुख से भगवान का निर्मल नाम सहज रूप से सदैव निकलता रहता है । वे सदैव भगवान का गुणगान करते हैं । वे मानसरोवर के किनारे रहते हैं । उनका हृदय राम के चरणो मे ही लगा रहता है तथा जगत की अन्य सभी वस्तुओ के प्रति वे उदासीन रहते हैं । ये हंस ज्ञान एवं भक्ति रूपी मोती के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु का स्पर्श भी नही करते हैं। वे या तो मौन रहते हैं, सवका भगवान का गुणगान करते हैं (उनके मुँह से राम-गुण-चर्चा के अतिरिक्त अन्य कोई वात निकलती ही नही है ।) कुबुद्धि रूपी कौआ इन मुक्तात्मा रूपी हसो के पास तक नही फटकता है । ऐसे ही विवेकी सतो को आत्म-स्वरूप का साक्षात्कार हो पाता है । कबीरदास कहते हैं कि जो भक्त नीर-क्षीर का विवेक कर पाता है अर्थात् जो सत्यासत्य का निर्णय करने मे समर्थ होता है, वही तेरा सच्चा भक्त है ।

अलकार—साग रूपक—सम्पूर्ण पद ।

विशेष—(i) हस सोऽहम् का अपभ्र श रूप है । तात्पर्य आत्मज्ञानी है ।

(ii) मानसरोवर - कायायोग मे मानसरोवर का अर्थ शून्य-शिखर—ब्रह्म रन्ध्र है । राजयोग मे इसका अर्थ 'वुद्धि मनस' होता है । जो सदैव हृदय रूपी सरोवर मे आत्म-दर्शन करते रहते हैं और इस प्रकार अपने दोषो का प्रक्षालन करते रहते हैं ।

(iii) खीर नीर का निवेरा—हस के विषय मे यह प्रवाद प्रचलित है कि वह दूध मे से दूध तत्त्व को ग्रहण कर लेता है और पानी तत्व को छोड देता है । इस प्रवाद को लेकर ज्ञानी एव विवेकी जन का निरूपण करने की एक मान्य परम्परा है—

जड चेतन गुण दोषमय विश्व कीन्ह करतार ।
संत-हस पय-गुन गहहिं परिहरि बारि-विकार ।
(गोस्वामी तुलसीदास)

(३४५)

सति रांम सतगुर की सेवा,
पूजहु रांम निरजन देवा ।।टेक।।
जल कै मंजन्य जो गति होई, मीनां नित ही न्हावै ।।
जैसा मींनां तैसा नरा, फिरि फिरि जोनीं आवै ।
मन मैं मैला तीर्थ न्हांवै, तिनि बैकुण्ठ न जांनां ।
पाखड करि करि जगत भुलांनां, नांहिन रांम अयांनां ।।
हिरदै कठौर मरै बानारसि, नरक न बच्या जाई ।
हरि कौ दास मरै जे मगहरि, सेन्यां सकल तिराई ।।
पाठ पुरांन वेद नही सुमृत, तहां बसै निरकारा ।
कहै कबीर एक ही ध्यावो, बावलिया संसारा ।।

शब्दार्थ — सति = सत्य, सार रूप । मजनि = स्नान । जोनी आवै = जन्म लेता है । अयाना = अज्ञानी । बनारसि = वाराणसी । बच्या = बचाया । सेन्या = सेना । पाठ = स्तोत्र—पाठ । बावलिया = पागल ।

सन्दर्भ— कबीर कहते हैं कि अन्य समस्त साधनाओ को छोड़कर केवल राम और सदगुरु की सेवा करो ।

भावार्थ — राम और सदगुरु की सेवा ही सत्य एव सार है । हे साधक, तुम मायारहित देवता राम की पूजा करो । भला यदि जल मे स्नान मात्र से मुक्ति की प्राप्ति हो जाए तो मछली नित्य ही पानी मे स्नान के कारण मुक्त हो गई होती । बार-बार स्नान से जिम प्रकार मछली मोक्ष को प्राप्त नही होती है, उसी प्रकार बारम्बार मज्जन-मार्जन करके मनुष्य भी मुक्त नही होता है और उसको बार-बार जन्म लेना पडता है । जिनके मन मे पाप विचार हैं और वे तीर्थ मे स्नान करते है, उनको वैकुण्ठ की हवा भी नही लगती है । जगत के जीव (तीर्थ व्रत, सेवा पूजा आदि) । विभिन्न पाखडो मे फँसे हुए व्यर्थ की बातो मे भ्रमित बने हुए हैं । परन्तु राम ऐसे अज्ञानी नही हैं, जो इन लोगो के पाखण्डपूर्ण व्यवहार को समभते न हो । जो लोग मन से निर्दयी हैं और काशी मे रहते हैं, वे लोग नरक से नही बच सकते । भगवान का सच्चा भक्त अगर मगहर मे भी मरते हैं तब भी उनकी पूरी सेना भी (उनके सब साथी भी) भवसागर के पार हो जाते हैं । स्तोत्र-पाठ, पुराण-वाचन, वेदाध्ययन और स्मृति-परायण, इनमे से कोई भी उस निराकार तत्व (परब्रह्म) का साक्षात्कार कराने मे समर्थ नही है । कबीरदास कहते हैं कि यह ससार तो विभिन्न देवताओं के आराधन एव अनेक साधनाओ के साधन मे पागल हैं । (कल्याण के इच्छुक साधको को) उस एक (मायारहित) परम तत्व का ही ध्यान करना चाहिए ।

अलकार—(i) गूढोक्ति—मन के . . नहाव ।
(ii) उदाहरण—जैसा मीना . आवै ।

(iii) पुनरुक्ति प्रकाश—फिरि फिरि, करि करि ।
(iv) पर्यायोक्ति—नाहिंन राम अयाना ।
(v) विरोधाभास—हरि को दास .. तिराई ।
(vi) सवधातिशयोक्ति—पाठ सुमृत ।

विशेष - (1) वाह्याचार का विरोध स्पष्ट है ।

(ii) जल के मजन्ये. . नहाव समभाव देखे ।

पंडित ! बाद वदै सो भूंठा ।
राम कहयाँ दुनियाँ गति पावै, (तौ) खांड कहयाँ मुख मीठा ।
विनु देखे विनु अरस-परस बिन, नाम लिए का होई ? (कबीरदास)

(iii) **हिरदै कठोर**—इसका अर्थ इस प्रकार भी हो सकता है—जो हृदय कठोर करके काशी-करवट लेते हैं । इसका पाठातर भी इस प्रकार मिलता है—'काशी करोत' लेते हैं ।)

(iv) **मरै जे मगहरि**—'मगहर' आदि स्थानो को पौराणिक परम्परानुसार अशुभ स्थल माना जाता है । यह प्रवाद प्रचलित है कि जो कोई मगहर मे मृत्यु को प्राप्त होता है, वह नरक का भोग करता है । कबीर इस मान्यता को अन्ध विश्वास मानते थे और इसी कारण उन्होने इसके विरुद्ध आवाज उठाई थी । प्रस्तुत पद मे वह मगहर मे शरीर त्याग से स्वर्ग-लाभ की बात करते है । स्पष्टत यह एक अंध विश्वास को एक अन्य अन्ध विश्वास के द्वारा मिटाने का प्रयत्न है । यदि मगहर मे मरने पर नरक नहीं मिल सकता है, तो वहाँ मरने पर स्वर्ग की प्राप्ति क्यो कर सम्भव होगी ? सुधारक गण अन्ध विश्वास को हटाने के प्रयत्न मे स्वय अन्ध विश्वासो के शिकार बन जाते हैं । ऐसे व्यक्तियो के विषय मे यह उक्ति सर्वथा सगत है कि "जिन लोगो ने कूडा साफ करना चाहा था, उनके नाम के कई घूरे और बढ गए हैं ।"

बात यह है कि शकराचार्य ने जब बौद्धो को आर्यावर्त्त से खदेडा, तो उन्होने अपने अड्डे बिहार मे स्थापित कर लिए और वहाँ उन्होने वामाचार फैलाया इसी कारण वैदिक मतानुयायी महानुभाव मगध (बिहार) प्रदेश को उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगे थे । यथा—

लागहिं कुमुख वचन सुम कैसे । मगहँ गयादिक तीरथ जैसे
(रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास)

(v) **मरै बनारसि**—सामान्यत. यह विश्वास है कि काशी (वनारस, वाराणसी) शिवजी के त्रिशूल के ऊपर वसी हुई है । वहाँ मरने पर स्वर्ग की प्राप्ति होती है । अतः वहुत से व्यक्ति अन्त समय मे काशी-वास करने के इच्छुक रहते हैं ।

सम्भवतः इस पद मे 'काशी-करवट' की ओर सकेत है । काशी के एक कुएँ मे एक आरा लगा हुआ था । अध विश्वासी जनता उस कुएँ मे गिरकर अपने

आपको इस आरे के नीचे कटवा देती थी क्योंकि उन्हे विश्वास था कि इस प्रकार वे स्वर्ग प्राप्ति के अधिकारी बनते थे। यह 'काशी करवट' कहलाती थी।

आरा चलाने के कार्य नीचे ही नीचे गुप्त रूप से इस प्रकार होता था कि वह स्वचालित सा लगता था। इसका रहस्य खुलने पर अग्रेजो ने इसको बन्द करा दिया।

(३४६)

क्या ह्वै तेरे न्हाई धोई,
आतम रांम न चीन्हां सोई ।।टेक।।
क्या घट ऊपरि मंजन कीयै, भीतरी मैलि अपारा ।
रांम नांम बिन नरक न छूटै, जे धोवै सौ बारा ।।
का नट भेष भगवां बस्तर, भसम लगावै लोई ।।
ज्यू दादुर सुरसरी जल भीतरि, हरि बिन मुकति न होई ।।
परहरि कांम रांम कहि बौरे सुनि सिख बंधू मोरी ।
हरि कौ नॉव अभै पद दाता, कहै कबीरा कोरी ।।

शब्दार्थ—सोई=उसी। चीन्हा=पहिचाना। नट=तमाशा करने वाला, नाटक का पात्र। भगवा बस्तर=गेरुआ वस्त्र। सिख=सीख, शिक्षा। कोरी=कोली, जुलाहा। अभै = अभय।

सन्दर्भ—कबीर कहते हैं कि बाह्याचार का त्याग करके राम के नाम का स्मरण करना चाहिए।

भावार्थ—हे साधक, यदि तूने आत्माराम (आत्म-स्वरूप) को नही पहचाना है, तो तुम्हारे नहाने-धोने आदि बाह्याचार से क्या लाभ है ? जब अन्त करण मे विषय वासनाओ का अपार मैल भरा हुआ है, तब ऊपर ऊपर से शरीर को स्नान कराने (धोकर साफ करने) से क्या लाभ हो सकता है ? भले ही कोई व्यक्ति सौ बार स्नान करके शरीर को धो डाले, परन्तु राम-नाम के बिना नरक (पाप कर्म के फल) से छुटकारा नही हो सकता है। लोग गेरुआ वस्त्र धारण करते हैं और भस्म लगाते हैं, परन्तु इस प्रकार नाटक के पात्र की तरह विभिन्न वेश धारण करने से क्या लाभ हो सकता है ? जैसे मेढक सदैव गगा जल के भीतर रहता है, परन्तु केवल गगा जल मे ही रहने के कारण उसकी मोक्ष नही हो जाती है, इसी प्रकार केवल गगा स्नान करते हुए ही प्रभु के नाम स्मरण बिना मनुष्य की मुक्ति सम्भव नही है। हे भाई ! तुम मेरी शिक्षा मान लो, हे पागल ! तू विषय वासना का त्याग करके राम-नाम कहो। जुलाहा कबीर का निश्चित मत है कि हरि का नाम-स्मरण अभय पद-परम पद-का देने वाला है।

अलंकार—(i) वक्रोक्ति—क्या है—पारा।
(ii) निदर्शना की व्यजना—राम नाम ..... लोई।
(iii) उपमा—ज्यूं दादुर..... होई।

विशेष—(i) वाह्याचार का विरोध व्यक्त है।

(ii) 'कोरी' शब्द मे व्यजना है। जुलाहो को तुच्छ समझने वाले सवर्ण वर्ग से कबीर कहते हैं कि जिस समुदाय को तुम तुच्छ समझते हो, उसी 'कोली' वर्ग मे उत्पन्न कबीर तुम्हारे सम्मुख एक महान् सत्य को प्रकट कर रहा है।

(३४७)

पाँणी थै प्रगट भई चतुराई,
गुर प्रसादि परम निधि पाई ॥टेक॥
इक पांणीं पाणीं कूं धोवै, इक पांणीं पांणी कूं मोहै ॥
पांणी ऊंचा पांणी नीचा, ता पांणी का लीजै सीचा ॥
इक पांणी थै प्यड उपाया, दास कबीर रांम गुण गाया ॥

शब्दार्थ—पाणी=जल, लक्षण से प्रभु, भगवान को नारायण कहते हैं (नार =जल)। चतुराई=ज्ञान। प्यड=शरीर। उपाया=उत्पन्न किया।

सदर्भ—कबीरदास प्रभु की महिमा का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—प्रभु रूप जल से ही ससार का समस्त ज्ञान उत्पन्न हुआ है। इस परम ज्ञान रूपी खजाने को मैंने गुरु की कृपा से प्राप्त किया है। भक्ति रूपी जल विषय-वासना रूपी जल के मैल को नष्ट कर देता है, माया रूपी जल जीवात्मा रूपी जल को मोहित करता है। जल ही ऊपर है, जल ही नीचे है। अथवा ज्ञान रूप होकर जल ही व्यक्ति को उच्च पद प्रदान करता है और माया रूप होकर वही जल व्यक्ति को पतन के गर्त्त मे गिरा देता है। इसी सर्वव्यापी परम तत्व रूपी जल के द्वारा अपने अन्त करण को अभिसिंचित करना चाहिए। पानी (वीर्य) की एक बूद मात्र से इस शरीर की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार जल की महिमा को समझ करके कबीर जल रूप प्रभु का गुणगान करता है।

अलकार—यमक—एक ही शब्द 'पाणी' को विभिन्न प्रतीकार्थ होने के कारण।

(३४८)

भजि गोब्यंद भूलि जिनि जाहु,
मनिसा जनम कौ एही लाहु ॥टेक॥
गुर सेवा करि भगति कमाई, जौ तै मनिषा देही पाई ॥
या देही कूँ लौचै देवा, सो देही करि हरि की सेवा ॥
जब लग जुरा रोग नही आया, तब लग काल ग्रसै नहिं काया ॥
जब लग हीण पड़ै नही बांणी, तब लग भजि मन सारगपांणी ॥
अब नहिं भजसि भजसि कब भाई, आवैगा अत भज्यौ नहीं जाई ॥
जे कछू करौ सोई तत सार, फिरि पछितावोगे वार न पार ॥

सेवग सो जो लागै सेवा, तिनहीं पाया निरजन देवा ।।
गुर मिलि जिनि के खुले कपाट, बहुरि न आवै जोनीं बाट ।।
यहु तेरा औसर यहु तेरी बार, घट ही भीतरि सोचि बिचारि ।।
कहै कबीर जीति भावै हारि, बहु विधि कह्यौ पुकारि पुकारि ।।

शब्दार्थ—मनिखा=मनुष्य । लाहु=लाभ । लौचौ - ललकते हैं, चाहते है। जुरा=वृद्धावस्था । हीण=हीन, दुर्बल, क्षीण । सारग पाणी = हाथ मे धनुष धारण करने वाला, श्री राम । जोंनी बाट=जन्म के रास्ते ।

सन्दर्भ—कबीरदास भगवद् भक्ति करने के लिए पुकार-पुकार कर कहते हैं ।

रे मानव, तुम भगवान का भजन करो । इस बात को भूल मत जाओ । मनुष्य जन्म का यही लाभ है । जब तुम्हे मानव शरीर प्राप्त हो गया है, तो इससे गुरु की सेवा करो और प्रभु-भक्ति का उपार्जन करो । जिस मानव शरीर के देवता भी अभिलाषी हैं, वह तुम्हे प्राप्त है । इस मानव-शरीर के द्वारा भगवान की सेवा करो । जब तक तुमको वृद्धावस्था सम्बन्धी रोग नही घेरते हैं, इस शरीर को काल नही ग्रसता है और तुम्हारी वाक् शक्ति क्षीण नही होती है, उससे पहले मन को भगवान राम के भजन मे लगा दो । यदि तुम अब (शरीर के स्वस्थ रहते हुए) भगवान का भजन नही करोगे तब फिर हे भाई ! तुम उनका भजन कब करोगे ? अतकाल आने पर तुमसे भगवान का भजन नही किया जा सकेगा । इस समय जो कुछ कर लोगे, वही सार है— वही तुम्हारी सच्ची कमाई है । इस समय भजन करने पर तुमको बाद मे ऐसा घोर पश्चाताप होगा जिसकी कोई सीमा नही होगी । सच्चा भक्त वही है जो झट भक्ति मे लग जाए । जो अविलम्ब (अभी और कही) प्रभु-भक्ति मे लग जाते है, उन्ही को माया रहित प्रभु (निरजन) की प्राप्ति होती है । सद्गुरु के साक्षात्कार (गुरु के उपदेश) द्वारा जिनके ज्ञान-कपाट खुल गए हैं, जिन्हे ज्ञान की प्राप्ति हो गई है, वे फिर इस जन्म-मरण के चक्कर मे नही पडते हैं । हे मनुष्य ! तुझे स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ है । मोक्ष-साधन के लिए यही तेरी बारी है—चौरासी लाख योनियाँ भोगने के बाद 'साधन-धाम मोक्ष कर द्वार' मानव शरीर मे आने को तुम्हारी बारी आई है । इस बात को तुम अपने मन मे अच्छी तरह सोच-समझ लो । कबीर कहते हैं कि राम भजन के द्वारा मोक्ष प्राप्त करके चाहे तो तुम अपनी इस बारी (दाँव) को जीत लो अथवा भजन की उपेक्षा करके और मोक्ष को गँवाकर इस दाँव को हार जाओ । कबीर कहते हैं कि मैंने तो बार-बार पुकार कर तुम्हे चेतावनी देकर अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया है ।

अलंकार – (i) गूढोक्ति—भजसि कब भाई ।
(ii) पदमैत्री—सार बार पार ।
(iii) रूपकातिशयोक्ति—कपाट ।
(iv) रूपक—जोनी बाट ।
(v) पुनरुक्ति प्रकाश—पुकारि पुकारि ।

विशेष—समभाव के लिए गोस्वामी तुलसीदास का यह कथन देखिए—

बडे भाग मानुष तन पावा। सुर नर मुनि सद्ग्रन्थन गावा।

× × ×

नर तन सम नाहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत तेही

नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी। ग्यान विराग भगति सुभ देनी।

सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर। होहिं विषय रत मद मद तर।

कांच किरिच वदलें ते लेहीं। कर ते डारि परस मनि देहीं।

(रामचरितमानस)

तथा—हरि, तुम बहुत अनुग्रह कीन्हो।

साधन-धाम विवुध-दुरलभ तनु, मोहि कृपा कर दीन्हो। (विनयपत्रिका)

(३४९)

ऐसा ग्यांन बिचारि रे मनां,

हरि किन सुमिरे दुख भजनां ॥टेक॥

जब लग मैं मै मेरी करै, तब लग काज एक नही सरै ॥

जब यहु मै मेरी मिटि जाइ, तब हरि काज सवारै आइ ॥

जब लग स्यध रहै बन मांहि, तब लग यहु बन फूलै नांहि ॥

उलटि स्याल स्यघ कूँ खाइ, तब यहु फूलै सब बनराइ ॥

जीत्या डूबै हार्‌या तिरै, गुर प्रसाद जीवत ही मरै ।

दास कबीर कहै समझाइ, केवल रांम रहौ ल्यौ लाइ ॥

शब्दार्थ—भजना=नष्ट करने वाला। सरै=सिद्ध हो गया। स्यध=शेर अहकार। फूलै=भक्ति-भावना का उदय। स्याल=चेतन। मरै=जीवनमुक्त।

सन्दर्भ—कबीरदास अहकार का त्याग करके राम भक्ति का उपदेश देते हैं।

भावार्थ—रे मन, तू मन मे ऐसा विवेक धारण करता है। जिससे दु खो का नाश करने वाले प्रभु का भजन होने लगे? जब तक 'मैं' और मेरी (अहभाव) मे लिप्त रहोगे, तब तक तुम्हारा एक भी कार्य सिद्ध नही होगा। जब यह 'मैं' और 'मेरी' की भावना समाप्त हो जाएगी, तब भगवान स्वय आकर तुम्हारे समस्त कार्य पूरे कर देगे। जब तक अन्त करण रूपी वन मे अहकार रूपी शेर का निवास रहता है, तब तक इस अन्त करण रूपी वन मे भक्ति-भावना के फूल विकसित नही हो सकेगे। जब शुद्ध बुद्ध चैतन्य इस अह रूपी सिह को समाप्त कर देगा, तभी यह अन्त करण रूपी वन ज्ञान और भक्ति को फूलो से युक्त हो जाएगा। इस दशा की प्राप्ति होने पर परिस्थिति एक दम बदल जाएगी। आज तक जिस अहकार ने चैतन्य को दबा रखा था, वह सदा सर्वदा के लिए नष्ट हो जाएगा और जो चैतन्य अहकार द्वारा पराभूत था, वह अब सदा-सर्वदा के लिए मुक्त हो जाएगा। इस समय साधक गुरु की कृपा प्राप्त करके जीवन्मुक्त हो जाता है। कबीरदास समझा

कर कहते हैं कि इसीलिए हे जीव, तुम भगवान मे निरन्तर अपनी लौ लगाए रहो। (यही कल्याण का मार्ग है)

अलंकार—(i) रूपकातिशयोक्ति—स्यघ, वन, स्याल।

(ii) गूढोक्ति—किन सुमिरै।

(iii) विरोधाभास—उलटि स्याल ' 'खाइ; जीत्या, तिरै, जीवत ही मरै।

विशेष—(i) नाथ पथी प्रतीको का प्रयोग है।

(ii) यह पद उलटवाँसी की शैली पर रचित है।

(iii) 'अहकार' के रहते हुए प्रभु कैसे आ सकते है? प्रेम-गली अत्यन्त सकरी है। इसमे 'मैं' और 'तू' मे एक ही रह सकता है।

प्रेम गली अति साँकरी तामे दो न समाँय।
रहिमन भरी सराइ लखि लौट मुसाफिर जाय।

(३५०)

जागि रे जीव जागि रे।
चोरन कौ डर बहुत कहत हैं, उठि उठि पहरै लागि रे॥टेक॥
ररा करि टोप ममां करि बखतर, ग्यान रतन करि षाग रे।
ऐसैं जौ अजराइल मारै, मस्तकि आवै भाग रे॥
ऐसी जागणीं जे को जागै, ता हरि देइ सुहाग रे।
कहै कबीर जाग्या ही चाहिये, क्या गृह क्या बैराग रे॥

शब्दार्थ—बखतर=कवच। षाग=खड्ग, तलवार। अजराइल=अजराइल=मृत्यु का देवदूत।

सन्दर्भ—कबीर कहते हैं कि व्यक्ति को सदैव विवेकपूर्ण आचरण करना चाहिए।

भावार्थ—रे जीव, जागो, जाग जाओ। इस जीवन मे (काम क्रोध, लोभ, मोह मत्सर) रूपी चोरों का डर बहुत कहा जाता है। इसलिए तू उठ और उठकर पहरा लगा जिससे बोध वृत्ति रूपी धन की रक्षा होती रहे।) इसके लिए तू राम के नाम का इस प्रकार सहारा ले—रकार का शिरस्त्राण बना तथा मकार का कवच बना। ज्ञान रूपी रत्न की तलवार बनाले। इससे अज्ञान रूपी मृत्यु के देव दूत पर तुम ऐसा वार करो कि अहकार-रूपी उसका मस्तक पर तुम्हारा अधिकार हो जाए। ऐसी जाग मे जो कोई जागता है अर्थात् जाग कर जो कोई इस प्रकार सावधान रहता है, उन पर भगवान अपने सौभाग्य की कृपा करते हैं। तात्पर्य यह है कि जो आत्मा-सुन्दरी इस प्रकार की ज्ञानावस्था को प्राप्त करती है, उसको भगवान पति रूप मे प्राप्त होते हैं अर्थात् आत्मा का परमात्मा मे, सान्त का अनन्त मे लय हो जाता है। कबीर कहते हैं कि चाहे व्यक्ति गृहस्थ हो अथवा विरक्त, उसको सदैव विकार रूपी चोरो के प्रति सावधान रहना ही चाहिए।

अलंकार—(i) पुनरुक्ति प्रकाश—प्रथम पक्ति । उठि उठि ।
(ii) रूपकातिशयोक्ति' चोट ।
(iii) रूपक—ररा...... ''षाग रे ।
(iv) गूढोक्ति—क्या गृह रे ।

विशेष—(i) ररा रे—राम-नाम की महिमा का प्रतिपादन है ।
(ii) अजराईल मारै—इस्लामी सस्कारो का प्रभाव है ।
(iii) देह सुहाग रे – रहस्यवाद का प्रभाव है ।
(iv) समभाव के लिए देखे—
(क) जतन बिनु मिरगनि खेत उजारे ।

× ×

अपने अपने रस के लोभी, करतव न्यारे-न्यारे ।

× ×

बुधि मेरी किरषी, गुरु मेरी बिझुका अक्खिर दोइ रखवारे ।

एवं तोरी गठरी में लागे चोर, बटोहिवा कारे सोवै ।
पांच-पचीस तीन हैं चोखा, यह सब कीन्हा सोर । —कबीरदास

(ख) शकराचार्य ने भी इन मानवीय दुष्प्रवृत्तियो को डाकू कहा है, जो ज्ञान रूपी रत्न को लूटती रहती हैं—

काम क्रोधश्च लोभश्च, देहे तिष्ठान्ति तस्करा
ज्ञान रत्नापहाराय तस्याज्जागृत, जागृत ।

(ग) मै केहि कहौं विपति अति भारी । श्री रघुबीर धीर हितकारी ।
मम हृदय भवन प्रभु तोरा । तहँ बसे आइ बहु चोरा ।

× ×

तम, मोह, लोभ, अहकारा । मद, क्रोध बोध-रिपु मारा ।
अति करहिं उपद्रव नाथा । मरदहि मोहि जानि अनाथा ।
मै एक अमिट बटपारा । कोऊ सुनै न मोर पुकारा ।

× × ×

कह तुलसीदास सुनु रामा । लूटहिं तसकर तव धामा ।
(गोस्वामी तुलसीदास विनयपत्रिका)

(३५१)

जागहु रे नर सोवहु कहा,
जम बटपारै रूंधै पहा ।।टेक।।
जागि चेति कछू करौ उपाइ, मोटा बैरी है जमराइ ।।
सेत काग आये बन मांहि, अजहू रे नर चेतै नांहि ।।
कहै कबीर तबै नर जागै, जम का डड़ मूंड मै लागै ।।

शब्दार्थ— बटपारै=बटमार, लुटेरे। पहा=पथ। मोटा=वडा। सत=श्वेत। डड=डडा।

संदर्भ— कबीर जीव को मोह निद्रा का त्याग करने को कहते है।

भावार्थ—रे मानव, तुम जाग जाओ, इस अज्ञान-निद्रा मे क्यो सो रहे हो? यमरूपी लुटेरे ने तुम्हारे जीवन-पथ को रोक रखा है। (वह चाहे जब तुम्हे लूट लेगा)। जाग कर तथा सचेष्ट होकर अपने जीवन के सरक्षण का कुछ उपाय करो। यमराज तुम्हारा वहुत वडा शत्रु है। तुम्हारे इस जीवन रूपी वन मे श्वेत वाल रूपी श्वेत काग आगए हैं, जो तुम्हारे नाश के सूचक है। हे मानव! तुम अब भी सावधान क्यो नही होते हो? कबीर कहते हैं कि मानव तब होश मे आता है जब यमराज का डडा सिर पर बजने लगता है।

अलंकार—(i) गूढोक्ति—सोवहु कहा।
(ii) रूपक—जम वटपारै।
(iii) रूपकातिशयोक्ति—सेत काग, वन।

विशेष—(i) डड मूड मैं लागै— लोकोक्ति का प्रयोग।
(ii) वन मे श्वेत कौओ का आना अत्यन्त अशुभ माना जाता है। वह नाश-सूचक होता है।

(२५२)

जाग्या रे नर नींद नसाई,
चित चेत्यौ च्यंतामणि पाई ॥टेक॥
सोवत सोवत बहुत दिन बीते, जन जाग्यां तसकर गये रीते।
जन जागे का ऐसहि नांण, विष से लागे बेद पुरांण॥
कहै कबीर अब सोवौं नांहि, रांम रतन पाया घट मांहि॥

शब्दार्थ—नसाई=नष्ट करके। च्यतामणि=रामनाम रूपी चिंतामणि। तसकर=चोर, लुटेरे। रीते=खाली हाथ। नाण=लक्षण।

सदर्भ—पूर्व पद के समान।

भावार्थ—रे मानव, अज्ञान की नीद समाप्त करके अव जाग जाओ। मन मे विवेक धारण करो। तुमको भगवन्नाम रूपी चिन्तामणि की प्राप्ति होगी। तुम्हे इस अज्ञान-निद्रा मे सोते हुए वहुत समय व्यतीत होगया है। मानव के जगते ही काम-क्रोधादि रूपी चोर खाली हाथ ही भाग जाते हैं। जागे हुए (ज्ञानी) मनुष्य का यही लक्षण है कि उसे वेद-पुराण भी विप के समान (व्यर्थ) प्रतीत होने लगते हैं। कबीर कहते हैं कि मुझे तो अपने अन्त करण मे राम-नाम रूपी रत्न की प्राप्ति होगई है। अव मैं तो अज्ञान के वशीभूत होकर नहीं सोऊँगा।

अलंकार—(i) अनुप्रास—नट नीद नसाई। चित चेत्यौ च्यतामणि।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—च्यतामणि।
(iii) पुनरुक्ति प्रकाश—सोवत सोवत।

(iv) चपलातिशयोक्ति की व्यजना - जन जाग्या रीते ।
(v) उपमा—विष से ·· पुराण ।
(vi) रूपक—राम रतन ।

विशेष—(i) विष · पुराण—वेद-पुराण इत्यादि ज्ञान प्राप्ति के साधन मात्र हैं। सिद्धावस्था मे उनकी निरर्थकता स्वय सिद्ध है। इस कथन के ऊपर अविद्यावत् विषयाणि सर्वशास्त्राणि का प्रभाव स्पष्ट है।

(ii) अन्तिम पक्ति मे 'सोवौ' का पाठान्तर "सोबौ" है। अर्थ होगा—अब सोना नही है अर्थात् अब तुम मत सोओ। यह अर्थ भी सगत एव प्रसगानुकूल है।

(iii) समभाव के लिए देखें—

अब लौं नसानी, अब न नसैहौं।

× ×

पायौ नाम चारु चितामनि, डट कर ते न खसैहौं।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(३५३)

सतनि एक अहेरा लाधा,
मिर्गनि खेत सबनि का खाधा ।।टेक।।
या जगल मै पांचौ मृगा, एई खेत सबनि का चरिगा ।।
पारधीपनौं जे साधै कोई, अध खाधा सा राखै सोई ।।
कहै कबीर जो पचौं मारै, आप तिरै और कूं तारै ।।

शब्दार्थ—अहेरा=शिकार। लाधा=प्राप्त किया। मिर्गनि=मृगो ने खाधा=खा डाला। पारधीपना=शिकारीपना।

सन्दर्भ—कबीर का कहना है कि इन्द्रियो को वश मे करने वाला भवसागर के पार जा सकता है।

भावार्थ—सतो को एक शिकार प्राप्त होगई है। मृगो (काम-क्रोधादि अथवा पाँचो इन्द्रियो के विषयो) ने सब लोगो के जीवन-रूपी खेत चर डाले है। इस ससार रूपी जगल मे पाँच मृग (उपर्युक्त अनुसार) हैं। इन्होने ही समस्त प्राणियो के जीवन-रूपी खेतो को चर लिया है। जो कोई व्यक्ति इन मृगो को मारने के लिए शिकारीपना धारण करते हैं, वह इन मृगो के आधे खाए हुए जीवन-रूप खेत की रक्षा कर लेता है। कबीर कहते हैं कि जो पाँचो विकारो एव पाँचो इन्द्रियो के विषयो को समाप्त कर देता है, वह स्वय ही भवसागर के पार हो जाता है और अन्य लोगो को भी पार करा देता है।

अलंकार—(i) रूपकातिशयोक्ति—मृग खेत।
(ii) सागरूपक—खेत और जीवन के रूपक का निर्वाह है।

विशेष—(i) पारधीपनौं जे साधे—विषयासक्ति पर नियन्त्रण के अनुपात मे ही साधक का कल्याण होता है।

(ii) समभाव के लिए देखे—

जतन बिनु मिरगनि खेत उजारे।
टारे टरत नहीं निसि-बासुरि, बिडरत नही बिडारे।
अपने-अपने रस के लोभी, करतब न्यारे-न्यारे।
× ×
बुधि मेरी किरषी, गुरु मेरो बिझुका अखिर दोइ रखवारे।
(कबीरदास)

(३५४)

हरि कौ बिलौवनौं बिलोइ मेरी माई,
एसैं बिलोइ जैसै तत न जाई ।।टेक।
तन करि मटकी मनहि बिलोइ, ता मटकी मैं पवन समोइ ।।
इला प्यगुला सुषमन नारी, बेगि बिलोइ ठाढी छछिहारी ।।
कहै कबीर गुजरी बौरांनीं, मटकी फूटीं जोति समांनीं ।।

शब्दार्थ—बिलोवना=बिलोने की वस्तु। छछिहारी=छाछ लेने वाली नारियाँ। गुजरी=गूजरी।

सन्दर्भ—कबीर आत्मा को सम्बोधित करके ज्ञान प्राप्ति की बात करते हैं।

भावार्थ—हे सखि, तुम इस जीवन-रूपी बिलोवने को भगवान का समझ कर उन्ही के लिए बिलाओ। परन्तु इस प्रकार बिलोओ कि सारवस्तु (मक्खन रूपी तत्त्व) नष्ट न हो जाए। इस शरीर रूपी मटको मे मन रूपो दही को बिलोओ। उस मटकी मे प्राणायाम रूप जल समो दो। इसको जल्दी-जल्दी बिलोओ। छाछ लेने वाली इडा, पिंगला और सुषुम्ना रूपी नारियाँ खडी हुई प्रतीक्षा कर रही हैं। कबीर कहते हैं कि जीवात्मा रूपी गूजरी इस बिलोने की क्रिया मे आत्मविस्मृत हो गई। फलस्वरूप यह मटकी फूट गई—शरीर के बन्धन समाप्त होगये और उसकी आत्म चेतना रूपी ज्योति उस महान ज्योति के साथ एकाकार होगई। सात का अनन्त मे लय होगया।

अलंकार—सागरूपक—जीवन से भक्तिरस प्राप्त करने और दही बिलौने के रूपक का निर्वाह है।

(ii) रूपकातिशयोक्ति—बिलोवनो।

विशेष—(i) हरि को बिलौवनो—ईश्वरार्पण वुद्धि से जीवन-यापन करो।

(ii) तत—ज्ञान और भक्ति रूपी महारस।

(iii) पवन समोइ—जैसे दही मे मिलाया हुआ जल घी को दही से अलग कर देता है, वैसे ही प्राणायाम के प्रभाव से मन की वासनाओ का खट्टापन दूर हो जाता है, और उसमे भगवद प्रेम की स्निग्धता प्रमुख हो जाती है।

(iv) छछिहारी—इड़ा पिंगला एव सुपुम्ना की चर्चा कायायोग के अन्तर्गत

की जाती है। इन्हे छछिहारी कहने का कारण यह है कि कायायोग मे तत्वरूप महारस की प्राप्ति नही हो पाती है। वह चैतन्य के साक्षात्कार का विषय है, परन्तु इतना रस तो मिल ही जाता है, जितनी स्निग्धता मठे मे होती है। अभिप्रेत यह है कि इस महारस के स्पर्श से तीनो नाडियाँ स्निग्ध एव पातिल साधना रस से आप्लावित अवश्य हो जाती हैं।

(v) इस पद मे ज्ञान एव भक्ति के महारस की प्राप्ति का वर्णन है। इस महारस की साधना मे कायायोग की सिद्धि तथा तृप्ति भी स्वयमेव हो ही जाती है। इसके साथ ही भक्ति का पर्यवसान अद्वैतावस्था अभेद बुद्धि मे होता है। यह मटकी फूटी ज्योति समानी कथन द्वारा प्रकट है।

(vi) इसमे ज्ञान और भक्ति की अभिन्नता प्रकट है।

(vii) कबीर ने आत्मा को गूजरी इसलिए कहा है कि अहीर और गूजर जाति का मुख्य व्यवसाय गाय-भैंस पालकर दूध-घी का व्यापार करना है।

(३५५)

आसण पवन कियै दिढ रहु रे,
मन का मैल छाडि दे बौरे ।।टेक।।
क्या सींगी मुद्रा चमकांये, क्या विभूति सब अगि लगायें ।।
सो हिंदू सो मुसलमांन, जिसका दुरस रहै ईमांन ।।
सो ब्रह्मा जो कथै ब्रह्म गियांन काजी सो जांनै रहिमांन ।।
कहै कबीर कछू आंन न कीजै रांम नांम जपि लाहा लीजै ।।

शब्दार्थ—आसन=योग के अष्टाग साधनो मे एक। पवन=प्राणायाम दिढ=दृढ। बौरे=बावले। सीगी=शृगी, योगियो द्वारा धारण किया जाने वाला उपकरण विशेष। मुद्रा=योगियो का एक आभूषण। दुरषद=दुरुस्त, ठीक, दृढ। काजी=मुसलमान न्यायाधीश जो शरा के अनुसार मामलो का निर्णय करे। रहिमान=दयालु प्रभु। आन=अन्य साधना। लाहा=लाभ, जीवन का लाभ।

सदर्भ— कबीर राम नाम की महिमा का प्रतिपादन करते है।

भावार्थ—हे पागल जीव, पवन रूपी आसन पर दृढतापूर्वक स्थित रहो अर्थात् तू समाधिस्थ होकर प्राणायाम की दृढ साधना करो और मन का कलुष दूर करलो। सीगी, मुद्रा आदि बाहरी उपकरणो के सजाने से तथा अगो (शरीर) पर भस्म लगाने से क्या होता है? सच्चा हिन्दू और सच्चा मुसलमान वही है, जिसका ईमान ठीक ठिकाने बना रहता है अर्थात जो प्रलोभनो द्वारा विचलित नही होता है। वही ब्राह्मण है जो ब्रह्मज्ञान की बात करता है। वही काजी (धर्म और न्याय का ज्ञाता) वही है जो भगवान के दयालु स्वरूप को पहचानता है अर्थात् जो प्रत्येक मामले पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करता है। कबीर कहते हैं कि और कुछ भी मत करो, केवल राम नाम की जप करके जीवन का लाभ प्राप्त करो अर्थात् जीवन को सार्थक बनाओ।

अलंकार—रूपक—आसण पवन ।

(ii) वक्रोक्ति—क्या सीगी····· 'लगाये ।

विशेष (i) धार्मिक वाह्याचार, विधि-विधान आदि केवल आडम्बर हैं। ये व्यर्थ हैं ।

(ii) कबीर का कहना है कि अपने प्राणो पर नियन्त्रण रख कर स्व-स्वरूप का साक्षात्कार करना चाहिए । इस प्रकार ज्ञान और भक्ति मे, शुद्ध चैतन्य स्वरूप मे प्रतिष्ठित हो जाना चाहिए । ऐसी स्थिति मे अपने सहज धम मे प्रतिष्ठित रहने पर पूजा और साधना के बाहरी उपचारो की आवश्यकता नही रहती है ।

(३५६)

ताथै कहिये लोकाचार,
वेद कतेबक थै ब्यौहार ।।टेक।।
जारि वारि करि आवै देहा, मूवाँ पीछै प्रीति सनेहा ।।
जीवत पित्रहि मारहि डंगा, मूंवां पित्र ले घालै गगा ।।
जीवत पित्र कूं अन न ख्वांवै, मूंवां पाछै प्यड भरांवै ।।
जीवत पित्र कूं बोलै अपराध, मुंवां पीछै देहि सराध ।।
कहि कबीर मोहि अचिरज आवै, कऊवा खाइ पित्र क्यू पावै ।।

शब्दार्थ—कतेव=कुरान, धर्म ग्रन्थ । मूवाँ=मरे । डगा=डडा । घाले= फेकते हैं ।

सन्दर्भ—कबीरदास कहते हैं कि वाह्याचार केवल दम्भ प्रेरित होते हैं ।

भावार्थ—वेद और कुरान लौकिक आचरण का वर्णन करते हैं । इस कारण उनकी बातो को मात्र लोकाचार कहा जाना चाहिए । व्यक्ति अपने सम्बन्धियो के मृत शरीर को जलाकर उसका चिन्ह तक मिटा देते हैं और फिर उसके बाद रो-पीट कर उसके प्रति अपनी प्रीति प्रकट करते हैं । पुत्र जीवित पिता को लट्ठ से मारता है और मरने पर उमकी अस्थियो को गगा के जल मे डालने के लिए पहुँचता है । वह जीवित पिता को तो भोजन भी नही देता है और मरने पर उसकी बुभुक्षा की शांति करने के लिए पिण्डदान का दिखावा करता है । जीते जी पिता को अनेक दोप देता है (और उसके प्रति कटु शब्द कहता है) और मरने पर श्राद्ध के नाम पर श्रद्धा की अभिव्यक्ति का स्वाग करता है । कबीरदास कहते हैं कि इन समस्त वाह्याचारो को देख कर मुझको आश्चर्य होता है। कौए श्राद्ध के जिस अन्न को खाते हैं, उसे पितृ-गण क्यों कर प्राप्त कर सकते हैं ?

अलकार—(i) पदमैत्री—जारि वारि ।

(ii) वक्रोक्ति—कउवा पावै ।

विशेप—(i) सच्ची भावना से रहित कर्म काण्ड का खडन है ।

(ii) कबीर ने यह नही विचार किया कि जो पुत्र जीवित पिता की पूरी श्रद्धा-भक्ति से सेवा करता है, वह यदि उसके मरने पर श्राद्ध आदि करता है, तो

वह सर्वथा उपयुक्त एव सगत है। कबीर वस्तुत ऐसे कुल मे उत्पन्न हुए थे जहाँ वेदाध्ययन कोसो नही दिखाई देता है। इसी कारण वह वेदो द्वारा प्रतिपादित धर्म-तत्व का साक्षात्कार नही कर पाए। वह स्थूल रूप के परे पदार्थ के सूक्ष्मरूप का चिन्तन करने का अवसर ही न पा सके थे।

(ii) जीवन • गगा—कबीर के इस कथन पर सम्भवत इस प्रकार की लोकोक्तियो का प्रभाव है—

"मरे बबा की बडी-बडी अखियाँ" अथवा 'जियत बाप से लट्ठमलट्ठा। मरे बाप की सिट्टम सिट्टा।"

(३५७)

बाप रांम सुनि बीनती मेरी,
तुम्ह सूँ प्रगट लोगनि सूँ चोरी ॥टेक॥
पहले कांम मुगध मति कीया, ता भै कपै मेरा जीया ॥
रांम राइ मेरा कह्या सुनीजै, पहले बकसि अब लेखा लीजै ॥
कहै कबीर बाप रांम राया, अबहूं सरनि तुम्हारी आया ॥

शब्दार्थ—मुगध मति=मोहित बुद्धि। बकस=क्षमा। लेखा=ब्यौरा, हिसाब।

संदर्भ—कबीर भगवान से अपने कृत्यो के लिए क्षमा याचना करते है।

भावार्थ—हे पिता राम, मेरी प्रार्थना सुन लीजिए। मैं अन्य लोगो से तो अपने अपराधो को छिपाता हूँ, परन्तु तुम्हारे सम्मुख वे प्रकट हैं। पहले काम ने मेरी बुद्धि को मोहित कर रखा था, और मैंने मूर्खता के कार्य किए। इसी कारण आपके सामने आते हुए मेरा हृदय कापता है (मुझे डर लगता है)। हे राजा राम आप मेरी विनती सुन लीजिए। पहले आप मेरे अपराधो को क्षमा कर दे और उसके बाद मेरे द्वारा किए गए कर्मों का हिसाब-किताब लगाइए। अब तो आपकी शरण मे आ गया हूँ।

अलकार—श्लेष—काम मुगधमति।

विशेष—(i) दैन्य की मार्मिक व्यजना है।

(ii) प्रपत्ति एवं शरणागति की सहज भाव से अभिव्यक्ति है।

(iii) 'बाद' मे ग्राम्यत्व बोष है।

(३५८)

अजहूं बीच कैसे दरसन तोरा,
बिन दरसन मन मांनै क्यूं मोरा ॥टेक॥
हमहि कुसेवग क्या तुम्हहि अजांनां, दुह मैं दोस कहौ किन रांमां ॥
तुम्ह कहियत त्रिभवन पति राजा, मन बछित सब पुरवन काजा ॥
कहै कबीर हरि दरस दिखावौ, हम हि बुलावौ कै तुम्ह चलि आवौ ॥

शब्दार्थ— बीच=अन्तर, भेद बुद्धि । अजाना=अपरिचित । पुरवन=पूरा करने वाले ।

सन्दर्भ कबीर भगवान से भक्ति की याचना करते हुए कहते हैं ।

भावार्थ—हे प्रभु ! मेरे और आपके बीच मे अभी भी अन्तर है । अर्थात् मैं और आप एकाकार नही हो पाए हैं । तब आपका दर्शन किस प्रकार हो ? परन्तु आपके दर्शनो के बिना भी मेरा हृदय व्याकुल है । मैं भी कुसेवक हूँ अथवा आप भी अज्ञ हैं— मेरी आन्तरिक भावनाओ से परिचित नही हैं ? दोनो ही मे दोष है, हे राम, यह क्यो नही कहते हो ? तुम्हे तीनो लोको का स्वामी कहा जाता है और तुम मन की समस्त इच्छाओ को पूर्ण करने मे समर्थ हो । कबीरदास कहते हैं कि हे भगवान, आप मुझे अपने दर्शन दें । या तो मुझे अपने पास बुला लें अथवा आप स्वय ही मेरे पास चले आएँ ।

अलंकार—(i) गूढोक्ति— कैसें '' तोरा ।

(ii) सदेह—कुसेवक क्या तुम्हहि अजाना ।

विशेष—आप या तो मुझमे अद्वैत-भावना जगाकर अपने आप मे मुझे लवलीन करलें अथवा ऐसी कृपा करें कि मुझे जीवन और जगत मे सर्वत्र आपकी व्यक्त प्रवृत्ति का सरस आभास प्राप्त होने लगे । प्रकारातर से भक्ति की याचना है ।

(३५९)

क्यूं लीजै गढ़ बका भाई,
दोवर कोट अरु तेवड़ खाई ।।
कांम किवाड़ दुख सुख दरबांनी, पाप पुंनि दरवाजा ।
क्रोध प्रधान लोभ बड़ दूंदर, मन मै वासी राजा ।।
स्वाद सनाह टोप ममिता का कुबधि कमांण चढ़ाई ।
त्रिसना तीर रहे तन भीतरि, सुबधि हांथि नहीं आई ।।
प्रेम पलीता सुरति नालि करि, गोला ग्यांन चलाया ।
ब्रह्म अग्नि ले दिया पलीता, एकै चोट ढहाया ।।
सत संतोष ले लरने लागे, तोरे दस दरवाजा ।
साध संगति अरु गुर की कृपा थै, पकरयौ गढ़ कौ राजा ।।
भगवत भीर सकति सुमिरण की, काटि काल की पासी ।
दास कबीर चढ़े गढ़ ऊपरि, राज दियौ अविनासी ।।

शब्दार्थ—क्यूँ=किस प्रकार । गढ=किला, शरीर । वका=टेढा, दुर्गम कठिन । लीजै=विजय प्राप्त की जाए । दोवर=दोहरा अथवा द्वैत भाव । काठ= परकोटा, दीवाल । दोवर कोट=अन्नमय एवं प्राणमय कोप । तेवर=तिहरी । तेवर खाई=तीन खाइयाँ—मनोमय, विज्ञानमय एव आनन्दमय कोप अथवा तीन गुण । दरवानी=पहरेदारी । दूदर=द्वन्द्व । मैवासी=नायक, किलेदार । सनाह =सन्नाह=कवच । टोप=शिरस्त्राण । भगवत=भागवत कर्म । पासी=पाश ।

सन्दर्भ—कवीर हठयोगी साधना का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—रे भाई, इस कठिन शरीर रूपी किले पर किस प्रकार विजय प्राप्त की जाए ? इसको दो दीवाले तीन खाइयाँ घेरे हुए है। दो दीवाल और तीन खाई का अर्थ पच कोष भी हो सकता है ओर "द्वैत भाव एव तीन गुण भी" हो सकता है। इस प्रकार यह पांच आवरण वाला किला है। इसके काम रूपी किवाड हैं, सुख-दुख ही पहरेदार हैं तथा पाप और पुण्य इसके दरवाजे हैं। क्रोध यहा का प्रधान है और लोभ अपनी तृप्ति के लिए बहुत सघर्ष करता रहता है। मन रूपी नायक ही इस शरीर-रूपी दुर्ग का राजा है। इन्द्रिय-स्वाद ही इस किले के राजा का कवच है। इसने ममता का शिरस्त्राण पहन रखा है। मन-रूपी राजा ने कुवुद्धि का धनुष चढा रखा है। इसके शरीर रूपी तरकण मे तृष्णा के तीर भर रहे हैं और इस किले मे ढूढने पर भी सुवुद्धि नही मिलती है। इग दुर्ग को जीतने का उपाय यह है कि सुरति रूपी तोप की नाल मे ईश्वर प्रेम का पलीता से ज्ञानाग्नि लगाकर मैंने आत्म-वोध का गोला चलाया और इस प्रकार 'ब्रह्माग्नि लेकर मैंने इस किले मे पलीता लगाया और एक ही प्रहार से इस किले को ढा दिया (गिरा दिया) सत्य-निष्ठा एव सतोप की सेना को लेकर जब मैं लडने लगा, तब मैंने किले के दसो द्वार (नवद्वार शरीर के तथा ब्रह्मरन्ध्र) तोड डाले अर्थात् शारीरिक सीमाएँ समाप्त होकर आत्म-चेतना का विश्व चेतना मे लय हो गया। साधु-सगति और गुरु की कृपा के सहारे मैंने अहकारी दुर्गपति मन को अपने वश मे कर लिया। भागवत कर्मों की भीड तथा नाम स्मरण की शक्ति के द्वारा मैंने काल का बन्धन भी तोड दिया। भगवान के दास कबीर ने इस शरीर-रूपी गढ पर आक्रमण किया और अविनाशी भगवान ने उसको इसका राज्य दे दिया अर्थात् अमर पद प्रदान कर दिया।

अलंकार—(i) रूपकातिशयोक्ति—गढ।

(ii) सागरूपक—सम्पूर्ण पद। शरीर और गढ के रूपक की निर्वाह है।

(iii) छेकानुप्रास की छटा—काम किवाड, पाप पुनि, मर मँवासी, स्वाद सनाह, कुवुधि कमाण। त्रिसिना तीर। प्रेम पलीता, गोला ग्यान, सत सतोष, दस दरवाजा, साध सगति, भगवत भीर, सकति सुमिरण, कटि काल।

विशेप—(i) विषयी जीवन और ज्ञान एव भक्ति साधना का जीवन—दोनो का एक साथ वर्णन किया गया है।

(ii) **काम-किवाड**—इस शरीर की वृत्तियो एव विपयो के प्रति आकर्पण दोनो ही इच्छा द्वारा नियन्त्रित होते हैं। इसी से 'काम' को किवाड कहा है।

(iii) **दुख-सुख दरबानो**—वृत्तियाँ सुखात्मक एव दुखात्मक होती हैं। सुख-दुख के आदेश से ही वृत्तियो के आने-जाने की कल्पना की गई है।

(IV) **पाप-पुंनि दरवाजे**—वृत्तियाँ पाप-पुण्य रूप हैं, अत. उनके ये दो दरवाजे हैं।

(V) **क्रोध-प्रधान**—"कामात् सजायते क्रोध," के अनुसार इच्छा की आपूर्ति क्रोध का हेतु है। अधिकाश इच्छाएँ पूरी नही हो पाती है। इसी से क्रोध की प्रधानता कही है।

(VI) **स्वाद सनाह**— जीव इन्द्रियो के स्वाद द्वारा सदैव वशीभूत बना रहता है। फलस्वरूप आत्म-हित की बातो का उस पर कोई प्रभाव नही पडता है। उपदेश के तीर स्वाद के कवच को पार नही कर पाते हैं।

(VII) **रोप-ममता**— मानव का अह राग-द्वेष से इतना घिर जाता है कि उसके मस्तिष्क मे विवेक की बात प्रवेश ही नही कर पाती है। 'अह' व्यक्ति का शिरो भाग है। इसकी रक्षा 'ममत्व' करता है। इसी से 'ममता' रूपी शिरस्त्राण कहा है।

(VIII) **एकै चोट ढहाया**—स्वरूप-स्थिति के कारण देहाध्यास छूट जाता है। यह अध्यास ही शरीर की जड है। अध्यास का नष्ट होना ही शरीर रूपी किले का ढह जाना है।।

(IX) 'नालिकर' के स्थान पर हवाई' पाठान्तर है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने 'हवाई' को ही ठीक माना है। उनका कहना है कि, नालें कबीर के मरणानातर बाबर के साथ आई थी। 'हवाई' गोलो को फेंकने का एक यन्त्र होता था, जिसका उल्लेख इतिहास मे नालो के प्रचलन के पूर्व पयाप्त मात्रा मे मिलता है।"

सुरति—देखें टिप्पणी पद स० १६२।

(३६०)

रैंनि गई मति दिन भी जाइ,
भवर उड़े बग बैठे आइ ।।टेक।
कांचै करवै रहै न पानी, हंस उड़्या काया कुमिलांनीं ।।
थरहर थरहर कपै जीव, नां जांनू का करिहै पीव ।।
कऊआ उड़ावत मेरी बहियां पिरांनीं, कहै कबीर मेरी कथा सिरांनीं ।।

शब्दार्थ—रैंनि = रात्रि, युवावस्था। दिन = वृद्धावस्था। बग = बगुला। करवै = मिट्टी का छोटा बर्तन, करुआ। हस = बोध। सिरोनी = समाप्त हुई।

सदर्भ—कबीरदास जीवात्मा रूपी पत्नी की परमात्मा रूपी पति से मिलन से पूर्व की मन स्थिति का वर्णन कर रहे हैं। उसका वर्णन एक ऐसी नवोढा के रूप मे किया गया है जो प्रथम समागम भय के कारण प्रिय-मिलन मे सकोच करती है।

भावार्थ—यौवन रूपी रात्रि तो पति के वास्तविक स्वरूप के अज्ञान मे व्यतीत हो गई। अब परिपक्वावस्था रूपी बुढापा भी कही इसी प्रकार व्यतीत न हो जाए। युवावस्था रूपी रात्रि के प्रतीक काले बालो रूपी भौंरे तो उड गए है और वृद्धावस्था रूपी दिन के आगमन की सूचना देने वाले श्वेत केश रूपी बगुले

आ गए हैं। यह शरीर कच्ची मिट्टी के वर्तन (करुए) के समान है। इसमे जीवन रूपी पानी अधिक समय तक नही टिक पाता है। वोध रूप हस के निकल जाने पर यह शरीर रूपी कमल कुम्हला कर नष्ट हो जाता है जीवात्मा यह सब कुछ समझती हुई कहती है कि प्रिय समागम मे सम्भाव्य कष्ट की कल्पना करके मेरा मन भय के कारण थर-थर काँपता है कि मिलने पर प्रियतम न मालूम मेरी क्या दुर्दशा करेगा ? परन्तु इतने पर भी मेरा मन प्रियतम के दर्शनो के लिए उत्सुक है। उनके आगमन की प्रतीक्षा मे कौए उडाते-उडाते मेरी वाँहो मे दर्द होने लगा है। परन्तु प्रियतम अभी तक नही आए हैं)। कवीरदास कहते है कि इस प्रकार जीवात्मा की कथा समाप्त होती है कि वह परमात्मा से मिलना तो चाहती है, परन्तु मिलन के लिए साधना करना चाहती है।

अलकार—(i) रूपकातिशयोक्ति—रैनि, दिन, भवर, वग, कवै, हस।
(ii) पुनरुक्ति प्रकाश—थर थर।
(iii) श्लेष पुष्ठ रूपक—पानी।

विशेष—(i) 'करूवा उडावत'—यह एक लोक प्रचलित परम्परा है कि नारियाँ कौआ उडा कर अपने प्रियजन के आगमन के शकुन का विचार करती है।

(ii) रहस्यवाद की मार्मिक व्यंजना है।

(iii) सरल रूपको द्वारा हृदय स्पर्शी भाव-व्यजना की गई है। ऐसे पद कवीर के उत्कृष्ट के प्रमाण हैं,

(iv) कामासक्ति के इस भक्ति-पद मे भक्ति-भावना एव लौकिक प्रेम दोनो की रसावस्था की अनुभूति है।

(v) इस पद मे मान्य साधक जीवन के क्रमिक विकास तथा उसके पारस्परिक समन्वय की सुन्दर व्यजना है। इसमे साधना के जीवन का पूरा लोकाखोखा भी है। अभिप्रेत यह है कि साधक प्राय पूरी निष्ठा एव तत्परता के साथ साधना में रत नही होते हैं। वे 'कौवा' ही उडाते रहते हैं और उनका जीवन समाप्त हो जाता है। यदि अतिम पक्ति का यह अर्थ किया जाए कि हे प्रभु! आप की प्रतीक्षा करते-करते मैं तो थक गई हूँ। अव मैं मरणासन्न हूँ, शीघ्र ही दर्शन दे दो, तब यह कथन एक भक्त का कथन हो जाएगा और इसमें सूफी पद्धति की विरह-व्यजना मानी जाएगी। इस प्रकार इस पद मे हमको ज्ञान, भक्ति और रहस्यवाद तीनो का सुन्दर समन्वय दिखाई देता है।

(३६१)

काहे कूँ भीति बनाऊ टाटी,
का जानूं कहा परिहै माटी ॥टेक॥
काहे कू मदिर महल चिणाऊं, मूवां पीछैं घड़ी एक रहण न पाऊ॥
काहे कू छाऊं ऊंच उंचेरा, साढ़े तीनि हाथ घर मेरा॥
कहै कबीर नर गरब न कीजै, जेता तन तेती भुइ लीजै॥

शब्दार्थ—भीत=दीवाल। टाटी=परदा। इंचेरा=ऊँचहरा=ऊँचा घर, छते।

संदर्भ—कवीर जीवन की क्षणिकता का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—मैं दीवार अथवा परदा (ओट) किस लिए बनवाऊँ ? पता नहीं इस शरीर की मिट्टी कहा गिरेगी ? मैं मन्दिर और महल किस लिए बनवाऊँ ? मरने के बाद तो यह शरीर उनमे एक क्षण भी नही रहने पाएगा। ऊँची-ऊँची छते भी मैं किस लिए डालूँ। मेरा यह शरीर तो केवल साढे तीन हाथ लम्बा है। कबीरदास कहते है कि मनुष्य को इस शरीर के प्रति अभिमान एव ममता करके व्यर्थ वहुत स्थान घेरने का प्रयत्न नही करना चाहिए; गुजर भर के लिए जितना स्थान पर्याप्त हो, बस उतनी ही जगह लेना चाहिए। (मरने पर तो केवल कब्र मे ही सोना है।)

अलकार—(1) गूढोक्ति—काहे '' माटी।

विशेष—(1) 'निर्वेद' की व्यंजना है।

(11) जीवन की क्षणभगुरता की चर्चा द्वारा अपरिग्रह का उपदेश है।

(111) समभाव देखिए—

कहा चिणावै मेडिया, लाँबी भीति उसारि।
घर तो साडे तीन हाथ, घना त पौनि चारि। (कबीरदास)

[राग बिलाबल]

(३६२)

वार वार हरि का गुण गावै,
गुर गमि भेद सहर का पावै ॥टेक।
आदित करै भगति आरंभ, काया मंदिर मनसा थभ ॥
अखंड अहनिसि सुरष्या जाइ, अनहद बेन सहज में पाइ ॥
सोमवार ससि अमृत झरै, चाखत बेगि तप निसतरै।
वाणीं रोक्यां रहै दुवार, मन मतिवाला पीवनहार ॥
मगलवार ल्यौं माहींत, पंच लोक की छाड़ौ रीत।
घर छाड़ै जिनि बाहरि जाइ, नही तर खरौ रिसावै राइ ॥
बुधवार करै बुधि प्रकास, हिरदा कवल मैं हरि का वास।
गुर गमि दोऊ एक समि करै, ऊरध पंकज थैं सूधा धरै ॥
ब्रिसपति बिषिया देइ वहाइ, तीनि देव एकै सगि लाइ।
तीनि नदी तहाँ त्रिकुटी माहि, कुसमल धोवै अह निसि न्हाहि ॥
सुक्र सुधा ले इहि व्रत चढै, अह निसि आप आप सूँ लड़ै।
सुरषी पंच राखिये सबै तौ दूजी द्रिष्टि न पैसे कबै ॥
थावर थिर करि घट मै सोइ, जोति दीवटी मेल्है जोइ।
वाहरि भीतरि भया प्रकास तहाँ भया सकल करम का नास ॥

जब लग घट मै दूजी आंण, तब लग महलिन पावै जांण ।
रमित रांम सूं लागै रंग, कहै कबीर ते निर्मल अंग ।।

शब्दार्थ—गमि=अगम्य अथवा द्वारा । सहर=पाठान्तर सुहरि, अथवा सहचर=आत्माराम । आदित=आदित्यवार, सूर्यवार-इतवार । मनसा=सकल, प्रेम रूपी सकल्प । थंभ=स्तम्भ । अहनिसि=दिन रात । रख्या=रखा जाए । बाइ=वायु । माहीत=लगाओ । पच लोक=पाँच विकार (काम, क्रोध लोभ, मोह मत्सर) । पकज=सहस्रार । कुसमल=कलमष । सुरषी=सुरक्षित, नियत्रित । थवर=स्थावर । थिर=स्थिर । दीवाटि=दीप यष्टि, दीयाधार ।

सदर्भ—कबीर योग-साधना विधि का वर्णन करते हैं । सप्ताह भर के व्रतों का नवीन साधना-परक एव अध्यात्मिक अर्थ दिया गया है ।

भावार्थ—कबीर कहते हैं कि प्रत्येक वार को हरि का गुणगान करना चाहिए । तव गुरु के द्वारा आत्माराम का कठिन रहस्य जाना जा सकता है । रविवार के दिन इस भक्ति-साधना को आरम्भ करो । इसके लिए शरीर रूपी मदिर को भगवद्प्रेम के सकल्प रूपी खम्भे का आधार प्रदान करो । इससे अखण्ड नाम कीर्तन की मधुर स्वरी दिन रात हृदय मे प्रवेश करेगी तथा अनहद नाद की वीणा भी सहज मे ही सुनाई देगी । सोमवार के दिन सहस्रार के चन्द्रमा से अमृत झरता है । उसके चखने मात्र से शरीर की तपन (कष्ट) से शीघ्र ही मुक्ति मिल जाती है । जीभ उलट कर अमृत के इस द्वार को रोक लेती है और इस रस मे मग्न मन इसको पीता रहता है । मगलवार को उस परम तत्व मे मन की लौ लगा दो तथा पाँचो विकारो की रीति छोड दो अर्थात् काम क्रोधादि पच विकारो के वशीभूत होना छोड दो । घर छोड कर वाहर मत जाओ (गृहस्थ के कर्त्तव्यो एव धर्म से विमुख मत वनो) अन्यथा राजा राम बहुत रुष्ट हो जाएँगे ।

बुधवार के दिन बुद्धि मे ज्ञान का प्रकाश करो । हृदय कमल मे भगवान का निवास है । गुरु के द्वारा प्राप्त ज्ञान के द्वारा ज्ञान एव प्रेम को समान भाव से ग्रहण करना चाहिए अथवा इडा-पिंगला को सम करे तथा सहस्रार कमल को उलटे से सीधा कर दे—अधोमुखी ऊर्ध्वमुखी कर देना चाहिए । वृहस्पतिवार को समस्त विषयो को फेंकदे और तीनो देवताओ (त्रिगुण) को एक स्थान पर लगादे—ब्रह्म मे लीन कर दे । त्रिकुटी स्थान की इडा, पिंगला और सुषुम्ना तीन नदियो मे रात दिन अपने कलमषो तथा विषय-राग को धोता रहे । शुक्रवार को साधना का अमृत लेकर यह व्रत धारण कर कि मैं रात-दिन अपने मन की कुवासनाओ से जूझता रहूँगा । इसके साथ पाँचो ज्ञानेन्द्रियो पर पूर्ण नियन्त्रण रखे । तव दूसरी दृष्टि (द्वैत भावना अथवा अन्य साधना के प्रति आसक्ति) व्यक्ति के मन-मानस मे घुसेंगे ही नही । शनिवार को अपना हृदय स्थिर करे तथा अन्त करण मे उसी परम ज्योति को प्रेम एव ज्ञानवृत्तियो के दीयाधार मे रखकर प्रकाशित कर दे । इस ज्योति के द्वारा बाहर-भीतर दोनो ही स्थानो पर प्रकाश होगा और समस्त कर्मफल समाप्त

हो जाएंगे। जब तक अन्त.करण मे द्वैत की भावना है, भेद-बुद्धि है, तब तक शरीर स्थित मन्दिर, जिसमे प्रभु का वास है, का रहस्य प्राप्त नही किया जा सकता है। कबीरदास कहते हैं कि राम मे रमण करते हुए मन पर राम के अनुराग का रंग चढ जाता है और अन्तःकरण निर्मल हो जाता है।

अलंकार—(i) पुनरुक्ति प्रकाश—बार बार।
(ii) रूपक - काया थंभ। अनहद बेन। हिरदा कवल।
(iii) छेकानुप्रास—गुण गावै, गुर गमि; अखड अहनिसि; सोमवार ससि। मन मतिवाला।
(iv) वृत्यानुप्रास—रमिता राम रंग।
(vi) रूपकातिशयोक्ति—ससि, दुवार, दोऊ। महलि।
(vii) चपलातिशयोक्ति—चाखत''''निसतरै।

विशेष—(i) ये समस्त मान्यताएँ योगियो मे प्रचलित हैं जो अद्यतन किसी न किसी रूप मे कबीर पथियो मे भी मानी जाती हैं।

(ii) जिनि बाहिर जाइ—कबीर संसार छोड़ने की बात नही कहते हैं। उनका तो निश्चित मत था कि अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह करते हुए ही सच्ची भक्ति हो सकती है। वह स्वय जुलाहे का व्यवसाय करते थे।

(iii) अनहद बेन—देखें टिप्पणी पद सख्या १५७।
(iv) ससि—देखे टिप्पणी पद सं० ४, ७, २१०।
(v) त्रिकुटी—देखें टिप्पणी पद सं० ३, ४।
(vi) त्रिकुटी सगम—देखें टिप्पणी पद सं० ७।
(vii) सहज—देखें टिप्पणी पद स० १५५।
(viii) बाहर भीतर—प्रकाश'''' 'बाह्य दृष्टि द्वारा सत्यासत्य का विवेक होता है तथा अन्त.दृष्टि द्वारा सत्य की अनुभूति होती है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी लिखा है कि—

राम नाम मणि दीप धरि जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरेहु जो चाहसि उजियार।

(३६३)

रांम भजै सो जांनिये, जाके आतुर नांहीं।
सत संतोष लीयें रहै, धीरज मन मांहीं॥
जन कौं कांम क्रोध व्यापै नहीं, त्रिष्णां न जरावै।
प्रफुलित आनंद मै, गोव्यंद गुंण गावै॥
जन कौं पर निंद्या भावै नहीं, अरु असति न भाषै।
काल कलपनां मेटि करि, चरनूं चित राखै॥
जन सम द्रिष्टी सीतल सदा, दुबिधा नही आनै।
कहै कबीर ता दास सूं मेरा मन मांनै॥

शब्दार्थ—आतुर=व्याकुलता । जन=भक्त ।

सन्दर्भ—कबीरदास भक्त के लक्षणो का वर्णन करते हैं ।

भावार्थ—राम का भजन करने वाला वही सच्चा भक्त माना जाता है जिसके मन मे प्रभु कृपा के लिए व्याकुलता नही होती है । वह सदैव सत्य और सतोष धारण किए रहता है और वह मन मे धैर्य धारण करता है अर्थात् विपत्ति के समय विचलित नही होता है । भक्त को काम और क्रोध नही सताते हैं और उसको तृष्णा (भोगेच्छा) जलाती (उद्वेलित) नही करती है । वह सदैव आनन्द मग्न रह कर प्रफुल्लित दिखाई देता है और गोविंद का गुणगान करता रहता है । भक्त को कभी किसी की निंदा करना अच्छा नही लगता है और वह कभी असत्य भाषण नही करता है (कभी झूठ नही बोलता है) । वह काल की कल्पना मिटाकर अनन्त मे निवास करता है ओर भगवान के चरणार्विन्द मे चित्त लगाये रहता है । वह सुख-दुख, हानि-लाभ, जय-पराजय आदि के प्रति समान भाव रखता है और अपने मन को सदैव शात रखता है । उसके मन मे किसी प्रकार का सदेह नही रहता है—वह आश्वस्त रहता है कि प्रभु भक्ति के पथ पर चल कर ही उसका कल्याण सम्भव है । कबीरदास कहते हैं कि इतने लक्षणो से युक्त भक्त के प्रति मेरे हृदय मे प्रेम और श्रद्धा का भाव रहता है ।

अलंकार—(1) छेकानुप्रास—सत सतोष, अरु असति चरनू चित ।
(ii) वृत्यानुप्रास—ग्यद गुन गावै । मेरा मन मानै ।
(iii) परिकराकुर की व्यजना—गोव्यद ।

विशेष—(1) काल कल्पना—भूत, और भविष्य की चर्चा काल कल्पना है । सदैव वर्तमान मे निवास करना ही काल-कल्पना को मिटाना है । वर्तमान को क्षुरस्य धारा है । इसमे स्थिर रहना ही काल पर विजय करना है ।

(ii) तुलनात्मक अध्ययन के लिए देखें—

(क) दैवी सपदा प्राप्त पुरुष के लक्षण देखें—

अभयं सत्त्वसंशुद्धि जनि योग व्यवस्थित ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ।
अहिंसा सत्यम क्रोधस्त्याग शातिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्व लोलुप्त्वं मारवं हरि खापलम् ।

इत्यादि (श्रीमद्भगवद्गीता—१६।१-४)

तथा—देखें भक्त के लक्षण—

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो ।
श्री रघुनाथ-कृपालु-कृपा तें संत-सुभाव गहौंगो ।
जथा लाभ सतोष सदा, काहू सो कछु न चहौंगो ।
परहित-निरत निरतर मन क्रम बचन नेम निवहौंगो ।
परुष वचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो ।

बिगत मान, सम सतिल मन, पर गुन नहिं दोष कहौंगो।
परिहरि देह-जनित चिंता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अविचल हरि भक्ति लहौंगो।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(३६४)

माधौ सो न मिलै जासौ मिलि रहिये,
ता कारनि वर कहु दुख सहिये ।।टेक।।
छत्रधार देखत ढहि जाइ, अधिक गरब थैं खाक मिलाइ ।।
अगम अगोचर लखीं न जाइ, जहाँ का सहज फिर तहाँ समाइ ।।
कहै कबीर झूठे अभिमान सो हम सो तुम्ह एक समान ।।

शब्दार्थ—सो=सः, आत्मा अथवा परमतत्त्व। छत्रधार=छत्रधारण करने वाला राजा। ढरि जाइ=नष्ट हो जाता है।

सन्दर्भ—कबीरदास जीवन की नश्वरता का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—हे माधव, वह परम तत्व प्राप्त नही होता है जिससे तदाकार होकर रहना चाहिए, भले ही उसको प्राप्त करने के लिए साधक को बहुत से दुःख सहने पडे। छत्र धारण करने वाले राजा देखते ही देखते नष्ट हो जाते है। अधिक अभिमान के कारण व्यक्ति मिट्टी मे मिल जाते है। उस परम तत्व को प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है, वह इन्द्रिय गम्य नहीं है तथा उसको इन स्थूल नेत्रो द्वारा देखा भी नही जा सकता है। उसमे आत्मा का सहज स्वरूप जहाँ का तहाँ समाहित हो जाता है। कबीर कहते हैं कि बडप्पन का अभिमान सर्वथा मिथ्या है। हम और तुम सब एक ही तत्व हैं और परस्पर समान हैं।

विशेष—(1) ससार की नश्वरता का वर्णन है।

(ii) निर्वेद संचारी की व्यंजना है।

(iii) एकत्व का प्रतिपादन है। व्यक्ति व्यक्ति की समानता तथा जीव और ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन है।

(३६५)

अहो मेरे गोव्यंद तुम्हारा जोर,
काजी बकिवा हस्ती तोर ।।टक।।
बांधि भुजा भलै करि डारचौ, हस्ती कोपि मूंड मै मारचौ ।।
भाग्यौ हस्ती चीसां मारी, वा मूरति की मैं बलिहारी ।।
महावत तोकूं मारौं साटी, इसहि मरांऊं घालौं काटी ।।
हस्ती न तोरै धरै धियांन, वाकै हिरदै बसै भगवांन ।।
कहा अपराध संत हौं कीन्हां, बांधि पोट कुंजर कूं दीन्हां ।।
कुंजर पोट बहु वंदन करै, अजहूं न सूझै काजी अंधरै ।।

तीनि बेर पतियारा लीन्हां, मन कठोर अजहूँ न पतीनां ॥
कहै कबीर हमारै गोब्यंद, चौथे पद ले जन का ज्यद ॥

शब्दार्थ—जोर=शक्ति। हस्तौ=हाथी। साटी=डंडा, कोड़ा। घालौं=डालता हूँ। पोट=पोटला, गठरी। कुंजर=हाथी। पतीना=विश्वास किया। जिंद=जीव। चौथे पद=सायुज्य मुक्ति।

संदर्भ—कबीरदास प्रभु की महिमा का वर्णन करते है।

भावार्थ—अहो मेरे गोविंद भगवान, शक्ति की महिमा अपार है। काजी ने वकवास कि इसे हाथी से मरवा दो। मेरे हाथो को अच्छी तरह बाँध कर हाथी के सामने डाल दिया गया। हाथी ने क्रोध करके सिर पर प्रहार किया। वह चीख मारकर स्वय ही भागा। मैं भगवान के उस स्वरूप की बलिहारी जाता हूँ जिसने हाथी को ऐसी प्रेरणा प्रदान की। काजी ने कहा, रे महावस, मैं तूमको कोडे लगवा दूँगा और इस हाथी को मरवा दूँगा तथा कटवा डालूँगा। परन्तु हाथी ने मुझको नही मारा। वह भगवान का ध्यान धारण किए हुए था। उसके हृदय मे तो भगवान बसे हुए थे।" कबीर बोचते हैं कि सत कबीर ने क्या अपराध किया था, उसकी पोटली वनाकर उसे हाथी के समक्ष डाल दिया गया। भगवान ने हाथी को ज्ञान प्रदान किया। वह उठ गठरी (शरीर के बधे हुए शरीर) को वार-वार प्रणाम करने लगा, परन्तु उस मूर्ख काजी की समझ मे अभी भी नही आया। उसने इसी प्रकार तीन बार हाथी को आज माया, परन्तु उस निष्ठुर हृरय (जड़ हृदय) वाले काजी के मम मे फिर भी भगवान के प्रति विश्वास जाग्रत नही हुआ। कबीर कहते हैं कि हे मेरे गोविंद स्वामी इस भक्त जीव को चौथे पद (सायुज्य मुक्ति) कर लीजिए।

विशेष—इस पद द्वारा उस जनश्रुति की पुष्टि होती है जिसके अनुसार लोदी ने कबीर को हाथी मे पैर के नीचे डलवा दिया था।

इस पद मे कबीर ने प्रभु की महिमा का वर्णन सगुण भक्तों की पद्धति पर किया है। यथा—

अब कै राखि लेउ भगवान।
हौं अनाथ बैठ्यो द्रुम-डरियाँ, पारधि साधेवान।
ताके डट मे भाज्यौ चाहत, ऊपर ढुक्यो समान।
दुहूं भाँति दुख भयो आवि यह, कौन उबारै प्रान ?
सुमिरत ही अहि डस्यो पारधी, कर छूट्यी सधान।
सूरदास, सर लग्यो सचानहि, जय-जय कृपानिधान। (सूरदास)

(३६६)

कुसल खेम करु सलामति, ए दोह काकौं दीन्हां रे।
आवत जांत दुहुंधा लूटे, सर्ब तत हरि लीन्हां रे ॥ टेक ॥

माया मोह मद मैं पीया, मुगध कहै यहु मेरी रे।
दिवस चारि भले मन रजै, यहु नाहीं किस केरी रे॥
सुर नर मुनि जन पीर अवलिया, मीरां पैदा कींन्हां रे।
कोटिक भये कहां लूं बरनूं सबनि पयानां दींन्हां रे॥
धरती पवन अकास जाइगा, चद जाइगा सूरा रे।
हम नांहीं तुम्ह नांहीं रे भाई, रहे रांम भरपूरा रे॥
कुसलहि कुसल करत जग खींना, पड़े काल भौ पासी।
कहै कबीर सबै जग बिनस्या, रहे रांम अबिनासी॥

शब्दार्थ— खेम=क्षेम। सही सलामत=पूर्ण सुख-सुविधा। दहूंघा=दोनो समय। सुब=सब। मुगध=मूर्ख। अवलिया=औलिया, पहुँचा हुआ मुसलमान फकीर, सिद्ध पुरुष। पीर=मुसलमानो का धर्म गुरु। मीरा=श्रेष्ठजन। पयाना=प्रयाण। खीना=क्षीण हुआ है। पासी=फाँसी। विनस्या=नष्ट हो गया।

सन्दर्भ—कबीर ससार की निस्सारता का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—कुशल-क्षेत्र और पूर्ण सुख-सुविधापूर्वक रहना ये दोनो बातें एक साथ ससार मे किसी को प्राप्त नही होती हैं अर्थात् इस ससार मे आते समय और जाते समय दोनो ही अवसरो पर हम लूटे जाते हैं और यहाँ हमारा समस्त तत्व हरण कर लिया जाता है अर्थात् इस जीवन मे हम अपने शुद्ध चैतन्य स्वरूप को सर्वथा भूल जाते है। यह जीव माया-मोह की शराब पिये रहता है और फिर वह मूर्ख यह कहता है कि यह सब सम्पत्ति मेरी है। मानव चार दिन के लिये भले ही अपना मन बहला ले, किन्तु यह माया (सांसारिक सम्पत्ति) किसी की नही है। देवता, मनुष्य, मुनि, भक्त, धर्मगुरु, सिद्ध महात्मा, श्रेष्ठजन आदि अनेक प्रकार के व्यक्ति भगवान ने उत्पन्न किए हैं। इस प्रकार के करोडों पैदा हुए, उनका वर्णन कहाँ तक करूँ ? परन्तु सब के सब इस ससार से प्रस्थान कर गये। पृथ्वी, वायु, आकाश, सूर्य और चन्द्र सभी नष्ट हो जाएँगे सभी नश्वर है। न हम रहेंगे न तुम रहोगे और न हमारे भाई-बन्धु रहेगे। केवल एक राम ही रहेंगे, वे ही सर्वत्र व्याप्त हैं। कुशलता का उपक्रम करता ही करता यह संसार नष्ट होता है और मृत्यु के बन्धन मे पडता है। कबीर कहते हैं कि सारा जगत विनष्ट हो जाता है। (नाशवान है) केवल अविनाशी राम ही रह जाते हैं (केवल राम ही अविनाशी हैं)।

अलंकार—(i) वक्रोक्ति—ए दोइ··· रे।
(ii) वृत्यानुप्रास—माया मोह मद मुगध।
(iii) रूपक—माया मोह मद, काल पासी।
(iv) सभंग पद यमक—कुसलहि कुसल।

विशेष—(i) ससार की असारता के वर्णन द्वारा वैराग्य का प्रतिपादन है।
(ii) 'निर्वेद' संचारी की व्यजना है।

(iii) कुशल·······दीन्हा रे। वैभव लेकर भी व्यक्ति कुशल-पूर्वक बना रहे—यह नहीं होने का। देखिए—

दुइ कि होइ एक समय भुआला। हँसब ठठाइ फुलाइब गाला।
दानि कहाइब अरु कृपनाई। होइ कि खेम कुशल रौताई।
(गोस्वामी तुलसीदास)

(iv) दिवस ····रे··· कहावत प्रचलित है—"चार दिनाँ की चाँदनी फेरि अंधेरी रात।"

(v) सबहि पयानां कीन्हा रे—समभाव की अभिव्यक्ति देखे—

हाय दई ! यह काल के ख्याल में फूल से भूलि सबै कुम्हलाने।
देव-अदेव कली- बलहीन चले गये मोहि की हौंस हिलाने।
यो जग बीव बचे नहिं मीच पै, जे उपजे ते मही में मिलाने।
रूप-कुरूप-गुनी-निगुनी जे जहां जनमे ते तहाँ ही बिलाने। (देव)

(३६७)

मन बनजारा जागि न सोई,
लाहे कारनि मूल न खोई ॥टेक॥
लाहा देखि कहा गरबांना, गरब न कीज मूरिख अयांनां ॥
जिन धन सच्या सो पछितांनां, साथी चलि गये हम भी जांनां ॥
निसि अंधियारी जागहु बंदे, छिटकन लागे सबही संधे ॥
किसका बंधू किसकी जोई, चल्या अकेला संगि न कोई ॥
ढरि गए मंदिर टूटे बंसा, सूके सरवर उड़ि गये हंसा ॥
पंच पदारथ भरिहै खेहा, जरि बरि जायगी कंचन देहा ॥
कहत कबीर सुनहु रे लोई, रांमनांम बिन और न कोई ॥

शब्दार्थ— बनजारा=व्यापार करने वाला, बनिज, व्यापारी। लाहे=लाभ छिटकन=बिछुडना। सधे=सगी साथी। जोई=योगिता, स्त्री बसा=वश। पच पदारथ=पच महाभूत। खेहा=मिट्टी। लोई=लोगो अथवा कबीर की शिष्या पत्नी।

संदर्भ—कबीरदास ससार की निस्सारता का प्रतिपादन करते हैं।

भावार्थ—रे मन रूपी व्यापारी, तू जग जा। सो मत। लाभ के फेर मे तू अपनी गाँठ की पूँजी मत गँवावे। अभिप्रेत यह है कि तुम अज्ञान वश सासारिक सुख-सुविधा को प्राप्त करने मे लगे हुए हो। ये सुख तो मिथ्या हैं और इनके चक्कर मे तुम अपने आत्मा के मूल तत्व आनन्द-स्वरूप को व्यर्थ ही नष्ट कर रहे हो। तुम वस्तु स्थिति को समझ कर इस चक्कर से निकल आओ। सासारिक सुखो को प्राप्त करके तुम्हे क्यों अभिमान हो गया है ? हे अज्ञानी मूर्ख तू इन सासारिक सुखो पर अभिमान मत करो। जिन लोगो ने धन का सचय किया, वे सब पछताए। हमारे सब साथी मृत्यु के ग्रास होकर इस ससार से चले गये हैं।

हमको भी एक दिन जाना ही है। हे मानव ! यह जीवन अंधेरी रात्रि के समान है। तू जग जा। तेरी समस्त सगी साथी तुझसे बिछुडने लगे हैं। इस जगत मे कौन किसका भाई है और कौन किसकी स्त्री है ? जीव को अकेले ही जाना पडता है। कोई किसी के साथ नही जाता है। सारे महल गिर कर नष्ट हो गये, इनमे रहने वाले परिवार समाप्त हो गये, तालाब सूख गये और उन पर रहने वाले हस भी उड गये सासारिक वैभव का प्रतीक पच महाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और प्रकाश) से निर्मित यह शरीर मिट्टी मे मिल जाता है और सोने की भी देह जल कर भस्म हो जाती है। कबीर कहते हैं कि रे लोगो, सुनलो। राम-नाम के अतिरिक्त यहाँ अन्य कोई सहारा नही है।

अलंकार— (i) रूपक—मन बनजारा।
(ii) गूढोक्ति—कहा गरबाना।
(iii) निदर्शना की व्यजना—निसि सघे।
(iv) वक्रोक्ति—किसका'' 'जोई।

विशेष—(i) लक्षणा—पच पदारथ।
(ii) जीवन और जगत की असारता का प्रतिपादन है।
(iii) 'निर्वेद' सचारी की व्यजनहै। ।

(३६८)

मन पतंग चेते नहीं जल अंजुरी समांन।
बिषिया लागि विगूचिये, दाझिये निदांन ।।टेक।।
काहे नैन अनदियै, सूझत नहीं आगि।
जनम अमोलिक खोइयै, सांपनि संगि लागि ।।
कहै कबीर चित चंचला, गुर गांन कह्यौ समझाइ।
भगति हीन न जरई जरै, भावै तहां जाइ ।।

शब्दार्थ—अँजरी=अजुली। विगूचिक=बर्बाद करता है। दाझिये=जल जाएगा। निदान=अन्तत.।

संदर्भ—कबीर माया ग्रस्त जीव को सावधान करते हैं।

भावार्थ—यह मन—रूपी पतंगा चेतता नही है और माया-रूपी दीपक पर प्राण देता है। वह इस बात को नही समझता है कि जीवन अंजलि-बद्ध जल के समान क्षणिक अस्तित्व वाला है। यह मन विषयो मे आसक्त होकर नष्ट हो रहा है। अन्तत: इसको जलना ही है। तू संसार की चीजो को नेत्रों से देख कर क्यो आनन्दित होता है ? तुमको वासनाग्नि (देखने की आसक्ति मे निहित संताप)—क्यो नही दिखाई देती है ? वासना-रूपी सापिन के साथ लगा कर तूने अपने बहु-मूल्य जीवन को व्यर्थ ही बर्बाद कर दिया। कबीर कहते हैं कि यह चित्त तो बिजली के समान चचल है। यह बात मुझको गुरु ने समझाकर बताई है। भक्तिहीन तो निश्चय ही ससार मे विषयाग्नि मे जलता है, क्योकि वह बिना सोचे विचारे विषयो

के वशीभूत होकर चाहे जहाँ चला जाता है वह गम्य अगम्य प्रत्येक स्थल पर चला जाता है।

अलंकार— (i) रूपक—मन पतग, चित चचला।
(ii) उपमा=जल अजुरी समान,
(iii) रूपकातिशयोक्ति—आगि, सापनि।

विशेष—'निर्वेद' सचारी की व्यजना।

(३६९)

स्वादि पतंग जरै जर जाइ,
अनहद सौं मेरौ चित्त न रहाइ ।।टेक ।।
माया कै मदि चेति न देख्या, दुबिध्या मांहि एक नहीं पेख्यां ।।
भेष अनेक किया बहु कीन्हां, अकल पुरिष एक नहीं चीन्हां ।।
केते एक मूये मरहिगे केते, केतेक मुगध अजहू नहीं चेते ।।
तंत मंत सब ओषद माया, केवल राम कबीर दिढाया ।।

शब्दार्थ—मदि=मद, नशा। पेख्या=देखा। अकल=अखडित। मुगध=मूर्ख। दिढाया=दृढ किया।

सन्दर्भ—कबीर का कहना है कि अज्ञान के वशीभूत जीव विषयासक्ति मे नष्ट हो रहे हैं।

भावार्थ—विषयासक्त मेरा मन रूपी पतंग अनवरत रूप से विषयाग्नि मे जलता है। अनहद नाद मे मेरा चित्त नही लगता है—अर्थात् मेरा मन विषयो से पराङ्मुख होकर अन्तर्मुखी नही होता है। माया के मद से छुटकारा पाकर मैंने असली तत्व को नही समझ पाया है। ज्ञान जनित द्विविधा एव द्वैत-भावना मे पड कर मैं सर्वव्यापी एक (परम) तत्व का साक्षात्कार नही कर पाया। मैंने विषयासक्ति के वशीभूत होने के फलस्वरूप अनेकानेक जन्म धारण किए, परन्तु मैं उस एक अखण्ड अविनाशी परमपुरुष परमात्मा को नही देख पाया। इस संसार चक्र मे कितने ही मर गये और न मालूम कितने और मरेंगे, इतना सब कुछ देख कर भी कितने ही मूर्ख अब भी होश मे नही आ रहे हैं। तत्र-मन्त्र औषधि आदि सभी माया (धोखा अथवा नश्वर) हैं। इसी से मैंने अपने उद्धार के लिए अपना मत केवल राम की भक्ति मे दृढता पूर्वक लगा दिया है।

अलकार—(i) रूपक—स्वादि पतंग।
(ii) वृत्यानुप्रास—जरै जरि जाइ,।
(iii) गूढोक्ति—मरहिगे केते।

विशेष— (ii) अनहद ' "देखें टिप्पणी पद स० १६४
(ii) विषयों से विरक्त होने से ही कल्याण सम्भव है।

(३७०)

एक सुहागनि जगत पियारी,
सकल जीव जंत की नारी ॥टेक॥
खसम मरै वा नारि न रोवै, उस रखवाला औरै होवै ॥
रखवाले का होइ विनास, उतहि नरक इक भोग विलास ॥
सुहागनि गलि सोहै हार, संतनि विख बिलसै संसार ॥
पीछै लागी फिरै पचिहारी, सत की ठठकी फिरै बिचारी ॥
संत भजै वा पाछी पड़ै, गुर के सबदं मारयौ डरै ॥
साषत कै यहु प्यंड परांइनि, हमारी द्रिष्टि परै जैसे डांइनि ॥
अब हम इसका पाया भेद, होइ कृपाल मिले गुरदेव ॥
कहै कबीर इब बाहरि परी, ससारी कै अचल टिरी ॥

शब्दार्थ—सुहागनि नारी=माया रूपी सुन्दरी नारी। खसम=पति। बिलसै=भोगता है। पचिहारी=पक जाता है। ठिठकी=डरी हुई। साषत=शाक्त। प्यड पराइनि=शरीर द्वारा वह इसके परायण है, वह नारी है जिसके द्वारा शाक्त वामाचार की साधना करता है।

सन्दर्भ—कबीरदास माया के सर्वव्यापी अहितकारी प्रभाव का वर्णन करते है।

भावार्थ—माया रूपी एक सुन्दरी नारी है, जो जगत की प्यारी है। वह सम्पूर्ण जीव-जन्तुओ की प्रेयसी है। जब उसका पति मर जाता है तो वह उसके लिए रोती नही है। उसका रखवाला कोई दूसरा बन जाता है। इसके रखवाले का नाश हो जाता है। उसे इस लोक मे जाकर नरक भोगना पड़ता है, चाहे यहाँ वह भोग-विलास ही करता हो। इस सुहागिन के गले मे सुन्दर एव आकर्षक वासना-रूपी हार सुशोभित होता है। यह सतो के लिए विष-तुल्य है, परन्तु संसार के प्राणी इसको भोगते हैं। यह सतो के पीछे लगी फिरती है, परन्तु उनको मोहित करने के प्रयत्न मे यह हार जाती है। यह बेचारी माया सतो के डर से ठिठकी हुई उधर-इधर भागती फिरती है। सत लोग इससे दूर भागते हैं और यह उनके पीछे पडी रहती है। गुरु के उपदेश द्वारा मारी हुई यह माया संतो से डरती है। शाक्त को यह अत्यन्त प्रिय होती है, (शाक्त के लिए तो माया वह नारी है जिसके माध्यम से वह वामाचार की साधना करता है। इसी से कबीर कहते हैं कि शाक्त के यहाँ इसका परायण होने वाला पिंड है।) परन्तु भक्तो की दृष्टि मे वह पूर्ण चुडैल है। जब कृपालु गुरुदेव से मेरा साक्षात्कार हुआ तब इस माया सुन्दरी का रहस्य मेरी समझ मे आया। कबीर कहते है कि यह माया मुझसे तो बाहर दूर पड़ी हुई है अर्थात मुझे तो यह स्पर्श भी नही कर सकती है। यह विषयी व्यक्तियो के साथ इसका स्थायी सम्बन्ध रहता है अथवा विषयी व्यक्ति के पास से टाले नही टलती है।

अलंकार—(i) साग रूपक'' पूरा पद।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—सुहागिन।
(iii) उपमा—विष (के समान)। जैसे डाइनि।
(iv) विशेषोक्ति की व्यजना—खसम मरै वा नारि न रोवै।

विशेष—(i) शाक्त के प्रति विरोध प्रकट है।
(ii) वाहिर टरी—पिटी। ठीक ही है—

भागती फिरती थी दुनियाँ जव तलव करते थे हम।
अव जो नफरत हमने की, वह खुद-वखुद आने को है।

(३७१)

परोसनि मांगै कंत हमारा,
पीव क्यू बौरी मिलहि उधारा ॥टेक॥
मासा मांगै रती न देऊं, घटे मेरा प्रेम तौ कासनि लेऊं॥
राखि परोसनि लरिका मोरा, जे कछु पाऊं सु आधा तोरा॥
बन बन ढूढौं नैन भरि जोऊं, पीव मिलै तौ विलखि करि रोऊं॥
कहै कबीर यहु सहज हमारा, बिरली सुहागनि कंत पियारा॥

शब्दार्थ—परोसनि=अन्य सासारिक आत्मा, माया। कत=पति, परमात्मा। बौरी=पागल। कासनि=किससे। पुत्र=विवेक।

सन्दर्भ—कबीर का कहना है कि राम के प्रति सच्चा अनुराग किसी किसी को ही होता है। वह भक्त ज्ञानी एव साधक जीवात्मा के रूप मे अपनी सहजानुभूति को व्यक्त करते हैं।

भावार्थ—माया रूपी हे पडोसनि, तुम मुझसे मेरा परमात्मा रूपी पति माँग रही हो ? पर, हे पगली, पति कही उधार मिलता है ? (परमात्मा की प्राप्ति स्यय साधना करने पर होती है। सिद्धि उधार अथवा किराए पर मिलने वाली वस्तु नही है।) तुम माशा भर माँगो, मैं रत्ती भर भी नही दूँगी। यदि उधार देने के कारण अथवा यों ही दे देने के कारण, परमात्मा के प्रति मेरे प्रेम मे भी कमी आ गई है, तो फिर उसकी पूर्ति मैं कहाँ से करूँगी ? हे मेरी आत्मा रूपी पडोसिन, तू मेरे कर्म-बन्धन रूप पुत्र की रखवाली कर। ऐसा करने पर परमेश्वर रूपी पति से मुझे जो आनन्द-भक्ति की प्राप्ति होगी, उसमे से आधा तुझको दे दूँगी। मैं वन-वन अर्थात् विभिन्न साधनाओं मे अपने पति को ढूढ रही हूँ और नेत्रों की शक्ति भर उसको चारो ओर देखती फिरती हूँ और प्रियतम के दर्शन होने पर प्रेमातिरेक के कारण फूट फूट कर रोती हूँ। कबीर कहते हैं कि अपने परमात्मा रूपी पति से प्रेम करना जीवात्मा रूपी पत्नी का सहज स्वभाव है। परन्तु फिर भी विरली आत्मा रूपी सौभाग्यवती नारी को अपने परमात्मा रूपी पति से वास्तविक प्रेम होता है।

अलंकार—(i) साग रूपक·······सौभाग्यवती नारी एवं जीवात्मा के रूपक का निर्वाह है।

(ii) वक्रोक्ति—पीव·······उधारा।

(iii) गूढोक्ति—कासनि लेऊ।

(iv) पुनरुक्ति प्रकाश—बन बन।

(v) विरोधाभास की व्यंजना—पीव मिलै·······रोऊँ।

विशेष—(i) प्रतीको का प्रयोग है—परौसनि, कंत, लरिका, सुहागिन।

(ii) सूफी शैली के दाम्पत्य प्रेम का वर्णन है।

(iii) इस पद मे कबीर भक्ति-क्षेत्र का अतिक्रमण करके प्रेम के क्षेत्र मे चले जाते हैं। अतएव रहस्यवाद की मार्मिक व्यजना दिखाई देती है। प्रेमी प्रिय पर एकाधिकार चाहता है। प्रेम का क्षेत्र एकान्त होता है। कबीर की जीवात्मा भी यही चाहती है कि प्रिय के ऊपर मेरा एकाधिकार रहे। प्रिय पर पूर्ण स्वत्व स्थापित करने की मन स्थिति का मार्मिक शब्दो मे उद्घाटन किया गया है।

(iv) पीव क्यूं—उधारा। लौकिक दृष्टि से अर्थ करने पर यह कथन, उन लोगो पर एक प्रकार का व्यंग्य करता है, जो दान दक्षिणा लेकर दूसरो के नाम भजन-पूजन, मत्र-जाप आदि करते हैं। ठीक ही है—बिना मरे, स्वर्ग के दर्शन नही होते है।"

(v) माशा—१ तोले का १२ वां भाग।

(vi) रत्ती—१ माशे का ८ वां भाग।

(vii) माशा माँगना और रत्ती न देना—लोकोक्ति है। यहाँ अर्थ इस प्रकार होगा—माया का यह प्रयत्न करना कि जीवात्मा परमात्मा से बहुत दूर तक पृथक रहे तथा जीवात्मा का यह सकल्प कि वह क्षण भर के लिए भी उनसे विलग नही होगी।

पड़ौसिन—माया के साथ जीव का साहचर्य है, परन्तु माया पराई है—जीव की नही। जीव के साथ माया का सम्बन्ध केवल अज्ञान के कारण है—वह सम्बन्ध पारमार्थिक एवं सच्चा सम्बन्ध नही है। इसी से वह पड़ौसिन है।

(ix) लरिका—कर्म जीवात्मा के प्रयास से उत्पन्न होता है। इसी से वह जीवात्मा का लडका है। भक्ति के परिपाक के लिए सांसारिक कर्म का त्याग आवश्यक है। वह माया ही को सोपे जा सकते हैं।

(x) जे कछु····· तोरा—चैतन्य स्वरूप आत्मा और माया का सम्बन्ध मुधा होते हुए भी शाश्वत हैं। भक्ति के उल्लास आदि वृत्यात्मक अनुभूति का सम्बन्ध अन्त करण (माया) और चैतन्य (आत्मा) दोनो के साथ रहता है। इसी से आधा तोरा' (माया का) कहा गया है।

(३७२)

रांम चरन जाकै रिदै वसत है, ता जन कौ मन क्यूं डोलै॥
मानौं आठ सिध्य नव निधि ताकै, हरषि हरषि जस बोलै॥टेक॥

जहाँ जहाँ जाइ तहां सच पावै, माया ताहि न झोलै ।
बारंबार बरजि विषिया तैं, लै नर जौ मन तौल ॥
ऐसी जे उपजै या जीय कै, कुटिल गांठि सब खोलै ।
कहै कबीर जब मन परचौ भयौ, रहै रांम कै बोलै ॥

शब्दार्थ—डोलै=विचलित हो। सच=सुख। झोलै=जलाती है। सताती है। तोलै=सयमित करता है। रहै=आचरण करता है। बोलै=आदेशानुसार।

सन्दर्भ- कबीर कहते हैं कि सच्चा भक्त वही है जो राम के आदेशानुसार आचरण करे।

भावार्थ—जिसका हृदय भगवान के चरणो मे लगा हुआ है, उसका मन चचल नही होता है। उसे तो आठो सिद्धियाँ और नवो निधियाँ सहज ही प्राप्त हो जाती हैं और वह व्यक्ति हर्षित हो-हो कर प्रभु का गुणगान करता है। वह जहाँ भी जाता है। वहाँ अमित सुख-शाति का लाभ प्राप्त करता है। माया उसको सता नही पाती है। जिस व्यक्ति के हृदय मे ऐसी श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न हो जाती है कि वह विषयों से अपने मन को बारम्बार विमुख करके जो अपने मन को नियन्त्रित करके प्रभु भक्ति मे लगा देता है, वह माया जन्य समस्त जटिल गुत्थियो को सहज ही सुलझाने मे समर्थ होता है। कबीर कहते हैं कि जब इस प्रभु-प्रेम से मन का परिचय हो जाता है, तब वह राम के आदेशानुसार ही आचरण करता है।

अलंकार—(i) पुनरुक्ति प्रकाश—जहाँ जहाँ।

(ii) अनुप्रास—बारबार बरजि विषया।

विशेष—(i) ससार से विमुख होकर प्रभु के नाम पर समस्त कार्य करना, स्वार्थ त्याग कर पारमार्थिक व्यवहार करना ही राम के आदेशानुसार आचरण करना है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी 'विनय पत्रिका' मे कहा है कि—

तुम अपनायो तब जानिहो जब मन फिरि परिहै।
जेहि स्वभाव विषयनि लग्यो तेहि सहज नाथ सों नेह छांड़ि छल करि है।

(ii) आठ सिद्धि, नव निधि—देखें टिप्पणी पद स० १२३।

(iii) जब भक्त का मन पूर्णत सयमित हो जाता है तभी भक्ति एव प्रेम दृढ होते है। सच्चे भक्त का यही लक्षण है।

(iv) कबीर के राम दशरथि सगुण राम नही है। निराकार निर्गुण ब्रह्म हैं। वह पुकार कर कह चुके हैं—

दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना। राम-नाम का मरम न जाना।

(३७३)

जंगल मै का सोवनां, औघट है घाटा ॥
स्यंघ बाघ गज प्रजलै, अरु लबी बाटा ॥टेक॥
निस बासुरि पेड़ा पड़ै, जमदांनी लूटै ।
सूर धीर साचै मतै, सोई जन छूटै ॥

चालि चालि मन माहरा, पुर पटण गहिये ।
मिलिये त्रिभुवन नाथ सूं, निरभै होइ रहिये ।।
असर नहीं ससार मै, बिनसै नर देही ।
कहै कबीर बेसास सूं, भजि रांम सनेही ।।

शब्दार्थ—औघट=अवघट, दुर्गम । प्रजलै=सताते हैं । पेडा पडै=डकैती पडती है । जमदानी=यमराज की सेना । माहरा=कुशल । बेसास=विश्वास ।

सन्दर्भ—कबीरदास कहते है कि जीवन रूपी जगल को पार करने के लिए राम-नाम ही एकमात्र अवलम्बन है ।

भावार्थ—साधनाहीन जीवन व्यतीत करना इतना ही कठिन एव भयप्रद है जितना किसी बीहड स्थान पर रात्रि व्यतीत करना अथवा किसी दुर्गम घाट पर किसी नदी मे स्नान करना । इस जीवन के जगल मे हिंसा, विषय-लोलुपता एव अहकार रूपी सिह, बाघ और हाथी घूमते रहते हैं । साथ ही यह जीवन मार्ग बहुत लम्बा भी है । इस जीवन के जगल मे कामादिक द्वारा रात दिन डकैती पडती रहती है (विषय विकार प्रतिक्षण हमारे चैतन्य स्वरूप को तिरोहित करते रहते हैं । यहाँ यमराज की सेना हमारी आयु-रूपी सम्पत्ति को सदैव क्षीण करती रहती है । जो शूरवीर धैर्यवान एव सत्यनिष्ठ हैं, वे ही इस लूट मार से बच पाते हैं । अतः हे कुशल मन, तू साधना के मार्ग पर निरन्तर अग्रसर होता रहे और ज्ञान-भक्ति के नगर मे पहुँच जा । वहाँ त्रिभुवन नाथ से मिलेंगे और ससार के भयो से मुक्त होकर रहेगे । इस संसार मे कोई भी सदैव नही बना रहा है—संसार का प्रत्येक प्राणी एव पदार्थ नश्वर है । यह मानव शरीर नष्ट होता ही है । कबीर कहते हैं कि इस कारण विश्वास पूर्वक सबसे प्रेम करने वाले राम का भजन करते रहो ।

अलकार—(1) साग रूपक—जीवन माया और जगल की माया का रूपक बांधा है ।
(ii) पुनरुक्ति प्रकाश…… …चालि चालि ।

विशेष—(1) प्रतीको का सफल प्रयोग है । जंगल, सिह, बाघ, गज
(ii) ससार के प्रति विरक्ति का प्रतिपादन है ।

राग ललित

(३७४)

राम ऐसो ही जांनि जपौ नरहरी,
माधव मदसूदन बनवारी ।।टेक।।
अनदिन ग्यान कथै घरियार, धूवां धौलह रहै संसार ।।
जैसे नदी नाव करि संग, ऐसे ही मात पिता सुत अग ।।
सबहि नल दुल मलफ लकीर, जल बुदबुदा ऐसो आहि सरीर ।।
जिभ्या रांम नांम अभ्यास, कहै कबीर तजि गरभ बास ।।

शब्दार्थ—जानि=जानकर। घडियाल=बडा घटा। धौलहर=महल।

सन्दर्भ—कबीर कहते हैं कि आवागमन से मुक्ति के लिए राम-नाम का भजन करो।

भावार्थ—नृसिंह, माधव, मधुसूदन, बनवारी आदि राम ही है, ऐसा समझ कर तुम राम का भजन करो। (विभिन्न अवतार उस एक परम तत्त्व के ही अभिव्यक्त रूप हैं।) बजने वाला घटा अर्थात् प्रति पल व्यतीत होता हुआ समय प्रतिदिन यही ज्ञान देता है कि यह ससार धुँए के महल के समान मिथ्या एवं नश्वर है। जैसे नदी नाव का सयोग क्षणिक होता है, उसी प्रकार माता, पिता एव पुत्र का सयोग आकस्मिक एव क्षणिक है। ये सारे सम्बन्ध उसी प्रकार मिथ्या, नीरस एवं भ्रम हैं जिस प्रकार तोते के लिए सेमर का फल। यह ससार जल के बुलबुले के समान क्षणिक एव नश्वर है। कबीरदास कहते है कि जीभ से राम-नाम कहने का अभ्यास बनाए रखो जिससे गर्भ-वास (पुनर्जन्म) से मुक्ति प्राप्त हो सके।

अलंकार—(i) उल्लेख एक ही तत्त्व का विभिन्न नामो का वर्णन है।
(ii) उपमा—धुवा जल बुदबुदा ऐसौ।
(iii) रूपक धूवा ससार।
(iv) उदाहरण—जैसे अग।

विशेष—(i) ससार की नश्वरता एव निस्सारता का प्रतिपादन है।

(ii) निर्वेद सचारी की व्यजना है।

(iii) ग्यान कथै गरिघार—लक्षण और मानवीकरण है।

(iv) सम्पूर्ण देवताओ मे वही एक परमतत्त्व व्याप्त है। यह अभेद बुद्धि ही भारतीय दृष्टि की विशेषता है। कबीर ने उपासना के क्षेत्र मे इसी भारतीय पद्धति को अपनाया है।

विभिन्न पौराणिक अवतारों के नामों का वर्णन यह प्रकट करता है कि कबीर के ऊपर जन-मानस को मान्य पौराणिक संस्कृति का व्यापक प्रभाव था।

(vi) धूवा धौलह है ससार—समभाव के लिए देखें—

राम जपु, राम जपु, राम जपु, बावरे।
जग नभ वाटिका रही है फलि फूलि रे।
धुवाँ कैसे धौरहर देखि तू न भूलि रे।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(vii) नल दुल मलफ लकीर—पाठ अस्पष्ट है। हमने इस पक्ति का अर्थ डा० माताप्रसाद गुप्त तथा डा० भगवतस्वरूप मिश्र द्वारा किए अर्थों के आधार पर लिख दिया है।

(३७५)

रसनां रांम गुन रमि रस पीजै,
गुन अतीत निरमोलिक लीजै ॥ टेक ॥

निरगुण ब्रह्मकथौ रे भाई, जा सुमरित सुधि बुधि मति पाई ॥
बिष तजि रांम न जपसि अभागे, का बूड़े लालच के लागे ॥
ते सब तिरे राम रस स्वादी, कहै कबीर मेड़े बकबादी ॥

शब्दार्थ— निरमोलिक=अमूल्य । बकवादी=ज्ञान बघारने वाले ।

सन्दर्भ—कबीर निर्गुण राम की भक्ति का उपदेश देते हैं ।

भावार्थ—हे जिह्वा ! तू राम के गुणो मे तन्मय होकर भक्ति के आनन्द को प्राप्त करो । रे भाई, निर्गुण ब्रह्म का गुणगान करो जिसका स्मरण करने से सदवुद्धि, ज्ञान तथा विवेक की प्राप्ति होती है । रे अभागे जीव, तू विषयो के प्रति आसक्ति का त्याग करके राम नाम का भजन क्यो नही करता है ? विषय-सुख के लोभ मे पढकर तू भव-सागर मे क्यो डूबता है ? कबीर कहते हैं कि जो व्यर्थ ज्ञान का बखान करते हैं, वे भवसागर मे डूब जाते हैं और जो भगवान राम की भक्ति करके आनन्द मग्न होते हैं, वे सब भवसागर के पार हो जाते हैं (मोक्ष को प्राप्त होते है ।)

अलंकार—(1) अनुप्रास—रसना राम रमि रस ।
(11) पदमैत्री—सुधि बुधि ।
(111) गूढोक्ति— न जपसि अभागे, का ... लागे ।

विशेष—(1) कबीर सच्ची भक्ति का प्रतिपादन करते हैं । व्यर्थ की शास्त्र-चर्चा को व्यर्थ बताते हैं । वे तो बार बार कहते हैं कि "पडित वाद वदै सो झूठा ।"

कबीर कथनी को त्याग कर करनी के द्वारा ही उद्धार की कल्पना करते हैं ।

(11) कबीर के राम निरगुण निराकार परमब्रह्म हैं, दाशरथि अवतारी राम नही ।

(३७६)

निवरक सुत ल्यौं कोरा,
रांम मोहि मारि कलि विष बोरा ।।टेक।।
उन देस जाइबो रे बाबू, देखिबो रे लोग किन किन खैबू लो ।।
उड़ि कागा रे उन देस जाइबा, जासूं मेरा मन चित लागा लो ।।
हाट ढूँढ़ि ले, पटनपुर, ढु ढ़ि ले, नहीं गांव कै गोरा लो ।।
जलविन हंस निसह विन रवू कबीर कौ स्वांमी पाइ परिकै मनैबूलो ।।

शब्दार्थ—निवरक= निर्बल । कोरा=गोद । बाबू=भद्र पुरुषो । खैबूलो= खाते है, रहन-सहन से तात्पर्य है । हाट=बाजार । पटनपुर=नगर । गोरा= गोला-किनारे की सडक । रवू=रवि=सूर्य । मनैबूलो=मना लेना ।

संदर्भ—कबीर की जीवात्मा परमात्मा की प्राप्ति के लिए अपनी आतुरता व्यक्त करती है ।

भावार्थ—हे राम, निर्बल बालक की भाँति मुझे गोद में लेने की कृपा करें अर्थात् मुझको अपना संरक्षण प्रदान करे। कलिकाल ने मुझको मार कर (शुद्ध चैतन्य स्वरूप से वचित करके) विषय-वासनाओ मे डुबा दिया है। हे भद्र महाशयो, तुम्हे प्रभु के देश मे जाना है और देखना है कि वहाँ के निवासी किस प्रकार रहते हैं—उनकी रहन-सहन कैसी है। हे काग, तुझे उड कर उनके देश को जाना है, जिनसे मेरा मन लगा हुआ है। बाजार ढूँढना और नगर को ढूँढ लेना। गाँव के किनारे ही ढूँढ कर मत चले आना। प्रियतम के बिना मेरी वही दशा है जो जल के बिना हस की तथा सूर्य के बिना रात्रि की होती है। कबीर कहते हैं कि मेरी जीवात्मा अपने पति परमात्मा को पैरो पडकर मना लूँगा अपने अनुकुल कर लूँगा।

अलकार—(1) पुनरुक्ति प्रकाश - किन किन।
(ii) उपमा—निदरक सुत।
(iii) रूपक—विष।

विशेष—(1) सूफी प्रेम-पद्धति के दाम्पत्य-प्रेम का प्रभाव स्पष्ट है। जायसी ने भी लिखा है—

पिय सो कहेउ सदेसडा हे भँवरा हे काग।
सो धनि विरहै जरि मुई जेहि के धुवाँ हम लागि।

(ii) सिद्धो और सन्तो के साहित्य मे 'काग' अज्ञानी चित्त का प्रतीक है। परन्तु यहाँ कबीर ने अज्ञानी चित्त के साथ प्रेम-सदेश ले जाने की वृत्ति को सन्नि-विष्ट कर दिया है। यह लोक-परम्परा का प्रभाव है। प्रियतम के सदेश और कौए का निकट सम्बन्ध माना जाता है। इसमे समस्त बन्धु जीवाओ को परिलौकिक चिन्तन की प्रेरणा प्रदान की गई है।

राग बसंत

(३७७)

सो जोगी जाकै सहज भाइ,
अकल प्रीति की भीख खाइ ॥ टेक ॥
सबद अनाहद सींगी नाद, काम क्रोध बिषिया न बाद ॥
मन मुद्रा जाकै गुर कौ ग्यांन, त्रिकुट कोट मैं धरत ध्यान ॥
मनहीं करन कौं सनांन, गुर कौ सबद ले ले धरै धियांन ॥
काया कासी खोजै बास, तहां जोति सरूप भयौ परकास ॥
ग्यांन मेषली सहज भाइ, बक नालि कौ रस खांइ ॥
जोग मूल कौ देह बद, कहि कबीर थिर होइ कंद ॥

शब्दार्थ—भाव=प्रेम भाव। अकल=अखडित। वाद=वाद-विवाद। मुद्रा=योगियो का उपकरण विशेष। मेखली=करधनी, कटिसूत्र। वक नालि=सुषुम्ना। कद=मिश्री।

संदर्भ—कबीर सच्चे योगी के लक्षणों का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—वही सच्चा योगी है जो सहज भाव मे स्थित है अथवा जिसके मन मे प्रभु के प्रति स्वाभाविक प्रेम है तथा जो भगवान की प्रीति की ही याचना करता है। जो अनाहद नाद का ही शृगी नाद सुनता है और जो काम-क्रोधादिक विषयों एवं शास्त्रार्थ मे नही फँसता है। गुरु के द्वारा दिया गया ज्ञान ही उसके मन को स्थिर करने वाली मुद्रा है। वह अपनी त्रिकुटी मे परम तत्व का ध्यान करता है। वह मन को पवित्र करने वाली ज्ञान-चर्चा रूपी जल मे स्नान करता है और गुरु के ज्ञान को प्राप्त करके उसी पर ध्यान लगाये रहता है। वह अपनी काया-रूपी काशी मे निवास करता है। वही पर उसके लिए परम-ज्योति स्वरूप भगवान प्रकाशित होते हैं। वह ज्ञान रूपी मेखला को धारण करके सहज भाव मे स्थित रहता है। वह सुषुम्ना के ऊपरी भाग मे स्थित वक नाल से भरने वाले अमृत रस का पान करता है। इसके लिए वह मूलाधार को बाँध देता है (योगी प्राणो की अग्नि से कुण्डलिनी को सीधा करके उसे सुषुम्ना मे प्रविष्ट करा देता है और मूल बध लगा देता है। यह अमृत का क्षण रोकन के लिए किया जाता है, क्योकि कुण्ड-लिनी के सोते रहने पर भी अमृत क्षरित होता रहता) कबीर कहते हैं कि इससे क्षरणशील मधुर एव तरल अमृत मिश्री की तरह सघन होकर स्थिर हो जाता है और योगी को अमरत्व प्रदान कर देता है।

अलंकार—(i) रूपक—प्रीति की भीख। सबद नाद। मन ध्यान। काया कासी—ग्यान मेखली।

(ii) पुनरुक्ति प्रकाश—लेते।

(iii) पदमैत्री नाद वाद। ग्यान ध्यान। वास परकास। भाइ खाइ। बन्द कन्द।

विशेष—(i) इस पद मे काया योग का वर्णन है। इसके लिए देखें टिप्पणी पद स० ४।

(ii) त्रिकुटी देखें टिप्पणी पद स० ३, ४ ७।

(iii) सहज - देखें टिप्पणी पद स० ७, १५५।

(iv) अनहदनाद—देखे टिप्पणी पद स० १५७।

(vi) शरीर मे ही समस्त तीर्थों को मान कर कबीर ने वाह्याचार का विरोध किया है। साथ ही उन पर तान्त्रिक साधना का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है।

(vii) मन मुद्रा जाके गुरु को ध्यान—इस कथन के द्वारा तान्त्रिक साधना के वाह्याचार के प्रति विरोध प्रकट है। तातपर्य यह है कि कबीर सब प्रकार की वाह्य साधना को व्यर्थ समझते हैं। वह तो उसी को सच्चा योगी मानते हैं जो आभ्यन्तर साधना का आश्रय ग्रहण करता है।

(viii) काया-कासी यहाँ भी काशीवास को लक्ष्य करके कबीर ने दम्भ का

विरोध किया है। अभिप्रेत यह है कि सच्चा योगी अन्तर्मुखी चित्तवृत्ति बना कर अपनी काया के भीतर (अन्त करण) मे स्थित शिव तत्व की उपासना करता है।

(३७८)

मेरौ हार हिरांनौं मै लजाऊ,
सास दुरासनि पीव डराऊं ॥ टेक ॥
हार गुह्यौ मेरौ राम ताग, बिचि बिचि मान्यक एक लाग ॥
रतन प्रवालै परम जोति, ता अंतरि अंतरि लागे मोति ॥
पंच सखी मिलिहै सुजांन, चलहु तजई थे त्रिवेणी न्हांन ॥
न्हाइ धोइ कै तिलक दीन्ह, नां जानूं हार किनहूं लीन्ह ॥
हार हिरांनौ जन विमल कीन्ह, मेरौ आहिपरोसनि हार लीन्ह ॥
तीनि लोक की जानै पीर, सब देव सिरोमनि कहै कबीर ॥

शब्दार्थ—हार=शुद्ध चित्तवृत्ति से तात्पर्य है। पुरासनि=कठोर, क्रुद्ध होने वाली। सास=बोध वृत्ति। ताग=डोरा। मान्यक=माणिक। विमन=दुखी।

सदर्भ—कबीर की आत्मा सुन्दरी प्रभु के वियोग मे दुःखी होकर कहती है।

भावार्थ—ईश्वरोन्मुखी वृत्ति रूपी मेरा हार खो गया है। इससे मैं लज्जित हो रही हूं। मुझे बोध वृत्ति रूपी कठोर और परमात्मा रूपी पति का डर लग रहा है। वृत्ति वृत्ति रूपी मेरा वह हार हरि-नाम रूपी तागे मे पिरोया हुआ था। इसके बीच बीच मे प्रीति और समर्पण के मणि माणिक लगे हुए थे। उसमे भक्ति की परमज्योति रूपी अनेक मूगे तथा अन्य रत्न लगे हुए थे। उसमे थोडे-थोडे अन्तर पर मुक्ति रूपी मोती लगे हुए थे। मेरी पाचो इन्द्रियो एव उनकी आसक्ति रूपी सखियो ने मुझ से कहा था कि चलो त्रिगुण-रूपी त्रिवेणी मे स्नान कर आएँ (इन्द्रियो से प्रेरित मैं त्रिगुणात्मक ससार मे लिप्त होने चली गई)। विषय-सुख भोग कर जब मैंने श्रृगार का तिलक किया—अर्थात् काम भाव को जीवन का सार समझा, तो उस समय मुझे मालूम हुआ कि बोध वृत्ति रूपी मेरा हार किसी ने ले लिया है। हार खो जाने से हम सबका मन दुखी हो गया। माया (वासना) रूपी मेरी पडौसिन ने ही मेरा हार ले लिया है। कबीर कहते हैं कि सब देवताओं के शिरोमणि भगवान राम तीनो लोको के प्राणियो की व्यथा को समझते हैं। (वह शुद्ध अन्त करण का बोध-वृत्ति रूपी हार मुझे वापिस दिला कर मेरी व्यथा दूर करेंगे ऐसा मेरा विश्वास है।)

अलंकार—(i) सागरूपक-सम्पूर्ण पद मे। हार और बोध-वृत्ति के रूपक का आद्यन्त निर्वाह है।

(ii) पुनरुक्ति प्रकाश—बिचि बिचि, अतरि अतरि।

(iii) अनुप्रास—७ वी पक्ति, हार हिरानो, हार।

विशेष—(i) साधना के प्रतीको का प्रयोग है।

(ii) जीव की शोभा ईश्वर-प्रेम है। इससे उसे हार कहते हैं। इस वर्णन पद्धति पर सूफियो की पीर और उनके दाम्पत्य प्रेम का गहरा प्रभाव है। यथा—

सखी एक तेइ खेल न जाना। मै अचेत मनि-हार गँवांना।
कवँल डार गहि में बेकरारा। कासो पुकारौं आपन हारा।

× × ×

घर पैठत पूँछब यह हारू। कौन उतर पाइब पैसारू

× × ×

न जानौ कौन पौन लेइ आवा। पुन्य दसा मैं, पाय गँवावा।
ततखन हार बेगि उतिराना। पावा सखिन्ह चंद विहँसाना।

(मानसरोदक खण्ड, पद्मावत, मलिक मुहम्मद जायसी।)

यहाँ चद शब्द पद्मिनी के लिए प्रयुक्त है, जो बुद्धि या शुद्ध चित्तवृत्ति की प्रतीक है।

(iii) कबीर ने यहाँ यह वर्णन सामान्य भारतीय वधू की मनः स्थिति की दृष्टि से किया है। एक कुल-वधू का आभूषण खो जाने पर उसे सास और पति का डर सताने लगना है। इस प्रकार कबीर द्वारा इस मनोदशा का वर्णन बहुत ही मार्मिक एव स्वाभाविक बन गया है।

(iv) हार गुह्यो राम ताग—राम-प्रेम ही इस हार का मूलाधार है। इसी से उसको 'तागा' कहते हैं। यथा—

जुगुति बेध पुनि पोहिय राम चरित बर तागा।
पहिरैं सज्जन विमल उर जिनके अति अनुरागा।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(v) लागै मोति—मुक्ति को मुक्ता कहते हैं। इसमे श्लेष के चमत्कार के साथ साधर्म्य की भावना भी मुखरित रहती है—

मुक्ति-मुक्ता को मोल-मालही कहा है,
जब मोहन लला पै मन-मानिक ही वार चुकौं।

(जगन्नाथदास रत्नाकर)

(vi) सवाद शैली का सुन्दर प्रयोग है।

(vii) पच सखी—लीन्ह। विपयासक्ति के वशीभूत होकर ही जीव इस त्रिगुणात्मक जगत मे लिप्त होता है। यही उसका माया के वशीभूत होकर शुद्ध चित्त-वृत्ति का खो जाना है। यह माया ही पडोसिन है।

पड़ोसिन के लिए देखें टिप्पणी पद संख्या ३७।

(३७९)

नहीं छाड़ौं बाबा रांम नांम,
मोहि और पढन सूं कौंन कांम॥ टेक॥

प्रह्लाद पधारे पढ़न साल, संग सखा लीवे बहुत बाल ।।
मोहि कहा पढ़ावै आल जाल, मेरी पाटी मै लिखि दे श्री गोपाल ।।
तब सनां मुरकां कह्यौ जाइ, प्रहिलाद बंधायौ बेगि आइ ।।
तू राम कहन की छाड़ि बांनि बेगि छुड़ाऊ मेरौ कह्यौ मांनि ।।
मोहि कहा डरावै बार बार, जिनि जल थल गिर कौ कियौ प्रहार ।।
बांधि मारि भावै देह जारि, जे हू रांम छाडौं तौ मेरे गुरहि गारि ।।
तब काढ़ि खड़ग कोप्यो रिसाइ, तोहि राखनहारौ मोहि बताइ ।।
खभा मै प्रगट्यौ गिलारि, हरनाकस मारचो नख बिदारि ।।
महापुरुष देवाधिदेव, नरस्यंघ प्रकट कियौ भगति भेव ।
कहै कबीर कोई लहै न पार, प्रहिलाद ऊबारचौ अनेक बार ।।

शब्दार्थ— साल=चटसाल,पाठशाला । आल-बाल=इधर उधर की बातें । पाटी=पट्टी । सडा मुरका=सब लडको । गिलारि=मुरारि ।

सन्दर्भ—कबीर भगवान की भक्त-वत्सलता का वर्णन करते हैं ।

भावार्थ—मैं राम नाम छोडूँगा । मुझ को राम-नाम के अतिरिक्त और और कुछ पढने से क्या काम है ? प्रहलाद अनेक बाल-सखाओ के साथ पाठशाला मे पढने के लिए गये । उन्होने अपने अध्यापक से कहा कि मुझे इधर-उधर की व्यर्थ की बातें क्यो पढाते हो ? मेरी तख्ती पर तो आप केवल 'श्रीगोपाल' लिख दें । इसके बाद सब लडको ने जाकर प्रहलाद के पिता से शिकायत की । वह तुरन्त ही आकर प्रहलाद को बाँधकर ले गये । उन्होने प्रहलाद से कहा कि तू राम-नाम कहने की आदत छोड दे । तू मेरा कहना मान जा । मैं तुझ को अभी हाल बन्धन मुक्त कर दूँगा । प्रहलाद ने उत्तर दिया, "आप मुझे बारबार क्या डरा रहे हैं ? आप चाहे तो मेरे ऊपर जल थल पर्वत कही भी ले जाकर प्रहार करें । मुझे बाँध कर मार दें, अथवा मेरी देह को जला दें । अगर मैं राम-नाम को छोड दूँगा तो मेरे गुरुदेव (अन्त करण की शुद्ध-चैतन्य वृत्ति) का अपमान होगा । तब पिता ने क्रोध पूर्वक तलवार निकाल कर कहा, "अब मुझे बता, तेरा रक्षक कहाँ है ।" उसी समय खम्भे मे भगवान मुरारि प्रकट हुए और उन्होने हरिण्यकशिपु को नाखूनो से फाड कर मार डाला । भक्ति भाव ने महापुरुष एव सम्पूर्ण देवताओ के स्वामी नृसिंह भगवान को प्रकट किया था । कबीर कहते हैं कि उनकी शक्ति का पार कोई नही पा सकता है । उन्होने अनेक बार प्रहलाद सदृश भक्तो का उद्धार किया है ।

अलंकार—(i) वक्रोक्ति—मोहि... काम ।
(ii) दृष्टान्त—प्रहलाद ... बाल ।
(iii) पदमैत्री—आल जाल । कानि, मानि । जल थल ।
(iv) पुनरुक्ति प्रकाश—बार-बार ।
(v) सम्बन्धातिशयोक्ति—कोई लहै न पार ।

विशेष— (i) सडा मुरका का पाठान्तर सठै भरकै भी है। तब अर्थ होगा —छडी मारकर गुरु ने जाकर शिकायत की।

(ii) इस पद मे कबीर की भक्ति-पद्धति सर्वथा सगुण भक्तो जैसी दिखाई देती है। इस आख्यान का आश्रय लेने से वह परम्परावादी अर्थ मे गृहीत अवतार-वाद मे विश्वास रखने वाले प्रतीत होते हैं। परन्तु उनके मूल जीवन-दर्शन को ध्यान रखते हुए उनको सगुणोपासक मानना भूल होगी। बात यह है कि कबीर जनता को भगवान के प्रति आश्वस्त करना चाहते थे। इसके लिए भगवान की अमोघ शक्ति एव शरणागतवत्सलता की चर्चा आवश्यक थी। इन पदो मे उसी की व्यजना समझना चाहिए।

पारमार्थिक दृष्टि से निर्गुण भक्त कबीर और तुलसी प्रभृति भक्तो मे कोई अन्तर नही ठहरता है। दोनो के ही राम परमार्थत· निर्गुण निराकार राम हैं। विवेचन के स्तर पर दोनो ही पद्धतियाँ भिन्न है। परन्तु व्यवहार के क्षेत्र मे वे फिर एक दूसरे के बहुत कुछ निकट आ जाते हैं। और ऐसा क्यो न होता? गोस्वामी तुलसीदास ने स्पष्ट लिखा है कि—

अन्तरजामिहुँ ते बड़ बाहर जामी हैं प्रभु नाम लिये तें।
पैजि परे प्रहलादहुँ को प्रकटे प्रभु पाहन तें न हिए तें।

(३८०)

हरि कौ नांउं तत त्रिलोक सार,
लै लीन भये जे उतरे पार ।। टेक ।।
इक जंगम इक जटाधार, इक अंगि बिभूति करै अपार ।।
इक मुनियर इक मनहूं लीन, ऐसै होत होत जग जात खीन ।।
इक आराध सकति सीव, इक पड़दा दे दे बधै जीव ।।
इक कुलदेव्यां कौ जपहि जाप, त्रिभवनपति भूले त्रिबिध ताप ।।
अनहि छाड़ि इक पीवहि दूध, हरि न मिलै बिन हिरदै सूध ।।
कहै कबीर ऐसैं विचार राम बिना को उतरे पार ।।

शब्दार्थ—लै लीन = लवलीन। सकति = शक्ति। सीव = शिव। पडदा = परदा।

संदर्भ—कबीरदास राम भक्ति की महिमा का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—भगवान का नाम ही तीनो लोको मे एक मात्र सारतत्व है। जो इसमे लवलीन हुए वे भवसागर के पार उतर गये। साधुओ ने अनेक सम्प्रदाय बना रखे हैं। एक जगम है, दूसरा जटाधारी है। एक अपने शरीर मे अनाप-शनाप राख मल लेता है, तो एक मौन व्रत धारण करके अपने आप मे ही लीन बना रहता है। इस प्रकार होते-होते ससार मे भगवद-निष्ठा क्षीण होती जा रही है। एक शक्ति की उपामना करता है, तो कोई शिव को पूजता है, तो दूसरा पर्दे की ओट मे जीव की हत्या करता है। एक कुल देवियो का जप करता है और इस प्रकार लोग

विविध ताप मे भगवान त्रिभुवन पति भगवान को भूलते हैं। (वाह्याचारो के कारण लोभ दु ख हर्त्ता भगवान को विस्मृत कर वैठते हैं।) कुछ अन्न छोड कर केवल दूध पीकर रहते हैं। परन्तु भगवान तब तक नही मिलते हैं जब तक व्यक्ति का हृदय साफ न हो—उसकी कथनी-करनी समान न हो। कबीरदास कहते हैं कि व्यक्ति को एक निश्चित रूप से समझ लेना चाहिए कि राम की भक्ति के बिना कोई भी भवसागर पार नही कर सकता है।

अलकार - (1) पुनरुक्ति प्रकाश' दे दे।

(11) अनुप्रास—त्रिभुवन पति त्रिविधि ताप।

(111) वक्रोक्ति—राम .. ....पार।

विशेष—(1) वाह्याचार का विरोध व्यक्त है। विभिन्न सम्प्रदाय बन जाने के कारण प्रभु-भक्ति क्षीण हो गई है।

(11) हरि न मिलै बिन हिरदै सूध। समभाव देखें—

सूधे मन सूधे बचन सूधी सब करतूति।
तुलसी सूधी सकल बिधि रघुबर प्रेम प्रसूति।

तथा— **निरमल मन जन सो मोहि भावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा।**

(111) त्रिविध ताप—दैहिक, दैविक एव भौतिक।

(३८१)

हरि बोलि सूवा बार बार,
तेरी ढिग मींनां कछू करि पुकार।। टेक।।
अंजन मंजन तजि बिकार, सतगुरु समझायौ तत सार।।
साध सगति मिलि करि बसंत, भौ बद न छूटै जुग जुगंत।।
कहै कबीर मन भया अनद, अनंत कला भेटे गोब्यंद।।

शब्दार्थ—सुवा=तोता। जीव से तात्पर्य है। मीना=मीनी (पाठान्तर), मृत्यु का प्रतीक, वैसे मीना राजपूताने की एक युद्ध प्रिय जाति है। अजन=लेप, चदनादि का लेप। मजन=मार्जन, स्नानादि। बसत=आनन्द। जुग-जुगत= युग युगातर। अनत कला=अनत कलाओ वाले।

संदर्भ—कबीर कहते हैं कि साधु-सगति द्वारा ही भवसागर के पार हो सकते हैं।

भावार्थ—रे जीव रूपी तोते, बार बार भगवान का नाम-स्मरण कर। तम्हारे पास ही मृत्यु रूपी बिल्ली कुछ कह रही है। (बिल्ली म्याऊँ-म्याऊँ करती है। मृत्यु भी मानो यह कहती रहती है—मैं आऊँ, मैं आऊँ।) चन्दनादि का लेप तथा तीर्थादि मे स्नान आदि विकारो को छोड दो। मुझे सतगुरु ने ही यही सार तत्व सिखाया है। साधु-सगति मे वस कर बसन्तोत्सव (आनन्द) मनाओ अन्यथा तुम्हारे भव-बधन युगयुगातर (जन्म जन्मातर) तक नही छूटेंगे। कबीर कहते हैं कि

इससे अनत कला वाले भगवान से तुम्हारा साक्षात्कार होगा और तुम्हारे मन को आत्मानन्द की प्राप्ति होगी।

अलंकार (i) रूपकातिशयोक्ति—सुवा, मीना। बसंत।
(ii) पुनरुक्ति प्रकाश—बार बार।
(iii) रूपक—अंजन मजन विकार; भौबन्ध।
(iv) पदमैत्री—अजन भंजन।
(vi) सभग पद यमक—जुग जुगत।

विशेष—(i) बाह्याचार का विरोध है।
(ii) सत्सग एवं गुरु की महिमा का प्रतिपादन है।
(iii) वसंत—वसन्तोत्सव वसत पचमी से होली की पूर्णिमा तक (४० दिन तक) मनाया जाता है।

(३८२)

बनमाली जांनै बन की आदि,
रांम नांम बिन जनम बादि ॥ टेक ॥
फूल जु फूले रुति बसंत, जामैं मोहि रहे सब जीव जंत ॥
फूलनि मैं जैसे रहै तबास, यूं घटि घटि गोंविद है निवास ॥
कहै कबीर मनि भया अनद, जगजीवन मिलिवौं परमानंद ॥

शब्दार्थ—आदि=आरम्भ, उत्पत्ति। बादि=व्यर्थ। रुचि बसत। आसक्ति का ससार। फूल=भोग-विलास।

सन्दर्भ—कबीर दास प्रभु-साक्षात्कार के आनन्द का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—वनमाला धारण करने वाले प्रभु रूपी वनमाली इस जगत रूपी वन के आदि (उत्पत्ति) को जानते हैं। राम-नाम के बिना यह जीवन व्यर्थ है। ऋतुवसत रूपी आसक्ति के ससार मे विभिन्न आकर्षक भोगो के रूप मे जो फूल फूले हुए हैं, उनके द्वारा जगत के समस्त जीव जन्तु मोहित हो रहे हैं—अपने कर्तव्य को भूले हुए हैं। जिस प्रकार फूल मे सुगध रहती है, उसी प्रकार सबके अन्तःकरणो मे भगवान व्याप्त हो रहे हैं। कबीरदास कहते हैं कि जब परमानद रूप जगजीवन (ईश्वर) का साक्षात्कार हुआ, तो मन आनदित हो गया।

अलंकार (i) रूपकातिशयोक्ति—सम्पूर्ण पद। वन, फूल, वसंत।
(ii) साग रूपक—जीवन और वन का रूपक।
(iii) परिकराकुर—वनमाली।
(iv) उदाहरण—फूलनि' ' निवास।
(vi) पुनरुक्ति प्रकाश—घटि घटि।
(vii) रूपक—जगजीवन परमानंद।

विशेष—(i) वन की आदि—संसार का प्रारम्भ कब और कैसे हुआ, यह अगम्य प्रश्न है। इसी से इसको भगवान ही जानते हैं।

(ii) जीवन के प्रति वैराग्य, भगवान के सर्वव्यापकत्व एव भगवन्नाम-स्मरण का प्रतिपादन है ।

(iii) फूलनि मे···· निवास ।—समभाव देखिए—

ज्यों तिल माही तेल है, ज्यो चकमक में आग ।
तेरा साईं तुज्झ में जाग सके तो जाग ।
तेरा साईं तुज्झ में, ज्यूँ, पुहुपन में वास ।
कस्तूरी के मिरग ज्यूँ, फिरि-फिरि सूँघे घास ।

(३८३)

मेरे जैसे बनिज सौं कवन काज,
मूल घटै सिरि बधै ब्याज ।। टेक ।।
नाइक एक बनिजारे पांच, बैल पचीस कौ संग साथ ।।
नव बहियां दस गौंनि आहि, कसनि बहतरि लागे ताहि ।।
सात सूत मिलि बनिज कीन्ह, कर्म पयादौ सग लीन्ह ।।
तीन जगाती करत रारि चल्यौ है बनिज वा बनज झारि ।।
बनिज खुटानौं पूंजि टूटि, षाडू दह दिसि गयौ फूटि ।।
कहै कबीर यहु जन्म बाद, सहजि समांनू रही लादि ।।

शब्दार्थ—बनिज=व्यापार अथवा व्यापारी । वनजारे=टाँडा लादकर चलने वाले व्यापारी । कसनि=कसनियाँ । गवनि=गूनें, बोरियाँ । सात सूत=सात धातु । जगाती=कर लेने वाले । खटानौं=समाप्त हो गई । टाडो=सामान ।

संदर्भ—कबीरदास वासनामय जीवन की निरर्थकता का वर्णन करते हैं ।

भावार्थ—मेरे द्वारा किए जाने वाले व्यापार से क्या लाभ हो सकता है, जिसमे मूल धन (आत्म तत्त्व) घटता जाता है और बधन के हेतु कर्म-रूपी व्याज की वृद्धि होती जाती है । नायक एक है और पाँच बनजारे (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ) हैं । (जो विषय भोगो को खरीदते हैं ।) शरीर के २५ प्रकृति रूपी पच्चीस बैल विषयो का बोझ ढोते हैं । इन बैलो पर नापने के नौ हाथ (चार अन्त करण एव पच प्राण) तथा दस इन्द्रियो (उनके विषय) रूपी दस वोरियाँ लदी हुई हैं । इनको शरीर की बहत्तर नाडियो रूपी रस्सियो से बाँधा गया है । सात धातुओ ने मिलकर शरीर के इस व्यापार को मालूम किया था और भाग्य रूपी प्यादे (पैदल चलने वाला सैनिक) को अपने साथ ले लिया था (वही मार्गदर्शक एव रक्षक है ।) सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण रूपी ये तीन कर (टैक्स) उगाहने वाले झगडा कर रहे हैं । इन्होने कर के लिए इतना झगडा किया अथवा झगडा करके इन्होने इतना कर वसूल कर लिया कि इस जीवन रूपी व्यापारी को सम्पूर्ण जीवन रूपी वाणिज्य की सामग्री इन तीनो गुणो को समर्पित कर देनी पडी और जीव रूपी व्यापारी यहाँ से हाथ झाडकर चल दिया । अब तो व्यापार समाप्त हो गया (उसमे टोटा आ गया है), पूँजी कम पड़ गई है और यह चैतन्य रूपी टाँडा दस इन्द्रियो रूपी दसो

दिशाओ मे फूट कर वह निकला है। कबीर कहते हैं कि यह जन्म व्यर्थ जा रहा है। अब तो मैं केवल सामान को लादने का काम करता हूँ और मै अपने सहज स्वरूप को प्राप्त हो गया हूँ।

अलंकार—(i) सागरूपक—जीवन को आद्यन्त एक व्यापार के रूप मे प्रस्तुत किया है।

वक्रोति—कवन काज।

(iii) रूपक—कर्म पयादौ।

विशेष—प्रतीको का प्रयोग है।

(क) नायक—जीव।

(ख) वनजारे पाँच—पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ।

(ग) बैल पच्चीस—पच्चीस प्रकृतियाँ।

आकाश की—काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय।

वायु की—चलन, वलन, धावन, प्रसारण, सकोचन।

अग्नि की—सुधा, तृषा, आलस्य, निद्रा, मैथुन।

जल की—लार, रक्त, पसीना, मूत्र, वीर्य।

पृथ्वी—अस्थि, चर्म, मास, नाडी, रोम।

नौ वहियाँ—शरीर के नवद्वार, अथवा नौ हाथ (जिनसे नापते हैं)—चार अन्तःकरण—मन चित्त बुद्धि एव अहंकार। तथा पंच प्राण—प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान) सात सूत—सप्त धातु—रस, रक्त, माँस, वसा, मज्जा, अस्थि और शुक्र।

तीन जगाती—त्रिगुणात्मक प्रकृति—सत, रज, तम।

दस गूने—दस इन्द्रियो के अतिरिक्त इनका अर्थ दस वायु भी हो सकती हैं—प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कर्म, कूकरत देवदत्त तथा धनंजय।

वहत्तर कसनियाँ—वहत्तर नाडिया।

(३८४)

माधौ दारन दुख सह्यौ न जाइ,

मेरी चपल वुधि तातै कहा वसाइ ॥ टेक ॥

तन मन भींतरि बसै मदन चोर, जिनि ज्ञांन रतन हरि लीन्ह मोर।

मै अनाथ प्रभू कहूं काहि, अनेक बिगूचे मैं को आहि ॥

सनक सनंदन सिव सुकादि, आपण कवलापति भये ब्रह्मादि।

जोगी जगम जती जटाधार, अपनै औसर सब गये हैं हारि ॥

कहै कबीर रहु संग साथ, अभिअतरि हरि सू कहौ बात।

मन ग्यांन जांनि कै करि विचार, रांम रमत भौ तिरिबौ पार ॥

शब्दार्थ—दारन=दारुण, कठोर। चपल=चचल। वसाइ=वश नही है। विगूचा=दबोचा, उलझन मे डाल दिया।

सन्दर्भ— कबीरदास काम के व्यापक प्रभाव का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—हे माधव ! काम के द्वारा दी जाने वाली दारुण व्यथा मेरे लिए असह्य हो उठी है। मेरी चचल बुद्धि मुझे काम (विषय) की ओर आकृष्ट करती है उस पर मेरा कोई वश नही चलता है। मेरे शरीर और मन के भीतर कामदेव रूपी चोर रहता है। उसने मेरे आत्म-बोध रूपी रत्न का अपहरण करलिया है। हे प्रभु, मैं अनाथ हूँ। मैं अपनी व्यथा किससे निवेदन करूँ ? इस काम ने अनेक बडे-बडो को दबोच डाला है। मेरी तो चलाई ही क्या है ? सनक, सनदन, शिव, शुकदेव, स्वय विष्णु ब्रह्मादि जैसे देवता, जोगी जगम, जटाधारी, आदि साधु-सभी अपना समय आने पर (अथवा इससे पाला पडने पर) इसके सम्मुख हार गये हैं। कबीर कहते हैं कि साधुओ की सगति मे रहो तथा अपने अन्त करण मे विराजमान प्रभु से अपनी व्यथा निवेदित करो। मन मे यह बात अच्छी तरह सोच-विचार कर समझ लेनी चाहिए कि भगवान (राम) मे रमण करते हुए ही भवसागर को पार किया जा सकता है।

अलंकार— (i) वक्रोक्ति—मेरी ······बसाइ।
(ii) रूपक—मदन चोर, ज्ञान रतन,
(iii) पर्यायोक्ति—मैं को आहि।
(iv) अनुप्रास—सनक सनदन, सिव सुकादि सब; जोगी जगम जती जटाधर।
(vi) अत्युक्ति—सनक · हारि।

(३८५)

तू करी डर क्यूं न करै गुहारि,
तू बिन पंचाननि श्री मुरारि ॥ टेक ॥
तन भींतरि बसै मदन चोर, तिनि सरबस लीनौं छोर मोर ॥
मांगै देइ न बिनै मांन, तकि मारै रिदा मै कांम बांन ॥
मैं किहि गुहरांऊ आप लागि, तू करी डर बड़े बडे गये हैं भागि ॥
ब्रह्मा बिष्णु अरु सुर मयक, किहि किहि नहीं लावा कलक ॥
जप तप संजम सुंचि ध्यान, बंदि परे सब सहित ग्यांन ॥
कहि कबीर उबरे द्वै तीनि, जा परि गोविंद कृपा कीन्ह ॥

शब्दार्थ—करी=हाथी। पचाननि=सिंह। श्रवम=सर्वस्व। बिना बिनै=विनय। गुहारि=पुकारना। मयक=चन्द्रमा। सु चि=शुचि, पवित्रता।

सन्दर्भ—कबीरदास काम के व्यापक प्रभाव का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—हे मेरी जीवात्मा, तू काम रूपी हाथी से डर कर सहायतार्थ क्यो नही पुकारती है ? तुम पूछो कि मैं किसको पुकारूँ, तो इसका उत्तर यह है कि मुरारी रूपी सिंह के अतिरिक्त तुम किसको पुकारोगी ? अर्थात् कामरूपी हाथी से रक्षा के लिए तुमको मुरारि सिंह से ही पुकार करनी चाहिए। मेरे शरीर के भीतर कामदेव

रूपी चोर रहता है। उसने मेरे सम्पूर्ण चैतन्य का हरण कर लिया है। मांगने पर वह मेरे चैतन्य रूप को देता नही है और अनुनय विनय भी नही मानता है। इतना ही नही, वह कामदेव मेरे हृदय मे तान-तान कर बाण मारता है। हे कामदेव, मैं अपनी रक्षा के लिए किसको पुकारूँ ? तुम्हारे डर के मारे बडे-बडे भाग खडे हुए हैं। ब्रह्मा, विष्णु और चन्द्रदेव तुमने किस-किसको कलकित नही किया है ? जप, तप, सयम, पवित्रता ध्यान और ज्ञान सभी व्यक्ति इसके समक्ष पराजित हो गये हैं। कबीर कहते हैं कि इसके प्रभाव से केवल वे ही दो-तीन व्यक्ति बच पाए हैं जिन पर भगवान ने अनुग्रह किया है।

अलंकार—(i) गूढोक्ति—प्रथम पक्ति, किहि गुहराऊँ।
(ii) रूपक—मदन चोर, काम बान।
(iii) विशेषोक्ति की व्यजना—मागे देह...... मान।
(iv) पुनरुक्ति प्रकाश—किहि किहि।
(v) वक्रोक्ति—किहि...... कलक।
(vi) सहोक्ति—सब सहित ग्यान।

विशेष—(i) काम के सर्वव्यापी एव सर्वग्रासी प्रभाव की ओर सकेत है।

(ii) जा परि—कीन्ह। पुष्टि मार्गीय भक्त की भाँति कबीरदास उद्धार के लिए प्रभु-कृपा पर अवलम्बित दिखाई देते है।

(iii) कामदेव के बान—५ हैं—मोहन, उन्मादन, संतपन, शोषण और निश्चेष्टीकरण।

(३८६)

ऐसौ देखि चरित मन मोह्यौ मोर,
तार्थे निस बासुरि गुन रमौ तोर ॥ टेक ॥
इक पढ़हि पाठ इक भ्रमैं उदास, इक नगन निरंतर रहैं निवास ॥
इक जोग जुगुति तन हूहि खीन, ऐसैं रांम नांम सगि रहै न लीन ॥
इक हूहि दीन एक देहि दांन, एक करैं कलापी सुरा पांन ॥
इक तत मंत ओषध बांन, इक सकल सिध राखै अपांन ॥
इक तीर्थ व्रत करि काया जीति, ऐसैं रांम नांम सूं करैं न प्रीति ॥
इक धोम घोटि तन हूंहि स्यांम, यूं मुकति नहीं बिन रांम नांम ॥
सत गुर तत कह्यौ बिचार, मूल गह्यौ अनभै बिसतार ॥
जुरा मरण थैं भये धीर, रांम कृपा भई कहि कबीर ॥

शब्दार्थ—खनी=क्षीण। कलापी=कलाप=करधनी, लक्षण से कोपीन, अतः कलापी का अर्थ कोपीनधारी हुआ। अयान=अपान वायु, भीतर को खीची जाने वाली सास-तात्पर्य 'प्राणायाम' से है। धोम=धुँआ। मूल=परम तत्व। जुरा=जरा, वृद्धावस्था। धीर=निश्चल, अविचल। अनभै=निर्भय अवस्था।

संदर्भ—कबीरदास बाह्याचार के कारण उत्पन्न समार की दुर्दशा का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—हे प्रभु ससार के लोगो के आचरण (ससार की दुर्दशा) देखकर ही मेरा मन आपकी ओर आकृष्ट हुआ है। इससे मैं दिन रात आपके गुणो मे रमा हुआ हूँ (आपकी भक्ति मे तल्लीन हो गया हूँ)। कोई वेद पाठ मे भूला हुआ है, कोई ससार के प्रति उदासीन होकर घूमता है, कोई निरन्तर नग्न बना हुआ रहता है, और कोई योग की युक्तियो से (हठयोग की साधना द्वारा) अपने शरीर को ही सुखाता है। ऐसे व्यक्ति राम-नाम मे लवलीन नही रहते हैं। कोई भिखारी बन जाता है और कोई दानी बना हुआ दिखाई देता है। कुछ ऐसे साधु हैं जो कोपीन तो धारण किए हुए हैं, परन्तु (वामाचार का अवलम्बन करते हुए) शराब पीते हैं। कोई तत्र-मत्र एव जडी-बूटियो की साधना करता है और कोई प्राणायाम की साधना करता है और कोई प्राणायाम की साधना करके पूर्ण सिद्ध होने का दम्भ करता है। कोई तीर्थ-व्रत करके अपने शरीर पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। वाह्याचारो मे विश्वास करने वाले ये व्यक्ति राम-नाम से प्रेम नही करते हैं। कोई धुएँ मे घुट-घुट कर अपना शरीर काला कर देता है। परन्तु राम नाम के बिना इस प्रकार की साधनाएँ करने से मुक्ति की प्राप्ति नही होती है। सत्गुरू ने विचार करके तत्व की बात बताई है। हृदय मे निर्भय अवस्था का विस्तार करने वाले परम तत्व को ग्रहण करो। कबीर कहते हैं कि (गुरु के उपदेशानुसार आचरण करके) अब मैं वृद्धावस्था और मृत्यु के प्रति निश्चल हो गया हूँ अर्थात् इनके भय से मुक्त हो गया हूं। अब मेरे ऊपर राम की कृपा हो गई है।

अलकार—(1) *अनुप्रास—मन मोह्यौ मोर। नगिन निरतर निवास।*

(11) विरोधाभास—कलापी सुरापान।

(111) पदमैत्री—तत मत।

(1V) तद्गुण की व्यजना—धोम घोटि तन हूहि स्याम।

विशेष—(1) वाह्याचारो का विरोध है। राम-नाम के महत्व का प्रतिपादन है।

(11) 'वैराग्य' की व्यजना है।

(३८७)

सब मदिमाते कोई न जागा,

तार्थं सग ही चोर घर मुसन लाग।। टेक।।

पंडित माते पढि पुरांन, जोगी माते धरि धियांन।।

सन्यासी माते अहमेव, तपा जु माते तप कै भेव।।

जागे सुक उधव अकूर, हणवत जागे लै लगूर।।

सकर जागे चरन सेव, कलि जागे नामा जैदेव।।

ए अभिमान सब मन के कांम, ए अभिमांन नहीं रहों ठाम ॥
आतमां राम कौ मन बिश्रांम, कहि कबीर भजि रांम नांम ॥

शब्दार्थ—मद=उन्माद, गर्व। माते=मस्त, बेसुध। मुसन लाऊ=लूट रहे हैं।

सन्दर्भ—कबीरदास ससारी व्यक्तियो की अज्ञान-दशा का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—समस्त ससार मन्दान्ध (उन्माद एव गर्व मे अन्धा, होकर अज्ञान की निद्रा मे मदहोश होकर सो रहा है। कोई भी ज्ञान लाभ कर सचेत नही होता है। इसी से साथ मे लगे हुए कामादिक चोर जीव के शरीर को (जीवन को) लूट रहे हैं। (विवेक को नष्ट तथा विशुद्ध चैतन को तिरोहित कर रहे हैं।) पडित पुराण पढकर मदमस्त है, योगी ध्यान-योग के अहकार मे मदहोश हैं। सन्यासी 'अहमेव' की भावना के अहकार मे तथा तपस्वी तप के भ्रम मे अपने आपको भूले हुए हैं। शुकदेव, उद्धव, अक्रूर, और जामवत सहित हनुमान ईश्वर-प्रेम मे अनुरक्त होकर ही इस अज्ञान-निद्रा से जागे थे। शकर को भी भगवान के चरणो की सेवा से ही बोध हुआ था। कलियुग मे नामदेव और जयदेव को भी (इसी प्रकार) ज्ञान हुआ। (ज्ञान तप आदि के) उपर्युक्त समस्त अभिमान केवल मन मे उत्पन्न होते हैं। इन अभिमानो के कारण साधक का मन सदैव चचल बना रहता है। इसी से कबीर कहते हैं कि आत्मारामो के मन के विश्राम राम-नाम का भजन करना चाहिए—अर्थात् मन का वास्तविक विश्राम आत्माराम है। वहाँ पर मन अपनी सम्पूर्ण चंचलता सहित शुद्ध चैतन्य मे विलीन हो जाता है। यह ज्ञान और प्रेम द्वारा ही सम्भव है। इसी से कवीर कहते हैं कि, हे जीव, राम-नाम का स्मरण करो।

अलंकार—रूपकातिशयोक्ति - चोर, घर

विशेष—(i) दम्भ उत्पन्न करने वाले वाह्याचारो का विरोध है। साथ ही सच्ची भक्ति-भावना का प्रतिपादन है।

(ii) पुराण एव इतिहास प्रसिद्ध भक्तो की चर्चा द्वारा तीन बातें प्रकट होती हैं—(क) कबीर का विरोध केवल दम्भ से था। जहाँ भी सचाई थी, वहाँ कबीर का मन रम जाता था। (ख) भारत मे पौराणिक सस्कृति का व्यापक प्रभाव था। जनता के मन को प्रभावित करने के लिए पौराणिक पात्रो का उल्लेख आवश्यक था। तथा (ग) कबीर के ऊपर हिन्दू सस्कारो का गहरा प्रभाव था।

(३८८)

चलि चलि रे भवरा कवल पास,
भवरी बोलै अति उदास ॥ टेक ॥
तैं अनेक पुहप कौ लियौ भोग, सुख न भयौ तब बढ्यौ है रोग ॥
हौं ज कहत तोसूं बार बार, मैं सब बन सोध्यौ डार डार ॥
दिनां चारि के सुरंग फूल, तिनहि देखि कहा रह्यौ है भूल ॥
या बनासपती मैं लागैगी आगि, तब तू जैहौ कहां भागि ॥

पहुप पुरांने भए सूक, तब भवरहि लागी अधिक भूख ॥
उड़्यो न जाइ बल गयो है छूटि, तव भवरी रूंनी सीस कूटि ॥
दह दिसि जोवं मधुप राइ, तब भवरी ले चली सिर चढ़ाइ ॥
कहै कबीर मन कौ सुभाव, रांम भगति बिन जम कौ डाव ॥

शब्दार्थ—भ्रमर=मन । भ्रमरी=विवेक-बुद्धि । सुरग=सुन्दर रग । वनस्पति वन । रूनी=रोई । डाव=भय ।

सन्दर्भ—कबीर का कहना है कि अन्तत राम भक्ति ही जीवन की सार्थकता है ।

भावार्थ—विवेक-बुद्धि रूपी भ्रमरी ससार की विषय-वासनाओ से दु खी एव उदास होकर कहती है कि रे मन-रूपी भ्रमर, तुम भगवान के चरण कमलो के प्रति अनुरक्त बनो । तुमने अनेक विषय रूपी पुरुषो का रस भोगा है । उससे तुमको कुछ भी सुख प्राप्त नही हुआ, अपितु मोह-रूप रोग की वृद्धि हुई है । यह बात तुमसे बार-बार कह चुकी हूँ । इस ससार रूपी वन की डाल-डाल पर मैंने आनद की खोज की, (लेकिन सब व्यर्थ) । ये विषय रूपी सुन्दर रग के फूल केवल चार दिन के ही हैं । इन्हे देखकर तू क्यो मोहित हो रहा है ? इस ससार रूपी जगल मे आग लग जाएगी । तब तुम अपने प्राणो के रक्षार्थ कहाँ भाग कर जाओगे ? (तव भी तुम्हे भगवान की शरण मे ही जाना पडेगा ।) परन्तु भ्रमर ने भ्रमरी की बात नही मानी । कुछ दिनो पश्चात् फूल पुराने पड कर सूख गये (विषय की सामर्थ्य क्षीण हो गई), तब भ्रमर रूपी मन को ईश्वर-प्रेम की भूख जोर के साथ लगी । परन्तु इस समय उसका शरीर इतना हीनवीर्य हो गया था कि उससे उडा ही नही जाता था । उसकी यह दशा देख कर बुद्धि रूपी भ्रमरी सिर पीट-पीट कर रोने लगी । मन रूपी भ्रमर भी अपने किए पर पश्चाताप करता हुआ दसो दिशाओ मे घूम घूम कर रोने लगा । तब भ्रमरी उसको अपने सिर पर चढाकर भगवान के चरणारविन्द के पास ले गई । कबीर कहते हैं कि मन रूपी भ्रमर का यह सहज स्वभाव है कि जब तक उसको भगवान के चरण-कमलों का सान्निध्य प्राप्त नही होता है, तब तक मृत्यु भय से उसकी मुक्ति नही होती है ।

अलंकार—(i) रूपकातिशयोक्ति—भवरा, भवरी, पुहुप, वन ।
(ii) साग रूपक—सम्पूर्ण पद ।
(iii) वीप्सा—चलि चलि रे ।
(iv) विशेषोक्ति—तै सुख न भयो ।
(v) विरोधाभास—भयो तव " रोग, पुहुप पराने ·····भूख ।
(vi) पुनरुक्ति प्रकाश—वार वार, डार-डार ।
(vii) गूढोक्ति—कहा भूल ।

विशेष—(i) इस पद मे वुद्धि-मनस और काम मनस के द्वन्द्व का सुन्दर वर्णन है । अन्तत' बुद्धि मनस की विजय होती है और काम मनस का बुद्धि मनस मे

पर्यवसान हो जाता है। यही बुद्धिरूपी भ्रमरी का मन रूपी भ्रमर को अपने सिर पर चढ़ाना है।

सद्प्रवृत्तियो एवं दुष्प्रवृत्तियो का यह मानसिक शाश्वत है। इसी प्रकार देवासुर-सग्राम, पाण्डव-कौरवो का महाभारत, राम-रावण का युद्ध आदि कहा गया है। बुद्धि मनस विश्व-चेतना की वाहिका है। वही विश्व-चेतना स्वरूप भगवद् चरणों के प्रति उन्मुख वृत्ति है।

विवेक एव भक्ति के प्रति वासनात्मक मन का समर्पण जीव का स्वभाव एव जीवन की सार्थकता है। इसी का वर्णन इस पद मे किया गया है।

(ii) विविध रस-लोलुप होने के कारण मन भ्रमर है। भ्रमर को तृप्ति केवल कमल प्रदान कर पाता है और वह उसी के कोश मे आबद्ध हो जाता हैं। इसी से भगवान के चरणो को कमल कहते है। चरण कमलों का स्मरण करते-करते वासनात्मक बुद्धि का अद्वैत बुद्धि मे पर्यावसान ज्ञानी भक्तो का प्रतिवाद्य रहा है। भ्रमर गीत की परम्परा का साहित्य इसका ज्वलत उदाहरण है।

(३८९)

आवध रांम सबै करम करिहू,
सहज समाधि न जमथै डरिहूं ॥ टेक ॥
कुभरा ह्वै करि बासन घरिहू, धोबी ह्वै मल धोऊं ।
चमरा ह्वै करि रगौ अघौरी, जाति पांति कुल खोऊ ॥
तेली ह्वै तन कोल्हू करिहौ, पाप पुंनि दोऊ पीरौं ।
पंच बैल जब सूध चलाऊं, राम जेवरिया जोरू ॥
ज्ञत्री ह्वै करि खड़ग सँभालूं, जोग जुगति दोउ साधूं ।
नऊवा ह्वै करि मन कूं मूंड़ूं, बाढ़ी ह्वै कर्म बाढूं ॥
अवधू ह्वै करि यहु तन धूतौं बधिक ह्वै मन मारू ।
बनिजारा ह्वै तन कू बनिजूं, जूवारी ह्वै जम हारूं ॥
तन करि नवका मन करि खेवट, रसना करऊ बाडारूं ।
कहि कबीर भौसागर तरिहूं, आप तिरू बप तारूं ॥

शब्दार्थ—आवध=अवधि पति। कुभरा=कुम्हार। घरिहूं=बना दूंगा। अघौरी=घिनौनी वस्तुएं। पीरौं=पेलूंगा। अवधू=अवधूत, जोगी। करऊं बाडारू=डा० माताप्रसाद गुप्त ने इसका अर्थ करउवा=डालू करके 'पतवार डालूंगा' लिखा है। डा० भगवत्स्वरूप मिश्र ने इसका अर्थ "करऊं-बाडारू" करके रस्सा बना दूंगा लिखा है। केवट के सदर्भ मे 'पतवार' अधिक सगत है। इसी से हमने इसका अर्थ 'पतवार' ही किया है। बप=बाप, पूर्वज।

सन्दर्भ—कबीरदास कर्म की कुशलता द्वारा उद्धार की कामना करते हैं।

भावार्थ—हे अवधपति राम, मैं सब कर्म करूंगा और सहज समाधि को

प्राप्त करूगा और मैं इस प्रकार कर्मो को ज्ञान की साधना मे परिणत करता हुआ मृत्यु का आलिगन करने को सदैव तैयार रहूँगा।

कुम्हार होकर मैं सुन्दर वर्तन बना दूँगा। धोबी होकर मैं कपडो का मैल अच्छी तरह धो दूँगा। चमार होकर मैं चमडा जैसी घिनौनी वस्तु को अच्छी तरह रँगूगा और इस प्रकार जाति-पाँति और कुल के कारण उत्पन्न हीनत्व भावना को समाप्त कर दूगा। तैली होने पर मैं अपने शरीर को कोलू वनाकर उसमे पाप-पुण्यो को पेरूँगा तथा भक्ति रूपी तैल निकालूँगा। अपनी पाँचो इन्द्रियो को कोल्हू का वैल बना दूँगा और राम-प्रेम की रस्सी से नाथ कर उसे (पचइन्द्रिय रूपी वैल) को भक्ति के सीधे मार्ग पर चलाऊँगा। क्षत्रिय होने पर मैं विवेक की तलवार चला दूँगा तथा योग एव ज्ञान दोनो को सिद्ध करूँगा। (विवेक पूर्वक दुष्टों को दण्ड दूँगा तथा दण्ड निर्धारित करते समय तटस्थ की भाँति व्यवहार करूँगा। यही ज्ञान एव योग की साधना है।) नाई होने पर अपने मन की समस्त वासनाओ को मूड दूँगा। वढई होकर मैं कर्मों के वधन को काटूँगा। अवधूत होने पर मैं इस शरीर के मल को धोकर साफ करूँगा और वधिक के रूप मे इस वासनामय मन को ही मार डालूँगा। व्यापारी वनने पर मैं परम तत्त्व का व्यापार करूँगा। जुवारी होने पर मैं मृत्यु भय को ही दाव पर लगाकर हार जाऊँगा (मैं अपने शरीर की नौका और मन का केवट एव जिह्वा की पतवार वनाकर भव-सागर के पार जाऊँगा। कवीर कहते हैं कि इस प्रकार मैं स्वय तिरूँगा और अपने पूर्वजों (अन्य व्यक्तियो) का भी उद्धार कर दूँगा।

अलकार—(i) रूपक-तन कोल्हू, राम जेवरिया। पच वैल तन करि ''डारू ँ।

(ii) भौ सागर।

(iii) अनुप्रास—तरिहै, तिरू ँ, तारू ँ।

विशेष—(i) कर्म की महिमा का प्रतिपादन है। निष्ठापूर्वक कार्य ही मोक्ष का साधन बनता है। ''योग की कर्मसु कौशलम् (गीता)

(ii) कवीर की यह मान्यता प्रकट है कि सभी जातियो के व्यक्ति अपने व्यावसायिक कर्मों को आध्यात्मक रूप प्रदान करके परम पद के अधिकारी वन सकते हैं। यही समन्वय एव तत्त्व दृष्टि है। वह स्वय जुलाहे थे और अपने कर्म को निष्ठापूर्वक करते हुए परमपद के अधिकारी बने थे।

(iii) इस पद मे सभी जातियो के कर्मों का साधना-परक अर्थ किया गया है। व्यक्ति चाहे जिस सामाजिक स्थिति मे हो उसे ईश्वर-भक्ति का पूर्ण अधिकार एव अवसर प्राप्त है। यह मान्यता भारतीय दृष्टिकोण के अनुरूप है। तुलना करें—

(क) श्रेयान्स्वधर्मो विगुण परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधन श्रेय परधर्मो भयावह.।

श्री मदभगवद्गीता, ३/३५

(ख) मम माया संभव संसारा। जीव चराचर विविध प्रकारा।

× × ×

पुनि पुनि सत्य कहउँ तोहि पाही। मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं।

× × ×

भगतिवंत अति नीचउ पुरानी। मोहि प्रानप्रिय अस मम बानी।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(IV) तन कर....डारूँ। कबीर को यह कामना बहुत कुछ इस प्रकार की है—जेहि जोनि जन्मौ कर्म बस तहाँ राम पद अनुरागऊँ।

राग मालीगौड़ी

(३९०)

पंडिता मन रजिता, भगति हेत ल्यौ लाइ रे।
प्रेम प्रीति गोपाल भजि नर और कारण जाइ रे।। टेक।।
दांम छै पणि कांम नांहीं, ग्यांन छै पणि धंध रे।
श्रवण छै पणि सुरति नांहीं, नैन छै पणि अंध रे।।
जाकै नाभि पदम सु उदित ब्रह्मा, चरन गग तरग रे।
कहै कबीर हरि भगति बांछूं, जगत गुर गोब्यद रे।।

शब्दार्थ—रजिता = अनुरक्त। कारण = उपाय। जाइरे = जाने दो। दाम = धन। छै = है। पणि = पर। नाभि = टुंडी। वाछू = वाछा करता हूँ।

सन्दर्भ—कबीर कहते है कि भगवान की भक्ति ही काम्य होनी चाहिए।

भावार्थ—रे विषयो मे अनुरक्त मन वाले पडित तुम भगवान की भक्ति मे अपना मन लगाओ। प्रेम और प्रीति (श्रद्धा) पूर्वक भगवान का भजन करो तथा अन्य सब बातो को (व्यर्थ समझ कर) जाने दो। तुम्हारे पास धन है परन्तु उसके सदुपयोग के लिए काम नही करते हो। तुमको बौद्धिक ज्ञान प्राप्त है, परन्तु तुम ससार के धन्धो मे फँसे हुए हो। तुम्हे श्रवणशक्ति प्राप्त है, परन्तु भगवद् चर्चा सुनकर तुम्हारे भीतर भगवान की स्मृति नही जागती है। तुम नेत्रो के होते हुए भी भगवान का साक्षात्कार न कर सकने के कारण अधे ही कहे जाओगे। कबीर कहते हैं कि जिन भगवान के नाभि-कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई है तथा जिनके चरणो से गंगा की धारा प्रकट होकर वही है, मैं उन्ही भगवान की भक्ति की कामना करता हूँ। वे गोविन्द ही जगत को ज्ञान प्रदान करने वाले गुरु हैं।

अलंकार—(I) पदमैत्री—पडिता मन रजिता। गग तरग।
(II) विशेपोक्ति की व्यंजना—दाम—नाही, श्रवण—नाही।
(III) विरोधाभास—ग्यान—धध रे। नैन अधरे।
(IV) परिकराकुर—गोविन्द।

विशेप—(I) इस पद मे कबीर के राम विष्णु के अवतार रूप मे हमारे सामने आते हैं और वह सगुण भक्त कवियो की पक्ति मे खडे हुए दिखाई देते हैं।

(ii) कबीर के ऐसे कथनो को अर्थवादी ही मानना चाहिए। इस पद मे वर्णित घटनाओ को कबीर ने सत्य माना हो—यह आवश्यक नही है। भगवान की शक्ति करुणा आदि गुणों की व्यजना ही उन्हे अभिप्रेत है। कबीर की भगवान की दयालुता, भक्त वत्सलता आदि मे आस्था थी इसमे कोई सदेह नही है। उन्हे हम सगुणोपासक मान सकते हैं, परन्तु तुलसी सूर प्रभृति भक्त कवियो की भाति साकारोपासक नही मान सकते हैं। और फिर बात वही है। भारतीय मन-मानस को प्रभावित करने के लिए पौराणिक आख्यानो की चर्चा के बिना काम नही चल सकता है।

(३६१)

विष्णु ध्यांन सनान करि रे, बाहरि अंग न धोइ रे ।
साच बिन सीझसि नहीं, काई ग्यान दृष्टै जोइ रे ॥ टेक ॥
जंजाल मांहैं जीव राखै, सुधि नही सरीर रे ॥
अभिअतरि भेदै नही, कांई बाहरि न्हावे नीर रे ।
निहकर्म नदी ग्यान जल, सुनि मडल मांहि रे ॥
औधूत जोगी आतमां, कांई पेर्णे सजमि न्हाहि रे ।
इला प्यगुला सुषमनां, पछिम गगा बालि रे ॥
कहै कबीर कुसमल झड़ै, कांई मांहि लौ अग पषालि रे ।

शब्दार्थ—अभिअन्तरि=आभ्यन्तर, हृदय, मन। सीझसि=सिद्धि है। जोइ=दिखाई देता है। औधूत=अवधूत साधक, हठयोगी साधक। सजमि=सयम। कुसमल=पाप। झडै=घुल जाएँगे। पषालि=धोले। बालि= सुषुम्ना। पछिम=सुषुम्ना। गगा=इडा।

सन्दर्भ—कुछ साधक बाह्य साधनो एव साधनाओ मे व्यर्थ समझ एव शक्ति खोते रहते हैं और अन्तरात्मा को निर्मल नही बनाते हैं। कबीरदास इन्हीं को सावधान करते हैं।

भावार्थ—कबीरदासजी शरीर को मल-मल कर स्नान करने वाले साधकों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि विष्णु-ध्यान का स्नान करो बाहर से अगो को मत धोते रहो। भाव यह है कि पानी से शरीर के बाह्यागो को धोने से कोई लाभ नही होगा भगवान् का ध्यान करके अपने मन को निर्मल बनाना ही मुख्य काम है। सत्य के बिना सिद्धि की प्राप्ति नही होती है अत ज्ञान दृष्टि से देखने का प्रयत्न क्यो नही करते हो ? तूने अपने जी को जगत् के जजाल मे डाल रखा है और तुझको अपने शरीर का भी होश नही है। भाव यह है कि तू विषय के मोहवश अपने शरीर के स्वास्थ्य के प्रति भी असावधान हो गया है। अपने अन्दर प्रवेश नही करते हो अर्थात् आत्म-चिन्तन से विमुख हो। ऐसी स्थिति मे बाहर जल से क्या स्नान करते हो—बाहरी टीमटाम से कोई लाभ नही है। शून्य मण्डल मे निष्काम कर्म की नदी बहती है उसमे ज्ञान का जल है। जो योगी सयम के द्वारा उस नदी मे स्नान करता

है, वह सर्वथा शुद्धात्मा बन जाता है। इडा, पिगला और सुषुम्ना, जिन्हे गंगा, वंकनाल एवं अवधूती भी कहते हैं—के सगम मे अपने-अपने अगो को धोलो। इसमे तेरे समस्त पाप धुल जाएँगे।

अलंकार—रूपक– ग्यान दृष्टि, निहकर्म जल,

विशेष—बाह्य कर्म-काण्ड को व्यर्थ बताकर योग-साधन की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। कबीरदास के ऊपर नाथ-सम्प्रदाय की साधना का स्पष्टतः गहरा प्रभाव दिखाई देता है।

(२) इडा को गगा कहा है। सुषुम्ना को बकनाल या पश्चिम दिशा भी कहते हैं। सुषुम्ना को अवधूती या बालरडा तपस्विनी भी कहा गया है।-६ वी पक्ति कबीरदास का अभिप्राय इडा पिगला और सुषुम्ना के सगम से है। कथन मे कुछ दुष्क्रमत्व दोष आगया है।

(३९२)

भजि नारदादि सुकादि बंदित, चरन पंकज भांमिनी।
भजि भजिसि भूषन पिया मनोहर, देव देव सिरोवनीं ॥टेक॥
बुधि नाभि चदन चरचिता, तन रिदा मदिर भीतरा।
रांम राजसि नन बानी, सुजान सु दर सुंदरा॥
बहु पाप परबत छेदनां, भौ ताप दुरिति निवारणां।
कहै कबीर गोब्यद भजि, परमांनंद बंदित कारणां॥

शब्दार्थ—भामिनी = सुन्दर स्त्री (जीवात्मा), छेदणा = नष्ट करने वाले। दुरित = सकट। निवारणा = दूर करने वाले। कारणा = कारणभूत, उत्पत्ति के कारण। भूषन पिया = लक्ष्मी।

सन्दर्भ—कबीर भगवद भजन का उपदेश देते हैं।

भावार्थ—री आत्मा सुन्दरी, नारद इत्यादि मुनि तथा शुकदेव इत्यादि ऋषियो के द्वारा वन्दित भगवान के चरण-कमलो का भजन कर। लक्ष्मी के हृदय के आभूषण एव अत्यन्त मनोहर तथा सम्पूर्ण देवताओ के सिर पर मणि के समान शोभा देने वाले इन चरणों का भजन कर। चन्दन से चर्चित बुद्धि-रूपी नाभि तथा शरीर एव हृदय-रूपी मन्दिर मे विराजमान आत्मारूपी राम सुशोभित हो रहे हैं। राम अत्यन्त ज्ञानी हैं। वह अपने सुन्दर नेत्रो एव वाणी से सुशोभित हैं तथा सुन्दरो मे भी सुन्दर है अथवा सुन्दरो की सुन्दरता हैं। वह सम्पूर्ण पापो के पहाडो को नष्ट करने वाले है तथा ससार के कष्टो एव संकटो को दूर करने वाले हैं। कबीर कहते हैं, तू उन गोविंद का भजन कर जो परमानद स्वरूप हैं तथा सृष्टि के उत्पत्ति कारणो (सृष्टि के उत्पादक तत्त्वो) द्वारा वन्दित हैं।

अलकार—(i) रूपक-चरन पंकज, बुधि-नाभि तन रिदा मन्दिर।
(ii) सभग पद यमक—भजि भजिसि।
(iii) यमक—देव देव।

(iv) अनुप्रास—सुजान सु दर सुयश ।
(v) अतिशयोक्ति—सु दर सुन्दरा ।

विशेष—(i) भूषन पिया का अर्थ सीता भी हो सकता है। कबीर ने कही कही राम को परब्रह्म और विष्णु दोनो ही रूपो मे स्वीकार किया है।

(ii) कबीर राम के गुणो की वन्दना बार-बार करते हैं, यद्यपि उन्हे निराकार एव निर्गुण ही मानते हैं। इस विरोधाभास के कारण ही कबीर सामान्य पाठक को कबीर की वाणी, अट पटी प्रतीत होने लगती है।

(iii) सुन्दर सुन्दरा—तुलना करें—

सुन्दरता कहँ सुन्दर करई। छविगृह दीपसिखा मनु बरई।

(गोस्वामी तुलसीदास)

राग कल्याण

(३९३)

ऐसैं मन लाइ लै रांम रसनां,
कपट भगति कीजै कौंन गुणां ।।टेक।।
ज्यूं मृग नादैं बेध्यौं जाइ, प्यड परै वाकौ ध्यांन न जाइ ।।
ज्यूं जल मीन हेत करि जांनि, प्रांन तजै बिसरै नही बांनि ।।
भ्रिगी कीट रहै ल्यौ लाइ, ह्वै लै लीन भ्रिग ह्वै जाइ ।।
रांम नांम निज अमृत सार, सुमिरि सुमिरि जन उतरे पार ।।
कहै कबीर दासनि को दास, अब नही छाड़ौं हरि के चरन निवास ।।

शब्दार्थ— कौन गुणा=क्या लाभ। प्यड शरीर।

सन्दर्भ—कबीर राम के प्रति अनन्य प्रेम का प्रतिपादन करते हैं।

भावार्थ—हे जीव, इस दिखावटी और बनावटी भक्ति का क्या उपयोग है? इससे कुछ भी लाभ नही होना है। भगवान राम की भक्ति के रसास्वादन में मन लगा कर तू ऐसा तन्मय होजा, जैसे हिरण मधुर ध्वनि मे अनुरक्त होकर वाणों से विद्ध होता रहता है एव उसका शरीर भी गिर जाता है (वह मर जाता है। परन्तु नाद से उसका ध्यान नही हटता है, मछली जल से प्रेम के कारण उससे वियुक्त होने पर अपने प्राण भले ही त्याग देती है परन्तु जल से प्रेम करने का अपना स्वभाव नही छोडती है, तथा कवि भ्रमर मे ध्यान लगाए रहता है और उसी मे लीन होकर भृंग ही बन जाता है—(परन्तु व्यक्तित्व का मोह करके भ्रमर को नही छोडता है) राम नाम ही वास्तव मे आत्म स्वरूप, अमृत स्वरूप एव सार तत्व है। उसी को बार-बार स्मरण करके अनेक भक्त जन भवसागर के पार उतर गये हैं। कबीर कहते हैं कि मैं तो भक्तो का भी भक्त हूँ (दासानुदास) हूँ। अब मेरा मन रूपी भ्रमर भगवान के चरणारविन्द मे निवास करना (अनुरक्त रहना) नही छोडेगा।

अलंकार—(i) उदाहरण—ज्यूं ····है जाइ।

(ii) वक्रोक्ति— कौन गुणा ।
(iii) उल्लेख—निज अमृत सार ।
(iv) पुनरुक्ति प्रकाश—सुमिर सुमिर ।
(v) सभंग पद यमक— दासनि दास ।

विशेष— (i) अनन्य भक्ति का प्रतिपादन है ।
(ii) मृग, मीन, भृंगी परम्परागत प्रेम-प्रतीक हैं ।

राग सारंग

(३९४)

यहु ठग ठगत सकल जग डोलै,
गवन करै तब मुषहु न बोलै ।।टेक।।
तू मेरौ पुरिषा हौं तेरी नारी, तुम्ह चलतैं पाथर थैं भारी ।।
बालपनां के मींत हमारे, हमहि लाड़ि कत चले हो निनारे ।।
हम सुं प्रीति न करि री बौरी, तुम्ह से केते लागे ढौरी ।।
हम काहू संगि गये न आये, तुम्ह से गढ़ हम बहुत बसाये ।।
माटी की देही पवन सरीरा, ता ठग सूं जन डरै कबीरा ।।

शब्दार्थ—ठग=जीव । नारी=देह से तात्पर्य है । पाथर=पत्थर । थैं भारी=से भी अधिक कठोर । निनारे=न्यारे, अलग । ढौरी=लगन । गढ =अड्डा ।

सन्दर्भ—कबीर जीवन की निस्सारता का निरूपण करते हैं ।

भावार्थ—यह जीव रूपी ठग समस्त ससार को ठगता हुआ घूमता है । यह शरीर का आश्रय लेकर ससार के सुखो को भोगता है और फिर शरीर को छोड कर चला जाता है । (जाते समय यह शरीर के प्रति निर्मोही हो जाता है) और शरीर से मुंह से भी नही बोलता है । इस समय यह काया उससे कहती है कि तुम मेरे पुरुष (पति) हो और मैं तुम्हारी आश्रिता पत्नी हूँ । तुम इस पत्थर से भी अधिक कठोर वन कर चले जा रहे हो ? तुम तो हमारे बालकपन के मित्र हो । तुम हमसे अलग होकर कहाँ जा रहे हो ? जीव उत्तर देता है कि, "हे पगली हमसे प्रीति मत करे । तुम्हारी जैसी न मालूम कितनी नारियो से हमने लगन लगाई है । हम किसी भी शरीर के साथ न तो आए हैं और न किसी शरीर के साथ जाते ही हैं । हमने तुम्हारे जैसे काया रूपी अनेक अड्डे वसाए हैं (हम तो अड्डे पर टिकते हैं और चले जाते हैं । जिस ठग रूपी जीव की काया स्थूल मिट्टी की भाँति नश्वर है तथा जिसका प्रेरक तत्त्व हवा की तरह अस्थिर है, उससे भगवान का भक्त कबीर बहुत डरता है, अर्थात् उसके प्रति कबीर विल्कुल आसक्त नहीं हैं ।

अलंकार—(i) सभग पद यमक—ठग ठगत ।
(ii) व्यतिरेक—पाथर थैं भारी ।
(iii) रूपक—माटी····सरीरा ।

(iv) रूपकातिशयोक्ति—ठग ।

विशेष—(1) देह की नश्वरता, जीव का अनेक योनियो मे भटकना तथा शरीर की आसक्ति का विपरीत लक्षणा द्वारा अच्छा वर्णन किया गया है ।

(11) जीव न मालूम कब शरीर को छोड दे इससे भगवान का भजन ही सार है । यह व्यजना है ।

(३९५)

धनि सो घरी महूरत्य दिनां,

जब ग्रिह आये हरि के जनां ।।टेक।।

दरसन देखत यहु फल भया, नैनां पटल दूरि है गया ।।

सब्द, सुनत संसा सब छूटा, श्रवन कपाट बजर था तूटा ।।

परसत घाट फेरि करि घड़्या, काया कर्म सकल झड़ि पड़्या ।।

कहै कबीर संत भल भाया, सकल सिरोमनि घट मैं पाया ।।

शब्दार्थ—मुहुर्त्त = समय (काल), पटल = पर्दा । कपाट = किवाड । वजर = वज्र । घाट = शरीर । फेरि करि = दुबारा । घडया = निर्माण कर दिया । सकल सिरोमनि = भगवान । काया-कर्म = इन्द्रियासक्ति ।

सदर्भ—कबीरदास सत्सग की महिमा का वर्णन करते है ।

भावार्थ—वह घडी, वह समय तथा वह दिन धन्य था जब घर पर भगवान के भक्त पधारे । उनके दर्शन करते ही यह प्राप्त हो गया कि आखो के सामने से अज्ञान का पर्दा हट गया । उनके उपदेशामृत को सुनते ही समस्त सशय दूर हो गये तथा कानो पर लगे हुए बज्र के किवाड भी टूट गये । उनके स्पर्श मात्र से यह काया दूसरी ही होगई अथवा उनके सत्सग द्वारा मुझे एक नवीन जीवन ही प्राप्त हो गया तथा विषय-भोगो के प्रति समस्त आसक्ति समाप्त हो गई । कबीर कहते हैं कि मुझको संत बहुत ही अच्छे लगे, क्योकि उनकी सगति के प्रभाव से मुझको अपने हृदय मे सम्पूर्ण विश्व के शिरोमणि भगवान का साक्षात्कार हो गया ।

अलंकार—(1) चपलातिशयोक्ति की व्यजना—दरसन…. ….पडया ।

(11) रूपकातिशयोक्ति—पटल ।

विशेष—समभाव के लिए देखें—

जा दिन सत पाहुने आवत ।
तीरथ कोटि स्नान करे फल, जैसो दरसन पावत ।
× × ×
बंधन-करम कठिन जे पहले, सोऊ कारि कहावत ।
सगति रहै साधु की अनुदिन, भव-दुख दूरि नसावत ।
सूरदास, या जनम-मरन तें, तुरत परम-गति पावत ।

(सूरदास)

राग मलार

(३९६)

जतन बिन मृगनि खेत उजारे।
टारे टरत नही निस बासुरि, बिडरत नहीं बिडारे ।।टेक।।
अपनें अपनें रस के लोभी, करतब न्यारे न्यारे।
अति अभिमांन बदत नहीं काहू, बहुत लोग पचि हारे ।।
बुधि मेरी किरषी, गर मेरौ बिझुका, अखिर दोइ रखवारे
कहै कबीर अब खान न दैहू, बरियां भली सभारे ।।

शब्दार्थ—जतन=यत्न, साधना। मृगनि=पशुओ, पाशविक वृत्तियाँ-काम क्रोधादि। बिडरत=बिडारना, भगाना। किरषी=कृषि। बिझुका=विजूका, खेत मे जन्तुओ को डराने के लिए खडा किया हुआ पुतला इत्यादि।

सन्दर्भ—कबीरदास विषयासक्ति का वर्णन करते है।

भावार्थ—साधना के अभाव मे काम क्रोधादिक विकारो (अथवा इन्द्रियासक्ति) रूपी पशुओ ने मेरे जीवन रूपी खेत को नष्ट कर दिया है। ये रात दिन घेरे रहते हैं, हटाने से हटते नही हैं और भगाने से भगते नही है। तात्पर्य यह है कि मन को कितना भी समझाओ और विषयो से हटाने का प्रयत्न करो, परन्तु वह मानता ही नही है। पाशविक वृत्तियो रूपी ये पशु अपने अपने विषय-स्वाद के लोभी हैं और अलग-अलग ढग से विषय की ओर प्रवृत्त होते हैं और उसका भोग करते है (जिस प्रकार प्रत्येक पशु) अपनी भिन्न रुचि के अनुसार खेत मे उत्पन्न होने वाली वस्तु को खाता है। प्रत्येक पशु का खेत मे घुसने और उसको उजाडने का तरीका भी भिन्न होता है।) इन सबको अपनी सामर्थ्य का बहुत ही घमड है और ये अपने आगे किसी साधक को कुछ भी नही समझते हैं। इनके ऊपर नियन्त्रण करने के प्रयास मे बहुत से साधक थक कर बैठ गये अर्थात् असफल हो गये। कबीर कहते हैं कि अब मैंने ठीक समय पर समस्त स्थिति को समझ लिया है। अपनी बुद्धि रूपी कृषी की रखवाली के लिए मुझे गुरु का उपदेश रूपी विजूका मिल गया तथा 'रा' और 'म' ये दो अक्षर उस खेती की रखवाली करने वाले मिल गये हैं। अब मैं इन मृगो को जीवन-रूपी खेत नष्ट नही करने दूंगा।

अलकार—(i) सांगरूपक—सम्पूर्ण पद खेत और जीवन का रूपक है।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—मृगनि।
(iii) पुनरुक्ति प्रकाश—न्यारे-न्यारे।
(iv) विशेषोक्ति—हारे · बिडारे।

विशेष—(i) व्यजना यह है कि सद्गुरु की कृपा और प्रभु की भक्ति के द्वारा ही विषयासक्ति को वश मे किया जा सकता है, अन्यथा नही।

(ii) 'बरियां' का अर्थ 'बाड' भी हो सकता है। तब इस पक्ति का अर्थ इस प्रकार होगा—"मैंने अपने खेत की सयम एव सात्विक बुद्धि रूपी बाड़ ठीक कर

ली है। 'वरियाँ' का अर्थ 'वेला' करने पर इस पंक्ति का अर्थ इस प्रकार किया जाता है, 'अवसर रहते ही मैंने खेत को सम्हाल लिया है।" परन्तु हमको जो अर्थ सर्वाधिक उपयुक्त प्रतीत हुआ हमने ऊपर वही लिख दिया है।

(iii) तुलसी की भाँति कबीर भी 'राम' नाम की महिमा गाते हुए थकते नही हैं।

(३९७)

हरि गुन सुमरि रे नर प्रांणी।
जतन करत पतन ह्वै जैहै, भावै जांमण जांणीं ॥टेक॥
छीलर नीर रहै धूं कैसै, को सुपिनै सच पावै ॥
सूकित पांन परत तरवर थैं, उलटि न तरवरि आवै ॥
जल थल जीव डहके इन माया, कोई जन उवर न पावै।
रांम अधार कहत हैं जुगि जुगि, दास कबीरा गावै ॥

शब्दार्थ—भावै=मन को अच्छा लगे। जाणम जाणी=जानने योग्य बात को जान ले। छीलर=छिछला पोखर। पान=पत्ता। डहके=धोखा दिया। उवर पावै=उद्धार हो पाया।

सन्दर्भ—कबीर माया के सर्वव्यापी प्रभाव का वर्णन करते हैं।

भावार्थ- रे प्राणी, तुम भगवान के गुणो का स्मरण करो। इस प्रकार के प्रयत्न (वाह्याचार) करते हुए तेरा शरीर नष्ट हो जाएगा। तुम चाहो, तो इस जानने योग्य तथ्य को जान लो। छिछले पोखर मे पानी कब तक रह सकता है? वह तो सूखेगा ही। (अल्पशक्ति वाला शरीर तो नष्ट होगा ही)। स्वप्न मे प्राप्त होने वाले सुख से कौन सुखी हो सकता है? जो पत्ता पेड से गिर गया है, वह उलट कर वापिस उस वृक्ष मे नही लगता है। जल-थल के सम्पूर्ण जीव इस माया के धोखे मे पडे हुए है। भगवान का कोई भक्त ही इससे छुटकारा पा सकता है। कबीरदास कहते हैं कि एक मात्र राम-नाम ही युग युगातर से इस माया से बचने का आधार रहता आया है।

अलंकार—(i) विशेषयोक्ति—जतन .. जैहै।
(ii) अनुप्रास—जतन जैहै जाणम जाणी।
(iii) वक्रोक्ति—छीलर पावै।
(iv) निदर्शना—छीलर आवै।
(vi) पुनरुक्ति प्रकाश—जुगि जुगि।

विशेष—(i) वाह्य साधनो का विरोध है।
(ii) मन की पवित्रता का प्रतिपादन है।
(iii) राम-नाम की महिमा अपार है।
(iv) समभाव देखें—

मनिखा जनम दुर्लभ है देह न वारम्वार।
तर-वर से फल झड़ि पडया, वहुरि न लागै डार।

पात झड़ता यूँ कहै, सुनि तर-वर वन-राइ।
अब के बिछुड़े ना मिलै, दूरि पड़ेंगे जाइ। (कबीरदास)

राग धनाश्री

(३९८)

जपि जपि रे जीयरा गोब्यंदो, हित चित परमांनदौ रे।
विरही जन कौ बाल हौ, सब सुख आंनदकदौ रे ॥टेक॥
धन धन झीखत धन गयौ, सो धन मिल्यौं न आये रे।
ज्यूँ बन फूली मालती, जन्म अबिरथा जाये रे ॥
प्रांणी प्रीति न कीजिये, इहि झूठै संसारो रे।
धूंवां केरा धौलहर, जात न लागै बारो रे ॥
माटी केरा पूतला काहे गरब कराये रे।
दिवस चारि कौ पेखनौं, फिरि माटी मिलि जाये रे ॥
कांमीं रांम न भावई, भावै बिषै बिकारो रे।
लोह नाव पाहन भरी, बूड़त नांहीं बारो रे ॥
नां मन मूवा न मरि सक्या, नां हरि भजि उतर्‌या पारो रे।
कबीरा कंचन गहि रह्यौ, कांच गहै संसारो रे ॥

शब्दार्थ – बालहौ=वल्लभ, प्रिय। धौलहर=महल। जात=नष्ट होते हुए। देखनौ=देखना भर।

सन्दर्भ—कबीरदास जीवन की निस्सारता का वर्णन करते है।

भावार्थ—रे जीव, तुम सदैव गोविन्द का भजन करते रहो। उन परमानंद स्वरूप प्रभु मे ही अपनी प्रीति और चित्त लगाओ। भगवान विरही भक्तजनो को प्रिय तथा सब प्रकार का सुख एव आनन्द देने वाले हैं। सासारिक सुख-सम्पत्ति के लिए परेशान होते हुए यह जीवन-रूपी धन नष्ट हो गया और वह भी तुम्हे प्राप्त न हो सका। जिस प्रकार निर्जन वन मे फूलने वाली मालती का जन्म व्यर्थ जाता है—वह अपनी सुगन्ध द्वारा किसी को भी उल्लसित नही कर पाती है, उसी प्रकार सेवा रहित प्राणी का जन्म व्यर्थ ही चला जाता है। इन सासारिक प्राणियो के मोह मे मत फँसो। यह समस्त ससारी मिथ्या हैं। ये धुएँ के महल के समान है। इनको नष्ट होते देर नही लगती है। यह शरीर मिट्टी का खिलौना है। यह सहज ही नष्ट हो जाता है। इस पर क्या गर्व करना ? यह शरीर तो चार दिन तक देखने भर की शोभा मात्र है। यह तो फिर मिट्टी मे ही मिल जाएगा। विषयासक्त व्यक्ति को राम भक्ति अच्छी नहीं लगती है, उसको तो विषय रूपी विकार ही अच्छे लगते हैं। विपयी मानव का जन्म पत्थरो से भरी हुए लोहे की नाव के समान है, जिसको डूबते हुए देर नही लगती हैं। वासनात्मक मन न कभी मरा और न कभी मर सकेगा। विपयी व्यक्ति हरि का भजन करके कभी पार भी नही उतर सके हैं। कबीरदास कहते हैं कि मैंने तो हरि भक्ति रूपी सुवर्ण का आश्रय ले लिया है। इन

विषयी-प्राणियो ने विषयासक्ति रूपी काच के टुकडे को पकड रखा है। (ये कितने मूर्ख हैं।)

अलंकार—(i) पुनरुक्तिप्रकाश—जपि जपि। घन घन।
(ii) अनुप्रास—जपि जपि जीयरा। मन मूवा मरि।
(iii) पदमैत्री—हित चित।
(iv) यमक—घन घन।
(vi) उपमा—ज्यू बन फूली मालती।
(vii) दृष्टान्त—धुंवा केरा ˙ वारो रे।
(viii) गूढोक्ति—काहे गरब कराये रे।
(ix) रूपक—विषय-विकार।
(x) विशेषोक्ति—ना हरि भजि उतर्‌या पारो रे।
(xi) रूपकातिशयोक्ति—कचन, काच।

विशेष—(i) ससार की निस्सारता एव क्षण भगुरता का काव्यात्मक वर्णन है।

(ii) निर्वेद सचारी की व्यजना है।

(iii) ज्यू बन˙˙ जाये रे—समभाव की अभिव्यक्ति देखें—

सो अनन्य गति जाकें मति न टरइ हनुमत।
मै सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवत।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(iv) धू वा केरा धौलहर˙˙˙ वारो रे।—तुलना कीजिए—

जग-नभ-बाटिका रही है फलि फूलि रे।
धुवां कैसे धौरहर देखि तू न भूलि रे।

(विनय पत्रिका, तुलसी)

(३९९)

न कछु रे न कछू रांम बिनां।
सरीर धरें की रहै परंमगति, साध संगति रहनां ॥टेक॥
मंदिर रचत मास दस लागे, बिनसत एक छिनां।
झूठे सुख के कारनि प्रांनीं, परपच करत घनां ॥
तात मात सुत लोग कुटंब मै, फूल्यो फिरत मनां।
कहै कबीर रांम भजि बौरे, छांडि सकल भ्रमनां ॥

शब्दार्थ—घना=बहुत। प्रपच=फैलाव।

सन्दर्भ—कबीर ससार की असारता का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—भगवान की भक्ति के बिना कुछ भी नही है, कुछ भी नही है (जीवन निस्सार है) शरीर धारण करने की सार्थकता साधुओ की सगति मे रहना है। इस शरीर रूपी मन्दिर को बनने मे दस महीने लगते हैं, परन्तु यह एक क्षण

मे ही नष्ट हो जाता है। यह जीव ससार के मिथ्या सुखो की प्राप्ति के लिए अनेक प्रकार का फैलाव (प्रपंच) रचता है। यह जीव पिता, माता, पुत्र तथा कुटुम्ब के लोगो मे मन से (व्यर्थ ही) फूला हुआ फिरता है। कबीरदास कहते हैं कि हे पागल जीव, तुम सम्पूर्ण भ्रमो को छोडकर भगवान का भजन करो।

अलंकार—(i) पुनरुक्ति प्रकाश—न कछुरे न कछु रे।
(ii) अनुप्रास – सरीर साधु सगति।
(iii) रूपकातिशयोक्ति – मदिर।

विशेष—(i) ससार की निस्सारता का वर्णन है।

(ii) सत्सग की महिमा का प्रतिपादन है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी कहा है कि—

बिनु सत्संग बिवेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ कि सोई।

(४००)

कहा नर गरबसि थोरी बात।
मन दस नाज, टका दस गठिया, टेढ़ौ टेढ़ौ जात ।। टेक ।।
कहा लै आयो यहु धन कोऊ, कहा कोऊ लै जात ।
दिवस चारि की है पतिसाही ज्यूं बनि हरियल पात ।।
राजा भयौ गांव सौ पाये, टका लाख दस ब्रात ।।
रावन होत लंक कौ छत्रपति, पल मैं गई बिहात ।
माता पिता लोक सुत बनिता, अंति न चले संगात ।
कहै कबीर रांम भजि बौरे, जनम अकारथ जात ।।

शब्दार्थ—गरबसि-गर्व करते हो। गठिया=गाँठ। हरियल=हरे। ब्रात= बरात, समूह। बनिता=स्त्री। बिहात=नष्ट हो गई।

सन्दर्भ—कबीर ससार की असारता का प्रतिपादन करते हैं।

भावार्थ—रे मानव, थोडे से ऐश्वर्य को प्राप्त करके क्यो घमण्ड करता है? तुम्हारे पास दस मन नाज है और तुम्हारी गाँठ मे पाँच आने पैसे (अत्यल्प सम्पत्ति) है। बस, इसी को पाकर तुम टेढ़े-टेढ़े चलने (इतराने) लगे हो। इस सासारिक वैभव को क्या कोई साथ लेकर आता है, और क्या कोई इसे अपने साथ ले जाता है? यह सब बादशाही वन के हरे पत्ते की तरह चार दिन (अत्यल्प समय) की है। जैसे वन के पत्ते चार दिन बाद सूख जाते हैं, उसी प्रकार ससार का समस्त धन वैभव शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। तुम राजा बन गये, तुम्हे सौ गाँव प्राप्त हो गये, दस लाख रुपये मिल गये तथा दस लोगो का समूह भी तुम्हारे साथ हो गया। पर इस सबसे क्या होता है? रावण तो सोने की लका का राजा था। परन्तु एक क्षण भर मे उसका समस्त वैभव नष्ट (ऐश्वर्य) नष्ट हो गया। माता, पिता, परिजन, पुत्र, स्त्री—इसमे से कोई भी अन्तत. साथ नही जाता है। कबीर कहते हैं कि "हे सासारिक सुख-वैभव के पीछे पागल बने हुए मनुष्य इस प्रकार तुम्हारा

जन्म व्यर्थ ही व्यतीत हुआ जा रहा है। तू राम का भजन कर (जिससे तेरा कल्याण हो।)

अलकार—(1) गूढोक्ति—कहा··· बात।
(11) वक्रोक्ति—कहा लै आयो · · ात।
(111) उपमा—ज्यूँ बनि हरियल पात।
(1v) दृष्टान्त—रावण बिहात।

विशेष—(1) ससार और उसके सम्बन्धो की असारता का प्रतिपादन है।
(11) जीवन की क्षण भगुरता की व्यजना है।
(111) 'निर्वेद' एव वैराग्य की अभिव्यक्ति है।

(४०१)

नर पछिताहुगे अधा।
चेति देखि नर जमपुरी जैहै, क्यू बिसरौ गोब्यंदा ।। टेक ।।
गरम कुंडिनल जब तू बसता, उरध ध्यान ल्यौ लाया।
उरध ध्यांन मृत मंडलि आया, नरहरि नांव भुलाया ।।
बाल बिनोद छहूं रस भीनां, छिन छिन मोह बियापै।
बिष अंमृत पहिचांनन लागौ पांच भांति रस चाखै ।।
तरन तेज पर त्रिय मुख जोवै, सर अपसर नही जांनै।
अति उदमादि महामद मातौ, पाप पुनि न पिछांनै ।।
प्यंडर केस कुसुम भये धौला, सेत पलटि गई बांनीं।
गया क्रोध मन भया जु पावस, कांम पियास मदांनीं ।।
तूटी गांठि दया धरम उपज्या, काया कवल कुमिलांनां।
मरती बेर बिसूरन लागौ, फिरि पीछे पछितांनां ।।
कहै कबीर सुनहुँ रे संतौ, धन माया कछू संगि न गया।
आई तलब गोपाल राइ की, धरती सैन भया ।।

शब्दार्थ—उरध ध्यान=ऊपर को ध्यान, भगवान मे ध्यान। मृतमडलि=मृत्यु-लोक। तरण=तारुण्य, जवानी। सर अदसर=अवसर कुअवसर। प्यडर=पाडुर=भूरा। पावस=आदि, दया धर्म की बात करने लगा। गाँठ=अहकार की गाँठ। बिसूरन=वेदना से दु खी। मदानी=मद पड गई।

सन्दर्भ—पूर्व पद के समान।

भावार्थ—अरे अधे मनुष्य, अपने इन कर्मों के फल स्वरूप तुझको अन्त मे पछताना पडेगा। तू सचेत होकर देख। तुझको यमपुरी जाना है। तुम गोविन्द को क्यो भूल गये हो ? जब तुम गर्भ कुण्ड मे थे तब तुमने (उसके कष्टो से त्राण पाने के लिए) भगवान मे ध्यान लगाया। फल स्वरूप तुम उससे निकलकर इस मृत्यु लोक मे आ गए। यहाँ आकर तुमने हे मानव फिर हरि का नाम (अथवा नृसिंह भगवान को) भुला दिया है। बाल्यावस्था मे क्रीडाएँ करते हुए तुमने छओ रसो के

भोजन का स्वाद लिया। धीरे धीरे करके तुम मोह मे फँसते गये। जब तुम बडे हुए तो तुमको कटु और मधुर की पहचान होने लगी। इस समय तुम पाँचो इन्द्रियो के विषय रस का भोग करने लगे। जवानी की तेजी प्राप्त होने पर तुम स्त्री के मुख की ओर टकटकी लगाए रहे और उसका भोग करते समय तुमने अवसर कुअवसर का ध्यान नही रखा। उस समय तुम अत्यन्त उच्छृंखल (विवेक शून्य) होकर आपे के बाहर हो गये तथा तुम्हे पाप-पुण्य का विवेक नही रहा। केश भूरे होकर पुष्पो की भाँति एक दम सफेद हो गये। और वाणी मे भी फर्क आ गया। वात पीछे आने वाला क्रोध समाप्त होगया और हृदय दया रूपी पावस ऋतु से गीला रहने लगा (दैन्य आगया) काम की प्यास भी मंद पड़ गई। अहंकार की गाँठें समाप्त हो गई और स्वय के प्रति दया एव करुणा के भाव जाग्रत होने लगे। (इस वृद्धावस्था मे) कायारूपी कमल मुरझा जाता है। मरते समय पश्चाताप की वेदना से दु खी होता है, अपने अतीत पर पछताने लगता है। परन्तु इस समय पछताने से क्या होता है? कबीरदास कहते हैं कि हे सतो। सुनो, धन, सम्पत्ति (आसक्ति के विषय) कुछ भी तुम्हारे साथ नही जा सकेगा। जब राजा गोपाल का आदेश आता है, तब प्राणी को उसी समय धरती पर सो जाना पड़ता है।

अलंकार—(i) पुनरुक्ति प्रकाश ·· छिन छिन।
(ii) अनुप्रास—तरण तेज विष, पाप पु नि पिछानै।
(iii) भग पद यमक—सर अवसर।
(iv) उपमा—कुसुम भये धौला।
(v) रूपक—काया कवल।

विशेष—(i) पावस—लाक्षणिक प्रयोग है।
(ii) ससार की असारता, निस्सारता एव नश्वरता का प्रतिपादन है।
(iii) 'निर्वेद' की व्यंजना है।
(iv) छ रस मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय और तिक्त।

(४०२)

लोका मति के भोरा रे।
जौ कासी तन तजै कबीरा, तौ रांमहि कहा निहोरा रे॥ टेक॥
तब हम वैसे अब हम ऐसे, इहै जनम का लाहा।
ज्यूं जल मैं जल पैसि न निकसै, यूं ढुरि मिल्या जुलाहा॥
रांम भगति परि जाकौ हित चित, ताकौं अचिरज काहा।
गुर प्रसाद साध की संगति, जग जीतें जाइ जुलाहा॥
कहै कबीर सुनहु रे सतो, भ्रंमि परे जिनि कोई।
जस कासी तस मगहर ऊसर, हिरदै रांम सति होई॥

शब्दार्थ—लोका=ससार के लोग। निहोरा=अनुरोध, प्रार्थना।
सन्दर्भ—कबीरदास अंध विश्वासो का खण्डन करते हुए कहते हैं।

भावार्थ—लोगो की बुद्धि भोली है—वे सहज ही हरेक बात पर विश्वास कर लेते हैं। कबीर कहते हैं कि यदि काशी मे शरीर छोडने पर मोक्ष की प्राप्ति हो जाए, तो फिर मोक्ष के लिए राम से कोई प्रार्थना क्यो करे। पहले हम भी अधविश्वासों मे फँसे हुए थे, परन्तु अब उनसे मुक्त होकर इस प्रकार की विवेक पूर्ण बातें करने लगे हैं। अन्ध विश्वास से मुक्त होकर सच्ची ईश्वर-भक्ति के प्रति उन्मुख हो जाना ही इस मानव-जीवन की सार्थकता है। जैसे जब एक बार जल मे प्रविष्ट हो जाने पर फिर बाहर अलग नही निकाला जा सकता है—वह उसके साथ एक रस हो जाता है, उसी प्रकार यह जुलाहा कबीर भक्ति से द्रवित होकर ब्रह्म के साथ एकाकार हो गया। राम भक्ति मे जिसका प्रेम है और राम-चरणो मे जिसका चित्त लगा हुआ है, उसके लिए इस प्रकार की अद्वैतावस्था की प्राप्ति कोई आश्चर्य की बात नही है। गुरु की कृपा और साधु सगति के प्रभाव से निम्न जाति जुलाहा मे उत्पन्न यह कबीर जीवन-मुक्त हो रहा है। कबीर कहते है कि हे सतो, सुनो। कोई भी किसी प्रकार के भ्रम मे न रहे। अगर भगवान के प्रति सत्य निष्ठा है, तो अवश्य मोक्ष की प्राप्ति होगी। फिर चाहे काशी मे शरीरात हो, चाहे मगहर मे।

अलंकार—(i) पर्यायोक्ति—जौ कासी····निहोरा।
(ii) उदाहरण—ज्यूँ जुलाहा।
(iii) वक्रोक्ति—ताकौ अचिरज काहा ?
(iv) अनुप्रास—जग जीतैं जाइ जुलाहा।
(vi) व्यतिरेक की व्यजना—जग जीतैं जाइ जुलाहा।

विशेष—(i) अध विश्वास का खण्डन है।
(ii) कबीर के 'मगहर' वास वाली बात की पुष्टि होती है।
(iii) 'जुलाहा' शब्द मे सवर्ण जाति पर कटाक्ष है। नीच जाति मे जन्म लेकर भी कबीर ने मोक्ष प्राप्त करली और बडे-बडे धर्म ध्वज रह गये। ठीक कही है—

जाति पाँति पूछै ना कोई। हरि को भजै सो हरि कौ होई।

तथा—

भगतिवंत अति नीचउ प्रानी। मोह प्रानप्रिय असि मम बानी।

(४०३)

ऐसी आरती त्रिभुवन तारै,
तेज पुंज तहाँ प्रांन उतारै।। टेक।।
पाती पंच पहुप करि पूजा, देव निरजन और न दूजा।
तनमन सीस समरपन कीन्हां, प्रगट जोति तहा आतम लीनां।।
दीपक ग्यांन सबद धुनि घटा, पर पुरिख तहा देव अनता।
परम प्रकास सकल उजियारा, कहै कबीर मैं दास तुम्हारा।।

शब्दार्थ—पाती पच=पंच ज्ञानेन्द्रियाँ रूपी पत्ती । पहुप=मनरूपी फूल । सवद=अनहदनाद ।

सन्दर्भ—इस पद मे कबीरदास एक ऐसी आरती का वर्णन करते हैं जिसके प्रकाश मे परमात्मा के दर्शन हो जाते हैं ।

भावार्थ—कबीरदास कहते हैं कि साधक को अपने इस देव की आरती इस प्रकार मेरे द्वारा निर्दिष्ट ढग से उतारनी चाहिए जो तीनो लोको को तारने वाली है । इस आरती को प्राण वहाँ उतारता है जहाँ तेज-पुंज हरि का निवास है । पाँचो ज्ञानेन्द्रियो को पाँच वत्तियो के रूप मे लेकर एक मात्र निरजन देव की पूजा करनी चाहिए । इसके बाद नैवेद्य के स्थान पर अपना तन, मन और शरीर समर्पित कर दे और फिर सहस्रार मे प्रकट होने वाली ज्योति मे अपनी आत्मा को पूरी तरह लीन कर देना चाहिए । इसके बाद ज्ञान का दीपक लेकर अनहदनाद रूपी घटे का शब्द करते हुए उस अनन्त परमपुरुष का पूजन करना चाहिए । वास्तव मे उसी परमपुरुष के प्रकाश से यह समस्त ससार प्रकाशित हो रहा है । कबीरदास कहते है कि उस ज्योति के सम्मुख साधक को कहना चाहिए कि हे प्रभु ! मैं आपका सेवक हूँ । (कबीरदास जी अपने आपको इसी परम ज्योति स्वरूप पुरुष का दास कहते है ।)

अनहदनाद—देखें टिप्पणी पद स० १६४ ।

अलंकार—(i) अनुप्रास—पाती पत्र पहुप पूजा ।

(ii) रूपक पाती पच पहुप । दीपक ज्ञान, सवद धुनि घटा ।

(iii) पदमैत्री—तन मन समरपन ।

(iv) सागरूपक—सम्पूर्ण पद मे । आरती के वाह्य उपकरणों के आध्यात्मिक अर्थो की कल्पना से सम्पूर्ण आरती ही आध्यात्मिक साधना एव भक्ति मे परिणत हो गई है ।

विशेष—प्राय॰ समस्त सम्प्रदायो मे पूजा के अन्त मे भगवान की आरती उतारी जाती है । कबीरदास ने भी पदावली के अन्त मे अपने इष्ट देव की आरती उतारी है । यह वात दूसरी है कि इस आरती का स्वरूप लौकिक की अपेक्षा आध्यात्मिक अधिक है । उनके मतानुसार प्रभु के प्रति सर्वस्व समर्पण ही वस्तुतः उनकी सच्ची आरती उतारना है ।

रमैंणी

दृष्टव्य—रमैनी को रामणी अथवा 'रामायण' का बिगडा रूप माना गया है। रमैनियो की रचना दोहा-चौपाइयो मे की गई है। कबीर की रमैनी के वर्ण्य विषय हैं—स्तुति-वर्णन, उपदेश-वर्णन अथवा लोकोपकार का निरूपण आदि।

राग सूहौ

तू सकल गहगरा, सफ सफा दिलदार दीदार ॥
तेरी कुदरति किनहू न जानीं, पीर मुरीद काजी मुसलमानीं ।
देवी देव सुर नर गण गध्रप, ब्रह्मा देव महेसुर ॥
तेरी कुदरति तिनहूं न जांनी ॥ टेक ॥

शब्दार्थ—गहगरा=गहगहा, प्रफुल्ल, आनन्द से युक्त। सफ सफा=स्वच्छ एव उज्ज्वल। दीदार=साक्षात्कार स्वरूप। कुदरति=माया अथवा सृष्टि। पीर=धर्मगुरु। मुरीद=चेला। काजी=मौलवी। मुसलमानी=मुसलमान सम्बन्धी।

सन्दर्भ—कबीर भगवान की महिमा का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—हे भगवान तुम तुम्हारा दर्शनपूर्ण आनन्द स्वरूप, स्वच्छ एव उज्ज्वल तथा प्रेमास्पद है। किसी से भी तुम्हारी लीला (सृष्टि के रहस्य) को नही जाना है। मुसलमानो मे सिद्ध या धर्मगुरु (पीर), चेले, न्यायकर्त्ता विचारक (काजी) कहे जाने वाले, तथा देवी देवता, सुर, नर, गधर्व, ब्रह्मा, महेश्वर आदि कोई तेरी लीला को नही समझ पाए हैं।

अलकार—सम्बोधितशयोक्ति—सम्पूर्ण छन्द।

[१] एकपदी रमैणी

(१)

काजी सो जो काया बिचारै, तेल दीप मैं बाती जारै ॥
तेल दीप मैं बाती रहै, जोति चीन्हि जे काजी कहै ॥
मुलनां बग देइ सुर जांनी, आप मुसला बैठा तांनी ॥
आपुन मैं जे करै निवाजा, सो मुलनां सरबत्तरि गाजा ॥
सेष सहज मैं महल उठावा, चद सूर विचि तारी लावा ॥
अर्ध उर्ध विचि आनि उतारा, सोई सेष तिहू लोक पियारा ॥

जगम जोग बिचारै जहू वां जीव सीव करि एकै ठऊवां ॥
चित चेतनि करि पूजा लावा, तेतौ जंगम नांउं कहावा ॥
जोगी भसम करै भौ भारी, सहज गहै बिचार बिचारी ॥
अनभै घट परचा सू बोलै, सो जोगी निहचल कदे न डोलै ॥
जैन जीव का करहु उबारा, कौंण जीव का करहु उधारा ॥
कहां बसै चौरासी का देव, लहौ मुकति जे जांनौ भेव ॥
भगता तिरण मतै संसारी, तिरण तत ते लेहु बिचारी ॥
प्रीति जांनि रांम जे कहै, दास नांउ सो भगता लहै ॥
पंडित चारि बेद गुंण गावा, आदि अंति करि पूत कहावा ॥
उतपति परलै कहौ बिचारी, संसा घालौ सबै निवारी ॥
अरधक उरधक्ष ये संन्यासी, ते सब लागि रहै अबिनासी ॥
अजरावर कौं डिढ करि गहै, सो संन्यासी उन्मन रहै ॥
जिहि घर चाल रची ब्रह्मंडा, पृथमीं मारि करी नव खडा ॥
अबिगत पुरिस की गति लखी न जाइ, दास कबीर अगह रहे ल्यो लाई ।

शब्दार्थ—काया=शरीर मे स्थित चैतन्य । काजी=विचारक । मुसल्ला=वह दरी जिस पर नमाज पढी जाती है । सरवत्तरि=सर्वत्र । सेष = शेख=मुसलमानो की एक श्रेष्ठ जाति । आनी उतरा=अपने आप को अवस्थित कर देता है । सीव=शिवत्व । अनभैं=अभय । आदि-अत = ब्रह्मा । अरधक-उरधक=नीच-ऊँच । अजरावर अजर-अमर । उन्मन=समाधि की अवस्था । अगह=अगम्य ।

सन्दर्भ—कबीरदास समस्त धर्मावलम्बियो को, विशेषकर मुसलमानो को, बाहरी पाखण्ड छोडकर परम तत्व मे प्रतिष्ठित होने का उपदेश देते है ।

भावार्थ—काजी (विचारक) वही है जो शरीर मे स्थित चैतन्य का चिन्तन करता है । वह ईश्वर के प्रेम रूपी तैल मे ज्ञान की बत्ती जलाता है । जो प्राण रहते हुए परम-ज्योति को पहचान लेता है, वही सच्चा काजी है । मुल्ला खुदा की आवाज के नाम पर बाग देता है और मुसल्ला फैलाकर नमाज पढने बैठ जाता है । परन्तु जो अपने शरीर के भीतर नमाज पढता है अर्थात् शरीर मे व्याप्त परम ज्योति की अराधना करता है वही मुल्ला सर्वत्र गरजता है अर्थात् हृदय मे भगवान की आवाज सुनकर निर्भय बना हुआ घूमता है । शेख वही है जो सहज अवस्था को प्राप्त करता है, चन्द्र और सूर्य (इडा, पिंगला) नाड़ियो को समन्वित करके सुषुम्ना मे समाहित करा देता है तथा प्राण वायु को रोक लेता है । वह अधोवर्ती और ऊर्ध्ववर्ती कमलो के बीच स्थित अनाहत (हृदय) चक्र मे स्थित भगवान् के समीप अपने आप को अवस्थित करता है । ऐसा ही शेख वास्तव मे तीनो लोको का प्रिय बनता है । जगम साधु वही है जो योग का चिन्तन करता है । उस स्थान पर ध्यान केन्द्रित करता है जहां पर जीव और ब्रह्म का भेद समाप्त हो जाता है । जो चित्त को परम चैतन्य में अवस्थित करके पूजा करते है, वे ही वास्तव मे जंगम नाम के

अधिकारी है। सच्चा योगी वही है जो समार के प्रति आमक्ति को भस्म कर लेता है तथा चिन्तनपूर्वक सहज तत्व को ग्रहण करता है। वह अपने अन्त करण मे ही अभय तत्व से परिचय प्राप्त करके वात करता है। उसी का मनन और निदिघ्यासन करता है। ऐसे योगी का निश्चय कभी डिगता नही है। हे जैनी, तुम अहिसा द्वारा जीव की रक्षा करने का दम्भ भरते हो, पर यह तो विचार करो कि तुम किस जीव का उद्धार कर रहे हो ? (जीव का स्वरूप पहिचान कर) यह जानने का प्रयत्न करो कि चौरासी लाख योनियो का स्वामी कहाँ रहता है ? इस रहस्य को समझने पर ही तुमको मुक्ति की प्राप्ति हो सकेगी। भक्त इस ससार से तिरने (पार होने) का सकल्प करता है, पर वह पहले यह तो समझ ले कि तात्विक रूप से तिरना है क्या ? प्रेम का स्वरूप समझ कर जो राम का स्मरण करता है, वही भक्त भगवान का दास कहला सकता है। पण्डित चारो वेदो का गुणगान करता है और विश्व के आदि और अन्त स्वरूप ब्रह्म का पुत्र कहलाता है। पर हे पडित उत्पत्ति (आदि) एव प्रलय (अत) के वास्तविक स्वरूप का चिन्तन करके उसका वर्णन करो। इस पर विचार करके सम्पूर्ण भ्रम और सशय को समाप्त करो। नीची और ऊँची सभी स्थितियों के सन्यासी वास्तव मे उस एक अविनाशी तत्व मे ही अनुरक्त रहते हैं। जो सन्यासी उस अजर अमर तत्व को दृढनापूर्वक (पूर्ण निष्ठा के साथ) ग्रहण कर लेता है, वह समाधि को प्राप्त करता है, और परमतत्व मे प्रतिष्ठित हो जाता है। जिसने पृथ्वी को गति प्रदान की, ब्रह्माण्ड की सृष्टि की और पृथ्वी को नवखण्डो मे विभाजित कर दिया, उस अविगत पुरुष की माया किसी के द्वारा भी नही जानी गई है। भक्त कवीर उस अगम्य तत्व मे अपनी लौ लगाए हुए हैं।

अलकार—(i) रूपक—तेल ··जारै।
(ii) भ्रान्तिमान—भुलना जानी।
(iii) पदमैत्री—अर्ध उर्ध। अरधक उरधक।
(iv) अनुप्रास—जगम जागे जहू वा, जीव। तिरण तत ते।
(v) वक्रोक्ति—कौन उधारा।
(vi) सम्बन्धातिशयोक्ति—अविगत· जाइ।

विशेष—धार्मिक कृत्यो तथा कायायोग की अपेक्षा ज्ञान एव भक्ति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन है।

[२] सतपदी रमैणी

(२)

कहन सुनन कौ जिहि जग कीन्हा, जग भुलांन सो किनहू न चीन्हा ॥
सत रज तम थै कीन्ही माया, आपण मांझै आप छिपाया ॥
ते तौ आहि अनंद सरूपा, गुन पल्लव बिस्तार अनूपा ॥
साखा तत थै कुसम गियांनां, फल सो आछा रांम का नांमां ॥

सदा अचेत चेत जीव पखी, हरि तरवर करि बास ।
झूठे जगि जिनि भूलसि जियरे, कहन सुनन की आस ।।

शब्दार्थ—कुसम=फूल ।

सदर्भ—कबीर जगत के मिथ्यात्व का प्रतिपादन करते हैं ।

भावार्थ—कहने-सुनने के लिए ही (केवल लौकिक दृष्टि से ही जिस जग की रचना हुई है, उसके वास्तविक स्वरूप को किसी ने नही जाना है और ससार के सम्पूर्ण जीव उसमे भ्रमित हैं । सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण के द्वारा इस माया-मोह की सृष्टि हुई है । इस चैतन्य तत्व ने अपने आपको अपनी ही माया के द्वारा आवृत्त कर लिया है । वह तत्व स्वय तो आनन्द स्वरूप है । ये तीनो गुण इस जगत् रूपी वृक्ष के पत्ते हैं । उसकी शाखाओ मे ग्यान के फूल लगे है और रामनाम उस का फल है । रे निरतर अज्ञान मे अचेत रहने वाले जीव रूपी पक्षी जागो और हरि रूपी इस वृक्ष की शरण मे चले जाओ । रे जीव, इस मिथ्या ससार के मोह मे अपने आपको मत भूलो । इस जगत की समस्त आशाएँ केवल कहने-सुनने भर के लिए है—उनका परमार्थत कोई अस्तित्व नही है ।

अलंकार—(i) सवधातिशयोक्ति—किनहूँ न चीन्हा ।
(ii) साग रूपक - गुन पल्लव ·· जामा ।
(iii) सभग पद यमक 'अचेत चेत ।
(iv) रूपक – जीव पखी, हरि तरवर ।

विशेष—(i) ज्ञान और भक्ति का समन्वित सदेश है ।

(ii) ससार को 'कहन सुनन' की आस कहकर उसके क्षणभगुर स्वरूप का कथन किया गया है ।

(iii) कहन-सुनन मे लक्षण का चमत्कार दृष्टव्य है ।

(iv) उन्मनि—देखें टिप्पणी पद स १४४ ।

(v) गुन पल्लव · नामा – तुलना करें –

अव्यक्त मूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने ।
षट कंध साखा पंच वीस अनेक पर्न सुमन घने ।
फल जुगल विधि कटु मधुर वेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे ।
पल्लव फूलत नवल नित संसार विटप नमामहे ।

(गोस्वामी तुलसीदास, रामचरितमानस)

(३)

सूक विरख यहु जगत उपाया, समझि न परै विषम तेरी माया ।।
साखा तीनि पत्र जुग चारी फल दोइ पाप पुंनि अधिकारी ।
स्वाद अनेक कथ्या नही जांहीं, किया सदित्र सो इन मै नाहीं ।।
तौतौ आहि निनार निरंजना, आदि अनादि न आंनां ।
कहन सुनन कौं कीन्ह जग आपै आप भुलानां ।।

शब्दार्थ—मूक=मूखा हुआ, निष्तत्व एव नीरस। निनार=भिन्न।

सन्दर्भ—पूर्व पद के समान। विषम=दुर्बोध।

भावार्थ- हे भगवान, आपने निष्तत्व एव नीरस जगतरूप वृक्ष को उत्पन्न किया है। हे प्रभु आपकी यह माया बडी ही दुर्बोध है, समझ मे नही आती है। त्रिगुणरूपी इसकी तीन शाखायें हैं चार युग ही इसके पत्ते हैं और पाप-पुण्य ही इसके दो फल हैं। इन फलो के विषय भोगरूप अनेक स्वाद हैं जिनका वर्णन नही किया जा सकता है। जिसने इन सबको बनाया है, वह इनमे लिप्त नही है—वह इनसे पृथक एव निरजन माया-रहित तत्व है। आदि और अनादि नाम से जिसे अभिहित किया जाता है, वह यही निरजन तत्व है, कोई दूसरा नही। उसने केवल कहने सुनने के लिए जगत की सृष्टि की है— अर्थात् जगत एव जगत की सृष्टि करना यह सब कोई पारमार्थिक सत्य नही है, केवल कथन मात्र है। सृष्टि कुछ हुई ही नही, वह तो विवर्त मात्र है। ब्रह्म स्वय अपनी माया मे ही भूले हुए हैं। हम सब स्वय अपने वाह्य रूप मे लिप्त होकर अपने वास्तविक आभ्यतर स्वरूप को भूले हुए हैं। यही जगत है।

अलंकार—(i) विरोधाभास—मूक · उपाया।

(ii) साग रूपक – सम्पूर्ण पद।

विशेष—(i) देखें टिप्पणियाँ पूर्व रमैणी।

(ii) इसमे अद्वैतवाद एव मायावाद के अनुसार जगत का निरूपण है।

(iii) यहाँ जगत की सृष्टि की ज्ञान परख एव भक्ति परख दोनो प्रकार की व्याख्यायें हैं। जीव दोनो की समन्वित दृष्टि से ससार को देखे-यही उपदेश है। भक्त के लिए जगत आनन्द रूप तथा ज्ञानी के लिए विवर्त रूप है।

(४)

जिनि नटवै नटसरी साजी, जो खेलै सो दीसै बाजी।
मो बपरा थै जोगति ढाठी, सिव बिरंचि नारद नहीं दीठी॥
आदि अंति जो लीन भये हैं, सहजै जांनि सतोखि रहे हैं।
सहजै रांम नांम ल्यौ लाई, रांम नांम कहि भगति दिढाई॥
रांम नांम जाका मन मांनां, तिन तौ निज सरूप पहिचांनां।
निज सरूप निरजनां, निराकार अपरपार अपार।
रांम नांम ल्यौ लाइस जियरे, जिनि भूलै बिस्तार॥

शब्दार्थ—नरसरी=नाट्यशाला सृष्टि। नटवै=नट, सृजक। दीसै=दृष्टिगत होता है। वाजी=किसी किसी को। दिढाई=दृढ़ करना। वयरा=वेचारा।

सन्दर्भ—कबीर जगत की अनिवर्चनीयता का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—जिस सर्जन कर्ता ने इस जगतरूपी नाट्यशाला की रचना की है और इसमे वह जो लीला करता है वह किसी किसी को ही दृष्टिगत होती है।

मैं वेचारा तो किनमे हूँ। मै तो इन्ही आँखो से इस जगत को देखता हूँ। शिव, ब्रह्मा तथा नारद सरीखे ज्ञान-दृष्टि वाले भी इसको नही जान पाए हैं। वे तो सम्पूर्ण भूतो के आदि एव अत रूप भगवान मे लीन रहते हैं तथा भगवान के सहज रूप का ज्ञान करके उसमे सतोष का अनुभव करते है। वे सहज ही राम नाम मे अपना ध्यान लगा लेते हैं और निरन्तर राम के नाम-स्मरण से अपनी भक्ति को दृढ करते रहते हैं। जिनका मन राम-नाम मे तन्मय हो जाता है, उन्हे आत्म-स्वरूप का साक्षात्कार हो जाता है। कबीर कहते हैं कि भगवान का स्वरूप तो निरजन माया रहित है। वह निराकार, अजेय और असीम है। अत. हे जीव, तुम राम-नाम मे अपनी लौ लगाओ और इस जगत के पसारे मे भ्रमित मत हो ओ।

अलंकार—(1) संबधातिशयोक्ति—सिव···· · दीठी।
(11) रूपकातिशयोक्ति —नटवै नटसारी।

विशेष—(1) जगत की अनिवर्चनीयता की ओर सकेत है।
(11) प्रेमा भक्ति के द्वारा ही प्रभु की लीला समझ मे आ सकती है।

(५)

करि बिसतार जग धंधै लाया, अंध काया थै पुरिष उपाया ।।
जिहि जैसी मनसा तिहि तैसा भावा, ताकूं तैसा कीन्ह उपावा ।
तेतौ माया मोह भुलांनां, खसम रांम सो किनहूं न जांनां ।।
जिनि जांन्यां ते निरमल अंगा, नहीं जांन्यां ते भये भुजगा ।
ता मुखि बिष आवै बिष जाई, ते बिष ही बिष मै रहा समाई ।।
माता जगत भूत सुधि नांही, भ्रंमि भूले नर आवै जाहीं ।
जानि बूझि चेते नही अंधा, करम जठर करम के फंधा ।।
करम का बाध्या जीयरा, अह निसि आवै जाइ ।
मनसा देही पाइ करि हरि बिसरै तौ फिर पीछै पछिताइ ।।

शब्दार्थ—धंधै लाया = कर्म जाल मे फसा दिया। भुजगा = सर्प = विष से पूर्ण अर्थात् विषयी। जठर = पेट।

सन्दर्भ—कबीर जगत के प्रपचो मे फँसे हुए जीव का वर्णन करते हैं।

भावार्थ— भगवान ने यह माया का विस्तार करके जगत के लोगो को अनेकानेक धन्धो (कर्म-जाल) मे फँसा दिया है। इस जड शरीर से जीव की उत्पत्ति की है। जिस जीव की जैसी वासना होती है, उसको वैसी ही वस्तुएँ रुचिकर होती हैं। उनके लिए भगवान ने वैसे ही साधन जुटा दिए हैं। उन्ही साधनो के अनुरूप वे जीव माया-मोह मे भ्रमित होते रहते हैं। कोई भी जीवात्मा अपने पति रूप राम को नही जान पाती है। जिन जीवात्माओ ने उन प्रभु को जान लिया अर्थात् जिन जीवों के मन मे भगवान का प्रेम उत्पन्न हो जाता है, उनका अन्त.करण पूर्णत· निर्मल हो जाता है। जो उसे नही जान पाता है, वे सदैव विषपूर्ण सर्प की तरह विषयी ही बने रहते हैं—उनके अगो से निरन्तर वासना

रूपी विष ही निस्सृत होता रहता है, और जो कुछ उनके मुख मे जाता है, वह भी विष ही बन जाता है। (उनकी समस्त आकाक्षाएँ वासना से विषैली होती हैं और उनके सम्पूर्ण भोग एव कार्य वासना के विष में परिणत होते हैं।) यह सारा जगत वासना के विष से ग्रस्त होकर उन्मत्त हो रहा है और इन प्राणियो को अपना होश नही है। मनुष्य भ्रम से अपने स्वरूप को भूला हुआ आवागमन के चक्र मे पडा हुआ है। यह अज्ञानग्रस्त प्राणी जान बूझ कर मोह निद्रा मे फँस गया है और चेतता नही है, और इसी से वह कर्म की जठराग्नि मे जलता है और कर्म के फदो मे फँसा हुआ है। कर्म के बन्धनो मे बधा हुआ यह जीव रात-दिन (निरन्तर) आवागमन के चक्कर मे घूमता है। वह अपनी अभीप्सित मानव योनि प्राप्त करके भी भगवान को भूल जाता है और अन्त मे पछताता है।

अलंकार—(i) रूपक—जग धधँ, करम जठर, करम के फदा।

(ii) विरोधाभास—अष··· · उपाया ।

(iii) सवधातिशयोक्ति—किनहूँ न जाना।

(iv) रूपकातिशयोक्ति—भुजगा ।

(v) श्लेष—विप।

(vi) अनुप्रास—भूत, भ्रमि, भूले।

विशेष—(i) माया-मोह ग्रस्त जीव का सजीव चित्रण है।

(ii) विषयी जीव के लिए भुजग शब्द का प्रयोग बडा ही अर्थ गर्भित है यह 'विषयी' का परम्परागत गृहीत प्रतीक है।

(iii) साँप को दूध पिलाने से विष मे वृद्धि होती है। विषयी की विषय-भोग के द्वारा विषयाग्नि मे वृद्धि होती है।

(६)

तौ करि त्राहि चेति जा अंधा, तार परकीरति भजि चरन गोब्यंदा ॥
उदर कूप तजौ ग्रभ बासा, रे जीव रांम नांम अभ्यासा ।
जगि जीवन जैसै लहरि तरगा, खिन सुख कूं भूलसि बहु संगा ॥
भगति कौ हीन जीवन कछू नांही, उतपति परलै बहुरि समाहीं ।
भगति हीन अस जीवनां, जन्म मरन बहु काल ।
आश्रम अनेक करसि रे जियरा, रांम बिना कोई न करै प्रतिपाल ॥

शब्दार्थ—त्राहि=दैन्यपूर्वक रक्षा की प्रार्थना। परकीरति=अन्य व्यक्तियो की खुशामद। कूप=कुआँ। अन्धा=धुन्धा, अस्पष्ट दृष्टि वाला।

सन्दर्भ—कबीरदासजी कहते हैं कि राम-भक्ति ही उद्धार का एकमात्र उपाय है।

भावार्थ—हे अस्पष्ट दृष्टि वाले जीव, चेतना और दीनतापूर्वक भगवान से रक्षा की प्रार्थना कर। अन्य व्यक्तियो की खुशामद तथा अन्य देवताओ की आराधना छोड़कर भगवान गोविंद के चरणो का ध्यान करो। उदररूपी कुएँ (गर्भ) मे तुमको

वार-वार आना पडता है। उससे मुक्ति प्राप्त करने के लिए हे जीव ! तू भगवन्नाम का अभ्यास कर। यह ससार का जीवन तो जल की तरङ्ग के समान क्षणिक है। इसके क्षणिक सुख के पीछे तुम अनेक साधु-सतो की सङ्गति मे उपलब्ध ज्ञान-चर्चा की उपेक्षा क्यो करते हो ? भक्ति से रहित जीव का जीवन वास्तव मे कुछ नही है। वह तो उत्पन्न होता है और फिर नष्ट हो जाता है। (वह अनेक बार जन्म लेता है और मरता है—बस इसी क्रम मे फँसा रहता है।) हे जीव, तुम भले ही अनेक आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास) का पालन करो, परन्तु भगवान राम की भक्ति के बिना तुम्हारी कोई रक्षा नही करेगा।

अलंकार—(i) रूपक—उदर-कूप।
(ii) उपमा—जैसें लहरि तरङ्गा।
(iii) विशेषोक्ति की व्यजना—आश्रम 'कोई न करै प्रतिपाल।

विशेष—(i) निर्वेद सचारी की व्यजना है।
(ii) ज्ञान-भक्ति के प्रकाश को न देख सकने वाले प्राणी को 'चु धा' कहकर कबीर ने अज्ञानी के स्वरूप को मूर्त्तिमत्ता प्रदान कर दी है।

(७)

सोई उपाव करि यहु दुख जाई, ए सब परहरि बिसै सगाई ॥
माया मोह जरै जग आगी, ता सगि जरसि कवन रस लागी ।
त्राहि त्राहि करि हरी पुकारा, साध सगति मिलि करहु बिचारा ॥
रे रे जीवन नहीं बिश्रांमां, सब दुख खंडन रांम को नांमां ।
रांम नांम ससार मैं सारा, रांम नांम भौ तारन हारा ॥
सुम्रित वेद सबै सुनै, नहीं आवै कृत काज ।
नहीं जैसै कु डिल बनित मुख मुख सोभित बिन राज ॥

शब्दार्थ—सगाई=सम्बन्ध। भौ=ससार। सुम्रित=स्मृति, धर्मशास्त्र।

सन्दर्भ—पूर्व रमैंणी के समान।

भावार्थ—रे जीव, तुमको वही उपाय करना चाहिए जिससे यह ससार का (आवागमन का) दु ख दूर हो। इन समस्त विषयो (भोगेच्छाओ) तथा सासारिक सम्बन्धों को त्याग दो। यह सारा ससार माया-मोह की आग मे जल रहा है। तुम किस आनद के लोभ मे फँसकर इस विषयाग्नि के साथ जलना चाहते हो ? हे जीव, दीनतापूर्वक भगवान से रक्षा की पुकार करो तथा साधुओ की सङ्गति मे बैठकर उस परम तत्व का चितन करो। हे जीव, तुम्हे कही अन्यत्र सुख-शाति नही मिलेगी। भगवान राम का नाम ही समस्त दु खो को मेटने वाला है। राम नाम ही ससार मे सार वस्तु है और यही भवसागर से पार करने का साधन है। धर्मशास्त्र, वेद आदि सब सुन लो, परन्तु इनमे कोई भी पुण्य-कार्य नही होता है अर्थात् ये सब (राम-भक्ति के अभाव मे) व्यर्थ ही रहते हैं, जैसे कुण्डल आदि आभूषणों से युक्त नारी का मुख सौभाग्य-चिन्ह के अभाव मे सुशोभित नही होता है।

अलकार—(i) मानवीकरण—साधनाओ का ।
(ii) उदाहरण—नही जैसें बिन राज ।
(iii) गूढोक्ति— जरसि कवन आगी ?
(iv) रूपक की व्यजना – भौ ।
(v) सबधातिशयोक्ति—सुम्रित काज ।

विशेष (i) वाह्याचार की व्यर्थता एव भगवद्भक्ति की महत्ता का प्रतिपादन है ।

(ii) रामभक्ति को सौभाग्यसूचक चिन्ह कहना वडा ही सार्थक प्रयोग है ।

(iii) कबीर के राम दाशरथि राम न होकर निर्गुण निराकार राम हैं। कबीर राम के साकार रूप की आराधना का प्रतिपादन न करके उनके गुणो के अनुसरण का उपदेश देते हैं ।

(८)

अब गहि रांम नांम अबिनासी, हरि तजि जिनि कतहूं कै जासी ।
जहां जाइ तहां तहां पतगा, अब जिनि जरसि समझि बिष सगा ।।
चोखा रांम नांम मनि लीन्हां भिंग्री कीट भ्यन नहीं कीन्हां ।
भौसागर अति वार न पारा, ता तिरबे का करहु बिचारा ।।
मनि भावै अति लहरि बिकारा, नहीं गमि सूझै बार न पारा ।
भौसागर अथाह जल, तामे बोहित रांम अधार ।
कहै कबीर हम हरि सरन, नब गोपद खुर बिस्तार ।।

शब्दार्थ—कै=किधर, कहाँ। वोहित=जहाज, नौका । गोपद=गाय का पैर ।

सन्दर्भ—पूर्व रमैणी के अनुसार ।

भावार्थ—हे जीव। अव तुम अविनाशी (सत्य स्वरूप) भगवान के नाम स्मरण की शरण ग्रहण करो । हरि का आश्रय मत छोडो । उसे छोडकर तुम अन्यत्र जाओगे भी कहाँ ? जहाँ भी तुम जाओगे, वहाँ-वहाँ तुमको वासना रूपी अग्नि मे पतगा बन कर जलना पडेगा । अव विषयासक्ति के वास्तविक रूप को समझ लो और विषय की अग्नि मे अपने जीवन को नष्ट मत करो । जो प्राणी राम-नाम रूपी श्रेष्ठ मणि का आश्रय ग्रहण कर लेते हैं उनको भगवान भृग कीट न्याय से अपने आपसे भिन्न नही करते हैं । इस भवसागर की कोई सीमा नही है । इसके पार होने के उपाय पर विचार करना चाहिए। जिनके मन विषय-विकार रूपी लहर के प्रति आकर्षित होते हैं, उन्हे भवसागर की न सीमा दिखाई देती है और न उसके पार जाने का कोई उपाय ही सूझता है । इस ससार रूपी सागर मे विषयो का अथाह जल है तथा इसको पार करने का एक मात्र साधन राम-भक्ति रूपी नाव है । कबीर दास कहते हैं कि हमने तो भगवान की शरण ले ली है । इससे हमे तो यह भव का विस्तार केवल गाय के खुर के समान ही प्रतीत होने लगा है ।

अलंकार—(I) वक्रोक्ति—कतहूँ कै जासी ।
(II) रूपक—राम नाम मनि । भौसागर । लहरि विकारा ।
(III) साग रूपक—भौसागर विस्तार ।

विशेष—भृंगी कीट न्याय—भृग से चिपक जाने पर कीडा भृंग रूप हो जाता है (आत्मसात कर लिया जाता है) यह वेदान्तियो का प्रभाव है ।

[३] बड़ी अष्टपदी रमैंणी

(६)

एक बिनांनीं रच्या बिनांन, सब अयांन जो आपै जांन ॥
सत रज तम थै कीन्हीं माया, चारि खानि बिस्तार उपाया ॥
पंच तत ले कीन्ह बंधान, पाप पुनि मांन अभिमानं ॥
अहकार कीन्हे माया मोहू, संपति बिपति दीन्हीं सब काहू ॥
भले रे पोच अकुल कुलवंता, गुणी निरगुणीं धन नीधनवंता ॥
भूख पियास अनहित हित कीन्हां, हेत मोर तोर करि लीन्हां ॥
पच स्वाद ले कीन्हां बंधू, बंधे करम जो आहि अबधू ॥
अवर जीव जत जे आहीं, सकुट सोच बियापै ताहीं ॥
निंद्या अस्तुति मांन अभिमांना, इनि झूठै जीव हत्या गियांना ॥
बहु विधि करि ससार भुलावा, झूठै दोजगि साच लुकावा ॥
माया मोह धन जोबनां, इनि बंधे सब लोइ ।
झूठ बियापिया कबीर, अलख न लखई कोइ ॥

शब्दार्थ—विनानी=विज्ञानी, वैज्ञानिक । विनान=विज्ञानमय । खानि=और अथवा चार प्रकार की सृष्टि ।

सन्दर्भ—कवीर अज्ञानमय ससार का वर्णन करते है ।

भावार्थ—एक विज्ञानघन भगवान ने इस विज्ञानमय जगत की रचना की है। जो जीव केवल अपने आपको जानता है, वह अज्ञानी है। भगवान ने सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण से इस सृष्टि की रचना की है और इसको चार प्रकार की योनियों मे विभाजित करके चारो ओर फैला दिया गया है। इसको पाच तत्वो मे बाध दिया है। अर्थात् प्रत्येक पदार्थ की रचना केवल पच महाभूतो के आधार पर कर दी गई है। पाप-पुण्य, मान-अभिमान, अहकार, माया-मोह आदि सभी इन पाचो तत्वों तथा उनकी प्रकृति से उत्पन्न हुए हैं। भगवान ने सबको कर्मानुसार सम्पत्ति और विपत्ति प्रदान कर दी है। भले-बुरे, कुलीन-अकुलीन, गुणी-अगुणी, धनी-निर्धन, भूख,-प्यास, हित-अहित, स्नेह के आधार पर मेरा-तेरा आदि के युग्मो की सृष्टि भगवान ने की। पंच इन्द्रियो के स्वादों को बधन का हेतु बनाया और उस बन्धन मे शाश्वत बन्धन रहित जीव स्वय ही बध गया। जितने भी निम्न कोटि के जीव हैं उन सबको सकट और चिन्ता व्याप्त कर लेते हैं। निन्दा-स्तुति, मान, अहकार ये सब यद्यपि झूठे हैं, तथापि इन्होंने जीव मे ज्ञान-स्वरूप को नष्ट कर दिया है।

यह जीव माया जनित अनेकानेक सासारिक प्रपचो मे अपने को भूल गया है। ये सासारिक बन्धन झूठे हैं, पर इन्होने सत्य स्वरूथ को आवृत्त कर लिया है। माया-मोह और धन-यौवन ने सब लोगो को बाँध रखा है। जीव को झूठ ही झूठ ने व्याप्त कर रखा है। कबीर कहते हैं कि इस कारण वह अलस्य सत्य स्वरूप भगवान के दर्शन नही कर पाता है।

अलंकार— (i) विरोधाभास—सब''' जान। बघे करम अबघू।

(ii) रूपक—माया मोह ' लोह।

विशेष—(i) चार प्रकार की सृष्टि—अण्डज, स्वेदज, उद्भिज और जरायुज।

(ii) पच तत्व—पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश।

"हस-देह' के धैर्य शील, विचार, दया और सत्य से क्रमश. आकाशादि पाच तत्त्व उत्पन्न हुए। ये बन्धन के हेतु बन गये। जीव मे इनसे अहकार जाग गया। कबीर पंथ मे ब्रह्म सच्चिदानद तक को बन्धन मे माना गया है। इसी सिद्धात का ऊपर सकेत है।

(iii) विज्ञानमय जगत—कारण-कार्य को नियम द्वारा संचालित होने के कारण यह जगत विज्ञानमय है। तटस्थ रूप से नियम लागू करने के कारण ही परमात्मा विज्ञानी है। तभी तो कहा है—

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागरा ।

तस्य कर्त्तारमपि मां विद्धयकर्त्ता रमव्ययम् । (श्रीमद्भगवद्गीता)

(iv) सब अयान जो आपै जान—इस संसार मे तीन भ्रम सबको व्याप्त कर रहे हैं—देश, काल एव पृथकत्व। समस्त जीवन एक है अर्थात् सबको एक ही चेतन तत्व व्याप्त किए हुए हैं। परन्तु हम अपने को पृथक समझते हैं तथा जगत् को मैं और मैं—नही (तू) की दो भिन्न परिधियो मे रख कर देखते हैं। यह अज्ञान अथवा भ्रम है जो केवल अपने को ही जानता है तथा सम्पूर्ण विश्व एव उसके रचयिता को नही जानता, वह अज्ञानी है। अपने आपको शेप सृष्टि से पृथक् करके देखने वाला निश्चय ही अज्ञानी है।

(१०)

झूठनि झूठ साच करि जांनां, झूठनि मैं सब साच लुकानां ॥
धंध बध कीन्ह बहुतेरा, क्रम विबर्जित रहै न मेरा ॥
षट दरसन आश्रम षट कीन्हां, षट रस खाटि काम रस लीन्हां ॥
चारि बेद छह सास्त्र बखाने, बिद्या अनंत कथै को जांनै ॥
तप तीरथ कीन्हें व्रत पूजा, धरम नेम दान पुंन्य दूजा ॥
और अगम कीन्हे ब्यौहारा, नहीं गमि सूझै वार न पारा ॥
लीला करि करि भेख फिरावा, ओट बहुत कछू कहत न आवा ॥
गहन ब्यंद कछू नहीं सूझै, आपन गोप भयौ आगम बूझै ॥

भूलि पर्यो जीव अधिक डराई, रजनी अंध कूप ह्वै आई ॥
माया मोह उनवै भरपूरी, दादुर दामिनि पवनां पूरी ॥
तरिपै बरिषै अखंड धारा, रेनि भांमनीं भया अँधियारा ॥
तिहि बियोग तजि भए अनाथा परे निकुंज न पावै पंथा ॥
वेद न आहि कहू को मान, जानि बूझि मैं भया अयान ॥
नट बहु रूप खेलै सब जांनै, कला केर गुन ठाकुर मांनै ॥
ओ खेल सब ही घट मांहीं, दूसर कै लेखै कछु नाहीं ॥
जाके गुन सोई पै जांनै ओर को जानै पार अयानै ॥
भले रे पांच औसर जब आवा, करि सनमांन पूरि जम पावा ॥
दान पुन्य हम दिहूँ निरासा, कब लग रहूं नटारंभ काछा ॥
फिरत फिरत सब चरन तुरांनै, हरि चरित अगम कथै को जानै ॥
गण गध्रप मुनि अंत न पावा, रह्यो अलख जग धंधै लावा ॥
इहि बाजी सिव बिरचि भुलांनां, और बपुरा को क्यंचित जानां ॥
त्राहि त्राहि हम कीन्ह पुकारा, राखि साईं इहिबारा ॥
कोटि ब्रह्मंड गहि दीन्ह फिराई, फल कर कीट जनम बहुताई ॥
ईस्वर जोग खरा जब लीन्हां, टर्यो ध्यांन तप खंड न कीन्हां ॥
सिध साधिक उनथै कहु कोइ, मन चित अस्थिर कहुँ कैसै होई ॥
लीला अगम कथै को पारा, बसहु समींप कि रहौ निनारा ॥

खग खोज पीछै नहीं, तूं तत अपरपार ।
बिन परचै का जांनियै, सब झूठे अहंकार ॥

शब्दार्थ—लुकाना=छिप गया, आवृत्त हो गया । बध=बन्धन । विर्वजित= परे, वंचित । खग=पक्षी रूपी जीव । पीछै नही=पीछे मत रह। परिचै= साक्षात्कार ।

सन्दर्भ—कबीर का कहना है कि भगवान का साक्षात्कार वाह्याचार के द्वारा सम्भव नहीं है। वह साधना का विषय है।

भावार्थ—जीव ने भूठ के भी भूठ (पूर्ण रूपेण मिथ्या) इस जगत को सत्य समझ लिया है। इस भूठे स्वरूप मे वह सत्य तत्त्व छिप गया है। जीव ने अपने ऊपर अनेक प्रकार के कर्मों के बंधन डाल रखे हैं। इस कारण कर्मों से रहित वह परम तत्त्व इस कर्म-बन्धन वाले जीव के समीप नहीं रहता है। छ दर्शनो तथा छः आश्रमो की रचना की गई है परन्तु जीव तो छ -सो के स्वाद मे तथा काम मे रस लेता रहा है। चारो वेदों तथा छः शास्त्रों ने उस परम तत्त्व का वर्णन किया है, उन्होंने अनन्त विद्याओ ने भी उसका वर्णन किया है। परन्तु उस परम तत्त्व को कौन जान पाया है ? जीव ने तप, तीर्थ, व्रत, पूजा, धर्म, नियम, पुण्य तथा अन्य कितनी ही साधनायें की। वह शास्त्रानुसार आचरण करता रहा, पर इनसे उस परम तत्त्व तक उसकी पहुँच नहीं हो सकी। भगवान अपनी लीला से जीव को अनेकानेक

योनियों मे घुमाते है। यह लीला माया के गहरे पर्दे मे छिपी हुई है, अत इसके विषय मे कुछ भी नही कहा जा सकता है। बिन्दु तत्त्व अत्यन्त गहन है। वह तनिक भी नही दिखाई देता है। यह जीव तत्त्व स्वय ही अपने अज्ञान के कारण आवृत्त रहता है और शास्त्रो के द्वारा (विद्याध्ययन के द्वारा) उसको जाना नही जा सकता है। अज्ञान मे भूला हुआ जीव द्वैत भावना के कारण अत्यधिक भयभीत है। अज्ञान की रात अध कुए के रूप मे गहन से गहनतर होती जा रही है। माया-मोह की घटायें उमड आई है। सशयो के मेढको की टर्र-टर्र, विषयासक्ति की चपलता की चमक एव वासना के अधड की आवाज से जीवन का सम्पूण वातावरण भरा हुआ है। इसमे भय की गर्जना एव विपत्तियो की अखण्ड वर्षा हो रही है। मोह रूपी रात्रि अत्यन्त भयानक हो गई है और चारो ओर अज्ञान का गहरा अधकार छाया हुआ है। भगवान से वियुक्त होकर जीव अनाथ हो गया है। वह इस ससार रूपी जगल मे भटक गया है और उसको इसके पार जाने का मार्ग नही मिल रहा है। जीव को स्वय तो ज्ञान नही है और वह किसी की कहना भी नही मानता है। इस प्रकार वह जान-बूझ कर अज्ञानी बन कर दु ख उठा रहा है। नट अनेक प्रकार के खेल करता है और उनके विषय मे सब कुछ जानता है। कलाकार के गुणो का उसका सहृदय स्वामी ही उसका सम्मान कर पाता है। नट की तरह भगवान भी सबके शरीर के भीतर क्रीडा कर रहे हैं, परन्तु दूसरे उसको कुछ नही समझते हैं। गुण की पहिचान गुणी ही कर सकता है—जिसकी बात होती है, वही उसको समझ पाता है, अन्य अज्ञानी उसको नही समझ पाता है। चाहे भला हो चाहे बुरा हो, अवसर आने पर यमराज के द्वारा सब पूरा सम्मान पाते है। दान-पुण्य भी हमारी निराशा के हेतु बनते हैं (क्योकि इनके कारण हमे फल भोगने के लिए जन्म लेना पडता है) पता नही, कब तक जीवन की इस नट-विद्या का खेल-खेलना पडेगा। जीवन के जगल मे मारे-मारे फिरते हुए हमारे पैर टूट गये हैं। भगवान का चरित्र अगम्य है, उसका वर्णन कौन कर सकता है? देवता, गन्धर्व, मुनि आदि भी भगवान की माया का पार नही पा सके हैं। भगवान अलक्ष्य बने रहकर सबको दुनियाँ के धन्धो मे लगाये रखते हैं। भगवान की लीला मे तो शिव और ब्रह्मा भी भूले हुए है और कोई बेचारा अन्य जीव तो उन्हे किंचित मात्र भी नही जान सकता है। सब जीव दैन्य भाव से पुकार करते हैं कि, हे स्वामी रक्षा करो, रक्षा करो। आपने मुझको करोडो ब्रह्माण्डो मे घुमा दिया है। अनेक जन्मो तक आपने मुझे गूलर के कीडे की भाँति माया मे बन्द रखा है। अब मैंने ईश्वर की उपासना का योग धारण कर लिया है। इसमे न मेरा ध्यान टूटा है ओर न तप खण्डित हुआ है। सिद्ध साधको ने जो कुछ बताया है, उससे मन और चित्त स्थिर नही हो पाता है। आपकी लीला तो अगम्य है। उसका वर्णन करके कौन पार पा सकता है—अर्थात् उसका पूर्णतया वर्णन कोई नही कर सकता है'। कबीर कहते हैं कि हे जीव रूपी पक्षी भगवान की खोज मे पीछे मत रहे। भगवान तुम अपार हो। जब तक उनका साक्षात्कार नही हो जाता है, तब तक

उनके बारे मे कोई कुछ नही कह सकता है। उसके बारे मे जो लोग भी बात करते हैं, वे सब झूठे और अहकारी हैं।

अलकार—(i) सभंग पद यमक—झूठनि झूठ।
(ii) विरोधाभास—झूठनि-साच ···जाना।
(iii) पदमैत्री—धंध बध।
(v) वक्रोक्ति—को जानै। और को जानै। कथै को जानै।
(vi) विशेषोक्ति – तप तीरथ·· · नही सूझै। क्यचित आना।
(vii) पुनरुक्ति प्रकाश—करि करि। फिरत फिरत।
(viii) उपमा—रजनी अधकूप ह्वै। फल कर कीट।
(ix) सागरूपक—वर्षा का रूपक – दादुर · · अघियारा।
(x) वीप्सा – याहि याहि, राखि राखि।
(xi) सवधातिशयोक्ति—गण ··न पावा।
(xii) रूपकातिशयोक्ति—खग।

विशेष—(i) षट् दरशन न्याय, साख्य, योग पूर्व मीमासा उत्तर मीमासा और वैशेपिक।

(ii) आश्रम षट—आश्रमो की सख्या चार ही मानी जाती है। षट् आश्रम से क्या तात्पर्य है—कह नही सकते।

(iii) षट् रस—मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय और तिक्त।

(iv) चार वेद—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद।

(v) छः शास्त्र—धर्म, दर्शन, साहित्य, विज्ञान, व्याकरण तथा कला सम्बन्धी ग्रथ।

(vi) भगवान का विवेचन—कथन-श्रवण-मनन का विषय नही है। वह सर्वथा अनुभूति गम्य है।

(vii) हरि चरित—इस कथन के द्वारा ऐसा लगता है कि कबीर विष्णु को परब्रह्म मानते हैं। आगे चल कर वह इहि बाजी सिव विरचि भुलाना कहते हैं। यहाँ भी विष्णु का उल्लेख नही होता है। सम्भवत. कबीर राम को विष्णु का अवतार मानते हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने भी लिखा है कि—

तासु तेज समान प्रभु आनन। हरषे देखि संभु चतुरानन।

विष्णु रूप राम उपस्थित हैं। इसी से गोस्वामीजी केवल शिव और विरच के हर्षित होने की बात कहते हैं। हमारा विचार है कि कबीर वैष्णव तो नही थे, परंतु उनके ऊपर वैष्णव मत का व्यापक प्रभाव अवश्य था।

(११)

अलख निरजन लखै न कोई, निरभै निराकार है सोई।
सुंनि असथूल रूप नहीं रेखा, द्रिष्टि अद्रिष्टि छिप्यौ नही पेखा॥
बरन अबरन कथ्यौ नहीं जाई, सकल अतीत घट रह्यौ समाई।

आदि अंति ताहि नही मधे, कथ्यौ न जाई आहि अकथे ।।
अपरंपार उपजै नहीं बिनसै, जुगति न जांनियै कथिये कैसै ।
जस कथिये तस होत नहीं, जस है तैसा सोइ ।
कहत सुनत सुख उपजै, अरु परमारथ होइ ।।

शब्दार्थ—निरजन=माया रहित ।

संदर्भ—कबीर परमतत्व की अनिवर्चनीयता का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—प्रभु अलक्ष्य एव माया रहित है। उनको कोई देख नही सकता है। अभय एव निराकार तत्त्व वही हैं। वह न शून्य हैं, न स्थूल हैं। न उनका कोई रूप है और न रेखा ही। वह न दृष्ट है और न अदृष्ट है, वह न प्रकट है और न छिपा हुआ ही है। उसका कोई रग नही है, परन्तु उसको रग रहित भी नही कहा जा सकता है। सबसे अतीत होते हुए भी वह घट-वट मे समाया हुआ है। उसके आदि, मध्य, अन्त भी नही है, क्योकि वह देश काल के परे है। उस तत्व का वाणी के द्वारा वर्णन नही किया जा सकता है, वह वाणी से अतीत है—अकथ्य है। वह अपरम्पार है। न उनकी उत्पत्ति होती है और न उसका विनाश ही होता है। वह किसी भी युक्ति या प्रमाण का विषय नही है। अत शब्दो के द्वारा जैसा भी कहो, वह वैसा नही है। वह तो जैसा है तैसा ही है। उसके विषय मे कहने-सुनने (चर्चा करने) से आनन्द की अनुभूति होती है तथा उसके गुण-वर्णन से परमार्थ की सिद्धि होती है।

अलंकार—(1) अनुप्रास—निरजन, न निरभै निराकार ।
(ii) विरोधाभास—सुनि " समाई ।
(iii) सभगपद यमक—दिष्टि अदिष्टि, बरन अबरन ।
(iv) सबधातिशयोक्ति—कथ्यौ न जाई ।
(v) गूढोक्ति—कथिये कैसे ।

विशेष—(1) इस रमैणी मे 'नेतिनेति' सदृश भावाभिव्यक्ति है ।
(ii) परम 'तत्व' के पारमार्थिक स्वरूप की स्वानुभूति को जगाने का प्रयास है ।

(१२)

जांनसि नहीं कस कथसि अयांनां, हम निरगुन तुम्ह सरगुन जांनां ।।
मति करि हींन कवन गुन आंही, लालचि लागि आसिरै रहाई ।
गुन अरु ग्यान दोऊ हम हीनां, जैसी कुछ बुधि बिचार तस कीन्हां ।।
हम मसकीन कछू जुगति न आवै, ते तुम्ह दरवौ तौ पूरि जन पावै ।
तुम्हारे चरन कवल मन राता, गुन निरगुन के तुम्ह निज दाता ।।
जहुवां प्रगटि बजावहु जैसा, जस अनभै कथिया तिनि तैसा ।
बाजे तत्र नाद धुनि होई, जे बजावै सो औरै कोई ।।
बाजी नाचै कौतिग देखा, जो नचावै सो किनहूं पेखा ।।

आप आप थ जानियै, है पर नाहीं सोइ ।
कबीर सुपिनै केर धन ज्यूं, जागत हाथि न होइ ।।

शब्दार्थ—मति करि हीन=विवेक शून्य । बधि=बुद्धि । दरवौ=द्रबौ, कृपा करदो । बाजी=बाजीगर, नट । कौतिग=तमाशा ।

संदर्भ—पूर्व रमैणी के समान ।

भावार्थ रे अज्ञानी, तुम इस परम तत्व के स्वरूप को जानते तो हो नही, फिर उसका वर्णन किस प्रकार करते हो ? मैंने उसको निर्गुण समझा है और तुमने उसको सगुण के रूप मे जाना है । तुम तो विवेकहीन हो । तुममे ऐसा कौनसा गुण है जिससे तुम उस परमतत्व के वास्तविक स्वरूप को जान सके हो ? तुम तो माया-मोह और लोभ-लालच के आश्रित हो । हम भी परमतत्व के साक्षात्कार के उपयुक्त गुणो (विवेक वैराग्य, षट सम्पत्ति इत्यादि) से तथा बोध से रहित हैं । फिर भी हमको सद्गुण की कृपा से जैसी जो कुछ (थोडी बहुत) बुद्धि प्राप्त हुई है, उसी के आधार पर हमने परमतत्व के स्वरूप पर विचार किया है । हम जीव मात्र मतिहीन हैं । हमे भगवान के स्वरूप को समझने की युक्ति नही आती है । ईश्वर से अनुग्रह की प्रार्थना करते हुए कबीर कहते हैं कि हे प्रभु, जब आप इस जन पर द्रवीभूत होंगे, तभी वह आपके पूर्ण स्वरूप को प्राप्त हो सकेगा (मेरा मन आपके चरण-कमलो मे ही अनुरक्त है ।) तुम चाहे सगुण हो चाहे निर्गुण तुम्ही मुझको ज्ञान देने वाले हो । तुम जहाँ भी जिस प्रकार प्रकट होकर अपने आपको अभिव्यक्त कर देते हो, उसी के अनुसार जो जिस रूप मे ही आपके साक्षात्कार के अनुभव को व्यक्त कर देता है, उसके लिए तुम वैसे ही हो । हृदय की तन्त्री बजती है । उसमे नाद उत्पन्न होता है, परन्तु इस तन्त्री को बजाने वाला कोई दूसरा ही है । जादूगर (नट) नाचता है और दुनियाँ उसका तमाशा देखती है, परन्तु जो नाचने वाले को नचाता है उसे कोई नही देख पाता है । हर व्यक्ति उसे अपनी वासना के अनुसार समझता और देखता है, परन्तु वह वास्तव मे वैसा नही है । कबीर कहते है कि व्यक्ति की वासना से समझे जाने वाले भगवान का स्वरूप तो स्वप्न के धन के समान है जो जागने पर हाथ नहीं लगता है ।"

अलंकार—(i) रूपक—चरन कमल ।

(ii) उपमा—सुपिने केरि धन ज्यू ।

विशेष—(i) तत्तथा के सिद्धान्त के आवरण मे भगवान के अनिवर्चनीय स्वरूप (अवाङ्मनसगोचर) का प्रतिपादन है ।

(ii) गुन निरगुन दाता कबीर एक सच्चे भक्त के रूप मे हमारे सामने आते है—

जो जगदीश तो अति भलो जो महीश बड भाग ।
तुलसी चाहत जनमि भरि रामचरन अनुराग ।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(iii) जस अनभै कथिता तिनि तैसा। तुलना करें—

जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरत देखी तिन तैसी।

तथा— अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथाजोग मिले सबहि कृपाला।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(iv) सगुण भक्तो जैसे दैन्य की मार्मिक अभिव्यक्ति है।

(१३)

जिनि यहु सुपिनां फुर करि जांनां, और सबै दुखयादि न आंनां।,
ग्यांन हीन चेतै नहीं सूता, मै जाग्या बिष हर भै भूता।।
पारधी बांन रहै सर सांधें, विषम बांन मारै विष बांधें।।
काल अहेड़ी संझ सकारा, सावाज ससा सकल ससारा।।
दावानल अति जरें बिकारा, माया मोह रोकि ले जारा।।
पवन सहाइ लोभ अति भइया, जम चरचा चहुँदिसि फिरि गइया।।
जम के चर चहुँ दिसि फिरि लागे, हंस पखेरूवा अब कहा जाइबे।।
केस गहैं कर निस दिन रहई, जब धरि ऐंचे तब धरि चहई।।
कठिन पासि कछू चलै न उपाई जम दुबारि सीझे सब जाई।।
सोई त्रास सुनि रांम न गावै, मृगत्रिष्णां झूठी दिन धावै।।
मृत काल किनहूँ नही देखा, दुख कौं सुख करि सबही लेखा।।
सुख करि मूल न चीन्हसि अभागी, चीन्है बिनां रहै दुख लागी।।
नींब काट रस नींब पियारा, यूं बिष कूं अंमृत कहै ससारा।।
बिष अंमृत एकै करि सांनां, जिनि चीन्ह्या तिनही सुख मांनां।।
अछित राज दिन दिनहि सिराई, अमृत परहरि करि विष खाई।।
जांनि अजांनि जिन्है बिष खावा, परे लहरि पुकारै धावा।।
विष के खांयें का गुंन होई, जा बेद न जानै परि सोई।।
मुरछि मुरछि जीव जरिहै आसा, कांजी अलप बहु खीर बिनासा।।
तिल सुख कारनि दुख अस मेरू चौरासी लख लीया फेरू।।
अलप सुख दुख आहि अनता, मन मैगल भूल्यौ मैमता।।
दीपक जोति रहै इक सगा, नैन नेह मांनू परै पतगा।।
सुख बिश्राम किनहू नही पावा, परहरि काल दिन आइ तुरावा।।
लालच लागे जनम सिरावा, अति काल दिन आइ तुरावा।।
जब लग है यहु निज तन सोई, तब लग चेति न देखै कोई।।
जब निज चलि करि किया पयांनां, भयौ अकाज तब फिरि पछितांनां।।

मृगत्रिष्णां दिन दिन ऐसी, अवमोहि कछू न सौहाइ।
अनेक जतन करिये, टारिये, करम पासि नहीं जाइ।।

शब्दार्थ—फुर=सत्य। विपहर=विषधर। भूता=भयभीत होकर भाग जाते है। सकारा =सवेरे। सावज=मृगयायोग्य पशु। पारधी=शिकारी। ससा=

शशक, खरगोश। दावानल=बन मे लगने वाली अग्नि। पाश=फंदा। काट=कीट, कीडा।

सदर्भ—कबीर विषयासक्त जीव की दुर्दशा का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—जो इस स्वप्नवत् संसार को सत्य समझते हैं, उन्हे इससे उत्पन्न होने वाले दु खो का ध्यान नही रहता है। रे विवेकहीन जीव, तुम जागते नही हो। अज्ञान की निद्रा मे सो रहे हो। पर मैं तो विषय भोग रूपी विषधर सर्प से भयभीत होकर जाग गया हूँ। इस संसार मे मोह रूपी शिकारी वासनारूपी विष मे बुझे हुए भी बाण मार रहा है। मृगया का पूरा रूपक बाँधते हुए कबीरदास कहते हैं कि काल रूपी शिकारी शाम-सवेरे (हर समय) तैयार खड़ा है। ससार के समस्त प्राणी उसके मृगया योग्य खरगोश हैं। यहाँ विपय विकार रूपी दावानल सुलग रहा है। माया-मोह ने इन विकारो को एकत्र करके प्रज्वलित कर दिया है। विषयो के प्रति लोभ (आसक्ति) की भावना पवन रूप होकर इस अग्नि को और भी अधिक प्रज्वलित करने मे सहायक हो रही है। इस ससार रूपी जगल मे यम के शिकार की चर्चा सर्वत्र व्याप्त है। इन जीव-रूपी पशु-पक्षियो को घेरने के लिए त्रयताप रूपी यम के दूत चारो ओर फिर रहे हैं। जीव रूपी पक्षी अब बचकर कहाँ जाएँगे। यम के दूत दिन रात जीव के बालो को पकडे रहते है। जब अपन दबोचना चाहेगे, तभी उसको खींच कर पकड लेंगे। यम का फदा अत्यन्त कठोर है। उसके समक्ष किसी का वश नही चलता है। हरेक प्राणी को यम के द्वार पर पहुँचकर यातना भोगनी पडती है। इन दु खो की वात सुनकर भी जीव राम का गुणगान नही करता है और मृगतृष्णा रूप मिथ्या विजयो की ओर भागता फिरता है। मृत्यु की ओर किसी का ध्यान नही रहता है। वह सामारिक विषयो को जो मूलत. दुख रूप हैं, सुख रूप माने रहता है। कवीर चेतावनी देते हुए कहते हैं कि रे अभागे, तुम सम्पूर्ण सुखो के मूल भगवान को तो पहचानते नही हो। उनको पहचाने विना तुमको दुःख घेरे ही रहेगे। जिस प्रकार नीम के कीड़े को नीम को कडुआ रस ही प्रिय लगता है, उसी प्रकार विषयी जन विपरूप विपयो को अमृत रूप कहते हैं। मोह ग्रस्त ससारी जीवों के लिए विष और अमृत को समान समझ लिया है। जिन विवेकी जन ने भगवान के आनन्द स्वरूप (प्रेम) को विपयो से पृथक करके समझ लिया है, वे ही वस्तुत. सुख के भागी बनते हैं। विपयो का राज्य (महत्व) आयु के साथ दिनोदिन क्षीण होता जाता है, परन्तु फिर भी जीव ईश्वर-प्रेम के अमृत को छोडकर स्वभाववश विपयो के विप का सेवन करता है। जो जीव जान-बूझकर अथवा धोखे से विपयो के विप को खाते हैं, वे भवसागर की लहरो मे पड़े हुए पुकारते रहते हैं। विपयो के सेवन मे क्या गुण है (यह मेरी समझ मे तो आता नही है।) जो ज्ञान शून्य हैं, वे ही इन विपयो मे लिप्त होते हैं। कुम्हला कुम्हला कर जीव धीरे धीरे विपयो की आशा (आसक्ति) मे झुलसता रहता है। वासना रूपी काजी यद्यपि बहुत ही स्वल्प है, तथापि वह जीव के आनन्द स्वरूप रूपी दूध को फाड देती है अर्थात् उसके आनन्द को मिटा

देती है। वह तिल के समान थोडे से विषयानंद के पीछे सुमेरु पर्वत के समान वृहद् दुखो को अपना लेता है और इस प्रकार वह चौरासी लाख योनियो मे भटकना स्वीकार करता है। इस ससार मे सुख थोडा है और दुख बहुत है, परन्तु फिर भी मन रूपी हाथी इन विषयो मे मस्त बना हुआ फूल रहा है। वासना के दीपक की लौ जीव के साथ लगी हुई है। उसके नेम (इन्द्रियो के उपलक्षण) उसके प्रति आसक्ति-वश आकृष्ट होकर उसमे पतगो की तरह गिरकर भस्म होते रहते हैं। जो जन ईश्वर प्रेम रूप सत्य को छोडकर विषयासक्ति रूप झूठ की ओर दौडते हैं, उनको सुख-शान्ति की प्राप्ति कभी भी नही होती है। विषयो के लालच मे लोग अपना सारा जीवन नष्ट कर देते हैं। अंत काल आने पर वे घबडा कर भागना चाहते हैं। जब तक यह जीव इस शरीर के सुखोपभोग मे अपने आपको भूला रहता है, तबतक वह जग कर विषय-वासनाओ के इस दु खात्मक रूप को नही देख पाता है। जब वह शरीर को छोडकर प्रयाण करता, तब उसकी समझ मे यह बात आती है कि उसने अनुचित काम ही किया और फिर वह पश्चाताप करने लगता है। विषय वासनाओं की मृगतृष्णा दिन प्रतिदिन बढती जा रही है। मुझे अब इस जीवन मे कुछ भी अच्छा नही लग रहा है। मैंने कर्म-बन्धन को समाप्त करने के लिए अनेक प्रयत्न किये, परन्तु कर्म के बन्धन समाप्त होने मे नही आ रहे हैं।

अलंकार—विरोधाभास—सुपना जाना, दुख··· ·लेखा,
(ii) रूपकातिशयोक्ति - विषहर, पारधी, लहरि।
(iii) रूपक—विष बान, मन मैगल, नैन पतगा।
(iv) साग रूपक—काल ·जाइबे।
(v) उदाहरण— नीव ··ससारा।
(vi) सभंग पद यमक—दिन दिनहि, जानि अजानि।
(vii) पुनरुक्ति प्रकाश—मुरछि मुरछि, दिन दिन।
(viii) विभावना—काजी ··विनासा।
(ix) विशेषोक्ति—अनेक जतन ·· नही जाइ।

विशेष—(i) ईश्वर-प्रेम से रहित समस्त साधनाएँ व्यर्थ हैं।
(ii) कस गहे··· चहई—समभाव के लिए देखे—
कबिरा गर्व न कीजिए, काल गहे कर केस।
ना जाने कित मारिहै, क्या घर क्या परदेस।

(१४)

रे रे मन बुधिवंत भंडारा, आप आप ही करहु विचारा॥
कवन सयांन कौन बौराई, किहि दुख पाइये किहि दुख खाई॥
कवन सार को आहि असारा, को अनहित को आहि पियारा॥
कवन साच कवन है झूठा, कवन करू को लागै मीठा॥
किहि जरियै किहि करियै अनदा, कवन मुकति को मल के फदा॥

रे रे मन मोहि ब्यौरि कहि, हौं तत पूछौं तोहि ।
संसै सूल सबै भई, समझाई कहि मोहि ॥

शब्दार्थ—बुधिवत=बुद्धिमान । सयान=चतुर । बौराई=पागल, मूर्ख । ब्यौरि=ब्यौरा । करू=कडुआ ।

संदर्भ—कबीरदास आत्मालोचन द्वारा विवेकपूर्ण पथ निर्धारित करते हैं ।

भावार्थ—हे मन तुम बुद्धिमान हो, तथा ज्ञान के भण्डार हो । तुम स्वय अपने आप ही विचार करो । जीवो मे कौन चतुर है और कौन पागल अथवा मूर्ख है—वह जो विषयो मे अनुरक्त है अथवा वह जो ईश्वराभिमुख है । कौन से कर्म दुःख के हेतु हैं और किन कर्मों से दुख की निवृत्ति होती है ? किस मे हर्ष है, किसमे विषाद है ? किसे अहित समझे और किसे हित माने ? कौन वस्तु सार है और कौन निस्सार है ? कौन प्रेम शून्य है और कौन प्रेम करने वाला है ? क्या सत्य है और क्या मिथ्या है । जीवन की कौन सी अनुभूति कड़ुवी है और कौन सी अनुभूति मधुर है ? कौन वस्नुत दुखो से जल रहा है और कौन सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करता है ? कौन से कर्म मुक्ति के हेतु बनते है और किन कर्मों के करने से गले मे फदा पडता है ? जीवन के मूल तत्व एव प्रयोजन के इन प्रश्नों पर तुम स्वय विचार करके मुझे बताओ । रे मन, मैं तुमसे तत्त्व की बात पूछ रहा हूँ । संशय मेरे लिए शून्य हो गये हैं । तुम मुझ को समझाकर ब्यौरेवार बताओ ।

अलंकार—(i) वीप्सा—रे रे ।
(ii) सभंग पद यमक—अनहित हित ।

(१५)

सुंनि हसा मैं कहूँ बिचारी, त्रिजुग जोनि सबै अधियारी ॥
मनिषा जन्म उत्तिम जौ पावा, जांनूं रांम तौ सयांन कहावा ॥
नहीं चेतै तौ जनम गंमावा, पर्‌यौ बिहांन जन फिरि पछतावा ॥
सुख करि मूल भगति जौ जांनै, और सबै दुख या दिन आंनै ॥
अंमृत केवल रांम पियारा, और सबै विष के भडारा ॥
हरिख आहि जो रमियें रांम, और सुबै बिसमा के कांमां ॥
सार आहि सगति निरबांनां, और सबै असार करि जांनां ॥
अनहित आहि सकल संसारा, हित करि जांनियें रांम पियारा ॥
साच सोई जे थिरह रहाई, उपजै विनसै झूठ ह्वै जाई ॥
मींठा सो जो सहजै पाया, अति कलेस थैं करू कहावा ॥
नां जरियें नां कीजं मैं मेरा, तहाँ अनद जहां राम निहोरा ॥
मुकति सोज आपा पर जांनैं, सो पद कहां जु भरमि भुलानैं ॥

प्रांननाथ जग जीवनां, दुरलभ रांम पियार ।
सुत सरीर धन प्रग्रह कबीर, जीयेरे तर्वर पंख बसियार ॥

शब्दार्थ—हंसा=शुद्ध चैतन्य। त्रिजुग=तिर्यक योनि, पशु पक्षी आदि प्राणी। प्रग्रह=परिग्रह, धन का सचय। निहोरा=शरणागति।

सन्दर्भ—कबीरदास के गुरु (बुद्धि मनस) रमैणी सख्या १४ मे पूछे गये प्रश्नो का उत्तर देते हुए सार वस्तुओ को बताते हैं।

भावार्थ—हे जीव, आत्म स्वरूप मे स्थित होकर सुनो, मैं विचार करके तुम्हारे प्रश्नो का उत्तर देता हु ँ। पशु-पक्षी आदि प्राणियो की समस्त योनिया हैं—अज्ञान की हेतु हैं। यदि किसी को मिल सके, तो पाने योग्य केवल मनुष्य जन्म ही उत्तम है। अगर मैं परम तत्व राम को जान सकू ँ तो बुद्धिमान समझा जाऊँगा। जीव यदि चेतकर भ्रम एव अज्ञान को नही त्यागता है, तो वह अपना जन्म व्यर्थ ही गँवा देता है। ज्ञानोदय रूपी प्रभात काल को यदि वह छोड देता है, तो फिर अन्त मे उसको पछताना पडता है। जो भक्ति को समस्त सुखो का मूल समझता है वह भक्ति से रहित अन्य समस्त वस्तुओ को दु ख के रूप मे मानता है। राम का प्रिय होना ही केवल अमृत रूप है, तथा विषय-वासना विष के भण्डार हैं। राम मे रमना ही केवल हर्ष का हेतु है, शेष तो विषाद हेतुक कार्य हैं। निवृत्ति परायण की सगति ही सार वस्तु है। शेष सब की सगति व्यर्थ है। समस्त ससार अमगलकारी है, केवल प्रिय राम ही मगलकारी है। सत्य वही है जो स्थिर रहता है। जो उत्पन्न होता है और नष्ट होता है, वह तो मिथ्या और झूँठ है। मधुर वही है जो सहज भाव से प्राप्त होता है और जिसकी प्राप्ति मे कलेश भोगने पडते हैं, वही कडुआ है। जिसमे मैं और मेरी की भावना नही है, उसको जलना नही पड़ता है। जहाँ राम की शरणागति है, वही आनन्द है। मुक्ति वह अवस्था है जिसमे व्यक्ति अपने स्वरूप को तथा परम स्वरूप को पहचानता है। निर्वाण पद वह अवस्था है जहाँ समस्त भ्रम दूर हो जाते हैं। प्राणनाथ राम ही ससार के जीवनाधार हैं तथा राम का प्रेम अत्यन्त दुर्लभ वस्तु है। पुत्र, शरीर, धन, परिग्रह तथा परिजनो के लिए जीना तो केवल पक्षा का वृक्ष पर थोडी देर का बसेरा मात्र है। अभिप्राय यह है कि राम भक्ति जीवन को स्थिरता प्रदान करती है। शेष जीवन एव सम्बन्ध क्षणिक हैं एव महान उद्देश्य से हीन हैं।

अलकार—सभग पद यमक—मार असार, अनहित हित।

विशेष—(i) सत्यासत्य का सुन्दर निरूपण है।

(ii) सो पद · भुलानैं—कबीर पन्थ मे 'ब्रह्मपद' आदि अवस्थाओ को ही परम प्राप्तव्य मान लेने को भ्रम कहा गया है। अत इस पद को भी भ्रम में भुलाने वाला कहा गया है। अत इस पक्ति का अर्थ इस प्रकार भी किया जा सकता है—जो भ्रम मे भुलाने वाला है उसे 'पद' की सज्ञा कैसे दी जा सकती है?

(iii) ना जरियै" ""मेरा—अहकार, ममता एव रागद्वेष ही वस्तुतः ताप के हेतु हैं।

(IV) मनिषा जनम·······पावा—समभाव देखे—"बड़े भाग मानुष तन पावा" क्योंकि यह 'साधन धाम मोक्ष कर द्वारा" है।

तथा— हरि, तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों।
साधन-धाम बिबुध-दुरलभ तनु, मोहि कृपा करि दीन्हों।
(गोस्वामी तुलसीदास)

(१६)

रे रे जीय अपनां दुख न सभारा, जिहि दुख व्याप्या सब संसारा ॥
माया मोह भूले सब लोई, क्यचित लाभ मांनिक दीयौ खोई ॥
मैं मेरी करि बहुत बिगूता, जननीं उदर जन्म का सूता ॥
बहुतै रूप भेष बहु कीन्हां, जुरा मरन क्रोध तन खीनां ॥
उपजै बिनसै जोनि फिराई, सुख कर मूल न पावै चाही ॥
दुख संताप कलेस बहु पावै, सो न मिलै जे जरत बुझावै ॥
जिहि हित जीव राखिहै भाई, सो अनहित ह्वै जाइ बिलाई ॥
मोर तोर करि जरे अपारा, मृग त्रिष्णां झूठी ससारा ॥
माया मोह झूठ रह्यौ लागी, का भयौ इहां का ह्वै है आगी ॥
कछु कछु चेति देखि जीव अबही, मनिषा जनम न पावै कबही ॥
सार आहि जे सग पियारा, जब चेतै तब ही उजियारा ॥
त्रिजुग जोनि जे आहि अचेता, मनिषा जनम भयौ चित चेता ॥
आतमां मुरछि मुरछि जरि जाई, पिछले दुख कहता न सिराई ॥
सोई त्रास जे जांनै हंसा, तौ अजहू न जीव करै संतोसा ॥
भौसागर अति वार न पारा, ता तिरिबे का करहु बिचारा ॥
जा जल की आदि अति नहीं जानियै, ताकौ डर काहे न मानियै ॥
को वोहिथ को खेवट आही, जिहि तरिये सो लीजै चाही ॥
समझि विचारि जीव जब देखा, यहु ससार सुपन करि लेखा ॥
भई बुधि कछु ग्यांन निहारा, आप आप ही किया बिचारा ॥
आपण मैं जे रह्यौ समाई, नेड़ै दूरि कथ्यौ नहीं जाई ॥
ताके चीन्हें परचौ पावा, भई समझि तासूं मन लावा ॥
भाव भगति हित वोहिथा, सतगुर खेवनहार ।
अलप उदिक तब जांणिये, जब गोपदखुर विस्तार ॥

शब्दार्थ – सभारा=ध्यान दिया। मानिक=माणिक, चैतन्य स्वरूप रूपी मणि। विगूता=वर्वाद किया। त्रिजुग=तिर्यक, पशु पक्षी आदि की योनि। अलप=अल्प, थोड़ा सा जो दुर्लंघ्य न हो।

सन्दर्भ—कबीर जीव के अज्ञान का वर्णन करते हुए कहते हैं।

भावार्थ—अरे जीव, तुमने अपने दुःख के कारण पर ध्यान नहीं दिया। वासनाजन्य इन दुःख से समस्त संसार ग्रसित है। सब जीव माया मोह में भूले हुए

हैं। विषय-सुख के थोडे से लाभ के लिए तुमने स्व-स्वरूप प्रतिष्ठा (चैतन्य स्वरूप) रूपी माणिक को गवाँ दिया है। मैं और 'मेरी करते हुए तुमने अपने आपको वहुत वर्वाद किया है। माता के गर्भ मे सोते हुए तेरा जन्म व्यतीत हो गया अर्थात् विभिन्न जन्म धारण करते समय तुमको अनेक वार गर्भ-वास करना पडा और इस प्रकार माता के उदर मे सोते हुए तुम्हारे जन्म का अधिकाश भाग व्यतीत हो गया। विभिन्न योनियो मे तुमने वहुत से वेष और रूप धारण किए। वृद्धावस्था, मृत्यु तथा क्रोध तेरे शरीरो को क्षीण करते रहे। तुम जन्म लेते हो, मरते हो तथा अनेक योनियो मे भटकते फिरते हो परन्तु आनन्द के मूल स्रोत अपने शुद्ध स्वरूप अथवा ईश्वर प्रेम की ओर उन्मुख नही होते हो। यह जीव अनेक दु:खो एव सतापो को भोगता है, परन्तु इसको उस परम तत्व का साक्षात्कार नही हुआ है, जो इसके समस्त दु खो को दूर कर देगा।

रे भाई, यह जीव जिन विषयो को मगलकारी समझ कर उनसे प्रेम करता रहा है, जिनके लिये, यह जिया है, वे इसका अमगल करके नष्ट होते रहे है। अपने और 'पराये' के राग द्वेष मे फस कर यह जीव अपार सतापो मे जलता रहा है और मृगतृष्णा रूपी झूठे ससार के पीछे भटकता ही रहा है। यह झूठे माया-मोह मे ही फसा रहा है। यहाँ इस लोक मे क्या हुआ और आगे (परलोक मे) क्या होगा, इसकी इसको बिल्कुल चिंता नही है। रे जीव! अब भी चेत जा और आँखें खोल कर वास्तविकता को देख। तुमको यह मनुष्य शरीर फिर नही मिलेगा। जीवन का सार यही है कि राम-प्रेम की अनुभूति बनी रहे। इसके लिए कोई विशिष्ट अवसर नही चाहिए। जव चेत जाओ, तब ही ज्ञान का प्रकाश हो जाएगा। जव ही प्रभु-साक्षात्कार की आकाक्षा जाग्रत हो जाए तव ही अज्ञानान्धकार दूर हो जाता है। पशु-पक्षियों की विभिन्न योनियो मे यह जीव अज्ञान मे अचेत पड़ा हुआ घूमता रहा। मानव योनि मे अपने पर उसको कुछ वोध हुआ। विषयासक्ति के फलस्वरूप आत्म-स्वरूप धीरे-धीरे नष्ट होता रहता है। पिछले जन्म के दु:खो को भी शात नही कर पाता है। अगर जीव उन्ही दु खो के प्रति सजग हो जाय, तो वह अपनी वर्तमान परिस्थितियो मे सतोष न करे और उस मूलतत्त्व को प्राप्त करने के लिए आतुर हो जाय। यह भवसागर असीम है—इसका पार नही है। इसको पार करने के उपाय पर विचार करो। जिस भव-जल का आदि और अन्त जानना सम्भव नही है, उससे भयभीत क्यो नही होना चाहिए ? इसको पार ले जाने वाला कौन सा साधन नौका स्वरूप है और कौन सा सद्गुरु इनके लिए केवट स्वरूप है, इसका विचार करके उन्ही का आश्रय ग्रहण करना चाहिए। यह जीव ने जब सोच विचार करके देखा, तव उसे यह संसार स्वप्नवत् ही प्रतीत हुआ, कुछ बुद्धि तथा विचार जाग्रत हुआ और उसने स्वय ही आत्म स्वरूप का चिन्तन किया तव उसको प्रतिभासित हुआ कि जो तत्व उसमे समाहित हो रहा है उसको दूर अथवा पास कुछ भी नही कहा जा सकता है। उस

तत्व को पहचानने पर ही जीव का आत्म-बोध जागा, विवेक हुआ और फिर उसी मे उसका मन लग गया। इस भव सागर को पार करने के लिए भावभक्ति अथवा ईश्वर-प्रेम ही नौका है तथा सद्गुरु ही इस नौका को खेने वाले केवट हैं। जब ईश्वर की कृपा होने पर यह भवसागर गोपद-खुर के समान प्रतीत होने लगे तब समझ लेना चाहिए कि यह भवसागर अल्प (ससीम) है और तब यह दुर्लंघ्य नही रह जाता है।

अलंकार—(i) वीप्सा—रे रे।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—मानिक।
(iii) विरोधाभास – जेहि हित.....बिलाई।
(iv) सभग पद यमक—हित अनहित।
(v) रूपक—मृगतृष्णा.....ससारा। भौ सागर।
(vi) पुनरुक्ति प्रकाश—कछु कछु। मुरछि मुरछि।
(vii) विशेषोक्ति की व्यजना—पिछले ...सिराई।
(viii) वक्रोक्ति—काहे न मानियै।
(ix) उपमा—सताप सुपन करि।
(x) यमक—आप आप।
(xi) सबधातिशयोक्ति—कथ्यौ नहि जाई।
(xii) साग रूपक—भाव भगति ...बिस्तार।

विशेष—इस रमैणी की भाव—व्यजना पर वेदान्तियो के कथन 'ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या' का गहरा प्रभाव है।

[४] दुपदी रमैणी

(१७)

भया दयाल विषहर जरि जागा, गहगहान प्रेम बहु लागा।
भया अनद जीव भये उल्हासा, मिले रांम मनि पूगी आसा॥
मास असाढ़ रवि धरनि जरावै, जरत जरत जल आइ बुझावै।
रुति सुभाइ जिमीं सब जागी, अंमृत धार होइ झर लागी॥
जिमीं मांहि उठी हरियाई, विरहनि पीव मिले जन जाई।
मनिकां मनि के भये उछाहा, कारनि कौंन विसारी नाहा॥
खेल तुम्हारा मरन भया मोरा, चौरासी लख कीन्हां फेरा।
सेवग सुत जे होइ अनिआई, गुन औगुन सब तुम्हि समाई॥
अपने औगुन कहू न पारा, इहै अभाग जे तुम्ह न संभारा।
दरबो नहीं कांइ तुम्ह नाहा, तुम्ह बिछुरे मैं बहु दुख चाहा॥
मेघ न बरिखै जांहि उदासा, तऊ न सारंग सागर आसा।
जलहर भर्यो ताहि नहीं भावै, कै मरि जाइ कै उहै पियावै॥
मिलहु रांम मनि पुरवहु आसा, तुम्ह बिछुर्यां मैं सकल निरासा।

मैं रनिरासी जब निध्य पाई, रांम नांम जीव जाग्या जाई ॥
नलिनी कै ज्यू नीर अधारा, खिन बिछुर्‌यां थै रवि प्रजारा ।
रांम बिनां जीव बहुत दुख पावै, मन पतग जगि अधिक जरावै ॥
माघ मास रुति कवलि तुसारा, भयौ बसत तब बाग सभारा ।
अपनै रगि सब कोह राता, मधुकर बास लेहि मैमंता ॥
बन कोकिला नाद गहगहांना, रुति बसंत सब कै मनि मानां ।
बिरहन्य रजनी जुग प्रति भइया, बिन पीव मिले कचप टलि गइया ॥
आतमां चेति समझि जीव जाई, बाजी झूठ रांम निधि पाई ।
भया दयाल निति बाजी बाजा, सहजे रांम नांम मन राजा ॥
जरत जरत जल पाइया, सुख सागर कर मूल ।
गुर प्रसादि कबीर कहि, भागी ससै सूल ॥

शब्दार्थ—गहगहान=गहन, घना। पूगी—पूर्ण हुई। घदासा=उदासा, उदासीन। जलहर=जलाशय। रनिरासो=निराश रक। पतग=सूर्य। मैमता=मस्त। बाजी=सृष्टि का खेल।

सन्दर्भ—कवीर सिद्धावस्था का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—भगवान की कृपा हो गई, फलस्वरूप विषय रूपी जहरीला सर्प भस्म होगया और जीव जग गया, और वह गहन ईश्वर प्रेम से पूर्ण होगया। आनद छा गया और जीव उसमे मग्न हो गया। राम का साक्षात्कार हो गया और उसके मन की आकाक्षा पूर्ण हो गई। ज्ञान-विरह के आषाढ मास मे मिलन की तीव्र आकाक्षा के सूर्य ने जीव के चैतन्य रूपी धरा को अत्यधिक सतप्त कर दिया था। वह निरन्तर जल रहा था। भगवान की कृपा के जल ने बरस कर उसको शात कर दिया। प्रेम की सुन्दर वर्षा ऋतु मे सम्पूर्ण पृथ्वी (सृष्टि) प्रेमोल्लास मे जाग उठी और उस समय चारो ओर अमृत की धारा की झडी लग गई (जीव को एक दम नवीन दृष्टि प्राप्त हो गई—उसकी ऋतु बदल गई। पृथ्वी मे हरियाली प्रकट हो गई अर्थात् जीव को सम्पूर्ण सृष्टि आनन्दमय दिखाई देने लगी। विरहिणी जीवात्मा को मानों उसके प्रियतम भगवान मिल गये हैं। मन ही मन मे उत्सव होने लगा। जीवात्मा ने परमात्मा से कहा कि हे नाथ। आपने मुझको किस कारण वश भुला दिया था। तुम्हारे लिए तो यह विरह और मिलन (जन्म और मृत्यु) खेल (लीला) है, परन्तु मैं तो इसमे परेशान होकर मर ली। तुम्हारी इस लीला के कारण मुझे तो चौरासी लाख योनियो मे भटकना पडा। सेवक और पुत्र से जो भी अनुचित कृत्य हो जाता है, उसके गुण और अवगुण सब कुछ आपकी ही सामर्थ्य के फलस्वरूप हैं अथवा सब आपके ही हैं। उनका यश-अपयश सब आपका ही है। हे स्वामी, मै अपने अवगुणो का वर्णन नही कर सकती हू। मेरा सबसे बडा दुर्भाग्य यही है कि आपने मेरी सभाल नही की अर्थात् मुझको भुला दिया। हे स्वामी, तुम मेरे ऊपर द्रवित क्यो नही होते हो, आपसे बिछुड कर मैने बहुत दु:ख पाए हैं। आपके प्रेम के

वादल मुझ कर बरसते नही है और मेरे प्रति उदासीन रहते हुए चले जाते हैं। परन्तु मेरा चित्त रूपी चातक ससार के विषय रूपी समुद्र के जल द्वारा अपनी प्यास वुझाने की आशा नही करता है। विषय सुखो से भरा हुआ यह ससार-समुद्र उसको अच्छा नही लगता है। वह प्यास के कारण भले ही मर जाए, परन्तु पिएगा तभी जव आप प्रेम की स्वाँति वूँद पिलाएँगे। हे प्रियतम, आप मिलें और मेरा मनोरथ पूरा कर दें। तुम्हारे वियोग मे अत्यन्त निराश हो गया हूँ। मैं निराश रंक तभी अमित सम्पत्ति की प्राप्ति समझूँगा जब आप मे मेरा मन पूर्ण रूपेण रम जायेगा। जिस प्रकार कमलिनी का एकमात्र अवलम्ब जल होता है, उससे पल भर भी वियुक्त हो जाने पर सूर्य का ताप उसे जला देता है, वैसे ही जीवात्मा अपने प्राणाधार राम के प्रेम से वचित होकर अत्यधिक दुख का अनुभव करती है। वासनात्मक मन रूपी सूर्य अधिक तीक्ष्ण होकर जीवात्मा रूपी कमलिनी को जलाने लगता है। मोह रूपी माघ मास की जडता ने जीवात्मा रूपी कमलिनी पर तुषारापात किया परन्तु ईश्वर प्रेम रूपी वसत की उष्णता ने (जाग्रत होकर) जीवन-वन की रक्षा कर ली। अन्तःकरण की सद्वृत्तियाँ अपने-अपने अनुरूप उस प्रेम मे अनुरक्त हो गई। मन रूपी मधुकर प्रेम-परिमल मे मस्त हो गया। उस चैतन्य रूपी विकसित वन मे चित वृत्ति रूपी कोकिल का गहन मधुर सगीत गुंजारित होने लगा। इस प्रकार प्रेम की इस वसत ऋतु शरीर की सम्पूर्ण वृत्तियो को रुचिकर हुई—इसने समस्त वृत्तियो को उल्लसित कर दिया। जीवात्मा रूपी विरहिणी की एक-एक रात युगो के समान हो गई थी। उसको प्रियतम से विना मिले हुए अनेक कल्प बीत गये थे। अब आत्मा को वोध हुआ है—जीव ने रहस्य को समझ लिया है। उसने इस जगत के खेल को मिथ्या समझ लिया है और उसको भगवान राम के प्रेम की अमूल्य निधि प्राप्त हो गई है। अव भगवान की कृपा हो गई है और चारो ओर प्रेम-संगीत सुनाई दे रहा है—आनन्द ही आनन्द है। (हृदय मे अनहदनाद का मधुर सगीत सुनाई दे रहा है) भगवान राम सहज रूप से उसके हृदय के राजा हो गये हैं अर्थात् भगवान के प्रति उसके मन मे सहज स्वाभाविक भक्ति उत्पन्न हो गई है। विषय-वासनाओ अथवा प्रभु विरह मे जलती रहने वाली जीवात्मा को सम्पूर्ण सुखो के मूल प्रेम-जल की प्राप्ति हो गई है। कवीरदास कहते है कि यह सव गुरु की कृपा का फल है। अव मेरे मोह एव अज्ञान जनित सशय और कष्ट समाप्त हो गये हैं।

अलकार—(i) रूपकातिशयोक्ति—विषहर।
(ii) विरोधाभास की व्यजना—जरि जाग, खेल मोरा।
(iii) साग रूपक—मास ...जाई, मेघ .. पियावै, माघ....मांना।
(iv) सभग पद यमक—गुन औगुन।
(v) अतिशयोक्ति—अपने .. पारा।
(vi) उदाहरण—नलिनी .... प्रजारा।
(vii) रूपक—मन पतंग, जल... ... मूल।

(viii) पुनरुक्ति प्रकाश जरत जरत।

विशेष—(i) खेल तुम्हारा मोरा—किसी की जान गई और आपकी अदा ठहरी।

(ii) मेघ न बरसै ⋯पियावै—समभाव के लिए तुलनात्मक अध्ययन करें—

जौं घन बरखै समय सिर जौं भरि जनम उदास।
तुलसी या चित चातकहि तऊ तिहारी आस।
जीव चराचर जहँ लगे हैं सबको हित मेह।
तुलसी चातक मन बस्यो घन सों सहज सनेह।
(गोस्वामी तुलसीदास)

(iii) भया दयाल⋯ आस—तुलना करे।

सुनि हो मैं हरि आवन की आवाज।
महल चढे-चढि जोऊँ सजनी, कब आवै महाराज।
दादुर मोर पपीहा बोलै, कोमल मधुरे साज।
उमग्या इन्द्र चहुँ दिसि बरसै, दामण छोड़ी लाज।
धरती रूप नवा-नवा धरिया, इन्द्र मिलण कै काज।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, वेगि मिलौ महाराज। (मीराँबाई)

(iv) अपने औगुन—पारा तुलना करें।

जो अपने सब औगुन कहहू। बाढहि कथा पार न लहहूँ।
(गोस्वामी तुलसीदास)

(v) मैं रनिरासो—जाई समभाव के लिए देखें।

तुम अपनायौ तब जानिहौं, जब मन फिरि परिहै।
तथा—जेहि सुभाव विषयानि लग्यो, तेहि सहज नाथ सौं नेह छाडि छल करिहै।
(गोस्वामी तुलसीदास)

(१८)

रांम नांम निज पाया सारा, अबिरथा झूठ सजल संसारा।
हरि उतग मै जाति पतंगा, जबकु केहरि कै ज्यूं संगा॥
क्यचिति ह्वै सुपनै निधि पाई, नहीं सोभा कौं घरो लुकाई।
हिरदै न समाइ जांनियै नहीं पारा, लागै लोभ न और हकारा॥
सुमिरत हू अपनै उनमानां, क्यंचित जोग रांम मैं जांनां।
मुखां साध का जानियै असाधा, क्यचित जोग रांम मै लाधा॥
कुबिज होइ अमृत फल बंछ्या, पहुँचा तब मन पूगी इछ्या।
नियर थै दूरि दूरि थै नियरा, रामचरित न जानियै जियरा॥
सीत थै अगिन फुनि होई, रबि थै ससि थै रवि सोई।
सीत थै अगिन परजरई, जल थै निधि निधि थै थल करई॥
बज्र थै तिण खिण भीतरि होई, तिण थैं कुलिस करै फुनि सोई।
गिरवर छार छार गिरि होई, अविगति गति जानै नहीं कोई॥

शब्दार्थ—उतग=ऊँचा। पतगा=कीडा—निम्न कोटि का प्राणी। जबुक=गीदड, सियार। अपने उपमाना=अपनी सामर्थ्य के अनुसार। हकारना= पुकारना। मुखाँ साध=मुख से साधना करता हूँ। कुविज=कुबड़ा।

सन्दर्भ—कबीर राम की माया का वर्णन करते है।

भावार्थ—मैंने अपने सारतत्व रामनाम को प्राप्त कर लिया है। मुझ को यह भी ज्ञान हो गया है कि यह समस्त ससार मिथ्या और निष्प्रयोजन है। भगवान अत्यन्त उच्च है और मैं निम्न कोटि का प्राणी हूँ। मेरा और भगवान का साथ वैसा ही है जैसा गीदड और सिह का साथ हो। मुझ को राम नाम की निधि ऐसे ही मिल गई है जैसे किसी अत्यन्त दरिद्र को स्वप्न मे निधि मिल जाती है। इस अपार शोभा वाली निधि को मैं छिपाकर नही रखू गा। भक्ति का आनन्द मेरे हृदय मे समा नही रहा है और इसकी कोई सीमा नही है। इस आनन्द के प्रति मुझे ऐसा लालच हो गया है कि मैं इसके आनन्द मे भागीदार होने के लिए अन्य किसी को पुकारता भी नही हूँ। मैं अपने हिसाब से (सामर्थ्य के अनुसार) राम नाम का स्मरण करता हूँ। इससे मुझ को राम के प्रेम-योग का कुछ थोडा वहुत ज्ञान हो गया है। मैं मुख से राम-नाम की साधना करता हूँ, परन्तु उस असाध्य भगवान को प्राप्त करना मैं क्या जानूँ ? मुझे तो केवल राम-नाम की किंचित उपलब्धि हुई है। मैं कुवडा हूँ मैंने ऊँचे पर लगने वाले अमृत फल की इच्छा की, मैं जब इस फल तक पहूँच गया, तब मेरी मनोकामना पूरी हुई अर्थात् जब तक मुझे मोक्ष की प्राप्ति नही हो गई, तब तक मैं अपने सीमित साधनों के द्वारा निरन्तर प्रयत्नशील वना रहा। वह परम तत्व अपना ही स्वरूप है। अत्यन्त समीप होते हुए भी अपने से भिन्न एव दूर प्रतीत होता है। राम के चरित्र को मेरा मन नही जानता है—वह अगम्य एव शब्दातीत है। इसकी माया अनिर्वचनीय है जो शीत से अग्नि, सूर्य से चन्द्रमा तथा चन्द्रमा से सूर्य कर देती है। शीत से अग्नि प्रज्वलित हो जाती है। जल की एक बूद भी जलनिधि मे परिणत हो जाती है और फिर वही जलराशि पृथ्वी के रूप मे ठोस हो जाती है। एक क्षण मे ही यह तत्व वज्र से तिनका बन जाता है और फिर दूसरे ही क्षण वह पुन कठोर वज्र मे परिणत हो जाता है। वह पहाड से रेणु और रेणु से पहाड वन जाता है। उस अविगत की माया (लीला को कोई भी नही जान सका है।

अलंकार—(i) उदाहरण—हरि ··· सगा।
(ii) अतिशयोक्ति —हिरदै ······पाई।
(iii) विरोधाभास·—नियरि तै······ नियरा, सोत···· फुनि होई।
(iv) संबंधातिशयोक्ति—गति जानै नहि कोई।

विशेष—(i) पतगा मे उपलक्षण है।
(ii) कुबिज····· ··बंछया—समभाव देखें—।

करन चहउँ रघुपति गुन गाहा। लघु मति मोरि चरित अवगाहा।

× × ×

मति अति नीच ऊँचि रुचि पाछी। चहिअ अमिय जग जुरइ न छाछी।

इत्यादि। (गोस्वामी तुलसीदास)

(१९)

जिहि दुरमति डोल्यौ संसारा, परे असूझि वार नहीं पारा ॥
बिख अमृत एकै करि लीन्हां, जिनि चीन्हां सुख तिहकू हरि दीन्हां ॥
सुख दुख जिनि चीन्हां नहीं जानां, ग्रासे काल सोग रुति मांनां ॥
होइ पतग दीपक मैं परई, झूठे स्वादि लागि जीव जरई ॥
कर गहि दीपक परहि जु कूपा, यहु अचिरज हम देखि अनूपा ॥
ग्यांनहीन ओछी मति बाधा, मुखा साध करतूति असाधा ॥
दरसन समि कछू साध न होई, गुर समान पूजिये सिध सोई ॥
भेष कहा जे बुधि बिसूधा, बिन परचै जग बूड़नि बूड़ा ॥
जदपि रबि कहिये सुर आही, झूठे रबि लीन्हा सुर चाही ॥
कबहूँ हुतासन होइ जरावै, कबहूँ अखड धार बरिषावै ॥
कबहूँ सीत काल करि राखा, तिहू प्रकार दुख देखा ॥
ताकूं सेवि मूढ़ सुख पावै, दौरै लाभ कूं सूल गवावै ॥
अछित राज दिने दिन होई, दिवस सिराइ जनम गये खोई ॥
मृत काल किनहूँ नही देखा, माया मोह धन अगम अलेखा ॥
झूठै झूठ रह्यौ उरझाई, साचा अलख जग लख्या न जाई ॥
साचै नियरै झूठै दूरी, विष कूँ कहै संजीवन मूरी ॥

शब्दार्थ—दुरमति=कुबुद्धिवाले, दुर्बुद्ध लोग। डोल्यौ=भटकते फिरते हैं। रुति=रुचि, अनुरक्ति। बाधा=आवद्ध। साध=साधु। असाधा=असाधु, दुष्ट। बिसूधा=विकृत हो जाए। सजीवनी=जीवन देने वाली।

सन्दर्भ—कबीर मोह-भ्रम गुप्त अज्ञानी जन का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—जो दुर्बुद्धि वाले व्यक्ति इस ससार के माया जाल मे भटकते रहते हैं, उनके लिए इस भवसागर का आर-पार नही है। ऐसे व्यक्ति विषयासक्ति रूपी विष और ईश्वर प्रेम रूपी अमृत मे कोई भेद नही समझते हैं। जो इस भेद को जान लेते हैं, उनको भगवान आनन्द प्रदान करते हैं। जो ईश्वर-प्रेम के सुख तथा विषयो के दुख के अन्तर को नही समझ पाए हैं, वे काल से ग्रसित रहे तथा उन्होने शोक को स्वीकार किया। ऐसे व्यक्ति मिथ्या विषय भोग के आनन्द के पीछे पतगो की भांति विषय-वासना के दीपक मे पडते हैं और नष्ट होते हैं। हमने यह एक अनोखा आश्चर्य देखा है कि व्यक्ति अपने हाथ मे ज्ञान का दीपक होने पर भी विषयो के कुएँ मे गिरते है। ऐसे ज्ञानहीन व्यक्ति ओछी बुद्धि (कुबुद्धि) द्वारा आवद्ध रहते हैं। वे चेहरे से (देखने मे) साधु लगते हैं, परन्तु कर्मो से असाधु

(दुष्ट) होते हैं। तत्त्व-दर्शन के समान कुछ भी साध्य (प्राप्तव्य) नही है। गुरु के समान जिसकी पूजा होने लगती है, वही वास्तव मे सिद्ध पुरुष है। इस वेष का क्या लाभ है जिसमे बुद्धि मोह ग्रस्त एव मलीन हो जाय ? परम तत्त्व से परिचय के अभाव मे यह जगत मोह मे डूबा हुआ है। यद्यपि यह कहा जाता है कि सूर्य देवता परम तत्त्व हैं। पर वह तो झूठा देवता है। व्यक्ति इस झूठे देवता से सुख चाहता है। वह सूर्य कभी तो आग बन कर जलाता है और कभी अखण्ड वर्षा की धारा वहाता है। और कभी अत्यन्त ठडक (शीतकाल) का समय कर देता है। इन तीनो स्थितियो (गर्मी, वर्षा, जाडा) मे बहुत दु ख है। ऐसे दु खदायी एव झूठे देवता की आराधना करना। मूर्ख क्या कभी सुख प्राप्त कर सकता है ? वे लाभ के लिए दौडते है, और अपनी गाठ की पूँजी (अपना सहज आनन्द स्वरूप) भी गवाँ बैठते हैं। विषयो का यह राज्य दिनो-दिन क्षीण हो रहा है। दिन बीतते जा रहे हैं और जन्म व्यर्थ जा रहा है। मृत्यु की ओर किसी का ध्यान नही है। माया, मोह, धन (सासारिक आकर्षण) का कोई हिसाब नही है—वे अगम्य एव अनिर्वचनीय हैं—उनकी कोई सीमा नही है। जीव मिथ्या वासनाओ वाले इस मिथ्या ससार मे ही उलझा हुआ है। सत्य एव अलक्ष परम तत्त्व को जगत के लोग देखने का प्रयत्न ही नही करते हैं। ईश्वर के प्रति सच्ची निष्ठा वाले जीव के लिए वह परम हैं। ईश्वर के प्रति सच्ची निष्ठा वाले जीव के लिए वह परम तत्त्व, अत्यन्त निकट है और जो मिथ्या वासनाओ से ग्रस्त है, उसके लिए वह परम तत्व दूर है। परन्तु (दुर्भाग्य तो यह है कि) यह मोह ग्रस्त जीव वासनाओं के विष को ही सजीवनी बूटी मान बैठता है।

अलकार—(i) विरोधाभास —कर गहि ·· · कूपा।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—दीपक कूपा।
(iii) छेकानुप्रास—अचरज अनूपा।
(iv) विषम—मुखा ··· असाधा।
(v) अनन्वय की व्यजना—दरसन ··· होई।
(vi) वृत्यानुप्रास—समि साध समान सिध सोई।
(vii) गूढोक्ति—भेष कहा···· ·· विसूधा।
(viii) विरोधाभास—विष कू· · मूरी।
विशेष—उपलक्षणा पद्धति पर वाह्याचार का विरोध है।

(२०)

कथ्यो न जाइ नियरै अरु दूरी, सकल अतीत रह्या घट पूरी ॥
जहां देखौं तहां रांम समांनां, तुम्ह बिन ठौर और नहीं आंनां ॥
जदपि रह्या सकल घट पूरी, भाव बिनां अभि अतरि दूरी ॥
लोभ पाप दोऊ जरै निरासा, झूठं झूठं झूठि लागि रही आसा ॥
जहुवां ह्लै निज प्रगट बजावा, सुख सतोष तहां हम पावा ॥

नित उठि जस कीन्ह परकासा, पावक रहै जैसे काष्ट निवासा ॥
बिना जुगति कैसे मथिया जाई, काष्टै पावक रह्या समाई ॥
कष्टै कष्ट अग्नि पर जरई, जारै दार अग्नि समि करई ॥
ज्यूं रांम कहे ते रांमै होई, दुख कलेस घालै सब खोई ॥
जन्म के कलि विष जांहि बिलाई, भरम करम का कछु न बसाई ॥
भरम करम दोऊ बरतै लोई इनका चरित न जांनै कोई ॥

शब्दार्थ— आना=अन्य। जहँवा=जिस अवस्था। कष्टै कष्ट=काठ से काठ को। कलिविष=कलमष, पाप।

संदर्भ—पूर्व रमैंणी के समान।

भावार्थ- परमतत्व न पास कहा जा सकता है और न दूर। वह सबसे परे होते हुए भी घट-घट मे व्याप्त है। मैं जहाँ कही भी देखता हूँ, वहाँ राम को ही व्याप्त देखता हूँ। हे भगवन्! तुम्हारे बिना मैं कोई स्थान नही जानता हूँ—अर्थात् कोई ऐसा स्थान नही है जहाँ तू न हो। यद्यपि वह तत्व समस्त हृदयो मे व्याप्त है तथापि वह आभ्यन्तर मे विराजमान् तत्व भक्ति-भाव के बिना दूर (अप्राप्य) ही बना रहता है। जीव लोभ और पाप के वशीभूत होकर निराशा की अग्नि मे जलते रहते हैं। झूठी वासनाओ मे ग्रस्त झूठे व्यक्ति झूठे विषय-भोगो से सुख की आशा करते रहते हैं। जिस अवस्था मे पहुँच कर मैं अपने मे व्याप्त अनाहद स्वरूप को ध्वनित कर पाया, वही मुझको सुख और सतोष की प्राप्ति हुई। वह परमतत्व सदैव अपने आपको सम्पूर्ण विश्व मे प्रकाशित करता है जैसे काठ मे अग्नि अव्यक्त रूप से निवास करती है। यद्यपि काष्ठ मे अग्नि व्याप्त रहती है तथापि प्रयत्न पूर्वक मथन किए बिना उसको प्रकट नही किया जा सकता है। (वैसे ही साधना के बिना अन्त करण मे व्याप्त परम तत्त्व) (अनाहत स्वरूप) का साक्षात्कार नही किया जा सकता है। काठ को काठ से रगड कर अग्नि प्रकट की जाती है। वह अग्नि प्रज्वलित होकर लकडी को भी अग्निमय कर लेती है। उसी प्रकार हृदय से प्रकट किए हुए राम का जप करने से साधक भी राममय हो जाता है। राम के साथ उसकी यह एकाकारता उसके सम्पूर्ण दु खो एव क्लेशो को नष्ट कर देती है, इससे उसके जन्मजात समस्त पाप विलीन हो जाते हैं। राम मय स्थिति प्राप्त हो जाने पर भ्रम तथा कर्म बन्धनो का कुछ भी वश नहीं चलता है, अर्थात् व्यक्ति अज्ञान जन्य भ्रम तथा कर्म-बन्धन से छुटकारा पा जाता है। ससार के प्राणी भ्रम तथा भ्रम जनित कर्मो मे ही व्यवहार करते रहते हैं। इनके स्वरूप को कोई भी नही समझ पाता है।

अलकार—(i) विरोधाभास—नियरै पूरी। जदपि पूरी।
(ii) सवधातिशयोक्ति—कथ्यौ न जाइ, भरम··· बसाई। इनका कोई।
(iii) पदमैत्री—ठौर और। होई खोई। भरम करम।

(iv) रूपक—निरासा।
(v) यमक—झूठै झूठै।
(vi) अनुप्रास—झूठे झूठै झूठ।
(vii) उदाहरण—नित उठि ··· निवासा, । जारै ··· होई।
(viii) वक्रोक्ति—बिना ·······जाई।
(x) तद्गुण - अग्नि सम करई।

विशेष – (i) परमतत्व की अनिवर्चनीयता एव सर्वव्यापकता का निरूपण है।

(ii) सर्व घट वासी प्रभु को काष्ठ मे व्याप्त अग्नि के समान बताकर कबीर ने एक दुरूह विषय को सहज ही हृदयगम्य कर दिया है। यहाँ पर इन्होने 'अद्वैत वादियो की-भाँति' काष्ठवह्नि न्याय द्वारा ब्रह्म के स्वरूप को स्पष्ट किया है।

(गोस्वामी तुलसीदास ने भी लिखा है)

एक दारुगत देखिअ एकू। पावक सम जुग ब्रह्म बिवेकू।

(२१)

इन दोऊ ससार भुलावा, इहके लागे ग्यांन गवावा ।।
इनकौ मरम पै सोई बिचारी, सदा आनद लै लीन मुरारी ।।
ग्यांन द्रिष्ठि निज पेखै जोई, इनका चरित जांनै पै सोई।
ज्यू रजनी रज देखत अधियारी, डसे भुवगम बिन उजियारी ।।
तारे अगिनत गुनहि अपारा, तऊ कछू नही होत अधारा ।।
झूठ देखि जीव अधिक डराई, बिनां भुवगम डसी दुनियांई ।।
झूठै झूठै लागि रही आसा, जेठ मास जैसे कुरंग पियासा ।।
इक त्रिषांवंत दह दिसि फिरि आवै, झूठै लगा नीर न पावै ।।
इक त्रिषावंत अरु जाइ जराई, झूठी आस लागि मरि जाई ।।
नीझर नीर जांनि परहरिया, करम के बांधे लालच करिया ।।
कहै मोर कछू आहि न वाहो, भरम करम दोऊ मति गवाई ।।
भरम करम दोऊ मति परहरिया, झूठे नांऊ साच ले धरिया ।।
रजनी गत भई रवि परकासा, भरम करम धू केर बिनासा ।।
रवि प्रकास तारे गुन खीनां, आचार व्योहार सब भये मलीना ।।
बिष के दाधे बिष नहीं भावै, जरत जरत सुखसागर पावै ।।

शब्दार्थ—दोऊ=माया मोह। लागें=इनके कारण। पेख=देखै। रज=ज्योति, प्रकाश। नीझर=निर्झर=आनन्द का निर्झर।

सदर्भ—कबीर कहते है कि अज्ञान एव दुःख ग्रस्त जीव को अन्तत. ज्ञान एव प्रकाश की प्राप्ति हो जाती है।

भावार्थ— माया-मोह इन दोनो मे फस कर यह अपने आत्म स्वरूप को भुल जाता है। इन दोनो बातो के रहस्य पर जो चिंतन करता है, वह परमतत्त्व मे लीन

होकर सर्वदा आनन्द का ही अनुभव करता है। जो व्यक्ति ज्ञान दृष्टि से अपने स्वरूप का साक्षात्कार करता रहता है, वही भ्रम के रहस्य तथा कर्म की सच्ची प्रक्रिया को समझ पाता है।

जैसे रात्रि मे दृष्टि का अन्धकार रहता है और प्रकाश के अभाव मे भ्रम जनित सर्प उसको डस लेता है, वैसे ही यह जीवन है। इसमे अज्ञान का अधकार है और इसमे मोहरूपी सर्प उसको डस लेता है। असख्य तारे हैं, उनकी शक्ति भी अपार है, परन्तु फिर भी वे दृष्टि का आधार नही बन पाते हैं अर्थात् उनका प्रकाश देखने की सामर्थ्य प्रदान नही कर पाता है। इस भ्रम जनित ससार-सर्प को देख कर जगत के लोग भयभीत रहते हैं। बिना ही सर्प के यह दुनियाँ दर्शित अनुभव करती है। भ्रम मे पडे हुए जीव को इन झूठे विषयो से आशा बधी हुई है। जैसे जेठ के महीने मे (अधिक तेज धूप के समय) प्यास से पीडित हरिण मृगतृष्णा मे भटकता रहता है, वैसे ही मानव विषयो के प्रति आसक्त होकर दसो दिशाओ मे भटकता है। वह मिथ्या मृगतृष्णा मे फँसे होने के कारण जल नही पाता है। उसी प्रकार विषयासक्त व्यक्ति को भी विषयासक्ति के द्वारा तृप्ति नही हो पाती है। एक तो वह प्यास से पीडित रहता है और दूसरे वह सूर्य के ताप से जल रहा है। मृगतृष्णा के जल की झूठी आशा मे भटकता हुआ वह मृग मर जाता है। यही जीव की अवस्था है। इस जीव रूपी मृग ने जान-बूझकर आत्मज्ञान (ईश्वर प्रेम) के आनन्द निर्झर को छोड़ दिया। अपने कर्मो के बन्धन के वशीभूत होकर मानव वाह्य विषयो के लालच मे पड़ गया। जहाँ कुछ भी नही है, जीव-मृग ने उसी मे अपनी ममता जमा ली है। इसी प्रकार भ्रम एव भ्रमजनित कर्म दोनो ने मानव का विवेक नष्ट कर दिया। सत्य वस्तु पर झूठा नाम आरोपित करके उसको अपने पास रखा।

अन्त मे अज्ञान की रात्रि समाप्त हुई और ज्ञान का सूर्य प्रकाशित हो गया। भ्रम और करम की धुन्ध का भी नाश हो गया। सूर्य रूपी आत्म ज्ञान के प्रकाश मे बहु देवोपासना रूपी तारागण क्षीण होगये (मन्द पड गये)। सम्पूर्ण सासारिक आचार-व्यवहार मलीन पड गये। वास्तव मे विषयासक्ति के द्वारा सताए हुए को विषय रूपी विप अच्छा नही लगता है। विषयो से जलते-जलते अन्त मे जीव सुख सागर भगवान एव उनके प्रेम को प्राप्त हो जाता है।

अलकार— (i) रूपकातिशयोक्ति—सम्पूर्ण रमैणी।
(ii) साग रूपक—सम्पूर्ण रमैणी।
(iii) रूपक—ग्यान दृष्टि।
(iv) उदाहरण—ज्यू उजियारी। झूठे · पियासा।
(v) विशेपोक्ति—तारे · अधारा।
(vi) विभावना—बिना दुनियाई।
(vii) पुनरुक्ति प्रकाश—जरत जरत।

विशेष—(i) जीव के लिए भविष्य की आशा का सदेश है। कष्ट-सहन करते

हुए जीव अपनी भूलो से सीखता जाता है, क्रमशः विकसित होता जाता है और ज्ञानान्धकार से मुक्त हो जाता है। विषयी जीव स्वय विषयो से विरक्त हो जाता है और अन्तत परम तत्त्व को प्राप्त कर लेता है।

विषय-दग्ध जीव की स्थिति दूध से जले हुए उस व्यक्ति के समान हो जाती है जो छाछ को फूंक फूक कर पीता है। भ्रम जनित रज्जु सर्प से दशित व्यक्ति लोक-व्यवहार मे भी रस्सी को सर्प समझने लगता है। जो तुलसीदास सर्प को रस्सी समझकर प्रियतमा की अट्टालिका पर चढ गये थे, उन्ही तुलसी ने प्रत्येक रस्सी को सर्प समझ कर छोड दिया था।

(11) झूठ देखि" दुनियाई—समभाव के लिए देखे—

केशव कहि न जाइ का कहिये।

× × ×

सून्य भीति पर चित्र, रग नहि तनु बिनु लिखा चितेरे।

× × ×

रविकर-नीर वसै अति दारुन, मकर रूप तेहि माहीं।
वदन हीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं।
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पहिचानै।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(२२)

अनित झूठ दिन धावै आसा, अंध दुरगंध सहै दुख त्रासा॥
इक त्रिषावत दुसरै रवि तपई, दह दिसि ज्वाला चहुँ दिसि जरई॥
करि सनमुखि जब ग्यांन बिचारी, सनमुखि परिया अगनि मझारी॥
गछत गछत जब आगै आवा, बिव उनमॉन ढिबुवा इक पावा॥
सीतल सरीर तन रह्या समाई, तहां छाड़ि कत दाझै जाई॥
यूं मन बारूनि भया हंमारा, दाधा दुख कलेस संसारा॥
जरत फिरै चौरासी लेखा, सुख कर मूल किनहूँ नहीं देखा॥
जाकै छाडै भये अनाथा, भूलि परे नहीं पावै पंथा॥
अछै अभि अंतरि नियरै दूरी, बिन चीन्ह्यां क्यूं पाइये मूरी॥
जा बिन हंस, बहुत दुख पावा, जरत गुरि रांम मिलावा॥
मिल्या रांम रह्या सहजि समाई, खिन बिछुर्यां जीव उरझै जाई॥
जा मिलियां तै कीजै बधाई, परमांनद रैनि दिन गाई॥
सखी सहेली लीन्ह बुलाई, रुति परमानद भेटियै जाई॥
सखी सहेली करहि अनदू, हित करि भेटे परमानंदू॥
चली सखी जहूँवां निज रामां, भये उछाह छाडे सब कांमां॥
जांनूं कि मोरै सरस बसता, मै बलि जांऊ तोरि भगवंता॥

भगति हेत गावै लैलीनां, ज्यूं बन नाद कोकिला कीन्हां ॥
बाजै संख सबद धुनि बेनां, तत मन चित हरि गोबिंद लीनां ॥
चल अचल पांइन पगुरनी, मधुकरि ज्यूं लेहि अघरनीं ॥
सावज सीह रहे सब मांची, चद अरु सूर रहे रथ खांची ।
गण गंध्रप मुनि जोवै देवा, आरति करि करि बिनवै सेवा ॥
बासि गयद्र ब्रह्मा करै आसा, हम क्यूं चित दुर्लभ रांम दासा ॥

शब्दार्थ—अनिल=पवन । अघ=अघड, आधी । तृषावत=प्यासा, पानी का इच्छुक । मझारी=मध्य । गछत गछत=चलते-चलते । बिव=दो, योग्यता एव शक्ति । ढिडवा=गडढा । बारुनि=वारुणि=मदिरा ।

सन्दर्भ—कबीरदास ज्ञानोदय की दशा का वर्णन करते हैं ।

भावार्थ—पवन दिन भर झूंठी आशा मे भटकता रहता है । वह अघड बना हुआ दुर्गन्ध से परिपूर्ण अनेक प्रकार के दु खो एव कष्टो को सहन करता रहता है । एक तो प्यासा रहता है और दूसरे सूर्य उसको अत्यधिक तप्त करता रहता है । उसको दसो दिशाओ मे (सर्वत्र) अग्नि का सामना करना पडता है और इस प्रकार वह जहाँ जाता है वहाँ (चारो दिशाओ मे) वह जलता ही रहता है । जब अपने दु खो पर विचार करके वह आगे बढा तो सामने ही वह जलती हुई अग्नि मे गिर गया चलते-चलते जब वह आगे आया, तो उसको अपनी योग्यता एव शक्ति के अनुरूप एक छोटा सा-गर्त (शरीर की उपाधि) प्राप्त हो गया । उसमे वायु का शरीर शीतल होकर समा गया, वह उसी मे रचपच गया । एक आसक्ति को छोडकर उसको दूसरे शरीर के प्रति आसक्ति भी खूब प्राप्त हुई । पवन की तरह मेरा भी मन सासारिक सुखो की मदिरा मे रचपच गया । इस प्रकार हमको पुन दु खो एव सासारिक क्लेशो मे दग्ध होना पडा । हम चौरासी लाख योनियो मे दग्ध होते हुए भटकते फिरे, परन्तु आनद के हेतु भगवान एव उनके प्रति प्रेम की ओर कभी अथवा किसी ने भी ध्यान नहीं दिया । जिस भगवान को छोडने के कारण हम जीव अनाथ हो गये, उसी को वह सर्वथा भूल गया है और उसके साक्षात्कार के उपयुक्त साधना पर वह अग्रसर नही होता है । वह परमतत्त्व जीव के हृदय (अन्त करण) मे विराज मान रहता है, और (अज्ञान के कारण) वह पास होते हुए भी दूर ही रहता है । उस तत्त्व को पहचाने बिना जीव को आनद कद भगवान किस प्रकार दर्शन दे सकते हैं । जिस परम तत्त्व के अभाव मे जीव अत्यन्त दु खी हुआ । सासारिक कथाओ मे जलते रहने वाले उस जीव को सद्‌गुरु ने राम तत्त्व से मिला दिया । राम तत्त्व का साक्षात्कार हो जाने पर जीव सहज स्वरूप मे तदाकार हो गया । उस परम तत्व से वह क्षण भर को बिछुडा और फिर मायाजाल मे फस गया । उस प्रियतम को साक्षात्कार होने पर आनद के बधाये गाये गये । और परमानद प्रभु के साथ दिन रात आनन्द के साथ (गाते हुए) व्यतीत हुए । जीवात्मा अपनी समस्त सखी सहेलियो (अन्त करण की प्रेमानुकूल प्रवृत्तियो) को एकत्र कर लिया और वह हर्ष एव उल्लास

के साथ परमेश्वर से जाकर मिल गई । सारी ज्ञानेन्द्रियाँ आनंदमय हो गई तथा अत्यधिक प्रेम के साथ भगवान के प्रेम मे मग्न हो गई । सखियाँ वहाँ चली जहाँ उनके परमानन्द राम थे अर्थात् समस्त वृत्तियाँ रामोन्मुख हो गई । उनके मन मे अत्यन्त उल्लास था और उन्होने समस्त विषयासक्ति का त्याग कर दिया । आनन्द मे उल्लसित जीवात्मा कहती है कि मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मेरे हृदय मे वसत का विकास हो गया है । हे भगवान, मैं आपकी बलिहारी जाती हूँ । मेरा हृदय भक्ति रूपी वसत मे लवलीन होकर उसी प्रकार गा रहा है जैसे वन मे कोकिला गू ज रही हो । हृदय मे शखो का शब्द होता है और वीणा की ध्वनि हो रही है । जीव का तन मन चित्त भगवान मे तन्मय हो गया है । अब तक जो भगवान अचल (कठोर एव निर्जीव) प्रतीत होते थे, अब भक्ति के प्रभाव से द्रवित (सजीव एव करुणार्द्र) हो गये हैं और जो पगु थे, उन्हे पैर मिल गये है अर्थात् जो भगवान के प्रति उन्मुख होने मे असमर्थ थे, वह अब भक्ति-पथ पर अग्रसर हो गये हैं । भक्त लोग भ्रमर की भाँति भगवान के अधर रस का पान कर रहे हैं । शिकार योग्य पशु और शिकारी सिह वैर-भाव भूल कर भक्ति मे तन्मय हो गये हैं । सूर्य और चन्द्रमा भी अपने अपने रथो को खीचकर खडे हो गये हैं । देवगण, गन्धर्व, मुनि तथा जितने भी देवता हैं, वे सब भगवान की छवि का दर्शन-लाभ करते हैं तथा उनकी आरती करते हैं, प्रार्थना करते हैं तथा सेवा करते हैं । वासुकी, इन्द्र, ब्रह्मा आदि सब भक्ति (ज्ञानोदय) की इस दशा को प्राप्त करने की इच्छा करते हैं और यह मनोरथ करते हैं कि हमारे चित्त मे राम के प्रति दुर्लभ दास्य भक्ति का निवास हो ।

अलंकार –(i) मानवीकरण—पवन सम्बन्धी उक्तियाँ । चद अरु सूर्य····
खाची पवन को यदि मन का प्रतीक माना जाए, तो यहाँ अप्रस्तुत विधान का अश मानने से 'उपमा' अलकार भी हो सकता है ।

(ii) यमक—सनमुखि ।

(iii) पुनरुक्ति प्रकाश—गछत गछत, जरत-जरत, करि-करि ।

(iv) गूढोक्ति—तहाँ छाडि·······जाई ।

(v) रूपक –मन वारुनि ।

(vi) विरोधाभास—अद्दै,···· ·· पूरी ।

(vii) वक्रोक्ति—बिन ·· ···पूरी ।

(viii) उपमा—ज्यू ···· ·कीन्हा, मधुकर········अधरनी ।

(ix) सभग पद यमक—चल अचल ।

विशेष—(i) ज्ञानोदय, अथवा भक्ति के उदय दशा का सजीव वर्णन है ।

(ii) निसर्ग के रहस्यवाद की सुन्दर व्यजना है ।

(iii) सावज ··· · सांची—समभाव देखें—

कहलाने एकत बसत अहि मयूर मृग बाघ ।
जगत तपोवन सो कियो, दीरघ दाघ निदाघ । (बिहारी)

(IV) चंद अरु सूर रहे रथ खाँची—समभाव की अभिव्यक्ति देखें—

गुन-गंभीर-गोपाल मुरली कर लीन्हीं तबहि उठाइ।
धरि करि बेनु अधर मनमोहन कियो मधुर धुनि गान।
मोहे सकल जीव जल-थल के सुनि वार्यो तन-प्रान।
× × ×
डुलति लता नहिं मरुत मद गति सुनि सुन्दर मुख बैन।
खग मृग मीन अधीन भये सब, कियो जमुन-जल सैन। (सूरदास)

(२३)

भगति हेतु रांम गुन गांवै, सुर नर मुनि दुरलभ पद पांवै ॥
पुनिम बिमल ससि मास बसंता, दरसन जोति मिले भगवंता ॥
चंदन बिलनी बिरहनि धारा, यूं पूजिये प्रांनपति रांम पियारा ॥
भाव भगति पूजा अरु पाती, आतमरांम मिले बहु भांती ॥
रांम रांम रांम रुचि मांनै, सदा अनद रांम ल्यौ जांनै ॥
पाया सुख सागर कर मूला, जो सुख नहीं कहूं सम तूला ॥
सुख समाधि सुख भया हमारा, मिल्या न बेगर होइ ।
जिहि लाधा सो जांनिहै, रांम कबीरा और न जांनै कोइ ॥

शब्दार्थ - पुनिम=पूर्णिमा। बिलनी=बिल्व, बेल का फल। बेगर=पृथक। लाधा=लाभ प्राप्त किया।

संदर्भ— कबीरदास सच्चे भक्त का वर्णन करते हैं।

भावार्थ— भक्त जन भगवान की भक्ति की प्राप्ति के लिए राम के गुणो का स्मरण करते हैं और उस परम पद को प्राप्त करते है, जो देवता, सिद्ध जन एव मुनियो के लिए भी दुर्लभ है। वसत मास की पूर्णिमा के निर्मल चन्द्रमा के प्रकाश मे भगवान की ज्योति के दर्शन होते हैं। बिरहिणी जीवात्मा ने भावनाओ का चन्दन एव बेल-फल धारण किया और इस प्रकार अपने प्राणपति राम की पूजा की। भाव की पूजा की सामग्री है तथा भक्ति ही फूल-पत्ती हैं। इस प्रकार की पूजा करने पर जीवात्मा को आत्माराम की प्राप्ति हो गई। अब 'राम-नाम' के निरन्तर उच्चारण मे ही मन लगता है और सदैव राम मे लौ लगाकर आनद का अनुभव करती है। जीवात्मा को आनन्द सागर के मूल स्रोत भगवान (भगवद् प्रेम) की प्राप्ति हो गई है। उस सुख की समानता मे अन्य कोई सुख नही कर सकता है। मेरा यह सुख समाधि के सुख के समान है। अब मैं परमात्मा के साथ एकाकार हो गई हूँ और उनसे पृथक् नही होऊँगी। कबीरदास कहते हैं कि इस आनद को वे ही जान सकते हैं— जिनको इसकी अनुभूति का लाभ हुआ है, अन्य कोई इसको नही जान सकता है।

अलंकार—(I) व्यतिरेक की व्यजना—सुर नर ····पावै।
(II) रूपकातिशयोक्ति—ससि, वसता।
(III) रूपक—भाव··· ··· पाती।

(iv) पुनरुक्ति प्रकाश—राम की आवृत्ति ।
(v) अनन्वय—जो सुख ' ''' तूला ।
(iv) उपमा—सुख''' ''''हमारा ।

विशेष—(1) बसन्त एवं ससि सुन्दर प्रतीक हैं। बसंत है भक्ति के उदय का महोत्सव। चन्द्रमा है प्रेम का प्रतीक।

(ii) भक्ति की दशा का मार्मिक वर्णन है।

(iii) रहस्यवाद की व्यजना है।

(iv) जिहि''' ' ' जानै कोइ— इस प्रकार की पक्तियो मे कबीरदास भक्ति के उदय के महोत्सव का दिव्य सगीत गाते हुए दिखाई देते हैं, उसे मौन आचरण कहिए अथवा गूंगे का गुड कहिए। यथा—

अपुनपौ आपुन ही में पायो।
सबद-ही सबद भयो उजियारो, सतगुरु भेद बतायो।
× × ×
सूरदास, समुझे की यह गति, मन ही मन मुसकायो।
कहि न जाइ या सुख की महिमा, ज्यों गूंगे गुर खायो। (सूरदास)

[५] अष्टपदी रमैणी

(२४)

केऊ केऊ तीरथ ब्रत लपटांनां, केऊ केऊ केवल रांम निज जांनां ॥
अजरा अमर एक अस्थांनां, ताका मरम काहू बिरलै जांना ॥
अबरन जोति सकल उजियारा, द्रिष्टि समांन दास निस्तारा ॥
जे नहीं उपज्या धरनि सरीरा, ताकै पथिन सींच्या नीरा ॥
जा नहीं लागे सूरजि के बांनां, सो मोहि आंनि देहु को दानां ॥
जब नहीं होते पवन नहीं पानी, जब नहीं होती सिष्टि उपानी ॥
जब नहीं होते प्यंड न वासा, तब नहीं होते धरनि अकासा ॥
जब नहीं होते गरभ न मूला, तब नहीं होते कली न फूला ॥
जब नहीं होते सबद न स्वाद, तब नहीं होते बिद्यान वादं ॥
जब नहीं होते गुरू न चेला, गम अगमै पथ अकेला ॥

अबगति की गति क्या कहूँ, जसकर गाँव न नांव ।
गुन विहूंन का पेखिये काकर धरिये नांव ॥

शब्दार्थ—लपटाना = लिप्त। वर्ण = रग, रूप। निस्तारा = कल्याण।

सन्दर्भ—कबीरदास परम तत्व की अनिर्वचनीयता का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—कुछ लोग तीर्थ ब्रत आदि मे ही लिप्त बने रहते हैं। कुछ लोग केवल राम को ही अपना सर्वस्व समझते है। वह अजर एव अमर तत्त्व एक ही स्थान पर है। उसके रहस्य को कोई बिरला ही जानता है। वह रूप रहित ज्योति है जिसका प्रकाश सवत्र फैला हुआ है। उस ज्योति के दृष्टि मे समाते ही (उसका

साक्षात्कार होते ही भक्त का कल्याण हो जाता है। वह ज्योति उत्पन्न नही हुई और उसने शरीर भी धारण नही किया। उसको प्राप्त करने का मार्ग जल से सीचा हुआ नही है अर्थात् सरल सुगम नही है। वहाँ तक सूर्य का प्रकाश नही पहुँचता है। उस परम ज्योति को लाकर मुझको कौन प्रदान करेगा ? उस ज्योति के साक्षात्कार की अवस्था मे न हवा है न पानी। उस अवस्था मे सृष्टि की उत्पत्ति भी नही हुई थी। उस समय न शरीर था, न उसका निवासी प्राण ही। उस समय न धरती थी न आकाश ही। उस समय न गर्भ था न उसका मूल कारण ही न उपादान कारण मूल प्रकृति थी और न मित्र कारण पुरुष ही) तब न कली थी और न फूल था अर्थात् अव्यक्त व्यक्त की कल्पना नही थी। उस अवस्था मे न शब्द था और न उसका भोग ही। तब न ये विधाएँ थी और न उससे सम्बन्धित वाद-विवाद ही। उस अवस्था मे गुरु और चेला भी नही थे। उस समय गम्य और अगम्य करके विविध मार्ग नही थे—केवल सहज प्रेम-साधना का एक ही मार्ग था। उस अविगत के स्वरूप का क्या वर्णन करूँ ? उसका न कोई गाँव (निवास स्थान) है और न कोई नाम। उस गुणातीत को किस प्रकार देखा जा सकता है ? उसका नाम भी क्या रखा जा सकता है ? अभिप्राय यह है कि वह परय तत्त्व स्थान, नाम, गुण आदि से रहित है तथा शब्द और अर्थ के द्वारा जो कुछ अभिधेय है उससे वह परे है।

अलंकार—(i) पुनरुक्ति प्रकाश—केऊ केऊ।

(ii) विरोधाभास—अवरन ज्योति उजियारा।

(iii) वक्रोक्ति—सो मोहि दाना, गुन विहून · · · नाव।

(iv) सभग पद यमक—पानी उपानी।

विशेष—(i) वह परम अनादि, अरूप, अवर्णनीय, अगोचर है।

(ii) सवद—उपलक्षणा पद्धति से तात्पर्य है इन्द्रियासक्ति।

(iii) गम अगमै पथ अकेला—वह ज्ञाता और ज्ञेय के भेदो से रहित केवल ज्ञान स्वरूप है।

(iv) ब्रह्म की अनिवर्चनीयता एव अद्वैत का प्रतिपादन कबीर पर वेदात दर्शन के प्रभाव को द्योतित करता है।

(२५)

आदम आदि सुधि नहीं पाई, मां मां हवा कहां थै आई ॥
जब नहीं होते रांम खुदाई, साखा मूल आदि नहीं भाई ॥
जव नहीं होते तुरक न हिंदू, माका उदर पिया का व्यंदू ॥
जब नहीं होते गाई कसाई, तब बिसमला किनि फुरमाई ॥
भूले फिरै दीन ह्वै धांवे ता साहिव का पंथ न पावै ॥
संजोगै करि गुण धर्या, बिजोगै गुंण जाइ ।
जिभ्या स्वारथि आपणै, कीजै वहुत उपाइ ॥

शब्दार्थ—आदम=आदि मानव। आदि=मूल तत्त्व।

सन्दर्भ— कबीरदास मानव के अज्ञान का वर्णन करते है।

भावार्थ—आदि मानव को मूल तत्व का ज्ञान नही हुआ। मानव जाति की माता हौवा कहाँ से आई? मूल तत्व की वह अवस्था थी जहाँ न राम था, न खुदा ही। भाई, उस अवस्था मे शाखा, मूल आदि कुछ भी कल्पना नही है। वहाँ न मुसलमान है न हिन्दू। न माता का गर्भ है, न पिता का विन्दु ही अर्थात् उस स्थिति मे माता-पिता की भी कल्पना नही है। उस समय गाय न थी उसको मारने वाला कसाई नही था। तब भगवान के नाम पर हलाल करने का हुक्म किसने दिया? जीव अज्ञान मे भूला हुआ उसकी खोज मे दीन बना हुआ इधर-उधर भटक रहा है। उसको भगवत्प्राप्ति का मार्ग नही मिल रहा है। भक्ति के द्वारा भगवान से तादात्मय स्थापित करने से जीव मे सद्‌गुणो का विकास होता है और उससे पराङ्-मुख (विमुख) होने पर वे समस्त सद्‌गुण समाप्त हो जाते हैं। परन्तु फिर भी मानव अपनी जिह्वा के स्वाद (इन्द्रिय भोग) के वशीभूत होकर उसकी तृप्ति के लिए अनेक उपाय करता फिरता है।

अलंकार—(i) सभग पद यमक—आदिम आदि।

(ii) सम्वन्धातिशयोक्ति—आदम···· पाई।

(iii) गूढोक्ति—मामा ····आई।

(iv) वीप्सा—मा मा।

(v) वक्रोक्ति—विसमला ··· फुरमाई।

(vi) विशेषोक्ति—भूले फिरे ··· ·· न पावै।

(vii) पदमैत्री—व्यदू हिन्दू।

विशेष—(i) 'एकोब्रह्म द्वितीयो नास्ति' का प्रतिपादन है। मूल तत्त्व संश्लेष्टावस्था मे रहता है। उसका विश्लेषण नाम-रूप अथच उपाधि का हेतु वनता है। द्वैत बुद्धि ही समस्त भेद एव सघर्ष का मूल हेतु है।

(ii) जिभ्या स्वारथि— उपलक्षणा पद्धति से— इन्द्रियासवित।

(iii) भक्ति भाव का प्रतिपादन है। भगवान की कृपा द्वारा ही जीव को सद्‌गुण प्राप्त होते हैं। जब भगवान कृष्ण ने अपना वरदहस्त हटा लिया तो अर्जुन के गाण्डीव की प्रत्यचा शिथिल हो गई और उसके सरक्षण मे जाने वाली गोपियों को साधारण भीलों ने लूट लिया था।

(२६)

जिनि कलमां कलि मांहि पठावा कुदरति खोजि तिनहूं नहीं पावा।।
कर्म करीम भये कर्तूता, वेद कुरान भये दोऊ रीता।।
कृतम सो जु गरभ अवतरिया, कृतम सो जु नाव जस धरिया।।
कृतम सुनित्य और जनेऊ, हिंदू तुरक न जानै भेऊ।।
मन मुसले की जुगति न जानैं, मति भूलै द्वै दीन बखानैं।।

पाणी पवन संयोग करि, कीया है उतपाति ।
सुनि मैं सबद समाइगा, तब कासनि कहिये जात ।।

शब्दार्थ—कलमा= वह वाक्य जो मुसलमानो के धर्म-विश्वास का मूल मंत्र है "ला इलाह इल्लिल्लाह, मुहम्मद रसूलिल्लाह ।" मा कुदरति= माया । खोजि= पता, रहस्य । रीता=वाह्याचार के ग्रन्थ ।

संदर्भ—कबीरदास धार्मिक वाह्याचार की निरर्थकता बताते हैं ।

भावार्थ—जिसने इस कलियुग मे कलमा का उपदेश मानवो तक पहुँचाया, वह भी भगवान की माया का रहस्य नही समझ सका । मोह एव अज्ञान के प्रभाव के कारण श्रेष्ठ कर्म भी निंद्य कर्मों मे परिणत हो जाते है । वेद और कुरान जैसे धर्म के श्रेष्ठ ग्रन्थ भी अज्ञानी व्यक्तियो के हाथो मे पड जाने के कारण वाह्याचार के आधार बन गये । जो गर्भ मे उत्पन्न होता है, वह कृत्रिम है जो नाम और यश धारण करता है, वह भी कृत्रिम है । सुन्नत करवाना और यज्ञोपवीत धारण करना दोनो ही वाह्याडम्बर मात्र हैं । हिन्दू और मुसलमान दोनो ही परम तत्व के वास्तविक रूप को नही जानते हैं । व्यक्ति अपने मन का सुधार करने का उपाय तो जानता नही है और मति भ्रष्ट होकर दो भिन्न धर्मो की बात करता है । जल और हवा, विन्दु एव प्राणी के सयोग से भगवान ने इस शरीर की उत्पत्ति की है । रे मानव जब शब्द शून्य मे समा जाएगा अर्थात् जब व्यक्ति व्यापक चैतन्य मे विलीन हो जाएगा, तब उस समय जाति-भेद की बात किससे करेगा ?

अलंकार—(i) वृत्यानुप्रास—कलमा कलि कुदरति । करम करीम ।
(ii) सवधातिशयोक्ति—कुदरति पावा । हिंदू—मेऊ ।
(iii) दृष्टान्त—वेद कुरान ' रीता ।
(iv) विरोधाभास—कृतम घटिया ।
(v) वक्रोक्ति—तब कासनि" जाति ।

विशेष—(i) वाह्याचार का विरोध है ।

(ii) कबीर कहते हैं कि धर्म ग्रन्थ झूठे नही है । अज्ञानियो एव स्वार्थियो के हाथो मे पडकर वे वाह्याचार के मात्र साधन बन कर रह गये हैं । उनका वास्तविक स्वरूप तिरोहित हो गया है ।

(iii) कृतम' ' घटिया—व्यजना यह है कि परम तत्व अजन्मा एव नाम-रूप के परे है ।

(iv) पारमार्थिक अवस्था अभेदात्मक है । पारमाणविक दशा मे अभेद की ही कल्पना की जा सकती है ।

(२७)

तुरकी धरम बहुत हम खोजा, बहु बजगार करैं ए बोधा ।।
गाफिल गरब करै अधिकाई, स्वारथ अरथि बधैं ए गाई ।।

जाकौ दूध धाइ करि पीजै, ता माता कौं वध क्यूं कीजै ॥
लहुरै थकै दुहि पीया खीरो, ताका अहमक भकै सरीरो ॥
बेअकली अकलि न जांनहीं, भूले फिरै ए लोइ ।
दिल दरिया दीदार बिन, भिस्त कहाँ थै होइ ॥

शब्दार्थ—तुरकी धर्म = इसलाम धर्म । बजगार=अनुचित कार्य । बोधा= जान बूझ कर । गोफिल=गाफिल, अहंकार मे मदहोश । अहमक=पागल, मूर्ख । दिल दरिया=विशाल हृदय । दीदार=साक्षात्कार । भिस्त=वहिश्त, स्वर्ग । लहुरैं =छोटे वच्चे ।

सन्दर्भ—कवीरदास इसलाम धर्म के वाह्याचार के प्रति विरोध प्रकट करतेहैं।

भावार्थ—हमने इसलाम धर्म के सच्चे अनुयायियो की बहुत खोज की । ये लोग जान-बूझ कर अनेक अनुचित कार्य करते हैं । ये धर्म के अहकार मे मदहोश रहते हैं और स्वार्थ के वशीभूत होकर गाय का वध करते हैं । माता के समान जिसके दूध को पिया जाता है, उस (गाय) का वध क्यो किया जाना चाहिए । छोटे वच्चे तथा थके हुए (रोगी एव वृद्ध) व्यक्ति जिसका दूध पीते हैं, उसी गाय के शरीर को मूर्ख व्यक्ति खाते हैं । वे मूर्ख लोग ज्ञान की वात को जानते नहीं हैं, परन्तु अपने ज्ञान के अहकार मे भूले हुए रहते हैं । उदार हृदय वाले सबको प्रेम करने वाले भगवान के साक्षात्कार के विना व्यक्ति को स्वर्ग की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है ? अर्थात् करुणा सागर भगवान के सच्चे स्वरूप दर्शन के अभाव मे सुख-शांति की प्राप्ति सम्भव नही है ।

अलंकार—(i) गूढोक्ति—ता माता····कीजै ।
(ii) अनुप्रास—दिल दरिया दीदार ।
(iii) वक्रोक्ति—भिस्त····होइ ।

विशेष—(i) मासाहार का विरोध है—विशेष कर गोहत्या का यह वैष्णव धर्म का प्रभाव है ।

(ii) वाह्याचार का विरोध है, तथा भगवत्प्रेम का प्रतिपादन है । 'दिल दरिया' मे विश्व-प्रेम की व्यंजना है ।

(२८)

पंडित भूले पढ़ि गुन्य वेदा, आप न पांवै नांनां भेदा ॥
संध्या तरपन अरु षट करमां, लागि रहे इनकै आशरमां ।
गायत्री जुग चारि पढाई, पूछौ जाइ मुकति किनि पाई ॥
सब में रांम रहै ल्यौ सींचा, इन थैं और को नीचा ॥
अति गुन गरब करै अधिकाई, अधिकै गरबि न होइ भलाई ।
जाकौ ठाकुर गरब प्रहारी, सो क्यूं सकई गरब सहारी ॥
कुल अभिमांन बिचार तजि, खोजौ पद निरबांन ॥
अंकुर बीज नसाइगा, तब मिलै बिदेही थांन ॥

शब्दार्थ—गुनि=गुन कर, मनन करके। आप=आत्म स्वरूप। सहारी=सहन करना। विदेही थान=विदेह पद, जीवन्मुक्त की अवस्था।

सन्दर्भ—पूर्व पद के समान।

भावार्थ—पडित लोग वेदो के अध्ययन एव मनन मे ही भ्रमित हो गये। नाना प्रकार की ऊहा पोह के चक्कर मे उनको आत्म-स्वरूप की प्राप्ति नही हो सकी। वे सध्योपासन, तर्पण एव ब्रह्मोचित छ कर्मों के विधि-विधान ही मे लगे रहते हैं और उन्ही के आश्रित बने रहते है। ये चार युगो से (कल्प के प्रारम्भ से) अद्वैत-तत्व (अभेद भाव) का प्रतिपादन करने वाले गायत्री मन्त्र को पढते-पढाते आ रहे हैं। इनसे पूछा जाय कि इसके द्वारा किस-किसने मुक्ति की प्राप्ति की है। सम्पूर्ण प्राणियो मे राम व्याप्त है। फिर भी ये लोग कुछ लोगो को पवित्र करने के लिए जल के छीटें देते हैं। इस प्रकार कतिपय व्यक्तियो से अधिक नीच कौन हो सकता है? ये लोग। अपने आपको अत्यधिक श्रेष्ठ मान कर घमण्ड करते हैं, परन्तु अधिक घमण्ड करने से भलाई नही होती है। जिन ब्राह्मणो का भगवान गर्व को नष्ट करने वाला है, वह ब्राह्मणो के गर्व को ही किस प्रकार सहन कर सकता है? कबीर कहते हैं कि रे पडित अपने कुल की उच्चता का अभिमान छोड कर निर्वाण (मोक्ष) पद प्राप्त करने के लिए साधना करे। जब अहंकार और भेदभाव का अकुर एव बीज नष्ट हो जाएगा (इनका समूल नाश हो जाएगा) तब तुमको जीवन्मुक्ति की अवस्था भी प्राप्ति हो सकेगी।

अलंकार—वक्रोक्ति—पूछो दाई। इनथैं "नीचा।
सो क्यूं"...सहारी।

विशेष—(i) वाह्याचार का विरोध है।

(ii) षटकर्म—स्नान, सन्ध्या, पूजा, तर्पण, जप और होम। अथवा—अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह।

(iii) जाकौ—सहारी। हिन्दू धर्म ग्रन्थों मे इस प्रकार के वाक्याश प्राय पढने को मिल सकते हैं कि—"गरब गुपालहिं भावत नाही।" अथवा—

नारद कहेउ सहित अभिमाना। कृपा तुम्हारि सकल भगवाना।
करुनानिधि मन दीख बिचारी। उर अंकरेउ गरब तरु भारी।
बेगि सो मैं डारिहउं उखारी। पन हमार सेवक हितकारी।
(रामचरितमानस—गोस्वामी तुलसीदास)

(२६)

**खत्री करै खत्रिया धरमो, तिनकूं होय सवाया करमो॥
जीवहि मारि जीव प्रतिपारैं, देखत जनम आपनौं हारैं॥
पच सुभाव जु मेटै काया, सब तजि करम भजै रांम राया॥
खत्री सो जु कुटुंब सूं झूझै, पचूं मेटि एक कूं बूझै॥
जो आवध गुर ग्यांन लखावा, गहि करवाल धूप धरि धावा॥**

हेला करै निसांनै घाऊ, झूझ परै तहां मनमथ राऊ ॥
मनमथ मर न जीवई, जीवण मरण न होइ ।
सुनि सनेही रांम बिन, गये अपनपौ खोइ ।

शब्दार्थ— खत्री=क्षत्री । प्रतिपारै=प्रतिपालन करता है। पंचू=पाँच आसक्तियाँ । आवध=आजन्म, जीवन भर । करवात=तलवार । धूप=जोश । रेला करै=हल्ला वोलकर ।

सन्दर्भ— कवीर हिंसा का विरोध करते है ।

भावार्थ—क्षत्री क्षात्र धर्म का पालन करते हुए हिंसा करते है । फलत· उनके कर्म- बन्धन सवाए हो जाते हैं और भी अधिक बढ जाते हैं । जीवो को मारकर वे अन्य जीव (शरीर) का पालन करते है । उससे वे देखते-देखते अपना लोक विगाड लेते हैं । अपने काम-क्रोधादि पाँचो स्वभावो को छोड़कर तथा सम्पूर्ण कर्मों का त्याग करके राजा राम का भजन किया जाए—इसी मे जीव का कल्याण है । छत्री वही है जो अपने विकारो के कुटुम्ब से सघर्ष करता है और पच इन्द्रियो की आसक्ति को समाप्त करके अपने अन्त.करण मे एक परम तत्व का बोध जगाता है, वही वास्तव मे सच्चा क्षत्रिय वीर है । जो गुरु द्वारा प्राप्त ज्ञान पर अपनी दृष्टि जन्म भर जमाए रहता है, हाथ मे ज्ञान की तलवार लेकर जोश के साथ (विकारो पर) आक्रमण करता है तथा हल्ला वोलकर ठीक निशाने पर चोट करता है तथा जिससे युद्ध करते हुए कामदेव नामक राजा की मृत्यु हो जाती है, वही वास्तव मे सच्चा क्षत्रिय वीर है । इसके पश्चात् मरा हुआ कामदेव जीवित नही होता है अर्थात् सच्चे क्षत्रिय वीर को जन्म भर कामदेव नही सताता है और वह जीवन-मरण के चक्र मे नही पडता है—अर्थात् वह मोक्ष को प्राप्त हो जाता है । राम के प्रेम से रहित (शून्य) होकर जो आचरण करते हैं, वे अपने वास्तविक स्वरूप को खो देते हैं—अथवा उन्हे आत्म-बोध नही होता है ।

अलंकार—(i) विरोधाभास=जीवहि प्रतिपारै ।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—करवाल ।

विशेष—आध्यात्मिक साधना का प्रतिपादन है । वीर वही है जो अपने विकारों पर विजय प्राप्त करले । वस्तुत· 'मैं और तेरा' की भावना से प्रसूत यह संसार ही तो हमारा वास्तविक शत्रु है । इसी पर विजय प्राप्त करके हम मोक्ष के अधिकारी बन सकते हैं । जैन धर्म मे साधक को 'जिन्' या 'वीर' कहा गया है । इसी से परम साधक वर्द्धमान 'महावीर' कहलाए । हिन्दुओ के देवता हनुमान भी अभिमान रहित होकर महावीर' कहे गये । गोस्वामी तुलसीदास ने भी कहा है कि—

महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो वीर ।
जाके अस रथ होइ सो सुनहु सखा मतिधीर ॥

(३०)

अरु भूले षट दरसन भाई, पाखंड भेस रहे लपटाई ।।
जैन बोध अरु साकत सैनां चारवाक चतुरंग बिहूंना ।।
जैन जीवकी सुधि न जानैं, पाती तोरि देहुरै आनैं ।।
अरु प्रिथमीं का रोम उपारै, देखत जीव कोटि संघारै ।।
मनमथ करम करै अस रारा, कलपत बिंद धसै तिहि द्वारा ।।
ताकी हत्या होइ अदूभूता, षट दरसन मै जैन बिगूता ।।
ग्यान अमर पद बाहिरा, नेड़ा ही तैं दूरि ।
जिनि जान्यां तिनि निकट है, रांम रहा सकल भरपूरि ।।

शब्दार्थ—लपटाई=लिप्त। देहुरा=देवालय। प्रिथमी=पृथ्वी। तूला=तुल्य। असरारा=लगातार।

सन्दर्भ—कबीरदास जैनियो की औपचारिक अहिंसा का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—हे भाइयो ! आप लोग छ दर्शनो (वैशेषिक, सांख्य, न्याय आदि) के द्वारा प्रतिपादित परम तत्व के वास्तविक रूप को तो भूल गये है और उनके नाम पर प्रचारित विभिन्न पाखण्डो एव वाह्याचारो मे लिप्त होकर रह गये हैं। जैन, बौद्ध, शाक्तो की सेना, चार्वाक चारो मतावलम्बी ज्ञान से शून्य हो गये है। जैनी अहिंसक मानते हुए भी जीव हिंसा का वास्तविक अर्थ नही समझते हैं। ये लोग फूल-पत्ती तोड कर अपने देवालय मे चढाते हैं। दौना मे भर कर मरुआ, चम्पक आदि फूलो को लाते हैं। इन फूलो मे भी जीवो के समतुल करोडो छोटे-मोटे कृमि कीट रहते हैं। देवालय को बनाते समय ये पृथ्वी के रोमो (पेड-पौधे, घास आदि) को उखाडते है और देखते ही देखते करोडो जीवो का सहार कर देते हैं। काम के वशीभूत होकर ये निरन्तर अनेक प्रकार के कर्म करते रहते हैं और उनसे उत्पन्न क्लेशो को भोगते हुए बिन्दु पात करते है, तथा आवागमन के कारण भूत द्वार मे प्रवेश करते हैं। जैन मतावलम्बियो की अहिंसा सम्बन्धी धारणा बहुत ही अद्भुत होती है। ये जैन लोग अपने षट्दर्शनो मे ही ज्ञान-भ्रष्ट हो गये हैं। ये वास्तविक ज्ञान से आरम्भ अमर पद से विमुख हैं। अत जो आत्म तत्व व्यक्ति के सर्वथा निकट है, वह अज्ञान के द्वारा ग्रसित इन लोगो से बहुत दूर हो जाता है। जिन लोगो को ज्ञान एव विवेक प्राप्त है, उनके लिए आत्म-तत्व अत्यन्त निकट रहता है। वह उनका स्वरूप ही है। उन्हें तो सर्वत्र राम (आत्म तत्व) ही व्याप्त दिखाई देता है।

अलकार—(i) रूपक—रोम।
(ii) विरोधाभास—नेडा ही तें दूरि।

विशेष—कबीर का कहना है कि जैन धर्म मतावलम्वी अहिंसा का वास्तविक अर्थ नही समझते हैं। वे अपने मन्दिरो और उनमे होने वाली पूजा के

नाम पर जीव-हत्या करते रहते हैं। इस प्रकार वह प्रकारान्तर मे जैनियो के वाह्याचारो, उनके मठाधीशो आदि के प्रति अपना विरोध प्रकट करते हैं।

(३१)

आपन करता भये कुलाला, बहु बिधि सिष्टि रची दर हाला ॥
विधनां कुभ किये द्वै थांना, प्रतिबिंबता मांहि समांनां ॥
वहुत जतन करि बानक बांनां, सौंज मिलाय जीव तहां ठांना।
जठर अगनि दी की परजाली, ता मैं आप करै प्रतिपाली ॥
भींतर थैं जब बाहिर आवा, सिव सकती द्वै नांव धराबा ॥
भूलै भरमि पर जिनि कोई, हिंदू तुरक झूठ कुल दोई ॥
घर का सुत जे होइ अयांनां, ताके संगि क्यूं जाइ सयांनां ॥
साची बात कहै जे वासूं, सो फिरि कहै दिबांनां तासूं ॥
गोप भिन है एकै दूधा, कासूं कहिए बांम्हन सूधा ॥
जिनि यहु चित्र बनाइया, सो साचा सुतधार।
कहै कबीर ते जन भले, जे चित्रवत लेहि विचार ॥५॥

शब्दार्थ—कुलाला=कुम्हार, सृष्टिकर्त्ता। दरहाला=आजकल, अर्थात् शीघ्र ही। विधना=सृष्टिकर्त्ता, भगवान। सौंज=साधन।

सन्दर्भ—कबीर कहते है कि यह सृष्टि माया स्वरूप है। मनुष्य को किसी प्रकार भी कर्त्ता अभिमान नही करना चाहिए।

भावार्थ—भगवान स्वय कुम्हार बन गये और उन्होने विविध नाम रूपात्मक इस सृष्टि की रचना तत्काल कर डाली। इस कर्त्ता ने दो स्थानो पर घडे (प्राणी) तैयार किये अर्थात् द्वैत से सृष्टि की और उन अन्त करण रूपी घडो मे स्वय प्रतिबिम्ब बन कर समा गये। बहुत यत्न करके अनेक साधनो को जुटाकर तथा पच तत्वो आदि को मिलाकर उसने जीव बनाया। मातृ-उदर मे गर्भस्थ शिशु को जठराग्नि जलाये डालती थी किन्तु वहाँ भी वह दयालु जीव की रक्षा करता था। यही गर्भ जब उदर से बाहर आया, तब उसने अपने दो नाम शिव (पुरुष) और शक्ति (नारी) रख लिये—अर्थात् इस विविध रूपात्मक जगत का मूल स्रोत वह एक (ब्रह्म) ही है। अब कोई इस भ्रम म न रहे कि हिन्दू और मुसलमान उत्पत्ति की दृष्टि से दो भिन्न कुल के हैं। अगर घर लडका मूर्ख होता है, तो घर के समझदार लोग उसको अपने साथ नही लगाते हैं। परन्तु अगर मैं सच्ची बात कहता हूँ अगर मैं जीव को माया द्वारा आवृत्त होने की बात कहता हूँ, तो लोग मुझे पागल कहते हैं। सब एक ही परम तत्व रूप दूध से उत्पन्न हुए हैं, केवल ग्वाले (पिता) का ही भेद है। ऐसी स्थिति मे ब्राह्मण और शूद्र किससे कहे? जिसने सृष्टि का यह चित्र बनाया है वह सच्चा सूत्रधार है। वे व्यक्ति ही वास्तव मे ज्ञानी हैं, जो इस संसार को चित्रवत (मिथ्या) समझते हैं।

अलंकार—(i) निदर्शना—घर...सयानां।

(ii) विरोधाभास—साची तासूं ।

विशेष—(i) इसमे अद्वैतवाद के प्रति बिम्बवाद का प्रतिपादन है ।

(ii) जगत को चित्रवत् बताकर अद्वैतवाद के मिथ्यावाद का प्रतिपादन है ।

[६] बारहपदी रमैणी

(३२)

पहली मन मै सुमिरौं सोई, ता सम तुलि अबर नही कोई ।।
कोई न पूजै वासूं प्रांनां, आदि अंति वो किनहू न जांनां ।।
रूप सरूप न आवै बोला, हरू गरू कछु जाइ न तोला ।।
भूख न त्रिषा धूप नहीं छांहीं, सुख दुख रहित रहै सब मांही ।।
अविगत अपरंपार ब्रह्म, ज्ञान रूप सब ठांम ।
बहु बिचार कर देखिया, कोई न सारिख राम ।।

शब्दार्थ—तुलि=तुल्य, समान । अवर=अन्य । हर=हलका, । गद=भारी । प्राना=ज्ञानेन्द्रिय । पूजै=पूरा पड सकना । वासू=उससे । सारिख=सरीखा, सदृश ।

सन्दर्भ—कबीर परम तत्व को अगम एव अगोचर बताते हैं ।

भावार्थ—सर्वप्रथम मैं उस परमात्मा का स्मरण करता हूँ जिसके समान अन्य कोई नही है—अर्थात् मैं अद्वितीय एव महिमा वाले परमात्मा का स्मरण करता हूं । ज्ञानेन्द्रियो द्वारा उसको प्राप्त नही किया जा सकता है । उसका आदि और अंत को कोई नही जानता है । उसके रूप, रेखा, वर्ण आदि का विचार हमसे करते नहीं बनता है । हल्का या माटी के रूप मे उसको तोला भी नही जा सकता है । अर्थात् न उसे भूख लगती है, न प्यास लगती है तथा धूप-छाँह उसको कुछ भी नही सताती है । वह तत्व सुख-दुख से निर्लिप्त होकर घट-घट मे व्याप्त है । वह अविगत, अपार एव ज्ञान स्वरूप ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है । हमने बहुत विचार करके देख लिया है कि राम के समतुल्य कोई भी दूसरा तत्व नही है ।

अलंकार—(i) अनन्वय—ता सम ''कोई, कोई न ''राम ।

(ii) सम्बन्धतिशयोक्ति—कोई तोला ।

विशेष—राम इन्द्रिय ग्राह्य नही है, भौतिक गुणो के परे है तथा वर्णनातीत है ।

(iii) वह द्वैत रहित अद्वैत तत्व है ।

(३३)

जो त्रिभवन पति ओहै ऐसा, ताका रूप कहौ धौं कैसा ।।
सेवत जन सेवा कै तांई, बहुत भांति करि सेवि गुसाई ।।
तैसी सेवा चाहौ लाई, जा सेवा बिन रह्या न जाई ।।
सेव करंतां जो दुख भाई, सो दुख सुख वरि गिनहु सवाई ।।
सेव करता सो सुख पावा, तिन्य दुख दोऊ बिसरावा ।।

सेवग सेव भुलानियां, पथ कुपंथ न जान ।
सेवक सो सेवा कर, जिहि सेवा भल मांन ।।

शब्दार्थ— ताई = लिये । करता = करते हुए । विसरावा = भूल जाता है । भल मान = सुख का अनुभव ।

सन्दर्भ—कबीरदास निस्स्वार्थ सेवा का प्रतिपादन करते हैं ।

भावार्थ—जो त्रिभुवन पति ऐसे महान हैं उनका स्वरूप-वर्णन किस प्रकार किया जा सकता है ? भक्त-गण तो केवल इसकी सेवा करने के लिए ही बनाए है । वे तो अपने स्वामी की विविध प्रकार से सेवा कर सकते हैं । सेवक को वही सेवा-भक्ति करनी चाहिए जिसके बिना उससे रहा न जाए—अर्थात् प्रभु-भक्ति सदैव अहेतुकी होनी चाहिए । यदि प्रभु-सेवा करते हुए मुझे दुख. उठाना पडे तो इस दुख को सवा गुना सुख मान कर ग्रहण करना चाहिए । जो भक्त प्रभु-सेवा मे सुख का अनुभव करता है, उसके लिए सासारिक दुख-सुख दोनो समाप्त हो जाते हैं, अर्थात् वह कर्म बन्धन से मुक्त हो जाता है । कबीर कहते हैं कि आजकल के सेवक प्रभु-सेवा के महत्व का भूल बैठे है तथा पथ-कुपथ का विवेक न करते हुए चाहे जिस साधना का अवलम्बन करने लगते है । भक्त तो वही है जो प्रभु-सेवा मे गौरव एव सुख का अनुभव करता है ।

अलकार—(i) गूढोक्ति—कहौ धौं कैसा ।
(ii) अनुप्रास—सेव सो सुख सुख, सेवक सेवा सेवा ।
(iii) सभग पद यमक—पथ कुपथ ।

विशेष—सेवा-भाव ही भक्ति का मूल आधार है ।—समभाव देखे—

सो अनन्य गति जाकें मति न टरइ हनुमंत ।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत ।

(३४)

जिहि जग की तस की तस के ही, आपै आप आथि है एही ।
कोई न लखई वाका भेऊ, भेऊ होइ तौ पावै भेऊ ।।
बावै न दांहिन आगै न पीछू, अरध न उरध रूप नहीं कीछू ।।
माय न बाप आव नहीं जावा, नां वहु जण्यां न को वहि जाआ ।।
वो है तसा वोही जानै, ओही आहि आहि नही आनै ।।
नैनां बैन अगोचरी, श्रवनां करनी सार ।
बोलन कै सुख कारनै, कहिये सिरजनहार ।।

सन्दर्भ— पूर्व पद के समान ।

भावार्थ— ससार की जैसी भी रचना हुई है, वह केवल इसने ही (परमात्मा ने ही) की है । वह स्वय उसमे आप विलीन हो जाता है । उसके भेद को कोई नही जान पाता है । उसका कुछ भेद हो तब तो कोई उसको प्राप्त करे

अर्थात् उसका कोई भेद है ही नही—वह भेदातीत है। इसलिए उसका भेद जानने का प्रश्न ही उत्पन्न नही होता है। न उसमे बायाँ है, न दाहिना है, न आगे है और न पीछे, न नीचे है और न ऊपर है। उसका कोई रूप भी नही है। उसके न माता है, न पिता है। न उसका जन्म होता है और न उसकी मृत्यु होती है। न उसने किसी को (लौकिक अर्थ मे) उत्पन्न ही किया है। वह जैसा है उसको वह स्वयं ही जानता है अर्थात् अपने स्वरूप को वह स्वय ही जानता है। केवल उसी एक परम तत्व की स्थिति है। उसके अतिरिक्त कुछ है ही नही। वह परम तत्व नेत्र और वाणी से अगोचर है। वह श्रवण और कर्म का सार है अर्थात् उसी के गुणो का श्रवण करना चाहिए। उसी का गुणगान श्रवणीय है। और कर्म भी केवल उसकी भक्ति के लिए ही करना चाहिए। वचन की सुविधा को ध्यान मे रखते हुए उसको सृष्टिकर्त्ता कहा गया है।

अलंकार—(i) सम्बन्धातिशयोक्ति—कोई न लख है बाका भेऊ। नैन ··· पार।

(ii) वक्रोक्ति—भेऊ····केऊ।

(iii) पदमैत्री—भेऊ केऊ। अरध उरध।

(iv) विभावना की व्यंजना—माई न बाप।

(v) अनन्वय—वो आनै।

(vi) काव्यलिंग—बीलन · सिरजन हार।

विशेष—'तत्तथा के सिद्धान्त का आश्रय लिया गया है। जगत् के असत् तथा परम तत्व के अवाङ् मन गोचर होने का वर्णन है।

(३५)

सिरजनहार नांउ धूं तेरा, भौसागर तिरिबे कूं भेरा ॥
जे यहु भेरा रांम न करता, तौ आपै आप आवटि जग मरता ॥
राम गुसाई मिहर जु कीन्हां, भेरा साजि सत कौं दीन्हां ॥
दुख खडण मही मडणां, भगति मुकुति बिश्रांम।
बिधि करि भेरा साजिया, धन्या रांम का नाम ॥

शब्दार्थ—भेरा=बेडा, नावो या जहाजो का समूह। आवटि=जल कर। मडणा=शोभा का हेतु।

सन्दर्भ—कबीर राम-नाम की महिमा का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—हे सृष्टि कर्ता (प्रभु)! आपका नाम ही भवसागर से पार उतरने का जलयान है। यदि राम इस बेडे का निर्माण न करते (यदि आपके नाम का सहारा न होता) तो यह ससार अपनी वासनाओ की अग्नि मे स्वय ही जलकर नष्ट हो जाता। स्वामी राम ने जगत के ऊपर बहुत कृपा की जो नाम-रूपी बेड़ा बनाकर सत-समाज को दे दिया। नाम दुखो का खण्डन (नाश) करने वाला है और पृथ्वी की शोभा है। यही भक्ति, मुक्ति और परम शाति का हेतु है स्वय

विधाता ने इस वेडे (ससार-सागर से पार जाने के साधन) को बनाया है और उसका नाम 'राम-नाम' रख दिया है।

अलंकार—(i) रूपक—भौसागर, भाव भेरा।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—भेरा साजि।
(iii) उल्लेख—दु ख ...... विश्राम।

विशेष—(i) राम-नाम की महिमा अपार है। कबीर का तात्पर्य दाशरथि राम से नही है, बल्कि उनका तात्पर्य परम ब्रह्म के गुणो से है।

(ii) यह नाम-माहात्म्य-वर्णन सगुण भक्ती जैसा है। यथा—

विश्वास एक राम-नाम को।
मानत नहिं परितीति अनत ऐसोई सुभाव मन बाम को।
पढिबो पर्यो न छठी, छ मत रिगु जजुर अथर्वन साम को।
+ + +
सब दिन सब लायक भव गायक रघुनायक गुन-गुरम को।
बैठे नाम काम-तरु-तर-डर कौन छोर घन घाम को।
को जानै को जैहै जमपुर, को सुरपुर परधाम को।
तुलसिहिं बहुत भलो लागत जग जीवन राम गुलाम को।
(गोस्वामी तुलसीदास)

(३६)

जिनि यह भेरा दिढ़ करि गहिया, गये पार तिन्हौं सुख लहिया ॥
दुमनां ह्वै जिनि चित्त डुलावा, करि छिटके थै थाह न पावा ॥
इक डूबे अरु रहे उरवारा, ते जगि जरे न राखणहारा ॥
राखन की कछु जुगति न कीन्ही, राखणहार न पाया चीन्हीं ॥
जिनि चिन्हां ते निरमल अगा, जे अचीन्ह ते भये पतंगा ॥
रांम नांम ल्यौ लाइ करि, चित चेतन ह्वै जागि।
कहै कबीर ते ऊबरे, जे रहे रांम ल्यौ लागि ॥

शब्दार्थ—भेरा=बेडा, राम-नाम का वेडा। दिढ करि=दृढ़तापूर्वक। गहिया=पकड रखा है। दुमना ह्वै=दुविधा मे पड कर। करि छिटकै=हाथ छूट गया। उरवारा=इसी पार। राखन=रक्षा।

सन्दर्भ—पूर्व पद के समान राम-नाम की महिमा का प्रतिपादन है।

भावार्थ—जिन लोगो ने राम-नाम रूपी नाव को कसकर (दृढनिश्चय पूर्वक) पकड रखा है (विश्वास पूर्वक अवलम्बन ग्रहण कर लिया है) वे भव-सागर के पार हो गये और उन्हे सुख की प्राप्ति हुई। द्विविधा मे पड कर जिन्होने अपना चित्त डाँवाडोल कर दिया, उनका हाथ छूट जाता है (वे बीच मे गिर पडते हैं) और उनको इस भवसागर की थाह नही मिलती है अर्थात् वे इसमे डूब जाते हैं। ऐसे व्यक्ति एक तो भवसागर मे डूब जाते हैं और यही रह जाते है तथा सासारिक

विषयाग्नि मे जलते हैं और उनको कोई बचाने वाला नही होता है। उन्होने अपने बचाव (अपने उद्धार) का कोई उपाय नही किया होता है, क्योंकि वे अपने को बचाने वाले प्रभु को पहचान ही नही पाते हैं। जो प्रभु को पहचान लेते हैं। उनका अन्त. करण निर्मल हो जाता है। जो प्रभु से अपरिचित बने रहते हैं वे आसक्ति की अग्नि मे पतगे के समान जलकर नष्ट हो जाते हैं। हे जीव, तू रामनाम मे अपनी लौ लगाकर चित मे चेतकर और अपना आत्म-बोध जाग्रत कर। कबीर कहते हैं कि जिनकी लौ राम-नाम मे लगी होती है, इन्ही का उद्धार हो पाता है, अर्थात् वे ही भव-सागर मे डूबने से बच जाते हैं।

अलंकार — (i) रूपकातिशयोक्ति—भेरा, जग, राखणहार, पतगा।
(ii) सागरूपक—सम्पूर्ण पद ।

विशेष—ससार-सागर के पार जाने के लिए एक मात्र अवलम्बन राम-नाम ही है। देखें पद स० १४९। समभाव के लिए देखें—

बरषा रितु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास।
राम नाम बर बरन जुग सावन भादव मास।
(गोस्वामी तुलसीदास)

(३७)

अरचित अविगत है निरधारा, जाण्यां जाइ न वार न पारा ॥
लोक वेद थें अछै बियारा, छाड़ि रह्यौ सबही संसारा ॥
जसकर गांउ न ठांउ न खेरा, कैसें गुन बरनू मैं तेरा ॥
नहीं तहां रूप रेख गुन बांनां, ऐसा साहिब है अकुलांनां ॥
नहीं सो ज्वांन न बिरध नही बारा, आपै आप आपनपौं तारा ॥
कहै कबीर बिचारि करि, जिनि को लावै भंग।
सेवौ तन मन लाइ करि रांम रह्या सरवंग ॥

शब्दार्थ—खेरा=खेडा, खेत या निवास-स्थान। अकुलाना=जिसका कोई कुल न हो। बिरध=वृद्ध।

सन्दर्भ—कबीरदास परम तत्व की अनिर्वचनीयता का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—वह परम तत्व किसी के द्वारा रचा नही गया है, उसको कोई जान नही सकता है तथा वह किसी अन्य तत्व पर आधारित नही है अथवा उसको जानने के लिए कोई साधन उपलब्ध नही है। उसका वार-पार आदि-अन्त नही है और न उसको जाना ही जा सकता है। वह लोक और वेद से परे है, अर्थात् सामान्य ज्ञान अथवा अन्त ज्ञान किसी के द्वारा उसको नही जाना जा सकता है। वह समस्त ससार को छोड कर ऊपर उठा हुआ है (निर्लिप्त है।) उसका न कोई गाँव है, न कोई स्थान है और न कोई विशेष निवास-स्थान है। हे प्रभु! ऐसे आपका वर्णन मे किस प्रकार कर सकता हूँ? उस तत्व का न कोई रूप है, न रेखा है और न कोई वेष ही है। यह स्वामी ऐसा है कि जिसका कोई कुल (वश) ही

नही है। वह न तो युवक है, न वह वृद्ध है और न बालक ही। उस तत्व का अपनत्व अपने आप ही मे समाहित है। कबीर विचार पूर्वक कहते हैं कि उस तत्व के स्वरूप को खण्डश मत सोचो। वह तो सर्वव्यापी अखण्ड तत्व है। तन-मन लगा कर उसकी सेवा करो। राम सर्वव्यापी हैं।

अलंकार—(i) सवधातिशयोक्ति—जाण्या जाइ.... पारा।

(ii) वक्रोक्ति कैसें .... तेरा।

विशेष—(i) 'नेति नेति' निरूपण की पद्धति है।

(ii) वह तत्व अवर्णनीय इस कारण है—क्योकि वह देश-काल द्वारा परिच्छिन्न न होने के कारण वाणी की सीमा मे नही आता है।

(iii) वह स्वगतादि सभी प्रकार के भेदो से शून्य अद्वैत तत्व है। बात ऐसी ही है कि—

केशव कहि न जाहि का कहिए।

× × ×

तुलसीदास परिहरै तीन भ्रम सो आपन पहिचानै।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(३८)

नहीं सो दूरि नहीं सो नियरा, नहीं तात नहीं सो सियरा ।।
पुरिष न नारि करै नहीं क्रीरा, घांम न घांम न व्यापै पीरा ।।
नदी न नाव धरनि नहीं धीरा, नहीं सो कांच नहीं सो हीरा ।।
कहै कबीर बिचारि करि, तासूं लावो हेत ।
बरन बिवरजत ह्वै रह्या, नां सो स्यांम न सेत ।।

शब्दार्थ—तात=उष्ण (शत्रु)। सियरा=शीतल (मित्र)। क्रीरा=क्रीडा। घाम=धूप। धाम=दुःख। धीरा=धैर्यवान। विरजत=विवर्जित, परे।

सन्दर्भ—कबीर परम तत्व रूप प्रभु को अनिवर्चनीय बताते हैं।

भावार्थ—वह परम तत्व दूर नही है (क्योकि वह हृदयस्थ है), वह पास भी नही है (क्योकि साधना द्वारा भी दुष्प्राप्य है)। न वह उष्ण (शत्रु) है और न शीतल (मित्र) है। न वह पुरुष है और न नारी रूप ही है। वह इन दोनो मे किसी रूप मे क्रीडा नही करता है। न तो उसको धूप लगती है और किसी प्रकार की व्यथा ही उसको व्यापती है। न वह नदी है, न नाव है और न वह इन सबको धैर्य पूर्वक धारण वाली पृथ्वी ही है। न वह काँच (विषय-वासना स्वरूप) है, और न हीरा (सद्वृत्ति स्वरूप) ही है। कबीरदास विचार कर कहते हैं कि रे जीव, तू उस परम तत्व के प्रति अनुराग कर। वह न श्याम है और न श्वेत है। वह सब प्रकार के रगो से परे हैं।

विशेष—निर्गुण निराकार ब्रह्म की अनिवर्चनीयता का प्रतिपादन है। उसको किसी प्रकार के शब्दो मे आबद्ध नही किया जा सकता है।

(३९)

नां वो वारा व्याह बराता, पीय पितंबर स्यांम न राता ॥
तीरथ व्रत न आवै जाता, मन नहीं मोनि बचन नहीं बाता ॥
नाद न बिंद गरथ नहीं गाथा, पवन न पांणी संग न साथा ॥
कहै कबीर बिचारि करि, ताकै हाथि न नाहि ।
सो साहिब किनि सेविये, जाकै धूप न छांह ॥

शब्दार्थ— वारा = बालक । राता = लाल । गरथ = ग्रन्थ ।

सन्दर्भ—कबीरदास परम तत्व को अनिर्वचनीय कहते हैं ।

भावार्थ— वह राम रूपी परम तत्व न बालक है और उसने विवाह-बारात ही किया है । न वह पीताम्बरधारी है और न श्याम अथवा लाल रंग का वस्त्र धारण करने वाला है । वह न तीर्थ-व्रत मे है और न कही आता-जाता है । वह मन ही मन मे मौन रहने वाला भी नही है और न वचनो का वाचाल ही । वह न नाद रूप है और न बिन्दु रूप ही है । वह किसी ग्रन्थ अथवा गाथा का विषय भी नही है । वह न जल-रूप है और न प्राण रूप ही । उसने इनका कुछ भी सम्पर्क नही किया है । कबीरदास विचार पूर्वक कहते हैं कि इस तत्व रूप राम के हाथ-पैर कुछ भी नही हैं । रे जीव, तू ऐसे स्वामी की सेवा क्यो नही करता है । जिसके लिए न कही धूप है और न कही छाया ही—अर्थात् जो दुःख-सुख के सर्वथा परे है ।

अलंकार— (i) छेकानुप्रास—बारा व्याह-बराता, गरथ गाथा, पवन पाणी ।
(ii) वक्रोक्ति—किनि सेविये ।

विशेष—(i) शैली लाक्षणिक है—धूप-छाँह सदृश प्रयोग ।
(ii) कबीर के राम परम तत्व हैं—दाशरथि राम नही । इसी कारण वह उनके वाणी-बद्ध लौकिक रूप का निषेध करते हैं—"नावा वारा ... राता ।" इत्यादि । वह यह भी कह देते हैं कि बाह्याचारो द्वारा वह ग्राह्य नही है—"तीरथ ... साथा ।" उन्होंने तो स्पष्ट कहा है कि—

दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना । राम नाम का मरम न जाना ।

(४०)

ता साहिब कै लागौ साथा, दुख सुख मेटि रह्यौं अनाथा ॥
नां जसरथ घरि औतरि आवा, नां लंका का राव सतावा ॥
देवै कूख न औतरि आवा, ना जसवै ले गोद खिलावा ॥
नां वो ग्वालन कै संग फिरिया, गोबरधन ले न कर धरिया ॥
बांवन होय नहीं बलि छलिया, धरनी वेद लेन उधरिया ॥
गंडक सालिकरांम न कोला, मछ कछ ह्वै जलहि न डोला ॥
बद्री बैस्य ध्यान नहीं लावा, परसरांम ह्वै खत्री न संतावा ॥
द्वारामती सरीर न छाड़ा, जगनाथ ले प्यंड न गाड़ा ॥

कहै कबीर बिचार करि, ये ऊले व्योहार ।
याही थें जे अगम है, सो बरति रह्या संसारि ।।

शब्दार्थ—अनाथा=अनाथो क । दैवै=देवकी । उधरिया=उद्धार किया ।

सदर्भ—कबीरदास अवतारवाद का खण्डन करते हैं ।

भावार्थ—तुम उस परम प्रभु की शरण मे जाओ जो अनाथों के सुख-दुख को मिटाने वाला है—अर्थात् कर्म-बन्धन से सर्वथा मुक्त कर देने वाला है । उसने दशरथ के घर मे अवतार नही लिया है और न उसने लका के राजा (रावण) को ही पीडित किया । वह देवकी की कोख से भी अवतरित नही हुआ और न यशोदा ने उसको अपनी गोद मे ही खिलाया । वह ग्वालो के साथ वन-वन नही घूमा और न उसने अपने हाथ पर गोवर्धन ही उठाया । उसने वामन का अवतार लेकर राजा वलि को नही छला और न वाराह के रूप मे उसने पृथ्वी और वेद का उद्धार ही किया । वह गण्डक नदी मे शालिग्राम की पिण्डी भी नही बना और न उसने वाराह अवतार ही धारण किया । वह मत्स्य (मछली का अवतार लेकर) तथा कच्छप (कछुए का अवतार लेकर) के रूप मे समुद्र-जल मे भी नही डोलता फिरा । बद्रिका आश्रम मे बैठकर उसने कभी भजन भी नही किया । परशुराम के रूप मे उसने क्षत्रियो का सहार भी नही किया । उसने (कृष्ण बनकर) द्वारिकापुरी मे अपने शरीर को भी नही छोड़ा, और न ही उसने जगन्नाथपुरी की मूर्ति की स्थापना ही की । कबीरदास विचार कर कहते हैं कि अवतारवाद से सम्बन्धित ये समस्त व्यवहार उल्टे एव व्यर्थ है । (क्योकि ये देशकाल से परिच्छिन्न हैं) । इससे यही समझो कि परम तत्व अगम है । वही सम्पूर्ण जगत मे व्याप्त है तथा सम्पूर्ण जगत को संचालित कर रहा है ।

विशेष—अवतारवाद सम्बन्धी समस्त पौराणिक कथाओ की निरर्थकता का प्रतिपादन है । कबीर तो केवल सर्वव्यापी परम तत्व की आराधना का उपदेश देते हैं । लौकिक वाणी एव लौकिक व्यवहार की सीमाओ मे बाँधकर हम परमब्रह्म के महत्व को बहुत कुछ कम कर देते हैं, क्योकि—

जो जहन में आगया वह लाइन्तहा कैसे हुआ ?
जो समझ में आगया वह खुदा कैसे हुआ ?

(४१)

नां तिस सबद न स्वाद न सोहा, नां तिहि मात पिता नहीं मोहा ।।
नां तिहि सास ससुर नहीं सारा, नां तिहि रोज न रोवनहारा ।।
नां तिहि सूतिग पातिग, नां तिहि माइ न देव कथा पिक ।।
नां तिहि ब्रिध बधावा बाजै, नां तिहि गीत नाद नहीं साजै ।।
नां तिहि जाति पांत्य कुल लीका, नां तिहि छोति पवित्र नहीं सींचा ।।
कहै कबीर बिचारि करि, औ है पद निरबांन ।
सति ले मन मै राखिये, जहां न दूजी आंन ।।

शब्दार्थ—सारा=साला, पत्नी का भाई। सूतिग=जन्म का अशौच। पातिग=पातक (ब्रह्म हत्या, सुरापान, गुरुतल्पगमन, स्तेय और पातकी का संसर्ग।

सन्दर्भ— कबीरदास परम तत्व की अलौकिकता का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—उस परम तत्व का न कोई शब्द है, न कोई स्वाद और न गध ही। उसके कोई माता-पिता नही है और न उसको किसी प्रकार का मोह ही सताता है। न उसके सास-श्वसुर है और न साला ही है। न उसके लिए कोई रोता है और न रोने वाला है। उसके लिए जन्म-मृत्यु के अशौच नही हैं। उसके कोई आराध्या भाई नही है और न उसके लिए देव-कथा पीठ है। उसके यहाँ वृद्धि (कुल-वृद्धि) का कोई अवसर नही हैं और न इस कारण उसके यहाँ कभी मगल-गीत ही होते हैं। उसके यहाँ किसी प्रकार के गति-नाद का आयोजन नही होता है। उसकी न कोई जाति-पाँति है और न कोई कुल-परम्परा ही है। और न उसके यहाँ छुआछूत और पवित्रता की ही बात है। कबीरदास विचार करके कहते हैं कि जो अतीत वस्तु है, वह तो पद निर्वाण है। हे जीव, तुम सत्य तत्व को अपने हृदय मे धारण करो। वहाँ कोई अन्य तत्व नही है। वह द्वैत रहित अद्वैत तत्व है।

अलंकार—(i) अनुप्रास—सबद स्वाद सोहा। व्रिध, बधावा बाजै।

(ii) पदमैत्री—घूतिग पातिग जातिग।

विशेष—उस परम तत्व का वर्णन शब्दातीत है, साथ ही लौकिक उपमानो के द्वारा भी उसका निरूपण सम्भव नही है। वह तो वस्तुतः स्वय सिद्ध अनिर्वच-नीय तत्व है।

(४२)

नां सो आवै नां सो जाई, ताकै बध पिता नहीं माई॥
चार बिचार कछू नहीं वाकै, उनमनि लागि रहौ जे ताकै॥
को है आदि कवन का कहिये, कवन रहनि वाका ह्वै रहिये॥
कहै कबीर बिचारि करि, जिनि को खोजै दूरि।
ध्यांन धरौ मन सुध करि, रांम रह्या भरभूरि॥

शब्दार्थ—उन्मनि=उस अवस्था का द्योतक है जब मन भावाभाव अवस्था से विनियुक्त रहता है, उसे अपने ही होने और न होने की चेतना नही रहती है। यह साधना कबीर के 'सहजयोग' का एक आवश्यक तत्त्व है।

सन्दर्भ - पूर्व पद के समान।

भावार्थ—वह परम तत्व न आता है और न जाता है (अर्थात् वह जन्म-मरण के परे है)। उसके भाई, पिता और माता नही हैं। (वह सासारिक सम्बन्धो के परे है।) उसको किसी प्रकार के लौकिक आचार-व्यवहार का भी पालन नही करना पडता है। वह तो उन्मनि (समाधि) अवस्था मे रह कर जगत को साक्षी रूप से देखता रहता है। आदि तत्व क्या है, इसके सम्बन्ध मे कौन क्या कह सकता

है ? अर्थात् कोई कुछ नही कह सकता है। कोई यह भी नही बता सकता है कि किस प्रकार के आचरण द्वारा जीव परम तत्व को प्राप्त कर सकता है। कबीरदास भली प्रकार सोच-विचार कर कहते है कि उस परम तत्व को कही दूर मत खोजो। मन मे उसकी स्मृति जगाकर उसका ध्यान करो। वह परम तत्व रूप राम सर्वत्र व्याप्त है।

अलकार—वक्रोक्ति—को है रहिए।

विशेष--पूर्व पद के समान।

(४३)

नाद बिद रक इक खेला, आपै गुरु आप ही चेला।
आपै मत्र आपै मत्रेला, आपै पूजै आप पूजेला।
आपै गावै आप बजावै, अपनां किया आप ही पावै।
आपै धूप दीप आरती, अपनी आप लगावै जाती॥
कहै कबीर बिचारि करि, झूठा लोही चांम।
जो या देही रहित है, सो है रमिता राम॥

शब्दार्थ—रक=तुच्छ। मत्रेला=मत्र लेने वाला। पूजेला=पूजा प्राप्त करने वाला। जाती=ज्योति।

सन्दर्भ—कबीरदास द्वैत रहित उस अद्वैत तत्व का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—नाद और बिन्दु की यह सहज साधना तो वास्तव मे एक तुच्छ खेल है। वह स्वय ही गुरु है और स्वय ही चेला है। वह स्वय ही मत्र है और स्वय मत्र लेने वाला है। स्वय पूजा है और स्वय पूजित है। वह स्वय ही गाता है और स्वय बजाता है। अर्थात् कर्त्ता और भोक्ता वह तत्व ही है। वह आपही धूप दीप और आरती है तथा आप ही उसमे ज्योति-स्वरूप है। कबीरदास विचार करके कहते है कि रक्त और चम का विभेद व्यर्थ (झूठा) है। जो तत्व देह रहित है, वही वास्तव मे राम है और वही सबमे रमा हुआ है।

अलकार—(i) पदमैत्री—गावै, बजावै, पावै।
(ii) विरोधाभास—जो राम।

विशेष—अद्वैतवाद का प्रभाव स्पष्ट है।

[७] चौपदी रमैणी

(४४)

ऊंकार आदि है मूला, राजा परजा एकहि सूला॥
हम तुम्ह मांहै एकै लोहू, एकै प्रान जीवन है मोहू॥
एकही बास रहै दस मासा, सूतग पातग एकै आसा॥
एकही जननीं जान्यां ससारा, कौंन ग्यान थैं भये निनारा॥
ग्यांन न पायौ बावरे, धरी अविद्या मैड।
सतगुर मिल्या न मुक्ति फल, तार्थं खाई बैड॥

शब्दार्थ—आदि है मूला=उत्पत्ति का मूल कारण। सूला=व्यथा। लोहू =खून, रक्त। वास=गर्भ वास। वैंड=वेंडा, रुकावट।

संदर्भ—कवीरदास जीवन की एकता का प्रतिपादन करते हैं।

भावार्थ—ओंकार सृष्टि की उत्पत्ति का मूल कारण है। राजा और प्रजा (सम्पूर्ण समाज) को एक ही व्यथा है। हममे और तुममे एक ही प्रकार का रक्त है, एक ही प्राण है, एक ही जीवन है तथा एक ही प्रकार के मोह ने सब को आबद्ध कर रखा है। हम सब एक ही प्रकार से गर्भ मे दस मास तक रहे हैं। जन्म और मृत्यु के अवसर पर हम तुम सबको एक ही स्थान प्राप्त होता है। सारे ससार को एक ही प्रकार से माता जन्म देती है। फिर भेद होकर सबके अलग-अलग होने का क्या आधार है अथवा किस आधार पर भेद-भाव स्थापित किया जाना चाहिए? रे पागल जीव! तुम कभी ग्यान प्राप्त नही कर सके। तुमने अपने चारो ओर अविद्या की दीवाल बना रखी हैं (इसी के कारण ज्ञान तुम्हारे मन-मानस मे प्रवेश नही कर पाता है।) तुमको सद्गुरु की प्राप्ति नही हुई और मोक्ष नही मिल सकी। इसी कारण विषयो की खाई का अवरोध बना हुआ है।

(४५)

बालक ह्वै भग द्वारे आवा, भग भुगतन कूँ पुरिष कहावा ॥
ग्यांन न सुमिर्‍यो निरगुण सारा, विषथैं बिरचि न किया बिचारा ॥
साध न मिटी जनम की, मरन तुराना आइ ।
मन क्रम बचन न हरि भज्या, अकुर बीज नसाइ ॥

सन्दर्भ—कवीर जीव के अज्ञान का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—बालक रूप धारण करके यह जीव योनि-द्वार से बाहर निकला तथा उसने योनि के भोग को ही अपना पुरुषत्व समझा। उसने सारतत्व निर्गुण भगवान का कभी भी स्मरण नही किया। उसने भक्ति-भाव पूर्वक कभी भगवान की आराधना नही की। इससे उसकी जीवन की जन्म-मरण-सम्बन्धी बाधायें समाप्त नही हुई—जीने की आकाक्षा पूरी नही हुई और मृत्यु शीघ्रता पूर्वक आ पहुँची। जीव ने मन, कर्म और वचन से भगवान का स्मरण नहीं किया जिसमें ससार-ताप के अकुर तथा कर्म के बीज नष्ट हो जाते।

(४६)

तिण चरि सुरही उदिक जु पाया, द्वारे दूध बछ क़ूँ दीया ॥
बछा चूँखत उपजी न दया, बछा बांजि बिछोही मया ॥
ताका दूध आप दुहि पीया, ग्यांन विचार कछू नहीं कीया ॥
जे कुछ लोगनि सोई कींया, माला मंत्र बादि ही लीया ॥
पीया दूध रुध्र ह्वै आया, मुई गाइ तब दोष लगाया ॥
बाकस ले चमरां कूं दीन्हीं, तुचा रगाइ करौती कीन्ही ॥
ले रुकरौती बैठे संगा, ये देखौ पांडे के रंगा ॥

तिहि रुकरौती पांणी पीया, यह कुछ पांडे अचिरज कीया ॥
अचिरज कीया लोक मै, पीया सुहागल नीर ।
इद्री स्वारथि सब कीया, बध्या भरम सरीर ॥

शब्दार्थ—तिण=घास फूस । सुरही=सुरभी, गाय । उदिक=पानी । चू खत=धन चूसते हुए । बाकस=वख्शिश, स्वल्प द्रव्य । तुच=त्वचा ।

सन्दर्भ—कवीर कहते है कि अत्यधिक स्वार्थपरकता के कारण ही जीव दुख भोगते है ।

भावार्थ—गाय घास-फूस खाकर और पानी पीकर द्वार पर अपने वछडे (बछिया) के लिए दूध देती है । थन चूसते हुए दूध पीते हुए वछडे पर गाय के स्वामी को दया नही आती है । और वह वछडे को अलग वाँध देते हैं । और वह इस प्रकार माँ-वेटे के वीच विछोह कर देता है । वह वछडे के भाग का दूध दुह कर स्वय पी लेता है । ऐसा करते हुए वह किसी प्रकार का सोच विचार नही करता है । जैसा सव लोग करते हैं, वैसा ही पडित जी भी करते है । वे माला-मत्र का जप व्यर्थ ही करते हैं । रक्त से बनने वाले दूध को वे पी जाते है (मानो गाय का रुधिर ही पीते हो) । इससे गाय शक्ति हीन होकर मर जाती है । उसकी मृत्यु का कारण कोई रोग बता देते है । कुछ थोडा सा द्रव्य लेकर वे मरी हुई गाय को चमार के सुपुर्द कर देते है । उसी की खाल को रगवाकर मसक तैय्यार करा लेते हैं । उस मसक वाजे को लेकर सव पडितो के साथ वैठ जाते हैं । अव आप ही देखिए कि पवित्रता की दुहाई देने वाले, पडितजी के क्या ठाठ है ? वे उस मसक का पानी पीते हैं । पडितजी का यह कार्य आश्चर्य मे डालने वाला है । (पवित्रता का ढोग करने वाले) पडितजी आश्चर्य मे डालने वाला व्यवहार करते है । वे चमडे के बने हुए पुर द्वारा खीचा हुआ ताजी पानी पीते हैं । कवीर कहते हैं कि पडित जी की भांति सव लोग इन्द्रियो की विषयासक्ति के वशीभूत होकर इस प्रकार के कार्य करते हैं और इस प्रकार शरीर के माया-मोह मे ही वधे रहते हैं ।

अलंकार—अनुप्रास—वछा बाँधि विछोही ।

विशेष—(1) गौ-सेवा का दम्भ करने वाले किस प्रकार व्यवहार मे गौहत्या के वास्तविक रूप से उत्तरदायी है, इसकी सुन्दर झाँकी प्रस्तुत की गई है । पाखण्डी जन पर भी करारा व्यग्य है ।

(४७)

एकै पवन एकही पांणी, करी रसोई न्यारी जांनी ॥
माटी सूं माटी ले पोती, लागी कहौ कहां धूं छोती ॥
धरती लीपि पवित्र कीन्ही, छोति उपाय लीक बिचि दीन्ही ॥
थाका हम सूं कहौ बिचारा, क्यू भव तिरिहौ इहि आचारा ॥
ए पांखड जींव के भरमा, मानि अमांनि जीव के करमां ॥
करि आचार जु ब्रह्म सतावा, नांव बिनां सतोष न पावा ॥

सालिगरांम सिला करि पूजा, तुलसी तोड़ि भया नर दूजा ।।
ठाकुर ले पाटै पौढावा, भोग लगाइ अरु आपै खावा ।।
साच सील का चौका दीजै, भाव भगति की सेवा कीजै ।।
भाव भगति की सेवा मांनै, सतगुर प्रकट कहै नहीं छांनै ।।
अनभै उपजि न मन ठहराई, परकीरति मिलि मन न समाई ।।
जब लग भाव भगति नही करिहौ, तब लग भवसागर क्यूं तिरिहौ ।।

भाव भगति विसवास बिनु, कटै न ससै सूल ।
कहै कबीर हरि भगति बिन, मूकति नहीं रे मूल ।।

शब्दार्थ—पाणी = पानी । पाखण्ड = वाह्याचार । मान—अमानि = ऊँच-नीच की भावना । नट दूजा = भिन्न व्यक्ति (भक्त)

सन्दर्भ—कवीरदास दम्भ को त्याग कर सत्याचरण का उपदेश देते हैं ।

भावार्थ—एक ही हवा है और एक ही पानी है । उनसे तैयार की हुई रसोई को (मिथ्याभिमान के वशीभूत होकर) अलग-अलग समझ लिया । मिट्टी लेकर जमीन (चौके का स्थान) पोत लिया । परन्तु यह तो कोई वताव कि उसमे छूत कहां लगी हुई थी ? धरती को लीप कर पवित्र वना लिया और छुआछूत की अपवित्रता से बचने के लिए बीच मे एक लकीर खीच ली । इससे क्या हुआ । इस पवित्रता और अपवित्रता का रहस्य हमे कोई समझा दे । ऐसी भेद-बुद्धि पर आधारित आचरण करके कोई व्यक्ति भव सागर से किस प्रकार पार हो सकेगा ? ये समस्त वाह्याचार तो जीव के भ्रम से उत्पन्न हुए हे । मान-सम्मान, ऊँच-नीच का भेद ये सब मनुष्य के ही वनाए हुए हैं । इस प्रकार क आचरण द्वारा जीव ईश्वर को ही कष्ट देता है । ईश्वर के नाम स्मरण के विना जाव को सतोप (सुख) की प्राप्ति नही हो सकती है । तुमने पत्थर को शालिग्राम मानकर पूजा है । तुलसी के पत्त तोड कर पत्थर पर चढाकर व्यक्ति अपने आप को अन्य व्यक्तियो की अपेक्षा भिन्न एव श्रेष्ठ समझने लगता है । ठाकुर जी को लेकर ये लोग पट्ट पर सुला देते हैं तथा उनका भोग लगा कर (मूर्ति को प्रसाद दिखा कर) स्वय सब कुछ खा जाते हैं ।

आडम्बर की भर्त्सना करते हुए कबीरदास सत्य आचरण का उपदेश देते हैं—हे जीव, सत्य और शील का अपने अन्त.करण मे चौका लगाओ । उसक वाद भक्ति-भाव पूर्वक भगवान की सेवा करो । ईश्वर भावपूर्ण भक्ति से ही प्राप्त होते हैं । सद्‌गुरु ने इस वात को अप्रत्यक्ष रूप से नही, अपितु स्पष्टत कहा है । जब तक अभय की स्थिति नही होती है जो भेद-भाव और द्वैत भावना से मुक्त होने पर ही सम्भव है तब तक मन की चचलता नही जाती है । और मन स्थिर न हो सकने के कारण परोपकार (परम तत्व के प्रेम) मे समाहित नही हो पाता है । और जब तक प्रेम भाव से प्रभु की भक्ति नही करोगे, तब तक हे जीव, तुम भवसागर के पार किस प्रकार जा सकोगे ? प्रेम सहित प्रभु-भक्ति और प्रभु के प्रति अनन्य

विश्वास के अभाव मे ससार के भ्रम एव सशय जनित कष्टों का नाश नही होता है। कबीरदास कहत हैं कि मूल सिद्धात यह है कि भगवान की भक्ति के बिना व्यक्ति को मोक्ष की प्राप्ति नही होती है।

अलकार—(i) गूढोक्ति—लागी''' छोती।

(ii) वक्रोक्ति—क्यू''''आचार, क्यू तरिहौ।

(iii) सभग पद यमक—मानि अमानि।

(iv) रूपक—साच सील का चौका, भाव भगति की सेवा, भवसागर, सर्सं सूल।

विशेष— (i) समाज मे प्रचलित वाह्याचारो पर करारी चोट है। छुआछूत के नाम पर प्रचलित 'आठ कनौजिया नौ चूल्हे' जैसे मिथ्याचारो पर तीखा व्यग्य है।

(ii) नाम—स्मरण की महिमा है।

(iii) कबीर प्रभु-भक्ति के लिए प्रेमा भक्ति (श्रद्धा) और विश्वास को मूल अवलम्बन मानते हैं। समभाव देखे—

भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ।
याभ्या विना न पश्यन्ति सिद्धा स्वान्त स्यमीश्वरम्।
(गोस्वामी तुलसीदास)

(iv) परकीरति मिलि मन न समाई। जीव-सेवा के बिना मन प्रभु-भक्ति मे स्थापित हो ही नही सकता है—

सो अनन्य गति जाकें मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवत। (गोस्वामी तुलसीदास)

(v) सत्य शील—सत्य शील साधना के आधार स्तम्भ है। इन्ही पर चल कर साधक अपने पथ पर अग्रसर हो सकता है। धर्म रथ का निरूपण करते हुए गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है कि—

सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ ध्वजा पताका।

(v) कहै कबीर 'नही रे मूल। तुलना करें—

वारि मथे बरु होहि घृत, सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भगति न भव तरिय, यह सिद्धान्त अपेल।

तथा— नाहिन आवत आन भरोसो।

× × ×

बहु मत सुनि बहु पथ पुराननि जहाँ कहाँ झगरो सो।
गुरु कह्यो राम-भजन नीको मोहि लगत राज-डगरो सो।
तुलसी बिनु परतीति प्रीति फिरि-फिरि पचि मरै मरो सो।
राम-नाम बोहित भव-सागर चाहै तरन तरो सो।
(गोस्वामी तुलसीदास)

———

भावार्थ—कबीर तो हरि के नाम पर न्योछावर है और राई लोन का उसने उतारा किया। हे नाथ ! जिस मार्ग पर तू प्राणी को ले जाता है, उस मार्ग से कौन विचलित कर सकता है।

शब्दार्थ—नाव = नाम।

कबीर करणीं क्या करै, जे रांम न करै सहाइ।
जिहिं जिहिं डाली पग धरै, सोई नवि नवि जाइ ॥१०॥

संदर्भ—ईश्वर की इच्छा के बिना कोई कार्य नहीं सिद्ध होता है।

भावार्थ—कबीरदास कहते हैं, कि यदि राम सहायता न करे तो कोई कौन सा पुरुषार्थ सफल बना सकता है। जिस-जिस डाली पर पैर रखता हूँ, वही झुक-झुक जाती है।

शब्दार्थ—सहाइ = सहायता।

जदि का माइ जनमियाँ, कहूँ न पाया सुख।
डाली डाली मैं फिरौ, पातौं पातौं दुख ॥११॥

सन्दर्भ—जब से जन्म लिया, तब से सुख न मिला।

भावार्थ—जब से जन्म लिया, तब से सुख न मिला। सुख की खोज मे मैं डाली-डाली फिरता हूँ, और देखता हूँ कि पत्ते-पत्ते मे दुख भरा हुआ है।

शब्दार्थ—पातौं-पातौं = पत्ते-पत्ते मे।

सांई सूं सब होत है, बन्दै थैं कुछ नांहि।
राई थैं परवत करै, परवत राई मांहि ॥१२॥६०६॥

संदर्भ—सांई ससार का नियन्ता है।

भावार्थ—स्वामी संसार का नियन्ता है, बन्दे से कुछ नही होता है। वही राई को पर्वत और पर्वत को राई करता है।

शब्दार्थ—बन्दे = मनुष्य।

----

३६. कुसबद कौ अङ्ग

अणी सुहेली सेल की, पड़तां लेइ उसास।
चोट सहारै सबद की, तास गुरू मैं दास ॥१॥

सन्दर्भ—कुशब्द का प्रभाव बडा व्यापक और गम्भीर होता है।

भावार्थ—भाले की नोक की चोट खाकर सांस तो लेता है परन्तु कुशब्द की चोट वडी घातक होती है, जो कुशब्द को सहन कर जाए, उसका मैं (कवीर) सेवक हूँ।

शब्दार्थ—अणी = नोक। सुहेली = सहने योग्य। सेल = भाला।

खूंदन तौ धरती सहै, बाढ सहै बनराइ।
कुसबद तौ हरिजन सहै, दूजै सह्या न जाइ ॥२॥

सन्दर्भ—हरिजन ही कुशब्द सहन करते हैं दूसरा नही।

भावार्थ—खोदना-खादना पृथ्वी सहन करती है और वृक्ष बाढ़ सहन करते हैं, हरिजन कुशब्द सहन करते हैं, दूसरा अन्य नही सहन कर सकता है।

शब्दार्थ—खूदना पैरो की रगड।

सीतलता तब जाणियें, समिता रहै समाइ।
पष छाडै निरपष रहै, सबद न दूष्या जाइ ॥३॥

संदर्भ—समदृष्टि तब अनुभव होती है, जब शीतलता का भाव हृदय मे जाग्रत होता है।

भावार्थ—पक्षपात की भावना को छोडकर, निष्पक्ष होकर विचरण करे, तभी उसके शब्द दोषपूर्ण नही होगे।

शब्दार्थ—पष = पक्ष। दूष्या जाई = दूषित लगे।

कबीर सीतलता भई, पाया ब्रह्म गियान।
जिहि बैसंदर जग जल्या, सो मेरे उदिक समान ॥४॥६१०॥

संदर्भ—ईश्वर की कृपा से ब्रह्म ज्ञान प्राप्त हो गया और माया की अग्नि शान्ति हो गई।

भावार्थ—कबीरदास कहते हैं कि जब से ब्रह्म ज्ञान प्राप्त हुआ तब से चित्त प्रशान्त हो गया। जिस अग्नि मे संसार जल रहा है, वह अब मेरे लिए शीतल प्रतीत होने लगा।

शब्दार्थ—बैसदर = अग्नि। उदिक = जल।

---

४०. सबद कौ अङ्ग

कबीर सबद सरीर मैं, बिनि गुण बाजै तंति।
बाहरि भीतरि भरि रह्या, ताथैं छूटि भरंति ॥१॥

सन्दर्भ—शरीर के अन्दर अनहद नाद होने से तंत्री झंकृत होती है जिसके कारण माया का भ्रम दूर भाग जाता है।

भावार्थ—कबीर कहते हैं कि शरीर मे अनहद नाद हो रहा है जिससे बिना तारो के ही वीणा झंकृत हो रही है। यह अनहद नाद मनुष्य के शरीर के अन्दर और बाहर चारो ओर हो रहा है जिसमे रम जाने से मनुष्य माया के भ्रम से छूट जाता है।

विशेष—(१) बिना तारो के ही वीणा झंकृत होने मे कारण के बिना कार्य होने से विभावना अलंकार है।

(२) योगियो की धारणा है कि सर्वत्र अनहद नाद होता रहता है।

शब्दार्थ—सबद = अनहदनाद। गुण = रस्सी (वीणा के तार)। तंति = तन्त्री, वीणा। भरति = भ्रान्ति = माया का भ्रम।

सती संतोषी सावधान, सबद भेद सुविचार।
सतगुर के प्रसाद थैं, सहज सील मत सार ॥२॥

संदर्भ—विषय वासनाओ से निर्लिप्त निर्मल मन वाले व्यक्तियो को इस अनहद नाद का ज्ञान हो जाता है। सद्गुरु की कृपा से उन्हे यह सब पता चल जाता है।

भावार्थ—सती स्त्री, संतोष प्राप्त व्यक्ति और विषय वासनाओ से सावधान रहने वाले व्यक्ति निर्मल मन के कारण इस अनहद नाद के रहस्य को पूर्ण रूपेण

जानते हैं। सतगुरु की कृपा से वे सभी व्यक्ति यह जान जाते हैं कि शील की स्वाभाविक और सरल अवस्था से परिचय पा जाना ही सम्पूर्ण मतो और धर्मों का सार है।

शब्दार्थ—सावधान = विषय वासनाओ से सावधान। थैं = से।

सतगुर ऐसा चाहिए, जैसा सिकलीगर होइ।
सबद मसकला फेरि करि, देह द्रपन करै सोइ ॥३॥

सन्दर्भ—सतगुरु कैसा होना चाहिए और उसका क्या कर्तव्य है इसका उल्लेख प्रस्तुत साखी मे किया गया है।

भावार्थ—सतगुरु को शान रखने वाले कारीगर के समान होना चाहिए ताकि वह उपदेश रूपी शान के पत्थर से शरीर के कलुष को हटाकर दर्पण की भाँति उज्ज्वल और स्वच्छ बना दे।

विशेष—(१) उपमा अलकार का प्रयोग है।

(२) शान रखने वाला अपने पत्थर पर लोहे के औजारो का मोर्चा और कालिमा हटाकर चमका देता है उसी प्रकार गुरु भी अपने उपदेशो के द्वारा जीव को अज्ञान के अन्धकार से दूर कर देता है।

शब्दार्थ—सिकलीगर = शान रखने वाला कारीगर। मसकला = शान रखने का यन्त्र। द्रपन = दर्पण = शीशा।

सतगुर साँचा सुरिवाँ, सबद जु बाह्या एक।
लागत ही भैं मिलि गया, पड़्या कलेजे छेक ॥४॥

सन्दर्भ—गुरु की कृपा से ही सब कार्य सफल होते हैं। उसकी कृपा दृष्टि से ही साधक अपने क्षेत्र मे सफल हो जाता है।

भावार्थ—सतगुरु सच्चा शूर वीर है, उसने उपदेश का एक तीर चलाया जिसके लगते ही मैं धराशायी हो गया, समाधि मग्न हो गया और मेरे हृदय मे एक छेद हो गया अर्थात् ससार के प्रति विरक्ति की भावना हो गई।

शब्दार्थ—साँचा = सच्चा। सूरिवाँ = शूर वीर। बाह्या = मारा, चलाया। भैं = भूमि, पृथ्वी। छेक = छिद्र = छेद, ससार से सम्बन्ध विच्छेद।

हरि-सर जे जन वेधिया, सतगुण सींगणि नांहिं।
लागी चोट सरीर में, करक कलेजे माँहिं ॥५॥

सन्दर्भ—भगवान की भक्ति मे जो व्यक्ति ओत-प्रोत हैं उनके ऊपर किसी और वस्तु का प्रभाव नही पडता है।

भावार्थ—जो व्यक्ति भगवान के प्रेम-पाश मे फंस जाते हैं उनके ऊपर साती डोरी वाले सीग के धनुष पर चलाये वाण का कोई प्रभाव नही पडता। क्योकि ईश्वर प्रेम की चोट लगती तो शरीर मे है किन्तु उसकी वेदना हृदय मे होती है।

विशेष—वाण जहाँ लगता है वही पीडा पहुँचाता है किन्तु प्रेम-वाण की चोट शरीर मे लगती है और वेदना हृदय मे होती है। अतः असंगति अलकार है।

शब्दार्थ—हरि-सर = ईश्वर के वाण। सत गुण = सात डोरी। सीगणि = सीग से निर्मित धनुप।

ज्यूं ज्यूं हरि गुण साँभलूँ, त्यूं त्यूं लागै तीर।
सांठी सांठी झड़ि पढ़ी, झलका रह्या सरीर ॥६॥

संदर्भ—प्रभु-गुण स्मरण जितना ही अधिक किया जाता है उसका प्रभाव भी उतना ही अधिक हृदय मे वैठना है।

भावार्थ—ज्यो ज्यो ईश्वर की गुण रूपी डोरी को संभालता हूँ अर्थात् जितना ही अधिक प्रभु के गुणो का स्मरण करता हूँ त्यों त्यो प्रेम का तीर अधिक गम्भीर लगता है क्योकि धनुप की प्रत्यचा को जितना ही अधिक खीचा जाता है वाण उतना ही अधिक गहरा लगता है। और जिस प्रकार वाण की लकड़ी तो बाहर रह जाती है किन्तु उसकी नोक शरीर के अन्दर प्रविष्ट हो जाती है उसी प्रकार मेरे मुख से कही वाणी मे जो सार तत्व था वह हृदय मे प्रविष्ट हो गया और निरर्थक बातें बाहर ही टूटकर गिर गईं।

विशेष—'गुण' शब्द मे श्लेष है जिसके दो अर्थ हैं भगवान के गुणानुवाद और रस्सी या धनुष की डोरी।

शब्दार्थ—गुण = अच्छापन, डोरी। भलका = वाण का अग्रभाग। साँठी = लकडी। साँभलू = सम्हलता हूँ, स्मरण करता हूँ।

ज्यूं ज्यूं हरिगुण सांभलौं, त्यूं त्यूं लागै तीर।
लागे थैं भागा नहीं, साहणहार कबीर ॥७॥

संदर्भ—प्रभु-गुण स्मरण की प्रेम-वेदना से बिचलित होकर जो साधक ईश-विरह वेदना को सहन कर लेते हैं उन्हे कबीरदास जी अपने समान भक्त बताते हैं।

भावार्थ—जैसे-जैसे प्रभु के गुणो का स्मरण करता हूँ वैसे ही वैसे तीर भी अधिक गहरा लगता है। कबीर कहते हैं कि ईश्वर प्रेम के तीर के लग जाने पर मैं ईश्वर के सम्मुख से भागा नही वरन् उसको धैर्यपूर्वक सहन करता रहा या जिसने प्रेम के तीर रूपी ईश-विरह-वेदना को सहन कर लिया वह कबीरदास के समान भक्त वन जाता है।

(१९९)

सेइ मन समझि समर्थ सरणांगता,जाकी आदि अंति मधि कोइ न पावै ।
कोटि कारिज सरै देह गुंण सबजरै, नैक जो नांव पतिव्रत आवै ।। टेक ।।
आकार की ओट आकार नही ऊबरै, सिव विरंचि अरू बिष्णु तांई ।
जास का सेवक तास कौं पाइहै, इष्ट कौं छांडि आगे न जांहीं ।।
गुंणमई मूरति सेई सब भेष मिली, निरगुण निज रूप विश्रांम नांही ।
सनेक जुग बदिगी बिबिध प्रकार की, अंति गुण का गुंणहीं समाहीं ।।
पांच तत तीनिगुण जुगतिकरि सांनियां, अष्टबिन होत नहीं क्रम काया ।
पाप पुन बीज अंकूर जांमै मरै, उपजि बिनसै जेती सर्व माया ।।
क्रितम करता कहै परम पद क्यू' लहैं, भूलि भ्रम मैं पड़्या लोक सारा ।
कहै कबीर रांम रमिता भजे, कोई एक जन गए उतरि पारा ।।

शब्दार्थ—पातिव्रत=एकनिष्ठता । त्रिगुणमयी मूर्ति=प्रतिमा । निजु=ठीक-ठीक । साना=मिश्रित । कृत्रिम=बनावटी, प्रतिमा आदि । कोई-एक बिरला ।

संदर्भ—कबीरदास राम नाम की महिमा का प्रतिपादन करते हैं ।

भावार्थ—रे मन, तू इन समर्थ भगवान की शरण मे जाकर सेवा कर जिसका, आदि अत और मध्य कोई नही पा सकता है । पातिव्रत धर्म के समान पुरी निष्ठा के साथ उसका नाम भजने से तुम्हारे करोडो कार्य सिद्ध होगे और शरीर की समस्त आवश्यकताएँ पूरी हो जाएँगी (भाव यह है कि उसका नाम स्मरण करने से तुम्हारा परलोक सुधर जाएगा और इस लोक मे सुख की प्राप्ति होगी) । भले ही आकार (पूर्ति) शिव, ब्रह्मा और विष्णु तक का हो, परन्तु आकार (प्रतिभा, मूर्ति आदि) की पूजा करने से आकारधारी इस शरीर का उद्धार सम्भव नही है । जो भगवान के जिस स्वरूप की पूजा करता है, वह उसी स्वरूप को प्राप्त होता है । वह उसके आगे नही जा सकता है, क्योकि आदर्श ही साध्य होता है । भगवान के सगुण स्वरूप की पूजा करने पर भक्त को सब प्रकार के भेषो की (सारुप्य मुक्ति) की प्राप्ति हो सकती है, परन्तु 'निर्गुण मे एवं आत्मस्वरूप मे उसकी प्रतिष्ठा नही हो सकती है । अनेक युगो तक विविध प्रकार की प्रतिमाओं की पूजा करने पर भक्त इस सगुण मे ही समाहित होता है । शरीर निर्माण के लिए पाँचो तत्वो तथा तीनो गुणों को युक्तिपूर्वक मिलाया गया है । इन आठो के बिना शरीर की उत्पत्ति का क्रम ही नहीं बैठता है । पाप और पुण्य के बीजो के अंकुर (अर्थात् पाप-पुण्य के फल) इस शरीर मे उत्पन्न होते हैं और इसमें ही मरते हैं अर्थात् इस शरीर को ही पाप-पुण्य के फल भोगने पडते हैं । इस जगत मे जो कुछ भी उत्पन्न होता है और नष्ट होता है, सब माया का ही प्रसार है । जब लोग इन बनाई हुई प्रतिमाओ को ही परमात्मा कहते हैं तब फिर उनको अव्यक्त परम पद की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है ? यह सारा संसार इस सोपाधिक को ही परम

भावार्थ—कबीर कहते हैं कि जब मन सासारिक आकर्षणो से निश्चेष्ट होकर मृतक तुल्य हो जाता है और शरीर प्रभु-भक्ति मे लगा होने के कारण क्षीण हो जाता है, दुर्बल हो जाता है तब प्रभु भक्त के पीछे लगकर बार-बार उसकी प्रशंसा करते फिरते हैं।

शब्दार्थ—कबीर-कबीर = भक्त से तात्पर्य है।

कबीर मरि मड़हट गह्या, तब कोइ न बूझै सार।
हरि आदर आगै लिया, ज्यूँ गऊ बछकी लार ॥३॥

संदर्भ—जीवित अवस्था मे ही जो व्यक्ति मृतवत् हो जाता है सांसारिक व्यक्ति उसका आदर नही करते हैं।

भावार्थ—कबीरदास कहते हैं मैं जीवित अवस्था मे ही मरे हुए के समान होकर संसार रूपी श्मसान मे पड़ा रहा किन्तु उस अवस्था मे सासारिक मनुष्यों ने निरर्थक समझकर बाते करना भी बदकर दिया। ऐसी अवस्था मे केवल भगवान ने ही वात्सल्यभाव से ग्रहण किया जिस प्रकार गाय अपने बछड़े को ग्रहण करती है।

विशेष—तुलना कीजिए मानस की चौपाई से—

करउँ सदा तिन कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी ॥

शब्दार्थ—मडहट = श्मसान, संसार। बछ = बछड़ा।

घर जालौं घर ऊबरै, घर राखौं घर जाइ।
एक अचम्भा देखिया, मड़ा काल कौं खाइ ॥४॥

संदर्भ—जीवन्मुक्त आदमी के लिए आवागमन का चक्र समाप्त हो जाता है।

भावार्थ—यदि इस सासारिक घर को जलाकर राख कर देता हूँ अर्थात् माया के बन्धन मे नहीं पडता हूँ तो वास्तविक घर अर्थात् आध्यात्मिक घर सुरक्षित हो जाता है किन्तु इसके विपरीत यदि सासारिक घर को माया जाल को सुरक्षित रखता हूँ तो आध्यात्मिक घर नष्ट हुआ जाता है। कबीर कहते हैं कि इस ससार मे एक आश्चर्यजनक घटना यह भी देखी कि जो व्यक्ति इस ससार मे जीवित रहते हुए भी मृतवत होकर जीवन्मुक्त हो जाता है वह स्वय काल को खा जाता है जबकि साधारण अवस्था मे काल मनुष्य को ही खाता रहता है।

विशेष—विरोधाभास अलंकार का प्रयोग है।

शब्दार्थ—मड़ा = मरा हुआ। काल = मृत्यु, समय।

मरतां मरतां जग मुवा, औसर मुवा न कोइ।
कबीर ऐसैं मरि मुवा, ज्यूँ बहुरि न मरनां होइ ॥५॥

भावार्थ—यदि मरने का वास्तविक ढङ्ग ज्ञात हो जाय तो जीवित रहने से मर जाना ही अच्छा है। मरने का वास्तविक तरीका तो यह है कि वास्तविक मृत्यु के पहले ही व्यक्ति ससार के प्रलोभनो और आकर्षणो से विरक्त हो जाय तो इस कलिकाल मे भी वह अमर हो सकता है।

शब्दार्थ—अजरावर = अमर के समान।

खरी कसौटी रांम की, खोटा टिकै न कोइ।
रांम कसौटी सो टिकै, जौ जीवत मृतक होइ॥ ९॥

सन्दर्भ—ईश्वर भक्ति की कसौटी पर सभी व्यक्ति खरे नही उतरते हैं उस पर जीवन्मुक्त प्राणी ही खरा उतरता है।

भावार्थ—ईश्वर की कसौटी बिल्कुल खरी है उस कसौटी पर खोटा व्यक्ति नही उतर सकता है। उसपर तो वही व्यक्ति खरा उतर सकता है जो जीवन धारण किये हुए भी सांसारिक माया जाल से निर्लिप्त रहते हैं उसके आकर्षणो से दूर रहते हैं।

शब्दार्थ—मृतक = मरा हुआ।

आपा मेट्या हरि मिलै, हरि मेट्याँ सब जाइ।
अकथ कहांणीं प्रेम की, कह्यां न को पत्याइ॥ १०॥

संदर्भ—अहकार को नष्ट करने पर ही ईश्वर की प्राप्ति होती है।

भावार्थ—व्यक्ति के अन्दर यदि अहंकार की भावना नष्ट हो जाती है तो ईश्वर की प्राप्ति हो जाती है किन्तु वह व्यक्ति जो ईश्वर को विस्मृत कर देता है उसका सब कुछ नष्ट हो जाता है। प्रेम (ईश्वर-प्रेम) की कहानी अकथनीय है उसको कहने पर सभी विश्वास नहीं करते हैं।

शब्दार्थ—आपा मेट्या = अह को नष्ट करने पर। पत्तायी = विश्वास करता है।

निगुसांवां बहि जाइगा, जाकै थाघी नहीं होइ।
दीन गरीबी बंदिगी, करता होइ सु होइ॥११॥

सन्दर्भ—इस ससार मे जिसे ईश्वर पर विश्वास नही हैं वह संसार सागर मे बहता रहता है।

भावार्थ—इस संसार मे जो व्यक्ति बिना ईश्वर के अवलंब के रहना चाहेगा वह संसार मे नष्ट हो जायेगा और बिना गुरु के आश्रय के भी व्यक्ति नष्ट हो जायगा। इस लिए इस संसार का जो भी संचालन करने वाला हो उसकी बन्दना विनम्रता और दीनता पूर्वक करनी चाहिए।

के अनुसार अन्य शरीर मे प्रवेश कर सकता है। उस साधक को स्वर्ण-निर्माण, की सामर्थ्य और गुप्तधन की दृष्टि भी प्राप्त होजाती है।

सन्दर्भ—इस पद मे हठयोग के साधक अवधूत का कथन है। कुण्डलिनी से ब्रह्म रन्ध्र तक पहुँचने की प्रक्रिया का वर्णन है।

भावार्थ—ऊपर सहस्रार का कूप है और नीचे रहने वाली कुण्डलिनी इसका पानी भरती है। जब तक सहस्रार रूपी गगन मे शुद्धात्मा की ज्योति प्रतिफलित होकर साधक को दिखाई नही देती तब तक अविनाशी ब्रह्म के प्रति उसका मन अनुरक्त नही होता है।

कबीरदास अपने आपको साधक मानकर कहते है कि जब तक मुझे ब्रह्मरन्ध्र का ज्ञान प्राप्त न हो, तब तक भला मुझे (अथवा किसी साधक को) किस प्रकार संतोष प्राप्त हो सकता है ? जब तक साधक त्रिकुटी की संधि से परिचित होकर सहस्रार स्थित चन्द्र और मूलाधार स्थित सूर्य को पास-पास नही लाता है—पिंगला और इडा नाडियो के मध्य समन्वय स्थापित नही करता है, जब तक वह नाभिस्थित मणिपूरक चक्र का चिंतन नही करता है, तब तक वह शुद्ध चित्त रूपी हीरे द्वारा शुद्धात्मा रूपी हीरे को कैसे वेध सकता है ? अभिप्रेत भाव यह है कि आज्ञाचक्र मे स्थित त्रिकुटी का ज्ञान प्राप्त होजाने पर इडा और पिंगला का अन्तर समाप्त हो जाता है तथा मणिपूरक चक्र पर चिन्तन करने पर ही ब्रह्म की प्राप्ति सम्भव होती है। सोलह कला से युक्त चन्द्र जहाँ सहस्रार पर सुशोभित रहता है, वही अनाहत का वाद्य भी बजता है। भाव यह है कि ब्रह्मरन्ध्र वाले सहस्रदल कमल मे ब्रह्म का निवास है। सिद्धि प्राप्त कर लेने पर योगी को वही पर अनाहदनाद (The voice of the silence) सुनाई पडता है। सिद्धि मिलने पर ही सुषुम्ना मे आनन्द उत्पन्न होता है तथा सहस्रार के उलटे कमल मे गोविन्द को प्राप्त करता है। साधना द्वारा जब मन और प्राण वायु मिल जाते हैं, तब मन और परमात्मा मिलकर इस प्रकार एक होजाते हैं जिस प्रकार नाले-नालियो का जल गंगा के बहते हुए जल मे मिलकर एक मेल होजाता है। कबीरदास कहते हैं कि इस प्रकार अपने शरीर के भीतर ही सब कुछ समझलो तथा सहस्रार के घाट-रहित स्थान मे मोक्ष की क्यारी को आनन्दामृत से सींच लो।

अलंकार—(i) असंगति—ऐसी ·····वाणी।
(ii) रूपक—भवर गुफा, नाभि कमल, हीरैं मन, हीरैं पवन, औघट घाट क्यारी।
(iii) विरोधाभास की व्यंजना—औघट घाट।
(iv) यमक—हीरैं हीरा।
(v) उदाहरण—ज्यूं भइया।

विशेष—(i) कबीरदास ने हठयोग की प्रक्रिया को बड़े ही कवित्वपूर्ण ढग पर रोचक शैली मे समझाया है। उन्होंने बताया है कि किस प्रकार इसी शरीर मे

भावार्थ—हे ईश्वर भक्त ! तू अपने को इतना विनीत बनाले जितना मार्ग मे पडा हुआ रोड़ा विनीत होता है। उसे चाहे जो ठोकर मारे सहता रहता है। और जब तुममे इस प्रकार की सहन शक्ति आ जायेगी अहं का विनाश हो जायगा तब तुझे भगवत्प्राप्ति हो सकेगी।

शब्दार्थ—रोडा = मार्ग का पत्थर। बाटका = मार्ग का।

---

४२. चित कपटीभेष कौ अंग

कबीर तहाँ न जाइए, जहाँ कपट का हेत।
जालूँ कली कनीर की, तन रातौ मन सेत ॥ १ ॥

सन्दर्भ—जहाँ पर कपटपूर्ण आचरण होता हो वहाँ नहीं जाना चाहिए।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि वहाँ न जाना चाहिए जहाँ कपटपूर्ण व्यवहार होता हो। कपटी प्रेमी कन्नेर की कली के समान होता है। जिस प्रकार कन्नेर की कली का रंग ऊपर से लाल और भीतर से श्वेत होता है उसी प्रकार कपटी मित्र का व्यवहार भी ऊपर से प्रेमपूर्ण और हृदय से प्रेम रहित होता है।

विशेष—तुलना कीजिए—

परोक्षे कार्य हन्तारं, प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत्तादृशं मित्रे, विष कुम्भं पयोमुखम् ॥

शब्दार्थ—हेत = प्रेम।

संसारी साषत भला, कंवारी कै माइ।
दुराचारी वैश्नौं बुरा, हरिजन तहाँ न जाइ ॥ २ ॥

सन्दर्भ—अच्छे आचरण वाला व्यक्ति ही श्रेष्ठ होता है। ईश्वर-भक्त कपटी आचरण वाले के यहाँ नही जाते।

भावार्थ—संसार मे लिप्त शाक्त यदि अच्छे आचरण वाला है तो वह दुराचारी वैष्णव से श्रेष्ठ है। वह शाक्त कुमारी कन्या के समान मन से निर्मल रहता है केवल बाह्य रूप से ही वह संसार से लिप्त रहता है। किन्तु इसके विपरीत दुराचारी वैष्णव सांसारिक कालुष्य से परिपूर्ण होता है। भगवान के भक्त वहाँ नही जाते हैं।

प्रकार मुझे अपना शिष्य बनाकर कृपा करके इस संसार रूपी समुद्र के पार उतार कर उस पार समतल भूमि (मैदान) मे खड़ा कर देता।

शब्दार्थ—पिछानि = पहचान।

ऐसा कोई नाँ मिलै, राँम भगति का मीत।
तन मन सौंपै मृग ज्यूँ, सुनै बधिक का गीत॥३॥

सन्दर्भ—भक्ति की अनन्यता पर जोर देते हुए कबीरदास जी कहते हैं कि—

भावार्थ—मुझे रामभक्ति से परिपूर्ण ऐसा कोई भी व्यक्ति (गुरु) नही मिला जो अपना तन और मन अर्थात् सर्वस्व ईश्वर को सौंप दे और निश्चिन्त हो जाय। जिस प्रकार मृग शिकारी का तन्त्रीनाद सुनते समय यह भी विचार नही करता कि इससे मेरी मृत्यु भी हो सकती है उसी प्रकार वह ईश्वर भक्त भी सासारिक हानि लाभ का विचार नही करता है।

विशेष—उपमा अलकार।

ऐसा कोई नां मिलै, अपना घर देइ जराइ।
पंचू लरिका पटिक करि, रहै राम ल्यौ जाइ॥ ४॥

सन्दर्भ—सासारिक माया जाल और आकर्षणो को कोई विरले ही व्यक्ति छोड़ पाते हैं। साधारण मनुष्य तो उसी मे लिप्त रहते हैं।

भावार्थ—मुझे ऐसा कोई व्यक्ति नही मिला जो इस संसार से इतना विरक्त हो जाय कि अपने घर द्वार तक को आग लगाकर भस्म कर सके और अपने पाँचो पुत्रो अर्थात् काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह को पृथ्वी पर पटक कर समाप्त कर दे और ईश्वर के नाम स्मरण मे अपने को प्रवृत्त कर दे।

शब्दार्थ—पचू लरिका – पाँचो पुत्र अर्थात् काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह।

ऐसा कोई नाँ मिलै, जासौं रहिए लागि।
सब जग जलता देखिए, अपणीं अपणीं आगि॥५॥

सन्दर्भ—ससार के सभी व्यक्ति अपनी-अपनी चिन्ताओ से व्यथित है कोई भी चिन्ता रहित नही मिल पाता है।

भावार्थ—मुझे कोई भी व्यक्ति इस संसार मे ऐसा नही मिला जिससे मिलकर मैं प्रेम-पूर्ण व्यवहार कर सकूं। संसार के सभी प्राणी अपने-अपने कर्मों के अनुसार प्राप्त वेदनाओ मे व्यथित हैं। सभी चिन्ता की अग्नि मे भस्म हो रहे हैं।

विशेष—तुलना कीजिए—

वह ज्ञान और भक्ति के समन्वय से उत्पन्न प्रेम के महारस का पान करने वा
बनता है और कायायोग एव ध्यान योग द्वारा प्राप्त होने वाले अमृत का भो
करता है। वह ज्ञान की अग्नि मे शरीर को जलाने वाली वासनाओ को भस्मीभू
कर देता है तथा अजपा जाप (अनहद नाद) मे लवलीन रहता है। वह जगत्
विमुख होकर चेतना को त्रिकुटी मे स्थित कर देता है और इस प्रकार समाधिस्
हो जाता है। सहज समाधि मे स्थित होकर वह समस्त विषयो को त्याग देता है
वह इड़ा, पिंगला एव सुषुम्ना के मिलन-विन्दु रूप त्रिवेणी मे अवगाहन करता
तथा आनन्द की विभूति को अपने अन्त करण मे रमाकर मन को वासनाओ
रहित करके पवित्र करता है। कवीर अलख निरजन प्रभु की भक्ति करता है।

अलंकार—(1) रूपक—महारस अमृत, ब्रह्म अग्नि, त्रिवेणी विभूति।
(ii) विरोधाभास—अजपा जाप।

विशेष—(1) भक्तो की भाँति कवीरदास निर्गुण ब्रह्म की भक्ति करते
और सेव्य-सेवक भाव का आरोप करते है।

(ii) कायायोग, ज्ञान एव भक्ति की त्रिवेणी द्रष्टव्य है।

(iii) अमृत—देखें टिप्पणी पद स० ४

अजपा जाप—देखे टिप्पणी पद स० १५७

उन्मनी— देखें टिप्पणी पद स० २०३

त्रिकुटी—देखें टिप्पणी पद स० ४

अलख निरजन—देखें टिप्पणी पद स० १४२ व १६४

सहज समाधि—देखे टिप्पणी पद स० ७

(iv) त्रिवेणी— देखें टिप्पणी पद स० ४, ७

(v) इस पद मे कायायोग और भक्ति का सुन्दर समन्वय है।

(२०५)

या जोगिया की जुगति जु बूझै,
रांम रमै ताकौं त्रिभुवन सूझै ॥ टेक ॥
प्रगट कंथा गुपत अधारी, तामैं मूरति जीवनि प्यारी ॥
है प्रभू नेरैं खोजै दूरि, ग्यांन गुफा मैं सींगी पूरि ॥
अमर बेलि जो छिन छिन पीवै, कहै कबीर सो जुगिजुगि जीवै ॥

शब्दार्थ—कंथा=गुदडी। कथा धारी=योगी। अधारी=साधु
लकडी। नेरैं=पास। सीगी=शृगी, योगियो द्वारा प्रयुक्त सीग का
अमरवेलि=ज्ञानरूपी वेलि।

संदर्भ—कबीरदास कायायोग की महिमा का वर्णन करते है।

भावार्थ—इस कायायोग की साधना करने वाले साधक योगी की
के रहस्य को जानकर जो राम मे रमण करता है अर्थात् जो राममय हो जाता
है, उसको तीनो लोक दिखाई देने लगते है अर्थात् वह तीनो लोको मे व्याप्त है

सन्दर्भ—इस ससार मे लोग सासारिक वस्तुओ से प्रेम करते हैं। ईश्वर प्राप्ति के साधन नही अपनाते हैं।

भावार्थ—इस ससार मे 'तीन' वस्तुओ के तो प्रेमी बहुत मिल जाते हैं परन्तु 'चौथी' से प्रेम करने वाले कोई भी नही मिलते हैं। यद्यपि उस ईश्वर के सम्पूर्ण मनुष्य प्रेमी हैं किन्तु संसार के माया-मोह मे लिप्त होकर पराधीन हो किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाते हैं और ईश्वर को विस्मृत कर देते हैं।

विशेष--"तीन सनेही बहु मिलै चौथे मिलै न कोइ" के विभिन्न अर्थ हैं।

(१) (क) सम्पत्ति (ख) स्त्री (ग) मित्र तथा सम्बन्धी (घ) ईश्वर।

(२) (क) जागृत (ख) स्वप्न (ग) सुषुप्ति (घ) तुरीय।

(३) (क) धर्म (ख) अर्थ (ग) काम (घ) मोक्ष।

(४) (क) लोकैषणा (ख) वित्तैषणा (ग) पुत्रैषणा (घ) प्रभु प्राप्ति।।

शब्दार्थ—परबसि = परवश, माया ग्रस्त।

माया मिलै महोबती, कूड़ै आखै बैन।
कोई घायल वेध्या नां मिलै, सांई हंदा सैंण ।।१०।।

सन्दर्भ—माया के वशीभूत तो बहुत से व्यक्ति मिल जाते हैं किन्तु ईश्वर प्रेमी कम मिलते हैं।

भावार्थ—इस ससार मे मोहवती माया के वशीभूत तो बहुत से व्यक्ति मिल जाते हैं जो व्यर्थ की बाते कहकर अपना समय बिगाडते रहते हैं। किन्तु ऐसा कोई व्यक्ति नही मिलता जिसका हृदय ईश्वर की कृपाकटाक्ष से घायल हो गया है।

शब्दार्थ—महोबती = मोह युक्त। कूडे = बुरे। आखै = कहती है। वेध्या = बिन्धा हुआ। सांई = प्रभु। सैंण = कटाक्ष।

सारा सूरा बहुँ मिलै, घायल मिलै न कोइ।
घायल ही घायल मिलै, तब रांम भगति दिढ़ होइ ।।११।।

संदर्भ—ईश्वर प्रेम की चोट खाए हुए व्यक्तियो का इस संसार मे अभाव है। समान गुणो वाला व्यक्ति एक दूसरे से मित्रता जोड़ता है।

भावार्थ--इस संसार मे ऐसे शूरवीर तो बहुत मिलते हैं जिन्होने कभी भी युद्ध मे चोट न खाई हो। लेकिन ईश्वर-प्रेम की चोट खाकर घायल हुआ शूरवीर कोई नही मिलता। ईश्वर की भक्ति मे दृढता तभी आ सकती है जबकि प्रेम से आहत हुए भक्त को अपने ही जैसा प्रेम का घायल व्यक्ति मिल जाय और उन दोनो से मैत्री संबन्ध स्थापित हो जाय।

किसी प्रकार अन्तर नही आता है। वास्तविकता तो यह है कि जो जिसका वास्तविक प्रेमी होता है वह दूर हो करके भी अन्तरङ्ग मन से निकट ही रहता है।

विशेष—(१) अर्थान्तर न्यास अलंकार

(२) तुलना कीजिए—"दूर स्थोऽपि न दूरस्थो यदि मनः स्थितः"

शब्दार्थ—कमोदिनी = जल मे रहने वाला पुष्प जो चन्द्रोदय से ही विकसित होता है।

कबीर गुर बसै बनारसी, सिष समन्दर तीर।
बिसारया नहीं बीसरै, जे गुंण होइ सरीर।। २ ।।

सन्दर्भ—यदि शिष्य मे सद्गुण हैं तो दूरस्थित होने पर भी गुरु के द्वारा भुलाया नही जा सकता है।

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि शिष्य का गुरु तो बनारस मे स्थित है और शिष्य समुद्र के किनारे बैठा तपस्या कर रहा है किन्तु यदि शिष्य के शरीर मे सद्गुणो का निवास है तो गुरु के द्वारा वह कभी भुलाने पर भी भुलाया नही जा सकता। स्थान की दूरी से स्नेह संबन्ध मे अन्तर नही आ सकता।

शब्दार्थ—समन्दा = समुद्र।

जो है जाका भावता, जदि तदि मिलसी आइ।
जाकौं तन मन सौंपिया, सो कबहूँ छाँड़ि न जाइ।।३।।

संदर्भ—ईश्वर का अनन्य भक्त अपनी साधना को किसी न किसी दिन सफल होता हुआ अवश्य पायेगा।

भावार्थ—जो व्यक्ति जिसका स्नेही है वह कभी न कभी अपने प्रेम पात्र से येनकेन प्रकारेण आकर मिलता अवश्य है और जिसको अपना शरीर और मन निष्कपट भाव से सौंप दिया गया है वह कभी उसको छोड़कर जा नही सकता।

शब्दार्थ—जदि तदि = जिस किसी प्रकार।

स्वामी सेवक एक मत, मन ही मैं मिलि जाइ।
चतुराई रीझै नहीं, रीझै मन कै भाइ।।४।।६५२।।

सन्दर्भ—ईश्वर चतुराई और बुद्धिमानी से नही प्राप्त होता है। उसकी प्राप्ति सच्चे प्रेम से ही होती है।

भावार्थ—स्वामी (परब्रह्म) और सेवक (भक्त या जीवात्मा) एक मत पर आधारित होकर प्रेम के सच्चे रूप को अपनाकर आध्यात्मिक रूप मे मिल

तीनों अर्थो मे गृहीत शब्द था। (i) भ्रू-स्पर्श आदि अग-स्थिति रूप मुद्रा, (ii) कुण्डल आदि शरीर पर धारण करनेवाली वस्तुएँ, (iii) मैथुन तथा विन्दु रक्षा के तांत्रिक अनुष्ठानो के लिए स्वीकृत सह-साधिका नारी। कबीर इन तीनो को तत्त्व प्राप्ति का साधन नही मानते। ऐसी शृगी और खपरा के वाह्य रूप भी तत्त्व प्राप्ति के साधन नही। अत' कबीर इनको आध्यात्मिक अर्थ दे रहे हैं।"

(२०७)

वावा जोगी एक अकेला,
जाकै तीर्थ व्रत न मेला ॥ टेक ॥
झोली पत्र विभूति न वटवा, अनहद वेन वजावै ॥
मांगी न खाइ न भूखा सोवै घर अगनां फिरि आवै ॥
पांच जनां की जमाति चलावै, तास गुरू मै चेला ॥
कहै कवीर उनि देसि सिधाये, वहुरि न इहि जगि मेला ॥

शब्दार्थ—पंच जना=पांच जन=पांच ज्ञानेन्द्रियां। जमात=समूह। चलावै=नियन्त्रित करता है।

सन्दर्भ—कवीरदास सिद्ध योगी का वर्णन करते है।

भावार्थ—योगी ससार मे अपने ढग का एक अनोखा ही व्यक्ति होता है। उसको तीर्थ, व्रत, मेला इत्यादि से कोई प्रयोजन नही होता हैं। उसे झोली, पत्र, वटुआ, विभूति आदि वहिरग साधनो की कोई आवश्यकता नही होती है। वह तो आत्म-स्वरूप मे स्थित होकर अनहद-नाद रूपी वीणा वजाता है। वह न तो भीख माँगता है और न भूखा ही सोता है। (उसको अपने स्थान पर वैठे-वैठे और विना मागे हुए जीवन-यापन के साधन उपलब्ध हो जाते हैं)। वह अपने घट रूपी घर के हृदय रूपी आँगन मे ही वापिस आ जाता है अर्थात् वह सव ओर से अपना मन हटा कर आत्म स्वरूप मे स्थित हो जाता है। वह अपनी पाँचो ज्ञानेन्द्रियो के समूह को अपने नियन्त्रण मे रखता है। कवीरदास ऐसे ही योगी के चेले वनने को तैय्यार हैं, जो अपनी साधना के द्वारा इस ससार को छोडकर उस देश को चले गये हैं अर्थात् जिन्होने परमतत्त्व का साक्षात्कार कर लिया है और पुन. इस ससार मे नही आएँगे अर्थात् जो आवागमन के चक्र मे फिर नही पडेंगे।

अलंकार—(i) भेदकातिशयोक्ति की व्यजना—एक अकेला।
(ii) रूपक—अनहद वेन।
(iii) विरोधाभास—मागी खाइ 'भूका।
(iv) रूपकातिशयोक्ति—पाच जना।

विशेष—(i) इस पद मे भी वाह्य साधना के प्रतीको (तीर्थ, व्रत, मेला, झोली, पत्र विभूति, वटुआ, वेन) को आभ्यन्तर-साधना-परक अर्थ दिए गए हैं।

(ii) आत्म स्वरूप स्थिति एव निस्पृहता योगी के प्रमुख लक्षण हैं।

कबीर सोई सूखां, मन सूं मांडे भूझ।
पंच पयादा पाड़ि ले, दूरि करै सब दूज ॥३॥

सन्दर्भ—काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह को नष्ट करके ब्रह्म और जीव के भेद को मिटा देना चाहिए।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि शूरवीर वही है जो अपने मन से युद्ध करने मे प्रवृत्त हो जाय और काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह रूपी पाँचो प्रकार कि सैनिको को घायल करके आत्मा और परमात्मा के बीच की द्वैत भावना का अन्त कर दे।

शब्दार्थ--पच पयादा = पच पदाति, पाँच प्रकार की सेना अर्थात् काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह।

सूरा झूमै गिरंद सूँ, इक दिस सूर न होइ।
कबीर यौं बिन सूरिवाँ, भला न कहिसी कोइ ॥४॥

सन्दर्भ—जो व्यक्ति अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियो पर विजय प्राप्त कर लेता है वही सच्चे अर्थो मे शूरवीर है। केवल एक दो इन्द्रियो को वश मे कर पाने वाला नही।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि शूरवीर तो वही है जो चतुर्दिक् युद्ध करता रहे। केवल एक दिशा मे युद्ध करने वाला शूरवीर नही कहा जा सकता। जब तक युद्ध करने वाला चारो ओर युद्ध करने मे प्रवृत्त नही होगा तब तक उसे अच्छा योद्धा कोई भी नही कहेगा।

विशेष—(१) इसका अर्थ साधना के क्षेत्र मे भी लिया जा सकता है। सच्चे साधक को चारो ओर के माया जनित असत् तत्वो से युद्ध करना चाहिए। एकाध असत् तत्वो से युद्ध करने वाला सच्चा साधक नही कहा जा सकता है।

(२) श्लेष अलकार का प्रयोग है।

शब्दार्थ—गिरद = चतुर्दिक्, चारो ओर।

कबीर आरणि पैसि करि, पीछैं रहै सु सूरि।
साँई सू साचा भया, रहसी सदा हजूर ॥५॥

सन्दर्भ--सच्चा शूरवीर संसार के माया जनित आकर्षणो मे नही फँसता है। वह और लोगो की तुलना मे पीछे रह जाता है।

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि सच्चा शूरवीर वही है जो ससार रूपी जगल प्रवेश करके भी अन्य साथियो से पीछै रहे अर्थात् माया जनित आकर्षणो

सूरा तबही परषिये, लड़ै धणीं के हेत।
पुरिजा-पुरिजा ह्वै पड़ै, तऊ न छाँड़ै खेत ॥६॥

संदर्भ—भक्त रूपी योद्धा को माया जन्य आकर्षणो से लडते रहना चाहिए।

भावार्थ—भक्त रूपी योद्धा की परीक्षा की कसौटी यही है कि वह ईश्वर की प्राप्ति के लिए माया मोह के बन्धनो से लडता रहे। इस युद्ध मे भले ही उसका शरीर टुकडे-टुकड़े हो जाय, फिर भी वह रण-क्षेत्र से पीठ न दिखावे, पीछे न हटे।

शब्दार्थ—परषिये = परीक्षा कीजिए। धणी = स्वामी, ईश्वर। पुरिजा-पुरिजा = टुकड़े, टुकड़े।

खेत न छाँड़ै सूरिवाँ, भूझै द्वै दल माँहिं।
आसा जीवन मरण की, मन मे आँणै नाहिं ॥१०॥

सन्दर्भ—सच्चा शूरवीर युद्ध करता रहता है जय पराजय का विचार नही करता है।

भावार्थ—कबीरदास जी का कथन है कि सच्चा साधक या शूरवीर साधना या युद्ध के क्षेत्र को छोड़ता नही है वह दोनो सेनाओ के मध्य युद्ध करता रहता है। उसके मन मे जीवन और मरण की या जय और पराजय की भावना का अन्तर्द्वंद नही रहता है। वह तो केवल कर्तव्य करना जानता है।

विशेष—(१) रूपक अलकार।
(२) तुलना कीजिए गीता के सिद्धान्त से।

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषुकदाचन।"

—गीता

शब्दार्थ—द्वै दल = दोनो दलो, दो सेनायें।

अब तौ भूज्याँ ही बणै, मुड़ि चाल्याँ घर दूरि।
सिर साहिब कौं सौंपता, सोच न कीजै सूरि ॥११॥

सन्दर्भ—ससार की व्याधियो और प्रलोभनो से युद्ध करना ही श्रेयस्कर है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि ईश्वर भक्त जब भक्ति के मार्ग पर्याप्त आगे बढ जाता है तो उसके लिए सासारिक प्रलोभनो मे पड़कर पुनः साधना के मार्ग से लौट पडना उचित नही होना है। उसके लिए तो उस अवस्था मे युद्ध करना ही

नही पहुँच पाते हैं। केवल ज्ञानी साधक ही सहजावस्था को प्राप्त हो
ा है।

अलंकार—(i) साग रूपक—सम्पूर्ण पद।
(ii) पुनरुक्ति प्रकाश—रुचि-रुचि।
(iii) पदमैत्री—ग्यान वान।

विशेष—(i) द्वितीय पंक्ति का पाठान्तर इस प्रकार है—रचिहीं रचि मेलै।
का अर्थ होता है कि जिसमे इसे तूने भली भाँति रचकर भेज दिया है।

(ii) पटचक्र—देखें टिप्पणी पद सख्या ४, ७

(iii) गगन मण्डल—देखे टिप्पणी पद सख्या १६४

(iv) सहज रूप—देखे टिप्पणी पद सख्या ५, १५५

(v) पवन खेदा—देखें टिप्पणी पद सख्या ८

(vi) तुलना करें—कूटस्थ चित्त ही कबीर का साधक मन है—

रघुवर कहेउ लखन भल छाटू।
करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू।
लखन दीख पय उतर करारा।
चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा।
नदी पनच सर सम दम नाना।
सकल कलुष कलि साउज नाना।
चित्रकूट जनु अचल अहेरी।
चुकइ न घात मार मुठ भेरी।

(रामचरितमानस ,गोस्वामी तुलसीदास)

द्रष्टव्य—योग साधना के अन्तर्गत प्राय अष्टचक्रो का उल्लेख प्राप्त होता
परन्तु कबीर प्रायः पट्चक्रो का ही वर्णन करते है। इन्होने शून्यचक्र एव सुरति
ल को छोड दिया हैं। कबीर के द्वारा संकेतित पट्चक्र निम्नस्थ प्रकार हैं—

(i) मूलाधार—इसका स्थिति-स्थान योनि माना गया है। इसमे चार
होते हैं। यह रक्त वर्ण का होता है। इसका लोक भू' है। इसका ध्यान करने
एक प्रकार की ध्वनि होती है, वह क्रमश वँ, शँ, षँ, सँ की होती है। इससे
ह लाभ होने पर मनुष्य वक्ता, सर्वविद्या विनोदी, आरोग्य, मनुष्यों मे श्रेष्ठ,
न्दचित्त तथा काव्य-प्रबंध मे समर्थ हो जाता है।

(ii) स्वाधिष्ठान चक्र—इसका स्थिति-स्थान पेडू माना गया है। इसमे
दल होते हैं। यह सिंदूर वर्ण का होता है। इसका लोक 'भुव' है। इसका ध्यान
ने से जो विशेप प्रकार की ध्वनि झकृत होती है, वह क्रमशः भ, यँ, रँ, लँ, वँ
होती है। इसके सिद्ध लाभ से अहकार विकार का नाश, योगियो मे श्रेष्ठ,
रहित और गद्य-पद्य की रचना मे समर्थ विशेपगुण मनुष्य मे उत्पन्न हो
ता है।

(iii) मणिपूरक चक्र—इसका स्थिति-स्थान नाभि कहा गया है। इसमे

भावार्थ—कायर व्यक्ति बहुत बढ चढ कर बातें करते रहते हैं, सच्चे शूर कभी भी बकवास नही करते वे तो काम को करके ही दिखाते हैं। कार्य पड़ने पर ही यह जाना जा सकता है कि शूरवीर अथवा कायर किसके मुख पर विजय की आभा चमकती है।

विशेष—तुलना कीजिए—

सूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहि आपु।
विद्यमान रनपाइ रिपु, कायर कथहि प्रलापु॥
मानस—बालकांड

शब्दार्थ—पर्मावही = बढ चढकर बाते करना। नूर = तेज।

जाइ पूछौ उस घाइलैं, दिवस पीड़ निस जाग।
बांहण-हारा जांणिहै, कै जांणे जिस लाग॥१५॥

संदर्भ—प्रभु के प्रेम की पीर का अनुमान गुरु को ही हो सकता है और अनुभव केवल साधक को।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि उस घायल व्यक्ति से उसकी पीडा की दशा पूछो जो अपनी पीडा से दिन मे व्यथित रहता है और रात मे जागता रहता है। उसके हृदय की वेदना को बाण चलाने वाला (ईश्वर) ही जान सकता है अथवा वह जान सकता है जो ईश्वर प्रेम के बाणो को खा चुका हो।

विशेष—तुलना कीजिए—

घायल की गति घायल जाणै और न जाणैं कोय।
—मीरा

शब्दार्थ—बांहणहारा = बाण चलाने वाला।

घाइल घूंमैं गहि भर्या, राख्या रहै न ओट।
जतन कियां जीवै नहीं, बणीं मरम की चोट॥१६॥

संदर्भ—ईश्वर के प्रेम को समझने वाला साधक और किसी के आश्रय मे रहना नही चाहता है।

भावार्थ—ईश्वर के प्रेम-बाण का घायल हुआ साधक रुद्ध कण्ठ से घूम रहा है। अन्य किसी की शरण मे रहना उसे अच्छा नहीं लगता। उसे जीवित रखने के अनेक प्रयत्न किए गए किन्तु वह जीवित रहना नही चाहता उसके मर्मभेदी चोट लग चुकी है।

शब्दार्थ—राख्या = रखने पर। ओट = छिपाने पर।

अति तीक्षण प्रेम को पंथ महा,
तलवार की धार पै धावनो है ।''

कबीर निज घर प्रेम का, मारग अगम अगाध ।
सीस उतारी पग तलि धरै, तब निकटि प्रेम का स्वाद ॥ २० ॥

सन्दर्भ—प्रेम का आनन्द तभी प्राप्त किया जा सकता है जब सर्वस्व बलिदान करने की सामर्थ्य हो ।

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि अपना घर तो परमतत्व ब्रह्म है जिसकी प्राप्ति प्रेम के द्वारा हो सकती है वहाँ तक पहुँचने का मार्ग अत्यन्त अगम्य और अगाध है । इस प्रेमस्वरूप की प्राप्ति और उसका रसास्वादन तभी हो सकता है जब साधक अपने सिर को काट कर पैरो के नीचे रख दे अर्थात् सर्वस्व अर्पण कर दे ।

प्रेम न खेतौं नींप जै, प्रेम न हाटि बिकाइ ।
राजा परजा जिस रुचै, सिर दे सो लै जाइ ॥ २१ ॥

सन्दभ—प्रेम वाह्य कारणो पर आधारित नही होता है वह तो सर्वस्व अर्पण से ही सभव है ।

भावाथ—प्रेम न तो खेत मे पैदा होता है और न बाजार मे ही बिकता है । वह तो सभी को प्राप्त हो सकता है । राजा, प्रजा, अमीर, गरीब जो चाहे शीशदान देकर ले जा सकता है ।

शब्दार्थ—हाटि = बाजार ।

सीस काटि पसंग दिया, जीव सरभरि लीन्ह ।
जाहि भावे सो आइल्यौ, प्रेम आट हम कीन्ह ॥ २२ ॥

सन्दभ—प्रेम के बाजार से कोई भी व्यक्ति सौदा क्रय कर सकता है । केवल त्याज चाहिए ।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि हमने प्रेम का बाजार लगाया है जिसमे जो भी व्यक्ति चाहे सामान क्रय कर सकता है । इस प्रेम के सौदे के लिए प्राणो के मूल्य को देना पड़ेगा और तराजू के पासग को निकालने के लिए अपना सिर काटकर लगाना होगा ।

सूरै सीस उतारिया, छाँड़ी तन की आस ।
आगैं थैं हरि मुल किया, आवत देख्या दास ॥२३॥

सन्दर्भ—भक्त जब ईश्वर से मिलने जाता है तो ईश्वर उसका स्वागत करता है ।

के समय मेरे पास स्वानुभूति रूपी बेल मात्र है, उसके विक्षेप रूपी पत्ते नष्ट हो चुके है।

अलंकार—(i) साग रूपक—सम्पूर्ण पद।
(ii) विरोधाभास—जीवन ....'कंता, मार्‌या........राख्या, बेलि 'पात नही।
(iii) विभावना की व्यंजना—उर बिन........सोई, मृग कै सीस नहीं रे, धुनही पिनच नही रे।
(iv) अनुप्रास—तृतीय पंक्ति, व की आवृत्ति।

विशेष— (i) वैराग्य की कुछ साधनाओ मे मन को कुचल कर विषयो से असम्पृक्त करना न उचित है और न सम्भव ही है। कबीरदास ने इसी मनोवैज्ञानिक तथ्य का प्रतिपादन किया है। उनका कहना है कि भावनाओ का उन्नयन करके विषयो को भक्तिमय बना देना ही काम्य है।

(ii) उर बिन विहूना—मन का हृदय उसकी सरसता है, 'खुर' आदि से व्यजित आकार भी सकल्प-विकल्प एव वासना रूप ही हैं। वे सब इस कृच्छ्र साधना से छिप गए हैं। ऐसे पशु का शिकार ही क्या करना, क्योकि विषयो से वचित की गई इन्द्रियाँ मृतवत् प्रतीत होती हैं।

(iii) रगत न मास—उस साधना मे तल्लीन मत होओ जिसमे केवल ज्ञान-वैराग्य की शुष्कता है और प्रेम भक्ति के रस का अभाव है। इन पक्तियो मे कबीर का भावुक भक्त उभर आया है।

(iv) ता बेल को...... ली—विक्षेपरहित माया पर साधक मन का अधिकार होगया है—उसको वह देख भर रहा है।

(v) तुम्हरे मिलन · · पात नही रे—अब मेरी मनस्थिति विक्षेपरहित है। पत्ते रहने पर बेल के वृक्ष को परिवेष्ठित करने मे कुछ व्यवधान रहता है, परन्तु पत्तो के अभाव मे बेल पूरी तरह से वृक्ष से लिपट सकती है। अतएव विक्षेप-रहित जीवात्मा अपने साध्य प्रियतम से पूर्णतया आबद्ध (एकाकार) होने की स्थिति को प्राप्त होगई है। मायारहित जीव अपने पति परमेश्वर मे पूर्णत. तदाकार होने को प्रस्तुत है।

(vi) इन पक्तियों मे सूफियो के रहस्यवाद की व्यजना है। भक्तजन भी आवरणरहित होकर ही प्रभु-मिलन को काम्य मानते है। व्रज की गोपियो ने भी कृष्ण को तभी प्राप्त किया था, जब उन्होने पूर्ण नग्नावस्था को सहर्ष स्वीकार कर लिया था। द्रौपदी के रक्षार्थ कृष्ण तभी आए थे जब उसने अपनी धोती की गाँठ का ध्यान छोडकर दोनो हाथ ऊँचे करके मुरारी को पुकारा था। अहकाररहित साधक मन ही वस्तुत पत्तेरहित बेल है।

(vii) उलटबाँसी की पद्धति से कृच्छ्र साधनाओ (हठयोगी साधना) का खण्डन एव भक्ति से महारस की प्राप्ति की प्रेरणा है।

कबीर घोड़ा प्रेम का, चेतनि चढ़ि असवार।
ग्यान षड़ग गहि काल सिरि, भली मचाइ मार ॥२७॥

सन्दर्भ—भक्ति मार्ग की साधना का वर्णन है।

भावार्थ—कबीरदास जी जीवात्मा को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि तू चैतन्य होकर प्रेम के घोडे पर सवार हो जा और अपने हाथ मे ज्ञान रूपी तलवार को ग्रहण कर काल से डटकर सामना करने को तैयार हो जा क्योकि काल (मृत्यु) तुम्हारे सिर पर खडा हुआ युद्ध करने को तैयार है।

शब्दार्थ—चेतनि = चैतन्य होकर। षड़ग = खड्ग = तलवार।

कबीर हीरा बणजिया, महँगे मोल अपार।
हाड़ गला, माँटी गाली, सिर साटै व्यौहार ॥२८॥

सन्दर्भ—ईश्वर रूपी सौदा बडी कठिनता से क्रय किया जाता है। उसी की कठिनता का वर्णन करते हुए कबीर दास जी कहते हैं कि—

भावार्थ—ईश्वर रूपी हीरे का वाणिज्य (सौदा) मैंने वहुत ही मंहगे मूल्य पर किया है। इस सौदे के तय करने में मुझे अपने शरीर की हड्डियाँ गला देनी पडी, मिट्टी से निर्मित शरीर भी जलाकर क्षीण कर देना पडा और अन्त मे मुझे अपना सिर भी काट देना पड़ा।

शब्दार्थ—बणजिया = मोल लिया। साटैं = तय किया।

जेते तारे रैणिके, तेते बैरी मुझ।
धड़ सूली सिर कंगुरै, तऊ न बिसारौं तुझ ॥२९॥

सन्दर्भ—ईश्वर के इस ससार मे वहुत ही अधिक दुश्मन होते हैं। उसी का वर्णन करते हुए कबीर दास जी कहते हैं कि—

मेरे शत्रुओ की संख्या उतनी ही है जितने आकाश मे रात्रि के समय तारे दिखाई देते हैं। यदि मेरे धड़ को सूली पर लटका कर और सिर कगूरे पर टाग दिया जाय तो भी मैं ईश्वर को विस्मृत नही कर सकता हूँ।

जे हारया तौ हरि सवाँ, जो जीत्या तौ अब।
पारब्रह्म कूं सेवतां, जे सिर जाइ तौ जाव ॥३०॥

सन्दर्भ—ईश्वर के समक्ष हारने और जीतने दोनो प्रकार से लाभ ही लाभ है।

भावार्थ—ईश्वर की सेवा मे यदि सिर भी चला जाय तो ठीक है कोई चिंता की वात नही है। यदि हार भी जाऊंगा तो उस सर्वशक्तिमान् ईश्वर से हारने मे

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि जीवात्मा रूपी सती स्त्री साधना रूपी चिता पर चढ़कर पुकारती है कि ये मित्र श्मशान। (साधनास्थल) सुन अब तो मैं और तुम ही रह गए। अब तक जो साथी यहाँ तक आए भी थे वे भी चले गए हैं। साधना के क्षेत्र मे केवल साधक और साधना स्थली की आवश्यकता है और मित्रो का कोई काम नही।

शब्दार्थ—सलि = चिता। समान = श्मशान। निदान = अन्त मे।

सती बिलारी सत किया, काठौं सेज बिछाई।
ले सूती पिव आपणां, चहुँ दिसि अगनि लगाइ ॥३४॥

सन्दर्भ—सती स्त्री के सती होने का दृष्टान्त देकर कबीर दास जी आत्मा को परमात्मा से दादात्म्य करने की सलाह देते हैं।

भावार्थ—आत्मा रूपी सती स्त्री साधना की कठोर सेज को बिछाकर उस पर अपने प्रियतम (परमात्मा) को लेकर सो गई और फिर चारो ओर से कठिन आग लगा दिया। इस प्रकार अपने स तीत्व का परिचय दे रही है।

शब्दार्थ—बिलारी = विचारी।

सती सूरा तन साहि करि, तन मन कीया घांण।
दिया महौला पीव कू, तब मड़हट करै बषाँण ॥३५॥

सन्दर्भ—सती स्त्री एव शूरवीर के गुणो की प्रशंसा सभी करते हैं।

भावार्थ—सती और शूरवीर के समान ही आत्मा ने अनेक कष्टो को सहन करके मन और शरीर की घानी बनाकर मथ दिया। और साधक ने अत्यन्त परिश्रम से महेरी बनाकर परमात्मा रूपी प्रियतम को खिला दिया जिसे देखकर श्मशान तक उसके गुणो का बखान करने लगा।

शब्दार्थ—महौला = महेरी। मड़हट = मरघट, श्मशान। बषाण = बखान।

सती जलन कूँ नीकली, पीव का सुमिरि सनेह।
सबद सुनत जीव निकल्या, भूलि गई सब देह ॥३६॥

सन्दर्भ—आत्मा जब परमात्मा के शब्द को सुन लेती है तो वह तुरन्त उससे मिलने का प्रयास करती है। उसे इस ससार से कोई सम्बन्ध नही रहता है।

भावार्थ—सती स्त्री रूपी आत्मा अपने प्रियतम रूपी परमात्मा का स्नेहपूर्वक स्मरण कर साधना के मार्ग मे दग्ध होने के लिए निकली। ऐसे ही समय मे परमात्मा का अनहदनाद सुनाई पड़ा जिसके सुनते ही आत्मा शरीर से अलग होकर परमात्मा

(२१५)

रांम नांम रंग लागौ, कुरग न होई ।
हरि रंग सौ रंग और न कोई ।। टक ।।
'और सबै रंग इहि रग थै छूटै, हरि रग लागा कदे न खूटै ।।
कहै कबीर मेरे रंग रांम राई, और पतग रग उड़ि जाई ।

शब्दार्थ—कुरग=फीका, भद्दा । कदे=कभी । खूटै=छूटता है । पतग = पतगी, कच्चा ।

सन्दर्भ—कबीरदास राम-प्रेम की महिमा का प्रतिपादन करते हैं ।

भावार्थ—राम नाम के प्रति प्रेम हो जाने पर अन्य किसी के प्रति आसक्ति उत्पन्न नही होती है । राम प्रेम एक ऐसा रग है जो कभी हलका नही होता है । भगवान के प्रेम के समान अन्य किसी का प्रेम नही है । हरि-प्रेम हो जाने पर अन्य समस्त वस्तुओ के प्रति आकर्षण समाप्त हो जाता है । हरि प्रेम का रग एक वार लगने पर कभी भी कहीं छूटता है । कबीर कहते हैं कि भगवान राम का प्रेम रूपी रग मेरे ऊपर चढ गया है । अन्य समस्त रग तो अस्थायी हैं । वे सब उड जाते हैं । अभिप्रेत यह है कि राम के प्रति प्रेम स्थायी रहता है । इसी से कबीरदास ने राम से प्रेम कर लिया है ।

अलकार—(i) सभग पद यमक—रग कुरग ।
(ii) अनन्वय - हरि रग सौ   कोई ।
(iii) अनुप्रास—अन्तिम दो चरण ।
(iv) विशपोक्ति की व्यजना—कदे न खूटै ।
(v) रूपक—हरि रग ।

(२१६)

कबीरा प्रेम कूल ढरै, हमारे रांम बिनां न सरे ।
बांधि लै धोरा सोंचि लै क्यारी ज्यूं तूं पेड़ भरै ।। टेक ।।
काया बाड़ी मांहै माली, टहल करै दिन राती ।
कबहू न सोवै काज सवारे, पांणतिहारी माती ।।
सेझै कूवा स्वांति अति सीतल, कबहूं कुवा वनही रे ।
भाग हमारे हरि रखवाले, कोई उजाड़ नही रे ।।
गुर बीज जमाया कि रखि न पाया, मन की आपदा खोई ।
औरै स्यावढ करै षारिसा, सिला करै सब कोई ।।
जौ घरि आया तौ सब ल्याया, सबही काज सवारचा ।
कहै कबीर सुनहु रे सतौ, थकित भया मै हारचा ।।

शब्दाथ—कूल=किनारा । सरे=काम चलता है । धोरा=धुरा, सिचाई के लिए वनाई गई बडी नाली । टहल =सेवा । पाणतिहारी=पानी को इधर-उधर मोड कर क्यारियो मे पानी देने वाला । माती=मस्त । कि रखि न पाया=किरखि

शब्दार्थ--छानैं = छिपकर।

कबीर हरि सबकूं भजै, हरि कूं भजै न कोइ।
जब लग आस सरीर की, तब लग दास न होइ ॥४०॥

सन्दर्भ—ईश्वर को कोई भजे चाहे न भजे वह सबका ध्यान रखता है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि ईश्वर तो सभी प्राणियो का ध्यान रखता है भले ही सभी प्राणी उसका स्मरण न करे। उसका स्मरण तो विरले ही करते हैं। जब तक व्यक्ति को शरीर की आशा रहती है तब तक वह ईश्वर का भक्त हो ही नही सकता। ईश्वर का भक्त होने के लिए तो संसार के आकर्षणो से विमुख होना ही पड़ेगा।

आप सवारथ मेदनी, भगत सवारथ दास।
कबीरा राम सवारथी, जिनि छाड़ी तनकी आस ॥४१॥६९३॥

संदर्भ—ससार स्वार्थ से परिपूर्ण है। प्रत्येक व्यक्ति के कार्य किसी न किसी स्वार्थ से परिपूर्ण होते हैं।

भावार्थ--यह सम्पूर्ण ससार स्वार्थ से परिपूर्ण है यहाँ तक कि ईश्वर भक्त को भी भक्ति का स्वार्थ रहता ही है। कबीरदास भी स्वार्थी ही हैं। उनके स्वार्थ मे अन्तर है और वह यह कि वे केवल ईश्वर के ही स्वार्थी हैं और प्रभु प्राप्ति के लिए कबीर ने शरीर के मोह को भी छोड़ दिया है।

शब्दार्थ—मेदनी, मेदिनी = पृथ्वी (संसार से तात्पर्य है)

---

४६. काल कौ अंग

झूठे सुख कौं सुखकहै, मानत है मनमोद।
खलक चवीणा कालका, कुछ मुख में कुछ गोद ॥१॥

सन्दर्भ—संसार के मायावी मनुष्य झूठे सुखो मे ही उलझे रहते हैं और काल अपने विशाल हाथो से उन्हे पकड़-पकड़ कर खा जाता है।

भावार्थ--कबीरदास जी कहते हैं कि ऐ माया मे लिप्त मनुष्यो ! तू नश्वर और मिथ्या सुखो को वास्तविक समझकर प्रसन्नता का अनुभव करते हो। वास्तविकता तो यह है कि यह सम्पूर्ण संसार काल (मृत्यु) का चबेना है। कुछ तो उसने

आज कहै हरि काल्हि भजौगा, काल्हि कहै फिर काल्हि ।
आजही काल्हि करंतड़ां, औसर जासी चालि ॥५॥

संदर्भ—ईश्वर-स्मरण में विलम्ब करना श्रेयष्कर नहीं होता है ।

भावार्थ—ससार के आकर्षणो मे लिप्त प्राणी कहते हैं कि ईश्वर का स्मरण कल करूंगा और जब कल आ जाता है तो अगले कल के लिए बात फिर टाल दी जाती है और इस प्रकार आज कल के करते ही सम्पूर्ण जीवन का समय नष्ट हो जाता है वह वे ईश्वर का स्मरण कर नही पाते हैं ।

शब्दार्थ—करंतड़ां = करते करते ।

कबीर पल की सुधि नहीं, करै काल्हि का साज ।
काल्हि अच्यंता झड़पसी, ज्यूं तीतर कौ बाज ॥६॥

सन्दर्भ—इस जीवन मे एक क्षण को भी कोई खबर नही है फिर भी लोग निश्चिन्त ही रहते हैं और मृत्यु के मुख मे जाते हैं ।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि एक पल की भी खबर नही कि क्षण भर मे क्या हो जायगा किन्तु ऐ जीव ! सब कुछ भविष्य के लिए सज्जित करके रखता है । अचानक ही कल मृत्यु तेरे ऊपर उसी प्रकार झपटेगी जिस प्रकार तीतर के ऊपर बाज झपटकर उसे पकड़ लेता है और मार डालता है ।

विशेष—उपमा अलंकार ।

शब्दार्थ—अच्यता = अचानक ।

कबीर टग टग चोघतां, पल पल गई बिहाइ ।
जीव जंजाल न छाड़ई, जम दिया दमांमां आइ ॥७॥

सन्दर्भ—आयु धीरे धीरे ढलती रहती है किन्तु फिर भी मनुष्य पेट भरने के अतिरिक्त और कुछ नही करता । वह बंधन से मुक्त भी नहीं हो पाता कि मृत्यु को प्राप्त हो जाता है ।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि जीव ने इस ससार मे माया प्रसूत सुखो के दानो को चुगते अपने जीवन के एक-एक क्षण को नष्ट कर दिया । फिर भी जीव ने माया के जजाल को नही छोड़ा यहां तक कि मृत्यु ने उसके सिर पर आकर कूच का डका बजा दिया ।

शब्दार्थ—टग टग = कण कण । चोघता = चुगते ।

मैं अकेला ए दोइ जणां, छेती नाहीं कांइ ।
जे जम आगैं ऊबरौं, तो जुरा पहूंती आइ ॥८॥

जगु पेषन तुम वेखन हारे। विधि हरि सभु नचावन वारे।
सोउ न जानहिं मर्म तुम्हारा। और तुम्हहिं को जाननिहारा।
—गोस्वामी तुलसीदास

(२१६)

गोव्यंदे तूं निरंजन तूं निरंजन तूं निरजन राया ।
तेरे रूप नहीं रेख नाहीं मुद्रा नहीं माया ।। टेक ।।
समद नाहीं सिषर नाहीं, धरती नाहीं गगनां ।
रवि ससि दोउ एकै नांही, वहत नाहीं पवनां ।।
नाद नाही व्यंद नाहीं, काल नांहीं काया ।
जब तें जल व्यंब न होते, तब तू ही राम राया ।।
जप नांहीं तप नांही, जोग ध्यांन नहीं पूजा ।
सिव नांही सक्ती नांही, देव नहीं दूजा ।।
रुग न जुग न स्यांस अथरवन, वेद नहीं व्याकरनां ।
तेरी गति तूंहीं जांनै, कबीर तो सरनां ।।

शब्दार्थ—निरंजन=निर्लिप्त। मुद्रा=भावसूचक मुखचेष्टा । समद=समुद्र। सिषर=शिखर, पर्वत या पर्वत की चोटी। व्यंद=विंदु, शरीर।

सन्दर्भ—कबीर भगवान को शब्दातीत अथवा वर्णनातीत बताते हैं।

भावार्थ—हे परमात्मा ! तू सब प्रकार माया से अतीत एवं निर्लिप्त तथा अलक्ष्य है। न तुम्हारा कोई आकार है और न तुम्हारे आकार की कोई रूप-रेखा ही है। तुम्हें प्राप्त करने के लिए कोई शारीरिक चेष्टा एव मन की मुद्रा ही निर्धारित की जा सकती है। तुम्हे माया भी नही व्यापती है। न तुम्हारे शुद्ध स्वरूप मे समुद्र है, न शिखर (पर्वत) है, न पृथ्वी है और न आकाश ही है। उसमे सूर्य तथा चन्द्र मे एक भी नही है, न वहाँ पवन की गति है, न वहाँ शब्द है, न रूप है, न काल है, न काया है। तुम्हारे शुद्ध स्वरूप मे न जल रह जाता है और न उसमे पडने वाला प्रतिविम्ब रह जाता है। उस समय न जप रहता है न तप रहता है, न योग रहता है न ध्यान और उपासना का ही अस्तित्व रह जाता है। उस समय न शिव रह जाते हैं और न शक्ति रह जाती है। उस समय तेरे अतिरिक्त अन्य कोई दूसरा देवता रह ही नही जाता है। उस समय ऋगवेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद तथा शब्द का प्रतिपादक व्याकरण कुछ भी नही रह जाते हैं। कबीरदास कहते हैं कि हे प्रभु ! अपनी लीला तू ही जानता है। मे तो केवल तेरी शरण मे आया हूँ।

अलंकार—अनुप्रास—आछन्त।

विशेष—(1) अद्वैतवाद का सहज-स्वाभाविक प्रतिपादन है। अद्वैतावस्था मे ज्ञाता, ज्ञेय एवं ज्ञान का भेद मिट ही जाता है।

(11) तू निरजन··· ·रामा—मन-वचन-कर्म तीनो से अगमता बताई है।

(111) काव्योचित भापा मे 'नेति नेति' की शैली पर 'ब्रह्म' का प्रतिपादन है।

शब्दार्थ—ऊगया = उदित हुआ। आथवै = अस्त होता है। चिणियां = चुना गया।

जो पहर्या सो फाटिसी, नांव धर्या सो जाइ।
कबीर सोई तत्त गहि, जौं गुर दिया बताइ ॥१२॥

सन्दर्भ—संसार की नश्वरता पर दुख प्रकट करते हुए कबीरदास जी प्रभु-भक्ति करने की सलाह देते हैं।

भावार्थ—जो नया वस्त्र शरीर पर धारण किया जाता है वह कभी न कभी अवश्य फटता है। जिस नाम को जीव ने इस संसार मे रखा है वह नाम भी उसकी मृत्यु के बाद धीरे-धीरे समाप्त हो जायगा। इसलिए कबीर दास जी कहते हैं कि जिस तत्व को सद्गुरु ने बता दिया है उसी तत्व को ग्रहण करना चाहिए।

शब्दार्थ—तत्त = तत्व।

निधड़क बैठा रांम बिन, चेतनि करै पुकार।
यहु तन जल का बुदबुदा, बिनसत नाहीं बार ॥१३॥

संदर्भ—मनुष्य का शरीर पानी के बुदबुदे के समान नश्वर है अतः मनुष्यो को प्रभु भक्ति करनी चाहिए।

भावार्थ—जीवात्मा को अज्ञानावस्था मे पड़ा हुआ देखकर चैतन्य अर्थात् ज्ञानी उससे पुकार कर कहता है कि प्रभु-भक्ति के बिना तू निधड़क क्यो बैठा है। यह शरीर पानी के बुदबुदे के समान है जिसको नष्ट होने मे देर नहीं लगती। इसलिए तू प्रभु भक्ति कर।

शब्दार्थ—बिनसत = नष्ट होते हुए। बार = विलम्ब।

पांणीं केरा बुदबुदा इसी हमारी जाति।
एक दिनां छिप जांहिंगे तारा ज्यूँ परभाति ॥१४॥

संदर्भ—जीव की नश्वरता का सकेत है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि हम मनुष्यो की जाति पानी के बुदबुदो के समान ही क्षण भंगुर होने वाली है। तारे रात्रि भर आकाश मे छिटके रहते हैं और प्रभात होते ही अदृश्य हो जाते हैं उसी प्रकार मनुष्य भी कुछ दिन ससार मे रह कर यहाँ से चला जायगा।

शब्दार्थ——पांणी = पानी। परभाति = प्रभात।

विशेष—उदाहरण अलंकार।

कबीर यहु जग कुछ नहीं, पिन पारा पिन मीठ।
काल्हि जु बैठा मांड़ियां, आज मसाणां दीठ ॥१५॥

सन्दर्भ—जीव नाना प्रकार से अपने ऊपर अभिमान करता है किन्तु उसे यह पता नही कि मृत्यु किस समय उसके अस्तित्व को नष्ट कर दे।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि हे जीव! तू गर्व किस बात का करता है, तेरे बालो को तो मृत्यु अपने हाथो में पकडे हुए है। यह भी पता नही कि वह तुझको कहाँ पर मारेगी घर मे अथवा परदेश मे।

शब्दार्थ—गरबियौ = गर्व करता है।

कबीर जंत्र न बाजई, टूटि गये सब तार।
जंत्र विचारा क्या करै, चले बजावण हार ॥२०॥

सन्दर्भ—शरीर रूपी तंत्री प्राणवायु के निकल जाने पर नही बजती है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि जीवात्मा की शरीर रूपी तंत्री बज नही रही है। उसके समस्त तार टूट गये हैं। जब इसको बजाने वाला प्राणवायु ही निकल गया तो फिर इस यन्त्र का इसमे क्या दोष? वह बाजे कैसे।

शब्दार्थ—जत्र = पच तत्वो से निर्मित भौतिक शरीर। बजावणहार = बजाने वाला प्राणवायु।

धवणि धवन्ती रहि गई, बुझि गये अङ्गार।
अहरणि रह्या ठमूकड़ा, जब उठि चले लुहार ॥२१॥

संदर्भ—शरीर से आत्मा स्वरूप प्राण वायु के निकल जाने पर उसके समस्त क्रिया कलाप बन्द हो जाते हैं।

भावार्थ—जब इस भौतिक शरीर से आत्मा रूपी लुहार चला जाता है तो शरीर कान्ति निस्तेज हो जाती है। शरीर रूपी भट्ठी की धौंकनी पडी ही रह गई इसके अंगारे बुझ गए अर्थात् गरमी निकल गई। धड रूपी निहाई वही पर पड़ी रह गई। सारे साज सामान व्यर्थ पड़े रह गए। सब का सम्बन्ध शरीर मे आत्मा के रहने तक ही था।

शब्दार्थ—धवणि = भट्ठी, अहरणि = निहाई। ठमूकड़ा = हथौडा।

पंथी ऊभा पंथ सिरि, बुगचा बाँध्या पूठि।
मरणां मुह आगैं खड़ा, जीवण का सब झूठ ॥२२॥

सन्दर्भ—मरण निकट होने पर जीवन मे सब कुछ मिथ्या प्रतीत होता है।

भावार्थ—आत्मा रूपी पथिक अपनी पीठ पर कर्मों की पोटली बाँधकर अनन्त पथ के लिए प्रस्तुत खडा है। मृत्यु उसके सम्मुख खडी है इसलिए उसे अब जीवन की सभी बातें निस्सार प्रतीत होती हैं।

चतुर हैं—इससे प्रत्येक कर्म का पूरा हिसाब देना पड़ता है यानी यहाँ कारण-कार्य का नियम ऐसे निर्बाध रूप मे कार्य करता है कि प्रत्येक कर्म का उपयुक्त फल मिलता है। यह एक ऐसा नगर है जहाँ रहने वाले प्रत्येक जीवात्मा का धर्म भ्रष्ट होगया है और यहाँ पाँच किसान (नेत्र, कान, नाक, मुँह तथा त्वचा) रहते हैं, जो जीव रूपी स्वामी का कहना नही मानते हैं। इस गाँव का ठाकुर काल समय-समय पर इस शरीर रूपी खेत को नापता रहता है और मन रूपी पटवारी अपना हिस्सा नही छोडता है। भाव यह है कि काल तो प्रत्येक क्षण सिर पर सवार रह कर यह देखता है कि शरीर कही खराब तो नही हो गया है और मन रूपी पटवारी मुझसे शरीर का व्यौरा माँगता रहता है। वस्तुस्थिति यह है कि यह शरीर प्रत्येक क्षण क्षीण होता रहता है और इस कारण काल ठाकुर का भय मुझे हर घडी सताता रहता है। साथ ही पटवारी के डर के कारण मैं मनचाहे ढग पर शरीर का उपभोग भी नहीं कर सकता हूँ। मेरे मन ने मेरे इस शरीर को विषय-वासनाओ के जर्जर बधनो से बुरी तरह जकड दिया है जिसके कारण मेरे शरीर को अत्यधिक कष्ट होता रहता है। इस गाँव का उधार देने वाल मेहता अर्थात् प्रारब्ध कर्म अत्यन्त दुष्ट है और क्रियमाण कर्मरूपी वलाही (कर्मचारी) भी बड़ा दुष्ट है। वह मुझे विषय मार्गों मे उलझाता रहता है। वह तो अच्छे-अच्छे जमीदारो के सिर के बाल भी नोच लेता है—उनसे प्रेम एव सद्वृत्तियो की निधि छीन कर उन्हे दरिद्र कर देता है। इस नगर का बुद्धि-रूप दीवान भी व्यथाओ के प्रति सहानुभूति रखता हुआ न्याय नही कर पाता है। पिछले जन्मो का अनुभव यह है कि शरीरात होने के अवसर पर धर्मराज ने जब मुझसे इस शरीर का पूरा हिसाब-किताब मागा तो मेरी ओर बहुत बकाया निकला था। उस समय मेरे शरीर रूपी खेत को नष्ट करने वाले इन्द्रिय रूपी पाँचो किसान मुझे छोड कर भाग गए और हे राम! बेचारा जीवात्मा ही सब प्रकार के बन्धनों से बाँध दिया गया। इसीलिए कबीरदास कहते हैं कि हे साधुओ! मेरा कहना गाँठ बाँधलो और भगवान (हरि) का भजन करके इस भवसागर से पार उतरने के लिए बेडा बाँधो। इसके पश्चात् वह भगवान से प्रार्थना करते हुए कहते है कि हे राम! इस बार तो इस जीव (मुझको) क्षमा कर दीजिए। अगले जन्म मे मैं आपका पूरा हिसाब चुकता कर दूँगा—अपने शरीर को विषय-भोगो से बचाकर अधिक अच्छा करके रखूँगा।

अलकार—(i) सागरूपक—पूरा पद।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—गाइ।

विशेष—(i) सन्त सम्प्रदाय के अनेक प्रतीको का प्रयोग है।

(ii) कबीरदास ने ज्ञानेन्द्रियों के नाम इस प्रकार लिए हैं मानो उनके प्रति आक्रोश व्यक्त कर रहे हो।

(iii) पापकर्म करने से शरीर क्षीण हो जाता है। इसी को काल द्वारा खेत का नापना कहा गया है। गर्दन नापने की भाँति शरीर नापना एक नया मुहावरा

बरियां बीती बल गया, अरु बुरा कमाया ।
हरि जिनि छाड़ै हाथ थैं, दिन नेड़ा आया ॥२६॥

सन्दर्भ—यदि जीवन भर प्रभु भक्ति न हो सके तो अन्तिम समय मे तो अवश्य ही भक्ति कर लेनी चाहिए ।

भावार्थ—इस जीवन का समय नष्ट हो गया शक्ति क्षीण हो गया किन्तु अब तक बुरे कर्म ही किए गए अच्छे कार्य नही हो सके हैं । अब जीवन का समय निकट आ गया है अब भगवान को अपने हाथ से मत जाने दो ।

शब्दार्थ—दिन नेड़ा आया = मृत्यु निकट आ गई ।

कबीर हरि सूँ हेत करि, कूड़ै चित्त न लाव ।
बांध्या बार खटीक कै, ता पसु किनी एक आव ॥२७॥

सन्दर्भ—जीवन मे प्रभु से प्रेम कर बुरी भावनाओ का परित्याग करना चाहिए ।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि ऐ संसारी मनुष्यो ! तुम प्रभु (ईश्वर) से ही अपना प्रेम का नाता जोड़ो और बुरी भावनाओ को अपने चित्त मे भी न आने दो । जिस प्रकार खटिक (वधिक) के दरवाजे पर बंधे हुए पशु की आयु का कोई भरोसा नही कि वह किसी भी समय काटा जा सकता है उसी प्रकार तुम्हारा भी कोई भरोसा नही है काल पता नही कब तुझे चट कर जाय ।

शब्दार्थ—हेत = प्रेम । कूड़ै = सांसारिक विषय वासनाएं । आव = आयु ।

विष के बन मैं घर किया, सरप रहे लपटाइ ।
ताथै जियरै डर गह्या, जागत रैणि बिहाइ ॥२८॥

सन्दर्भ—जीवात्मा नाना प्रकार को दुर्वासनाओ से लिप्त रहता है और भय के कारण अहर्निश जागता रहता है ।

भावार्थ—इस जीवात्मा का निवास इस संसार मे उसी प्रकार है जिस प्रकार विष-वन मे उसका घर बना हो और उसमे सासारिक दुर्वासनाओ के सर्प चारो ओर लिपटे रहते हैं अर्थात् जीवात्मा मे मोह, मत्सर, लोभ आदि व्याप्त रहते हैं । इसलिए जीवात्मा इनसे भयभीत होकर अज्ञान की रात को जाग करके ही व्यतीत करता है ।

कबीर सब सुख राम है, और दुखों की रासि ।
सुर नर मुनिवर असुर सब, पड़े काल को पासि ॥२९॥

सन्दर्भ—ईश्वर के नाम स्मरण के बिना इस संसार मे सभी कुछ निस्सार है ।

४७. जावनी कौ अङ्ग

जहाँ जुरा मरण व्यापै नहीं, मुवा न सुणिये कोइ।
चलि कबीर तिहि देसड़ै, जहाँ बैद विधाता होइ ॥१॥

सन्दर्भ—जिस देश मे जरा और मरण का भय नही है कबीर वहीं चलने की सलाह देते हैं।

भावार्थ—जहाँ पर बुढापा और मृत्यु व्याप्त नही हो पाती है और किसी की मृत्यु होते नही सुनी जाती है। कबीर दास जी कहते हैं कि ऐ जीवात्मा ! तू उसी देश को चल जहाँ किसी भी प्रकार की व्याधि न व्याप्त हो सके और यदि हो जाय तो स्वयं विधाता, प्रभु ही वैद्य बनकर औषधि भी कर दें।

शब्दार्थ—जुरा = जरावस्था, बुढापा।

कबीर जोगी बनि बस्यां, षणि खाये कंद मूल।
नां जाणौं किस जड़ी थैं, अमरभये असथूल ॥२॥

सन्दर्भ—भक्त की अनुपम जड़ी बूटी से जीव अमर हो जाता है।

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि जीवात्मा योगी बनकर इस संसार रूपी वन मे रहता है और नाना प्रकार के कद मूलादिको खोद करके खाता रहता है किन्तु पता नहीं किस जड़ी बूटी के प्रभाव से (ईश्वर भक्ति रूपी जड़ी से) स्थूल शरीर अमर हो जाता है।

शब्दार्थ—अस थूल = स्थूल शरीर।

कबीर हरि चरणौं चल्या, माया मोह थैं टूटि।
गगन मंडल आंसण किया, काल गया सिर कूटि ॥३॥

सन्दर्भ—ईश्वर के चरणो मे अनुराग होने से जीवात्मा मृत्यु के चक्र से छूट जाता है।

भावार्थ—कबीर दास जी कहते हैं कि सांसारिक बन्धनो का परित्याग करके मैं ईश्वर के चरणो मे गया तब माया और मोह से नाता टूट गया। मैने गगन मण्डल (शून्य, ब्रह्माण्ड) मे अपना आसन लगा दिया जिसे देखकर काल भी सिर कूटने लगा अर्थात् जीवात्मा मृत्यु के चक्र से छूटकर निकट गया।

यहु मन पढ़कि पछाड़ि लै, सब आपा मिटि जाइ।
पंगुल ह्वै पिवपिव करै, पीछैं काल न खाइ ॥४॥

नक्षत्र के जल के लिए प्यासा रह कर व्याकुल रहता है उसी प्रकार आपके अभाव मे मेरा हृदय रात-दिन बेचैन बना रहता है। कबीरदास की जीवात्मा कहती है कि राम से मिलने के लिए मुझे अत्यधिक विकलता है। हे स्वामी राम ! आप शीघ्र ही मुझ से मिलें।

अलंकार—(i) रूपक—विरह-अगिनि।
(ii) वक्रोक्ति—क्यूं होइ सहाई।
(iii) उदाहरण—निस वासुर ... पियासा।
(iv) पदमैत्री—जराई सराई, उदासा पियासा।

विशेष—(i) पद सख्या २२४ के समान।
(ii) समभाव के लिए देखे—

बलि साँवरी सूरत मोहनी मूरत, आँखिन को कबौं आइ दिखाइए।
चातक सी मरें प्यासी परी, इन्हें पानिप रूप सुधा कबौं प्याइए।

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

(iii) सगुण और साकार तथा अवतारी एव शरीरधारी भगवान की भक्ति के वर्णन की भाँति निर्गुण और निराकार की भक्ति की व्यजना की गई है।

(२२६)

मै सासने पीव गौंहनि आई।
सांई सगि साध नहीं पूगी, गयौ जोबन सुपिना की नांई ।। टेक ।।
पंच जनां मिलि मडप छायौ, तीनि जनां मिलि लगन लिखाई।
सखी सहेली मगल गांवै, सुख दुख माथै हलद चढ़ाई ।।
नांनां रंगै भांवरि फेरी, गांठि जोरि बावै पति ताई।
पूरि सुहाग भयौ बिन दूलह, चौक के रंगि धर्‌यौ सगौ भाई ।।
अपने पुरिष मुख कबहूँ न देख्यौ, सती होत समझी समझाई।
कहै कबीर हूँ सर रचि मरिहूं, तिरौं कत ले तूर बजाई ।।

शब्दार्थ—गौंहनि=गौने। पच जना=पाच महाभूत तीनि जना=तीन गुण (सत्, रज, तम)। सखी सहेली=वासना व आशा। हल्दी=सुख-दुख अथवा सासारिक जीवन। बावै=सचित कर्म रूपी बाबा। सर=चिता। सगा भाई=मन।

संदर्भ—कबीर कहते है कि जीवात्मा किस प्रकार स्थूल शरीर को धारण करती है और ससार मे लिप्त रहने के बाद वह जीवन की निरर्थकता का अनुभव करती है।

भावार्थ—अपने प्रियतम के प्रणय का आनंद लेने के लिए मैं (जीवात्मा) इस जगत रूपी ससुराल मे गौने आई हूँ। परन्तु पति के साथ आनद लेने की मेरी आकाक्षा तृप्त नही हुई और यह जीवन रूपी यौवन यो ही स्वप्न की भाँति व्यतीत होगया।

सासारिक पद्धति के विवाह के रूपक का निर्वाह करते हुए कबीर कहते हैं

भावार्थ—समस्त फलो को देने वाला स्वामी (प्रभु) ही साक्षात् वृक्ष है और वह दया के फल याचको को प्रदान करता है जिस फल से समस्त जीवो का कल्याण होता है। ऐसा सुन्दर वृक्ष और सुन्दर फल होते हुए भी जीवात्मा रूपी पंक्षी अन्यत्र इससे भी अच्छा फल पाने के लिए भटकते रहते हैं अर्थात् प्रभु-भक्ति छोड़कर सुख प्राप्ति के लिए अन्य प्रयास करते हैं।

शब्दार्थ--दिसावरा = विदेश, अन्यत्र।

---

४८. अपारिष कौ अंग

पाइ पदारथ पेलि करि, कंकर लीया हाथि।
जोड़ी बिछुटी हंस की, पड़्या बगां कै साथि ॥१॥

संदर्भ—माया मोह के कारण जीवात्मा सासारिक आकर्षणो मे लिप्त रहती हैं।

भावार्थ—अज्ञानरूपी आकर्षण के वश होकर जीवात्मा ईश्वररूपी रत्न को पाकर भी फेंक देता है और ककड के समान व्यर्थ की वस्तुओ पर आकर्षित होकर हाथ बढ़ाता है। वह, हंस के समान पवित्र आचरण रखने वाले जीवन्मुक्त व्यक्तियो से विमुक्त होकर, नीच आचरण करने वाले पाखण्डी एवं बगुला भक्तो के फेर मे पड़ जाता है।

शब्दार्थ—कंकर = कंकड, व्यर्थ की वस्तु। बगां = बगुला।

एक अचंभा देखिया, हीरा हाटि बिकाइ।
परिषण हारे बाहिरा, कौड़ी बदलै जाइ ॥२॥

सन्दर्भ—मोहाभिभुत जीवात्मा प्रभु के वास्तविक गुणो का मूल्याकन नही कर पाता है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि इस संसार की हाट मे प्रभु-भक्ति रूपी हीरा विक रहा है। इस हीरे को परखने वाले जौहरी आसानी से नही मिलते हैं और जो मिलते हैं वे इसको परख नहीं पाते हैं जिसके कारण कौडी के मूल्य--साधारण मूल्य पर विक रहा है।

शब्दार्थ—बाहिरा = अज्ञान।

४६. पारिष कौ अंग

जब गुण कूँ गाहक मिलै, तब गुण लाख बिकाय।
जब गुण को गाहक नहीं, तब कौड़ी बदले जाय ॥१॥

सन्दर्भ—गुणवान मनुष्य की प्रशसा गुणवानो के समाज मे ही हो सकती है, मूर्खों के समाज मे उसकी पूछ कोई नही करता।

भावार्थ—जब किसी गुण का वास्तविक जानने वाला ग्राहक मिल जाता है तो वह गुण अमूल्य समझकर लाखो रुपयौ मे विक जाता है किन्तु यदि उसे गुणो का पारखी ग्राहक नही मिलता है। तो वह नगण्य समझकर कौडियो के मूल्य मे बिकती है।

कबीर लहरि समुंद की, मोती बिखरे आइ।
बगुला मंझन जाँणई, हंस चुणे चुणि खाइ ॥२॥

सन्दर्भ—गुणो की वास्तविकता गुण ग्राहक ही समझ पाते हैं और उससे लाभ उठा लेते हैं।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि समुद्र की लहरो ने किनारे पर मोती विखेर दिये किन्तु मोतियो के गुणो को न जानने वाले बगुले समुद्र मे नहाने का ही आनन्द लेते रहे। उन्होने मोतियो को देखा तक नहीं किन्तु हंस उसकी महत्ता समझ कर उसे खाने लगे। इसी प्रकार अज्ञानी जीव मोहांधकार मे पड़े हुए विषय-वासना मे ही लगे रहते हैं और सज्ञानी जीव प्रभु-भक्ति करते हैं।

शब्दार्थ—मंझन = मज्जन। चूणे चुणि = चुन चुन कर।

हरि हीरा जन जौहरी, ले ले माँडिय हाटि।
जबर मिलैगा पारिषू, तब हीरा की साटि ॥३॥७४०॥

संदर्भ—हीरे की परख जौहरी ही कर पाते हैं।

भावार्थ—ईश्वर हीरा है और उसकी परख करने वाले जौहरी हैं उनके भक्त जिन्होने उसको सजा-सजाकर बाजार लगा रखो है। किन्तु इस हीरे की कद्र तभी होगी, इसका वास्तविक मूल्य तभी लगेगा जब इसकी परख करने वाला कोई सच्चा भक्त मिलेगा।

शब्दार्थ—जबर = जब भी।

———

अन्तिम पंक्ति का अर्थ एक अन्य प्रकार भी किया जा सकता है। कबीर कहते है कि मैने यह जीवन सूत्र अच्छी प्रकार काता है। मुझे यह सामान्य चरखा नही अपितु परम पद का दाता— साधन धाम मोक्ष का द्वार—प्रतीत हुआ है।

अलंकार—(i) सागरूपक – पूरे पद मे।

(ii) पुनरुक्ति प्रकाश लै लै।

(iii) छेकानुप्रास—चारि चमरख, काति कातै।

(iv) गूढोक्ति– निसतरिबो कैसें।

(v) अपन्हुति - रहटा नही परम पद दाता।

(vi) पदमैत्री—लाई चनाई, ऐसें कैसें, काता दाता।

विशेष—(i) पाठान्तर—चौथी पंक्ति—द्यौ माल तागा वरिस दिन कुकुरी, लोग वोलैं भल कातल बपुरी।

(ii) सासू इसका अभिप्राय गुरु के उपदेश-श्रवण से उत्पन्न 'वोधवृत्ति' भी हो सकता है।

(iii) बिन कातैं निसतरिवो कैसे—इसका अभिप्राय यह भी हो सकता है—मनन, निदिध्यासन, निरन्तर के नाम स्मरण एव अनुराग के विना इस जीवन मे निस्तार नही है।

(iv) कबीर जुलाहे का काम करते थे। यहा उन्होने जुलाहे के काम आने वाली सामग्री को लेकर प्रतीक-विधान किया है। यह प्रतीक विधान सर्वथा सार्थक और सफल है। जीवन सचमुच एक चरखा है जिसकी सार्थकता सुन्दर सूत कातने मे ही है। ज्ञान और भक्ति मय जीवन ही मानव-योनि की सार्थकता है। मानव-तन बडे भाग्य से मिलता है। यह पाप का हेतु भी हो सकना है और मोक्ष का द्वार भी वनाया जा सकता है। कवीर कहते हैं कि मैंने इसको परम पद प्राप्ति का साधन वना लिया है। तुमभी मेरे अनुभव से लाभान्वित होने का प्रयत्न करो।

(२२९)

अब की घरी मेरो घर करसी,
साध सगति ले मोकौं तिरसी ।। टेक ।।
पहली को घाल्यौ भरमत डोल्यौ, सच कबहूँ नहीं पायौ ।
अब की धरनि धरी जा दिन थै, सगलौ भरम गमायौ ।।
पहली नारि सदा कुलवती सासू सुसरा मांनै ।
देवर जेठ सबनि की प्यारी, पिय कौ मरम न जांनै ।।
अब की धरनि धरी जा दिन थें, पीय सूं बांन बन्यूं रे ।
कहै कबीर भाग बपुरी कौ, आइरु रांम सुन्यूं रे ।।

शब्दार्थ धरी = पत्नी रूप मे रखी हुई। घर करसी = घर बसाएगी। तिरसी = तारेगी, उद्धार करेगी। घाल्यो = मारा हुआ, सताया हुआ। सच = सुख कुलवती = कुलीन कुल की मर्यादा का ध्यान रखने वाली। सासू सुसरा = माया-

सन्दर्भ—संसार के सभी प्राणी अहं के कारण संसार मे डूबे रहते हैं।

भावार्थ—कबीरदास साधनावस्था मे ब्रह्माण्ड मे पहुँच गये और उड़कर इस संसार की सीमा को लाँघ गए। इस संसार के सभी प्राणी पशु, पक्षी, जीव जन्तु सब अहं की भावना के कारण संसार-सागर मे डूब रहे हैं।

शब्दार्थ—पखेरू = पक्षी।

> सद प्राणी पाताल का, काढ़ि कबीरा पीव।
> बासी पावस पड़ि मुए, बिषै बिलंबे जीव ॥५॥

सन्दर्भ—संसार के सभी प्राणी विषय-वासना मे फंसे रहते हैं और ज्ञान पर आधारित लोग ज्ञान रस पीते रहते हैं।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि ऐ साधना के मार्ग पर चलने वाले व्यक्तियो ! तुम पाताल का बहुत गहरे का सुन्दर स्वच्छ जल पियो किंतु विषय वासना के बासी जल पीकर कितने ही विषयी जीव अपनी आत्मा का हनन कर रहे हैं।

शब्दार्थ—सद प्राणी = स्वच्छ जल।

> कबीर सुपिनैं हरि मिल्या, सूताँ लिया जगाइ।
> आँखि न कींचौ डरपता, मति सुपना ह्वै जाइ ॥६॥

संदर्भ—ज्ञान को एक बार पा लेने पर ऐसा प्रयास करना चाहिए कि वह पुनः नष्ट न हो जाय।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि स्वप्न मे मुझे परमात्मा से साक्षात्कार हो गया और उन्होने मुझे सोते से जगा लिया, मोह निद्रा को समाप्त कर दिया। अब मैं इश्वर के उस साक्षात्कार को सच्चा ही बनाए रखने के लिए आँखे ही नही बन्द करता हूँ ताकि फिर मैं मोह को निद्रा मे न फंस जाऊं। मुझे इस बात का भय है कि यह ईश्वर-कृपा स्वप्न-तुल्य दुर्लभ और अप्राप्य न हो जाये।

शब्दार्थ—मति = ऐसा न हो कि।

> गौव्यंद के गुण बहुत हैं, लिखे जु हिरदै मांहि।
> डरता पांणीं नां पीऊँ, मति वै धोये जाहिं ॥७॥

संदर्भ—ईश्वर-भक्त इस बात का प्रयास करता है कि उसका प्रभु प्रेम कही फीका न पड़ जाय।

भावार्थ—परमात्मा के अनेक गुण मेरे हृदय पटल पर लिखे हुए हैं और इसी डर से मैं पानी भी नही पीता हूँ कि कही वह पानी पीने से धुल न जायँ।

शब्दार्थ—गौव्यद = गोविंद।

सन्दर्भ--प्रभु कृपा से जब माया का भ्रम दूर हो जाता है तो जीव को अपने विगत दिनो पर पश्चाताप होता है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि ईश्वर की कृपा के परिणाम स्वरूप मेरा सारा भ्रम और सशय सभी नष्ट हो गया। अब मुझे उन दिनो के व्यर्थ जाने का कष्ट हो रहा है जो बिना प्रभु की भक्ति के ही व्यतीत हो गये हैं।

कबीर आचरण जाइ था, आगैं मिल्या अजंच।
ले चाल्या घर आपणैं, भारी पाया सच ॥१२॥७५२॥

सन्दर्भ—जिस जीव का ईश्वर से सम्बन्ध हो जाता है उसको ईश्वर सन्तोष और शान्ति प्रदान कर देता है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि मैं याचना के लिए अपने घर से निकल कर चला ही था कि मार्ग मे मुझे ईश्वर मिल गया जो कभी किसी से याचना ही नही करता है। वह ईश्वर मुझे अपने घर की ओर लेकर चल दिया जिससे मुझे अत्यन्त सन्तोष और शान्ति का अनुभव हो गया।

शब्दार्थ—अजच = जो कभी याचना नही करता। संच = सुख शान्ति।

---

५१. दया निरबैरता कौ अंग

कबीर दरिया प्रजल्या, दाझै जल थल झोल।
बस नाहिं गोपाल सौ, बिनसा रतन अमोल ॥१॥

सन्दर्भ—कर्मों के कारण ससार मे प्राणियो को दुखो की अग्नि मे जलाना पड़ता है।

भावार्थ—कबीरदासजी कहते हैं कि संसार रूपी नदी मे अग्नि की ज्वाला जल उठी जिससे जल, थल, झाड़ झंखाड़ सभी कुछ जल उठा। उस वासना की अग्नि ने नाना प्रकार के अमूल्य रतनो को नष्ट कर दिया केवल गोपाल (परम प्रभु) पर उसका कोई वश नही चला।

शब्दार्थ—दाझै = दग्ध हो गए। झोल = झाड, झखाड।

ऊँनमि बियाई बादली बसंण लगे अँगार।
उठि कबीरा धाह दे, दाझत है संसार ॥२॥

नां हूँ परनी नां हूं क्वारी, पूत जन्यूं द्यौ हारी ।
काली मूंड कौ एक न छोडयौ, अजहूं अकन कुवारी ।।
बाम्हन कै बम्हनेटी कहियौ, जोगी कै घरि चेली ।
कलमां पढ़ि पढ़ि भई तुरकनीं, अजहूँ फिरौं अकेली ।।
पीहरि जांऊं न रहूं सासुरं, पुरषहि अंगि न लांऊं ।
कहै कबीर सुनहु रे संतौ, अंगहि अग न छूवांऊं ।।

शब्दार्थ—अवधू=अवधूत, वाम पथी सिद्ध योगी । परनी=परिणीता, विवाहिता । क्वारी=अविवाहिता । काली मूंड को कामनी । द्यौहारी=दिन दिन, नित्यप्रति । अकन=अखण्ड । कलमा=वह वाक्य जो मुसलमानो के धर्म-विश्वास का मूल मन्त्र है – ला इलाह इल्लिलाह, मुहम्मद रसूलिल्लाह ।

सन्दर्भ—कबीरदास माया के स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं ।

भावार्थ—हे नाथ पंथी सिद्ध योगी ! तुम इस रहस्य पर विचार करो जिससे यह ज्ञान हो सके कि चैतन्य पुरुप से इस माया-रूपी नारी का जन्म किस प्रकार हुआ ? माया स्वयं कहती है कि वह न विवाहिना है और न कुमारी ही है। मैं हमेशा अनेक पुत्रो को जन्म देती रहती हूँ । मुझ काली मूड वाली (कामिनी) ने एक भी नवयुवक को नही छोडा है, अर्थात् प्रत्येक समझदार व्यक्ति पर अपना आवरण डाला है । इस प्रकार सबने मेरा उपभोग किया है, परन्तु फिर भी मैं अखण्ड कुमारी बनी हुई हूँ । मेरा प्रभाव सवव्यापी है । ब्राह्मण के घर मैं ब्राह्मणी कही जाती हूँ और योगी के घर चेली हूँ अर्थात् योगी को चेली बनकर घेरती हूँ । ला इलाह इल्लिलाह, मुहम्मद रसूल लिल्लाह धर्म-विश्वास मूलक मन्त्र को पढ कर मुसलमान विवाह करता है और मै मुसलमानी के रूप मे उसके यहाँ पहुँच जाती हूँ । न मैं पीहर जाती हूँ, और न सुसराल ही जाती हूँ—मेरा इहलोक और परलोक मे भी आना-जाना नही है । मैं चैतन्य स्वरूप परम पुरुप के अंगो का स्पर्श नही करती हूँ अर्थात् शुद्ध बुद्ध चैतन्य से सर्वदा दूर रहती हूँ । कबीरदास कहते हैं कि हे सन्तो ! माया का यह कथन सत्य है कि मैं अपने अगो को परमपुरुष के अगो से नही छुआती हूँ । अभिप्राय यह है कि माया और चैतन्य एक दूसरे से सदैव असंपृक्त रहते हैं ।

अलंकार—(i) मानवीकरण—माया का ।
(ii) विरोधाभास की व्यजना—नाहूँ परनी ......जन्यूं द्यौहारी, काली-छोडयो ' ' कुवारी, फिरौं अकेली ।
(iii) उल्लेख—वाह्मन '' ''''तुरकनी ।
(iv) पुनरुक्ति प्रकाश—पढि पढि ।
(v) रूपकातिशयोक्ति—पीहरि सासुरै ।
(vi) सभंग पद यमक—अगहि अग ।

भावार्थ—कबीर का कहना है कि जो भी आत्मा रूपी सुन्दरी अपने प्रियतम के गुणों को न स्मरणकर अन्य किसी का गुणानुवाद करती है उसके इस व्यभिचारमय आचरण पर उसका स्वामी प्रभु कभी भी उसे सम्मान प्रदान नहीं करता है।

शब्दार्थ—भरतार=भर्ता, पति।

जे सुन्दरि सांई भजै, तजै आंन की आस।
ताहि न कबहूँ पर हरै, पलक न चाड़ै पास ॥३॥

सन्दर्भ—जो स्त्री अपने पति पर ही आश्रित रहती है उसका पति उसे पल भर के लिए भी नही छोडता है।

भावार्थ—जो आत्मा-रूपी सुन्दरी अपने स्वामी का ही भजन करती है और किसी की आशा छोड देती है उसका पति (परमात्मा) उसे कभी नही छोड़ता है, अपने पास से पल भर के लिए भी दूर नही करता है।

शब्दार्थ—परि हरै=छोडना।

इस मन कौं मैदा करौं, नान्हा करि करि पीसि।
तब सुख पावै सुन्दरी, ब्रह्म झलकै सीस ॥४॥

सन्दर्भ—संयम के द्वारा ही परमात्मा को प्राप्त किया जा सकता है।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि इस मन को संयम रूपी चक्की मे पीस-पीस कर इतना महीन कर दूंगा कि वह मैदा हो जाय। तभी आत्मा रूपी सुन्दरी सुख की प्राप्ति करेगी और उसके सिर ब्रह्म ज्योति झलकती रहेगी।

शब्दार्थ—सुन्दरी=आत्मा रूपी सुन्दरी।

दरिया पार हिंडोलना, मेल्या कंत मचाइ।
सोई नारि सुलषणी, नितप्रति झूलण जाइ ॥५॥७६०॥

सन्दर्भ—पतिव्रता वही है जो नित्यप्रति पति के साथ रहकर उसकी सेवा करे।

भावार्थ—संसार रूपी नदी के उस पार प्रभु का हिंन्डोला है जिस पर उन्होने गलीचा विछा रखा है। वही आत्मा रूपी नारी शुभ लक्षणो वाली है जो नित्य प्रति उस प्रियतम के हिंडोले पर झूलने जाती है।

शब्दार्थ—मचाइ=मचान, गलीचा।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि यदि ईश्वर की खोज करने वाला बिना सच्चे विश्वास के सिंघल द्वीप तक चला गया तो भी कोई लाभ नही। वास्तव मे तो ईश्वर हृदय के भीतर ही विद्यमान है भक्त को केवल विश्वास होना चाहिए।

घटि बधि कहीं न देखिये, ब्रह्म रह्या भरपूरि।
जिनि जांन्यां तिनि निकटि है, दूरि कहैं ते दूरि ॥५॥

सन्दर्भ—ईश्वर सर्वव्यापी है। वह कही कम ज्यादा नही रहता है।

भावार्थ—ईश्वर कही पर कम या अधिक नही व्याप्त है वह तो सभी जगह समान रूप से व्याप्त है। वास्तव मे जो व्यक्ति उसे निकट समझते हैं उनके लिए तो वह निकट है और जो दूर कहते हैं उनके लिये वह दूर है।

शब्दार्थ—घटि-बधि = घट बढ़कर, कम या अधिक।

मैं जांण्या हरि दूरि हैं, हरि रह्या सकल भरपूरि।
आप पिछांणैं बाहिरा, नेड़ा ही थैं दूरि ॥६॥

सन्दर्भ—ईश्वर दूर नही बल्कि घट-घट व्यापी है।

भावार्थ—मैं समझता था कि ईश्वर मुझसे बहुत दूर है लेकिन ईश्वर तो इस संसार मे सर्वत्र व्याप्त है। इतना अवश्य है कि वह अपनी पहिचान से परे है तथा समीप रहते हुए भी दूर प्रतीत होता है।

शब्दार्थ—पिछाणै = पहिचान।

तिणकैं ओल्है राम है, परबत मेरे भांइ।
सतगुर मिलि परचा भया, तब हरि पाया घट माँहि ॥७॥

संदर्भ—सतगुरु के द्वारा बताये जाने पर ईश्वर को हृदय के अन्दर ही देखा जा सकता है।

भावार्थ—रामरूपी महान तत्व अहं रूपी पर्वत की ओट मे छिपा हुआ है अर्थात् उसका रहस्य समझ मे न आने के कारण ही वह विराट रूप ईश्वर जीव की दृष्टि से परे रहता है। सतगुरु के मिलने पर अहं के विनष्ट हो जाने पर प्रभु से साक्षात्कार हुआ और मैंने उन्हे अपने हृदय मे ही पा लिया।

शब्दार्थ—ओल्है = ओट मे। तिणकै = अहं रूपी तिनका। परचा = परिचय।

राँम नाँम तिहुँ लोक मे, सकल रह्या भरपूरि।
यहु चतुराई जाहु जलि, खोजत डोलै दूरि ॥८॥

सन्दर्भ—ईश्वर सर्वव्यापी हैं।

(२३४)

चोखौ वनज व्यौपार करीजै,
आइनैं दिसावरि रे रांम जपि लाहौ लीजै ॥ टेक ॥
जब लग देखौं हाट पसारा,
उठि मन वणियों रे, करि ले वणज सवारा ॥
बेगे हो तुम्ह लाद लदांनां,
औघट घाटा रे चलनां दूरि पयांनां ।
खरा न खोटा नां परखानां,
लाहे कारनि रे सब मूल हिरांनां ॥
सकल दुनीं मैं लोभ पियारा,
मूल ज राखै रे सोई वनिजारा ॥
देस भला परिलोक बिरांनां,
जन दोइ चारि नरे पूछौ साध सयांनां ॥
सायर तीर न वार न पारा,
कहि समझावै रे कबीर वणिजारा ॥

शब्दार्थ—चोखौ=चोखा, अच्छा, लाभकारी । वनज=वाणिज्य । दिसावरि =देसावर, विदेश । लाहौ=लाभ । हाट = बाजार । सवारा=सिदौ भी, जल्दी ही । औघट=अवघट=अटपटा । पयाना=प्रमाण, चलना, जाना । वेगे = शीघ्र ही । लाहे=लाभ । मूल=मूलधन, गाँठ की पूँजी । हिराना=गवांना । खोगया, नष्ट हो गया । वनिजारा=वाणिज्य करने वाला । सयानां=चतुर । सायर=सागर । तीर=किनारा ।

सन्दर्भ—कबीर कहते हैं कि इस ससार मे रह कर धर्मपूर्ण आचरण ही हितकारी है ।

भावार्थ—कबीर जीव को तुलना एक व्यापारी वणिक के साथ करते हुए कहते है कि रे जीव ! तुमको अच्छा—लाभकारी वाणिज्य व्यापार करना चाहिए । इस इहलोक रूपी विदेश मे आकर भगवान राम के नाम का स्मरण करते हुए लाभकारी व्यापार करना चाहिए । जब तक इस जगत और जीवन के बाजार का पसारा है, अथवा जब तक जीवन रूपी बाजार चल रहा है, उसी समय मे तू उठकर जल्दी मे अपना लाभकारी व्यापार कर ले । तुझको शीघ्र ही लदना-लदाना होगा अर्थात् तुझको जल्दी ही अपना ठाट समेठ कर इस जीवन-रूपी बाजार से उठकर चल देना होगा और काफी दूर चल कर अटपटे घाट पर पहुँचना होगा । तुमने न खरा-खोटा देखा । न कुछ परखा । लाभ के लोभ मे तुमने अपनी गांठ की पूँजी (चेतना) भी गँवा दी । भाव यह है कि तुमने इस जगत् मे खरे-खोटे की परख नहीं रखी और सासारिक लाभो के लोभ मे तुमने अपने मूल चैतन्य-स्वरूप को भी भुला दिया । यह व्यापार मे गाँठ की पूँजी गँवाने के समान ही हुआ । सारी

शब्दार्थ--च्यति = चित्त ।

निंदक नेड़ा राखिये, आंगणि कुटी बधाइ।
बिन सावण पाणीं बिना, निरमल करै सुभाइ ॥३॥

सन्दर्भ—निंदक का तिरस्कार नही करना चाहिए ।

भावार्थ—निंदा करने वाले व्यक्ति को अपने से दूर नही वरन् अपने आँगन मे कुटी छवाकर रखना चाहिए। क्योकि वह निन्दा के द्वारा दोषो का परिहार करके बिना साबुन और पानी के ही स्वभाव को निर्मल कर देता है।

शब्दार्थ—नेड़ा = समीप । सावण = साबुन । सुभाइ = स्वभाव ।

न्यंदक दूरि न कीजिये, दीजै आदर मांन।
निरमल तन मन सब करै, बकि बकि आंनहि आंन ॥४॥

सन्दर्भ—निन्दक को दूर न रखकर समीप ही रखना चाहिए।

भावार्थ—निन्दा करने वाले को दूर न करना चाहिए बल्कि उसको आदर सम्मान देकर के समीप ही रखना चाहिए। उसके समीप रहने से यह लाभ होगा कि वह हमारे दोषो को बार-बार कह करके सुधारने का अवसर देगा जिससे तनमन सभी कुछ शुद्ध हो जाता है।

जे को नींदै साध कूँ, सकटि आवै सोइ।
नरक माँहि जाँमैं मरै, मुकति न कबहूँ होइ ॥५॥

संदर्भ—साधुओ का निन्दक ईश्वर का कोप-भाजन बनता है।

भावार्थ—जो व्यक्ति सज्जनो की निन्दा करते हैं उन पर संकट आ जाते हैं। वह इस नरक तुल्य ससार मे मृत्यु को प्राप्त हो जाता है और इस प्रकार के मनुष्य की मुक्ति कभी भी नही हो पाती है।

शब्दार्थ—नीदै = निन्दा करता है। मुकति = मुक्ति ।

कबीर घास न नींदिये, जो पाऊँ तलि होइ।
उड़ि पड़ै जब आँखिमैं, खरा दुहेला होइ ॥६॥

संदर्भ—तुच्छ से तुच्छ वस्तु की भी उपेक्षा नही करनी चाहिए।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि घास ऐसी तुच्छ वस्तु की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। यद्यपि वह प्रति दिन पैरो के नीचे रौंदी जाती है किन्तु फिर भी जब वह उड़कर आँख मे पड जाती है तो बहुत वेदना पैदा कर देती है।

शब्दार्थ—खरा = बहुत । दुहेला = वेदना ।

५५. निगुणां कौ अङ्ग

हरिया जांणै रूषड़ा, उस पांणीं का नेह ।
सूका काठ न जांणई, कबहू बूठा मेह ॥१॥

सन्दर्भ—वास्तविक पारखी ही किसी वस्तु विशेष के गुणो को परख पाते हैं ।

भावार्थ—हरा वृक्ष ही पानी के स्नेह को समझ सकता है । सूखा काठ पानी के महत्व को कुछ नही समझ सकता, चाहे जितना पानी बरसे अर्थात् भक्त को ही प्रभु भक्ति का ज्ञान होता है, प्रभु भक्ति से हीन ठूठ जैसे व्यक्तियो को नहीं ।

शब्दार्थ—रूषणा = वृक्ष । बूठा = वरसा ।

झिरि मिरि झिरि मिरि बरषिया पांहण, ऊपरि मेह ।
मांटी गलि सैं जल भई पाँहण वोही तेह ॥२॥

सन्दर्भ—ईश्वर प्रेम की वर्षा का प्रभाव भक्तो पर ही होता है किन्तु जड़ और दुष्टो पर नही ।

भावार्थ—पत्थरो के ऊपर झर-झर पानी बरसता रहा—ईश्वर की कृपा का जल वरसता रहा किन्तु पत्थर पर लगी हुई भक्त रूपी मिट्टी तो गीली हो गई, प्रभु अनुकम्पायुक्त हो गयो किन्तु जड़ एवं दुष्ट रूपी पत्थरो पर उसका कोई प्रभाव नही पड़ा ।

शब्दार्थ—सैजल = सजल । पाँहण = पाषाण, पत्थर ।

पारब्रह्म बूठा मोतियाँ, घड़ बाँधी सिषरॉह ।
सगुराँ सगुराँ चुणि लिया, चूकि पड़ी निगुराँह ॥३॥

सन्दर्भ—परम प्रभु की कृपा मोतियो को सतगुरु के सच्चे शिष्य ही ग्रहण कर पाते हैं ।

भावार्थ—परब्रह्म परमेश्वर ने ज्ञान रूपी मोतियो की घनघोर वर्षा की । जो सतगुरु के शिष्य थे उन्होने तो ज्ञान के उन मोतियों का संग्रह कर लिया और जो निगुड़ा गुरु रहित थे वे इस कार्य को नही कर सके ।

शब्दार्थ—घड़ = झडी वांधकर ।

कबीर हरि रस बरषिया, गिर डूंगर सिषरांह ।
नीर मिवांणा ठाहरै, नाँऊँ छापर डांह ॥४॥

(२३७)

बदे तोहि बदिगी सौ कांम, हरि बिन जांनि और हरांम ।
दूरि चलणां कूंच बेगा, इहां नहीं मुकांम ।। टेक ।।
इहां नहीं कोई यार दोस्त, गांठि गरथ न दाम ।
एक एकै संगि चलणां, बीचि नहीं बिश्रांम ।।
ससार सागर बिषम तिरणां, सुमरि लै हरि नांम ।
कहै कबीर तहां जाइ रहणां नगर बसत निधांन ।।

शब्दार्थ - बदे दास, भक्त। वदिगी = सेवा, भक्ति। हराम = शरअ (मुसलमान धर्म शास्त्र) के विरुद्ध, निषिद्ध। कूच = रवानगी। वेगा = शीघ्र। मुकाम = वास स्थान, घर। गरथ = सम्पत्ति। निधान = कृपानिधान, भगवान।

सन्दर्भ —कवीरदास ससार के प्रति उदासीन होकर भगवान को याद करने का उपदेश देते हैं।

भावार्थ —रे भक्त! तुझे तो भगवान की भक्ति से काम है। भगवान की भक्ति के अतिरिक्त अन्य सब वातो को तुम निषिद्ध यानी धर्मशास्त्र के विरुद्ध समझो। तेरा गन्तव्य वहुत दूर है। अतएव यहाँ से जल्दी ही रवाना हो जाओ। इस ससार मे तुम्हारे वास-स्थान नही है अथवा यहाँ टिकासरा लेना उचित नही है। इस दुनियाँ मे तुम्हारा कोई हितैषी एव शुभचिंतक भी नही है और यहाँ पर खर्च करने के लिए तेरे पास विशेष सम्पत्ति भी नही है (क्योकि तुम अपने पुण्यों का क्षय कर चुके हो)। तुमको इस यात्रा मे अकेले ही चलना है और वीच मे कही विश्राम-स्थल भी नही है। इस ससार रूपी सागर को पार करना वहुत कठिन काम है। तुम उसको पार करने के लिए भगवान का नाम स्मरण करो। कबीर कहते हैं कि तुमको तो वहाँ जाकर रहना है जिस नगर मे स्वय कृपानिधान भगवान निवास करते हैं।

अलकार—(i) रूपक—ससार सागर।
(ii) साग रूपक—वटोही साधक का रूपक।

विशेष—(i) कबीर का कहना है कि भक्त को ससार के प्रति एकदम विमुख हो जाना चाहिए, क्योकि परम धरम की प्राप्ति ही उसका एक मात्र लक्ष्य है।

(ii) यह संसार भक्त के लिए नही है। यह माया का स्थान है। माया और अज्ञानादिक का शुद्ध चैतन्य से कोई सम्वन्ध नही होता है। इसी कारण साधक का कोई यार दोस्त नही होता है। तभी तो कवीन्द्र की यह पक्ति पूज्य वापू के हृदय का हार थी—"एकला चलो रे।"

(iii) साधक जीव का निवास-स्थान मोक्ष-धाम है। जब तक घर न पहुँच जाए, तब तक विश्राम कैसा? इसी से कबीर लिखते हैं कि "वीचि नही विश्राम।"

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि कठोर हृदय व्यक्ति के ऊपर शब्द रूपी बाण का कोई प्रभाव नही पड़ता। शब्द रूपी बाण का प्रभाव तो ज्ञान प्राप्त व्यक्तियो पर पड़ कर विवेक, और विचार की उत्पत्ति करता है।

शब्दार्थ—भिदे = भिदता है।

सीतलता कै कारणैं, माग विलंबे आइ।
रोम रोम विष भरि रह्या, अमृत कहाँ समाइ ॥८॥

संदर्भ—संसारी जीवो मे काम, क्रोध, मद, लोभादि भरे रहते हैं।

भावार्थ—संसार रूपी मार्ग मे शीतलता प्राप्त करने के लिए ही ठहर कर घर गृहस्थी जुटाया था किन्तु इस विश्राम-स्थली मे विष ही भरा हुआ है—विषय वासना काम, क्रोध, लोभादि भरे हुए हैं—अब उसमे राम नाम रूपी अमृत कहा समा सकता है।

शब्दार्थ—बिलबे = ठहरे हुए हैं।

सरपहि दूध पिलाइये, दूधै विष ह्वै जाइ।
ऐसा कोई माँ मिलै, स्यूं सरपै विष खाइ ॥९॥

संदर्भ—अच्छे गुण का प्रभाव अच्छी वस्तु पर ही पडता है। बुरी वस्तु, पर नही।

भावार्थ—सर्प को दूध पिलाने पर विष बन जाता है। मुझे अभी तक इस प्रकार का मनुष्य नही मिला जो सर्प-माया के साथ-साथ विष-वासना को भी समाप्त कर दे।

विशेष—तुलना कीजिए—

"पयः पानं भुजगानां, केवल विष वर्धनम्।
उपदेशो हि मूर्खाणां, प्रकोपाय न शान्तये ॥"

जालौं इहै बड़पणाँ, सरलै पेड़ि खजूरि।
पंखी छाँह न बीसवैं, फल लागै ते दूरि ॥१०॥

सन्दर्भ—उस वस्तु से कोई लाभ नही जिससे किसी का उपकार न हो सके।

भावार्थ—खजूर के सीधे और ऊंचे पेड़ से क्या लाभ ? न तो उससे पक्षियो को छाया ही प्राप्त होती है और न उसके फल ही आसानी से किसी को प्राप्त हो सकते हैं क्योकि फल बहुत ऊंचाई पर लगते हैं।

शब्दार्थ—बडपणाँ = बड़प्पन।

विशेष—यथा बालक माता-पिता से मिलने पर अपने हृदय की सब बातें कह डालता है, उसी प्रकार परमपिता से कबीर सब कुछ कह देना चाहते हैं।

कबीर भूलि बिगाड़ियाँ, तूँ नाँ करि-मैला चित।
साहिब गरवा लोडिये, नफर बिगाड़ै नित ॥२॥

सन्दर्भ—यदि भूल से स्थिति बिगड गई है तो मन मैला उदास करने से कोई लाभ नही है। अह का विसर्जन कर देना चाहिए।

भावार्थ—कबीरदास कहते हैं कि यदि तूने ब्रह्म को भूल कर अपनी स्थिति बिगाड ली है, तो सोच या शोक करने की बात नहीं है। तू अहं का परित्याग कर दे। अहँ या व्यक्ति नित्य ही हानि पहुँचाता है।

शब्दार्थ—बिगाड़ियाँ = बिगाड लिया। चित = चित्त। नफ़र = व्यक्ति, अहं। गरवा—

करता केरे बहुत गुण, औगुँण कोई नाँहिं।
जो दिल खोजौं आपणी, तौ सब औगुण मुझ माँहिं ॥३॥

सन्दर्भ—ब्रह्म सद्गुणो की खान है और अवगुणो का प्रतीक।

भावार्थ—ब्रह्म मे कोई अवगुण नही है। वह गुणों का ही पर्याय या समूह है। जब मैं अपने हृदय को देखता हूँ तो समस्त अवगुण अपने मे ही दिखाई देते हैं।

शब्दार्थ—केरे = के। औगुंण = अवगुण। आपणी = आपणां, अपना।

औसर बीता अलपतन, पीव रह्या परदेस।
कलंक उतारौ केसवा, भाँनौ भरँम अंदेस ॥४॥

संदर्भ—जीवन माया के आकर्षण मे बीत गया और मैं प्रिय को न पहचान सका।

भावार्थ—माया और अज्ञान मे अवसर बीत गया अब जीवन का थोडा-सा भाग शेष रह गया है। और प्रिय (ब्रह्म) परदेश के ही है। उससे भेंट हो पाई। हे केशव ! मेरे जीवन के अंतिम समय मे ही सही, पर मेरे कलंकों से मुझे अवकाश दीजिए, और भ्रम जनित शकाओ से मुक्ति दीजिए।

शब्दार्थ—औसर = सुअवसर। अलपतन = अल्पतन। रह्या = रहा, है। भाँनौ-भरंम = भ्रम। अदेस = अंदेशा।

कबीर करत है बीनती, भौसागर कै ताँई।
बन्दे ऊपर जोर होत है, जँभ कूँ बरजि गुसाईं ॥५॥

सन्दर्भ—प्रस्तुत साखी मे यम के अत्याचार के विरुद्ध कबीर ब्रह्म से निवेदन करते हैं।

(२४१)

फिरत कत फूल्यौ फूल्यौ ।
जब दस मास उरध मुखि होते, सो दिन काहे भूल्यौ ।। टेक ।।
जौ जारै तौ होई भसम तन, रहत क्रम ह्वै जाई ।
काचै कुंभ उद्यक भरि राख्यो, तिनकी कौन बड़ाई ।
ज्यूं माषी मधु सञ्चि करि, जोरि धन कीनो ।
मूये पीछे लेहु लेहु करि, प्रेत रहन क्यूं दीनू ।।
ज्यूं घर नारी सग देखि करि, तब लग संग सुहेलौ ।
मरघट घाट खेंचि करि राखे, वह देखिहु हस अकेलौ ।।
रांम न रमहु मदन कहा भूले, परत अंधेरै कूवा ।
कहै कबीर सोई आप बधाधौ, ज्यू नलनी का सूवा ।।

शब्दार्थ—उरध मुख=ऊपर को मुख किए हुए अर्थात् उलटा मुख किए हुए। माषी=मक्खी, शहद की मक्खी से तात्पर्य है। घर नारी=व्याहता स्त्री, व्याही हुई। सजन सहेली=स्वजन एव साथी। कूवा=कुँआ, यहाँ तात्पर्य अज्ञान का कुआ। नलिनी=पोले बाँस की नली जो तोता पकडने के काम मे आती है।

सन्दर्भ- ससार के वाह्य आकर्षक रूप पर मोहित एव ऐश्वर्य मे मदमत्त मानव को कबीरदास सावधान करते हैं।

भावार्थ—हे भोले मानव! तू गर्व मे फूला हुआ क्यो फिर रहा है? क्या तू उस व्यथा को भूल गया जो तुझे गर्भ मे दस माह तक उलटे लटके रहने के कारण हुई थी? जन्म के समय जितनी व्यथा हुई थी, मृत्यु के समय भी वैसी ही व्यथा होगी, यह सकेत करते हुए कबीर कहते हैं कि मरने पर तेरा शरीर जब जलाया जायगा, तब भस्म होकर समाप्त हो जाएगा और यदि जलाया नही गया, और यौं ही पडा रहा, तो उसे कीडे-मकोडे खा जाएँगे। इस शरीर की इतनी ही महिमा है जितनी महिमा पानी से भरे हुए कच्चे घडे की होती है, जो शीघ्र ही फूट जाता है। जिस प्रकार मधुमक्खी तनिक-तनिक (थोड-थोडा) करके शहद इकट्ठा करती है, उसी प्रकार तुमने भी थोडा-थोडा करके कुछ धन संचित कर लिया है; तुम्हारे मरते ही सब लोग 'लेलो, लेलो' कहते हुए इस धन को आपस मे बाँट लेंगे और तुम्हारे इस शरीर को उठाकर बाहर फेंक देंगे, क्योकि प्रेत को कौन घर मे रखना चाहेगा? भाव यह है कि तुम्हारा प्राणान्त होते ही लोग तुम्हारे इस धन को लेने की बात करने लगेंगे और तुम्हारे शरीर को प्रेत कह कर घर के बाहर तुरन्त कर देंगे। मर जाने पर विवाहिता पत्नी तो घर की देहली (द्वार) तक साथ देती है और रिश्तेदार-नातेदार एव मित्र लोग उसको घर के बाहर ले जाते हैं। कुटुम्ब के लोग मरघट (शमशान घाट) तक ले जाते है। और उसके बाद जीवात्मा अकेला रह जाता है। कबीरदास कहते है कि यह सब देखते हुए और जानते हुए भी हे मानव! तू अपना मन राम मे क्यो नही रमाता है? अर्थात् राम-नाम का जप क्यो नही

५७. साषीभूत कौ अंग

कबीर पूछै राँम कूँ, सकल भवनपति-राइ।
सबही करि अलगा रहौं, सो विधि हमहि बताइ ॥१॥

सन्दर्भ—सकल मायादि से पृथक रहने के आकांक्षी कवीर राम से मुक्ति का मार्ग प्रदर्शित करने की प्रार्थना करते हैं।

भावार्थ—कवीर राम से पूंछते हैं कि हे समस्त लोको के स्वामी मुझे वह उपाय वह विधि बताइये जिससे मैं माया के समस्त वन्धनो से दूर रहूँ।

शब्दार्थ—राइ = राजा। करि = से। अलगा = अलग, पृथक। विधि = उपाय। बताइ = बताएं।

विशेष—कवीर उस रहस्य भेद का ज्ञान करना चाहते हैं जो सासारिक प्रभावो से मानव को पृथक रखने मे सहायक होता है।

जिहि बरियाँ साँई मिलै, तास न जाँणै और।
सबकूँ सुख दे सबद करि, अपणीं अपणीं ठौर ॥२॥

सन्दर्भ—प्रस्तुत साखी मे कवि ने कहा है ब्रह्म के दर्शन कब हो जायंगे यह उस (ब्रह्म) के अतिरिक्त और कोई नही जानता।

भावार्थ—जिस समय स्वामी का साक्षात्कार होगा, उसे और कोई नही जानता है। अपने-अपने स्थान पर वह सबको स्व उपदेशो के द्वारा सुख देता है।

शब्दार्थ—बरियां = समय। साँई = स्वामी। तास = उसको। जाँणै = जानै। सबद = शब्द। अपणी = अपनी।

कबीर मन का बाहुला, ऊँडा बहै असोस।
देखत हीं दह मैं पडै, दई किसी कौं दोस ॥३॥

संदर्भ—मन का नाला गन्दा और गहरा है। उससे सावधान रहना चाहिए।

भावार्थ—मन का नाला वडा ही गहरा और अथाह है। कबीर कहते हैं कि यदि यह जानकर भी मानव मन रूपी नाले मे जा गिरे तो किसका दोष है, कौन दोषी है ?

शब्दार्थ—बाहुला = बावला, विवेक रहित। ऊँडा = गहरा। असोस = अथाह। दह = मध्यधारा मे।

———

सन्दर्भ—माया रूपी वेलि के विषय मे पुनः स्वानुभूति की अभिव्यक्ति करते हुए कबीर ने इस साखी मे उसकी विचित्रताओ पर विचार प्रकट किये हैं।

भावार्थ—माया-वेलि बड़ी विचित्र है। यदि इसे काटा जाय तो हरीतिमा होती है और इसे सीचने से कुम्हला जाती है। इस गुणवंती वेलि के गुण अकथनीय हैं।

शब्दार्थ—डहडही = हरियाती है, हरी होती है। कुमिलाइ = कुम्हिलाइ = कुम्हला जाती। गुणवती = गुण वाली अर्थात् रजो, तमो तथा सतो गुणो से सम्पन्न।

विशेष—प्रस्तुत साखी मे कबीर ने यह बताने की चेष्ठा की है कि माया रूपी वेलि को काटने से आध्यात्मिक जीवन हरा भरा या सम्पन्न होता है। और माया को सीचने या पोषण करने से आध्यात्मिक जीवन कुम्हला जाता है। भक्ति या साधना वृक्ष माया के दुष्प्रभाव से सूख जाते हैं। त्रिगुणात्मक सत्ता से पूर्ण इस बेलि के गुण कहते यहीं बनता है।

आंगणि वेलि अकासि फल, अण ब्यावर का दूध।
ससा सींग की धूनहड़ी, रमैं बाँझ का पूत ॥४॥

सन्दर्भ—प्रस्तुत साखी मे कबीर ने यह कहा है कि माया-वेल का फल आकाश मे लगता है।

भावार्थ—ससार-आंगन मे माया रूपी वेल उगती है परन्तु इसका फल आकाश मे लगता है। यह उक्ति उसी प्रकार आश्चर्यजनक है यथा अनव्याई गाय के दूध, खरगोश के सीग से बाजा बनाना तथा बन्ध्या नारी के पुत्र के खेलने की कल्पना।

शब्दार्थ—आगणि = आगन = संसार। अकासि = आकाश। अप = अन— बिना। ब्यावर = ब्याई हुई। ससा = शशा। धुनहडी = एक वाद्य विशेष। रमैं = खेले।

विशेष—प्रस्तुत साखी मे समस्त असम्भव बातो का उल्लेख कबीर ने किया है। पृथ्वी की वेल का फल आकाश मे, अनब्याई का दूध, शशा की सीग का वाद्य तथा बाझ का खेलता हुआ पुत्र। इन विरोधी कथनो के द्वारा कबीर को केवल यही प्रमाणित करना अभीष्ठ है कि माया की जडे धरती पर हैं पर फल आकाश मे है।

कबीर कड़ई वेलडी, कड़वा ही फल होइ।
साँधा नाँव तब पाइये, जे वेलि बिछोहा होइ ॥५॥

जागि जागि नर काहे सोवै, सोइ सोइ कब जागैगा ।
जब घर भीतरि चोर पड़ेंगे, तब अंचलि किसकै लागेगा ॥
कहै कबीर सुनहु रे संतौ, करि ल्यौ जे कछु करणां ।
लख चौरासी जोनि फिरौंगे, बिनां रांम की सरनां ॥

शब्दार्थ—जाति जाती=व्यर्थ जाते हुए। जीया=जीव। चरन=पाँव। कर=हाथ। घारे=क्षीण हो गये, थक गये। आउ=आयु।

संदर्भ—कबीरदास जीव को रामभक्ति की ओर प्रेरित करते हैं।

भावार्थ—रे जीव! जीवन व्यर्थ जाते हुए देखकर भी यदि तूने भगवान का नाम नही लिया तो बाद मे तुम्हे पछताना पडेगा। ससार के धन्धो को करते-करते तेरे हाथ-पाँव दुर्बल हो गए है, आयु घटती जा रही है और शरीर क्षीण हो गया है। विषय-विकारो के प्रति तू सदैव अनुरक्त रहा और माया-मोह मे उलझा रहा, अर्थात् मैं मेरा' के चक्कर मे पड़ा रहा। रे जीव! जागजा। अज्ञान निद्रा मे क्यो सो रहा है। आखिरकार इस अज्ञान-रूपी निद्रा को तू कब छोड़ेगा? अर्थात् यदि अब भी नही जागा, तो आखिर कब जागेगा? जब इस शरीर रूपी घर मे यम-दूत रूपी चोर तेरे जीवन को ले जाने के लिए घुस आँयेंगे, तब तू उस समय अपने रक्षार्थ किसकी शरण मे जायगा? कबीर कहते हैं कि हे संतो! सुनो जो कुछ भगवन्नाम-स्मरण करना है, उसे कर लो। राम की शरण मे गए बिना तुमको बार-बार जन्म लेकर चौरासी लाख योनियो मे निरन्तर भटकते रहना पड़ेगा।

अलंकार—(i) पुनरुक्तिप्रकाश—जागि जागि।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—घर चोर।
(iii) गूढोक्ति—अचलि किसके लागेगा।

विशेष—'निर्वेद' सचारी भाव की मार्मिक व्यजना है।

(२४५)

माया मोहि मोहि हित कीन्हां,
ताथै मेरौ ग्यांन ध्यांन हरि लीन्हां ॥ टेक ॥
संसार ऐसा सुपिन जैसा, जीव न सुपिन समांन ।
सांच करि नरि गांठि बांध्यौ, छाड़ि परम निधांन ॥
नैन नेह पतग हुलसै पसू न पेखै आगि ।
काल पासि जु मुगध बांध्या, कलंक कांमिनीं लागि ॥
करि बिचार बिकार परहरि, तीरण तारण सोइ ।
कहै कबीर रघुनाथ भजि नर, दूजा नांहीं कोइ ॥

शब्दार्थ—नारि=सासारिक प्रपच। हुलसै=उल्लसित होता है। पासि=बन्धन, फन्दा। परिहरि=त्याग दे। तीरण=तरणि, नौका। तारण=तारने वाला। कलंक=कनक।

(४) इस पद मे काव्योचित शैली मे शाकर मायावाद का प्रतिपादन किया गया है।

(२३२)

मीठी मीठी माया तजी न जाई,
अग्यांनीं पुरिष कौं भोलि भोलि खाई ।। टेक ।।
निरगुंण सगुंण नारी, ससारि पियारी,
लषमणि त्यागी गोरषि निवारी ।।
कोड़ी कुंजर मै रही समाई,
तीनि लोक जीत्या माया किनहूँ न खाई ।।
कहै कबीर पद लेहु विचारी,
ससारि आइ माजा किनहूँ एक कही पारी ।

शब्दार्थ—भोलि=भुलावा देकर। निवारी=निवारण किया, हटा कर दूर कर दिया। कीरी=चीटी। कुंजर=हाथी। पारी=खारी, कड़ुवी।

सदर्भ—कबीरदास माया के सर्वव्यापी प्रभाव का वर्णन करते है।

भावार्थ—यह मधुर एव आकर्षक लगने वाली माया किसी से छोड़ते नही वनती है। यह अज्ञानी व्यक्तियो को तरह-तरह के भुलावो मे डाल कर खाती रहती है। यह एक ऐसी नारी है जिसके सगुण और निर्गुण दोनो ही रूप हैं। यह समस्त ससार को प्यारी लगती है। लक्ष्मण ने इस माया का परित्याग किया और गुरु गोरखनाथ ने इसे अपने हृदय से हटा दिया। यह चीटी से लेकर हाथी तक मे—छोटे-छोटे प्राणी से लेकर बडे से बडे जीव मे—समा रही है। इसने तीनो लोको के प्राणियो को अपने वश मे कर रखा है। इसको कोई भी समाप्त नही कर सका है। कबीरदास कहते हैं कि इस पद मे कथित मेरे कथन पर गम्भीरता पूर्वक विचार करो। ससार जन्म लेने वाले समस्त प्राणियो को यह मधुर लगती है। कोई विरले ही इसको कड़ुवा बनाकर इसकी ओर आकर्षित नही हुआ है।

अलकार—(i) पुनरुक्ति प्रकाश—भोलि-भोलि।
(ii) निरगुण सगुण—विरोधाभास।
(iii) संबन्धातिशयोक्ति—माया किनहूँ न खाई।

विशेष—(i) वासना एव अनत रूप होने के कारण माया निर्गुण और सगुण का विलक्षण नारी है। इसमे विरोधी तत्व हैं।

(ii) कबीर ने अन्यत्र भी लिखा है कि—

सुनना डरपत रहु मेरे भाई।
× × ×
या मजारी मुगध न मानै, सब दुनियां डहकायो।
राना-राव रंक को व्यापै, करि-करि प्रीत सवायो।
सातनि माहि ते सेरी अवानक, काहू न देत दिखाई।

(२३८)

चोखौ वनज व्यौपार करीजै,
आइनै दिसावरि रे रांम जपि लाहौ लीजै ॥ टेक ॥
जब लग देखौं हाट पसारा,
उठि मन वणियो रे, करि ले बणज सवारा ॥
वेगे हो तुम्ह लाद लदांनां,
औघट घाटा रे चलनां दूरि पयांनां ।
खरा न खोटा नां परखानां,
लाहे कारनि रे सब मूल हिरांनां ॥
सकल दुनी मै लोभ पियारा,
मूल ज राखै रे सोई बनिजारा ॥
देस भला परिलोक बिरांनां,
जन दोइ चारि नरे पूछौ साध सयांनां ॥
सायर तीर न वार न पारा,
कहि समझावै रे कबीर बणिजारा ॥

शब्दार्थ—चोखौ=चोखा, अच्छा, लाभकारी । वनज=वाणिज्य । दिसावरि =देसावर, विदेश । लाहौ=लाभ । हाट = बाजार । सवारा=सिदौ भी, जल्दी ही । औघट=अवघट=अटपटा । पयाना=प्रमाण, चलना, जाना । वेगे - शीघ्र ही । लाहे=लाभ । मूल=मूलधन, गाँठ की पूँजी । हिराना=गवांना । खोगया, नष्ट हो गया । वनिजारा=वाणिज्य करने वाला । सयाना=चतुर । सायर=सागर । तीर=किनारा ।

सन्दर्भ—कबीर कहते है कि इस ससार मे रह कर धर्मपूर्ण आचरण ही हितकारी है ।

परन्तु मृत्यु से किसी प्रकार नही बचा जा सकता है। अत. हे भगवन्! मैं तुम्हारी शरण मे आया हूँ। जन्म-मरण के चक्र से मेरी रक्षा करो।

(२४६)

पांडे न करसि बाद बिबाद,
या देही बिन सबद न स्वाद ॥ टेक ॥
अंड ब्रह्मंड खड भी माटी, माटी नवनिधि काया ।
माटी खोजन सतगुर भेटचा, तिन कछू अलख लखाया ॥
जीवत माटी मूवा भी माटी, देखौ ग्यांन बिचारी ।
अति कालि माटी मैं बासा, लेटैं पांव पसारी ॥
माटी का चित्र पवन का थभा, ब्यद संजोगि उपाया ।
भांनै घड़ै संवारै सोई यहु गोव्यद की माया ॥
माटी का मदिर ग्यान का दीपक, पवन बाति उजियारा ।
तिहि उजियारै सब जग सूझै, कबीर ग्यांन बिचारा ॥

शब्दार्थ—थभा=स्तम्भ, खम्भा, सहारा। व्यद=बिंदु, वीर्य। भानै=टूटे हुए। बाति=बत्ती। उजियारा=प्रकाशित है।

सदर्भ— कबीरदास ससार की असारता का वर्णन करते हैं।

भावार्थ— कबीर कहते है कि अरे पण्डित! तुम वाद-विवाद (शास्त्रार्थ) मत करो। इस शरीर के विना न शब्द रह जाएगा और न स्वाद रह जाएगा—न तो शास्त्रार्थ ही रह जाएगा और न शास्त्रार्थ का आनन्द ही रह जाएगा। तुम्हारा शास्त्रार्थ तो अवलम्वित है शरीर और शरीर की स्थिति यह है कि यह समष्टि जगत और इस विश्व का प्रत्येक अश—सभी कुछ मिट्टी है। यह नवनिधियो को भोगने वाला शरीर भी मिट्टी ही है। इसी मिट्टी के ससार मे खोजते-खोजते (विभिन्न साधनाओ मे भटकते हुए) सद्गुरु से मेरी भेट हो गई। उन्होने मुझको उस अलक्ष्य परम तत्त्व का कुछ ज्ञान करा दिया। रे मानव! तू ज्ञान पूर्वक मनन करके देख। यह शरीर जीवित अवस्था मे भी मिट्टी है और मरने पर भी मिट्टी है। इस शरीर को अन्तत मिट्टी मे ही मिल जाना पडता है और अन्त समय मे यह जीव जमीन पर (मिट्टी मे) पैर फैला कर लेट जाता है। यह शरीर मिट्टी का ही पुतला है और प्राण वायु का आधार लेकर खडा है तथा केवल वीर्य एव रज की बूदो के सयोग से यह उत्पन्न किया गया है। भगवान की यही लीला है कि वही घडे-रूपी शरीरो को नष्ट करता है और वही इनका निर्माण करता है। कबीरदास ज्ञान पूर्वक विचार कर कहते हैं कि मिट्टी के इस शरीर रूपी मन्दिर मे ज्ञान रूपी दीपक जलता है। प्राण वायु रूपी वत्ती इसमे प्रकाशित है—इस ज्ञान दीपक के प्रकाश के द्वारा ही सम्पूर्ण ससार का सम्यक् ज्ञान होता है।

अलकार—(i) छेकानुप्रास—वाद विवाद, सवद स्वाद।
(ii) पदमैत्री—अंद ब्रह्मड खण्ड। मूवा माटी।

संदर्भ—कबीरदास सच्ची भक्ति के स्वरूप और उसकी महिमा का वर्णन करते हैं।

भावार्थ– कबीर कहते है कि अगर मैंने ज्ञान का रहस्य न समझा, तो मैंने अपना जीवन व्यर्थ ही गँवा दिया। मैं तो इस ससार को कर्म रूपी व्यापार स्थल (हाट) करके जानता हूँ और यहाँ समस्त प्राणी कर्म-व्यापार के हेतु आए हैं। हे जीव, सजग होकर समझ सको, तो सावधान होकर समझ लो। मूर्ख लोग इस ससार रूपी हाट मे आकर अपने मूल (गाँठ की पूंजी) को भी गँवा देते हैं—अर्थात् वे अपने चैतन्य स्वरूप को विस्मृत कर बैठते हैं। इस कर्म-व्यापार मे नेत्र, वाणी, सुन्दर शरीर– सब थक जाते है। उनके जन्म-मरण भी थक जाते हैं अर्थात् व्यक्ति बार-बार जन्म लेते-लेते और मरते-मरते भी ऊब जाते हैं, परन्तु यह माया—ससार के प्रति आसक्ति नही थकती है। हे मेरे चचल मन, जब तक इस शरीर मे प्राण हैं, तब तक (इसी बीच मे) तू सावधान होकर वस्तु-स्थिति को समझ ले। चाहे औपचारिक भक्ति न कर सको, परन्तु भक्ति की भावना बनाए रखना जिससे भगवान के चरणों मे मन का निवास बना रहे। जो लोग ससार के प्राणाधार भगवान के वास्तविक स्वरूप को समझ कर प्रभु का स्मरण करते हैं, उनके ज्ञान और विवेक नष्ट नही होते हैं। कबीरदास कहते हैं कि जो जानबूझ कर किसी को पराजित करने का प्रयत्न नहीं करते है, उसकी इस जीवन मे कभी पराजय नही होती है। अभिप्राय यह है कि जो व्यक्ति विरोधी भाव या शत्रु भाव से रहित है, उनकी सदैव विजय ही विजय होती है।

अलकार (i) रूपक—ससार हाट।
(ii) रूपकातिशयोक्ति – वणिजन, मूल।
(iii) पदमैत्री—नैन बैन, जाव भाव।
(v) अनुप्रास– थाके थाकै थाकी, जे जन जानि जपै जग जीवन। कहै कबीर कबहू।
(iv) पुनरुक्ति प्रकाश—चेति चेति।
(vii) विरोधाभास – भगति जाव पर भाव न जइयौ।

विशेष—थाके नैन ” माया।—तुलना करें—

माया मरी न मन मरे, मरि मरि जात सरीर।
आसा तृष्णा ना मरी कहि गए दास कबीर।

(२३७)

बंदे तोहि बंदिगी सौं कांम, हरि बिन जांनि और हरांम ।
दूरि चलणां कूंच वेगा, इहां नहीं मुकांम ॥ टेक ॥
इहां नहीं कोई यार दोस्त, गांठि गरथ न दाम ।
एक एकै संगि चलणां, बीचि नहीं बिश्रांम ॥
संसार सागर बिषम तिरणां, सुमंरि लै हरि नांम ।
कहै कबीर तहां जाइ रहणां नगर बसत निधांन ॥

शब्दार्थ—बंदे=दास, भक्त। बंदिगी=सेवा, भक्ति। हराम=शरअ (मुसलमान धर्म शास्त्र) के विरुद्ध, निषिद्ध। कूच=रवानगी। वेगा=शीघ्र। मुकाम=वास स्थान, घर। गरथ=सम्पत्ति। निधान=कृपानिधान, भगवान।

सन्दर्भ—कबीरदास संसार के प्रति उदासीन होकर भगवान को याद करने का उपदेश देते हैं।

भावार्थ—रे भक्त ! तुझे तो भगवान की भक्ति से काम है। भगवान की भक्ति के अतिरिक्त अन्य सब बातों को तुम निषिद्ध यानी धर्मशास्त्र के विरुद्ध समझो। तेरा गन्तव्य बहुत दूर है। अतएव यहाँ से जल्दी ही रवाना हो जाओ। इस संसार में तुम्हारे वास-स्थान नहीं है अथवा यहाँ टिकासरा लेना उचित नहीं है। इस दुनियाँ में तुम्हारा कोई हितैषी एवं शुभचिंतक भी नहीं है और यहाँ पर खर्च करने के लिए तेरे पास विशेष सम्पत्ति भी नहीं है (क्योंकि तुम अपने पुण्यों का क्षय कर चुके हो)। तुमको इस यात्रा में अकेले ही चलना है और बीच में कहीं विश्राम-स्थल भी नहीं है। इस संसार रूपी सागर को पार करना बहुत कठिन काम है। तुम उसको पार करने के लिए भगवान का नाम स्मरण करो। कबीर कहते हैं कि तुमको तो वहाँ जाकर रहना है जिस नगर में स्वयं कृपानिधान भगवान निवास करते हैं।

अलंकार—(i) रूपक—संसार सागर।
(ii) साग रूपक—बटोही साधक का रूपक।

विशेष—(i) कबीर का कहना है कि भक्त को संसार के प्रति एकदम विमुख हो जाना चाहिए, क्योंकि परम धरम की प्राप्ति ही उसका एक मात्र [illegible] है।

हो जाएँ (अथवा राम भक्ति के बिना समस्त साधनाएँ व्यर्थ हैं। मूर्ख लोग चाहे जितना उनका पालन करें। सारा जप-तप झूठा है, सम्पूर्ण शास्त्र-ज्ञान व्यर्थ है। राम की भक्ति के बिना समस्त ध्यान एवं साधना झूठी है। शास्त्रों के द्वारा निर्धारित विधि-निषेध, पूजा-आचार का कोई अन्त नही है। ये सब नदी मे डुबा देने योग्य है। स्वार्थी व्यक्तियों ने इन्द्रियो के भोग एवं मन को प्रसन्न करने के लिए अनेक 'वादो' और पूजा पद्धतियो का विकास कर रखा है। कबीरदास कहते हैं कि इसी मे मैंने समस्त भ्रमो को नष्ट करके और अन्य प्रकार की साधनाओ से मुँह मोड कर भगवान मे अपना मन लगा दिया है।

अलंकार—गूढोक्ति एव विशेपोक्ति की व्यजना -

विशेष—प्रथम चरण।

वाह्याचार का विरोध है। सच्ची भक्ति का प्रतिपादन है।

(२५३)

चेतनि देखै रे जग धंधा।
रांम नांम का मरम न जांनै, माया कै रसि अंधा॥ टेक॥
जनमत हीरू कहा ले आयो, मरत कहा ले जासी।
जैसे तरवर वसत पखेरू, दिवस चारि के वासी॥
आपा थापि अवर कौं निंदै, जन्मत हीं जड़ काटी।
हरि की भगति विनां यहु देही धव लोटै ही फाटी॥
कांम क्रोध मोह मद मछर, पर अपवाद न सुणियें।
कहै कबीर साध की संगति, रांम नांम गुण भणियें॥

शब्दार्थ—वसत=वसते है। पखेरू=पक्षी। थापि=स्थापना करके, वड़ाई करके। धव लोरे=देह धौलोरे=दौड धूप। फाटी=विदीर्ण हो गई, नष्ट हो गई। भणिये = कहिए।

सन्दर्भ—कबीर का कहना है कि जीव को ससार के प्रपच त्याग कर राम की भक्ति करनी चाहिए।

भावार्थ – हे जीव! तू केवल संसार के धन्धो के प्रति आसक्त है। अथवा रे जीव, तू जागकर क्यो नही देखता है कि यह ससार एक जाल है। तू राम के नाम के वास्तविक मूल्य को नही जानता है और मायाजन्य सुखो म लिप्त होकर वास्तविक स्थिति को न देखने के कारण अधा हो रहा है। जन्म के साथ तू अपने साथ कौन सा धन-वैभव लाया था और मरने पर अपने साथ क्या ले जायगा? जिस प्रकार पक्षी चार दिन के मेहमान की तरह वृक्ष पर चार दिन तक (कुछ ही दिन। निवास करते हैं, उसी प्रकार यह जीव ही इस संसार मे वहुत थोडे दिनो का मेहमान है। तू स्वय अपनी तो प्रशसा करता है और दूसरो की बुराई करता है। इस प्रकार अपने पराए की भावना अथवा द्वैतभाव धारण करके तूने जन्म के साथ

नेल के प्रति भूल कर भी आसक्त नही होता है। यह जीवन उलझे हुए नौ मन सूत की भांति है। जीव इसकी गुत्थियो को जन्म जन्मान्तर तक सुलझाने का प्रयत्न करते रहते हैं। कबीर कहते हे कि हे जीव, तुम किसी अन्य साधना के फेर मे मत पडो, केवल एक राम का भजन करो जिससे तुम्हारा पुनर्जन्म न हो और कही तुम्हे इस उलझन मे न पडना पडे।

अलंकार—(i) रूपक घर तन।

(ii) गूढोक्ति—नही किस केरा।

(iii) पुनरुक्ति प्रकाश—जनमि जनमि।

(v) रूपकातिशयोक्ति—बाजी, बाजीगर, नौ मन सूत।

विशेष—(i) नौ मन सूत मुहावरा है। कतिपय आलोचको ने इसका प्रतीकात्मक अर्थ किया है—पाँच ज्ञानेन्द्रिय तथा अन्त करण चतुष्टय (मन, बुद्धि, चित्त एव अहकार)।

(२३९)

हावड़ि धावड़ि जनम गवावै,
कबहूँ न रांम चरन चित लावै ॥ टेक ॥
जहां जहां दाम तहा मन धावै, अगुरी गिनतां रैनि बिहावै ।
तृया का वदन देखि सुख पावं, साध की सगति कबहू न आवै ॥
सरग के पंथि जात सब लोई, सिर धरि पोट न पहुँच्या कोई ।
कहै कबीर हरि कहा उबारै, अपणै पाव आप जो मारै ॥

शब्दार्थ—हावड़ि धावड़ि=आपा धापी, दौड धूप। दाम=धन। धावै=दौडता है। बिहावै=व्यतीत करता है। तृया=त्रिया, स्त्री। पोट=गठरी।

सन्दर्भ—कबीर कहते है कि विषय-भोग के प्रति आसक्त जीव का उद्धार सम्भव नही है।

(२४१)

फिरत कत फूल्यौ फूल्यौ ।
जब दस मास उरध मुखि होते, सो दिन काहे भूल्यौ ।। टेक ।।
जौ जारै तौ होई भसम तन, रहत कृम ह्वै जाई ।
काचै कुंभ उद्यक भरि राख्यो, तिनकी कौन बड़ाई ।
ज्यूं माषी मधु संचि करि, जोरि धन कीनो ।
मूये पीछै लेहु लेहु करि, प्रेत रहन क्यूं दीनू ।।
ज्यूं घर नारी संग देखि करि, तब लग संग सुहेलौ ।
मरघट घाट खेंचि करि राखे, वह देखिहु हंस अकेलौ ।।
रांम न रमहु मदन कहा भूले, परत अंधेरै कूवा ।
कहै कबीर सोई आप बधाधौ, ज्यूं नलनी का सूवा ।।

शब्दार्थ—उरध मुख=ऊपर को मुख किए हुए अर्थात् उलटा मुख किए हुए। माषी=मक्खी, शहद की मक्खी से तात्पर्य है। घर नारी=व्याहता स्त्री, व्याही हुई। सजन सहेली=स्वजन एवं साथी। कूवा=कुँआ, यहाँ तात्पर्य अज्ञान का कुआ। नलिनी=पोले बाँस की नली जो तोता पकडने के काम मे आती है।

सन्दर्भ संसार के बाह्य आकर्षक रूप पर मोहित एवं ऐश्वर्य मे मदमत्त मानव को कबीरदास सावधान करते है।

भावार्थ—हे भोले मानव! तू गर्व मे फूला हुआ क्यो फिर रहा है? क्या तू उस व्यथा को भूल गया जो तुझे गर्भ मे दस माह तक उलटे लटके रहने के कारण हुई थी? जन्म के समय जितनी व्यथा हुई थी, मृत्यु के समय भी वैसी ही व्यथा होगी, यह संकेत करते हुए कबीर कहते है कि मरने पर तेरा शरीर जब जलाया जायगा, तब भस्म होकर समाप्त हो जाएगा और यदि जलाया नही गया, और यों ही पड़ा रहा, तो उसे कीड़े-मकोड़े खा जाएँगे। इस शरीर की इतनी ही महिमा है जितनी महिमा पानी से भरे हुए कच्चे घड़े की होती है, जो शीघ्र ही फूट जाता है। जिस प्रकार मधुमक्खी तनिक-तनिक (थोड़ा-थोड़ा) करके शहद इकट्ठा करती है, उसी प्रकार तुमने भी थोड़ा-थोड़ा करके कुछ धन संचित कर लिया है। तुम्हारे मरने ही सब लोग 'लेलो, लेलो' कहते हुए इस धन को आपस मे बाँट लेंगे और तुम्हारे इस शरीर को उठाकर बाहर फेंक देंगे, क्योंकि प्रेत को कौन घर मे रखता

(२५६)

अलह ल्यौ लांयें काहे न रहिये,
अह निसि केवल रांम नांम कहिये ।। टेक ।।
गुरमुखि जलमां ग्यांन मुखि छुरी, हुई हलाल पंचू पुरी ।।
मन मसीति मै किनहूँ न जांनां, पच पीर मलिम भगवांनां ।।
कहै कबीर मै हरि गुन गाऊ, हिंदू तुरक दोऊ समझाऊँ ।।

शब्दार्थ—ल्यौ=लौ, लगन। अह=दिन। हलाल=विहित, शरई रीति से पसुवध। कलमा=वह उक्ति जो मुसलमानो के धर्म-विश्वास का मूल मत्र है—ला इलाह इल्लिल्लाह, मुहम्मद रसूलल्लिलाह। मसीत=मस्जिद।

सन्दर्भ—कबीरदास अन्तर्मुखी होने का उपदेश देते हैं।

भावार्थ—हे भाई! तुम भगवान मे लौ लगाकर क्यो नही रहते हो? दिन रात केवल राम-नाम कहते रहो। गुरु के मुख से कलमा का उपदेश सुन कर तथा ज्ञान रूपी छुरी से पाँचो इन्द्रियो के विपयो रूपी पशुओ का वध करके ईश्वरार्पण कर देना चाहिये। मन रूपी मस्जिद के भीतर झाँक कर किसी ने नही देखा है। वहाँ पर पच पीरो के स्वामी भगवान का स्थायी निवास है। कबीर कहते हैं कि मैं (वाह्याचारो को त्याग कर) भगवान का गुण-गान करता हूँ तथा हिन्दू मुसलमान दोनो को ऐसा ही करने को कहता हूँ।

अलंकार—(i) गूढोक्ति—काहे न कहिए।
(ii) रूपक—ग्यान मुखि छुरी, मनमसीति।
(iii) रूपकातिशयोक्ति—पचूपुरी।
(iv) छेकानुप्रास—पचू पुरी, पचपीर, मन-मसीति।

विशेष—(i) कबीर वाह्याचारो को छोडकर सच्चे मन से भगवान को याद करने का उपदेश वार-वार देते है और आशा करते हैं कि हिन्दू-मुसलमान पारस्परिक भेद-भाव को भूल जायेंगे।

हिन्दू-तुरक की एक राह है, सतगुरु इहै वताई।
कहत कबीर सुनो, हो सन्तौ! राम न कहूँ खुदाई।

(ii) इस पद मे निश्चित रूप से मुस्लिम वाह्याचारो के प्रति विरोध व्यक्त किया है।

(iii) पाँच इन्द्रियाँ एव उनके विषय इस प्रकार हैं—कान—शब्द, जिह्वा—रस, आँख—रूप, नाक—गध तथा त्वचा—स्पर्श।

(iv, 'कलमा' मे अभेदत्त्व का प्रतिपादन है—अद्वैत ज्ञान है। अत. कबीर के मतानुसार उसका सच्चा उपदेश प्राणिमात्र के प्रति समवुद्धि एव प्रेम भावना का धारण है। कलमा का सदेश इन्द्रियो का स्वाद न होकर विपयो के प्रति वैराग्य है। उपर्युक्त पद मे यही मतव्य व्यंजित है।

सन्दर्भ—कबीरदास मानव को चेतावनी देते हुए कहते है कि उसे रामनाम का स्मरण करना चाहिए ।

भावार्थ—री पागल जीवात्मा ! दिन प्रतिदिन यह शरीर क्षीण हो रहा है । हे पगली ! भगवान राम के प्रति मन को अनुरक्त कर ले । तुम्हारा बचपन तो नष्ट हो ही गया ह, जवानी भी चली जाएगी और बुढ़ापा तथा मृत्यु का भय उपस्थित होगे । तुम्हारे बाल सफेद हो गए है, नेत्रो मे कमजोरी के कारण सदैव पानी डबडबाता रहता हे । हे मूर्ख ! अब भी होश मे आजा । देख, बुढापा तो आ ही धमका है । राम-नाम का उच्चारण करते हुए तुझ को शर्म क्यो लगती है । प्रत्येक क्षण तेरी आयु कम हो रही है और तेरा शरीर दुर्बल होता चला जा रहा है । लज्जा कहती है कि मै यमराज की दासी हूँ । इसी कारण इसको राम-नाम कहने से पराड्मुख करती रहती हूँ । मेरे एक हाथ मे मुगदर है और दूसरे हाथ मे फदा है । जिससे यमराज को इसे मारकर बाँधकर ले जाने मे विलम्ब न लगे) । कबीरदास कहते हैं कि जिन्होने मन से भी राम-नाम को भुला दिया है, उनका जीवन सर्वथा निरर्थक हो गया है ।

अलकार—(i) मानवीकरण—लज्जा कह्यौ ।
(ii) पुनरुक्ति प्रकाश—पल-पल ।

विशेष—(i) व्यजना यह है कि राम-नाम के स्मरण से मृत्यु पर विजय हो जाती है ।

(ii) निर्वेद सचारी भाव की व्यजना है ।

(२४३)

मेरी मेरी करतां जनम गयौ,
जनम गयौ परि हरि न कह्यौ ।। टेक ।।

बारह बरस बालापन खोयौ, बीस बरस कछू तप न कीयौ ।
तीस बरस के राम न सुमिर्‌यौ फिरि पछितानौं बिरध भयौ ।।
सूकं सरवर पालि बंधावै, लुणै खेत हठि बाड़ि करै ।
आयो चोर तुरंग मुसि ले गयौ मोरी राखत मुगध फिरै ।।
सीस चरन कर कंपन लागे, नैन नीर अस राल बहै ।
जिभ्या बचन सूध नहीं निकसै, तब सुकरित की बात कहै ।।
कहै कबीर सुनहु रे संतो, धन संच्यौ कछू संगि न गयौ ।
आई तलब गोपाल राइ की, मैड़ी मंदिर छाड़ि चल्यौ ।।

जागि जागि नर काहे सोवै, सोइ सोइ कब जागैगा ।
जब घर भीतरि चोर पड़ेगे, तब अंचलि किसकै लागेगा ॥
कहै कबीर सुनहु रे संतौ, करि ल्यौ जे कछु करणां ।
लख चौरासी जोनि फिरौंगे, बिनां रांम की सरनां ॥

शब्दार्थ—जाति जाती=व्यर्थ जाते हुए । जीया=जीव । चरन=पाँव । कर=हाथ । घारे=क्षीण हो गये, थक गये । आउ=आयु ।

संदर्भ— कबीरदास जीव को रामभक्ति की ओर प्रेरित करते हैं ।

भावार्थ— रे जीव ! जीवन व्यर्थ जाते हुए देखकर भी यदि तूने भगवान का नाम नहीं लिया तो बाद में तुम्हे पछताना पडेगा । ससार के धन्धो को करते-करते तेरे हाथ-पाँव दुर्बल हो गए है, आयु घटती जा रही है और शरीर क्षीण हो गया है । विषय-विकारो के प्रति तू सदैव अनुरक्त रहा और माया-मोह मे उलझा रहा, अर्थात् 'मैं मेरा' के चक्कर मे पडा रहा । रे जीव ! जागजा । अज्ञान निद्रा मे क्यो सो रहा है । आखिरकार इस अज्ञान-रूपी निद्रा को तू कब छोडेगा ? अर्थात् यदि अब भी नही जागा, तो आखिर कब जागेगा ? जब इस शरीर रूपी घर मे यम-दूत रूपी चोर तेरे जीवन को ले जाने के लिए घुस आयँगे, तब तू उस समय अपने रक्षार्थ किसकी शरण मे जायगा ? कबीर कहते है कि हे सतो ! सुनो जो कुछ भगवन्नाम-स्मरण करना है, उसे कर लो । राम की शरण मे गए बिना तुमको बार-बार जन्म लेकर चौरासी लाख योनियो मे निरन्तर भटकते रहना पडेगा ।

अलकार—(i) पुनरुक्तिप्रकाश—जागि जागि ।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—घर चोर ।
(iii) गूढोक्ति—अंचलि किसके लागेगा ।

विशेष—'निर्वेद' सचारी भाव की मार्मिक व्यजना है ।

(२४५)

माया मोहि मोहि हित कीन्हां,
तार्थं मेरो ग्यांन ध्यांन हरि लीन्हां ॥ टेक ॥
संसार ऐसा सुपिन जैसा, जीव न सुपिन समांन ।
सांच करि नरि गांठि बांध्यो, छाडि परम निधांन ॥
नैन नेह पतंग हुलसै पसू न पेखै आगि ।
काल पासि जु मुगध बांध्या, कलंक कांमिनीं लागि ॥
करि बिचार बिकार परहरि, तीरण तारण सोइ ।
कहै कबीर रघुनाथ भजि नर, दूजा नांहीं कोइ ॥

शब्दार्थ—[illegible] हुलसै=उल्लसित होता है । पासि=[illegible] । परिहरि=त्याग दे । तीरण=[illegible] । [illegible] ।

राम सो खरो है कौन मोसो कौन खोटो।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(iii) लहंग दरिया—ब्रह्माण्ड मे से स्रवित रस धारा को चर्वी का दरिया कहना युक्ति सगत ही है।

एवं— हैं स्रुति विदित उपाय सकल सुर, केहि केहि दीन निहोरै।

(२५९)

अलह रांम जीऊँ तेरे नाँई,
बंदे ऊपरि मिहर करौ मेरे सांई।। टेक।।
क्या ले माटी भुँइ सूं मारै, क्या जल देह न्हवायें।
जोर करै मसकीन सतावै, गुन हीं रहै छिपाये।।
क्या तु जू जप मजन कीये, क्या मसीति सिर नांयें।
रोजा करै निमाज गुजारैं, क्या हज कावै जांयें।।
ब्रांह्मण ग्यारसि करै चौबीसौं, काजी महरम जांन।
ग्यारह मास जुदे क्यू कीये, एकहि मांहि समांन।।
जौर खुदाइ मसीति बसत है, और मुलिक किस केरा।
तीरथ मूरति रांम निवासा, दुहु मै किनहू न हेरा।।
पूरिब दिसा हरी का वासा, पछिम अलह मुकांमा।
दिल ही खोजि दिलै दिल भींतरि, इहां रांम रहिमांनां।।
जेती औरति मरदां कहिये, सब मै रूप तुम्हारा।
कबीर पंगुड़ा अलह रांम का, हरि गुर पीर हमारा।।

शब्दार्थ- नाईं=नाम पर। वदे=सेवक पर, दास पर। मिहर=मेहरबानी। साई=स्वामी। मिट्टी=शरीर भु इ सू मारै=जमीन पर पटका जाए। जोर करै जुल्म करता है। मसकीन=दीन, दु:खी। मजन=मज्जन, शरीर की अंतर्वाह्य शुद्धि के लिए मंत्र पढते हुए कुशादि से जल छिडकना। मसीति=मस्जिद। हज=हज्ज, नियत काल पर कावे के दर्शन और प्रदक्षिण करना, मक्के की यात्रा। कावा=मक्के की एक चौकोर इमारत जिसकी नीव इब्राहीम की रखी हुई मानी जाती है। महरम=मुहर्रम, मुसलमानी साल का पहला महीना जिसकी दसवी तारीख को इमामहुसैन शहीद हुए थे। मुलिक=मुल्क, ससार। हेरा। पगुडा= दास, सेवक।

सन्दर्भ—कवीर वाह्याचार की निरर्थकता वताते हुए भगवान की अनन्य भक्ति का प्रतिपादन करते हैं।

भावार्थ—हे अल्लाह! हे राम! मैं तुम्हारा नाम स्मरण करके जी रहा हुँ। हे मेरे स्वामी, अपने इस सेवक पर कृपा करो। जो व्यक्ति जुल्म करके दीन-दु खियो को सताता है और वाह्याचार (पूजा-पाठ आदिक) के द्वारा अपने अवगुणो को छिपाना चाहता है, उसका क्या किया जाए? उसके शरीर को लेकर पृथ्वी पर

सन्दर्भ—कबीर सबको झूठा कहकर भगवान के प्रति अनुरक्त होने को कहते है।

भावार्थ—हे मनुष्य तेरा ऐसा स्वभाव बन गया है कि तुझे झूठ ही मधुर लगता है अथवा हे मनुष्य तेरी वृत्ति मिथ्या आनन्दो मे अत्यधिक रमती है। फल यह हुआ कि तू सत्य से सत्यानन्द से पराङ्‌मुख हो गया। इस मिथ्या ससार मे झूठा जीव आया (ससार और जीव भाव ही मिथ्या हैं।) वह मिथ्या विषय-वासनाओ मे पड गया। इसी को लक्ष्य करके कबीर कहते हैं कि इस मिथ्या ससार ने उसके लिये झूठा विषय-वासना रूपी भंजन तैयार किया। माया रूपी झूठी थाली मे झूठा भोजन परोसा गया और झूठे जीव ने उसमे विषय-वासना रूपी झूठे भोजन का भोग किया। यह उठना-बैठना एव समस्त सम्बन्ध झूठे (परमार्थतः मिथ्या) है। इस प्रकार झूठे रग मे झूठा अनुरक्त हो गया है। वह सत्य तत्व पर विश्वास नही करता है। कबीर कहते है कि हे खुदा के बच्चो (परमात्मा के पुत्रो)! तुम परम तत्व स्वरूप सत्य मे मन लगाओ और इस मिथ्या ससार के प्रति अपनी आसक्ति का त्याग कर दो। इसी से तुमको मन वाञ्छित फल (मोक्ष) की प्राप्ति होगी।

अलंकार—(i) रूपकातिशयोक्ति एव यमक की व्यजना—'झूठा'।

विशेष—(i) जगत, जीव-भाव, विषय-वासना आदि सबको 'मिथ्या' कहने वाले कबीर ने प्रकारान्तर से शकर के 'मायावाद' का प्रतिपादन किया है।

(ii) 'निर्वेद' सचारी की व्यजना है।

(iii) वैराग्य का प्रतिपादन है।

(२४७)

कौण कौण गया राम कौण कौण न जासी,
पड़सी काया गढ़ माटी थासी ॥ टेक ॥
इद्र सरीखे गये नर कोड़ी, पांचो पाडौं सरिषी जोड़ी ।
धू अविचल नहीं रहसी तारा, चंद सूर की आइसी बारा ॥
कहै कबीर जग देखि ससारा, पड़सी घट रहसी निरकारा ।

शब्दार्थ—जासी=जाएगा। गढ़=किला। पड़सी=गिरेगा। थासी=हो जाएगा। [illegible]=[illegible]। घट=शरीर अथवा दृश्यमान जगत।

सदर्भ—कबीर ससार की नश्वरता का प्रतिपादन करते है।

परन्तु मृत्यु से किसी प्रकार नहीं बचा जा सकता है। अतः हे भगवन्! मैं तुम्हारी शरण में आया हूं। जन्म-मरण के चक्र से मेरी रक्षा करो।

(२४६)

पांडे न करसि वाद विवाद,
या देही बिन सबद न स्वाद ॥ टेक ॥
अंड ब्रह्मंड खंड भी माटी, माटी नवनिधि काया।
माटी खोजत सतगुर भेट्या, तिन कछू अलख लखाया ॥
जीवत माटी मूवा भी माटी, देखौ ग्यांन बिचारी।
अति कालि माटी मैं बासा, लेटै पांव पसारी।।
माटी का चित्र पवन का थंभा, व्यंद सजोगि उपाया।
भानै घड़ै सवारै सोई यहु गोव्यद की माया ॥
माटी का मंदिर ग्यान का दीपक, पवन बाति उजियारा।
तिहि उजियारै सब जग सूझै, कबीर ग्यांन विचारा ॥

शब्दार्थ—थंभा = स्तम्भ, खम्भा, सहारा। व्यंद = बिंदु, वीर्य। भानै = टूटे हुए। बाति = बत्ती। उजियारा = प्रकाशित है।

संदर्भ—कबीरदास संसार की असारता का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—कबीर कहते हैं कि अरे पण्डित! तुम वाद-विवाद (शास्त्रार्थ) मत करो। इस शरीर के बिना न शब्द रह जाएगा और न स्वाद रह जाएगा—न तो शास्त्रार्थ ही रह जाएगा और न शास्त्रार्थ का आनन्द ही रह जाएगा। तुम्हारा शास्त्रार्थ तो अवलम्बित है शरीर और शरीर की स्थिति यह है कि यह समष्टि जगत और इस विश्व का प्रत्येक अंश—सभी कुछ मिट्टी है। यह नवनिधियों को भोगने वाला शरीर भी मिट्टी ही है। इसी मिट्टी के संसार में खोजते-खोजते (विभिन्न साधनाओं में भटकते हुए) सद्गुरु से मेरी भेंट हो गई। उन्होंने मुझको उस अलक्ष्य परम तत्व का कुछ ज्ञान करा दिया। रे मानव! तू ज्ञान पूर्वक मनन करके देख। यह शरीर जीवित अवस्था में भी मिट्टी है और मरने पर भी मिट्टी है। इस शरीर को अन्ततः मिट्टी में ही मिल जाना पड़ता है और अन्त समय में यह जीव जमीन पर (मिट्टी में) पैर फैला कर लेट जाता है। यह शरीर मिट्टी का ही पुतला है और प्राण वायु का आधार लेकर खड़ा है तथा किंचित वीर्य एवं रज की बूंदों के संयोग से यह उत्पन्न किया गया है। भगवान की यही लीला है कि वही घट-रूपी शरीरों को नष्ट करता है और वही इनका निर्माण करता है। कबीरदास ज्ञान पूर्वक विचार कर कहते हैं कि मिट्टी के इस शरीर रूपी मंदिर में ज्ञान रूपी दीपक जलता है। प्राण वायु रूपी बत्ती [illegible] प्रकाशित है। इस ज्ञान दीपक के प्रकाश के द्वारा ही सम्पूर्ण संसार [illegible] है।

अलंकार—(i) वृत्यानुप्रास— वाद विवाद, सबद स्वाद।
(ii) पदमैत्री— [illegible] मूवा माटी।

कहै कबीर मैं जांनां, मैं जांनां मन पतियानां ॥
पतियानां जौ न पतीजै, तौ अंधै कू का कीजै ॥

शब्दार्थ—गँवारा=अज्ञानी, मूर्ख। पच चोर=पाँच विकार (काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर)। गढ=शरीर रूपी दुर्ग। मुहिकम=दृढ, वस्तु। मति=बुद्धि।

संदर्भ—कबीरदास कहते हैं कि ज्ञान प्राप्ति के लिए मन की शुद्धि परम आवश्यक है।

भावार्थ—हे मूर्ख जीव! भगवान का नाम क्यो नही लेता है? तू इस बारे मे बार-बार क्या सोचता है? अथवा तू यह क्यो बार-बार सोचता है कि सासारिक चिताओ से मुक्त होने के लिए क्या करना चाहिए। इस शरीर-रूपी दुर्ग मे काम, क्रोध, लोभ, मद एव मत्सर रूपी पाँच चोर हैं। ये इसको दिन-रात लूट रहे है। अगर दुर्ग का स्वामी मज़बूत हो, तो दुर्ग को कोई नही लूट सकता है। अभिप्राय यह है कि ये पच विकार जीव की चेतना एव स्व-स्वरूप-स्थिति की क्षमता को नष्ट कर रहे हैं। यदि जीव-चैतन्य अपने स्वरूप मे दृढता पूर्वक स्थित रहे, तो इसकी क्षमता को कौन नष्ट कर सकता है? अविद्या रूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिए ज्ञान रूपी दीपक चाहिए। उसी के द्वारा अगोचर परम तत्व की प्राप्ति होती है। इस परम तत्व के साक्षात्कार मे यह ज्ञान रूपी दीपक भी इसी परम तत्व मे समाहित हो जाता है। अगर कोई उस परम तत्व का साक्षात्कार करना चाहता है, तो उसे अपने अन्त करण रूपी दर्पण को स्वच्छ बनाए रखना चाहिए। जब दर्पण के ऊपर मैल जम जाता है—जब अन्त.करण मलिन हो जाता है, तब उस परम तत्व का साक्षात्कार नहीं होता है। पढने और मनन (स्वाध्याय) करने से क्या होता है? वेद-पुराण सुनने से क्या होना है? पढने एव मनन करने से मतवाद रूपी अहंकार उत्पन्न हो जाता है और तब परम तत्व का साक्षात्कार सम्भव नही होता है। उसको साक्षात्कार मुझको तो सहज भाव से हो गया है। अथवा यह कहिए कि जो ज्ञान शास्त्राध्ययन से होना है, वह मुझे सहज ही प्राप्त हो गया है। कबीर कहते हैं कि मैंने उस परम तत्व को जान लिया है और उस परम तत्व मे मेरी निष्ठा दृढ हो गई है। उस परम तत्व का ज्ञान प्राप्त होने पर उसके प्रति जिसके मन मे श्रद्धा-विश्वास दृढ नही होते हैं, उस अज्ञानी का क्या किया जाए?

अलंकार—(i) रूपकातिशयोक्ति—चोर, गढ, गढपति, दीपक।
(ii) रूपक—वस्तु अगोचर।
(iii) विरोधाभास—अगोचर लहिए।
(iv) पदमैत्री—दरसन दरपन।
(v) वक्रोक्ति—का पढियै—सुनिये।
(vi) गूढोक्ति—अंधै कू का कीजै।

विशेष—(i) वेद शास्त्र का विरोध है।
(ii) काई—विपय-वासना।

एवं सफल साधन नहीं हैं।) अतः भव-सागर में डूबने से बचने के लिए कोई अन्य उपाय करना चाहिए जिससे तैर कर इसे पार करके दूसरे किनारे पर पहुँच सको। कबीर का उपदेश तो यही है कि राम-नाम के स्मरण की नाँव तैय्यार करो जिससे इस भव-सागर को पार कर सको।

अलंकार—(i) गूढोक्ति—तब का—मुकन्दा।

(ii) रूपक—राम-नाम मेरा।

विशेष— (i) भक्ति का प्रतिपादन है। वही एक ऐसा साधन है जिससे भव-सागर को पार किया जा सकता है।

(ii) इस पद के अनुसार उच्च जाति में पैदा होने से नहीं उच्च कर्म करने से ही व्यक्ति उच्च बनता है।

(iii) पूरब जनम ......कीन्हा - इन पंक्तियों में कर्म-फल सिद्धान्त एवं पुनर्जन्म के भारतीय सिद्धांत की स्पष्ट स्वीकृति है।

(iv) भक्ति ही उच्चतम कर्म है। यह व्यंजित है।

(v) मेरी जिभ्या गोविंदा—तुलना कीजिए—

सिय-राम सरूप अगाध अनूप, विलोचन मीनन को जलु है।
स्रुति राम कथा, मुख राम को नाम हिये पुनि रामहिं को थलु है।
मति रामहिं सों, गति रामहिं सों, रति राम सों रामहिं को बलु है।
सबको न कहै, तुलसी के मते, इतनो जग जीवन को फलु है।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(२५१)

कहु पाडे सुचि कवन ठांव,
जिहि घरि भोजन बैठि खाऊ ॥ टेक ॥
माता जूठी पिता पुनि जूठा, जूठे फल चित लागे।
जूठा आंवन जूठा जांनां, चेतहु क्यू न अभागे॥
अंन जूठा पानी पुनि जूठा, जूठे बैठि पकाया।
जूठी कड़छी अन परोस्या, जूठे जूठा खाया॥
चोका जूठा गोबर जूठा, जूठी की ढीकारा।
कहै कबीर तेई जन सूचे, जे हरि भजि तजहिं बिकारा॥

शब्दार्थ—पांडे=पण्डित। सुचि=शुचि=पवित्र। ठाऊँ=स्थान। कारा=रेखा, लीक। सूचे=पवित्र।

सन्दर्भ—कबीर कहते हैं कि भगवद् भजन के अतिरिक्त सब कुछ

हो जाएँ (अथवा राम भक्ति के बिना समस्त साधनाएँ व्यर्थ हैं। मूर्ख लोग चाहे जितना उनका पालन करें। सारा जप-तप झूठा है, सम्पूर्ण शास्त्र-ज्ञान व्यर्थ है। राम की भक्ति के बिना समस्त ध्यान एव साधना झूठी है। शास्त्रों के द्वारा निर्धारित विधि-निषेध, पूजा-आचार का कोई अन्त नहीं है। ये सब नदी मे डुबा देने योग्य है। स्वार्थी व्यक्तियों ने इन्द्रियो के भोग एव मन को प्रसन्न करने के लिए अनेक 'वादो' और पूजा पद्धतियो का विकास कर रखा है। कबीरदास कहते हैं कि इसी मे मैंने समस्त भ्रमो को नष्ट करके और अन्य प्रकार की भावनाओ से मुँह मोड़ कर भगवान मे अपना मन लगा दिया है।

अलंकार—गूढोक्ति एव विशेषोक्ति की व्यंजना -

विशेष—प्रथम चरण।

वाह्याचार का विरोध है। सच्ची भक्ति का प्रतिपादन है।

(२५३)

चेतनि देखै रे जग धंधा।
रांम नांम का मरम न जांनै, माया कै रसि अंधा॥ टेक॥
जनमत हीं कहा ले आयो, मरत कहा ले जासी।
जैसे तरवर बसत पखेरू, दिवस चारि के बासी॥
आपा थापि अवर कौं निंदै, जन्मत हीं जड़ काटी।
हरि की भगति बिनां यहु देही धव लोटै ही फाटी॥
कांम क्रोध मोह मद मछर, पर अपवाद न सुणियें।
कहै कबीर साध की संगति, राम नांम गुण भणिये॥

शब्दार्थ—बसत=बसते है। पखेरू=पक्षी। थापि=स्थापना करके, बड़ाई करके। धव लोटै=देह धौलोटै=दौड़ धूप। फाटी=विदीर्ण हो गई, नष्ट हो गई। भणिये=कहिए।

सन्दर्भ—कबीर का कहना है कि जीव को संसार के प्रपंच त्याग कर राम की भक्ति करनी चाहिए।

ही अपनी जड काटती है अर्थात् अपने उद्गम स्थल ब्रह्म से अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया है। हरि की भक्ति बिना यह देह विषयो के पीछे दौड-धूप करते हुये नष्ट हो गई है। कबीरदास चेतावनी देते हुये कहते हैं कि हे जीव, तू काम, क्रोध, मोह, मद और मत्सर की ओर ध्यान मत दे और साधुओ की सगति करो तथा राम के नाम का गुणगान करो।

अलंकार —(i) उदाहरण—जैसे.... वासी।

(ii) वक्रोक्ति — जनमत ' जासी।

विशेष— (i) जड काटी, धव लौटे— मुहावरो का सुन्दर प्रयोग है।

(ii) व्यक्ति को चाहिए कि वह ससार के प्रति आसक्त न होकर भगवान की भक्ति करे। साधु-सगति एव भगवन्नाम-स्मरण के द्वारा मिथ्यात्व का विश्वास होता है और उसके प्रति आसक्ति समाप्त हो जाती है।

(२५४)

रे जम नांहि नवै व्यौपारी,
जे भरै जगाति तुम्हारी ।। टेक ।।
बसुधा छांड़ि बनिज हम कीन्हौं, लाद्यो हरि को नांऊं ।
रांम नांम की गूंनि भराऊ, हरि कै टांडै जांऊ ।।
जिनकै तुम्ह अगिवानी कहियत, सो पूंजी हम पासा ।
अबै तुम्हारो कछु बल नांही, कहै कबीरा दासा ।।

शब्दार्थ—जगाति=पेशावर से आने वाले माल पर लगने वाला कर, आयात कर। गू नि=बोरा। टाडै=सार्थ, कारवाँ, काफिला। अगिवानी=आगे आगे चलने वाले।

सन्दर्भ—कबीर ज्ञान प्राप्ति की दशा का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—हे यम ! हम वे व्यापारी नही है जो तुम्हारी चुगी दें। मैंने ससार के प्रति आसक्ति का परित्याग करके आत्म-बोध मे जीवन लगाया है (निज व्यापार किया है) और मैंने हरि नाम की खेप लादी है अर्थात् मेरे मन-मानस मे हरि-नाम व्याप्त है। मैंने राम-नाम रूपी सामग्री से जन्म रूपी बोरी भर ली है और हरि भक्तो के काफिले (समूह) के साथ (मोक्षधाम) को जाऊँगा (जिन भगवान के नाम पर तुम जीवधारियो को लिवा ले जाने के लिये आते हो, वे उन भगवान की भक्ति रूपी पूँजी ही हमारे पास है (जिस पर तुम्हारा कोई इजारा नही है) कबीर दास यमराज को सम्बोधित करके कहते हैं कि अब हमारे ऊपर तुम्हारा कोई वश नही चलेगा (पिछले जन्मो की बात अब नही रही है।)

अलंकार—(i) रूपक—रामनाम की गू नि।

(ii) गूढोक्ति—नाहिन वैव्यापारी।

विशेष—(i) जे धरै जगाति—अज्ञान के कर्म पाप-पुण्य होते हैं। उनके अनुसार यम जीव का हिसाब-किताब लेकर उसको नरक-स्वर्ग भेजते हैं। परन्तु

'आतम-बोध' का साधक-कर्म-निर्लिप्त रहता है। अत. उस पर यमराज का कोई अधिकार नही रहता है। यमराज के अधिकार की सीमा मे आकर उसके निर्णय के अनुसार व्यवहार करने को विवश होना ही 'यमराज की चुंगी भरना' है।

(२५५)

मीया तुम्ह सौं बोल्या बणि नहीं आवे।
हम मसकीन खुदाई बदे, तुम्हारा जस मनि भावै॥ टेक॥
अलह अवलि दीन का साहिब, जोर नहीं फुरमाया।
मुरिसद पीर तुम्हारै है को कहौ कहाँ थैं आया॥
रोजा करै निवाज गुजारै, कलमें भिसत न होई।
सतरि कावे इक दिल भीतरि, जे करि जानै कोई॥
खसम पिछांनि तरस करि जिय मै, माल मनीं करि फीकी।
आपा जानि सांई कूं जांनै, तब ह्वै भिस्त सरीकी॥
माटी एक भप धरि नांनां, सब मै ब्रह्म समानां।
कहै कबीर भिस्त छिटकाई, दोजग ही मन मानां॥

शब्दार्थ—मीया=मिया, मालिक, सम्मानित जन का बोधक (श्रीमन् की भांति)। मसकीन=मिस्कीन=दीन, अकिंचन। बदे—सेवक, दास। अवलि–सर्व प्रथम। फुरमाया=आज्ञा दी। मुरिसद=मुरशिद=सीधा मार्ग दिखाने वाला, गुरु। पीर=महात्मा, सिद्ध। कलमा=वह वाक्य जो मुसलमानो के धर्म-विश्वास का मूल मन्त्र है—ला इलाह इल्लिल्लाह, मुहम्मद, रसूलिल्लाह। भिसत=बहिश्त, स्वर्ग। सतरि=सत्तर। कावे=मक्का की एक चौकोर इमारत जिसकी नींव इब्राहीम की रखी हुई मानी जाती है। खसम=स्वामी। तरस=करुणा। माल मनी=माल-मन, वैभव के प्रति आसक्ति। फीकी=कम, मद। सरीकी=सम्मिलित शिरकतदार=शामिल होने का अधिकारी। छिटकाई=आसक्ति छोड दी। दोजख=नरक। मन माना=मन को आश्वस्त कर लिया है।

संदर्भ—कबीर इस पद मे विशेष रूप से मुसलमानो के बाह्याचार का विरोध करके एकत्व का प्रतिपादन करते है।

हृदय मे दया-करुणा का भाव जगा और सासारिक वैभव के प्रति अपनी आसक्ति को कम (तिरोहित) कर दे। अपने स्वरूप को पहिचान कर जब तू अपने स्वामी भगवान के स्वरूप को समझेगा, तब कही जाकर तू स्वर्ग की प्राप्ति का अधिकारी बनेगा। मिट्टी (उपादान कारण मूल प्रकृति) एक ही है और उसी से विभिन्न रूपात्मक योनियो रूपी वर्तनो का निर्माण हुआ है। इस प्रकार समस्त दृश्यमान जगत मे ब्रह्म समाया हुआ। कबीर कहते हैं कि (इसी विवेक के फलस्वरूप) मैंने स्वर्ग के प्रति आसक्ति को त्याग दिया हे और नरक के प्रति मन को आश्वस्त कर लिया है, अर्थात् सबको समान समझने के फल स्वरूप मुझको यदि नरक मे जाना पडेगा तो मुझे किसी प्रकार का दु ख नही होगा।

अलंकार—(i) छेकानुप्रास—अलह अवलि।

(ii) गूढोक्ति—मुरशिद आया।

विशेष—(i) जोर नही फुरमाया—सबके मूल स्थान भगवान से क्या पीर मुरशिद नही आये, जो वे उसी भगवान से आने वाले अन्य प्राणियो पर जोर-जबरदस्ती करने का उपदेश देते हैं ?

(ii) दो जग ही मन माना—इस पक्ति का अर्थ इस प्रकार भी किया जा सकता है—

रे मिया, तुमने जोर जुल्म और वाह्याडम्बरो मे विश्वास करके वास्तव मे स्वर्ग छोडकर नरक मे ही अपना मन लगा लिया है, और इस कारण तुमको नरक ही मिलेगा।

वैसे कबीरदास सदा यही कहते आए हैं कि मैं तो नरक मे भी ब्रह्म के आनन्द रूप का साक्षात्कार कर लूँगा। इस कारण मेरे लिए स्वर्ग-नरक समान हैं। ज्ञानोदय के फलस्वरूप मेरी भेद-बुद्धि समाप्त हो गई है—

अनजाने को नरक सरग है, जाने को कुछ नाहीं।
जेहि डर को सब लोग डरत हैं, सो डर हमरे नाहीं।

(iii) मुसलमान धर्म के वाह्याचारो का इतना सबल विरोध कबीर जैसे साहसी साधक ही कर सकते हैं। अन्यथा हिन्दुओ की तरह मुसलमानो के धार्मिक विश्वासो के विरुद्ध मुँह खोलना आसान नही है।

(iv) माटी एक ···समाना—एकेश्वरवाद एव अद्वैतवाद का सुन्दर समन्वय है।

(v) सतरि कावे इक दिल भीतरि—तुलना करे—

हमारें तीरथ कौन करे ?

मन मे गंगा मन मे जमुना भटकत कौन फिरे ? इत्यादि

तथा— दिल के आइने में है तस्वीरेयार।
जब जरा गरदन झुकाई देख ली।

(२५६)

अलह ल्यौ लांयें काहे न रहिये,
अह निसि केवल रांम नांम कहिये ।। टेक ।।
गुरमुखि जलमां ग्यांन मुखि छुरी, हुई हलाल पंचू पुरी ।।
मन मसीति मै किनहूँ न जांनां, पच पीर मलिम भगवांनां ।।
कहै कबीर मै हरि गुन गाऊ, हिंदू तुरक दोऊ समझाऊँ ।।

शब्दार्थ—ल्यौ=लौ, लगन । अह=दिन । हलाल=विहित, शरई रीति से पसुवध । कलमा=वह उक्ति जो मुसलमानो के धर्म-विश्वास का मूल मत्र है—ला इलाह इल्लिल्लाह, मुहम्मद रसूलल्लिलाह । मसीत=मस्जिद ।

सन्दर्भ—कबीरदास अन्तर्मुखी होने का उपदेश देते हैं ।

भावार्थ—हे भाई ! तुम भगवान मे लौ लगाकर क्यो नही रहते हो ? दिन रात केवल राम-नाम कहते रहो । गुरु के मुख से कलमा का उपदेश सुन कर तथा ज्ञान रूपी छुरी से पांचो इन्द्रियो के विषयो रूपी पशुओ का वध करके ईश्वरार्पण कर देना चाहिये । मन रूपी मस्जिद के भीतर झाँक कर किसी ने नही देखा है । वहाँ पर पच पीरो के स्वामी भगवान का स्थायी निवास है । कबीर कहते हैं कि मैं (बाह्याचारो को त्याग कर) भगवान का गुण-गान करता हूँ तथा हिन्दू मुसलमान दोनो को ऐसा ही करने को कहता हूँ ।

अलंकार—(i) गूढोक्ति—काहे न कहिए ।
(ii) रूपक—ग्यान मुखि छुरी, मनमसीति ।
(iii) रूपकातिशयोक्ति—पचूपुरी ।
(iv) छेकानुप्रास—पचू पुरी, पचपीर, मन-मसीति ।

विशेष—(i) कबीर बाह्याचारो को छोडकर सच्चे मन से भगवान को याद करने का उपदेश बार-बार देते हैं और आशा करते हैं कि हिन्दू-मुसलमान पारस्परिक भेद-भाव को भूल जायेंगे ।

हिन्दू-तुरक की एक राह है, सतगुरु इहै बताई ।
कहत कबीर सुनो, हो सन्तो ! राम न कहूँ खुदाई ।

(ii) इस पद में निश्चित रूप से मुस्लिम बाह्याचारो के प्रति विरोध व्यक्त किया है ।

(२५७)

रे दिल खोजि दिलहर खोजि, ना परि परेसांनी मांहि ।
महल माल अजीज औरति, कोई दस्तगीरी क्यूं नांहि ।।टेक।।
पीरां मुरीदां काजियां, मुलां अरू दरवेस ।
कहाँ थें तुम्ह किनि कीये, अकलि है सब नेस ।।
कुराना कतेबां अस पढ़ि पढ़ि, फिकरि या नही जाइ ।
टुक दम करारी जे करै, हाजिरां सूर खुदाइ ।।
दरोगां बकि बकि हूंहि खुसियाँ, बे अकलि बकंहि पुमांहि ।
इक साच खालिक म्यानैं, सो कछू सच सूरति मांहि ।।
अलह पाक तू, नापाक क्यू अब दूसर नांहीं कोइ ।
कबीर करम करीम का, करनी करै जांनैं सोइ ।।

शब्दार्थ—दिल हर=प्रियतम । सहर - शहर । माल=धन-दौलत । अजीज =अजीज, प्रियजन । दस्तगीरी=हाथ पकडने वाला, सहायक । पीरा=गुरु । मुरीदा=चेला । काजी=मुसलमान न्यायाधीश जो शरा के अनुसार मामलो का निर्णय करे, निकाह पढाने वाला मौलवी । मुला=मुल्ला, मसजिद मे रहने या नमाज पढाने वाला, मस्जिद, की रोटियाँ खानेवाला । अकलि है सब नेस (नेस्त ।, नेस्त= नष्ट, विवेक शून्यता । दरवेस=दरवेश, फकीर । कतेबाँ=किताबें । टुक =जरा, थोडा । दम करारी=दम का धैय, आत्म-नियन्त्रण । सूर=आनद । हाजिरा= उपस्थित, साक्षात्कार । दरोग = झूठा । हहि खुसिया = खुशी होते है । वेअकलि= मूर्ख । पुमाहि = प्रमत्त, गर्व करते है । सचु=सत्य । साचु=सत्यता । खलक= सृष्टि । खालिक=सृष्टि कर्त्ता । म्यानै=मे, मध्य । सैल=सकल, समस्त । सूरत= रूप । पाक=पवित्र । नापाक - अपवित्र । कर्म=करम दया । करीम =दयालु ।

संदर्भ—कबीरदास मुसलमानो के वाह्याचार का विरोध करते है और ब्रह्मवाद का प्रतिपादन करते हैं ।

भावार्थ - रे हृदय (मन), तू अपने आपको खोज और उसको खोज जो इस दिल मे रहता है । अर्थात् तू अपने प्रियतम को खोज । (व्यर्थ की) अन्य परेशानियो मे मत पडे । सहर, धन-दौलत, प्रियजन, पत्नी कोई भी तेरा सहायक नही है । हे पीरो (धर्म गुरुओ), चेलाओ, काजियो, मस्जिद की रोटियां खाने वाले मुल्लाओ तथा खुदा के नाम पर दर-दर भीख माँगने वाले फकीरो, तुमको कहाँ से और किसने वनाया है ? तुम्हारी सब अक्ल मारी गई है अर्थात् तुम्हारी सब बातें विवेक शून्य हैं । कुरान तथा अन्य धर्म ग्रन्थो को पढ पढ कर तुम्हारी चिन्ताएँ दूर नही हो सकती हैं । जो अपने ऊपर थोडा सा नियन्त्रण कर लेते है, उन्हे ईश्वरीय आह्लाद का साक्षात्कार हो जाता है । मिथ्या वातो अर्थात् शास्त्र की बातो को बक बक कर लोग प्रसन्न होते है । अज्ञानी व्यक्ति ही इस प्रकार की बाते करके गव करते हैं । जिस प्रकार 'सत्य' मे सत्यता निहित होती है, उसी प्रकार सृष्टि समाई हुई है और

वह (सृष्टि कर्त्ता) सृष्टि के समस्त रूपों (दृश्यमान जगत) मे व्याप्त है। यदि परमात्मा (अल्लाह) पवित्र है, तो तू (जीव) अपवित्र किस प्रकार हुआ ? अब तू समझ ले कि संसार मे अल्लाह (परम तत्त्व) के अतिरिक्त अन्य कुछ नही है। कबीरदास कहते हैं कि उस दयालु की जिस पर दया होती है वही उसकी लीला (करनी) के रहस्य को जान सकता है।

अलकार—(i) पुनरुक्ति प्रकाश—खोजि खोजि। पढि पढि। बकि बकि।

(ii) विशेषोक्ति—कुरानां ·· ··· नही जाइ।

(iii) दृष्टान्त—सचु·· ·····माहि।

(iv) सभग पद यमक—पाक नापाक।

(v) गूढोक्ति—तू नापाक क्यूँ।

(vi) अनुप्रास—करम करीम करनी करै।

विशेष—(i) वाह्याचार का विरोध है।

(ii) आत्म-बोध का उपदेश है।

(iii) शाकर अद्वैतवादी ब्रह्मवाद का प्रतिपादन है—सैल सूरति माहि—सर्वम् खल्विदम्ब्रह्म। अब दूसर नाही कोई—एकोऽह द्वितीयो नास्ति। जीवो ब्रह्मैव ना पर। अलह पाक तू नापाक क्यू—'अह ब्रह्मास्मि'। (ईश्वर अंश जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी)। इसी आधार पर सूफी धर्म ने भी अनहलक' की आवाज उठाई थी।

(iv) कर्म करीम का—जानै सोइ।

ज्ञानी भक्त की भाँति कबीरदास ज्ञान-प्राप्ति के लिए प्रभु के अनुग्रह पर अवलम्बित है।

तुलना कीजिए—

यह गुन साधन ते नहि होई। तुम्हरी कृपा पाउ कोइ कोई।
सोइ जानहि जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हहि होइ जाई।

तथा— हैं स्रुति विदित उपाय सकल सुर, केहि केहि दीन पियारे।
तुलसिदास यहि जीव मोह-रजु, जोई बांध्यो सोइ छोरै।

(गोस्वामी तुलसीदास)

तथा— अविगत गति जानी न परै।

× × ×

सूर पतित तरि जाइ छनक मे, प्रभु जो नेकु ढरै। —सूरदास

(२५८)

खालिक हरि कहीं दर हाल।
पजर जसि करद दुसमन, मुरद करि पैमाल ॥ टेक ॥
भिस्त हुसकी दोजगा, दूंदर दराज दिवाल।
पहनाम परदा ईत आतस, जहर जगम जाल ॥

हम रफत रहबरहु समां, मैं खुर्दा सुमां बिसियार ।
हम जिमां असमांन खालिक, गुंद मुसिकल कार ।।
असमान म्यांनै लहग दरिया, तहाँ गुसल करदा बूद ।
करि फिकर रह सालक जसम, जहा स तह्यां मौजूद ।।
हम चु बूंदनि बूद खालिक, गरक हम तुम पेस ।
कबीर पनह खुदाइ की, रह दिगर दावानेस ।।

शब्दार्थ– खालिक=सृष्टिकर्त्ता । दर हाल=इसी समय । पच=पाँच तन्मायाएँ (मूल पच महाभूतो का सूक्ष्म रूप) अथवा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ । रजसि=रजिश करके । मुरद=मुर्दा । मिस्त=वहिश्त=स्वर्ग । दोजगा=दोजख, नरक । दुद=द्वन्द्व=अशाति । ईत=ईति=दुख दुरापद । आतस=आतिश, अग्नि । जंगम=जन्तु । रफत=जाने वाले । खुर्दा=अत्यल्प । बिसिमार=महान । असमान=आसमान, ब्रह्मरध्र । दरिया=नदी । गुसल=स्नान । बूद=जानो । बूंदनि=जानना बूद=जानना है । गरक=गरक=तन्मय, लीन । पेस=पेश, सामने, समक्ष । पनह=शरण । दिगर=दीगर=दूसरा । दावा=अधिकार । नेस=नेस्त, नही है । पैमाल=पामाल, पैरो से कुचलना । दराज=लम्वी । आतस=आतिस, अग्नि, ताप । सुमो=तू । रहब्रर=मार्ग दर्शक । लहग=चर्ब्री । बूद अस्तित्व ।

संदर्भ – कवीर भगवान के प्रति अनन्य समर्पण की अभिव्यक्ति करते हैं ।

भावार्थ— सृष्टिकर्त्ता हर जगह मौजूद है । वह इस समय यहाँ भी है । हड्डियो के इस ढाँचे के अर्थात् इस असार शरीर ने मेरे साथ दुश्मन जैसा व्यवहार किया है और पैरो से कुचल कर मुझ को मुर्दा (मृतकतुल्य) बना दिया है । स्वर्ग और नरक उसी के है । यह ससार रूपी लम्ब्री दीवाल उसी की छाया है । समस्त भेदभाव, दुरापद, ताप, पशुओ के जहर आदि इस ससार रूपी जाल मे भरे पडे हैं । हम राहगीर हैं । तू हमारा रहनुमा (मार्गदर्शक) है । मैं अत्यन्त छोटा हूँ, तू अत्यन्त महान है । हम जमीन (नीचे) हैं । सृष्टिकर्त्ता ऊपर आसमान के समान हैं । दोनो को एक करना बडा ही कठिन काम है । आसमान मे चरवो की नदी वहती है और उसमे आत्म तत्त्व स्नान करता है अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र मे होकर अमृत झरता है और आत्मस्वरूप जीव उसका भोग करता है । इस शरीर द्वारा तू उस मालिक की चिन्ता कर और धर्म एव नीति का आचरण कर । उसका साक्षात्कार तुझको हर स्थान पर होगा । स्वय अपने को जानना तुझ सरजन हार को जान लेना है । हम तुम्हारे सम्मुख तुम्हारे ध्यान मे मग्न है ।

कवीर कहते हैं कि मैं भगवान की शरण मे हूं यहाँ कोई दूसरा दावेदार नही है ।

विशेष—(1) कवीर प्रभु के प्रति पूर्ण समर्पण भाव दिखाते हैं ।

(ii) हम रफत ˙ काल—तुलना कीजिए—

राम सो वड़ो है कौन मोसो कौन छोटो ।

राम सो खरो है कौन मोसो कौन खोटो।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(iii) लहग दरिया—ब्रह्माण्ड मे से स्रवित रस धारा को चर्वी का दरिया कहना युक्ति सगत ही है।

एव— हैं स्त्रुति विदित उपाय सकल सुर, केहि केहि दीन निहोरै।

(२५९)

अलह रांम जीऊँ तेरे नॉई,
बदे ऊपरि मिहर करौ मेरे सांई। टेक॥
क्या ले माटी भुंइ सूं मारै, क्या जल देह न्हवायें।
जोर करै मसकीन सतावै, गुन ही रहै छिपाये॥
क्या तु जू जप मजन कीये, क्या मसीति सिर नांयें।
रोजा करै निमाज गुजारै, क्या हज काबै जांयें॥
ब्राह्मण ग्यारसि करै चौवीसौं, काजी महरम जांन।
ग्यारह मास जुदे क्यू कीये, एकहि मांहि समांन॥
जौर खुदाइ मसीति वसत है, और मुलिक किस केरा।
तीरथ मूरति रांम निवासा, दुहु मै किनहू न हेरा॥
पूरिब दिसा हरी का वासा, पछिम अलह मुकांमा।
दिल ही खोजि दिलै दिल भींतरि, इहां रांम रहिमांनां॥
जेती औरति मरदां कहिये, सब मै रूप तुम्हारा।
कबीर पगुड़ा अलह रांम का, हरि गुर पीर हमारा॥

शब्दार्थ- नाईं=नाम पर। बदे=सेवक पर, दास पर। मिहर=मेहर बानी। साईं=स्वामी। मिट्टी=शरीर भु इ सू मारै=जमीन पर पटका जाए। जोर करै=जुल्म करता है। मसकीन=दीन, दुखी। मजन=मज्जन, शरीर की अन्तर्बाह्य शुद्धि के लिए मन्त्र पढ़ते हुए कुशादि से जल छिड़कना। मसीति=मस्जिद। हज=हज्ज, नियत काल पर काबे के दर्शन और प्रदक्षिण करना, मक्के की यात्रा। काबा=मक्के की एक चौकोर इमारत जिसकी नींव इब्राहीम की रखी हुई मानी जाती है। महरम - मुहर्रम मुसलमानी साल का पहला महीना जिसकी दसवीं तारीख को इमामहुसैन शहीद हुए थे। मुलिक=मुल्क, ससार। हेरा। पगुड़ा=दास सेवक।

परका जाए अथवा उसको पानी मे डुबा दिया जाए ? इस पंक्ति का अर्थ इस प्रकार भी किया जा सकता है कि उस व्यक्ति के शरीर पर किसी तीर्थ-स्थान की मिट्टी मलने से अथवा उसको तीर्थ-जल से स्नान कराने से क्या लाभ है ? ऐसे पाखण्डी एव अत्याचारी व्यक्ति को सम्बोधित करते हुए कबीर कहते है कि तुम्हारे वजू (जू--नमाज से पहले यथाविधि हाथ-पाँव और मुँह धोना)। जप मार्जन (जल छिडक कर पवित्र होना), से क्या लाभ है ? तुम मसजिद मे जाकर सिर झुकाते हो, इससे क्या लाभ है ? रोजा रखने, नमाज पढने, तथा हज एव काबे जाने (तीर्थाटन) से क्या लाभ है ? ब्राह्मण वर्ष की चौबीसो एकादशियो को उपवास रखता है और काजी मोहर्रम के पूरे महीने भर इमामहुसैन की शहादत के लिए शोक मनाता है। पर इनका क्या उपयोग है ? रमजान के महीने को छोडकर शेष ग्यारह महीनो को अलग क्यो कर दिया ? सभी महीने समान है—(सभी मे धार्मिक कृत्य करने चाहिए।) अगर खुदा केवल मस्जिद मे ही रहता है, तो शेष समस्त ससार किसका है ? हिन्दुओ के अनुसार तीर्थों मे और मूर्तियो मे भगवान (राम) का निवास है। परन्तु उसके दर्शन तो दो मे से किसी मे भी किसी ने नही किए हैं। हिन्दुओ के मतानुसार पूर्व दिशा मे भगवान का निवास है। मुसलमानो की राय मे पश्चिम मे अल्लाह का निवास-स्थान है। (इस प्रकार हिन्दू और मुसलमान दोनो ही भगवान को मानो सर्वव्यापी नही मानते हैं) हे मानव, तुम अपने हृदय को ही ढूँढो। वही तुमको राम और रहीम (ईश्वर और खुदा) दोनो के दर्शन हो जाएगे। कबीर कहते हैं कि हे प्रभु। ससार के जितने भी नारी-पुरुष (नर-मादा) हैं, उन सबके भीतर तुम्हारा स्वरूप विद्यमान है अथवा वे सब तुम्हारे ही अव्यक्त रूप के व्यक्त रूप हैं। (मैं तो राम ईश्वर और अल्लाह दोनो का ही दास हूँ। भगवान मेरे गुरु और पीर दोनों ही हैं।

अलकार—(i) गूढोक्ति-क्या ले सम्पूर्ण पद।

विशेष—(i) बाह्याचार की निरर्थकता एव राम रहीम का अभेद बताकर कबीर ने हिन्दू और मुसलमानो की एकता का प्रतिपादन किया है।

(ii) कबीर भगवान को सर्वव्यापी बताते हैं और इसी आधार पर प्रभु-भक्ति का निर्वाह करना चाहते हैं—

सो अनन्य गति जाकें मति न टरै हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप-स्वामि भगवंत।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(iii) क्या ले माटी मुँह सूँ मारै—भक्त जन तीर्थ की परिक्रमा 'लेट-लेट' कर भी लगाते हैं—इसको दडौती परिक्रमा कहते हैं। ऐसा करते हुए उनके शरीर मे जमीन की मिट्टी चिपक जाना स्वाभाविक है। सम्भवत, कबीर का सकेत इस ओर भी हो सकता है।

(२६०)

मै वड़ मै वड़ मै वड़ मांटी,
मण दसना जट का दस गांठी ॥ टेक ॥
मै बावा का जोध कहांऊ, अपणी मारी गींद चलांऊ ।
इनि अहकार घणें घर घाले, नाचत कूदत जमपुरि चाले ॥
कहै कबीर करता की बाजी, एक पलक मै राज बिराजी ।

शब्दार्थ— नाटका=नाज · टका । टका=रुपया (बगला प्रयोग) । जोध=योद्धा । गींद—गेंद । घणे—बहुत से । घाले—नष्ट किए । बाजी—खेल, लीला । बिराजी—राज्य रहित ।

संदर्भ—कबीर ससार की असारता का वर्णन करते है ।

भावार्थ— अहकारवश व्यक्ति कहने लगता है कि "मैं बड़ा हूँ, मैं बडा हूँ ।" परन्तु यह बड़प्पन मिट्टी (व्यर्थ, अत्यन्त अल्प मूल्य) है । दस मन अनाज एव गाठ मे दस रुपए होने के कारण होने वाले बडप्पन का आधार सर्वथा तुच्छ है । मैं बाबर का योद्धा हूँ अर्थात् गाँव के मुखिया का कृपापात्र हूँ और जो अपनी मनमानी करता हूँ । इस प्रकार के अहकार के फलस्वरूप अनेक घर (परिवार) नष्ट हो गये । ये अहकारी नाचते कूदते मर गए । कबीरदास कहते हैं कि यह सब उस सृष्टिकर्त्ता की लीला है । एक पल के भीतर वह राजा को बिना राज का कर देता है । इस पक्ति का अर्थ इस प्रकार भी किया जा सकता है— जब भगवान की बाजी पडती है, तब वह एक क्षण मे ही सब कुछ उलट-पुलट कर देता है ।

अलकार—(i) अनुप्रास— प्रथम पक्ति । घणे घर घाले ।

विशेष—(i) निर्वेद सचारी' भाव की व्यजना ।

(ii) मुहावरो का प्रयोग— (i) बड माटी (ii) बाबा का जोध । (iii) अपनी मारी गेंद चलाना । (iv) घर डालना ।

(२६१)

काहे बीहो मेरे साथी, हूँ हाथी हरि केरा ।
चोरासी लख जाके मुख मै, सो च्यंत करैगा मेरा ॥ टेक ॥
कहो कोन पिवै कहो कौंन गाजै, कहाँ थै पांणी निसरै ।
ऐसी कला अनत है जाकै, सो हम कौं क्यूं बिसरै ॥
जिनि ब्रह्मांड रच्यौ बहु रचना, बाव बरन ससि सूरा ।
पाइक पच पुहमि जाकै प्रकटै, सो क्यूं कहिये दूरा ॥
नैन नासिका जिनि हरि सिरजे दसन बसन बिधि काया ।
साधू जन कौ सो क्यूं बिसरै, ऐसा है राम राया ॥
को काहू का मरम न जाने, मैं सरनांगति तेरी ।
कहै कबीर बाप राम राया, हुरमति राखहु मेरी ॥

[illegible]

निसरै=निस्सृत होता है, बरसता पाइक=पावक। बाव=वायु। बरन=वरुण। पाइक=पाँच। प्रहमि=पृथ्वी। हुरमति=हुरमत, असमत, इज्जत।

भावार्थ— कबीर माया-मोह को सम्बोधित करते हुए कहते है कि "मेरे साथी, तुम मुझे क्यो सताते हो ? मैं तो भगवान का साथी हूँ। जिसके भीतर चौरासी लाख योनियाँ समाई हुई हैं। अर्थात् जन्म-मरण का सम्पूर्ण नरक जिसके सहारे चल रहा है, वही भगवान मेरी चिंता करेगा। कहो, समुद्र मे जल कौन भरता है ? बादलो के रूप मे गर्जना कौन करता है ? तथा यह वर्षा का जल कहाँ से वरसता है। अर्थात् वही सब कुछ करता है। जिस भगवान की ऐसी विशाल शक्ति है, वह हमको कैसे भूल जाएगा ? जिसने इस ब्रह्माड मे अनेक रचनाएँ की हैं, जिसने वायु, वरुण, चन्द्र और सूर्य को वनाया है, जिससे पाँचो अग्नियाँ और यह पृथ्वी प्रकट हुई हैं, उस भगवान को दूर कैसे कहा जा सकता है ? (क्योकि वह तो सर्वव्यापी एव सर्व नियता है।) जिस भगवान ने आँख, नाक, दाँत आदि अग, वस्त्र एव शरीर आदि बनाए हैं, वह भगवान साधु भक्तो को भला कैसे भुला सकता है ? भगवान राजाराम तो वडे ही उदार हैं। कोई किसी का रहस्य नही जानता है। मैं तो भगवान की शरण मे हूँ। कवीर कहते है कि हे पिता ! राजा राम, माया के इन चक्करो से मेरी इज्जत की रक्षा करो।

(1) पदमैत्री—साथी, हाथी। दसन बसन।

(11) गूढोत्तर—कहो कौन कहिए दूरा।

(111) वक्रोक्ति—साधूजन · बिसरै।

विशेष— (1) हाथी हरि केरा=मैं उनकी सवारी हूँ तथा उनकी प्रेरणा पर चलता हूँ। सत्य ही है। यह स्थूल शरीर 'आतम तत्व' का वाहन है।

(11) पच अग्नि—प्रकाश, उष्णता गरमी, पित्त एव जठराग्नि।

(111) भगवान की शरणागति एव उनके प्रति पूर्ण समर्पण भाव का चित्रण है।

(२६२)

राग सोरठि

हरि कौ नाँव न लेइ गँवारा,
क्या सोचै बारंबारा ॥ टेक ॥
पंच चोर गढ मंझा, गढ लूटैं दिवस र सझा ॥
जौ गढपति मुहकम होई, तौ लूटि न सकै कोई ॥
अँधियारै दीपक चहिये, तब बस्त अगोचर लहिये ॥
जब बस्त अगोचर पाई, तब दीपक रह्या समाई ॥
जौ दरसन देख्या चहिये, तौ दरपन मंजत रहिये ।
जब दरपन लागै काई, तब दरसन किया न जाई ॥
का पढ़िये का गुनियें, का बेद पुराना सुनियें ॥
पढ़े गुनें मति होई, मै सहजैं पाया सोई ॥

कहे कबीर मैं जांनां, मैं जांनां मन पतियानां ॥
पतियानां जौ न पतीजै, तौ अंधै कूं का कीजै ॥

शब्दार्थ—गँवारा=अज्ञानी, मूर्ख । पच चोर=पाँच विकार (काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर) । गढ=शरीर रूपी दुर्ग । मुहिकम=दृढ, वस्तु । मति=बुद्धि ।

संदर्भ—कबीरदास कहते है कि ज्ञान प्राप्ति के लिए मन की शुद्धि परम आवश्यक है ।

भावार्थ—हे मूर्ख जीव ! भगवान का नाम क्यो नही लेता है ? तू इस बारे मे बार-बार क्या सोचता है ? अथवा तू यह क्यो बार-बार सोचता है कि सासारिक चिताओ से मुक्त होने के लिए क्या करना चाहिए । इस शरीर-रूपी दुर्ग मे काम, क्रोध, लोभ, मद एव मत्सर रूपी पाँच चोर हैं । ये इसको दिन-रात लूट रहे है । अगर दुर्ग का स्वामी मजबूत हो, तो दुर्ग को कोई नही लूट सकता है । अभिप्राय यह है कि ये पच विकार जीव की चेतना एव स्व-स्वरूप-स्थिति की क्षमता को नष्ट कर रहे हैं । यदि जीव-चैतन्य अपने स्वरूप मे दृढता पूर्वक स्थित रहे, तो इसकी क्षमता को कौन नष्ट कर सकता है ? अविद्या रूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिए ज्ञान रूपी दीपक चाहिए । उसी के द्वारा अगोचर परम तत्व की प्राप्ति होती है । इस परम तत्त्व के साक्षात्कार मे यह ज्ञान रूपी दीपक भी इसी परम तत्व मे समाहित हो जाता है । अगर कोई उस परम तत्व का साक्षात्कार करना चाहता है, तो उसे अपने अन्त करण रूपी दर्पण को स्वच्छ बनाए रखना चाहिए । जब दर्पण के ऊपर मैल जम जाता है—जब अन्त.करण मलिन हो जाता है, तब उस परम तत्व का साक्षात्कार नही होता है । पढने और मनन (स्वाध्याय) करने से क्या होता है ? वेद-पुराण सुनने से क्या होता है ? पढने एव मनन करने से मतवाद रूपी अहकार उत्पन्न हो जाता है और तब परम तत्व का साक्षात्कार सम्भव नही होता है । उसको साक्षात्कार मुझको तो सहज भाव से हो गया है । अथवा यह कहिए कि जो ज्ञान शास्त्राध्ययन से होता है, वह मुझे सहज ही प्राप्त हो गया है । कबीर कहते है कि मैंने उस परम तत्व को जान लिया है और उस परम तत्व मे मेरी निष्ठा दृढ हो गई है । उस परम तत्व का ज्ञान प्राप्त होने पर उसके प्रति जिसके मन मे श्रद्धा-विश्वास दृढ नही होता है उस अज्ञानी का क्या किया जाए ?

(iii) मन चित बुद्धि एव अहकार के समुच्चय का नाम अन्त करण है ।
(iv) ज्ञान-दीपक—अह ब्रह्मास्मि की वृत्ति । तुलना कीजिए—

एहि बिधि लेसै दीप तेज रासि बिग्यान मय ।
जातहिं जासु समीप जरहिं मदादिक सलभ सब ।
सोहस्मि इति बृत्ति अखंडा । दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा ।
आतम अनुभव सुख सु प्रकासा । तब भवभूत भेद भ्रम नासा ।
प्रबल अविद्या कर परिवारा । मोह आदि तम मिटइ अवारा ।
तब सोइ बुद्धि पाइ उँजियारा उर गृँह बैठि ग्रंथि निरुआरा ।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(२६३)

अधे हरि बिन को तेरा,
कवन सूं कहत मेरी मेरा ।। टेक ।।
तजि कुलाक्रम अभिमांनां, झूठे भरमि कहा भुलांनां ।।
झूठे तन की कहा बड़ाई, जे निमष मांहि जरि जाई ।।
जब लग मनहिं बिकारा, तब लगि नही छूटै ससारा ।।
जब मन निरमल करि जांनां, तब निरमल माहि समानां ।।
ब्रह्म अगनि ब्रह्म सोई, अब हरि बिन और न कोई ।।
जब पाप पु नि भ्रम जारी, तब भयौ प्रकास मुरारी ।।
कहै कबीर हरि ऐसा, जहाँ जैसा तहाँ तैसा ।।
भूलै भरमि परै जिनि कोई, राजा राम करै सो होई ।।

शब्दार्थ—निमष=निमिष, पल ।

सन्दर्भ—कबीरदास ज्ञानी भक्त की भांति भगवान के प्रति अनन्यता का प्रतिपादन करते हैं।

भावार्थ—हे मूर्ख ! भगवान को छोड कर तेरा कौन है ? इस ससार मे तुम किसको अपना कह रहे हो ? उच्च कुल मे उत्पन्न होने का अभिमान छोड दो । इस कुलीनता के झूठे भ्रम मे व्यर्थ ही भूल रहे हो । उस नाशवान शरीर के प्रति आसक्ति क्या करना (यह आसक्ति व्यर्थ है) । जो एक क्षणभर मे जल कर नष्ट हो जाता है । जब तक मानव के मन मे विकार (काम, क्रोध, लोभ आदि) हैं, तब तक इस ससार (आवागमन एव उससे उत्पन्न कष्ट) से छुटकारा नही है । जब व्यक्ति विषय-वासनाओ एव विकारो को त्याग कर अपने मन को निर्मल कर लेता है, तब वह शुद्ध मन शुद्ध तत्व मे समा जाता है । जो ब्रह्म का ज्ञान कराने वाली ज्ञानाग्नि है वही वस्तुत ब्रह्म है । ज्ञान उत्पन्न होने पर ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कुछ रह ही नही जाता है । जब पाप-पुण्य (कर्म) का भ्रम नष्ट हो जाता है—अथवा जब व्यक्ति निष्पृह होकर कर्म करने लगता है, तब मात्र भगवान का साक्षात्कार कराने वाली ज्योति रह जाती है । कबीर कहते ह कि भगवान का

स्वरूप ऐसा है कि जो जैसा है उसको वह वैसा ही दिखाई देता है अर्थात् उसका स्वरूप अनिर्वचनीय है। व्यक्ति अपने चेतना विकास के अनुसार उसकी अनुभूति करता है। किसी को कर्त्तापन के भ्रम मे नही पडना चाहिए। समझ लेना चाहिए कि राजा राम जैसा करते है वैसा ही होता है अर्थात् मानव कुछ नही करता है, सब कुछ भगवान का ही किया हुआ होता है।

अलकार—(i) वक्रोक्ति अन्वे—मेरा।

(ii) गूढोक्ति—कहाँ भुलाना।

(iii) रूपक—ब्रह्म अग्नि।

विशेष—(i) जाति पाँति का विरोध है।

(ii) मन की शुद्धि का प्रतिपादन है।

(iii) अद्वैतवाद का प्रतिपादन किया गया है—जब मन . . . कोई। साथ ही ब्रह्म की अनिर्वचनीयता का प्रतिपादन किया गया है—'जहाँ जैसा तहाँ तैसा। कबीर ने अन्यत्र भी कहा है कि—ऐसा नही वैसा वो। मै किस विधि कहूँ कैसा लो।"

(iv) इस पद मे प्रधानत ज्ञान और भक्ति का प्रतिपादन है। कतिपय पंक्तियो मे सासारिक नैरात्म्यवाद की ओर भी सकेत किया गया है।

(२६४)

मन रे सरचौ न एकौ काजा,
तायै भज्यौ न जगपति राजा ॥ टेक ॥
वेद पुरांन सुमृत गुन पढि, पढ़ि पढ़ि गुनि मरम न पावा।
संध्या गाइत्री अरु षट करमां, तिन थें दूरि बतावा॥
बनखंडि जाई बहुत तप कीन्हां, कद मूल खनि खावा।
बिरह्म गियानी अधिक धियानी, जम के पटै लिखावा॥
रोजा किया निमाज गुजारी, बग दे लोग सुनावा।
हिरदै कपट मिलै क्यू साईं, क्या हज काबै जावा॥
पहरचौ काल सकल जग ऊपरि, माहि लिखे सब ग्यानी।
कहै कबीर ते भये षालसे, राम भगति जिनि जानी।

रहे तथा उनका मनन करते रहे, परन्तु उस परम तत्व के रहस्य को नही समझ सके। तुमने सध्या की, गायत्री मन्त्र का जप किया और शास्त्र विहित ब्राह्मणोचित छओ कर्म (अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह) किए। परन्तु यह परम तत्व इनसे भी परे बताया गया है। तुमने घर छोड कर वन मे जाकर कठोर तपस्या की, वहाँ तुम कदमूल-फल खोद कर खाते रहे। ब्रह्मज्ञानी बन कर तुमने अनेक प्रकार से ध्यान लगाया, परन्तु इन समस्त वाह्याचारो के फलस्वरूप तुम अपने कर्म वन्धन मे वृद्धि करते रहे और पाप-पुण्य का हिसाब रखने वाले यमराज के खाते को बढाते रहे। तुमने रोजा रखे नमाज पढी तथा जोर से अजान की आवाज भी लगाकर लोगो को सुनाई। परन्तु इन सबका भी कोई विशेष फल नही निकला। ठीक ही है। जब हृदय मे कपट भरा हुआ हो, तो भगवान कैसे मिल सकते हैं ? कपट पूर्ण हृदय लेकर काबा और हज जाने से क्या लाभ हो सकता है ? समस्त ससार के ऊपर काल का प्रभाव छाया हुआ है - जगत की सारी भूमि पर यमराज का पट्टा है। उसके अन्तर्गत समस्त ज्ञानी भी सम्मिलित हैं। कबीरदास कहते हैं कि जो राम के भक्त हैं, वे उस पट्टे से मुक्त हैं अर्थात् उनकी व्यवस्था स्वय भगवान करते हैं, उनकी जमीन पर यमराज का इजारा नही है।

अलंकार—(i) पुनरुक्ति प्रकाश—पढि पढि,
(ii) विशेषोक्ति—वेद पुरान न पावा,
(iii) छेकानुप्रास—खनिखावा जिनि जानी।
(iv) पदमैत्री—गियानी धियानी,
(v) वक्रोक्ति - मिलैं क्यूँ जावा।
(vi) मानवीकरण—काल का मूर्तीकरण।
(vii) रूपक—काल।

विशेष—(i) हिन्दुओ और मुसलमानो दोनो के वाह्याचारो का विरोध है।

(ii) कर्मरहित होना ही मोक्ष है।

(iii) सध्या—प्रात, दोपहर, या शाम का वह समय जब दिन के भागो का मेल होता है तथा इन समयो पर किये जाने वाले धार्मिक कृत्य।

(iv) गायत्री—वैदिक स्तोत्र जिसमे आठ आठ वर्णों के तीन चरण होते हैं, इसका उपदेश उपनयन सस्कार के अवसर पर द्विज वालक को दिया जाता है।

(v) काबा—मक्के की एक चौकोर इमारत जिसकी नीव इब्राहीम की रखी हुई मानी जाती है।

(vi) हज्ज - नियत काल पर काबे के दर्शन और प्रदक्षिणा करना—मक्के की यात्रा।

(vii) सब ज्ञानी—ब्रह्म ज्ञानी छोड कर अन्य सब प्रकार के ज्ञानियो से तात्पर्य है—बौद्धिक ज्ञानी, ज्ञान के अहकारी इत्यादि।

(२६५)

मन रे जब तै राम कह्यौ,
पीछै कहिबे कौ कछू न रह्यौ ।। टेक ।।
का जोग जगि तप दांनां, जौ लै रांम नांम नहीं जांनां ।।
कांम क्रोध दोऊ भारे, ताथै गुरु प्रसादि सब जारे ।।
कहै कबीर भ्रम नासी, राजा रांम मिले अविनासी ।।

सन्दर्भ—कबीर राम-नाम की महिमा का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—रे मन, जब से तूने राम नाम कहना आरम्भ कर दिया है उसके बाद अन्य कुछ कहने के लिए रह ही नही गया है। (उसी मे सब कुछ कह दिया है।) यदि राम के नाम का महत्त्व न जाना, तो योग, जप, तप तथा दान करने से क्या लाभ है ? काम और क्रोध दोनो अत्यन्त प्रबल होते हैं। इसलिए मैंने गुरू की कृपा से उन्हे नष्ट कर दिया है। कबीरदास कहते हैं कि काम क्रोध के समाप्त हो जाने के फलस्वरूप मेरे समस्त भ्रमो का नाश हो गया है और अब मुझे अविनाशी भगवान राम की प्राप्ति हो गई है।

विशेष—जब तक 'काम' है, तब तक विकार है। जब तक विकार हैं तब तक मोह एव भ्रम का रहना स्वाभाविक ही है। यही माया का प्रपच है। समभाव के लिए देखे—

ध्यायतो विषयान्प्र स सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्सजायते काम कामात्क्रोधोऽभिजायते ।
क्रोधाद्भवति संमोह समोहात्स्मृतिविभ्रम ।
स्मृतिभ्र शाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।
रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ।
(श्रीमद्भगद्गीता—२/६२—६४)

(२६६)

रांम राइ सो गति भई हंमारी,
मो पै छूटत नही ससारी ।। टेक ।।
यू पखी उड़ि जाइ आकासां, आस रही मन मांही ।
छूटी न आस टूटचौ नही फंधा, उडिबौ लागा कांही ।।
जो सुख करत होत दुख तेई, कहत न कछू बनि आवै ।
कुंजर ज्यूं कसतूरी का मृग, आपै आप बँधावै ।।
कहै कबीर नहीं बस मेरा, सुनिये देव मुरारी ।
इत भैभीत डरौं जम दूतनि, आये सरनि तुम्हारीं ।।

शब्दार्थ—लागो काही=क्या लाभ ?

संदर्भ—कबीर दु ख-निवृत्ति हेतु भगवान की शरण को एक मात्र अवलम्बन मानते हैं।

भावार्थ—रे राजा राम ! मुझसे ससार का मोह छोडते नही बनता है। मेरी भी हालत उस पक्षी की तरह हो गई है जो आकाश मे ऊचा उड तो जाता है परन्तु भोजन-वासना के कारण उसका मन पृथ्वी से बँधा रहता है। मन से वासना जाती नही है। इस कारण मोह का बन्धन टूटता नही है। तब आकाश मे उडने से—ज्ञान-ध्यान से क्या लाभ है ? मैं जो काम सुख-प्राप्ति के लिए करता हू, वे दु ख के हेतु बन जाते हैं। जैसे हाथी हथिनी के प्रति मोह के कारण अपने आपको बँधा देता है तथा कस्तूरी-मृग सुगन्ध की वासना के वशीभूत होकर इधर-उधर भटकता रहता है, वैसे ही जीव भी मोह एव वासनाओ के कारण अपने आपको सासारिक प्रपचो मे फँसा देता है तथा अपनी वासनाओ के वशीभूत होकर चारो ओर भटकता फिरता है। कबीरदास कहते हैं कि हे मुरारी। मेरी प्रार्थना सुनो। सासारिक वासनाओ पर मेरा कोई वश नही चल रहा है। मैं सासारिक बन्धनो से भयभीत हू तथा यम के दूतो से डरा हुआ हूँ। इसलिए तुम्हारी शरण मे आया हू।

अलंकार- (i) उदाहरण—सोगति मनमाही।
(ii) अन्योन्य—छूटी न आस फदा।
(iii) गूढोक्ति—लागौ काही।
(iv) विरोधाभास—जो सुख···· दुख तेई।
(v) सम्बन्धातिशयोक्ति—कहत न···· आवै।
(vi) उपमा—कु जर ज्यू कस्तूरी का मृग।

(२६७)

**रांम राइ तूं ऐसा अनभूत अनूपम, तेरी अनभै थैं निस्तरिये।
जे तुम्ह कृपा करौ जगजीवन, तौ कतहू न भूलि न परिये॥ टेक॥
हरि पद दुरलभ अगम अगोचर, कथिया गुर गमि विचारा।
जा कारंनि हम ढूढत फिरते, आथि भर्‌यो संसारा॥
प्रगटी जोति कपाट खोलि दिये, दगधे जम दुख द्वारा।
प्रगटे विस्वनाथ जगजीवन, मैं पाये करत बिचारा॥
देख्यत एक अनेक भाव है, लेखत जात अजाती।
बिह कौं देव तबि ढूंढत फिरते, मंडप पूजा पाती॥
कहै कबीर करुणांमय किया, देरी गलियां बहु विस्तारा।
रांम कै नांव परंम पद पाया, छूटै विघन विकारा॥**

शब्दार्थ—अनभै=अनुभूति। गमि=अनुभूति द्वारा प्राप्ति। आथि=व्याप्त। जात=जन्मा। अजाती=अजन्मा। बिह=उस। तब=पहले। गलिया=विभिन्न मत-पथ।

संदर्भ—कबीरदास मत-पथों की व्यर्थता की ओर संकेत करके राम भक्ति का प्रतिपादन करते है।

भावार्थ—रे मेरे स्वामी राम, आप ऐसे साक्षात् अनुभूतिस्वरूप एव अनुपम हो कि तेरी अनुभूति मात्र से भवसागर पार किया जाता है। हे जगत् के प्राण, यदि तुम कृपा करते रहो तो कही भी भूलकर भी जीव माया के वन्धन मे नही पडता है। भगवान का स्वरूप अत्यन्त दुर्लभ दुष्प्राप्य एव इन्द्रियातीत है। गुरु ने अपनी अनुभूति से प्राप्त ज्ञान के आधार पर यह विचार प्रकट किया है। जिस परम तत्त्व को हम ढूँढते फिरते हैं, वह सम्पूर्ण ससार मे व्याप्त है। गुरु के उपदेश द्वारा मेरे हृदय मे जो ज्ञान ज्योति प्रकट हुई है, उसके द्वारा मेरे अन्त करण के किवाड खुल गए है आन्तरिक चक्षु खुल गए हैं और उसके द्वारा यम के कष्ट-कर्मफल के बन्धन समाप्त हो गए है। अब जगत के प्राण विश्वनाथ प्रकट हो गए है। मैने विवेक पूर्वक चिन्तन करते हुए उनको प्राप्त किया है। वही एक परम तत्त्व अनेक भावो (रूपो) मे देखा जाता है। वह अजन्मा भी जन्मा हुआ सा वर्णित है। उसी देवता को हम पहले मडप मे फूल पत्ती की पूजा के द्वारा प्राप्त करना चाहते थे। कबीर कहते है कि हे करुणामय! तेरे नाम पर जो अनेक मत-पथ प्रचलित हैं, मैं उनमे भटकता रहा और इसी कारण तेरे साक्षात्कार मे मुझको इतनी देर हो गई। राम के नाम के द्वारा मैने परम पद की प्राप्ति कर ली है और मेरे समस्त विघ्न (कचन कामिनी आदि) एव विकार (काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर आदि) दूर हो गए है।

अलंकार— (i) अनुप्रास - अनभूत अनुपम अनभै, अगम अगोचर। दगधे दुख द्वारा। परम पद पाया।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—कपाट।
(iii) विरोधाभास- जात्य अजाती।

विशेष – (i) वाह्याचार की निरर्थकता की ओर सकेत है। तुलना करें—

तुलसिदास व्रत दान ग्यान तप, सुद्धिहेतु स्रुतिगावै।
राम-चरन अनुराग-नीर-बिनु मल अति नास न पावै।

एव— नाहिन आवत आन भरोसो।

× × ×

बहुमत सुनि बहु पंथ पुराननि जहाँ तहाँ झगरो सो।
गुरु कह्यो राम-भजन नीको मोहिं लागत राजडगरो सो।

× × ×

राम नाम बोहित भव-सागर चाहै तरन तरोसो।

—गोस्वामी तुलसीदास

(२६८)

रांम राइ को ऐसा बैरागी,
हरि भजि मगन रहै विष त्यागी ॥ टेक ॥

ब्रह्मा एक जिनि सिष्टि उपाई, नांव कुलाल धराया ।
बहु बिधि भांडै उनही घड़िया, प्रभू का अन्त न पावा ।।
तरबर एक नांनां बिधि फलिया, ताकै मूल न साखा ।
भौजलि भूलि रह्या रे प्रांणीं, सौ फल कदे न चाखा ।।
कहै कबीर गुर बचन हेत करि, और न दुनियां आथी ।
माटी का तन मांटी मिलि है, सबद गुरू का साथी ।।

शब्दार्थ—कुलाल=कुम्हार । भाडै=वर्त्तन । घडिये=गढ़े, वनाए । भौजलि=भव-जल, ससार-रूपी जल । कदे=कभी । आथी=अस्तित्व वाली ।

संदर्भ—कवीर ससार की निरर्थकता तथा गुरु की महिमा का प्रतिपादन करते हैं।

भावार्थ—हे राम-ऐसा वैरागी बहुत कठिनाई से मिलता है जो विपयो को छोडकर भगवान के भजन मे मग्न रहे। एक ब्रह्मा हुए जिन्होने सृष्टि उत्पन्न की और अपने आपको कुम्हार कहलवाया। उन्होने अनेक शरीर रूपी वर्त्तनो को बनाया, परन्तु वह भी भगवान के वास्तविक स्वरूप को नही जान सके। ससार-रूपी एक वृक्ष मे अनेक प्रकार की विपय-वासनाओ के फल लगे हैं। इस वृक्ष की न जड है और न उसके शाखाएँ ही हैं। यह प्राणी ससार के इन फल रूपी विपयो की मृग तृष्णा के जल मे अपने वास्तविक स्वरूप एव वास्तविक लक्ष्य को भूला हुआ है। विषय रूपी ये फल उसको खाने के लिए कभी नहीं प्राप्त होते है अर्थात् वह विपयो के द्वारा सच्चे सुख की प्राप्ति कभी नही कर पाता है। कवीरदास कहते हैं कि गुरु के वचनो पर विश्वास करो। शेप ससार अस्तित्वहीन (मिथ्या) है। मिट्टी का यह शरीर मिट्टी मे ही मिल जाएगा। केवल गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान ही हमारा सच्चा साथी है।

अलंकार—(i) वक्रोक्ति—को ऐसा वैरागी।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—कुलाल, भाडे, तरवर।
(iii) निदर्शना—भौजल ... चाखा।
(iv) विभावना—तरवर एक ... साखा।
(v) रूपक—भौजल।

विशेष—(i) निर्वेद सचारी भाव की व्यजना है।
(ii) तुलना कीजिए—
जगु देखन तुम पेखन हारे। विधि हरि सभु नचावन बारे।
तेउ न जानइ मर्म तुम्हारा। और तुम्हे को जाननि हारा।

(२६९)

नैक निहारि हो माया बीनती करै,
दीन बचन बोलै कर जोरे, फुनि फुनि पाइ परै ।। टेक ।।

कनक लेहु जेहु जेता मनि भावै, कांमनि लेहु मन हरनीं ।
पुत्र लेहु विद्या अधिकारी, राज लेहु सब धरनीं ।।
अठि सिधि लेहु तुम्ह हरि के जनां, नवै निधि हैं तुम्ह आगे ।
सुर नर सकल भवन के भूपति, तेऊ लहैं न मांगे ।।
तै पापणी सबै संघारे, काकौ काज संवारचौ ।
जिनि जिनि सग कियौ है तेरौ, को येसासि न मारचौ ।।
दास कबीर रांम कै सरनैं, छाडी झूठी माया ।
गुर प्रसाद साध की संगति, तहां परम पद पाया ।।

शब्दार्थ— फुनि फुनि=पुनः पुनः, बार बार । कनक=स्वण । कामनि=कामिनी स्त्री । ये सासि=विश्वास ।

सन्दर्भ— कबीरदास ज्ञान दशा का वर्णन करते है ।

भावार्थ—माया भगवान के भक्तो से प्रार्थना करती है, अत्यन्त दीन वचन बोलती है और बार-बार पैर पड़ती हुई कहती है कि हे हरि भक्तो ! जरा मेरी ओर कृपा की दृष्टि कर दो । जैसा और जितना सुवर्ण चाहिए ले लो, मन-भावनी और मन-हरण करने वाली कामिनी स्त्री ले लो, तुम विद्वान पुत्र लो, सम्पूर्ण पृथ्वी का राज्य ले लो । आठो सिद्धियाँ और नव निधियाँ ले लो । हे हरि के भक्तो जिन वैभवो और सिद्धियो को देवता, मनुष्य एव सम्पूर्ण पृथ्वी के राजा मागने पर भी प्राप्त नही कर पाते हैं, वे सब तुम्हारे समक्ष तुम्हारी सेवा मे प्रस्तुत हैं । भक्त जन उत्तर देते हुए कहते हैं कि हे पापिन तूने सबको नष्ट किया है । क्या तूने आज तक किसी का काम बनाया है ? जिन-जिन लोगों ने विश्वास करके तेरा साथ किया है उन सबको तूने विश्वासघात करके मारा ।" भक्त कबीर का कहना है कि वह तो भगवान राम की शरण मे है । उन्होने झूठी माया को त्याग दिया है । गुरु की कृपा और साधु जनो की सगति के द्वारा कबीर ने परम पद प्राप्त कर लिया है ।

अलंकार—(i) गूढोत्तर— पूरा पद ।
(ii) पुनरुक्ति प्रकाश—पुनि-पुनि ।
(iii) मानवीकरण—माया ।
(iv) पदमैत्री—लेहु जेहु लेहु ।
(v) विशेषोक्ति की व्यजना—लहै न माजै ।

विशेष—(i) प्रश्नोत्तर शैली मे माया और भक्ति के पारस्परिक सम्बन्ध का सुन्दर निरूपण है । इसमे उपनिषद् का प्रभाव स्पष्ट है ।

(ii) कबीर बताते हैं कि माया ज्ञान प्राप्ति की अन्तिम अवस्था तक प्रलोभन देकर साधक को पथ भ्रष्ट करना चाहती है । इसी से तो कहते हैं कि सिद्धि के प्रत्येक फूल के पीछे वासना का सर्प छिपा रहता है । वह जाने कब सिर निकाल कर काट ले । इसी कारण साधक को अन्त समय तक सावधान रहने का उपदेश दिया जाता है ।

(iii) माया वीनती करै—समभाव के लिए देखें—

भागती फिरती थी दुनिया जब तलब करते थे हम।
अब जो नफरत हमने की, वह खुद बखुद आने को है।

(iv) आठ सिद्धियां—योग सिद्धि से मिलने वाली आठ सिद्धियाँ या अलौकिक शक्तियाँ— अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व।

(v) नौ निधियाँ—कुवेर की नौ निधियाँ—पद्म, महापद्म, शख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील, और खर्व।

(vi) कबीरदास माया के प्रति सदा सावधान रहने का उपदेश बराबर देते आए हैं। यथा—

सुवटा ! डरपत रहु मेरे भाई।
× × ×
या मजारी मुगध न मानै, सब दुनियाँ डहकायी।
× × ×
कहत कबीर, सुनहु रे सुवटा ! उबरै हरि-सरनाई।

कबीर ऐसे स्थलो पर ज्ञानी भक्त के रूप मे उभर कर एकदम सामने आ जाते हैं।

(२७०)

तुम्ह घरि जाहु हंमारी बहनां,
बिष लागै तुम्हारे नैनां ।। टेक ।।
अंजन छाडि निरंजन राते, नां किसही का देनां ।
बलि जांउ ताकी जिनि तुम्ह पठई, एक माइ एक बहनां ।।
राती खांडी देख कबीरा, देखि हमारा सिंगारौ ।
सरग लोक थै हम चलि आई, करन कबीर भरतारौ ।।
सर्ग लोक मै क्या दुख पडिया, तुम्ह आई कलि मांही ।
जाति जुलाहा नाम कबीरा, अजहू पतीजौ नांहीं ।।
तहां जाहु जहां पाट पटबर, अगर चंदन घसि लीनां ।
आइ हमारे कहा करौगी, हम तौ जाति कमींनां ।।
जिनि हम साजे साज्य निवाजे, बांधे काचै धागै ।
जे तुम्ह जतन करौ बहुतेरा, पांणीं, आगि न लागै ।।
साहिब मेरा लेखा मांगै, लेखा क्यू करि दीजै ।
जे तुम्ह जतन करौ बहुतेरा, तौ पांहण नीर न भीजै ।
जाकी मैं मछी सो मेरा मछा, सो मेरा रखवालू ।
टुक एक तुम्हारे हाथ लगाऊं, तौ राजा रांम रिसालू ।।
जाति जुलाहा नाम कबीरा, बनि बनि फिरौं उदासी ।
आसि पासि तुम्ह फिरि फिरि वैसो, एक माइ एक मासी ।।

शब्दार्थ— विष=काम वासना का जहर। अजन=माया, विषयासक्ति। राती=प्रेमिका। खाडी=खडी हूँ। अथवा खाडी का अर्थ रमणी। पतीजो विश्वास। पटबर=रेशमी वस्त्र। पाट=रेशमी वस्त्र। रिसालू=अप्रसन्न हो जाएगा।

सन्दर्भ— कवीर माया को दुत्कारते है।

भावार्थ—कबीर माया को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि, रे बहिन, तुम अपने घर जाओ। तुम्हारे नेत्र मुझे जहर मालूम होते हैं (अर्थात् तुम्हारी ओर देखते हुए मुझे डर लगता है)। मैंने तो सासारिकता का त्याग करके माया से रहित निरजन परमतत्त्व के प्रति अनुराग कर लिया है। अव मुझे किसी से कुछ लेना-देना नही है। मैं तो उसकी सूझ-वूझ पर वलिहारी जाता हूँ जिसने तुमको मुझे अपनी ओर आकर्पित करने के लिए भेजा है। तुम तो मेरी माता और बहिन के समान हो। (शरीर को वनाने वाली होने के कारण माया जीव की माता है तथा निर्माता ईश्वर की पुत्री होने के कारण माया जीव की वहिन हे।" माया कवीर को उत्तर देती हुई कहती है कि, 'हे कबीर देखो तो सही! मैं तुम पर आसक्त नारी की भाँति खडी हूँ। तुम मेरे शृगार की ओर तो देखो मैं कबीर को पति रूप मे वरण करने के लिए स्वर्ग लोक से चलकर यहाँ आई हूँ।" कबीर कहते हैं "वहाँ स्वर्ग लोक मे तुम्हारे ऊपर ऐसी क्या विपत्ति आ पडी जो तुम यहाँ मृत्यु लोक मे आ गई हो। मेरे पास क्या रखा है? मैं जाति का जुलाहा हूँ। मेरा नाम कबीर (बुजुर्ग बड्ढा) है। अब तो तुमको मेरी तुच्छता एव असमर्थता पर विश्वास हो जाना चाहिए। तुम उनके पास जाओ जो रेशमी वस्त्र धारण करते हैं और अगर तथा घिसे हुए चन्दन का लेप करते है। हमारे यहाँ आकर तुम क्या करोगी? हम तो एक बहुत ही निम्न जाति मे उत्पन्न जुलाहे हैं। जिन भगवान ने हमको वनाया है और इस सुन्दर स्वरूप द्वारा सजाया है उन्होने मुझको अपने प्रेम के डोरे मे बाध लिया है। तुम कितना भी प्रयत्न करो, परन्तु मेरे मन मे तुम्हारे प्रति आसक्ति उत्पन्न नही होगी। पानी में आग नही लग सकती है? मेरा स्वामी जब मुझ से मेरे कार्यों का हिसाव-किताव मागेगा, तव मैं उनको क्या हिसाव दे सकूँगा। मुझे आकर्षित करने के लिए कुछ भी करो, परन्तु मैं तुम्हारे प्रति कभी भी आकर्पित नही हो सकूँगा, क्योंकि पानी के द्वारा पत्थर कभी भी गीला नही हो सकता है। मैं भगवान की मछली हूँ, भगवान ही मुझको पकडने वाला मछवा है और वह मेरा रक्षक भी है। अगर मैं रच मात्र भी तुम्हारा स्पर्श कर लूँ तो राजा राम मुझ से अप्रसन्न हो जाएँगे। कवीर कहते हैं कि मैं जाति का जुलाहा हूँ। मेरा नाम कवीर है। मैं ससार से विमुख होकर जगलो मे मारा-मारा घूमता हूँ। (अर्थात् जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे विषयो से उदासीन होकर घूम रहा हूँ। तुम आस-पास से हटकर दूर बैठो। एक तो तुम मेरी माता (शरीर के नाते) हो और ऊपर मे सगी माता के समान होने के कारण मेरी मौसी हो।

अलंकार—(1) पद मैत्री—अजन निरजन।

(ii) रूपकातिशयोक्ति —विष ।
(iii) पुनरुक्ति प्रकाश—बनि बनि ।
(iv) निदर्शना—पानी आगि न लागै ।
(v) दृष्टान्त—जे तुम्ह ' भीजै ।

विशेष—(1) इस पद पर उपनिषद की प्रश्नोत्तर शैली के द्वारा ज्ञान तत्त्व का प्रतिपादन है ।

(ii) इसमे कबीर के चरित्र की शुद्धि एव दृढता व्यञ्जित हैं ।

(iii) ना किसी का देना समभाव देखें—

काहू की बेटी सो बेटा न ब्याहब काहू की जाति बिगारौं न सोऊ ।
माँगि कै खैबो मसीत को सोइबौ, लेबे को एक न देबे को दोऊ ।
(गोस्वामी तुलसीदास)

(२७१)

ताकूं रे कहा कीजै भाई,
तजि अमृत बिषै सूं ल्यो लाई ।। टेक ।।
बिष सग्रह कहा सुख पाया,
रचक सुख कौं जनम गँवाया ।।
मन बरजै चित कह्यौ न करई,
सकति सनेह दीपक मै परई ।।
कहति कबीर मोहि भगति उमाहा,
कृत करणीं जाति भया जुलाहा ।।

शब्दार्थ—सकति = आसक्ति ।

सन्दर्भ कबीरदास कहते है कि आसक्ति के वशीभूत जीव अपना जीवन नष्ट कर देता है ।

भावार्थ—उस व्यक्ति के लिए क्या किया जाए अथवा उसको किस प्रकार समझाया जाए, जो राम-भक्ति रूपी अमृत को छोड कर विषयासक्ति रूपी विषय के प्रति आकर्षित रहता है ? जीव को इन्द्रिय भोगो के सग्रह से क्या सुख मिल सकता है ? ऐसा व्यक्ति जरा से क्षणिक सुख के लिए अपने सम्पूर्ण जीवन को नष्ट कर देता है । मन (विवेक बुद्धि) के मना करने पर भी उसका प्रवृत्यात्मक चित्त नही मानता है और वह आसक्ति के वशीभूत होकर विषयरूपी दीपक मे गिर जाता है । कबीर कहते है कि मेरे हृदय मे भक्ति का उत्साह जाग्रत हो गया है । जाति का जुलाहा मैं अपने कर्मों के द्वारा कृत-कार्य हो गया हूँ । अर्थात्, मैं जुलाहा जैसी निम्न जाति मे भले ही उत्पन्न हुआ, परन्तु भक्तिपूर्ण आचरण करके मैंने अपना जीवन सार्थक कर लिया है ।

अलकार—(i)गूढोक्ति— ताकू भाई, विष पाया ।
(ii) विशेषोक्ति की व्यजना—मन··· करई ।

(iii) रूपकातिशयोक्ति—तजि अमृत····· लाई ।

(iv) रूपक—सकति सनेह दीपक ।

विशेष—(i) जातिवाद की निरर्थकता का प्रतिपादन है । कबीर बार-बार यही कहते हैं कि—

जागति पाँति पूछै नहि कोई । हरि कहँ भजै सो हरि का होई ।

वह तो अन्यत्र भी कह चुके हैं कि—

गुरु प्रसाद साधु की सगति जग जीतै जाय जुलाहा ।

(ii) मन बरजै · करई—इस पद मे कबीर ने व्यक्ति के अन्तर मे होने वाले सघर्ष की ओर बडी ही कुशलता के साथ सकेत किया है । निश्चयात्मकता बुद्धि सन्मार्ग का निर्धारण करती है, परन्तु प्रवृत्यात्मक मन उस ओर नही जाता है । फलत हमारे बुद्धि जगत एव भाव-जगत के मध्य—हमारी कथनी और करनी के मध्य सदैव सघर्ष चलता रहता है । हम सव प्रायः सोचते ठीक है, परन्तु अपनी विषयासक्ति के प्रबल होने के कारण तदनुसार आचरण नही कर पाते हैं । इसी कारण अपने जीवन और पुण्य-क्षेत्र को क्षीण करते रहते है ।

(२७२)

रे सुख इब मोहि बिष भरी लागा,
इनि सुख डहके मोटे मोटे छत्रपति राजा ।। टेक ।।
उपजै बिनसै जाइ बिलाई, सपति काहू कै सगि न जाई ।।
धन जोबन गरब्यौ ससारा, यहु तन जरि बरि ह्वै है छारा ।
चरन कवल मन राखि ले धीरा, रांम रमत सुख कहै कबीरा ।।

शब्दार्थ—इव=अब । डहके=डहके=धोखा खाया । बिनसै=नष्ट होता है । बिलाई=विलीन होता है । कवल=कमल । मोटे=बडे । मत=मति, बुद्धि ।

संदर्भ—कबीर का साधक जीवात्मा अपने मन को सम्बोधित करके कहता है कि राम भक्ति मे ही वास्तविक आनन्द है ।

भावार्थ रे मन ! सासारिक सुख अब मुझे जहर से भरा हुआ लगता है । इन इन्द्रिय सुखो के द्वारा बडे-बडे छत्रपति राजाओ ने धोखा गया है अथवा वे इनके द्वारा ठगे गए हैं । ये सासारिक सुख-सम्पति उत्पन्न होती है, क्षीण होती है और अन्तत सर्वथा नष्ट हो जाती है । यह सम्पत्ति किसी के साथ नही जाती है । धन एव यौवन के मद मे ससार के समस्त प्राणी गर्वित रहते हैं । उन्हे समझ लेना चाहिए कि यह (पंचभौतिक) शरीर जल-वल कर राख हो जाएगा । कबीरदास कहते हैं कि हे जीव, तू अपनी बुद्धि को स्थिर करके भगवान के चरणारविंद मे लगा दे । राम मे अनुरक्त होने मे ही वास्तविक सुख की प्राप्ति होती है ।

अलंकार—(i) पुनरुक्ति प्रकाश—मोटे-मोटे ।

(ii) पदमैत्री—जरि-बरि ।

(iii) रूपक—चरन कवल ।

(iv) छेकानुप्रास—राम रमत।

विशेष—निर्वेद एव वैराग्य की व्यजना है।

(२७३)

इब न रहूं माटी के घर मैं,
इब मैं जाइ रहू मिलि हरि मैं ॥ टेक ॥
छिनहर घर अरु झिरहर टाटी, घन गरजत कंपै मेरी छाती ॥
दसवै द्वारि लागि गई तारी, दूरि गवन आवन भयौ भारी ॥
चहूँ दिसि बैठे चारि पहरिया, जागत मुसि गये मोर नगरिया ॥
कहै कबीर सुनहु रे लोई, भांनड़ घड़ण सवारण सोई ॥

शब्दार्थ माटी का घर=पचभौतिक जगत। छिनहर=जीर्ण=टूटा फूटा। झिरहर—झिरीवाला, सूराखो वाला। दसवाँ द्वार—ब्रह्मरन्ध्र। घन—बादल, काल। तारी—ताटिका। गवन—अबन—जीवन-मरण। चारि—अहँकार चतुष्टय, मन, चित्त बुद्धि अहकार। मुसि गये—नष्ट-भ्रष्ट कर गये। भानण—भजन करने वाला। घड़ण—गढने वाला, बनाने वाला। सवारण—सवारने वाला अर्थात् पालन (रक्षा) करने वाला।

संदर्भ—कबीरदास सासारिकता की निस्सारता का प्रतिपादन करते हुए प्रभु भक्ति का सकल्प करते हैं।

भावार्थ—अव मैं इस मिट्टी के घर अर्थात् मृण्मय शरीर के प्रति आसक्त नही रहूँगा। अब मैं भगवान मे तदाकार हो जाऊँगा। वासनाओ का भडार यह शरीर रूपी घर अत्यन्त जीर्ण है और इसके ऊपर जो वासनाओ का आवरण है, वह भी छेदो वाला है अर्थात् वासनाएँ भी मेरी रक्षा नही कर सकती हैं। काल रूपी वादल जव गरजते हैं अर्थात् जब मुझे मृत्यु का स्मरण आ जाता है, तव मेरा हृदय काँपने लगता है। गुरु की कृपा से माटिका लग गई है। इससे ब्रह्मरन्ध्र के द्वारा अब प्राण बाहर नही जा सकेंगे। इस कारण आवागमन का चक्र समाप्त हो गया है। इस ससार की स्थिति तो यह है कि मन, चित्त, बुद्धि एव अहकार रूपी चार पहरेदार चारो ओर से इस शरीर की रक्षा करते रहते हैं अर्थात् अन्त करण चतुष्टय के वशीभूत मनुष्य किसी प्रकार मरना नही चाहता है, परन्तु इन पहरेदारो के सजग रहते हुए भी काल रूपी चोर इस शरीर रूपी नगर को लूट ले जाता है। कबीरदास कहते हैं कि हे लोई! सुनो मनुष्य सर्वथा विवश है। सवका नाश, सृजन एवं पालन करने वाला केवल वही एक ईश्वर ही है।

अलंकार—(i) रूपकातिशयोक्ति—माटी का घर,
(ii) घन चारि पहरिया, नगरिया।
(iii) विरोधाभास—चहु दिसि·······नगरिया।

विशेष—(i) निर्वेद सचारी भाव की व्यजना है।

(ii) लोई कबीर की पत्नी का नाम है। कुछ लोग लोई को कबीर की शिष्या मानते हैं। इस प्रकार इस पद मे चरितपरक सकेत है।

(iii) समभाव देखिए—

अवलौं नसानी, अब न नसैहौं।

× × ×

मन मधुकर पन कै तुलसी रघुपति-पद-कमल बसैहौं।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(२७४)

कबीर बिगरचा रांम दुहाई,

तुम्ह जिनि बिगारौ मेरे भाई ।। टेक ।।

चदन कै ढिग बिरष जु भैल, बिगरि बिगरि सो चंदन ह्वैला ।।

पारस कौं जे लोह छिवैगा, बिगरि बिगरि सो कचन ह्वैला ।।

गगा मै जे नोर मिलैगा, बिगरि बिगरि गंगोदिक ह्वैला ।।

कहै कबीर जे रांम कहैला, बिगरि बिगरि सो रांमहि ह्वैला ।।

शब्दार्थ—ह्वैला=हो जाएगा। पारस=वह पत्थर जिसके स्पर्श से लोहा स्वर्ण वन जाता है। छिवैला=छुएगा, स्पर्श करेगा।

संदर्भ—कबीरदास सत्सग की महिमा का वर्णन करते है।

भावार्थ—राम की दुहाई देकर सच कहता हूं कि भगवद् भक्ति करके मैं तो विगड ही गया हूँ अर्थात् ससार के उपयुक्त नही रह गया हूँ। पर मेरे भाइयो ! अव तुम मेरी तरह भगवद् भक्ति के मार्ग पर चल कर मत बिगडना। तुम संसार मे ही अनुरक्त बने रहो— यही व्यजना है। प्रकृति का नियम ही यह है कि जो वृक्ष चन्दन के वृक्ष के पास होगा, वह चन्दन के सम्पर्क के कारण धीरे-धीरे परिवर्तित होकर चन्दन ही वन जाएगा। जो लोहा पारस का स्पर्श करेगा, वह क्रमश: परिवर्तित होकर स्वर्ण हो जाएगा। जो पानी गगा मे मिलेगा, वह गगा जल के रूप मे परिवर्तित हो जाएगा। कवीरदास कहते हैं कि जो व्यक्ति राम का नाम लेगा, वह धीरे-धीरे (अज्ञान से मुक्त होकर) राम-रूप हो ही जाएगा।

अलकार—(i) पुनरुक्ति प्रकाश—बिगरि-बिगरि।
(ii) तद्गुण— चन्दन ह्वैला, पारस ह्वैला, गगा ह्वैला। रामहि ह्वैला।

विशेष—(i) बिगारि' मे लक्षण लक्षणा है तथा ससारी व्यक्तियो के प्रति तीक्ष्ण व्यग्य है।

(ii) सत्सग की महिमा का वर्णन है— तुलना करें—

(क) सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परस कुधात सुहाई।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(ख) हमारे प्रभु ! औगुन चित न धरो।

× × ×

इक लोहा पूजा में राखत इक घर बधिक परो।
सो दुविधा पारस नहिं राखत, कंचन करत खरो।
इक नदिया इक नारि कहावत, मैलो नीर भरो।
जब मिलिगे तब एक वरन भे, सुरसरि नाम परो।

(महात्मा सूरदास)

(२७५)

रांम राइ भई बिकल मति मोरी,
कै यहु दुनी दिवानी तेरी ।। टेक ।।
जे पूजा हरि नांही भावै सो पूजनहार चढ़ावै ।।
जिहि पूजा हरि भल मांनै, सो पूजनहार न जांनै ।।
भाव प्रेम की पूजा, ताथैं भयौ देव थै दूजा ।।
का कीजै बहुत पसारा, पूजी जै पूजनहारा ।।
कहै कबीर मै गावा, मै गावा आप लखावा ।।
जो इहि पद माहि समांना, सो पूजनहार सयांना ।।

शब्दार्थ—विकल = व्याकुल, खराब। दुनी = दुनियाँ। दिवानी = दीवानी, पागल। पूजनहार = पूजने वाले, पुजारी लोग।

सदर्भ—कबीर का कहना है कि साधक मानव को शुद्ध, आत्म स्वरूप की आराधना करनी चाहिए।

भावार्थ—हे स्वामी राम, मेरी बुद्धि ही खराब हो गई है अथवा तुम्हारी यह सारी दुनिया ही पागल है। भगवान को जो सेवा-पूजा प्रिय नही है, उसी प्रकार की पूजा उसको पूजने वाले करते हैं। जो पूजा भगवान को प्रिय है, उस पूजा को ये पूजने वाले जानते ही नही हैं। भावपूर्वक एव प्रेमपूर्वक पूजा करने के लिए ही जीव ब्रह्म से पृथक हुआ है अथवा प्राणी का जन्म हुआ है। बहुत अधिक बातें बनाने से क्या लाभ है। पूजने वाले को अपने शुद्ध स्वरूप—शुद्ध बुद्ध आत्मा की पूजा करनी चाहिए। कबीर कहते हैं कि मैंने इस पूजा के वास्तविक रहस्य को गाकर स्पष्ट कर दिया है। जो लोग इस पद मे किए गए वर्णन के अनुसार प्रभु की आराधना करते हैं, वे ही ज्ञानी एव चतुर पूजने वाले हैं।

अलकार—(i) सदेह—कै तेरी।
(ii) विषम की व्यजना—जे पूजा ····चढावै।
(iii) रूपक—भाव-प्रेम की पूजा।
(iv) गूढोक्ति—का कीजै···· पसारा।

विशेष—(i) अद्वैत मत का काव्य मय प्रतिपादन है।
(ii) वाह्याचार का विरोध व्यजित है।

(iii) सच्ची भक्ति-भावना का प्रतिपादन है।

(iv) सच्चा ईश्वर प्रेम ही जीवन का चरम फल है। यह सीधी-सी बात लोगो की समझ मे नही आती है। इसी बात को देखकर कबीर हैरान हैं।

(२०६)

रांम राइ भई बिगूचनि भारी,
भले इन ग्यांनियन थै संसारी ।। टेक ।।
इक तप तीरथ औगांहै, इक मांनि महातम चांहैं ।।
इक मै मेरी मै बीझै, इक अहंमेव मै रीझै ।
इक कथि कथि भरम लगांवै, समिता सी बस्त न पावै ।।
कहै कबीर का कीजै, हरि सूझै सो अंजन दीजै ।।

शब्दार्थ—बिगूचनि=उलझन, कठिनाई, असमंजस, औगाहैं=अवगाहन (स्नान) करते हैं। मानि=मान, सम्मान। बीझै=बींधें, बधते हैं। अहमेव="मैं ही हूँ"—मिथ्याभिमान। कथि कथि=विभिन्न सिद्धान्तो का प्रतिपादन करना। समिता=समाप्त अथवा सवित् आत्मबोध। बस्त=वस्तु। अजन=काजल, लक्षण से ज्ञान, आँखों की दृष्टि को शुद्ध करे।

संदर्भ—कबीर के विचार से 'विवेक' ही भगवद् प्राप्ति का उचित सोपान है।

भावार्थ—हे भगवान, मेरे सामने तो बड़ी भारी कठिनाई उपस्थित हो गई है। इन तथाकथित ज्ञानियो (ढोंगी एव पाखण्डी लोगो) की अपेक्षा तो ये ससारी लोग (गृहस्थ लोग) ही अच्छे हैं। इन ज्ञानियो मे कोई तो तप करते हैं, कोई तीर्थों मे स्नान करते हैं, कोई मान चाहते हैं और कोई अपने आपको (भगत जी आदि) कहलाकर) वडा दिखाना चाहते हैं। इनमे वहुत से मैं मेरा' के मोह-बन्धन मे फँसे हुए हैं और किन्ही को अपनी शेखी बघारने की लत पड गई है। इनमे कुछ लोग विभिन्न धार्मिक सिद्धान्तो का वर्णन करते हुए अपने आपको भ्रम मे फँसाए हुए हैं। परन्तु इनमे कोई भी ऐसा नही है जिसको आत्म-बोध अथवा समभाव जैसी वस्तु की प्राप्ति हो गई हो। कबीरदास कहते हैं कि तथाकथित ज्ञान और ज्ञानियो से छुटकारा कैसे हो ? यथार्थ वात तो यह है कि उस ज्ञान की प्राप्ति की जानी चाहिए जिससे भगवान का दर्शन प्राप्त हो सके।

अलकार—(i) पुनरुक्ति प्रकाश—कथि कथि।

विशेष—(i) 'अजन' ज्ञान का प्रतीक है।

(ii) अहकारी एव ढोंगी ज्ञानी की अपेक्षा वह गृहस्थ कही अधिक अच्छा है जो निष्ठा पूर्वक अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करता है। सच्चे गृहस्थ की प्रशसा एव ढोंगी ज्ञानी की भर्त्सना है।

(iii) इसमे तत्कालीन सामाजिक जीवन की भी एक झलक प्राप्त हो जाती है।

(२७७)

काया मंजसि कौन गुनां,
घट भीतरि है मलनां ॥ टेक ॥
जौ तूं हिरदै सुध मन ग्यांनीं, तौ कहा बिरोलै पांनी ।
तूबी अठसठि तीरथ न्हाई, कड़वापन तऊ न जाई ॥
कहै कबीर बिचारी, भवसागर तारि मुरारी ॥

शब्दार्थ—मजसि=मज्जसि, धोता है । कौन गुना=किस उपयोग के लिए बिलोलै=बिलोडित करता है, मथना अर्थात् पानी मे से किसी वस्तु को प्राप्त करने का प्रयत्न करना । तूबी=तु बी, कडवी लौकी ।

संदर्भ—कबीर वाह्याचार की निरर्थकता का प्रतिपादन करते हैं ।

भावार्थ—पूजा-पाठ आदि वाह्याचारो मे लिप्त व्यक्तियो को सम्बोधित करते हुए कबीरदास कहते हैं कि "तुम्हारे शरीर के भीतर तो मैला भरा हुआ है । तब फिर तुम शरीर को बाहर से क्यो धोते हो ? अभिप्राय यह है कि जब हृदय के भीतर विषय-वासना रूपी मैल भरा हुआ है, तब तीर्थों मे मल मल कर स्नान करने से कोई लाभ नही है । यदि तुम हृदय से शुद्ध और विवेक पूर्ण मन वाले हो, तब फिर तुम इन तीर्थों के जल को मथ कर क्या प्राप्त करना चाहते हो ? अभिप्रेत यह है कि जल को मथने पर कुछ भी हाथ नही लगता है । जल-मथन तो वही करता है जो एक दम मूर्ख होता है । अत जो तीर्थों मे स्नान करके मोक्ष की आशा करते है, वे निरे अज्ञानी है । विवेकी ऐसा मूर्खतापूर्ण व्यवहार कदापि नही करेगा ।

जल मे स्नान करके मोक्ष की आशा करने वालो को लोक-व्यवहार का दृष्टात देकर कवि समझता है कि कड़ुवी लौकी जल मे तैरती हुई इधर-उधर अनेक तीर्थो मे भले ही स्नान करले, परन्तु उसका कड़ुवापन नही जा पाता है । इसी प्रकार तीर्थ-स्नान से मानव मन की वासनाओ का मैल समाप्त नही हो पाता हैं । कबीर कहते हैं कि इन्ही सब बातो का विचार करके मैं भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि हे मुरारि, तुम मुझको इस ससार रूपी सागर से पार उतार दो अर्थात् आवागमन के चक्र से मेरा उद्धार कर दो ।

अलंकार—(i) गूढोक्ति—काया '' गुना, जौत पानी ।
(ii) दृष्टात—तूवी · जाई ।
(iii) विशेषोक्ति—तऊ न जाई ।
(iv) रूपक—भवसागर ।
(vi) परिकराकुर—मुरारि ।

विशेष—(i) लक्षण—विरोलै पानी ।
(ii) वाह्याचार का विरोध है ।
(iii) पाठान्तर—हिरदै कपट मुख ग्यानी । झूठे कहा बिलोवसी पानी ।

(२७८)

कैसै तूं हरि कौ दास कहायौ,
करि बहु भेषर जनम गवायौ ।। टेक ।।
सुध बुध होइ भज्यौ नहि सांई, काछ्यौ ड्यंभ उदर कै तांई ।।
हिरदै कपट सू नही साचौ, कहा भयौ जे अनहद नाच्यौ ।।
झूठे फोकट कलू मंझारा, रांम कहैं ते दास नियारा ।।
भगति नारदी मगन सरीरा, इहि बिधि भब तिरि कहै कबीरा ।।

शब्दार्थ - काछ्यौ = वेप धारण किया । डयभ = दंभ, पाखण्ड । उदर के ताई = उदरपूर्ति के लिए । अनहद = अनाहत नाद के नाम पर अथवा बेहद । कलू = कलियुग । नियारा = न्यारे, अनोखे ।

सदर्भ—कबीरदास नारद द्वारा प्रतिपादित प्रेमा भक्ति का प्रतिपादन करते हैं ।

भावार्थ—रे साधु का वेष धारण करके अपने आपको भक्त कहने वाले प्राणी ! तुम अपने आपको भगवान का भक्त क्योकर कहलाते हो ? तुमने तो तरह-तरह के अनेक वेष धारण करके अपना सम्पूर्ण जीवन नष्ट किया है । तुमने कभी भी शुद्ध बुद्धि द्वारा भगवान का भजन नही किया । तुमतो उदर पूर्ति के निमित केवल पाखण्ड करके अनेक वेप धारण करते रहे हो । तेरे हृदय मे कपट है और तुमने भगवान से कभी सच्चा प्रेम नही किया है । यदि तू केवल दिखाने के लिए हृदय मे उठने वाले संगीत का नाम लेकर तरह तरह से नाचता रहा है, तो इससे क्या लाभ है ? इस झूठे एव निस्सार कलियुग मे राम का नाम लेने वाले सच्चे भक्त और ही होते है अर्थात् सच्चे भक्तो के लक्षण न्यारे ही होते है । कबीर कहते है कि अपने शरीर को नारद द्वारा कथित प्रेमा भक्ति मे तन्मय करो और इस प्रकार इस ससार-सागर के पार हो जाओ ।

अलंकार—(i) गूढोक्ति—कैसै...... कहायो ।
(ii) पदमैत्री—सुध बुध ।
(iii) वक्रोक्ति—कहा भयौ ... नाच्यौ ।
(iv) भेदकातिशयोक्ति—दास नियारा ।
(vi) रूपक—भव ।

विशेष—(i) अनहद—देखें टिप्पणी पद स० १५७ ।

(ii) वाह्याचार का स्पष्ट विरोध है ।

(iii) इस पद मे कबीर "नारदी भक्ति" की चर्चा करते हुए वैष्णव भक्तो के एक दम निकट आ जाते हैं । कतिपय आलोचको के मतानुसार 'भगति नारदी' से कबीर का तात्पर्य 'नारद-भक्ति-सूत्र' मे वर्णित भक्ति के प्रकार से नही है । परन्तु हमारे मतानुसार कबीर का तात्पर्य 'नारद भक्ति सूत्र' मे वर्णित भक्ति-पद्धति से ही

है। कबीर की विचार-धारा (मगन-सरीरा आदि) हमे तो एक दम उसी के अनुकूल दिखाई देती है—

तदर्पिता खिला चारता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति ।
सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा अमृत स्वरूपा च ।

(२७६)

रांम राइ इहि सेवा भल मांनै,
जै कोई रांम नांम तत जांनै ।। टेक ।।
रे नर कहा पषालै काया, सो तन चीन्हि जहां थे आया ।।
कहा बिभूति जटा पट बाँधें, काजल पैस हुतासन साधें ।।
र रांम मां दोई अखिर सारा, कहै कबीर तिहू लोक पियारा ।।

शब्दार्थ—तत=तत्व, रहस्य। पषालै=प्रक्षालित करता है, धोता है। पट=वस्त्र। हुतासन=अग्नि, हवन करना अथवा पचाग्नि की साधना।

सन्दर्भ—कबीरदास राम नाम की महिमा का वर्णन करते है।

भावार्थ—जिसको राम-नाम के तत्व का ज्ञान है, उसी की सेवा (भक्ति) को भगवान राम अच्छा समझते हैं। रे मानव ! तू इस शरीर को क्यो धो रहा है ? उस परम तत्त्व को जानने का प्रयत्न कर जो तेरा उद्गम कारण है अर्थात् जहाँ से तेरा जन्म हुआ है। भस्म रमाने, जटा रखने तथा विशेप प्रकार के वस्त्र धारण करने से क्या होता है ? तीर्थों के जल मे स्नान करने से अथवा पचाग्नि मे तपने से किंवा हवन करने का भी कोई उपयोग नही है। 'रकार' और 'मकार' अर्थात् 'राम' ये दो अक्षर ही सार पदार्थ हैं। कबीर कहते हैं कि तीनो लोको में ये दो अक्षर ही प्रिय वस्तु है—ये ही सुन्दर एव मगलकारी है।

अलकार—(i) गोढोक्ति—रे नर आया।
(ii) वक्रोक्ति—कहा पषालै साधें।
(iii) पदमैत्री—बाँधे साधै।

विशेष—(i) वाह्याचार का विरोध है।
(ii) ज्ञान-लक्षण भक्ति ही श्रेष्ठ है।
(iii) 'राम-राम' के स्मरण मे ही जीवन की सार्थकता हे। तुलना कीजिए—

आखर मधुर मनोहर दोऊ। बरन बिलोचन जन जिय जोऊ।
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। लोक लाहु परलोक निवाहू।

× × ×

एकु छत्रु एकु मुकुटमनि सब वरननि पर जोउ।
तुलसी रघुवर नाम के बरन बिराजत दोउ।

× × ×

राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजियार। —गोस्वामी तुलसीदास

(२८०)

इहि विधि रांम सू ल्यौ लाइ ।
चरन पाषे निरति करि, जिभ्या बिनां गुंण गाइ ।।टेक।।
जहाँ स्वांति बूंद न सीप साइर, सहजि मोती होइ ।
उन मोतियन मैं नीर पोयौ, पवन अम्बर धोइ ।।
जहाँ धरनि बरषै गगन भीजै, चन्द सूरज मेंल ।
दोइ मिलि तहाँ जुड़न लागे, करत हंसा केलि ।।
एक बिरष भीतरि नदी चाली, कनक कलस समाइ ।
पंच सुवटा आइ बैठे, उदै भई बनराइ ।।
जहाँ बिछुर्यौ तहाँ लाग्यौ, गगन बैठो जाइ ।
जन कबीर बटाऊवा जिनि मारग लियौ चाइ ।।

शब्दार्थ—ल्यौलाइ = लौ लगा। साइर= सागरा। नीर=पानी, काति। हसा=शुद्ध बुद्ध जीवात्मा। विरप=वृक्ष। नदी= सुपुम्ना। कनक-कलश=सोने का कलशा, सहस्रार। पच सुवटा=पाच तोते (पच प्राण—प्राण, अपान, उदान, समान तथा व्यान)। वनराइ=वनराजी, विभिन्न सद्‌वृत्तियाँ। जन=भक्त। वटाऊवा=पार्थक। चाइ=चाव पूर्वक। मारग लीयौ=मार्ग अपना लिया है।

सन्दर्भ—कवीरदास कायायोग की साधना का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—रे साधक! तू भगवान राम मे इस प्रकार लौ लगा। उनके चरण-कमलो के समीप नृत्य कर। जीभ के विना उनका गुण-गान कर अर्थात् मन मे उनके गुणो का स्मरण कर। जहाँ न स्वाति नक्षत्र के जल की बूँद गिरती है, न सीपी है और न सागर है, वही मोक्ष रूपी मोती सहज रूप से प्राप्त होता है। अभिप्राय यह है कि आत्म समर्पण करने पर कार्य-कारण सम्बन्धो से प्रतीत सहज अनुभूति रूप मोती प्राप्त होगा। उस मोती मे परमानन्द रूप काति समायी हुई है और प्राण रूप पवन एव ज्ञान-रूप आकाश उसे निर्मल रखते हैं। अभिप्राय यह है कि प्राण-साधना एव ज्ञानानुभूति के द्वारा उसको सम्पूर्ण विकारो से रहित बना दिया गया है।

इस अवस्था मे कुण्डलिनी रूपी पृथ्वी से अमृत झरता है और ब्रह्मरन्ध्र रूप गगन उस अमृत का पान करता है। अभिप्राय यह है कि कुण्डली-शक्ति के जाग्रत होने पर शून्य-गगन-मडल अमृत की वर्षा से अभिसिंचित हो जाता है। इस अवस्था मे चन्द्र और सूर्य (इडा-पिंगला) नाड़ियाँ मिलकर तदाकार होने लगती हैं तथा ज्ञानी जीवात्मा आनन्दमग्न हो जाता है। इस शरीर रूपी वृक्ष मे सुपुम्ना रूपी नाडी प्रवाहित होती है और सहस्रार रूपी स्वर्ण कलश आध्यात्मिक आनन्द द्वारा आपूरित हो जाता है।

इस अवस्था मे पचप्राण यहाँ केन्द्रित हो जाते हैं और अन्त करण मे सद्‌वृत्तियो का उदय हो जाता है, मानो वनस्थली हरी-भरी हो उठी हो। (कतिपय

आलोचक 'पंच सुवटा' का अर्थ "पाच ज्ञानेन्द्रियाँ" करते हैं। तब भी इसके मूल भावार्थ मे कोई अन्तर नही पडता है। तब इसका अर्थ इस प्रकार होगा कि पाँचो इन्द्रियाँ रूपी तोते यहाँ आकर बैठ जाते हैं, अर्थात् इन्द्रियाँ बाह्य विषयो से विमुख होकर इस आनन्दानुभूति का भोग करने लगती हैं।) कबीर कहते हैं कि मेरी चेतना की अवस्थिति शून्य मे हो गई है अर्थात् आत्म चेतना का पर्यवसान विश्व-चेतना मे हो गया है। मैं जहाँ से बिछुडा था, वही आकर बैठ गया हूँ अर्थात् मे अब तक भगवान (परमात्मा) से वियुक्त था, अब उसी मे समाहित (तन्मय) हो गया हूँ। यह भक्त कबीर परमपद के मार्ग का पाथिक है। उसको अपना अभीप्सित मार्ग मिल गया है और उसने उसको पूरे उत्साह के साथ अपना लिया है।

अलंकार—(i) विभावना—जिम्या ' गाइ, जहाँ ··· होइ, पवन अबर धोइ।

(ii) श्लेष पुष्ट रूपक—मोती।

(iii) रूपकातिशयोक्ति—पवन, अम्बर, हसा, सुवटा।

(iv) विरोधाभास— धरनि बरसै भीजै, चद सूरज मेलि,

(v) जहाँ बिछट्यो ··· लाग्यौ।

विशेष—(i) रूपको तथा प्रतीको का प्रयोग है।

(ii) कुण्डलिनी शक्ति पृथ्वी से उद्भूत होती है। इसी से उसको 'धरती' कहते हैं।

(iii) इस पद मे 'उलटवासी' की पद्धति अपनाई गई है।

(iv) काया योग की सिद्धियो का वर्णन है।

(v) जहाँ ' लाग्यो – अद्वैतावस्था की ओर सकेत है।

(vi) निर्विकल्प समाधि का वर्णन है। इसी को भूमा का सुख भी कहा गया है।

(vii) कनक कलस—विश्व-चेतना की अवस्था की अनुभूति को ही अरविन्द ने 'स्वर्ण-वर्षा' कहा है।

(viii) पच सुवटा आई बैठे—इन्द्रियो का अन्तर्मुखी होना ज्ञान-प्राप्ति दशा का महत्त्वपूर्ण लक्षण है—

हौं अपनापौ तब खानिहौं, जब मन फिरि परि है।

तथा— सन्मुख होइ जीव मोहिं जबही। जन्म कोटि अध नासहिं तबहीं।

—गोस्वामी तुलसीदास

(ix) कुण्डलिनी—देखें टिप्पणी पद २१६।

(x) विश्ववृक्ष—देखें टिप्पणी पद ११, १६४।

(xi) जहाँ बिछड्यौ—देखें टिप्पणी पद २६।

(xii) शून्य—देखें टिप्पणी पद १६४।

(२८१)

ताथै मोहि नाचिबौ न आवै,

ऊभर था ते सूभर भरिया, त्रिष्णां गागरि फूटी ।
हरि चिंतन मेरौ मदला भींनौं, भरम भोयन गयौ छूटी ॥
ब्रह्म अगनि मै जरी जु ममिता, पाषड अरू अभिमानां ।
काम चोलनां भया पुराना मोपै होइ न आना ॥
जे बहु रूप किये ते कीये, अब बहु रूप न होई ।
थाकी सौंज संग के बिछुरे रांम नांम मसि धोई ॥
जे थे सचल अचल ह्वै थाके, करते बाद बिबादं ।
कहै कबीर मै पूरा पाया, भया रांम परसादं ।

शब्दार्थ—ऊभर=खाली । सूभर=शुभ्र । मदला=मन रूपी बाजा । भोपन=वह आटा जो ध्वनि मे ठनक उत्पन्न करने के लिए मदल पर लगाया जाता है । सौज= साज, सज्जा, भोग-सामग्री । सग=विपय विकार रूपी साथी । मसि= पापकालिमा । परसाद =कृपा ।

संदर्भ—कबीरदास ज्ञान-दशा का वर्णन करते हैं ।

भावार्थ—कबीर कहते है कि मुझ पर भगवान की कृपा हो गई है । इससे अब मुझ से संसार के भाँति-भाँति के नाच नही नाचे जाते है । मेरा जो चित्त रूपी घडा भक्ति के जल से शून्य था वह अब भक्ति के शुभ्र जल से भर गया है और मेरी तृष्णा-रूपी गगरी फूट गई है । हरि के चिन्तन के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले आनद जल से मेरा मन रूपी मदला बाजा भीग गया है और वह मन्द पड गया है । भ्रम-रूपी भोयन (आटा) से मेरे मन रूपी मदला की मुक्ति हो गई है । ज्ञान की अग्नि मे ममता, पाखण्ड और अभिमान जल गए हैं । कामवासना रूपी मेरा वस्त्र पुराना पड गया है । अब मेरे पास अन्य कोई वस्त्र नही है—अर्थात् मैं अब काम-वासना रहित हो गया हूँ । अब तक मैंने इच्छाओ के वशीभूत होकर जो अनेक जन्म धारण कर लिए सो कर लिए परन्तु अब वे रूप मैं धारण नही करूँगा । कर्म-भोग रूपी मेरी समस्त सामग्री समाप्त हो गई है और विपय-विकार रूपी साथियो से मेरा छुटकारा हो गया है तथा राम-नाम ने मेरे समस्त पूर्व कलुपो को धो दिया है । जो वासनाएँ अब तक चचल थी और आपस मे झगडती रहती थी अर्थात् जिनके कारण मेरा मन चचल बना रहता था, वे अब उदात्तीकृत हो गई है और निष्क्रिय हो गई हैं । कबीरदास कहते है कि मुझ पर राम की कृपा हो गई है और मुझे पूर्ण परम तत्त्व का साक्षात्कार प्राप्त हो गया है ।

अलंकार—(i) सभग पद यमक—ऊभर सूभर । सचल अचल ।
(ii) रूपक—त्रिष्णा गागर, भरम भायन ।
(iii) ब्रह्म अगिनि, काम चोलना ।
(iv) रूपकातिशयोक्ति—मदला, सौज ।

(v) अनुप्रास—भरम, भोयन भीनौ ।
(vi) श्लेष पुष्ट रूपक—मसि ।
(vii) विरोधाभास—अचल है याके ।

विशेष—(i) ज्ञान दशा का मार्मिक वर्णन है ।

(ii) तार्थं · भरिया—समभाव देखें—

अध जल गगरी छलकत जाए ।

(iii) मन का मर्दल न बजाना और ताल न देना विविध जागतिक कार्यों के लिए उसका सहयोग न देना है । चित्त के घट का भरना सतोष से पूरित होना है । मन के मर्दल के भीगने का तात्पर्य उसका शिथिल होना है । सग के लोग विषय विकार हैं अथवा ससार के सम्बन्धी भी हो सकते हैं ।

(iv) ज्ञान और भक्ति का समन्वय ही जीवन की सार्थकता है । यही कबीर का दर्शन है । कबीर जीवन के सामान्य क्रिया कलापो के प्रति नवीन दृष्टि उत्पन्न करना ही ज्ञान-प्राप्ति का लक्षण मानते हैं ।

(v) तुलना कीजिए—

अबलौं नासानी, अब न नसैहौं ।
राम-कृपा भव-निसा सिरानी, जागे पुनि न डसैहौं ।
पायो नाम चारु चिंतामनि, उर करते न खसैहौं ।
स्यामरूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहिं कसैहौं ।
परवस जानि हँस्यौ इन इन्द्रिन, निज बस ह्वै न हँसैहौं ।
मन मधुकर पन कै तुलसी रघुपति-पद-कमल बसैहौं ।

(गोस्वामी तुलसीदास)

तथा— **अब मैं नाच्यौ बहुत गोपाल ।**
काम-क्रोध को पहिरि चोलना, कण्ठ विषय की माल ।
× × ×
सूरदास की सबै अविद्या, दूर करौ नन्दलाल ।

(२८२)

अब क्या कीजै ग्यांन बिचारा,
निज निरखत गत ब्यौहारा ॥टेक॥
जाचिग दाता इक पाया, धन दिया जाइ न खाया ।
कोई ले भरि सकै न मूका, औरनि पैं जाना चूका ॥
तिस बाझ न जीव्या जाई, वो मिलै त घालै खाई ।
वो जीवन भला कहाई, बिन मूवां जीवन नांहीं ॥
घसि चदन बनखडि बारा, बिन नैननि रूप निहारा ।
तिहि पूत बाप इक जाया, बिन ठाहर नगर बसाया ॥
कहै कबीर सो पाया, प्रभु भेटत आप गंवाया ॥

शब्दार्थ—निज निरखत=आत्म ज्ञान । गत=समाप्त । मूका=मुट्ठी (मुक्का) । बाझ=बिना ।

सन्दर्भ—कबीरदास ज्ञान-बोध की चर्चा करते है ।

भावार्थ—अब विवेक-विचार आदि की क्या आवश्यकता है ? आत्म-स्वरूप का साक्षात्कार हो जाने पर सम्पूर्ण सासारिक व्यवहार (विधि-निषेध) समाप्त हो गए है । इस साधक रूपी याचक जीव को परमात्मा रूपी एक ऐसा दाता मिल गया है जिसका दिया हुआ ज्ञान-भक्ति रूपी धन भोग करने पर भी समाप्त नही होता है। उस धन को कोई अपनी मुट्ठी मे भी नही भर सकता है अर्थात् उसके ऊपर एकाधिकार भी नही कर सकता है तथा उस धन को प्राप्त करने के पश्चात् किसी अन्य के पास याचना करने के लिए जाने की आवश्यकता भी नही रह जाती है। अर्थात् अन्य साधनाओ को अपनाने की आवश्यकता नही रह जाती है । उस धन के बिना जीवित नही रहा जाता है । यदि वह धन मिल जाता हे तो हमारे सासारिक अस्तित्व (अहम् भाव) को मार कर समाप्त कर देता है । भक्ति पूर्ण यह जीवन ही अच्छा कहलाता है और बिना मरे इस जीवन की प्राप्ति नही होती है अर्थात् जब तक व्यक्ति का अहभाव (सासारिकता के प्रति आसक्ति) नही मर जाता है, तब तक वह भक्ति के आनद पूर्ण जीवन का अधिकारी नही बन पाता है । जब व्यक्ति भक्ति के चन्दन को घिसकर ज्ञान और वैराग्य की अग्नि प्रकट करता है और उससे विषय विकारो के जगल को जला डालता है, तब उसको साधना रूपी नेत्रो के बिना ही सहज भाव से हृदय मे भगवान का साक्षात्कार हो जाता है । वह भक्त एक उस पुत्र के समान है जो परमात्मज्ञान रूपी पिता को जन्म देता है तथा स्थान के बिना ही नगर बसा देता है अर्थात् सासारिकता मे लिप्त हुए बिना ही ससार के व्यवहार चलाता रहता है । जो जीवित रहते हुए मरना जानता है अर्थात् शरीर को रखते हुए सासारिकता (आसक्ति) का परित्याग करके ससार के लिए मृत हो जाता है, वही साधक पाँचो प्राणो द्वारा प्राप्त सामूहिक सुख का वास्तविक आनद प्राप्त करता है । कबीरदास कहते हैं कि भगवान की खोज मे मैंने अपने ससारी रूप को नष्ट करके उस परम तत्त्व को प्राप्त किया है ।

अलंकार—(i) वक्रोक्ति—अब···· विचारा।

(ii) विशेपोक्ति—धन खाया ।

(iii) सम्बन्धातिशयोक्ति—कोई · ··मूका ।

(iv) विरोधाभास—तिरुबाझ · · खाई, बिन मूवा ······ नाही, घसि ·बारा, तिहि जाया, जीवत··· ··· जानै तथा प्रभु भेटत·· · गवाया ।

(v) विभावना—बिन ·· ····निहारा, बिन ठाहर·······बसाया ।

विशेष—(i) यह पद उलटवासी का है ।

(ii) प्राप्त किया हुआ धन आत्मा, भूति का है। दाता आत्मा है। इस प्रकार इस पद मे विभिन्न प्रतीको का सुन्दर प्रयोग है।

(iii) भक्ति किसी सिद्धि का साधन नही है। इसी से लिखा है कि धन दिया जाहू न खाया तथा "औरनि पँ जाना चूका।"

(iv) चदन को घिस डालने तथा वन खड को जला डालने का आशय उपासना के बाह्य उपकरणो को समाप्त करना भी हो सकता है।

(v) पच शैल— पच प्राण, प्राण, अपान, उदान समान और व्यान।

(vi) इस पद मे कबीरदास ने ईश्वर और जीव का तथा ज्ञान और भक्ति का अभेद व्यक्त किया है। यह भी बताया है कि भक्ति से ज्ञान-बोध का जन्म होता है।

(vii) समभाव देखिए—

जग जाँचिये कोऊ न जाँचिए जो जिय जाँचिये जानकी जानहि रे।
जेहि जाँचत जाचकता जरि जाइ जो जारति जोरि जहा नहि रे।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(२८३)

अब मै पायौ राजा रांम सनेही,
जा बिनु दुख पावै मेरी देही ॥टेक॥
वेद पुरान कहत जाकी साखी, तीरथि व्रति न छूटै जम की पासी ॥
जाथै जनम कहत नर आगै, पाप पुनि दोऊ भ्रम लागै ॥
कहै कबीर सोई तत जागा, मन भया मगन प्रेम सर लागा ॥

शब्दार्थ—पाक्षी=पाश, बन्धन। जन्म=दिव्य जन्म।

सदर्भ—कबीर भगवत् प्रेम की प्राप्ति का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—अब मुझे मेरे प्रेमी भगवान राम की प्राप्ति हो गई है। उनके बिना मेरा जीवन दुखी रहता था। वेद, पुराण इस बात के साक्षी हैं कि तीथ-व्रत आदि के द्वारा काल-चक्र का बन्धन नही छूट पाता है। भाव-प्रेम के द्वारा मनुष्य को दिव्य योनि प्राप्त होती है अर्थात् मुक्तावस्था प्राप्त होती है। इसके उदय हो जाने पर पाप-पुण्य दोनो ही भ्रम प्रतीत होने लगने हैं क्योकि ये दोनो ही बन्धन कारक हैं। कबीर कहते हैं कि मेरे मन मे तत्त्व ज्ञान जाग गया है। भगवत्प्रेम रूपी वाण मेरे हृदय मे समा गया है और मेरा मन उसी मे तन्मय हो गया है।

अलकार—रूपक—प्रेम सर।

विशेष—(i) सच्चे भगवत्प्रेम की महिमा का वर्णन है।

(ii) वाह्याचार की निरर्थकता के प्रति सकेत है। समभाव के लिए देखे—

जौं लो मन-कामना न छूटै।
तौ कहा जोग-जग्य-ब्रत कीन्हे, विनु कन भुस को कूटै।
कहा स्नान किये तीरथ के, अग भसम जट-जूटै।

कहा पुरान जु पढ़े अठारह, उरध घूग के घूटें।
जग सोभा की सकल वड़ाई, इन ते कछु न खूटें।
करनी और कहनी कछु औरें, मन दसहूँ दिसि टूटें।
काम क्रोध मद लोभ सत्रु हैं, जो इतननि सों छूटें।
सूरदास तव ही तम नासैं, ग्यान-अगिनि-झर फूटें।

—महात्मा सूरदास

(२८४)

बिरहिनी फिरै है नाथ अधीरा,
उपजि बिनां कछू समझि न परई, बांझ न जांनै पीरा ॥टेक॥
या बड़ बिथा सोई भल जांनै, रांम बिरह सर मारी ।
कैसो जांनै जिनि यहु लाई, कै जिनि चोट सहारी ॥
संग की बिछुरी मिलन न पावै सोच करै अरु काहै ।
जतन करै अरु जुगति बिचारै, रटै रांम कूं चाहै ॥
दीन भई बूझै सखियन कौं, कोई मोहि राम मिलावै ।
दास कबीर मीन ज्यूं तलपै, मिलै भलै सचुपावै ॥

शब्दार्थ—उपजि=विरह जन्य अधीरता की उत्पत्ति। बड=बडी। सहारी =सहन की। काहै=कराहती है।

सन्दर्भ—कबीरदास की आत्मा रूपी पत्नी अपने पति राम के वियोग मे व्याकुल है।

भावार्थ—हे नाथ! यह विरहिणी आपके वियोग मे अधीर हुई मारी-मारी घूम रही है। जिसके हृदय मे विरह की यह पीडा उत्पन्न नही हुई है वह मेरी इस व्यथा को नही समझ सकता है। ठीक ही है, बाँझ नारी प्रसव की पीड़ा को नही जान सकती है। इस बडी व्यथा को वही अच्छी तरह समझ सकती है, जिसको राम के विरह का वाण लगा है। प्रेम की पीडा की अनुभूति या तो उसे होनी है जिसने यह प्रेम-पीडा को उत्पन्न किया है अथवा वह जिसने इसकी चोट को सहन किया है। हे भगवान, आपकी साथिन यह जीवात्मा आपसे बिछुड गई है और आपसे मिल नही पा रही है। इसी कारण वह चिन्तित है और कराह रही है। वह आपसे मिलने के लिए उपाय सोचती है और तरह-तरह की तरकीबो पर विचार करती है। वह निरन्तर प्रियतम राम को ही रटती रहती है और उन्ही मे पूर्णत. अनुरक्त है। यह अत्यन्त दीन वनी हुई अन्य भक्त आत्माओ रूपी सखियो से मिलन का उपाय पूछती रहती है और अनुनय करती है कि मुझे कोई भी राम से मिला दे। भक्त कवीरदास कहते हैं कि यह जीवात्मा राम के वियोग मे जल से वियुक्त मछली की तरह तड़पती है। उनसे मिलने पर ही इसको सच्चे सुख की प्राप्ति होगी।

अलंकार—(i) निदर्शना—बाँझ न जानै पीरा।
(ii) रूपक—विरहसर

(iii) उपमा— मीन ज्यू तलपै।

विशेष—इस पद मे रहस्य भावना एव भक्ति भावना का सुन्दर समन्वय है। इसमे समन्वित प्रेमानुभूति का विप्रलम्भ रूप है। समभाव के लिए देखिए—

मैं हरि बिन क्यो जिऊँ री माई।
पिव कारन बौरी भई, ज्यौं घुन काठहि खाइ।
× × ×
मीराँ के प्रभु लाल गिरधर। मिलि गये सुख दाइ। —मीराबाई

(२८५)

जातनि बेद न जानैगा जन सोई,
सारा भरम न जांनै राम कोई ॥टेक॥
चषि बिन दिवस जिसी है सञ्झा, व्यावन पीर न जांनै बझा ।
सूझै करक न लागै कारी, बैद बिधाता करि मोहि सारी ॥
कहै कबीर यहु दुख कासनि कहिये, अपनें तन की आप ही सहिये ॥

शब्दार्थ—करक=पीडा।

सन्दर्भ—कबीर की विरहिणी आत्मा भगवत्दर्शन के लिए व्याकुल है।

भावार्थ—जिसके हृदय मे विरह की पीडा है वही भगवत्प्रेमी उसको समझ सकता है। शेप समार को भ्र . मात्र है। राम के प्रेम की अनुभूति तो किसी किसी को होती है। नेत्रहीन के लिए तो जैसा दिन है वैसी ही सध्या है अर्थात् अन्धे के लिए तो दिन-रात समान हैं। वन्ध्या नारी प्रसव की पीडा नही समझ सकती है। विरहिणी को अपनी पीडा भर दिखाई देती है और वह उसको बुरी भी नही लगती है। विरहिणी जीवात्मा कहती है कि हे भगवान रूपी वैद्य, मेरी व्यथा को ठीक कर दो तुम वैद्य बन कर आओ और दर्शन रूपी औषधि द्वारा मुझे स्वस्थ कर दो। कबीर कहते हैं कि इस प्रेम पीडा को किससे कहूँ। अपनी व्यथा स्वय ही सहनी पडती है।

अलकार—दृष्टान्त—चषि वझा।

विशेष—(i) समभाव देखिए—

घायल की गति घायल जानै और न जानै कोय।
तथा—घायल-सी घूमत फिरूँ, दरद न जाणे कोइ।
धान न भावै, नींद न आवै विरह सतावै मोइ। —मीराबाई

(ii) अपने तन को आपन सहिये। ठीक ही है—

रहिमन मन की बिथा मन मे राखौ गोइ।
लोग हँसाई सब करै बांट न लेहै कोई। —रहीम

(२८६)

जन की पीर हो,
राजा रांम भल जांनै, कहूँ काहि को मांनै ॥टेक॥

नैन का दुख बैन जांनै, बैन का दुख श्रवनां ।
प्यंड का दुख प्रांन जांनै, प्रांन का दुख मरनां ॥
आस का दुख प्यासा जांनै, प्यास का दुख नीर ।
भगति का दुख रांम जांनै, कहै दास कबीर ॥

सन्दर्भ—कवीरदास की विरह-व्यथा वर्णनातीत है।

भावार्थ—भक्त के हृदय की पीडा को भगवान राम अच्छी तरह जानते हैं। उसको किससे कहूँ और उस पर कौन विश्वास करेगा ? प्रियतम को न देखने के कारण जो दुःख होता है, उसका वर्णन वाणी द्वारा किया जाता है। वाणी द्वारा वर्णित दुःख को सुनकर कानो को दुःख होता है अर्थात् दुःख का वर्णन सुनने वाला दुखी होता है। शरीर के कष्ट को प्राण समझते है और प्राणो की व्यथा का ज्ञान मरने पर ही पाता है। आशा मे कितनी व्यथा समाई रहती है, इसका अनुभव पानी की आशा मे जीवित रहने वाला प्यासा व्यक्ति जानता है। प्यासे व्यक्ति की व्यथा को जल समझता है। कवीरदास कहते है कि भक्ति के कारण उत्पन्न होने वाली व्यथा का ज्ञान राम को ही है। भाव यह है कि जल ही यह जानता है कि उसके बिना उसके प्यासे को कितना कष्ट होता है। इसी प्रकार भगवान राम यह जानते हैं कि उनके प्रेमी भक्त को उनके दर्शन के अभाव मे कितनी व्यथा होती है।

अलंकार—(i) निदर्शना—नैन का दुख ' राम जानैं।
(ii) वक्रोक्ति—कहूँ काहि को मानैं।

विशेष—(i) लाक्षणिक शैली का प्रयोग है।
(ii) रहस्य भावना की अभिव्यक्ति है।
(iii) मार्मिक व्यथा की मार्मिक व्यंजना हैं।
(iv) शब्द विधान मे प्रवाह एवं सगीतात्मकता है।

(२८७)

तुम्ह बिन रांम कवन सौं कहिये,
लागी चोट बहुत दुख सहियै ॥टेक॥
बेध्यौ जीव बिरह कै भालै, राति दिवस मेरे उर सालै ॥
को जांनैं मेरे तन की पीरा, सतगुर सबद बहि गयौ सरीरा ॥
तुम्ह से बैद न हमसे रोगी, उपजी बिथा कैसे जीवैं बियोगी ॥
निस बासुरि मोहि चितवत जाई, अजहूँ न आइ मिले रांमराई ॥
कहत कबीर हमकौं दुख भारी, बिन दरसन क्यूं जीवहि मुरारी ॥

संदर्भ—कवीरदास की जीवात्मा पत्नी की विरह-व्यथा का वर्णन है।

भावार्थ—हे राम ! तुम्हारे अतिरिक्त मैं अपने मन की व्यथा किससे कहूँ ? विरह-व्यथा की चोट मुझे गहरी लगी है और उसके कारण मुझे बहुत दुःख सहन करना पड रहा है। विरह रूपी भाले ने मेरे जीवात्मा को वेध दिया है और यह व्यथा रात-दिन मेरे हृदय मे कसकती रहती है। मेरे अन्तःकरण मे जो विरह-व्यथा

है, उसको कोई नही जानता है। सद्गुरु का सदुपदेश रूपी वाण मेरे हृदय मे समा गया है। (उसी से प्रेम की यह पीडा उत्पन्न हुई है)। हे भगवान, तुम्हारे समान कोई प्रेम का उपचार करने वाला वैध नहीं है और मेरे समान कोई अन्य प्रेम से व्यथित रोगी नही है। मेरे मनमे उत्कट प्रेम-व्यथा उत्पन्न हो गई है। अब मैं आपके वियोग मे किस प्रकार जीवित रह सकती हूँ? रात-दिन मुझे आप की राह देखते हुए व्यतीन होते हैं। हे राजा राम, आप अभी भी आकर मुझसे नही मिले हैं। कबीर कहते हैं कि इस विरह के कारण हमको बहुत भारी दुख है। हे मुरारी! आपके दर्शनों के विना मैं किस प्रकार जीवित रह सकूँगा?

अलकार—(1) रूपक—बिरह कै भालै।
(11) वक्रोक्ति—को जानें पीरा, बिन मुरारी।
(111) अनन्वय—तुमसे ····रोगी।
(1V) गढोक्ति—उपजी ····· बियोगी।
(V) परिकराकुर—मुरारी।

विशेष—(1) रहस्य भावना की व्यजना है।
(11 भक्ति के विप्रलम्भ-पक्ष का मार्मिक वर्णन है।
(111) "विरह कै भालै"—सदृश कथन पर फारसी की ऊहात्मक शैली का स्पष्ट प्रभाव है।

(२८८)

तेरा हरि नांमैं जुलाहा,
मेरे रांम रमण का लाहा ॥टेक॥
दस सै सूत्र की पुरिया पूरी, चद सूर दोइ साखी।
अनत नांव गिनि लई मजूरी, हिरदा कवल मै राखी ॥
सुरति सुमृति दोइ खूटी कीन्ही, आरंभ कीया बमेकी।
ग्यान तत की नली भराई, बुनित आतमां पेषी ॥
अविनासी धंन लई मजूरी, पूरी थापनि पाई।
रस बन सोधि सोधि सब आये निकटै दिया बताई ॥
मन सूधा कौ कूच कियौ है, ग्यान बिथरनी पाई।
जीव की गांठि गुढी सब भागी, जहां की तहां ल्यौ लाई ॥
बेठि बेगारि बुराई थाकी अनभै पद परकासा।
दास कबीर बुनत सच पाया, दुख ससार सब नासा ॥

शब्दार्थ—राम-रमण=आत्मा मे रमना। चद सूर=इड़ा पिंगडा।
सन्दर्भ—कवीरदास आत्म-दर्शन का वर्णन करते हैं।

हे भगवान! मैं तेरे नामरूपी वस्त्र के बुनने वाला जुलाहा हूँ। इस व्यवसाय मे मुझको यह लाभ है कि मुझे राम मे रमण करने का (आत्म-साक्षात्कार) का अवसर प्राप्त होता है। मैंने हज़ार सूत्रो की पुटरी भरली है अर्थात् अन्त करण की

सहस्रो भावनाएँ ही इस नाम स्मरण द्वारा आपूरित हो गई हैं। वे ही इस वस्त्र की उपादान बन गई है। सूत को उलझने से बचाने के लिए इडा और पिंगला नामक दोनो नाडियो को दो डडो (गोडो) का रूप दिया गया है। इस वस्त्र को बुनने के परिश्रमिक के रूप मे मैंने अनत नाम-स्मरण के रूप मे प्राप्त किया है, अर्थात् तुम्हारे अनत नामो को गिन कर उन्हे मैंने अपनी मजदूरी के रूप मे लिया है। इस अमूल्य निधि को मैंने अपने हृदय मे ही रखा है। हरि-स्मरण रूपी इस वस्त्र के लिए मैंने सुरति और स्मृति की दो खूटियाँ बना ली हैं। इस प्रकार विवेक-रूपी वस्त्र बुनना आरम्भ कर दिया है। मैंने ज्ञान तत्व से नली भरली है और इस प्रकार इस वस्त्र को बुनते हुए मैंने आत्मसाक्षात्कार किया है। इस बुनाई की मजदूरी मे मुझको अविनाशी भगवान की प्राप्ति रूपी धन प्राप्त हुआ है और मैं पूर्ण रूपेण आत्मस्थित हो गया हूँ। अन्य साधक इस आत्म तत्व को इधर-उधर सब जगह अनेक साधनाओ-रूपी अरण्यो और वनो मे खोजते रहो मैंने इस तत्व को निकट ही बता दिया अर्थात् मैंने उन साधको के स्वरूप मे ही इस तत्व का सहज रूप से निर्देश कर दिया। मैंने शुद्ध मन की कूची बनाई है और ज्ञान की बिथरनी (सूत को अलग सलग रखने वाला यन्त्र) पाई है और इस प्रकार जीव के मन की गांठो और ममता की घुडियाँ समाप्त हो गई है और जहाँ की तहाँ लय लग गई है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रेम की कूची से मैंने विषय वासनाओ एव वाह्याडम्बर के ऊपरी मैल को साफ किया है, तथा विवेक के द्वारा मन मे किसी प्रकार की द्विविधा उत्पन्न नही होने दी है। इस प्रकार अहकार की गाँठो और ममता के बन्धनो से मुक्त होकर जीव की लौ आत्मस्वरूप मे लग गई है। माया के फेर मे जो बैठे-ठाले के व्यर्थ के काम थे, वे भी समाप्त हो गए हैं और इस प्रकार आत्मा मे अभय पद प्रकाशित हो गया है। कबीरदास कहते हैं कि इस हरि-स्मरण रूपी वस्त्र को बुनते हुए मुझे परम सुख (परम सत्य के साक्षात्कार) की प्राप्ति हुई है और दुख-रूप ससार का नाश हो गया है।

अलकार— (i) रूपकातिशयोक्ति— सम्पूर्ण पद।
(ii) साग रूपक—दस=पाई।
(iii) विरोधाभास—अनत नाउ गिनि लई।

विशेष—(i) साधना के प्रतीको का प्रयोग है।

(ii) नाम स्मरण की महिमा का निर्देश है। इसमे ज्ञान और योग दोनो का योग है। साधक कबीर का आत्म-विश्वास द्रष्टव्य है।

(२८९)

भाई रे सकहु न तनि बुनि लेहु रे,
पीछै रांमहि दोस न देहु रे ।।टेक।।
करगहि एक बिनांनी ता भीतरि पंच परांनी ।।
तामै एक उदासी, तिहि तणि बुणि सबै बिनासी ।।

जे तूं चौसठि बरियां धावा, नही होइ पच सूं मिलांवा ॥
जे तै पांसै छसै तांणी, तौ तूं सुख सूं रहै परांणी ।
पहली तणियां ताणां पीछै बुणिया बांणां ॥
तणि बुणि मुरतब कीन्हां, तब रांम राइ पूरा दीन्हां ॥
राछ भरत भई सझा, तारुणी त्रिया मन बधा ॥
कहै कबीर बिचारी, अब छोछी नली हंमारी ॥

शब्दार्थ- तनि=तानकर। करगहि=शरीर रूपी करघा। बिनानी=विज्ञानी एव विवेकी। उदासी=उदासीन (प्रनिविम्बित चैतन्य से तात्पर्य है। आत्मा छसै ताणी=छ चक्रो मे प्राण-सचार करोगे। मुरतब=मुरत्तब, तैयार। राछ=ताने का तराव उठाने गिराने का जुलाहो का औजार। सझा=सन्ध्या। तरुणी त्रिया=युवती पत्नी। छोछी=छूँछी, खाली।

सन्दर्भ—कबीरदास कायायोग के द्वारा ज्ञान-प्राप्ति का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—कबीरदास ससारी जीवो को चेतावनी देते हुए कहते है कि रे भाई, यदि कर सको तो हरि-स्मरण रूपी ताना-बाना (वस्त्र) बुन लो। बाद मे भगवान (भाग्य) को दोष मत देना इस वस्त्र को बुनने के लिए तुम्हारे पास मानव-शरीर रूपी करछा है जो विज्ञानमय एव विवेकी है। इस करछे मे पाँच प्राण (प्राण, अपान, उदान, समान एव व्यान) रूपी पाँच प्राणी हैं। इसमे एक आत्मा (प्रतिविम्वित चैतन्य) भी है, जो साक्षी स्वरूप उदासीन है। ससारी जीव ने अपने प्रकार के विषय-विकारो मे फस कर उसको नष्ट कर दिया है। अगर तुम चौसठ बार (६४ घडी) अर्थात् दिन रात भी प्राणायाम करोगे, तब भी उन पाँच प्राणो से तुम्हारा सयोग नही हो पाएगा। अगर तुम षट्चक्रो मे प्राण-सचार रूप बाना बुनोगे तो हे प्राणी! तुझको परम आनन्द की प्राप्ति होगी। (अगर तुम पाँचो प्राणो को उसी साधना की ओर उन्मुख करने रूप ताना तानोगे बाद मे मन सहित बुनोगे, तो तुम्हे परम आनन्द की प्राप्ति होगी)। यही क्रम है कि पहले ताना तनना चाहिए, बाद मे बाना। अर्थात् पहले इन्द्रियो के विषयों को वश मे करना चाहिए। बाद मे वृत्तियों को ईश्वरोन्मुख। इस प्रकार के ताने-बाने से हरि-स्मरण रूप वस्त्र बुनने पर स्वयं राम ही पूर्ण तत्व के दर्शन रूप पारिश्रमिक देंगे। सामान्य जीवो की दशा यह है कि राछ भरते-भरते ही सायकाल हो जाता है अर्थात् बुनाई से सम्बन्धित औजारो को भरने मे ही समस्त दिन व्यतीत कर देते हैं। तात्पर्य यह है कि वे पूजा-पाठ आदिक वाह्याचार मे ही पूरी आयु व्यतीत कर देते हैं। उसके बाद सायकाल होते ही उन्हे अपनी युवती पत्नी का मोह सताने लगता है, और वे सोने की तैयारी करने लगते हैं। तात्पर्य यह है कि जीवन की सध्या आजाने के पश्चात् वे मृत्यु की गोद मे सो जाते हैं। कबीरदास विचार पूर्वक कहते हैं कि हमने तो ठीक तरह से बुनकर वस्त्र पूरा कर दिया है और अब हमारी नली एक दम खाली है अर्थात् हमारे समस्त कर्म निश्शेष हो गए हैं और हमारा पुनर्जन्म नही होगा।

अलंकार—(i) रूपक—करघा रूपी शरीर।

(ii) व्यतिरेक—करगहि एक विनानी।

(iii) पदमैत्री—तणि बुणि, तणिया ताणा बुणियाँ बाणा।

(iv) विशेषोक्ति की व्यजना— जेतूं ·····मिलावा।

विशेष—(i) जुलाहे के व्यापार को लेकर साधना का रूपक बाँधा है। अपने प्रति प्रेम एव अपने धर्म के प्रति आस्था भगवत्प्राप्ति का मूल मन्त्र है। कबीर ने जुलाहा का काम करते हुए मोक्ष पद की प्राप्ति की। ठीक ही है—

श्रेयान्स्वधर्मो विगुण परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधन श्रेय परधर्मो भयावहः।

(श्रीमद्भगवद्गीता, ३/३५)

कागभुसुडि जी ने भी तो यही कहा था—

यातें यह तन मोहि प्रिय भयउ राम पद नेह।
निज प्रभु नैनन देखेउँ, गयेउ सकल संदेह।

(रामचरितमानस)

(ii) राछ भरत वधा—तुलना कीजिए—

मोहि मूढ मन वहुत विगोयो।
याके लिए सुनहु करुनामय, मै जग जनमि जनमि दुख रोयो

× × ×

डासत ही गई बीति निसा सब, कइहूँ न नाथ नींद भरि सोयो।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(२६०)

वै क्यूं कासी तजैं मुरारी,
तेरी सेवा चोर भये बनवारी ।।टेक।।
जोगी जती तपी सन्यासी, मठ देवल बसि परसै कासी ।।
तीन बार जे नित प्रति न्हावै, काया भींतरि खबरि न पांवै ।।
देवल देवल फेरी देहीं नांव निरंजन कबहुँ न लेहीं ।।
चरन विरद कासी कौंन देहूं, कहै कबीर भल नरकहि जैहूं ।।

शब्दार्थ—देवल = देवालय। अरसै = स्पर्श, उपयोग। विरद = यश।

सन्दर्भ – कबीरदास वाह्याचारी दभियो की निंदा करते हैं।

भावार्थ—हे मुरारी, जिन लोगो ने भगवान की सेवा मे चोरी की है वे काशी को क्यो छोडने लगे ? तात्पर्य यह है कि जिन्होने भगवान का नाम नही लिया है, वे काशीवास द्वारा ही अपने उद्धार की आशा कर सकते हैं। योगी, यती, तपस्वी, सन्यासी ये सब मठो और देवालयो मे रहते हुए काशी-वास का उपभोग करते हैं। वे नित्य प्रति तीन बार स्नान (गगा स्नान) करते हैं, परन्तु अन्तःकरण मे विराजमान परम तत्व की ओर ध्यान नही देते है। वे मदिर-मदिर घूमते फिरते

हैं, परन्तु निराकार निर्गुण ब्रह्म का नाम कभी नही लेते है। कबीर कहते हैं कि (मोक्ष की प्राप्ति तो भगवान के चरणो की कृपा से सम्भव है) भगवान के चरणो का यह यश मैं काशी को कभी नही दूँगा, चाहे मुझे नरक मे ही क्यो न जाना पडे।

अलंकार—(i) पुनरुक्ति प्रकाश— देवल देवल।

विशेष— (i) मुक्ति का श्रेय भगवान को ही है, काशी को नही। अनन्य भक्त की भाँति कबीरदास अपने इष्टदेव की महिमा को अक्षुण्ण मानते हैं। वह तो अन्यत्र भी कह चुके हैं कि 'जो कासी तन तजै कबीरा, रामहि कहा निहोरा ?"

(ii) काशी मे मृत्यु होने पर मुक्ति हो जाती है। इस रूढिबद्ध धारणा का खण्डन है।

(iii) इस पद मे मगहर के पूर्व काशी-त्याग का उनका सकल्प व्यक्त हुआ है, क्योकि काशी-वास से मुक्ति-लाभ मे इनका विश्वास बिलकुल नही था।

(२९१)

तब काहे भूलौ बनजारे,
अब आयौ चाहै सगि हमारे ॥टेक॥
जब हंम बनजी लौंग सुपारी, तब तुम्ह काहे बनजी खारी ।
जब हम बनजो परमल कसतूरी, तब तुम्ह काहे बनजी कूरी ॥
अमृत छाड़ि हलाहल खाया, लाभ लाभ करि मूल गँवाया ॥
कहै कबीर हम बनज्या सोई, जाथै आवागमन न होई ॥

शब्दार्थ— बनजारे=व्यापार करने वाला।

संदर्भ—कबीरदास अज्ञानी साधक को एक नादान व्यापारी के रूप मे सम्बोधित करते हैं।

भावार्थ - रे साधक रूपी व्यापारी, उस समय तो तू इधर-उधर की साधनाओ मे भटकता रहा और अब (जीवन को सन्ध्या समय) तू मेरा अनुयायी बनना चाहता है ? जब हम यम-नियम (भक्ति) रूप लौंग सुपारी का व्यापार करते थे, उस समय तुम विषय वासना रूप नमक के व्यापार मे उलझे रहे। जब हम ज्ञान और भक्ति रूप कस्तूरी एव अन्य सुगन्धित वस्तुओ का व्यापार करते थे, तब तुम व्यर्थ की साधनाओ रूप कारी जैसी घास के व्यापार मे फँसे रहे। तुमने भक्ति-रूपी अमृत छोडकर विषय-वासना रूप विष का पान किया है। तुमने अत्यधिक मुनाफे के चक्कर मे गाँठ की पूँजी भी गँवादी है अर्थात् तुमने सासारिक लाभ के लोभ मे अपने शुद्ध स्वरूप रूप मूल धन को भी खो दिया है। कबीरदास कहते हैं कि हमने तो भगवत्प्रेम रूपी उसी व्यापार को किया जिससे ससार मे आवागमन नही होता है अर्थात् जिससे फिर ससार मे जन्म नही लेना पडता है।

अलकार—(i) रूपकातिशयोक्ति—लौग सुपारी, खारी, अमल कस्तूरी, कूरी, अमृत, हलाहल मूल।

(ii) गूढोक्ति—अब ······हमारे।

(iii) पुनरुक्ति प्रकाश—लाभ लाभ।

विशेष—(i) कबीरदास विषयासक्त व्यक्तियों को सावधान करते हैं।

(ii) कबीर की यथार्थवादी दृष्टि द्रष्टव्य है।

(२६२)

परम गुर देखो रिदै बिचारी,

कछू करो सहाइ हंमारी ।।टेक।।

लावानालि तंति एक समि करि, जंत्र एक भल साजा।

सति असति कछू नहीं जानूं, जैसे बजावा तैसे बाजा।।

चोर तुम्हारा तुम्हारी आग्या, मुसियत नगर तुम्हारा।

इनके गुनह हमह का पकरौ, का अपराध हमारा।।

सेई तुम्ह सेई हम एकै कहियत, जब आपा पर नहीं जांनां।

ज्यूं जल मैं जल पैसि न निकसै, कहै कबीर मन मांनां।।

शब्दार्थ—रिदै=हृदय। सहाइ=सहायता। लवा=लौकी के तूंबा। नालि=नली, डंडा। तंत=तांत, अनेक शिराएँ। एक समि=एकत्र। सत असत= सही गलत। चोर=काम क्रोधादि। मुसियत=लूटते है। सेई=वही।

सन्दर्भ—कबीरदास परमात्मा को सम्बोधित करके कहते है कि "जो कुछ है सब तोर।"

भावार्थ—हे परम गुरु परमात्मा, आप अपने हृदय पर हाथ रख कर विचार करो कि मेरी क्या गलती है। और मेरी कुछ सहायता करो। आपने अनेक अग रूपी तुम्बा, मेरु दण्ड रूपी नालि तथा विभिन्न शिराएँ रूपी तात एकत्र करके यह शरीर रूपी सुन्दर बाजा तैयार किया। इस शरीर रूपी बाजे से निकलने वाली ध्वनि भली है अथवा बुरी, यह मैं कुछ नही जानता हूँ। आप इसको जिस प्रकार बजाते हैं, उस प्रकार यह बजता रहता है। कहने का तात्पर्य यह है कि मैं प्रत्येक कार्य आपकी प्रेरणा से करता रहता हूँ। औचित्यानौचित्य का विचार मैं नही करता हूँ। इस शरीर मे काम क्रोधादि विकार रूप जो चोर रहते हैं, वे भी तुम्हारी ही प्रेरणा स्वरूप रहते है। वे तुम्हारे ही नगर रूपी इस शरीर को लूटते रहते हैं। इन चोरो के अपराध के लिए आप मुझको क्यो दण्डित करना चाहते हैं? यदि ये चोर आपकी प्रेरणा से इस नगर को नष्ट कर रहे हैं, तो इसमे मेरा क्या दोष है? जो आप हैं, वही मैं हूँ। मैं तो अपने और पराए का भेद जानता ही नही हूँ। कबीर कहते हैं कि जिस प्रकार जल मे प्रवेश करने वाला जल उसी के साथ एकाकार हो जाता है और फिर उससे पृथक नही किया जा सकता है, उसी प्रकार मैं भी आपके साथ तदाकार हो गया हूँ।

अलकार—(i) साग रूपक—लवानालि बाजा।

(ii) सभग पद यमक—सत असति।

(iii) असगति की व्यजना—इनके ......हमारा ।

(iv) उदाहरण—ज्यूँ .. माना ।

विशेष—(i) यन्त्र शरीर है चोर पच विकार हैं । नगर शरीर या मन है ।

(ii) कबीर के हृदय मे तो यह विश्वास सुदृढ जम गया है कि जो कुछ भगवान और गुरू हैं, वही हक हैं । जीवात्मा और परमात्मा अभिन्न है । जीवात्मा उस परम तत्त्व से कभी पृथक् नही हो सकता । कबीर कहते हैं कि हमारा जीवात्मा परम तत्त्व से पूर्णत तदाकार हो गया है । अद्वैतवाद का सुन्दर प्रतिपादन है ।

(iii) जीव के निर्लिप्त भाव, अकर्तापन, समर्पण एव परम तत्त्व के विलय का सुन्दर एव भावपूर्ण चित्रण है ।

(२९३)

मन रे आइर कहां गयौ,
ताथै मोहि वैराग भयौ ।।टेक।।
पंच तत ले काया कीन्हीं, तत कहा ले कीन्हां ।
करमौं के बसि जीव कहत है, जीव करम किनि दीन्हां ।।
आकास गगन पाताल गगन, दसौं दिसा गगन रहाई ले ।।
आंनद मूल सदा परसोतम, घट बिनसै गगन न जाई ले ।।
हरि मैं तन है तन मै हरि है, है सुनि नाही सोई ।।
कहै कबीर हरि नांम न छाडूं, सहजै होइ सो होई ।।

शब्दार्थ—गगन=शून्य अथवा चैतन्य ।

संदर्भ—कबीर परम तत्व की सर्वव्यापकता पर विचार करते हैं ।

भावार्थ—रे मन ! तुम आकर कहाँ चले गये ? अर्थात् ईश्वरोन्मुख मन स्थिति कहाँ चली गई ? यह सोचकर कि मन अस्थिर एव चचल वस्तु है, मुझे इस मन के प्रति वैराग्य हो गया है । पच तत्वों (पृथ्वी, जल, वायु, तेज तथा आकाश) के द्वारा इस शरीर का निर्माण हुआ है । परन्तु विचारणीय यह है कि उन पच तत्वो को कहाँ से निर्मित किया गया है ? उनका मूलभूत कारण क्या है ? कहा जाता है कि जीव कर्मों के वशीभूत रहता है । परन्तु जीव को कर्मो के वशीभूत किसने किया ? आकाश के मूल मे गगन है, पाताल के मूल मे गगन है । तथा दशो दिशाओ मे भी वही गगन विराजमान है । इस प्रकार पुरुषोत्तम भगवान ही शाश्वत अनन्द के मूल स्थान है । शरीर नष्ट होता है परन्तु उसका गगन तत्व नष्ट नही होता है । शरीर भगवान मे है, एव शरीर मे भगवान व्याप्त है । शरीर है भी और नही भी है (शरीर वास्तव मे नही है ।) कबीर कहते है कि मैं भगवान का नाम स्मरण नही छोड़ूँगा । उससे जो जैसा होगा वैसा अपने आप हो जाएगा । अर्थात् जो तत्व जैसा है वह तत्व सहज रूप मे वैसा ही है । उसका निरूपण करने मे वाणी असमर्थ है । वह सहज भाव से ही प्राप्य है ।

अलकार—(i) गूढोक्ति—पच तत्व दीन्हा ।

(ii) अनुप्रास—गगन की पुनरावृत्ति ।

विशेष—परम तत्व की अनिवर्चनीयता का सुन्दर वर्णन है । और ठीक ही है—

जो समझ में आगया वह लाइन्तहा कैसे हुआ ?
जो जहन मे आ गया, वह खुदा कैसे हुआ ?

(२९४)

हमारै कौन सहै सिरि भारा,
सिर की सोभा सिरजनहारा ।।टेक ।
टेढ़ी पाग बड जूरा, जरि भए भसम कौ कूरा ।।
अनहद कीं गुरी बाजी, तब काल द्रिष्टि भै भागी ।।
कहै कबीर रांम राया, हरि कै रंगं मूंड मुडाया ।।

शब्दार्थ—सिरि भारा=सिर पर बोझा । जूटा=जूडा, केश-विन्यास की पद्धति विशेष । पुरी=तन्त्री, बाजा । कालद्रिष्टि=मृत्यु । मूंड मुडाया=बलिदान होने की तैय्यारी अथवा विरक्त होना ।

सन्दर्भ—कबीर वाह्याचार का विरोध और भगवत्प्रेम का प्रतिपादन करते हैं ।

भावार्थ - मैं सिर पर पगडी आदि का बोझा क्यो सहूँ, जब मेरे सिर की शोभा वह सृष्टिकर्त्ता है । भाव यह है कि पगडी इत्यादि धारण करके शिर को सजाना व्यथ है । शिर की शोभा तो इसी मे है कि वह भगवान के सामने झुकता रहे । सँवार कर लगाई गई तिरछी पगडी और सँवार कर बनाया हुआ बालो का जूडा, सब जल कर भस्म का ढेर हो जाते हैं । जब अनहद नाद का बाजा बजता है, तभी मृत्यु भय भागता है । कबीर कहते हैं कि मैंने तो भगवान राम के प्रेम मे अनुरक्त होकर सब कुछ त्याग दिया है ।

अलकार—(i) गूढोक्ति—हमारे '' भारा ।
(ii) अनुप्रास—सिर सोभा सिरजन हारा ।

विशेष—(i) लक्षणा—सिरि भार, मूड मुडाया ।
(ii) निर्वेद की व्यजना ।
(iii) अनहद—देखें टिप्पणी पद सख्या १५७ ।
(iv) वाह्याचार दम्भ के लक्षण है । आन्तरिक अनुभूति ही काम्य है ।

(२९५)

कारनि कौंन संवारै देहा,
यहु तनि जरि बरि ह्वै है षेहा ।।टेक।।
चोवा चंदन चरचत अंगा, सो तन जरत काठ कै संगा ।।
वहुत जतन करि देह मुट्याई, अगिन दहै कै जंबुक खाई ।।
जा सिरि रचि रचि बांधत पागा, ता सिरि चंच सँवारत कागा ।।
कहि कबीर तव झूठा भाई, केवल रांम रह्यो ल्यौ लाई ।।

शब्दार्थ—खोहा=धूल। चोवा=सुगन्धित द्रव कई गध द्रव्यो को मिलाकर बनाया जाने वाला एक सुगन्धित द्रव्य। मुटयाई=पुष्ट की। जम्बुक=गीदड। चच=चोच।

संदर्भ—कबीर ससार की असारता का प्रतिपादन करते हैं।

भावार्थ—इस शरीर का साज-शृगार किस लिए किया जाए ? यह शरीर जल भुनकर राख की ढेरी हो जाएगा। जिस शरीर पर सुगन्धित द्रव्यो और चन्दन का लेप किया जाता है, वही शरीर चिता मे लकडियो के साथ जल जाता है। जिस शरीर को अनेक यत्न करके पुष्ट किया जाता है, वह शरीर अग्नि मे जल जाता है अथवा उसको गीदड खाते हैं। जिस सिर पर सजा-सजा कर पगडी बाधी जाती है, उस सिर पर कौए अपनी चोच सँवारते है (मारते हैं)। कबीर कहते हैं कि हे भाई! तब यह शरीर नाशवान और मिथ्या है। हमे केवल राम के प्रति ही अपनी लौ (अपना ध्यान) लगाना चाहिए।

अलकार—(i) गूढोक्ति—कारन देहा।
(ii) अनुप्रास—चोवा चन्दन चरचत।
(iii) पुनरुक्ति प्रकाश—रचि रचि।

विशेष—'निर्वेद' एव वैराग्य-भाव की मार्मिक व्यजना है।

(२९६)

धन धंधा ब्यौहार सब, माया मिथ्यावाद।
पांणी नीर हलूर ज्यूं, हरि नांव बिना अपवाद ॥टेक॥
इक रांम नांम निज साचा, चित चेति चतुर घट काचा ॥
इस भरमि न भूलसि भोली, बिधना की गति है औली ॥
जीवते कूं मारन धावै, मरते कौं बेगि जिलावै ॥
जाकै हुहि जम से बैरी, सो क्यूं सोवै नींद घनेरी ॥
जिहि जागत नींद उपावै, तिहि सोवत क्यूं न जगावै ॥
जलजत न देखिसि प्रानीं, सब दीसै झूठ निदानी ॥
तन देवल ज्यूं धज आछै, पड़िया पछितावै पाछै ॥
जीवत ही कछू कीजै, हरि रांम रसाइन पीजै ॥
रांम नांम निज सार है, माया लागि न खोई ॥
अति कालि सिरि पोटली, ले जात न देख्या कोई ॥
कोई ले जात न देख्या, बलि विक्रम भोज ग्रस्टा ॥
काहू कै संगि न राखी, दीसै बीसल की साखी ॥
जब हंस पवन ल्यौ खेलै पसरचौ हाटिक जब मेलै ॥
मानिख जनम अवतारा, नां ह्वै है बारबारा ॥
कबहू ह्वै किसा बिहाना, तर पंखी जेम उडानां ॥
सब आप आप कूँ जाई, को काहू मिलै न भाई ॥

मूरखि मनिखा जनम गवाया, बर कौडी ज्यूं डहकाया ॥
जिहि तन धन जगत भुला या, जग राख्यौ परहरि माया ॥
जल अजुरी जीवन जैसा, ताका है किसा भरोसा ॥
कहै कबीर जग धधा, काहे न चेतहु अधा ॥

शब्दार्थ—व्यौहार सब=समस्त क्रिया कलाप। मिथ्यावाद=नाशवान। हबूर=हिलोर, लहर। अपवाद=निंदा। घट=शरीर। काचा=कच्चा। भोली =मूर्ख जीवात्मा। औली=विचित्र, अनोखी। घनेरी=गहरी। जल जन्त=जल जन्तु, जल के जीव। रेवल=देवायत, मन्दिर। धज=ध्वज। हाटिक=स्वर्ण। मानिख=मनुष्य। बिहाना=छोडकर। डहकाया=खो देता है। अजुरी=अजलि। ताका=उसका। गरिहठ=सम्मानित।

सन्दर्भ—कबीर जीवन और जगत की निस्सारता का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—धन, ससार के धन्धे तथा समस्त क्रिया कलाप मायारूप और नाशवान है। ये सब पानी मे उठने वाली लहर के समान क्षणिक हैं। भगवान के नाम के बिना ये समस्त पदार्थ निंदा के हेतु हैं। केवल राम नाम ही मूलत सत्य है। रे चतुर, तू अपने मे विचार करके देखले। यह शरीर कच्चे घडे के समान है। रे भोली जीवात्मा! तू इस शरीर को सब कुछ समझने की भूल मत कर। यह भ्रम है। भगवान की लीला बडी ही विचित्र है। यह जीवित को मारने के लिए उद्यत रहती है। अथवा मार देती है तथा मरते हुए को जीवन-दान कर देती है। जिस जीव का यमराज के समान शत्रु हो अर्थात् जिसके सिर पर मृत्यु सदैव नाचती रहे, वह किस प्रकार निश्चिन्त होकर सो सकता है। जो जागते हुए भी नींद उत्पन्न करता है अर्थात् ज्ञान स्वरूप होते हुए भी अज्ञान द्वारा ग्रस्त रहता है, उसको सोते हुए से क्यो न जगाया जाए? अर्थात् अज्ञान द्वारा ग्रस्त प्राणियों को ज्ञान अवश्य दिया जाना चाहिए! गुरुज्ञान के द्वारा मोह निद्रा मे ग्रस्त व्यक्ति ज्ञान और भक्ति की ओर अग्रसर हो सकते हैं। प्राणी जल मे छिपे हुए जल-जन्तुओ को नही देख पाता है और वे जन्तु इस को खा जाते है। उसी प्रकार सासारिक व्यवहार के पीछे छिपे हुए नाश को प्राणी नही देख पाता है, और अन्तत नाश होने पर ससार का मिथ्यात्व प्राणी की समझ मे आता है। यह शरीर देवालय की भाँति अपने अहकार रूप ध्वजा को फहराता रहता है। शरीर के पडने पर अर्थात् मृत्यु के समय केवल पश्चाताप मात्र ही शेष रह जाता है। अतएव व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने जीवन काल मे ही ज्ञान-भक्ति का कुछ आचरण करे। उसे राम रूपी रसायन का पान करना चाहिए। राम-नाम का स्मरण ही वास्तव मे सार तत्व है। माया मे फँस कर मनुष्य को अपना जीवन नही खोना चाहिए। सासारिक वैभव एकत्र करने वालो को हमने अन्तकाल मे उस गठरी को अपने सिर पर ले जाते हुए नही देखा है। (सबको खाली हाथ ही जाते देखा है)। बलि, विक्रमादित्य भोज जैसे सम्मानित राजाओ मे से भी किसी को इस वैभव को साथ ले जाते हुए

नही देखा। इस धन-दौलत ने किसी का भी साथ नही दिया। राजा भी इसकी साक्षी (गवाही) हैं। जब जीवात्मा प्राणायाम के द्वारा शून्य तत्व मे लौ लगा कर क्रीडा करता है, तब उसको सर्वत्र व्याप्त आनन्द रूप सुवर्ण की प्राप्ति होती है। मनुष्य का जन्म बार-बार नही मिलता है। ये जीवन क्षण भगुर है। ये प्राण किसी समय शरीर को छोडकर ऐसे चले जाएँगे जैसे वृक्ष को छोडकर पक्षी उड जाता है। ससार का प्रत्येक प्राणी अपने-अपने रास्ता अकेला ही जाता है। परलोक-गमन के मार्ग मे कोई किसी से नही मिलता है। मूर्ख जीव मनुष्य का जन्म (विषय भोग मे) व्यर्थ ही गँवा देता है और कौडी के मूल मे ही उसको खो देता है। जिस शरीर और धन के कारण ससार के लोग अपने आप को भूले हुए हैं और जगत जिसकी रक्षा मे लीन है, उसी माया का परित्याग करो। यह जीवन हाथ की अजलि मे भरे हुए पानी के समान क्षण-स्थायी है। इसका क्या भरोसा ? कबीर कहते हैं कि यह ससार व्यर्थ का प्रपच है। रे अज्ञानी जीव, तू क्यो नही चेतता है—होश मे आता है ?

अलंकार—(i) छेकानुप्रास—धन धधा, माया मिथ्यावाद।
(ii) कछु कीजै, राय रसायन, जगत जग। जल जीवन। मूरख मनिषा।
(iii) उपमा—हलूर ज्यू। जम से। देवल जूँ। पखी जेम। कौडी ज्यूँ। जाल अजुरी जैसा।
(iv) वृत्यानुप्रास—चित चेति चतुर, भरमि भूलसि भोली। पडिया पछतावै पाछै।
(vi) श्लेशपुष्ट रूपक—घट।
(vii) वक्रोक्ति—क्यूँ घनेरी। तिहिं जगावै।
(viii) विरोधाभास—जगत नीद उपावै।
(ix) दृष्टान्त - जलजत · निदानी।
(x) रूपकातिशयोक्ति की व्यजना —धज। हाटिक।
(xi) रूपक—राम रसाइन।
(xii) गूढोक्ति—ताका भरोस।
(xiii) पदमैत्री—राम नाम, धधा अधा।

विशेष—(i) जीवन और जगत की असारता का प्रतिपादन है।
(ii) 'निर्वेद' की मार्मिक व्यजना है।
(iii) जीवन की क्षणिकता को व्यक्त करने के लिए जल अजुरी जीवन जैसा" बडी ही सार्थक उपमा का प्रयोग किया गया है।
(v) हस, पवन, हाटिक - नाथ सप्रदाय के प्रतीको का प्रयोग है।
(iv) मानेख जनम बारबारा—तुलना करें—

बडे भाग मानुष तन पावा। सुरदुरलभ सद् ग्रन्थन गावा।
(गोस्वामी तुलसीदास)

(vi) वर कौड़ी··· डहकाया—समभाव देखें—

रात गँवाई सोय कर, दिवस गँवायो खाय।
हीरा जनम अमोल था, कौड़ी बदले जाय।

(vii) वलि—यह एक पौराणिक पात्र है। यह एक प्रसिद्ध प्रतापी दानी राजा थे। विष्णु ने वामन अवतार धारण करके इनसे तीन पग पृथ्वी दान माँगी थी। दो पगो मे विष्णु ने समस्त पृथ्वी नाप ली थी और तीसरा पग इनके सिर पर रखा और वलि को पाताल भेज दिया। इस प्रकार इनकी दानशीलता की ओट मे विष्णु ने वलि को छला था। बलि विरोचन के पुत्र और प्रहलाद के पौत्र कहे जाते है।

(viii) राजा विक्रमादित्य, राजा भोज तथा राजा बीसलदेव ऐतिहासिक पात्र हैं।

विक्रम—यह एक बडे प्रतापी और प्रसिद्ध राजा हुए हैं। महाकवि कालिदास इन्ही के दरबार के नवरत्नो मे एक थे—ऐसा कहा जाता है। विक्रम सवत् के प्रस्थापक आप ही थे। आपके विषय मे सिंहासन वत्तीसी' और अनेक दन्तकथायें प्रचलित है।

भोज—यह उज्जैन के राजा थे जिन्होने अपनी राजधानी धारा बनाई थी। इनका पालन-पोषण इनके चाचा राजा मुज द्वारा हुआ था। राजा भोज एक सुयोग्य शासक थे। वह स्वय बहुत बडे विद्वान थे और विद्वानो का आदर करते थे। उनकी राजसभा के पण्डितो की भी वहुत सी कथाएँ प्रचलित हैं।

बीसलदेव—वीसलदेव अजमेर के चौहान राजा थे। इनका नाम विग्रहराज चतुर्थ भी है। इनका समय सवत् १२२० के आसपास है।

यह बडे ही प्रतापी और वीर राजा थे। इन्होने मुसलमानो के विरुद्ध कई चढाइयाँ की थी और कई प्रदेशो को खाली कराया था। इनके वीरचरित का वहुत कुछ वर्णन इनके राजकवि सोमदेव-रचित 'ललित विग्रहराज' नाटक मे है। जिसका कुछ अश वडी-वडी शिलाओ पर खुदा मिलता है। नरपति नाल्ह ने इन्ही के चरित को लक्ष्य करके 'वीसलदेव रासो' की रचना की थी।

(२९७)

रे चित चेति च्यंति लै ताही,
जा च्यतत आपा पर नांहीं ॥टेक॥
हरि हिरदै एक ग्यांन उपाया, तार्थं छूटि गई सब माया॥
जहां नाद न व्यंद दिवस नाही राती, नही नरनारि नहीं कुल जाती।
कहै कबीर सरब सुख दाता, अविगत अलख अभद विधाता॥

शब्दार्थ—च्यति=ध्यान कर, चिन्तन कर। ताही=उसी का। आपा पर =अपना-पराया।

सन्दर्भ—कबीरदास परम तत्त्व के साक्षात्कार का वर्णन करते है।

भावार्थ—रे चित तुम सावधान होकर उस परम तत्त्व का ध्यान करो जिसके चिन्तन से अपने-पराए का भेद नष्ट हो जाता है। मेरे हृदय मे भगवान ने वह ज्ञान उत्पन्न कर दिया है जिससे सम्पूर्ण माया-मोह का बन्धन नष्ट हो गया है। उस परम तत्व के साक्षात्कार की अवस्था मे न नाद है, और न बिन्दु (शरीर) है। उस अवस्था मे नर, नारी, कुल एव जाति किसी प्रकार का भी भेद नही है। (वह सम अवस्था है।) कवीर कहते हैं कि उस परम तत्व का साक्षात्कार सब सुखो का देने वाला है। उस परम तत्व को ज्ञानेन्द्रियो द्वारा नही जाना जा सकता है, उसको स्थूल दृष्टि द्वारा देखा नही जा सकता है, सामान्य बुद्धि द्वारा उसका निरूपण नही किया जा सकता है क्योकि वह पूर्ण एकत्व (अभेद को प्राप्त है, और वही सबका सिरजनहार हैं।

अलंकार— अनुप्रास—चित चेति च्यति, अविगत अलख अभेद।

विशेष—(i) परम तत्व एव उसकी अनुभूति अनिर्वचनीय है।

(ii) 'परा तत्व' के साक्षात्कार की अवस्था मे नाद और बिन्दु के भी न होने की बात कह कर कबीर ने परम तत्व को 'कायायोग' द्वारा प्राप्त अवस्था से भी अतीत बता दिया है।

(२९८)

सरवर तटि हसणी तिसाई

जुगति बिनां हरि जल पियां न जाई ।।टेक।।

पीया चाहै तौ लै खग सारी, उडि न सकै दोऊ पर भारी ।।

कु भ लीयैं ठाढी पनिहारी, गुन बिन नीर भरै कैसे नारी ।।

कहै कबीर गुर एक बुधि बताई, सहज सुभाइ मिलै रांम राई ।।

शब्दार्थ—तिसाई=तृषिता, प्यासी। खग=पक्षी। ससिनी=आत्मा। जुगति युक्ति, साधना, भक्ति। पीया=पीना। सारी=गमन करने वाला। कु भ=घडा। गुण=नाम स्मरण।

भावार्थ—आत्मानन्द रूपी तालाब के तट पर बैठी हुई जीवात्मा रूपी हसिनी प्यासी है। इसमे आश्चर्य की क्या बात है ? साधना रूपी युक्ति के बिना परमानन्द रूपी जल का पान सम्भव नही होता है। रे जीवात्मा रूपी हसिनी, यदि तू उस जल को पीना चाहती है, तो तू वहाँ तक गमन कर। परन्तु वस्तु स्थिति यह है द्वैत भाव एव सशय के कारण तेरे दोनो पख उडने मे असमर्थ हैं। कुण्डली रूपी पनिहारिन साधना रूपी घडा लिए खडी है, परन्तु भगवान के नाम-स्मरण रूपी रस्सी के अभाव मे वह अमृत-जल नही भर सकती है। कबीर कहते हैं कि मेरे गुरू ने इस आनन्दामृत पान की भक्ति रूपी एक युक्ति बता दी है। उसी के द्वारा भगवान राम सहज भाव से प्राप्त हो गए है।

अलकार— (i) रूपकातिशयोक्ति— सम्पूर्ण पद।

(ii) विरोधाभास—सरवर.... 'ससाई।

विशेष—(i) नाथ पथ के प्रतीको का प्रयोग है।

(ii) कायायोग की साधना की अपेक्षा भक्ति की श्रेष्ठता एव सुगमता का प्रतिपादन है।

(iii) कुण्डलिनी – देखें टिप्पणी पद सं० २१९।

(iv) कायायोग की साधना के लिए देखे टिप्पणी पद संख्या ४।

(२९९)

भरथरी भूप भया बैरागी।
विरह वियोग बनि बनि ढूंढै, वाकी सुरति साहिब सौं लागी ॥ टेक ॥
हसती घोड़ा गांव गढ़ गूडर, कनड़ा पा इक आगी।
जोगी हवा जांणि जग जाता, सहर उजीणीं त्यागी ॥
छत्र सिघासण चवर ढुलंता राम रग बहु आगी।
सेज रमैणी रभा होरी, तासौं प्रीति न लागी ॥
सूर बीर गाढा पग रोप्या, इह विधि माया त्यागी।
सब सुख छाडि भज्या इक साहिब, गुरु गोरख ल्यौ लागी ॥
मनसा वाचा हरि हरि भाखै, गंध्रप सुत बड भागी।
कहै कबीर कुदर भजि करता, अमर भए अणरागी ॥

शब्दार्थ—भूप=राजा। सुरति=लय, लगन। साहिब=स्वामी, ब्रह्म। हसती=हाथी। गूडर=गढी, छोटा किला। उजीडी=उज्जैन। गाढा - दृढ। रोप्या, लगाया। कुदर=कुदरत, ईश्वरीय शक्ति।

संदर्भ– कबीरदास राम-भजन की महिमा का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—राजा भर्तृहरि वैरागी हो गया। उसकी लगन ब्रह्म से लग गई थी और वह भगवान के वियोग मे विरह-दुख से पीडित होकर अपने प्रभु को वन-वन ढूँढता फिरा। हाथी, घोडा, ग्राम, किला, गढी, ऐश्वर्य आदि उपकरण उसके लिए अग्नि स्वरूप थे। समस्त ससार जानता है कि वह जोगी हो गए थे और उन्होने (अपनी राजधानी) उज्जैन नगर का त्याग कर दिया था। उनके पास छात्र, सिंहासन चारो ओर डोलते हुए चँवर आगे होते हुए अनेक प्रकार के राग रग तथा शैय्या पर रम्भा जैसी सुन्दरी रमणियाँ थी। उन सबके प्रति वह राजा आसक्त नही हुआ। उन सबके विरोध मे उस वीर शूरमा ने अपने पाँव दृढता पूर्वक जमा दिये अर्थात् उनका आकर्षण उसको टस से मस नही कर सका और इस प्रकार उसने माया (समस्त आसक्तियो) का परित्याग कर दिया। उसने समस्त सासारिक सुखो को त्याग कर एक भगवान का भजन किया और गुरु गोरखनाथ मे ही अपनी लौ लगा दी। मन और वाणी से उसने भगवान का भजन किया। वह गंधर्प सुत बडा ही भाग्यशाली था कबीर कहते हैं कि वह ईश्वर के प्रति अनुरक्त राजा ईश्वरीय शक्ति का स्मरण करते हुए अमर पद को प्राप्त हुआ।

अलकार—(i) अनुप्रास– भरथरी, भूप भया, बिरह वियोग वनि बनि वाकी, गाँव, गढ, गूडर ।
(ii) पुनरुक्ति प्रकाश—वनि बनि, हरि हरि ।
(iii) रूपक—रमैणी रभा ।

विशेष—(i) राम भक्ति के प्रति आस्था स्पष्ट है ।

(ii) कबीर पौराणिक आख्यानो के महत्व को स्वीकार करते हैं ।

(iii) **भरथरी** – यह उज्जैन के राजा थे जिन्हे अपनी रानी पिंगला का चरित्र देखकर वैराग्य उत्पन्न हो गया था । अतएव यह अपना सब राज-पाट अपने भाई विक्रमादित्य को देकर योगी हो गए थे । यह बडे ही विद्वान थे । इनके द्वारा लिखे हुए तीन शतक-शृगार शतक, नीति शतक एव वैराग्य शतक—बहुत प्रसिद्ध हैं।

(iv) **गोरखनाथ**—यह नाथ सम्प्रदाय के प्रवर्तक एव नौ नाथो मे सर्वप्रथम माने जाते हैं । कबीर ने अनेक स्थलो पर इनको सद्गुरु के रूप मे इनका उल्लेख किया है । कहते हैं कि इन्होने अपने गुरु मत्स्येन्द्रनाथ का उद्धार किया था । कहा भी जाता है—"जाग मच्छेन्द्र गोरख आया ।"

गोरखनाथ के समय के सम्बन्ध मे विद्वानो मे मतभेद है । उनका समय विक्रम की १० वी और १३ वी शताब्दी के बीच माना जाता है ।

राग केदारी

(३००)

सार सुख पाइये रे,
रगि रमहु आत्मांराम ।। टेक ।।
बनह बसे का कीजिये, जे मन नही तजै बिकार ।
घर बन तत समि जिनि किया, ते बिरला ससार ।।
का जटा भसम लेपन कियें, कहा गुपत मै बास ।
मन जीत्यां जग जीतिये, जौ विषया रहै उदास ।।
सहज भाइ जे उपजै, ताक किसा मांन अभिमान ।
आपा पर समि चीनियै, तब मिलै आतमांरांम ।।
कहै कबीर कृपा भई, गुर ग्यांन कह्या समझाइ ।
हिरदै श्री हरि भेंटियै, जे मन अनतै नहीं जाइ ।।

शब्दार्थ—सार - सच्चा । तत = इसलिए । समि = समाना विषया = विषयो के प्रति ।

सदर्भ - कबीरदास अ त. साधना का प्रतिपादन करते है ।

भावार्थ—रे जीव, अपने आत्माराम के प्रेम मे रग कर उसी मे रम जाओ और इस प्रकार वास्तविक सुख की प्राप्ति करो । अगर मन के विकार (काम, क्रोध, लोभ मोह एव मत्सर) नही छूटते हैं, तो सन्यासी वन कर वन मे जाकर रहने से

क्या लाभ हो सकता है ? ऐसे व्यक्ति ससार मे बहुत थोडे ही है जिन्होने सच्ची साधना की दृष्टि से घर को ही वन के समान कर लिया है। जटा रखने, भस्म रमाने अथवा गुफा मे वास करने से कोई लाभ नही होता है। यदि विषयो के प्रति उदास रह कर मन को जीत लिया जाए, तो ससार को जीत लिया जाता है। जिसके हृदय मे भगवान के प्रति स्वाभाविक प्रेमानुभूति उत्पन्न हो जाती है अथवा सहज की अनुभूति जाग जाती है, वे मानापमान के परे हो जाते हैं—उनको न किसी प्रकार का अहकार रह जाता है और न उन्हे किसी प्रकार के मान-मर्यादा की इच्छा शेष रह जाती है। जब व्यक्ति अपने और पराए को समान समझने लगता है, तभी उसे आत्म-स्वरूप का साक्षात्कार होता है—अर्थात् समबुद्धि के द्वारा ही आत्मदर्शन सम्भव है। कबीर कहते हैं कि हमारे ऊपर तो गुरू की कृपा हो गई है। उन्होने हमे आत्म-ज्ञान समझा दिया है। अगर मन इधर-उधर न भटके तो हृदय मे ही भगवान के दर्शन हो जाते हैं।

अलंकार—(i) वक्रोक्ति—का···· बास।

(ii) अनुप्रास—जीत्या जग जीतिये।

(iii) सभग पद यमक—भाव अभिमान।

विशेष—औपनिषदिक ज्ञान का प्रभाव स्पष्ट है। उपनिषद् और गीता मे अनेक स्थानो पर समबुद्धि का प्रतिपादन किया गया है तथा मानापमान रहित होना सफल साधक का लक्षण बताया गया है। यथा – देखें श्रीमद्भगवद्गीता के ये वचन—

दु खेदवनुद्विग्नमना सुखेषु विगतस्पृह ।
वीतराग भयक्रोध स्थितधीर्मुनिरुच्यते। (७/५६)

तथा— निर्ममो निरहंकार स शान्तिमधिगच्छति। (२/७१)

तथा— "आत्मवत् सर्वभूतेषु य पश्यति स पश्यति।"

—श्रीमद्भगवद्गीता

(३०१)

है हरि भजन कौ प्रवांन।
नींच पांवै ऊच पदवी, बाजते नींसान ॥ टेक ॥
भजन कौ प्रताप ऐसो, तिरे जल पाषान ।
अधम भील अजाति गनिका, चढ़े जात बिवांन ।
नव लख तारा चलै मंडल, चलै ससिहर भांन ।
दास धूकौं अटल पदवी, रांम को दीवांन ॥
निगम जाकी साखि बोलै, कहै संत सुजांन ।
जन कबीर तेरी सरनि आयौ राखि लेहु भगवांन ॥

शब्दार्थ—प्रवान=प्रमाण। नीसान=निशान, डंका। पाषान=पत्थर धू=ध्रुव। दीवान=शाहीदरबार, प्रधानमत्री।

सदर्भ– कबीरदास भगवद्भजन के प्रभाव का वर्णन करते हैं।

भावार्थ— यह हरि के भजन के कल्याणकारी प्रभाव का प्रमाण है कि नीच व्यक्ति भी डके की चोट उच्च पद को प्राप्त हो जाता है। भगवान के भजन का ऐसा प्रभाव है कि पत्थर भी पानी मे तैरने लगते है। अधम भील (गुह निपाद, शबरी) एव निम्न जाति की वेश्या भी विमान पर बैठकर वैकुण्ठ चले गये। नौ लाख तारो का समूह, चन्द्रमा और सूर्य सब निरन्तर गतिशील बने हुए हैं, पर भक्त ध्रुव की पदवी अटल है—ध्रुवतारा अपने स्थान पर स्थिर बना रहता है, उसको अन्यान्य ग्रह नक्षत्रो की भाँति भ्रमित नही होना पडता है। वह भगवान राम के दरबार मे उच्च आसन पर प्रतिष्ठित है। उसकी भक्ति की साक्षी वेद देते हैं तथा सत एव ज्ञानी सब उसका गुणगान करते हैं। कबीर कहते हैं कि हे भगवान, यह दास आपकी शरण मे आया है। उसको अपने चरणो मे स्थान दे दीजिए।

अलकार— विरोधाभास— नीच · पदवी।

विशेष—(i) **भील**— केवट, गुह और निपाद एक ही व्यक्ति हैं। यह जाति का भील था। वनवास के समय इसने राम की बहुत सेवा की थी। उसके प्रेमपूर्ण व्यवहार से प्रभावित होकर राम उसे भाई के समान मानने लगे थे।

(iii) **गणिका**- यह पिंगला नाम की वेश्या थी। एक बार वह शृगार किए हुए आधी रात तक अपने प्रेमी की प्रतीक्षा करती रही, परन्तु वह नही आया। इससे उसके ऊपर बहुत गहरा प्रभाव पडा। उसको बडी आत्मग्लानि हुई। उसने वेश्यावृत्ति छोड दी, और वह भगवान का भजन करने लगी। कहते हैं कि एक बार तोते को 'राम' पढाते हुए उसको भगवान ने स्वर्ग भेज दिया था।

अजाति—अनेक ऐसे भक्त हो गए है जिनका जन्म निम्न जाति अथवा मूढ योनि मे हुआ था, परन्तु भजन के प्रभाव से वे स्वर्ग के अधिकारी हुए। इनमे कतिपय नाम अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। यथा—कु० ा, जटायु, जामवन्त, बाल्मीकि।

ध्रुव—राजा उत्तानपाद के दो रानियाँ थी—सुनीति और सुरुचि। सुनीति के ध्रुव और सुरुचि से उत्तम नामक पुत्र उत्पन्न हुए। राजा सुरुचि को अधिक प्यार करते थे। इस कारण उनको उत्तम भी अधिक प्रिय था। एक दिन राजा उत्तानपाद उत्तम को गोद मे खिला रहे थे। उसी समय ध्रुव भी वहाँ पहुँच गया और राजा की गोद मे चढने का प्रयत्न करने लगा। यह देखकर सुरुचि ने व्यग्य किया कि तप करने पर ही राजा की गोद मे बैठने का सौभाग्य प्राप्त होता है। यह कहते हुए उसने ध्रुव को एक ओर धकेल दिया। ध्रुव रोता हुआ अपनी माता के पास पहुँचा और रोते हुए उसने अपने अपमान का हाल अपनी माता को सुनाया। माता ने भी उसको तप करके उच्च आसन प्राप्त करने की सलाह दी। ध्रुव ने कठोर तप करके भगवान के दर्शन किए और अटल पद प्राप्त किया।

तिरे जल पाषान— नील और नल दोनो वानर भाइयो को यह वरदान था कि उनके द्वारा स्पर्श किया हुआ पत्थर डूबेगा नही। इन्ही दोनो ने लका पर

चढाई के समय सागर पार करने के लिए सेतु बाँधा था। यह राम की कृपा द्वारा ही सम्भव हो सका था।

(iii) यह पद ज्यो का त्यो सूरसागर मे भी मिलता है। अन्तर केवल 'कबीर' और 'सूर' का है। कबीर ने लिखा है कि 'जन कबीर तेरी सरनि आयो', और सूर लिखते हैं कि, "सूर हरि को सरन आयो।" देखिए—

हे हरि भजन को परवान।
नीच पावै ऊँच पदवी बाजते निशान।
भजन को परताप ऐसे जन तरै पाषान।
अजामिल और भील गणिका चढ़े जात विमान।
चलत तारे सकल मण्डल चलत शशि अरु भान।
भक्त ध्रुव को अटल पदवी राम के दीवान।
निगम जाको सुयश गावत सुनत सत सुजान।
सूर हरि को शरण आयो राखि ले भगवान।

(सूरसगतिसार – पद ८०)

(३८२)

चलौ सखी जाइये तहां,
जहां गय पांइयै परमांनद। टेक ॥
यहु मन आमन धूमनां, मेरो तन छीजत नित जाइ।
च्यतामणि चित चोरियौ, ताथै कछू न सुहाइ ॥
सु नि सखी सुपनै की गति ऐसी, हरि आए हम पास।
सोवत ही जगाइया, जागत भए उदास ॥
चलु सखी विलम न कीजिये, जब लग सास सरीर।
मिलि रहिये जगनाथ सू, यूं कहै दास कबीर।

शब्दार्थ—आमन=आने=जाने। घूमना=घूमने वाला। छीजै=क्षीण होता है।

सन्दर्भ—कवीरदास मन को भगवद् प्रेम के लिए प्रेरित करते हैं।

भावार्थ—हे जीवात्मा (सखि)। इस ससार को छोडकर वहाँ चलो जहाँ परमानन्द की प्राप्ति होती है। यह मेरा मन तो अत्यन्त चचल है – यह निरतन्र आने जाने वाला और घूमने वाला है (कभी अनुकूल रहता है और कभी प्रतिकूल हो जाता है)। और यह शरीर निरन्तर क्षीण होता जाता है। चिंतामणि स्वरूप भगवान ने मेरा मन चुरा लिया है। इस कारण मुझको ससार की कोई वस्तु अच्छी नहीं लगती है। रे सखि! सुन, स्वप्न मे कुछ ऐसा हुआ कि भगवान मेरे पास आए और उन्होंने मुझको सोते से जगा लिया। परन्तु जगते ही मेरा मन उदास हो गया। रे सखि, जब तक इस ससार मे प्राण हैं, तब तक जल्दी से यह काम कर

लो। देर मत करो। भगवान से मिलने के लिए चल पड़ो। कबीर कहते हैं कि प्राण रहते हुए जल्दी ही भगवान के साथ तदाकार होने का प्रयत्न करना चाहिए।

अलंकार—रूपकातिशयोक्ति · ·सखि, च्यतामणि।

विशेष—(1) सोवत · उदास—इस स्वप्नवत् जगत मे अचानक भगवत्प्रेम जाग गया और ऐसा प्रतीत हुआ कि पति रूप भगवान मेरे समीप ही आ गए थे। भगवान के इस प्रकार आगमन से अज्ञान की निद्रा समाप्त हो गई। यह बोध हुआ कि मैं भगवान से बिछुड़ कर व्यर्थ ही इतने दिनों से भटक रही थी। इस आत्मग्लानि के कारण मन का उदास हो जाना स्वाभाविक ही है। अथवा यह कहिए कि आत्मबोध के फलस्वरूप मेरा मन ससार के प्रति उदासीन हो गया।

(ii) स्वप्न और जागरण के रूपक मे कवि ने लौकिक स्तर के दाम्पत्य प्रेम के बिम्बो द्वारा अलौकिक एव रहस्यवादी प्रेम तथा ज्ञान एव भक्ति की समन्वित हृदय स्पर्शी एव सशक्त व्यजना की है।

(iii) समभाव देखे—

चकई री ! चलि चरन-सरोवर जहाँ नहिं प्रेम वियोग।
निसि दिन राम नाम की भक्ती भय रुज नहिं दुख सोग।

तथा— **सुवा चलिवा वन को रस पीजै।**
जा वन राम नाम अमृत रस श्रवण पाय भरि लीजै। (सूरदास)

(iv) सोवत · उदास—इसी कोटि के लौकिक दाम्पत्य प्रेम की अभिव्यक्ति देखिए—

हौं सपनें गई देखन कौं, कहूं नाचत नद-जसोमति को नट।
वा मुसकाय कै भाव बताय कै, मेरोई खैंचि खरो पकरो पट।
तौ लगि गाइ बगाइ उठी, कहि देव, वधूनि, मथ्यौ दधि को मट।
जागि परी तौन कान्ह कहूँ, न कदब, न कुज, न कालिन्दी को तट। (देव)

(३०३)

मेरे तन मन लागी चोट सठौरी ॥
बिसरे ग्यान बुधि सब नाठी, भई बिकल मति बौरी ॥ टेक ॥
देह बदेह गलित गुन तीनूं, अचत अचल भइ ठौरी ।
इत उत जित कित द्वादस चितवत, यहु भई गुपत ठगौरी ॥
सोई पै जांनै पीर हमारी, जिहि सरीर यहु ब्यौरी ।
जन कबीर ठग ठग्यौ है बापुरौ, सुंनि समानी त्यौरी ॥

शब्दार्थ—सठौरी=सही स्थान, मर्म। ज्ञान=सामान्य ज्ञान। नाठी=नष्ट हो गई। ठगौरी=जादू। ब्यौरी=विवृत, व्यक्त। सुनि=शून्य। त्यौरी=त्रिकुटी।

सन्दर्भ—कबीरदास ज्ञान दशा का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—मेरे शरीर और मन पर (गुरु उपदेश एव प्रभु की) चोट ठीक

स्थान (मर्म) पर लगी है। इससे मेरी समस्त लौकिक ज्ञान, एव विवेक नष्ट हो गए हैं और मेरे बुद्धि प्रभु के विरह मे व्याकुल होकर पागल हो गई है। मेरी देह विदेह हो गई है अर्थात् इस शरीर एव उसके सुखो के प्रति मेरी आसक्ति समाप्त हो गई है और तीनो गुण समाप्त हो गए हैं। जो अवयव चल रहे थे, वे जहाँ के तहाँ स्थिर हो गए हैं अर्थात् मेरे शरीरांगो ने कार्य करना वन्द कर दिया है। शरीर के बारह अगो की क्रियाएँ अस्त-व्यस्त हो गई हैं। इस गुप्त मार्मिक चोट ने जादू का काम किया है। हमारी व्यथा को वही समझ सकता है जिसके शरीर मे यह पीडा व्यक्त हुई हो अर्थात् जिसको यह व्यथा भोगनी पडी हो। कबीरदास कहते हैं कि मैं भक्त तो प्रभु प्रेम के जादू रूपी ठग द्वारा ठग लिया गया हूँ और मेरी त्रिकुटी शून्य मे लग गई है, अर्थात् मेरी समस्त चित्तवृत्तिया अन्तर्मुखी हो गई हैं।

अलंकार—(i) सभग पद यमक—देह वदेह।
(ii) विरोधाभास—चलत अचल भई।
(iii) पदमैत्री इत उत जित कित।
(iv) रूपक—ठग।

विशेष—(i) बारह अग पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, मन एव बुद्धि।

(ii) तीन गुण—सत्त्व गुण, रजोगुण तथा तमोगुण।

(iii) त्रिकुटी—देखे टिप्पणी पद स० ३, ४, ७।

(iv) शून्य—देखें टिप्पणी पद स० १६४।

(v) सोई वै—व्यौरी "जागे लगे सोई जाने विथा" अथवा दरद न जानै जाके फटी विवाई ना।

(vi) सोई ' व्यौरी ईश्वर प्रेम एव ज्ञान की दशा मे अवधूत व्यक्ति की सासारिक विषयो के प्रति आसक्ति नही रह जाती है। इससे वह ससार के व्यवहार मे पटु न रहकर पागल एव मूर्ख प्रतीत होते हैं।

(३०४)

मेरी अंखिया जान सुजांन भई।
देवर भरम सुसर संग तजि करि हरि पीव तहां गई ।। टेक ।।
बालपनै के करम हमारे, काटे जानि दई।
वांह पकरि करि क्रृपा कीन्हीं, आप समींप लई ।।
पानीं की बूँद थैं जिनि प्यंड साज्या, ता सगि अधिक करई।
दास कवीर पल प्रेम न घटई, दिन दिन प्रीति नई ।।

शब्दार्थ—जानि=जानबूझ कर। दई=भगवान। प्यंड=शरीर। साजा=बनाया।

सन्दर्भ—कवीर ज्ञान दशा का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—भगवान के प्रेम मे अनुरक्त जीवात्मा कहती है कि प्रभु-दर्शन

के प्रभाव से मेरी दृष्टि अब विवेक पूर्ण एव सुविज्ञ हो गई है। अर्थात् अब मैं अपने-पराए को पहिचानने लगी हूँ। मैं भ्रम रूपी देवर और अज्ञान रूपी श्वसुर का साथ छोडकर अपने पति भगवान के पास पहुँच गई हूँ। बाल्यावस्था मे अथवा अज्ञानावस्था मे किए हुए मेरे कर्मों के दोषो को भगवान ने जानबूझ कर समाप्त कर दिया है। उन्होने मेरे ऊपर कृपा की और मेरी बाँह पकड कर अपने पास स्थान दे दिया है। जिस भगवान ने पानी की एक बूँद (वीर्य) द्वारा मेरे इस शरीर का निर्माण किया, उन्ही भगवान के साथ मै अब रमण करने लगी हूँ। दास कबीर कहते हैं कि भगवान के प्रति मेरा प्रेम एक क्षण के लिए भी कम नही होता है। उसके प्रति मेरी प्रीति दिन प्रतिदिन नवीन ही बनी हुई है। अर्थात् उसमे मुझको नित्य नए आनन्द की प्राप्ति होती है।

अलंकार— (i) रूपक—देवर भरम।
(ii) पुनरुक्ति प्रकाश—दिन दिन।

विशेष (i) रहस्यबादी शैली पर दाम्पत्य प्रेम का सुन्दर चित्रण है।
(ii) प्रेम भक्ति एव ज्ञान दशा का मार्मिक वर्णन है।
(iii) नाथ सम्प्रदाय के प्रतीको का प्रयोग है।
(iv) भगवान की कृपा का उल्लेख 'पुष्टि भक्ति' के प्रभाव का व्यजक है।

(३०५)

हो बलिया कब देखोगी तोहि।
अह निस आतुर दरसन कारनि, ऐसी ब्यापै मोहि॥ टेक॥
नैन हमारे तुम्ह कूं चांहैं, रती न मानै हारि।
बिरह अगिन तन अधिक जरावै ऐसी लेहु बिचारि॥
सुनहु हमारी दादि गुसाई,, अब जिन करहु बधीर।
तुम्ह धीरज मै आतुर स्वामीं काचै भाडै नीर॥
बहुत दिनन कै बिछुरे माधौ, मन नही बांधै धीर।
देह छतां तुम्ह मिलहु कृपा करि आरतिवत कबीर॥

शब्दार्थ—दादि=दाद, विनती। वधीर=बधिरता, अनसुनी। भाडै=बर्तन। छता=अछत, रहते हुए। आरतिवत=दुखी।

सन्दर्भ—कबीर की जीवात्मा प्रभु-दर्शन के लिए अपनी आतुरता व्यक्त करती है।

भावार्थ—हे भगवान! मैं आपकी बलिहारी जाती हूँ। मैं आपके दर्शन कब कर सकूगी? आपकी विरह मे वियोग व्यथा मुझे इतना सता रही है कि तुम्हारे दर्शनो के लिए मैं दिन-रात व्याकुल रहती हूँ। मेरे नेत्र केवल तुम्हे ही देखना चाहते हैं और इसमे वे रत्ती भर भी पीछे हटने को तैय्यार नही है। विरहाग्नि मेरे शरीर को बहुत जलाती है। इस बात पर आप विचार करलें (कही ऐसा न हो कि मैं इसके कारण जल कर मर जाऊँ और आपको दर्शन न देने का पछतावा

हो) । हे स्वामी, हमारी विनती सुन लीजिए तथा अब अधिक अनसुनी मत कीजिए। हे भगवान ! आप तो धैर्य-स्वरूप है परन्तु मै आतुर हू—दर्शन करने के लिए उतावली हो रही हूँ । मेरे प्राण इस शरीर के बाहर चाहे जब निकल सकते हैं जिस प्रकार कच्चा घडा चाहे जब फूट सकता है और उसमे भरा हुआ पानी बाहर निकल सकता है । हे माधव, तुम मुझसे बहुत दिनो के बिछुडे हुए हो, अर्थात् मै तुमसे अनेक जन्मो पूर्व बिछुडी थी । अब मेरा मन अधिक धैर्य धारण नही कर सकता है । कबीरदास की जीवात्मा कहती है कि मै बहुत ही दुःखी हूँ । आप शरीर मे प्राण रहते हुए मुझसे मिलने की कृपा करे—अर्थात् इस जीवन मे ही मेरा उद्धार करने की कृपा करे ।

अलंकार—(i) गूढोक्ति हो तोहि ।

(ii) रूपक—विरह अगिन ।

(iii) उपमा काचै भाडै नीर ।

विशेष—(i) भगवत्प्रेम का बिम्ब-विधायक एव मर्म स्पर्शी वर्णन है ।

(ii) इसमे सूफी शैली की दाम्पत्य प्रेम परक विरह-व्यथा की तीव्रता की सफल अभिव्यक्ति हुई है ।

(iii) मिलन की आतुरता कबीर ने कई स्थानो पर व्यजित की है । 'कबीर' शरीर रहते ही भगवान के दर्शन की इच्छा करते हैं । इसका अर्थ है कि वह मोक्ष की इच्छा न करके जीवन मुक्त होना चाहते है । यह आकाक्षा सगुण भक्तो जैसी है ।

(२०६)

वै दिन कब आवेंगे माइ ।
जा कारनि हम देह धरी है, मिलिबो अंगि लगाइ ।। टेक ।।
हौं जांनूं जे हिल मिलि खेलूं, तन मन प्रांन समाइ ।
या कांमनां करौ परपूरन, समरथ हौ रांम राइ ।।
मांहि उदासी माधौ चाहै, चिपवत रैंनि बिहाइ ।
सेज हमारी स्यघ भई है, जब सोऊ तब खाइ ।।
यहु अरदास दास की सुंनिये, तन की तपनि बुझाइ ।
कहै कबीर मिले जे सांई मिलि करि मगल गाइ ।।

शब्दार्थ—स्यघ = सिंह, बाघ । अरदासि=अर्जी, प्रार्थना ।

सन्दर्भ—कबीर की प्रभु-मिलन की आतुरता का वर्णन करते हैं ।

भावार्थ – री सखि ! वह दिन कब आएगा जब मैं इस शरीर धारण करने के उद्देश्य को पूरा कर सकूँगी ? जिस भगवान की प्राप्ति के लिए यह मानव शरीर मिला है, उससे अग से अग मिलाकर कब मिलना हो सकेगा ? मेरे मन की यह तीव्र आकाक्षा है कि मै अपने पति भगवान के साथ हिल-मिल कर खेलू और अपने तन, मन प्राण को पति रूप परमेश्वर मे समाहित कर दू ! हे स्वामी राम ! आप सब तरह समर्थ हो । मेरी मनोकामना को पूर्ण कर दो । मै इतने दिनो तक

आपसे न मिल सकने के कारण मेरा मन एक दम गिर गया है। इस उदासी को दूर करने के लिए मैं अपने पति माधव का सान्निध्य चाहती हू । उनकी बाट देखते हुए मैं सारी रात व्यतीत हो जाती है। मेरी शय्या तो बाघ की तरह प्रतीत होती है। जब भी उस पर लेटना चाहती हूँ, तब ही वह मुझको काट लेने को दौडती है। हे भगवान, इस दासी की प्रार्थना सुन लीजिए और विरहाग्नि से उत्पन्न इस शरीर की जलन को शात कर दीजिए। कबीर कहते है कि अगर मुझे स्वामी राम मिल जाएँ, तो मैं उनके साथ मिलकर मगल के गीत गाऊँ।

अलंकार—(i) पदमैत्री—हिल मिल। तन मन प्रान।

(ii) रूपक—स्यघ भई है।

विशेष—(i) प्रभु के प्रति दाम्पत्य प्रेम परक विरह-व्यथा का मार्मिक वर्णन है।

(ii) सूफियो की शैली पर जीवात्मा के विरह की व्यजना है।

(iii) इस पद मे भक्त कवियो की पद्धति पर 'मनोराज्य' की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। यथा--

मैं हरि बिन क्यो जिऊँ री माइ।

× × ×

पिय ढूँढन बन-बन गयी, कहूँ मुरली धुनि आइ।
मीराँ के प्रभु लाल गिरधर! मिलि गये सुखदाइ।

तथा— **नन्हीं नन्हीं बूंदन मेहा बरसै, शीतल पवन सुहावन की।**
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, आनन्द-मगल गावन की। (मीराबाई)

(iv) जीवात्मा का ब्रह्म से तदाकार हो जाना ज्ञानमार्गियो के निकट परम पुरुषार्थ है। परन्तु भक्त और रहस्यवादी का दृष्टिकोण थोडा सा भिन्नता के लिए रहता है। वह ब्रह्म के साक्षात्कार से उत्पन्न रागात्मक अनुभूति मे तन्मय होना चाहता है। कबीर के इस पद मे ज्ञान, भक्ति और रहस्य भावना तीनो का समन्वय दिखाई देता है। इस त्रिवेणी का सस्पर्श ही ज्ञानी भक्त कबीर का सर्वस्व है। दाम्पत्य भाव का रूपक इस अनुभूति को व्यक्त करने का सबसे अधिक सफल एव सशक्त माध्यम है। कबीर ने इसी पद्धति का अवलम्बन किया है।

(v) प्राण समाई—पति परमेश्वर के विभिन्न गुणो मे तन्मय होकर रसास्वादन करने की व्यजना है।

(vi) रैन विहाई—'रैन' का अर्थ यदि मोह-निद्रा हो, तो इसके द्वारा अज्ञान मय जीवन की सुन्दर व्यजना हुई है। कही अज्ञान निद्रा फिर से सताने लगे—इसी कारण कबीर ने 'चितवत् रैन विहाइ'- वाली बात कही है। यथा—

मै बिरहिणी बैठी जागूँ जागत सब सोवै री आली।

× × × ×

तारा गिण-गिण रैन बिहागी सुख की घडी कब आवै।

मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, मिलि कै विछुणि न जावै।
(मीराबाई)

(vii) सेज' 'तब खाई—यह लौकिक विम्ब-विधान द्रष्टव्य है। शय्या माया रूप है।

(viii) या''' ''राम राई—लौकिक प्रेम के प्रतीको के माध्यम से आध्यात्मिक विप्रलम्भ का वर्णन है।

(३०७)

बालम आव हमारे ग्रेह रे,
तुम्ह बिन दुखिया देह रे ॥ टेक ॥
सब को कहै तुम्हारी नारी, मोकौं इहै अदेह रे।
एकमेक ह्वै सेज न सोवै तब लग कैसा नेह रे ॥
आन न भावै नीद न आवै, ग्रिह बन धरै न धीर रे।
ज्यूं कांमीं कौं काम पियारा, ज्यूं प्यासे कूं नीर रे ॥
है कोई ऐसा परउपगारी, हरि सूं कहै सुनाइ रे।
ऐसे हाल कबीर भये है, बिन देखे जीव जाइ रे ॥

शब्दार्थ—अदेह=अदेशा, दुख, अथवा सदेह। आन=अन्न।

सदर्भ—कबीरदास प्रेमी भक्त की विरह व्यथा का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—जीवात्मा वियोगिनी पत्नी के रूप मे अपने पति भगवान को बुलाती हुई कहती है कि, हे प्राण वल्लभ, तुम हमारे घर आओ। तुम्हारे वियोग मे यह शरीर अत्यन्त दुखी है। सब लोग मुझे तुम्हारी पत्नी कहते हैं और आप मुझे दर्शन तक नही देते है। मुझे इसी बात का बहुत दुख है। अथवा मुझको इनके इस कथन पर विश्वास नही होता है, क्योंकि जब तक मैं तुम्हारे साथ आलिंगन मे आबद्ध होकर एक ही चारपाई पर न सोऊँ, तब तक कैसे विश्वास किया जाए कि हमारे बीच मे दाम्पत्य-सम्बन्ध है अथवा आप मुझको पत्नी के रूप मे प्रेम करते हैं? न तो मुझे भोजन अच्छा लगता है और न मुझको नीद ही आती है। घर मे अथवा वन मे कही भी मेरे मन को धैर्य (चैन) धारण करते नही बनता है। जैसे कामी पुरुष को अपनी वासना की तृप्ति का माध्यम प्रिय होता है तथा जल के प्रति प्यासे व्यक्ति की आसक्ति होती है, उसी प्रकार मुझे अपने प्रियतम के प्रति अदम्य आसक्ति सताती है। क्या कोई ऐसा उपकारी है जो मेरी यह विरह-व्यथा भगवान को सुना दे। कबीर कहते है कि भगवान को साक्षात्कार के विना मेरी दशा बहुत ही दयनीय हो गई है। पति-परमेश्वर के दर्शन के विना मैं मरणासन्न हो रहा हूँ—मेरे प्राण चाहे जब निकल सकते हैं।

अलकार—उदाहरण—ज्यू नीर रे।

विशेष—(i) प्रतीक विधान द्वारा आत्मा-परमात्मा के दाम्पत्य प्रेम की सुन्दर अभिव्यक्ति है। बालम, गेह, नारी, सेज इत्यादि प्रतीक हैं।

(ii) आन न भावै—कुछ आलोचको ने 'आन' का अर्थ 'अन्य' करके इस वाक्यांश का अर्थ इस प्रकार किया है—मुझे अन्य किसी की उपासना अभीप्सित नही है। हमारे विचार से "नींद न आवै" के साथ "आन न भावै" का अर्थ 'अन्य अच्छा नही लगता है," ही अर्थ उपयुक्त होना चाहिए। समभाव की अभिव्यक्ति अन्यत्र देखिए—

घान न भावै नींद न आवै, विरह सतावै मोइ।
खायल-सी घूमत फिरूँ दरद न जाणे कोइ। (मीराबाई)

(iii) ज्यू कामी कौं काम पियारा—तुलनात्मक दृष्टि से देखिए—

कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लागहु मोहि राम।
(गोस्वामी तुलसीदास)

(iv) है कोउ..... सुनाइ रे—तुलना करे—

प्रीतम कूँ पतियाँ लिखूँ रे कउवा! तू ले जाइ।
जाइ प्रीतम सूँ यें कहै रे, विरहणि धान न खाइ।
× × ×
वेगि मिलौ प्रभु अंतर जामी, तुम बिन रह्यौ न जाइ। (मीराबाई)

(३०८)

माधौ कब करिहौ दया।
कांम क्रोध अहंकार व्यापै, नां छूटै माया॥ टेक॥
उतपति ब्यंद भयौ जा दिन थैं, कबहूं सच नहीं पायौ।
पंच चोर संगि लाइ दिए हैं, इन संगि जनम गंवायौ॥
तन मन डस्यौ भुजंग भामिनी, लहरी वार न पा ा।
सो गारडू मिल्यौ नहो कबहू, पसर्यौ विष विकराला॥
कहै कबीर यहु कासूं कहिये, यह दुख कोइ न जानै।
देहु दीदार बिकार दूरि करि तब मेरा मन मांनै॥

शब्दार्थ—साँच=सुख। भुजग=सर्प। भामिनी=सुन्दरी। गारडू=सर्प का जहर उतारने वाला। विकरारा=विकराल, भयकर। दीदार=साक्षात्कार-दर्शन।

सन्दर्भ—कबीर एक भक्त की तरह भगवान की तरह से दर्शन देने की प्रार्थना करते हैं।

भावार्थ—हे भगवान! आप मेरे ऊपर दया करके मुझको कब दर्शन देंगे? काम क्रोध और अहकार ने मुझको घेर रखा है और माया मुझसे छोडते नही बनती है। जिस दिन से बिन्दु (पिता के वीर्य) से मेरा जन्म हुआ है, उस दिन से मुझे कभी भी सच्चे सुख की प्राप्ति नही हुई है। पाँच चोर (काम, क्रोध, लोभ, मोह एव मत्सर) जन्म से मेरे साथ लगे हुए हैं। इनके साथ मैंने अपना सम्पूर्ण

जीवन व्यर्थ ही व्यतीत कर दिया है। सुन्दरी नारी रूपी साँप ने मेरे शरीर और मन को डस लिया है और काम रूपी विष की लहर ऐसी फैल रही है कि उसका कोई आदि अन्त (ओर छोर) नही है। उस विष को दूर करने वाला कोई भी गुरु रूप गारूडी अब तक नही मिल सका है। यह भयानक विष मेरे शरीर मे फैल गया है। कबीर कहते है कि मैं दुख का वर्णन किससे करूँ। मेरे इस दुख को कोई नही जानता है। हे भगवान! मेरे समस्त अवगुणो को दूर करके मुझे अपने दर्शन दीजिए। तभी मेरा मन सुख-शांति का अनुभव कर सकेगा।

अलकार—(i) रूपक - भुजग भामिनी, गुर गारडू।

(ii) छेकानुप्रास—काम क्रोध।

(iii) रूपकातिशयोक्ति—चोर, लहरी, विष।

विशेष—(i) इसे हम विनय का पद कह सकते हैं।

तुलना करे—

नाचत ही निस दिवस मरयो।
तब ही तें न भयो हरि। थिर जब तें जिव नाम धर्‌यो।
× × ×
जेहि गुन तें बस होहु रीझि कोई. सो मोहि सब बिसरयो।
तुलसिदास निज भवन-द्वार प्रभु, दीजै रहन पर्‌यौ।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(३०९)

मै जनभूला तूं समझाइ
चित चंचल रहै न अटक्यौ, विषै बन कूं जाइ॥ टेक॥
ससार सागर मांहि भूल्यौ, थक्यौ करत उपाइ।
मोहनी माया बाघनी थै, राखि लै रांम राइ॥
गोपाल सुनि एक बीनती, सुमति तन ठहराइ,
कहै कबीर सुनि यहु कांम रिप है, मारै सबकूं ढाइ॥

शब्दार्थ—बाघनी=शेरनी। राखि लै=रक्षा करो।

संदर्भ—कबीर भगवान से रक्षा की प्रार्थना करते है।

भावार्थ—हे भगवान! मैं तेरा यह सेवक माया-मोह मे पडकर अपने स्वरूप को भूल गया हूँ। तुम मुझे विवेक-बुद्धि दो। यह मेरा चचल चित्त तुझसे अटकता नही है अर्थात् तेरे प्रति अनुरक्त नही होता है और वह बार-बार विषय-रूपी वन की ओर भाग कर जाता है। मैं इस ससार रूपी सागर मे भटक गया हूँ। उद्धार की चेष्टा करते करते थक गया हूँ। हे राजा राम! मोहिनी माया रूपी बाघिन से मेरी रक्षा कीजिए! हे गोपाल, मेरी एक विनती सुन लीजिए। मेरे मन मे सुबुद्धि को स्थिर कर दो अथवा मुझको स्थिर बुद्धि प्रदान कर दो। कबीर कहते हैं

कि यह काम रूपी शत्रु हम सबको पछाड कर नष्ट कर रहा है। (इसी से बचाने की आवश्यकता है।)

अलंकार—(i) रूपक—विषै वन, ससार सागर, माया वाघिनी। काम रिपु।

(ii) परिकराकुर—गोपाल।

(ii) छेकानुप्रास—चित्त चचल, ससार सागर, मोहिनी माया, राम राइ।

विशेष—यह विनय भक्ति का पद है।

(३१०)

भगति बिन भौजलि डूबत है रे।
बोहिथ छाड़ि बैसि करि डूंडै, बहुतक दुख सहै रे।। टेक।।
बार बार जम पे ढहकावै, हरि को ह्वै न रहै रे।
चोरी के बालक की नाई, कासू बात कहै रे।।
नलिनीं के सुवटा की नांई, जग सूं राचि रहै रे।
बंसा अगनि बस कुल निकसै, आपहि आप दहै रे।।
खेवट बिना कवन भौ तारे, कैसे पार गहै रे।
दास कबीर कहै समझावै, हरि की कथा जीवै रे।।
रांम कौ नांव अधिक रस मीठौं, बारबार पीवै रे।।

शब्दार्थ—भौजलि भवजल, ससार सागर। वोहिथ=वोहित, जहाज। डूंडै=डूंड पर, ठूंठ पर, लकडी के लठ्ठे पर। डहकावै=धोखा खाता है, ठगा जाता है। राचि=आसक्त। बसा अगनि=बासो की रगड उत्पन्न होकर वन मे लगने वाली अग्नि।

सदर्भ—कबीरदास राम की भक्ति का पतिपादन करते हैं।

भावार्थ—रे जीव! तू भगवान की भक्ति के विना इस ससार सागर मे डूब रहा है। तूने भक्ति रूपी जहाज को छोडकर अन्य साधन रूपी काठ के लट्ठो पर बैठकर इस भवसागर को पार करने का विफल प्रयत्न किया। इसी कारण तुझको अनेक दुख सहने पडे हैं। तू बार-बार यमराज के द्वारा ठगा जाता है अर्थात् वार वार जन्म-मरण के चक्कर मे पडता है, परन्तु भगवान का भक्त होकर नही रहता है। दासी पुत्र की भाँति तू किसी को भी अपना पिता नही कह सकता है अर्थात् विभिन्न साधनाओ मे भटकने वाला व्यक्ति किसी एक साधन के प्रति निष्ठावान नही रह पाता है। यदि 'वाप' के स्थान पर बात पाठ हो, तो इस पक्ति का अर्थ इस प्रकार होगा। तूने भगवान की भक्ति से जी चुराया है। तेरी हालत उस बालक की भाँति है जो चोरी करता है और लज्जा के कारण किसी के सामने मुँह नही खोल पाता है। हे जीव! काठ की नली पर क्रीडा करने वाले तोते की भाँति तू इस माया मय जगत के प्रति आसक्त बना हुआ है। जैसे बडवाग्नि बासो की ही रगड से प्रकट

होती है और उन्ही को भस्म कर देती है, उसी प्रकार कामग्नि प्राणी मे ही उत्पन्न होती है और उसी को नष्ट कर देती है। भगवान रूपी केवट के विना इस ससार रूपी सागर से कोई पार नही कर सकता है। बिना भगवान के तू किस प्रकार पार जा सकेगा ? कबीरदास समझाकर कहते हैं कि भगवान के गुण-गान के सहारे ही सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत किया जा सकता है। राम के नाम-स्मरण द्वारा प्राप्त होने वाला रस बडा ही मीठा होता है, उसको बारम्बार पीना चाहिए अर्थात् भगवान का नाम-स्मरण निरन्तर करते रहना चाहिए।

अलंकार - (i) रूपक—भौजलि, भौ।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—वोहिथ, डूबै, खेवट।
(iii) पुनरुक्ति प्रकाश—बार-बार।
(iv) उपमा—वालक की नाई, सुवटा की नाई।
(v) दृष्टान्त—दसा… दहै रे।
(vi) वक्रोक्ति—कवन … गहै रे।

विशेष—(i) इस पद मे कवीर की भक्ति-भावना व्यक्त है।

(ii) नलिनी को सुवटा—तोतो को पकडने के लिए शिकारी बाँस की पोनिया लटका देते हैं। जैसे ही तोता पौनी पर बैठता है, वैसे ही पौनी घूम जाती है और तोते का सिर नीचे और पाँव ऊपर हो जाते हैं। इस पौनी को ही नलिनी कहते हैं। तोता पौनी को छोडता नही है और डर के मारे वही लटकता रहता है। इसी प्रकार जीव भी उद्धार की सामर्थ्य होते हुए भी ससार के प्रति आसक्त बना रहता है। अज्ञान वश ससार मे आवद्ध जीव को 'नलिनी का सुवटा' कहना कवि-परम्परा है। यथा—

अपनपौ आपुन ही बिसर्‌यो।
× × ×
मरकट मूँठि छाँडि नहिं दीनी, घर-घर द्वार फिर्‌यो।
सूरदास, नलिनी को सुवटा, कहि, कौने पकर्‌यो। (सूरदास)

(iii) कवीर ने अनन्य भक्ति पर जोर दिया है।

(३११)

चलत कत टेढौ टेढौ रे।
नऊं दुवार नरक घरि मूँदे, तू दुरगंधि को बेढौ रे ॥टेक॥
जे जारें तौ होइ भसम तन, रहित किरम जल खाई।
सूकर स्वॉन काग कौ भखिन, तामैं कहा भलाई॥
फूटे नैन हिरदै नाही सूझै, मति एकै नही जांनी।
मया मोह ममिता सूँ बाँध्यौ, बूडि मूऔ बिन पांनी॥
बारू के घरवा मैं बैठो, चेतत नहीं अयांनां।
कहै कबीर एक राम भगती बिन, बूडे बहुत सयांनां॥

शब्दार्थ—नरक=मल, मला। मूंदे=आपूरित। बैठो=ढेर, थाला। किरम=कृमि, कीडे। भिखन=भोजन। मुवो=मर गये।

सदर्भ—कवीर शरीर की असारता बताकर राम भक्ति का प्रतिपादन करते हैं।

भावार्थ—रे मानव, तुम क्यो इतरा रहे हो ? तुम्हारे शरीर की इन्द्रियो रूपी नौ द्वार (दो आँख, दो कान, दो नासा-द्वार, मुख तथा मल मूत्र के द्वार) मैले से भरे हुए है और इस प्रकार तू गन्दगी का ढेर अथवा पाला है। मरने पर यदि इस शरीर को जलाया जाएगा, तो यह भस्म का ढेर हो जाएगा और जो शेष बचेगा, उसको जल के कीडे-मकोडे खाएँगे। यह शरीर, सुअरो, कुत्तो तथा कौओ का भोजन है। इस पर गर्व करने से क्या लाभ है ? ससार की यह निस्सारता देखने के लिए तुम्हारी आँखें फूट गई हैं, हृदय मे तुम्हे इसकी अनुभूति नही होती है तथा ज्ञान की वातो से तुम्हारा कोई सम्बन्ध नही है। तू माया मोह और ममता के वशीभूत वना हुआ है और इस प्रकार तुम इस ससार सागर मे बिना पानी के ही (अकारण ही) डूब गये हो। रे प्राणी, यह शरीर रेत का महल है। तुम इसमे बैठे हुए अपने आपको सुरक्षित समझते हो। रे मूर्ख, तुम होश मे आकर समझते ही नहीं हो कि यह शरीर क्षण-भगुर है। कबीरदास कहते हैं कि राम भक्ति का अवलम्बन ग्रहण न करने के कारण बहुत से तथा कथित चतुर (दुनियादार) लोग इस भवसागर मे डूब गये।

अलंकार—(i) गूढोक्ति—चलत रे।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—नव द्वार। बारू के घरवा।
(iii) छेकानुप्रास—दुवार, दुरगधि।
(iv) वक्रोक्ति—तामैं ... भलाई।
(v) विभावना—बूडि पानी।
(vi) विरोधाभास—वूडे सयाना।

विशेष—(i) वूढ़े बिन पानी—वस्तुत यह ससार असत् है। इसमे विषय जल भी परमार्थत है नही। जीव मिथ्या विषयो मे ही डूबा रहता है। यही बिना जल के भव-सागर मे डूबना है।

(ii) बारू के घरवा मे बैठो—समभाव देखें—

मोम को मन्दिर माखन को मुनि बैठो हुतासन आसन दीन्हे। (देव)

(३१२)

अरे परदेसी पीव पिछांनि।
कहा भयौ तोकौं समझि न परई, लागी कैसी बांनि।।टेक।।
भोमि बिडाणी मैं कहा रातौ, कहा कियो कहि मोहि।
लाहै कारनि मूल गमावै, समझावत हूँ तोहि।।

निस दिन तोहि क्यू नींद परत है, चितवत नांही ताहि ।
जम से बेरी सिर परि ठाढे, पर हथि कहाँ बिकाइ ॥
झूठे परपंच मैं कहा लागौ, ऊठै नांही चालि ।
कहै कबीर कछू बिलम न कीजै, कौने देखी कालिह ॥

शब्दार्थ—बानि = आदत । भोमि = भूमि । बिडाणो = बिरानी, पराई । रातों = अनुरक्त । लाहै = लाभ । कालिह = कल का दिन ।

सन्दर्भ—कबीर जीवन और जगत की क्षण भगुरता के प्रति जीव को सावधान करते हैं ।

भावार्थ—रे परदेशी जीवात्मा, तू अपने प्रियतम को पहचान । तुम्हे क्या हो गया है । तुझको अक्ल (विवेक बुद्धि) क्यो नहीं आती है । सासारिक विषयो मे लिप्त रहने की तेरी यह क्या आदत पड गई है । तू पराई भूमि मे क्यो अनुरक्त हो गये हो । मुझे बताओ तो सही कि इस प्रकार आसक्त होकर तुमको क्या लाभ हुआ है । सासारिक विषयो के सुख रूपी लाभ के लोभ मे तुमने अपने मूलधन रूपी सहज शुद्ध बुद्ध स्वरूप को भी नष्ट कर दिया है । यह बात मैं तुमको समझाकर कहता हूँ । तुम्हे रात दिन नीद क्यो आती है अर्थात् तुम सदैव अज्ञान के वशीभूत हुए परम तत्त्व को क्यो भूले रहते हो ? तुम उस परम तत्त्व को जानने का प्रयत्न क्यो नही करते हो ? तेरे सिर पर यमराज सदृश प्रवल शत्रु खडा हुआ है और तू अपने वास्तविक स्वरूप को भूल कर माया के हाथों क्यो बिक गया है । हे जीव ! तुम ससार के इस झूठे प्रपच मे क्यो फँसे हुए हो ? संसार से विमुख होकर भगवान की भक्ति करने के लिए क्यो नही चल पडते हो ? कबीर कहते हैं कि ईश्वर भक्ति मे देर मत करो । इस कार्य को अभी और यही करो । कल किसने देखा है अर्थात् कल का क्या भरोसा है ?

अलकार—गूढोक्ति—सम्पूर्ण पद ।

विशेष—(i) प्रतीको का प्रयोग है—परदेशी, पीव, भोमि बिडाणी, भूल ।

(ii) ससार की क्षण भगुरता का प्रतिपादन है ।

(iii) शात रस की व्यजना है ।

(iv) परदेशी—मूल स्थान ब्रह्म से बिछुड कर जगत मे आने वाली जीवात्मा परदेशी है ।

(v) पराई—जीवात्मा का निवास स्थान तो ब्रह्म है । ससार तो माया का निवासस्थल है । इसी कारण वह जीवात्मा के लिए पराई भूमि है ।

(vi) कहा कियो कहि मोहि— इस कथन मे जीवात्मा की भारी भूल अभिव्यंजित है ।

(vii) जम से वैरी—समभाव देखें—

जम करि गृंह नरहरि पर्यो, महि धरि हरि चित लाउ ।
विषय तृषा अजहूं तज्यौ नरहरि के गुन गाउ । (बिहारी)

(viii) ऊठै नाही चालि—अन्तर्मुखी होने की ओर संकेत है। यथा—

हौं अपनायौ तब जानिहौं जब मन फिरि परिहै।

तथा—सन्मुख होहि जीव मोहि जब ही। जन्म कोटि अध नासहि तब ही।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(i) कौने देखी काल्हि। इस भाव को व्यक्त करने वाले अनेक कथन लोक मे प्रचलित है। यथा—

(क) जिसके बीच मे रात। उसकी क्या बात ?

(ख) सामान सौ बरस का, पल की खबर नही।

(ग) करना है सो आज कर, आज करै सो अब।
पल में प्रलय होयगी, बहुर करेगा कब ? (कबीर)

(३१३)

भयौ रे मन पाँहुनडौ दिन चारि।
आजिक काल्हिक माँहि चलैगो, ले किन हाथ सँवारि ॥टेक॥
सौंज पराई जिनि अपणावै, ऐसी सुणि किन लेह।
यहु ससार इसौ रे प्रांणी, जैसी धूंवरि मेह ॥
तन धन जोबन अँजुरी कौ पानी, जात न लागै बार।
सेंबल के फूलन परि फूल्यौ, गरब्यो कहा गवार ॥
खोटी खाट खरा न लीया, कछू न जानी साटि।
कहै कबीर कछू बनिज न कीयौ, आयौ थौ इहि हाटि ॥

शब्दार्थ—पाहुँनडौ=पाहुना, मेहमान। सौंज=सम्पत्ति। धूंवरि=धुआँ। खाटै=सग्रह किया। साटि=विनिमय। बनिज=व्यापार। हाटि=बाजार।

सन्दर्भ - कबीरदास जीवन की निस्सारता का प्रतिपादन करते हैं।

भावार्थ—रे जीव, तुम इस ससार मे चार दिन के मेहमान हो। आज-कल मे ही तुमको इस ससार से चला जाना है। फिर तुम अपने हाथो को बुरे कामो से क्यो नही हटा लेते हो ? तुम पराई वस्तुओ के प्रति आसक्त होने की चेष्टा मत करो (यह ससार तुम्हारा घर नही है। और जब इसकी वस्तुएँ तुम्हारी क्यो कर हो सकती हैं ?)। तू मेरी इस सलाह को क्यो नही सुनता है ? रे प्राणी यह ससार तो धुँए के समूह द्वारा निर्मित बादल के समान है, जो न जल देता है, न शीतलता। वह तो केवल धोखा ही है। शरीर, सम्पत्ति और यौवन अजलि मे भरे हुए जल के समान है, जो धीरे-धीरे रिसकर स्वयमेव शीघ्र ही समाप्त हो जाता है। इस ससार का वैभव सैमर के फूल की तरह है जिसका बाह्य तो बहुत आकर्षक है, परन्तु जिसमे सारतत्त्व बिल्कुल नही है। इस मिथ्या एव सारहीन सासारिक वैभव के ऊपर हे अज्ञानी ! तू क्यो गर्व करता है ? तूने विषय वासना रूपी खोटी वस्तुओ का तो सग्रह किया और ज्ञान-मुक्ति रूपी, खरी वस्तुओ को ग्रहण नही किया। तुम्हे जीवन मे विनिमय करना नही आया अर्थात् तुम्हे यह ज्ञान नही हुआ

कि क्या खरीदना चाहिए और क्या नही खरीदना चाहिए। कबीरदास कहते हैं कि तुम इस ससार रूपी बाजार मे आकर तुमने लाभ का कुछ भी व्यापार नही किया अर्थात् तुम शुभ कर्मो को अर्जन बिल्कुल नही कर सकते।

अलकार—(i) गूढोक्ति—ले ... सवारि।
(ii) उपमा—जैसी धूँवरि मेह, अजुरी कौ पानी।
(iii) रूपकातिशयोक्ति—सेंवल के फूलन।
(iv) अनुप्रास—खोटी खाटै खरा
(v) रूपक—हाटि।

विशेष—(i) प्रतीको का प्रयोग है—खोटी, खरा, बनिज।
(ii) ससार की असारता का वर्णन है।
(iii) विपय—लिप्त जीव की भर्त्सना की गई है।
(iv) धूँवरि मेह। समभाव की अभिव्यक्ति देखें—

जग नभ-वाटिका रही है फलि फूलि रे।
धुवाँ कैसे धौरहर देखि तू न भूलि रे।
(गोस्वामी तुलसीदास)

(v) सेंबर के फूलन। समभाव के लिए देखें—

सेमर सुअना सेइया मुइ ढेंढी की आस।
ढेंढी फूट चटाक दै सुअना चला निरास। (कबीर)

(३१४)

मन रे रांम नांमहि जांनि।
थरहरी थूनी परयो मदर सूतौ खूटी तांनि ॥टेक॥
सैन तेरी कोई न समझै, जीभ पकरी आंनि।
पाँच गज दोवटी माँगी, चून लीयौ सांनि॥
बसदर पाषर हाँडी, चल्यौ लादि पलांनि।
भाई बध बोलाई बहु रे, काज कीनौं आंनि॥
कहै कबीर या मै झूठ नांहीं, छाडि जिय की बांनि।
रांम नांम निसंक भजि रे, न करि कुल की कांनि॥

शब्दार्थ—थरहरी=हिलती हुई। थूनी=खम्भा। सूतौ=सोता है। खूँटी तानि=वेफिक्री के साथ। सैन=इशारा। वैसदर=अग्नि। पलानि=पलायन।

सन्दर्भ—कबीर ससार की निस्सारता का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—रे मन, तू राम-नाम से अपना नाता जोड। इस शरीर रूपी मन्दिर का प्राण-रूपी आधार स्तम्भ हिलने लगा है। यह शरीर रूपी मन्दिर गिरने ही वाला है और तू निश्चिन्त होकर सो रहे हो अर्थात् तुम्हे मौत का ध्यान ही नही है। अन्त समय का वर्णन करते हुए कबीर कहते हैं कि तेरी जीभ को यमदूतो ने आकर पकड लिया है अर्थात् तेरा बोल बन्द हो गया है तू अपना मन्तव्य प्रकट करने

के लिए शोर करता है, परन्तु उन इशारो को कोई नही समझता है । तुम्हारी शव-यात्रा की तैयारी हो रही है । पाँच गज कफन मगाया जा चुका है । पिण्ड-दान के लिए आटा सान लिया गया है । खानी हाँडी मे अग्नि रख ली गई है और लोग तुझको लाद कर शमशान की ओर चल दिए हैं । बहुत से भाई-बन्धुओ को बुलाकर तेरी अन्त्येष्टि क्रिया सम्बन्धी समस्त कार्य सम्पन्न कर दिए हैं । कबीरदास कहते हैं कि मेरे इस कथन मे कुछ भी झूठ नही हैं । तू विषय-वासना मे लिप्त बने रहने की अपनी आदत को छोड दे । और निश्चिन्त होकर भगवान राम का भजन कर । कुल की मिथ्या-मान-मर्यादा के अहकार मे मत फँस ।

अलकार—(i) रूपक—थूँनी, मन्दिर ।

(ii) अनुप्रास—करि कुल की कानि ।

विशेष—(i) वैराग्य भावना का प्रतिपादन है ।

(ii) शात रस की व्यजना है ।

(iii) बिम्ब-विधान द्वारा अन्त समय का सजीव चित्रण है ।

(iv) मृत के साथ श्मशान तक जानेवाले उपकरणो का वर्णन यह घोषित करता है कि कबीर लोक-व्यवहार से पूर्णत परिचित थे । यह उनके गृहस्थ होने का भी प्रमाण है ।

(v) जिस भाँति वल्लभाचार्य ने भक्ति के मार्ग मे 'कुलकानि' परित्याग की बात कही, उसे हम कबीर मे भी पाते हैं । मीराबाई ने तो सचमुच कुल की कानि छोड ही दी थी—

छाँड़ि दयी कुल की कानि कहा करिहै कोई ।
सतन ढिग बैठि-बैठि, लोक-लाज खोई ।

इसी बात को गोस्वामी जी ने थोडे से फेर के साथ कहा है—

जो पै रहनि राम सो नाहीं ।

× × ×

कीरति, कुल करतूति, भूति भलि सील सरूप अलोने ।
तुलसी प्रभु-अनुराग-रहित जस सालन साग सलोने ।

(३१५)

प्राणीं लाल औसर चल्यौ रे बजाइ ।
मुठी एक मठिया मुठि एक कठिया, सग काहू कै जाइ ।।टेक।।
देहली लग तेरी मिहरी सगी रे, फलसा लग सगी माइ ।
मड़हट लूँ सब लोग कुटबी, हस अकेलौ जाइ ।।
कहां वे लोग कहां पुर पटण, बहुरि न मिलबौ आइ ।
कहै कबीर जगनाथ भजहु रे, जन्म अकारथ जाइ ।।

शब्दार्थ—लाल=सुन्दर । औसर=दाव । पहण=बाजार । बजाइ=खेलकर ।

संदर्भ कबीर जीवन की नश्वरता एव सगे-सम्बन्धियों के साहचर्य की क्षणिकता की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए जीव को भगवत्भजन की प्रेरणा देते है।

भावार्थ—यह सुन्दर प्राणी अपना जीवन-दाव खेलकर अब जा रहा है। उसकी एक मुट्ठी मे आटे का पिण्ड है और एक हाथ उसकी काठी (जनाजे) पर रख दिया गया है। परन्तु यह आटे का पिण्ड भी किसी के साथ नही जाता है। घर की देहरी तक पत्नी सगी रहती है अर्थात् देहरी तक रोती हुई पत्नी जाती है और दरवाजे तक माता सगी रहती है। सब कुटुम्बी लोग श्मशान तक जाते हैं, परतु आगे की यात्रा मे यह जीव अकेला ही जाता है। ये सब सगे-सम्बन्धी, नगर, बाजार कहाँ साथ जाते है ? वे सब यही रह जाते है। इन सबसे फिर मिलना नही होता है। कबीर कहते हैं कि इन सब बातो पर विचार करके जगत के स्वामी भगवान का भजन करो। भजन के बिना यह जन्म व्यर्थ ही जा रहा है।

अलकार - (i) अनुप्रास—मुठी मठि मठिया।
(ii) पदमैत्री—मठिया कठिया।
(iii) गूढोक्ति –(i) कहाँ वे ····परण।

विशेष— शात रस की व्यजना है। 'निर्वेद' भाव का परिपाक द्रष्टव्य है।

(ii) फलसा का पाठान्तर 'दुआरै' है। इसीसे इसका अर्थ 'द्वार' कर दिया है।

(iii) प्राणी लाल औसर चल्यौ रे बजाय। डा० माताप्रसाद गुप्त ने इस पक्ति का अर्थ इस प्रकार किया है। औसर-अवसर-नृत्य-सगीतादि की सभा है। 'लाल' है लल्लक्क-रवपूर्ण। रे प्राणी, तू रवपूर्ण अवसर (सगीत का कार्यक्रम) बजाकर अब वापिस चल पडा है। उनके द्वारा इस अर्थ की कल्पना का आधार यह पाठान्तर है—चारि दिन अपनी नउबति चले बजाइ।"

हम तो 'लाल' का अर्थ महाशय करते हैं। हे प्राणी लाल अथवा प्राणी महाशय! कह कर तीव्र सम्बोधन की व्यजना की गई है। बजाई का अर्थ है— 'अजाम देकर'। अर्थ होगा—तुमको जो मानव जन्म देकर एक श्रेष्ठ अवसर प्रदान किया गया था, उसको पूरा करके हे प्राणी महाशय चल दिए और तुमने इस जन्म को व्यर्थ गँवा दिया। जो समय बचा है, उसीमे भगवान का नाम लेलो। इसी भाव को अभिप्रेत मानकर हमने उपर्युक्त अर्थ किया है। हमारे विचार से उपर्युक्त अर्थ ही युक्तियुक्त है। डा० गुप्त द्वारा किए गए अर्थ मे हमको खीचतान अधिक दिखाई देती है। नौबत बजाने वाली कबीर की यह साखी इस प्रकार है—

कबिरा नौबत आपनी दिन दस लेहु बजाय।
ये पुर पट्टन ये गली बहुरि न देखौ आय।

(३१६)

रांम गति पार न पावै कोई।
च्यतामणि प्रभु निकटि छाड़ि करि, भ्रंमि भ्रंमि मति बुधि खोई ।।टेक।।

तीरथ बरत जपै तप करि करि, बहुत भांति हरि सोधैं ।
सकति सुहाग कहौ क्यूं पावै, अछता कंत विरोधैं ।।
नारी परिष बसै इक संगा, दिन दिन जाइ अबोलैं ।
तजि अभिमान मिलै नही पीव कूं, ढूढ़त बन बन डोलैं ।।
कहै कबीर हरि अकथ कथा है, बिरला कोई जानैं ।
प्रेम प्रीति बेधी अंतर गति, कहूँ काहि को मांनै ।।

शब्दार्थ - सोधैं=खोजे । गति=महिमा । सुहाग=सौभाग्य ।

संदर्भ—कबीर ज्ञान-दशा का वर्ण करते है ।

भावार्थ—राम की महिमा का रहस्य कोई नही पाता है । लोग अपने स्वरूप से अभिन्न प्रभु रूपी चिन्तामणि (मनचाही वस्तुएँ देने वाली मणि) को छोड कर इधर-उधर विभिन्न साधनाओ एव सिद्धियो मे भटकते रहते है और इस प्रकार अपनी विवेक-वुद्धि भी खो देते हैं । तीर्थ, व्रत, जप-तप आदि करते हुए लोगो ने भगवान को बहुत प्रकार से खोजा, (परन्तु उन्हे भगवान की प्राप्ति नही हुई) । कोई नारी अपने पति का विरोध करते हुए भला पति-मिलन सोभाग्य-सुख क्यो कर प्राप्त कर सकती है ? जो स्त्री और पुरुष साथ-साथ रहते हुए आपस मे विन बोले ही समय व्यतीत करते हैं, उनके जीवन मे आनन्द कहाँ से आसकता है ? व्यजना यह है कि जो जीवात्मा अपने पति परमात्मा के साथ निरन्तर रहते हुए भी उससे विमुख रहती है, उस आत्मा सुन्दरी को प्रेमानन्द और परमानन्द की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है ? यह जीवात्मा उस नारी के समान है जो मान वश प्रियतम से विमुख रहती है और प्रेमानन्द की प्राप्ति के लिए इधर-उधर चारो ओर मारी-मारी फिरती है । यह जीवात्मा अपने पृथकत्व के भाव को त्याग कर परमात्मा मे अपने अस्तित्व को तो मिलती नही है और आत्मानन्द की प्राप्ति के लिए जगलो मे जाकर तपस्या आदि करती है । कबीर कहते हैं कि भगवान के प्रेम की महिमा वर्णनातीत है । इसके महत्व को कोई बिरला ही जान पाता है । मेरा अन्त करण उस प्रेम-प्रीति द्वारा बिद्ध हो गया है । इस अनुभूति का वर्णन मैं किससे करूँ और कौन इस पर विश्वास करेगा ।

अलकार – (i) सम्बन्धातिशयोक्ति—राम ·· ····कोई ।
(ii) रूपक—च्यतामणि प्रभु ।
(iii) पुनरुक्ति प्रकाश—भ्रमि भ्रमि, करि करि, दिन दिन, वन वन ।
(iv) वक्रोक्ति—सकति · विरोधैं । को मानैं ।
(v) निदर्शना—सकति ······डोलैं ।
(vi) विरोधाभास—अकथ कथा ।
(vii) गूढोक्ति—कहूँ काहि ।
(viii) रूपकातिशयोक्ति—नारी, पुरुष ।

विशेष—(i) वाह्याचार का विरोध व्यक्त है

(ii) जीवात्मा और परमात्मा का अभिन्नत्व प्रतिपादित है। पृथकत्व भाव भ्रम है। इसकी निवृत्ति द्वारा ही जीव का कल्याण सम्भव है। सूफी कवि कहते आए हैं—"इशरते कतरा है दरिया मे फना हो जाना।"

(iii) च्यातमणि—खोई। समभाव देखे—

कस्तूरी कुण्डल बसै, मृग ढूढ़ैं बन मांहि।
ऐसे घट घट राम हैं दुनियाँ देखे नाँहि।

(iv) विरला कोई जाने। तुलना करें—

नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी। कोउ एक होइ धर्म ब्रतधारी।
धर्म सील कोटिक महँ कोई। विषय विमुख बिराग रत होई।
कोटि बिरक्त मध्य स्रुति कहई। सम्यक ज्ञान सकृत कोउ लहई।
ग्यानवंत कोटिक महँ कोऊ। जीवनमुक्त सकृत जग सोऊ।
तिन्ह सहस्र महँ सब सुख सानी। दुर्लभ ब्रह्म लीन बिग्यानी।

इत्यादि—गोस्वामी तुलसीदास

(३१७)

रांम बिनां संसार धंध कुहेरा,
सिरि प्रगट्या जांम का पेरा ॥ टेक ॥
देव पूजि पूजि हिंदू मूये, तुरक मूये हज जाई।
जटा बांधि बांधि योगी मूये, इनमैं किनहूँ न पाई॥
कवि कवीनैं कविता मूये, कापड़ी के दारौं जाई।
केस लूंचि लूंचि मूये बरतिया, इनमै किनहूँ न पाई॥
धन संचते राजा मूये, अरू ले कंचन भारी।
बेद पढ़ें पढ़ि पंडित मूये, रूप भूले मूई नारी॥
जे नर जोग जुगति करि जांनै खोजै आप सरीरा।
तिनकूं मुकति का संसा नाहीं, कहत जुलाह कबीरा॥

शब्दार्थ—धंध=धुंध, धुंए का आवरण। कुहेरा=कुहासा, कुहारा। जाम=जम। पेरा=पेरने (दवाव डाल कर रस निचोडने) वाला यन्त्र, लक्षण से आरा अथवा फंदा। हज=मक्के की यात्रा। कापडी=कार्यटिक, तीर्थयात्री। लूंचि-लूंचि=नोच-नोच कर। वरतिया=व्रत करने वाले, जैन साधु।

संदर्भ—कबीर आत्म-साक्षात्कार का प्रतिपादन करते हैं।

भावार्थ—भगवान राम की भक्ति के विना यह संसार धुंध और कोहरे के समान निस्सार है। भावार्थ यह है कि राम भक्ति के अतिरिक्त अन्य समस्त साधनाएँ अज्ञान संशय एवं दिग्भ्रम मे डालने वाली हैं। मानव को समझ लेना चाहिए कि यमराज का आरा उसके सिर के ऊपर निरन्तर लटकता रहता है। देवता पूज-पूज कर हिन्दू मर गये हैं, मुसलमान मक्का की यात्रा कर करके मर गये तथा योगी

जटा-जूट बाँध बाध कर मर गये, परन्तु किसी को भी मोक्ष की प्राप्ति नही हुई। कविगण कविता करके मर गये, तीर्थ यात्री केदारनाथ मे जाकर मर गये, जैन मतावलम्बी व्रती साधुओ ने बाल नोच नोच कर प्राण दे दिए, परन्तु इनमे से भी किसी को मोक्ष की प्राप्ति नही हुई। धन एकत्र करते हुए और बहुत सा स्वर्ण बटोरते हुए राजे मर गये, वेदो का अध्ययन करते हुए पडित मर गये, रूप के अहकार मे नारियाँ मर गई, परन्तु उद्धार किसी का नही हुआ। जो व्यक्ति भगवान से मिलने की युक्ति जानना चाहते हैं, वे अपने शरीर के भीतर ही भगवान (परम-तत्व) को खोजते हैं। जुलाहा कबीर कहता है कि जो व्यक्ति अपने घर के भीतर भगवान को खोजते हैं उन्हे निश्चित रूप से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

अलंकार—(i) रूपक—ससार धध कुहेरा।

(ii) पुनरुक्ति प्रकाश=पूजि पूजि, बोधि बोधि, लू चि लू चि।

(iii) वृत्यानुप्रास—कवि कवीनै कविता कापडी,।

विशेष—(i) धध कुहेरा—"असत् एव अचित" अभिप्रेत है।

(ii) वाह्याचार की निरर्थकता प्रतिपादित है।

(iii) अह-भावना एव आसक्ति के प्रति तीव्र विरोध व्यक्त है।

(iv) जुलाहा—जात्याभिमानियो के प्रति व्यग्य है।

(३१८)

कहू रे जे कहिबे की होइ।
नां को जानै नां को मानै, तार्थं अचिरज मोहि ।। टेक ।।
अपनें अपनें रंग के राजा, मानत नांही कोई।
अति अभिमांन लोभ के घाले, चले अपन पौ खोइ ।।
मै मेरी करि यहु तन खोयो, समझत नही गवार।
भौजलि अधफर थाकि रहे हैं, बुड़े बहुत अपार ।।
मोहि आग्या दई दयाल दया करि काहू कू समझा।
कहै कबीर मै कहि हार्यौ, अब मोहि दोस न लाइ ।।

शब्दार्थ—घाले=मारे हुए, वशीभूत। भौजल=भव जल, भवसागर। अधफर=फर=युद्ध-लक्षण से मार्ग।

संदर्भ—कबीरदास ससार के व्यक्तियो के अज्ञान के प्रति अपना क्षोभ प्रकट करते है।

भावार्थ—मैं तो वे ही बातें कहता हूँ जो कहने योग्य होती हैं। परन्तु उनको न तो कोई समझता है और न उन पर कोई विश्वास ही करता है। इसी से मुझे आश्चर्य होता है। सभी लोग अपने अपने रग मे मस्त हैं। इसी लिए कोई मेरी बात को मानता नही है। वे अत्यन्त अभिमान और लोभ के वशीभूत हैं। उन्होने अपनत्व को खो दिया है अर्थात् वे अपने शुद्ध आतम-स्वरूप को भूल गये है। ये मूर्ख वास्तविकता तो समझते नही हैं। इन्होने "मैं और मेरी" के फेर मे ही

अपना समस्त जीवन नष्ट कर दिया है। ये लोग भव-सागर मे आधे रास्ते पर पहुँच कर थक गये है और इनमे वहुत से तो इस भव-सागर मे डूब चुके हैं। कबीर कहते हैं कि दयालु भगवान ने कृपापूर्वक मुझको आज्ञा दी है कि मैं भव-सागर मे डूबते हुए इन व्यक्तियो मे कुछ को तो विवेक-बुद्धि दे दूं। मै कह-कह कर थक गया हूँ। मेरी बात कोई नही सुनता है। अत. अब मुझको कोई दोष न दे (कि मैने अपने कर्त्तव्य का पालन नही किया)।

अलकार—(1) पदमैत्री—ना जानै, ना मानै, घाले चले।
(11) पुनरुक्ति प्रकाश—अपने अपने।
(111) वृत्यानुप्रास—दई, दयाल, दया, करि काहूँ कूँ।
(v) छेकानुप्रास —अति अभिमान।
(v1) रूपक—भौजलि।
(v11) पुनरुक्तिवदाभास—वहुत। अपार।

विशेष—(1) रग के राजा—मुहावरा है—तुलना करे—

मारग सोइ जाकहँ जो भावा। पडित सोइ जो गाल बजावा।

(गोस्वामी तुलसीदास)

यह लोकोक्ति भी प्रचलित है—''अपनी अपनी ढफली और अपना अपना राग।''

(11) विभिन्न साधनाओ मे पडे हुए मानव अपने जीवन को नष्ट करते रहते हैं—यही इस पद का अभिप्रेत अर्थ है। यही बात गोस्वामी तुलसीदास ने कही है—

श्रुति सम्मत हरि भक्ति पथ सजुत बिरति बिवेक।
जे परिहरहिं बिमोह बस कल्पहिं पथ अनेक।

(111) कबीर को ज्ञानोपदेश की प्रेरणा भगवान की मगल-विधायिनी शक्ति से प्राप्त हुई थी। इस कथन मे कबीर का आत्म-विश्वास भी व्यक्त है, साथ ही उनकी गर्वोक्ति की छाया भी है। ये दोनो तत्व कबीर के व्यक्तित्व पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। कबीर पूरे आत्म विश्वास के साथ यह मानते थे कि उन्हे आत्म-साक्षात्कार हो गया था तथा वह परमात्मा के सदेश-वाहक थे।

(1v) कबीर ने उन लोगो पर गहरा व्यग्य किया है जो प्रभु के स्वरूप को जाने विना ही उसके विषय मे तरह-तरह की बाते कहते रहते हैं।

(३१६)

एक कोस वन मिलांन न मेला
वहुतक भाँति करै फुरमाइस, है असवार अकेला ॥ टेक ॥
जोरत कटक जुधेरत सब गढ़ करतब झेली झेला।
जोटि कटक गढ़ तोरि पातिसाह, खेलि चल्यो एक खेला ॥

कूंच मुकांम जोग के घर मैं, कछू एक दिवस खटांनां ।
आसन राखि बिभूति साखि दे, फुनि ले मटी उडांनां ।।
या जोगी की जुगति जु जांनै, सो सतगुर का चेला ।
कहै कबीर उन गुर की कृपा थैं, तिनि सब भरम पछेला ।।

शब्दार्थ—मिलान = मिलाने की क्रिया । असवार = जीवात्मा रूपी सवार । फुरमायस = अनुनय-विनय, प्रार्थना । करक = सेना, विकारो की सेना । गढ = शरीर रूपी किला । झेली झेला = झेलना । वादशाह = साधक जीव । कूंच = यात्रा । मुकाम = गन्तव्य स्थान, परम पद । खटाना = कस के काम किया । फुनि = फिर । पछेला = पीछे छोड दिया । मटी = मटिया, समाधिस्थ चेतना ।

संदर्भ—कबीर परमपद की प्राप्त का निरूपण करते हे ।

भावार्थ—(माया-मोह मे फँसा हुआ) यह जीवन एक कोश का वीहड जगल है । इसमे न तो कोई परमात्मा से मिलने की क्रिया ही वताता है और न कोई उससे मिल ही पाता है । जीवात्मा-रूपी यह घुडसवार अपनी जीवन-यात्रा मे अकेला ही है । वह ससार रूपी जगल को पार करने के लिए अनेक साधनाओ मे भटकता है । (काम, क्रोध, लोभ, मोह एव मत्सर) विकार पूरी सेना एकत्र करके जीव को शरीर-रूपी गढ मे ही घेर लेते हैं । गढ मे आबद्ध जीव का धर्म ही अनेक कष्टो को झेलना है । परन्तु साधक जीव रूप राजा अपनी साधना रूपी सेना का सचय करके उस शरीर रूपी किले के घेरे को तोडकर बाहर आ जाता है अर्थात् देहाध्यास एव विषयासक्ति को छोड देता है । इस प्रकार वह जीवन के इस सघर्ष को खेल के रूप खेलकर अपने गन्तव्य परमपद की ओर प्रस्थान कर देता है । इस यात्रा मे वह कायायोग मे निवास करता है और कायायोग की साधना मे उसको कुछ समय तक कठिन श्रम करना पडता है । उसके वाद अपने आसन पर शरीर की मिट्टी को साक्षी रूप छोडकर वह अपनी समाधिस्थ चेतना को लेकर चला जाता हैं । जो इस प्रकार के योग करने वाले साधक की साधना को समझता है, वही सद्गुरु का सच्चा शिष्य है अर्थात् सद्गुरु की कृपा प्राप्त करके ही यह साधना की जा सकती है । कबीर कहते हैं कि उसी गुरु की कृपा से योगी साधक सम्पूर्ण भ्रमो को पीछे छोड कर परम पद को प्राप्त करता है ।

अलकार—(i) रूपकातिशयोक्ति—पूरा पद ।
(ii) छेकानुप्रास—मिलाननि मेला, असवार अकेला, झेली झेला, खेलि खेला । जोगी, जुगति ।

विशेष—(i) जीवन-सग्राम का सुन्दर रूपक है । इस पद मे पारमार्थिक जीवन क्रम का उल्लेख है ।

(ii) कायायोग साध्य न होकर साधन मात्र ही है ।

(iii) गुरु की महिमा व्यजित है ।

(IV) ले मठी उडाना—समाधिस्थ चेतना द्वारा वह ब्रह्मलीन हो जाता है—

झल उठी झोली जली खपरा फूटिम फूटि ।
जोगी था सो रमि गया, आसन रही बिभूति ।

राग मारू

(३२०)

मन रे रांम सुमिरि, रांम सुमिरि, रांम सुमिरि भाई ।
रांम नांम सुमिरन बिनां, बूड़त है अधिकाई ।। टेक ।।
दारा सुत ग्रेह नेह, सपति अधिकाई ।
यामै कछू नांहि तेरौ, काल अवधि आई ।।
अजामेल गज गनिका, पतित करम कीन्हां ।
तेऊ उतरि पारि गये, रांम नांम लीन्हां ।।
स्वांन सूकर काग कीन्हौ, तऊ लाज न आई ।
रांम नांम अमृत छाड़ि, काहे बिष खाई ।।
तजि भरम करम विधि नखेद, रांम नांम लेहीं ।
जन कबीर गुरु प्रसादि, रांम करि सनेही ।।

शब्दार्थ—नखेद=निषेध । दारा=स्त्री । करम=कर्म-काण्ड ।

सदर्भ—कबीर राम-नाम की महिमा का प्रतिपादन करते हैं ।

भावार्थ—रे मेरे भाई मन, राम का स्मरण करो, राम का स्मरण करो, राम का स्मरण करो । राम नाम के स्मरण के बिना इस भव सागर मे और अधिक डूब जाओगे अर्थात् माया मोह मे अधिकाधिक लिप्त होते जाओगे । स्त्री, पुत्र, घर एव इनके प्रति स्नेह तथा अतुल सम्पत्ति इनमे तेरा कुछ भी नही है । अपना समय आने पर ये सब नष्ट हो जाएँगे । अथवा तेरे जीवन की अवधि समाप्ति के निकट आ रही है और ये सब तुझ से छूट जाएँगे । अजामिल, हाथी और पिंगला वेश्या ने नीच कर्म किए । परन्तु राम का नाम लेने से वे भी ससार-सागर के पार हो गए । अर्थात् उनका भी उद्धार हो गया । रे जीव, तुम कुत्ता, सूअर, कौआ आदि जैसी निम्न योनियो मे भटक चुके हो, परन्तु तुमको तब भी पाप कर्म करते हुए शर्म नही आती है । तुम राम भक्ति रूपी अमृत को छोडकर विषयासक्ति रूपी विष का सेवन करते हो । तुम अन्य साधनाओ के द्वारा उद्धार की सम्भावना के भ्रम तथा कर्म काण्ड के विधि-निषेध को छोडकर राम के नाम का स्मरण करो । भक्त कबीरदास कहते हैं कि तुम गुरु की कृपा-प्राप्त करो और भगवान राम के प्रति अनुरक्त हो जाओ ।

अलकार—(I) पुनरुक्ति प्रकाश --राम सुमिरि की आवृत्ति ।
(II) गूढोक्ति—तेऊ पार—लीन्हा ।
(III) रूपक—राम नाम अमृत ।

(IV) रूपकातिशयोक्ति – विष ।

(V) पदमैत्री—भरम करम ।

विशेष—(I) कबीर ज्ञानी भक्त के रूप मे प्रकट हैं ।

(II) तजि करम विधि निषेद - कबीर शास्त्र विहित कर्मकाण्ड के प्रति विरोध प्रकट करते हैं ।

(III) पौराणिक आरकानो की परम्परा का प्रयोग है । यहाँ कबीर वैष्णव भक्तो की परम्परा मे दिखाई देते है—

मै हरि पतित पावन सुनै ।

× × ×

ब्याध गनिका गज अजामिल साखि निगमन भने ।
और अधम अनेक तारे जात कापै गने ।
जानि नाम अजानि लीन्हे नरक जमपुर मने ।
दास तुलसी सरन आयो, राखिये अपने ।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(IV) प्रयुक्त पौराणिक आख्यान इस प्रकार हैं—

अजामेल (अजामिल)—अजामिल एक ब्राह्मण था । वह बडा पापी था । उसके पुत्र का नाम 'नारायण' था । मृत्यु के समय उसने अपने पुत्र 'नारायण' को नाम लेकर पुकारा । 'नारायण' की पुकार सुनते ही भगवान के दून वहाँ आगए और यमदूतो से उसको छुडाकर भगवान के धाम को ले गये । इस प्रकार भगवन्नाम स्मरण मात्र से अजामिल का उद्धार हो गया ।

(ख) गज (गजेन्द्र या गजराज)—हाथियो का एक अत्यन्त बलवान राजा था । उसे अपने बल का बडा घमण्ड था । एक बार जब वह नदी मे पानी पी रहा था, तब एक मगर ने उसका पैर पकड लिया । हाथी ने पूरा जोर लगाया, परन्तु मगर ने उसका पैर नही छोडा । उलटे वह हाथी को जल के भीतर खीच ले गया । जब हाथी की सू ड का ऊपरी भाग ही पानी के ऊपर रह गया, तब आर्त स्वर से उसने भगवान को पुकारा । उसकी पुकार सुन कर भगवान उसके रक्षार्थ भागे और उन्होने सुदर्शन चक्र द्वारा मगर का वध करके गजराज का उद्धार किया ।

(ग) गनिका—यह पिंगला नाम की वेश्या थी । एक बार अपने व्यवसाय से निराश होकर उसने भगवान के भजन का सकल्प कर लिया था और इसका उद्धार हो गया ।

इसकी कथा एक अन्य प्रकार भी है । यह वेश्या अपने तोते को राम-राम पढा रही थी । बस, इसी राम-नाम उच्चारण से उसका उद्धार हो गया था—सुवा-पढ़ावत गणिका तारी । तारी मीराबाई । इत्यादि ।

(३२१)

रांम नांम हिरदै धरि, निरमोलिक हीरा ।
सोभा तिहूं लोक, तिमर जाय त्रिबधि पीरा ।। टेक ।।
भिसनां नै लोभ लहरि, कांम क्रोध नीरा ।
मद मछर कछ मछ, हरषि सोक तीरा ।।
कांमनी अरू कनक भवर, बोये बहु बीरा ।
जन कबीर नवका हरि, खेवट गुरु कीरा ।।

शब्दार्थ—निरमोलिक—अमूल्य, वहुमूल्य, । तिमर=तिमिर, अन्धकार, अज्ञान । बोये=डुवोये । कीरा=कीट=शुकदेव । यदि पाट कोरा है, तो अर्थ 'केवल' होगा ।

संदर्भ—कबीरदास गुरुप्रसाद और हरि कृपा द्वारा भव सागर पार करने का उपदेश देते है ।

भावार्थ—कबीरदास कहते हैं कि रे जीव, तुम हृदय मे राम नाम रूपी वहुमूल्य हीरे को अपने हृदय मे धारण करो । इससे तीनो लोकों मे तेरी शोभा (इज्जत) होगी तथा तेरा अज्ञानान्धकार एवं तेरे तीनो प्रकार (दैहिक, दैविक, भौतिक) कष्ट नष्ट हो जाए गे । (भव सरिता मे) काम और क्रोध रूपी जल भरा हुआ है, इसमे लोभ और तृष्णा की लहरें उठती रहती हैं, इसमे मद और मत्सररूपी मछलियाँ और कछुए है, सुख और दु:ख इसके किनारे हैं तथा इसमे कामिनी और कचन रूपी भँवरें पड रही हैं । इस भव नदी मे अनेक वीर डूब चुके है । भगवान के भक्त कवीरदास कहते हैं कि भव-नाम की नाव तथा गुरु शुकदेव रूपी केवट के सहारे ही इसको पार किया जा सकता है । अथवा यह कहिए कि इसको पार करने के लिए भगवन्नाम ही नाव है और केवल गुरु ही इस नौका का केवट है ।

अलंकार—(i) साग रूपक—पूरा पद ।
(ii) व्यतिरेक की व्यंजना—निरमोलक हीरा ।
(iii) छेकानुप्रास—तिमिर, त्रिविध । लोभ लहरि, काम कोध, मद मछर ।
(iv) पदमैत्री—कछ मछ ।
(v) वृत्यानुप्रास—वोये वहु वीरा ।
(vi) श्लेष पुष्ट रूपक—तिमर

विशेष—(i) त्रिविध पीर—दैहिक=शारीरिक । दैविक=देवकृष्ठ । भौतिक=अत सम्वन्धी ।

(ii) त्रिपना—तृष्णा भोग की इच्छा, अप्राप्त वस्तु को पाने की तीव्र इच्छा । बुद्ध ने इनी को 'तनहा' कहा है । इसी के वशीभूत होकर जीवात्मा जन्म धारण करने को प्रेरित होता ह ।

(iii) हरषि सोक तीरा—प्रत्येक कार्य की परिप्रगति इष्ट की प्राप्ति (सुख) अथवा इष्ट के वियोग एव अनिष्ट की प्राप्ति (दुख) मे होती है।

(iii) वीर काम क्रोधादि पर विजय प्राप्त करने के लिए साधना करने वाला ही 'वीर' है। जैन धर्म के 'जिन' का अर्थ 'वीर' ही है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी लिखा है कि—

महा अजय संसार रिपु जीति सकय सो वीर।

(रामचरितमानस)

(३२२)

चलि-मेरी सखी हो, वो लगन रांम राया।
जब तब काल बिनासै काया ॥ टेक ॥
जब लग लोभ मोह की दासी, तीरथ ब्रत न छूटै जम की पासी ।
आवैगे जम के घालैंगे बांटी, यहु तन जरि वरि होइगा माटी ॥
कहै कबीर जे जनहरि रंगिराता, पायौ राजा रांम परम पद दाता ।

शब्दार्थ—लगन=प्रेम। बोटी=कुचल कर।

सदर्भ—कबीरदास भगवद् भक्ति का प्रतिपादन करते हैं।

भावार्थ—रे मेरी जीवात्मा सखी! तू राजा राम के प्रेम मे मग्न हो जाओ। यह काल किसी भी क्षण इस शरीर को नष्ट कर सकता है। तुम जब तक लोभ और मोह की दासी हो तथा वीर-व्रत आदि के फेर मे पडी हुई हो, तब तक यम के वन्धन से मुक्त नही हो सकोगी। यम दूत आएँगे और तुमको कुचल कर (पीस-पास कर) मार डालेंगे। तुम्हारा यह शरीर जल-जल कर मिट्टी हो जाएगा। कबीरदास कहते हैं कि जो लोग राम के प्रेम मे अनुरक्त हैं, वे उन राजा राम को प्राप्त करते हैं जो परम पद को देने वाले हैं।

अलकार—(i) रूपकातिशयोक्ति सखी।
(ii) जरि वरि, जब तब, बाटी माटी।
(iii) विशेषोक्ति की व्यजना तीरथ पासी।
(iv) वृत्यानुप्राम—पायौ, परम पद।

विशेष—(i) वाह्याचार का विरोध है।

(ii) राम-भक्ति की महिमा का प्रतिपादन है।

(iii) सखी' शब्द जीवात्मा अथवा अन्त करण की वृत्ति के लिए उपलक्षण है।

(३२३)

तू पाक परमांनदे।
पीर पैकंबर पनह तुम्हारी, मै गरीब क्या गदे ॥ टेक ॥
तुम्ह दरिया सबही दिल भीतरि, परमांनद पियारे ।
नेक नजरि हम ऊपरि नांही, क्या कमिबखत हमारे ॥

हिमकति करै हलाल बिचारै, आप कहावै मोटे ।
चाकरी चोर निवालै हाजिर, सांई सेती खोटे ।।
दांइम दूवा कम्द बजावै, मैं क्या करूं भिखारी ।
कहै कबीर मैं बंदा तेरा, खालिक पनह तुम्हारी ।।

शब्दार्थ—पीर=मुसलमानो के धर्म गुरु, धर्मगुरु । पैकंवर=पैगबर – पैगामवर, ईश्वर का दूत (मुहम्मद साहब) । गदे=गदा (फारसी), भिखारी, रक निर्धन । दरिया=नदी । कमिबखत=दुर्भाग्य । हिकमति=चिकित्सा, युक्तियाँ । हलाल=पशु हिसा । मोटे =बडे । निवालै =भोजन के समय । साई=स्वामी । सेती=से, प्रति । खोटे=बुराई करने वाले । दाइम=दामन (अरबी शब्द), सदैव, उम्रभर । दूवा=छुरी, चाकू । दूवा=दुआ । बदा=सेवक । खालिक=सृष्टिकर्त्ता ।

सन्दर्भ—कबीरदास भगवान से शरणागति की प्रार्थना करते हैं ।

भावार्थ—हे भगवान तू पवित्र और परमानन्द स्वरूप हो । धर्मगुरु और मोहम्मद साहब जैसे तेरे सदेश-वाहक भी जव तेरी शरण मे रहते है, तब मुझ गरीब भिखारी की तो गिनती ही क्या है ? हे प्यारे परमानन्द, तुम दया की नदी स्वरूप होकर सबके हृदय मे निवास करते हो । यह मेरा कैसा दुर्भाग्य है कि मेरे ऊपर आपको जरा भी दया दृष्टि नहीं है । लोग दूसरो को उद्धार की युक्तियाँ वताते हैं और स्वय हृदय मे हिंसा धारण करते है । ऐसे ही व्यक्ति वडे कहे जाते हैं । व्यक्ति भगवान की सेवा से जी चुराते हैं, अर्थात् कर्त्तव्य का पालन ठीक तरह से नही करते है परन्तु भोजन के समय सदैव प्रस्तुत दिखाई देते हैं और इस प्रकार स्वामी के प्रति सदोप व्यवहार करते हैं । ये लोग उम्र भर दुआ मागते हैं और छुरी चलाते हैं (हिंसा करते हैं । इन्ही का सम्मान होता है) । इन लोगो पर मुझ भिखारी का क्या वश चल सकता है ? कबीरदास कहते है कि मैं तो सेवक हूँ । हे सृजन हार, मैं तुम्हारी शरण मे हूँ—मेरे ऊपर अनुग्रह कर दीजिए ।

अलंकार—(i) अनुप्रास—पीक पैंकवर पनह ।
(ii) छेकानुप्रास—पाक परमानन्दे, दरिया दिल, चाकरी चोर साई सेती, दाइम दूवा, हिकमति हलाल ।
(iii) वक्रोक्ति—मैं · · · गदे ?
(v) श्लेप पुष्ट रूपक ···दरिया ।
(iv) गूढोक्ति—क्या·· ·· ·हमारे ।
(vi) विपम—चाकरी · उजावै ।

विशेष—(i) धर्म के ठेकेदारो के प्रति करारा व्यग्य है ।

(ii) इस पद मे कबीर ने काजी-मुल्लाओ के मास भक्षण के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त किया है ।

(iii) फारसी-अरबी के शब्दो के प्रयोग ने भावाभिव्यक्ति को सर्वथा स्वाभाविक बना दिया है ।

(३२४)

अब हम जगत गौंहन तै भागे,
जग की देखि गति रांमहि ढूंरि लागे ।। टेक ।।
अयांन पनै थैं बहु बौरानें, संमझि परी तब फिरि पछितानें ।
लोग कहौ जाकै जो मनि भावै, लहै भुवगम कौन डसावै ।।
कबीर बिचारि इहै डर डरिये, कहै का हो इहां नै मरिये ।

शब्दार्थ – गौहन=गोहन, सग साथ । ढुरि लागे=ढुलक गये, झुक गये । अयाँन=अज्ञान । भुवगम=सर्प, मोह भ्रम ।

सन्दर्भ—कबीरदास ज्ञान-दशा का वर्णन करते हैं ।

भावार्थ—अब मैं जगत के प्रति आसक्ति को त्याग रहा हूँ । ससार का जो दुःख दायी ढग है, उसको देखकर अब मै भगवान की ओर झुक गया हू । अज्ञान के कारण मैंने माया मोह के वशीभूत होकर अनेक पागलपन के काम किये । परन्तु अब ज्ञान हो जाने पर मैं अपने किए हुए कर्मों पर पश्चाताप कर रहा हूँ । मेरे बारे मे लोग जो चाहें सो कहे । परन्तु मैं अब भगवद्प्रेम के मार्ग को नही छोड़ूँगा ! ज्ञान प्राप्त हो जाने पर भ्रम एव मोह रूपी सर्प कोई क्योकर डसावेगा ? कबीर खूब सोच-समझ कर कहते हैं कि विषय-वासना रूपी सर्प के डर से डरते रहना चाहिए। किसी के कहने से क्या होता है ? विपयासक्ति मे फँस कर अपना जीवन नष्ट नही करना चाहिए ।

अलंकार—(i) रूपकातिशयोक्ति—भुवगम ।
(ii) वक्रोक्ति पुष्ट निदर्शना लहै 'डसावै ।
(iii) गूढोक्ति—कहै का हो !

विशेष—ज्ञान-प्राप्ति के पश्चात् विषयासक्ति का सर्प सदृश भयावह प्रतीत होना सर्वथा स्वाभाविक है । विपयासक्ति और ज्ञानावस्था परस्पर विरोधी हैं । समभाव की अभिव्यक्ति देखे—

मैं अब नाच्यो बहुत गुपाल ।
काम क्रोध को पहिरि चोलना कण्ठ विषय की माल । (सूरदास)

तथा— **अबलौं नसानी, अब न नसैहौं ।**
× × ×
मन मधुकर पन कै तुलसी, रघुपति-पद-कमल बसैहौं ।
(गोस्वामी तुलसीदास)

(३२५)

राग भैरूं

ऐसा ध्यान धरौ नरहरी,
सबद अनाहद च्यतन करी ।। टेक ।।
पहली खोजौ पंचे बाइ, बाइ व्यंद ले गगन समाइ ।।
गगन जोति तहां त्रिकुटी संधि, रवि ससि पवनां मेलौ बंधि ।।

मन थिर होइत कवल प्रकासै कवला मांहि निरंजन बासै ।।
सतगुरु सपट खोलि दिखावै, निगुरा होइ तो कहां बतावै ।।
सहज लछिन ले तजो उपाधि, आसण दिढ निद्रा पुनि साधि ।।
पुहुप पत्र जहां हीरा मणीं, कहै कबीर तहां त्रिभुवन धणीं ।।

शब्दार्थ—बाइ=पच प्राण । व्यद=बिंदु, शरीर । गगन=शून्य, ब्रह्मरन्ध्र रवि ससि=सूर्य और चन्द्र नाडिया, इडा पिगला । कवल=कमल, सहस्रार कमल । प्रकाश=खिलता है । निरजन=निर्गुण निराकार ब्रह्म । सपट=सपुट, पुष्प कोष, डव्वा । निगुरा=बिना गुरु का जिसने गुरु से दीक्षा न ली हो । उपाधि=जगत के धर्म । निद्रा=समाधि । पुहुप पत्र=सहस्रदल कमल । हीरा मणि आत्मानन्द रूप द्वबहु मूल्य पदार्थ ।

संदर्भ—कबीरदास कायायोग का वर्णन करते है ।

भावार्थ—रे जीव, भगवान नरहरि का गम्भीर रूप से ध्यान करो और अनहद शब्द का चिन्तन करो । पहले पच प्राणो के स्वरूप का अनुसन्धान करो और शरीर की प्राणवायु लेकर ब्रह्मरन्ध्र मे समाहित करो । त्रिपुटी की सन्धि मे ही गगन ज्योति (दिव्य ज्योति) के दर्शन होते हैं । सुषुम्ना मे ऊपर की ओर चढने वाली प्राणवायु इडा और पिगला नाडियो के मध्य समन्वय स्थापित कर देती है । इससे मन स्थिर होता है और सहस्रार कमल प्रकाशित होता है । उसी कमल मे निराकार निरजन का निवास है । सत्गुरु इस कमल का संपुट होकर साधक शिष्य को निरंजन के दर्शन करा देता है । परन्तु जिसने गुरु से दीक्षा नही ली है, उसको इस विषय मे क ा बताया जाए अर्थात् गुरु के बिना निरंजन का दर्शन हो ही नही सकता हैं । अत. गुरु से दीक्षा लेकर सहज स्वरूप का साक्षात्कार करो और सासारिक उपाधियो (स्थूल जगत के धर्मो) को छोड दो । आसन जमा कर बैठ ज़ाओ और समाधिस्थ होने का प्रयत्न करो (अज्ञान रूपी निद्रा पर अधिकार करने की साधन करो) । कवीर कहते हैं कि सहस्रार कमल के पत्तो के मध्य मे ही आनन्द रूप हीरा-मणि है और वही पर त्रिभुवन पति का निवास है (उसी परम तत्व मे ध्यान लगाओ और उसी का चिन्तन करो ।

अलंकार—(1) वक्रोक्ति—निगुरा ……बतावै ।

विशेष—(1) नाथ सम्प्रदाय के प्रतीको का सुन्दर प्रयोग है ।
(11) कायायोग की साधना का सुन्दर वर्णन ।
(111) कायायोग साधन मात्र है ।
(1V) पचवायु—पच प्राण । यथा-प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान ।

(३२६)

इहि विधि सेविये श्री नरहरी,
मन की दुबिध्या मन परहरी ।। टेक ।।
जहां नहीं जहां नहीं तहां कछू जांणि, जहां नही तहां लेहु पछांणि ।।

नांहीं देखि न जइये भागि, तहां नही तहाँ रहिये लागि ।।
मन मजन करि दसवै द्वारि, गंगा जमुना सधि बिचारि ।।
नादहि ब्यंद कि ब्यदहि नाद, नादहि ब्यद मिलै गोब्यंद ।।
गुणातीत जस निरगुन आप, भ्रम जेबड़ी जग कीयौ साप ।।
तन नांहीं कब्र जब मन नांहि, मन परतीत ब्रह्म मन मांहि ।।
परहरि बकुला ग्रहि गुन डार, निरखि देख निधि वार न पार ।।
कहै कबीर गुर परम गियांन, सुंनि मंडल मै धरौ धियांन ।।
प्यड परें जीव जैसे जहां, जीवन ही ले राखौ तहां ।।

शब्दार्थ—दसवैं द्वारि=ब्रह्मरन्ध्र । जेवडी=रस्सी । बकुला=वल्कल, त्रिगुणात्मक आवरण । ग्रहि=पकडो । गुनडार=तात्त्विक गुण ।

सदर्भ—कबीरदास कायायोग की साधना का वर्णन करते हैं ।

भावार्थ—भगवान नरहरि की सेवा इस प्रकार करनी चाहिए कि मन की दुविधाओ का मन त्याग कर दे । जहाँ पर तुमको कुछ भी दृष्टिगोचर नही होता है, वहाँ भी उस तत्व वस्तु को पहचानो । उसी अगोचर तत्व मे जगत् है । उसको पहचानने का प्रयत्न करो । जहाँ तुमको कुछ भी न दिखाई दे, वहाँ से भागो मत । जहाँ गोचर तत्व न हो, वहाँ उसकी अनुभूति प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील बने रहना चाहिए । (शून्य में विराजमान परमतत्व मे अपना मन रमाओ) । मन को आसक्ति रहित करके पवित्र करो और उसको ब्रह्मरन्ध्र मे पहुँचा दो । इडा और पिंगला के मिलन-स्थल (त्रिपुटी) पर ध्यान एकाग्र करो । इस प्रकार ध्यान करो कि नाद-रूप परमतत्व ही सृष्टि-तत्व रूप विन्दु है अथवा बिन्दु ही नाद है । इनमे से कौन सा तत्व-नाद अथवा बिन्दु-यथार्थ एव मूल तत्व है । यह भी ध्यान करो कि ये नाद और विन्दु दोनों गोविन्द (परम प्रभू) मे ही समाहित हैं । इस स्थिति की प्राप्ति होने पर न देवी-देवता रह जाते हैं और न पूजा एव जप रह जाते हैं, न भाई-बन्धु रह जाते हैं और न माता-पिता ही रह जाते हैं । स्वयं साधक गुणातीत होकर निर्गुण ब्रह्म के समान हो जाता है । यह जगत तो केवल रस्सी मे भ्रम से आरोपित सर्प सदृश ही प्रतीत होने लगता है । जब सकल्प-विकल्पात्मक मन का लय हो जाता है, तव शरीर भी नही रह जाता है । (उसका पुनर्जन्म नही होता है) । आत्मस्वरूप के प्रति निष्ठा जागने पर ब्रह्म-साक्षात्कार होने लगता है । त्रिगुणात्मक उपाधियों को छोडकर तात्विक गुण की डाल को पकड लो और फिर उस अनन्त परमतत्व के दर्शन करो । कबीर कहते हैं कि परम ज्ञानी गुरू का उपदेश है कि शून्यमण्डल मे अपना ध्यान एकाग्र करो । इस शरीर को छोडने पर जीव जिस अवस्था को प्राप्त होता है, उस अवस्था की प्राप्ति इस शरीर द्वारा ही कर लो । भाव यह है कि उपाधि के समाप्त होने पर व्यष्टि चैतन्य जिस परम चैतन्य मे लवलीन हो जाता है, शरीर धारण किए हुए ही जीव-चैतन्य की उसी परम चैतन्य मे प्रतिष्ठा बनाए रखने की साधना ही काम्य है ।

अलंकार—(i) विरोधाभास—मन की·······परहरी। व्यज ····तहाँ।
(ii) विभावना की व्यजना—जहाँ ···पछाणि। जहाँ ···लागि।
(iii) सदेह की व्यजना—नादहिं ··· नाद।
(iv) सभग पद यमक—व्यद गो व्यद। नादहिं नाद।
(v) उपमा—गुणातीत जस आप।
(vi) रूपक—भ्रमजेवणी ····साप। परिहरि···· ···डाटि।
(vii) अतिशयोक्ति—वार न पार।
(viii) पदमैत्री—निरखि देखि, वार न पार।

विशेष—(i) नाथ सम्प्रदाय के प्रतीको का वर्णन है।

(ii) कायायोग की प्रक्रिया का वर्णन है उसके माध्यम से ज्ञान, उपासना एवं भक्ति का समन्वय प्रस्तुत किया है।

(iii) नाद सूक्ष्म जीव तत्व है और बिन्दु सूक्ष्म शरीर तत्व है।

(iv) व्यष्टि की चेतना का विश्व चेतना मे पर्यवसान ही साध्य है। इसी का प्रतिपादन है।

(३२७)

अलह अलख निरंजन देव,
किहि गिधि करौं तुम्हारी सेव ॥टेक॥
बिश्न सोई जाको विस्तार, सोई कृस्न जिनि कीयौ ससार।
गोब्यद ते ब्रह्मंडहि गहै, सोई रांम जे जुगि जुगि रहै॥
अलह सोई जिनि उमति उपाई, दस दर खोलै सोई खुदाई।
लख चौरासी रब परवरै, सोई करीम जे एती करै॥
गोरख सोई ग्यांन गमि गहै, महादेव सोई मन की लहै।
सिध सोई जो साधै इती, नाथ सोई जो त्रिभुवन जती॥
सिध साधू पैकंवर हूवा, जपै सु एक भेष है जूवा।
अपरंपार का नांउ अनत, कहै कबीर सोई भगवत॥

शब्दार्थ—अलह=अल्लाह, अलभ्य। 'अलख' एव 'निरंजन' के संदर्भ मे 'अलभ्य' ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। अलख=अलक्ष्य। निरजन=माया रहित। उमति=उम्मत=सम्प्रदाय। रब=परमेश्वर, पालन पोषण करने वाला।

संदर्भ—कबीरदास नामो की विभिन्नता बताते हुए ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन करते हैं।

भावार्थ—हे अलभ्य, अलक्ष्य तथा मायारहित भगवान! मैं आपकी सेवा किस प्रकार करूँ? विष्णु वही है जो सर्वत्र व्याप्त है, कृष्ण वही है जिसने सारे ससार की सृष्टि की है, गोविन्द वही है जो ज्ञान से ब्रह्माण्ड को ग्रहण करता है, राम वही है जो युग युगान्तर तक व्याप्त है। अल्लाह वही है जिसने पैगंबर के नाम पर सम्प्रदाय उत्पन्न किया। जो इस शरीर के दस द्वारो (अथवा दसम् द्वार ब्रह्मरन्ध्र)

को खोलकर ज्ञान प्रदान करता है, वही 'खुदा' है। जो चौरासीलाख योनियो का पालन-पोपण करता है, वही वास्तव मे 'रब' (ईश्वर) है। इतनी उदारता दिखाने वाला ही वास्तव मे करीम (दया करने वाला) है। गोरख वही है जो ज्ञान द्वारा प्राप्त तत्व का साक्षात्कार कर लेता है। जो मन की बात को अन्तर्यामी होकर ग्रहण करता है, वही महादेव है। सिद्ध पुरुप वही है जो साधना द्वारा इतने तत्वो को जानता है। 'नाथ' वही है जो त्रिभुवन (सर्वज्ञ) यती (सयतेन्द्रिय) बन कर रहता है। सिद्ध, साधु, पैगम्बर आदि जो भी हुए हैं, वे सब एक ही तत्व का जप करते हैं। उसके भेष तो भिन्न-भिन्न रहे हैं अर्थात् ये भेद तो बाहरी आडम्बर मात्र हैं। वह तत्व अपार है और उसके अगणित काम हैं। कबीर कहते हैं कि अनेक कामो द्वारा अभिव्यक्त वह एक परम तत्व ही भगवान है।

अलकार—(i) छेकानुप्रास-- अलह, अलख, विष्णु विस्तार दस दर।
(ii) पुनरुक्तिप्रकाश—जुगि श्रु गि।
(iii) वृत्यानुप्रास—सिध साई साधै।
(iv) एक ही तत्व के अनेक नाम।
(v) परिकरांकुर—कई नाम साभिप्राय है, जैसे अलह, अलख, करीम।

विशेष— (i) विष्णु आदि विभिन्न भगवान न होकर विभिन्न तत्व हैं। यह है कबीर की वैज्ञानिक बुद्धिवादी दृष्टि।

(ii) परमात्मा मायारहित है। जीवन की क्रियाएँ माया द्वारा आवद्ध या ससीम है। इसी से परमात्मा की सेवा सम्भव नही है। उसका तो ध्यान मात्र ही किया जा सकता है।

जो जहन में आगया, वह खुदा कैसे हुआ ?

(iii) उस एक परम तत्व के ही विभिन्न कार्यों के कारण विभिन्न नाम हैं। एक ही व्यक्ति पिता, पुत्र, पति, चाचा भाई आदि कहा जाता है।

(iv) अद्वैतवाद का सुन्दर प्रतिपादन है।

(v) इस पद मे कबीर ने विभिन्न सम्प्रदायों मे भगवान के लिए प्रयुक्त होने वाले विभिन्न कामो के मूल मे रहने वाली भावना का उद्घाटन किया है। वे भगवान के विभिन्न गुणों के बोधक शब्द हैं। जो जिस गुण का साक्षात्कर कर लेता है, वह उसी के आधार पर भगवान का नामकरण कर लेता है। इस प्रकार वे विभिन्न नाम इन गुणों की उपाधि से उसी एक तत्व के व्यजक है। प्रत्येक नाम के द्वारा उसी एक ही तत्व की उपासना ही वास्तव मे सच्ची उपासना है। शेप केवल साम्प्रदायिक आडम्बर मात्र हैं। इस प्रकार कबीर ने बौद्धिक दृष्टि से एव दार्शनिक आधार पर समस्त सम्प्रदाय के उपास्य एव उपासना मे तात्विक अभेद स्थापित किया है।

(३२८)

तहां जौ रांम नांम ल्यौ लागै,
तौ जुरा मरण छूटै भ्रम भागै ।।टेक।।
अगम निगम गढ़ रचि ले अबास, तहुवां जोति करै परकास ।
चमकै बिजुरी तार अनत, तहां प्रभू बैठे कवलाकंत ।।
अखड मंडिल मंडित मड, त्रि स्नांन करै त्रीखड ।
अगम अगोचर अभिअतरा, ताकौ पार न पावै धरणींधरा ।।
अरध उरध बिचि लाइ ले अकास, तहुवां जोति करै परकास ।
टारचौ टरै न आवै जाइ, सहज सु नि मैं रह्यौ समाइ ।।
अबरन बरन स्यांम नहीं पीत, हाहू जाइ न गावै गीत ।
अनहद सबद उठै झणकार, तहां प्रभू बैठे समरथ सार ।।
कदली पुहुप दीप परकास, रिदा पंकज मै लिया निवास ।
द्वादस दल अभिअंतरि म्यत, तहां प्रभू पाइसि करिलै च्यत ।।
अमिलन मलिन घांम नही छांहां, दिवस न राति नहीं है तहाँ ।
तहाँ न ऊगे सूर न चद, आदि निरंजन करै अनंद ।।
ब्रह्मंडे सो प्यंडे जांनि, मांनसरोवर करि असनांन ।
सोहं हसा ताकौ जाप, ताहि न लिपै पुन्य न पाप ।।
काया मांहै जांनै सोई जो बोलै सो आपै होई ।
जोति माँहि जे मन थिर करै, कहै कबीर सो प्रांणीं तिरै ।।

शब्दार्थ—गढ=कपाल, शून्य, ब्रह्मरन्ध्र । बिजुरी=बिजली । कुण्डलिनी त्रिखण्ड=तीनो लोक, तीनों गुण । त्रिअस्नान =तीनो कालो मे (सदैव) स्नान करते हैं । धरणींधरा=शेषनाग । रिदा=हृदय ।

संदर्भ—कबीरदास प्रतीको के माध्यम से परम तत्त्व की अनुभूति-दशा की व्यंजना करते हैं ।

भावार्थ—सहस्रार कमल मे विराजमान राम मे यदि ध्यान लगजाता है, तो जरा-मरण का बन्धन छूट जाता है और समस्त अज्ञान जन्य भ्रम समाप्त हो जाता है । ब्रह्मरन्ध्र रूपी किले मे एक आवास बना हुआ है । वहाँ तक चेतना का पहुँचना अत्यत कठिन है और वहाँ पहुँचने पर समस्त गति समाप्त हो जाती है । (अर्थात् वहाँ पहुँच जाने पर पुनरावर्तन नही होता है) । वही पर ब्रह्म-ज्योति का प्रकाश होता है । वहाँ पर कुण्डलिनी रूपी बिजली चमकती है और अनन्त तारागण भी खिले हुए हैं । वही पर भगवान कमलाकात विराजमान हैं । वही पर प्रकाश के अखण्ड मण्डलो से मडित परम ब्रह्म की ज्योति के दर्शन होते हैं । इस ज्योति मे तीनो कालों मे (सदैव) इसके त्रिगुण रूप निमज्जित रहते हैं । यह अगम्य और अगोचर प्रकाश आभ्यन्तर तत्व है (गुहानिहित है) । शेषनाग भी इसका पार नही पा सके हैं । पिण्ड और ब्रह्माण्ड के मध्य मे व्याप्त गगन-तत्त्व का ध्यान करो । वही

पर ज्योति का प्रकाश भी है। सहज रूप से शून्य मे प्रतिष्ठित रहने वाला यह चैतन्य-स्वरूप तत्व टस से मस नही होता है और न उसका आवागमन ही होता है। न तो उसे वर्णहीन कहा जा सकता है और न उसका कोई वर्ण (रग) ही बताया जा सकता है अर्थात् वह वर्णनातीत है। वह न काला है, न पीला है। वहाँ पर न हा-हू (शोरगुल) है और न गीत नाच ही है। अर्थात् वहाँ पर लौकिक शब्द नही होता है। वहाँ पर अनाहद नाद की मधुर झकार होती है। वही पर समर्थ एव सारभूत तत्व भगवान विराजमान हैं। कदली पुष्प के समान हृदय-कमल मे उस दीपक स्वरूप ज्योति का प्रकाश है। हृदय-कमल मे स्थित अनाहद चक्र के बारह पखडी वाले कमल के भीतरी भाग पर ध्यान केन्द्रित करो और उसी का चिन्तन करो। वही तुमको प्रभु का साक्षात्कार होगा। वहाँ न अपवित्रता है और न पवित्रता, न धूप है, न छाँह है, न दिन है न रात है, वहाँ न सूर्य का उदय होता है और न चन्द्रमा ही उदित होता है। ऐसे स्थल पर वह आदि निरजन पुरुष आनद पूर्वक निवास करता है। जो कुछ ब्रह्माण्ड मे है उसको पिण्ड मे जान लो। इस अभेद-ज्ञान रूप मुक्तावस्था को प्राप्त करके जो आत्म-स्वरूप रूपी मानसरोवर मे स्नान करते हैं, निमग्न हो जाते हैं और ज्ञान स्वरूप होकर सोऽह (जीव-ईश्वर के अभेद द्वार व्यजित चैतन्य) का शाश्वत ध्यान करते हैं, वे पाप-पुण्य से लिप्त नही होते हैं अर्थात् वे कर्म-बन्धन से परे हो जाते हैं। शरीर मे उस परम तत्व को विराजमान जानकर, जो राम का नाम बोलता है वह आत्म-स्वरूप हो जाता है। कबीर कहते हैं कि जो व्यक्ति उस परम ज्योति मे मन को दृढतापूर्वक लगा देते हैं अथवा जिनका मन अविचल भाव से इस परम ज्योति मे लग जाता है, वे इस भवसागर से पार हो जाते हैं।

अलकार—(i) रूपकातिशयोक्ति—प्राय सम्पूर्ण पद मे नाथ पथ के प्रतीको का प्रयोग हुआ है।

(ii) सभग पद यमक—अबरन बरन, अमलिन मलिन,

(iii) पदमैत्री—अबास परकास, अगम निगम, अरध उरध। म्यत च्यंत।

(iv) वृत्यानुप्रास—अगम अगोचर अभिअतरा, सहज सुनि समाइ, गाहन गावै गीत,

(v) सम्बन्धातिशयोक्ति—पार न-धरणीधरा।

(vi) विशेषोक्ति—टार्यो टरै न।

(vii) छेकानुप्रास—टारयौ टरै। समरथ सार,

(viii) रूपक—रिदा पकज। मानसरोवर।

विशेष—(i) परम तत्व को इन्द्रयातीत एव वर्णनातीत बताया है। वह लौकिक वाणी के प्रतीत है।

(ii) तार अनंत— प्रतीयमान विरोधो का वहाँ सामजस्य है।

(iii) 'हुउ'—गीत—वह शब्द लोक-वाणी के परे है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने 'हुउ' का अर्थ' 'हाहू'—एक गधर्व विशेष लिखा है और इस पक्ति का अर्थ इस प्रकार किया है—"जहाँ पर न हाहू (गधर्व-विशेष) जाता है और न वह गीत गाता है।"

(iv) तहाँ न – ससार की इन सब वस्तुओं, प्रमेयों और बच्चो से परे का वह तत्व है।"

(v) जरा मरण छूटै तथा तहाँ न ऊगै सूर—इत्यादि। समभाव के लिए देखें—

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावक.।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।
(श्रीमद्भगवत्गीता—१५/६)

(vi) नाथपथी प्रतीको का प्रयोग है।

(३२६)

एक अचंभा ऐसा भया,
करणीं थै कारण मिटि गया ॥टेक॥
करणी किया करम का नास, पावक माँहि पुहुप प्रकास ॥
पुहुप माँहि पावक प्रजरै, पाप पुंन दोऊ भ्रम टरै ॥
प्रगटी बास वासना धोइ, कुल प्रगट्यौ कुल घाल्यौ खोइ ॥
उपजी च्यत च्यत मिटि गई, भौ भ्रम भागा ऐसी भई ॥
उलटी गंग मेर कूं चली, धरती उलटि अकासहि मिली ॥
दास कबीर तत ऐसा कहै, ससिहर उलटि राह कौं गहै ॥

शब्दार्थ—करणी=कार्य, साधना। कारण=(i) अज्ञान, (ii) जन्म-मरण का मूलभूत कारण। पावक =(i) अग्नि, ज्ञान की अग्नि, (ii) मूलाधार चक्र की चण्डाग्नि। पुष्प=(i) अनासक्ति का आनद (ii) सहस्रार कमल। पावक=(i) ज्ञानाग्नि, (ii) निरजन रूपी परमतत्व। वास-वासना=(i) वासना-रूप दुर्गंध, (ii) कमल से निकलने वाली सुगध। कुल प्रगट्यौ=साधको के कुल का ज्ञान प्रकट हो गया है। कुल घाल्यौ=अज्ञान के कुल का नाश हो गया है। च्यत=ज्ञान। च्यत=सासारिक चिन्ताएँ। धरती=(i) जड माया, (ii) मूलाधार चक्र। आकाश =(i) ब्रह्म, (ii) शून्य चक्र, ब्रह्मरन्ध्र। ससिहर=चन्द्रमा (i) चैतन्य सहस्रार से निस्सृत अमृत। राहु=(i) अज्ञान, (ii) विषयो का विष।

सन्दर्भ—इस पद मे कबीर आत्म-स्वरूप प्राप्ति की साधना का वर्णन करते हैं। इस साधना के दो पक्ष हैं—(i) ज्ञान एवं भक्ति तथा (ii) काया योग। इस पद का अर्थ दोनों ही पक्षों मे पूर्णत. घटित हो जाता है। यथा—

ज्ञान एवं भक्ति परक अर्थ—एक ऐसे आश्चर्य की बात होगई कि कार्य के द्वारा कारण समाप्त हो गया अर्थात् साधना के द्वारा अज्ञान का नाश होगया। साधना ने कर्त्तव्य के अभिमान एवं कर्मों के प्रति फलासक्ति को समाप्त कर दिया

और ज्ञान रूपी साधना की अग्नि मे अनासक्ति का आनन्द रूपी पुष्प विकसित हो गया। अनासक्ति के इस पुष्प के मध्य ज्ञान की अग्नि जलती है। इससे पाप-पुण्य दोनो ही प्रकार की फलासक्ति भ्रमरूप होकर समाप्त होगई है। उस कमल की सुगन्ध के प्रकट होने से समस्त विषय-वासना समाप्त होगई है और कुल सासारिक बन्धनो को समाप्त करके पूर्ण ज्ञान का उदय हो गया है। चितामणि स्वरूप भगवान का बोध जाग गया है और सासारिक चिन्ताएँ समाप्त होगई हैं। इससे कुछ ऐसी अनोखी बात होगई है कि सासारिक भ्रम दूर हो गया है। इन्द्रियो के प्रवाह (विषयासक्ति) की गगा उल्टी होकर (विषयो से पराड्मुख होकर) हिमालय पर्वत (उद्गम स्थल) की ओर चल दी है, अर्थात् इन्द्रियाँ अन्तर्मुखी होकर अपने मूलभूत कारण शुद्ध चैतन्य की ओर अभिमुख होगई हैं। जड माया (सासारिक विषय-वासनाओ की प्रवृत्ति) जो अभी तक बहिर्मुख थी, अब अन्तर्मुख होकर ज्ञान और भक्ति मे समाहित होगई है। भक्त कबीर उस रहस्य का उद्घाटन करते हुए इस प्रकार कहते हैं कि इस स्थिति के प्राप्त होने पर चन्द्रमा उलट कर राहु को ही ग्रस लेता है अर्थात् चैतन्य अपने आपको आवृत्त करने वाले अज्ञान को खा जाता है।

काया योग परक अर्थ—एक ऐसा आश्चर्य घटित होगया है कि योग की साधना से जन्म-मरण का मूलभूत कारण समाप्त हो गया। इससे कर्म के बन्धन भी समाप्त होगये। मूलाधार चक्र की चण्डाग्नि द्वारा विभिन्न चक्र विकसित होगये उनमे स्फूर्ति आगई। चक्र तेज युक्त हो गये और इससे पाप एव पुण्य का भ्रम समाप्त हो गया। इस पक्ति का अर्थ इस प्रकार भी किया जा सकता है कि—मूलाधार चक्र की चण्डाग्नि से सहस्रार कमल विकसित हो गया। इस कमल के निरजन रूपी परमतत्त्व अग्निवत् प्रज्वलित हो गया है और पाप-पुण्य का भ्रम समाप्त हो गया है।

इस कमल मे निकली हुई सुगध ने सासारिक वासनाओ का कल्मष धो डाला है। अथवा समस्त वासनाओ को समाप्त करके इन विभिन्न कमल-चक्रो की सुगध प्रकट हुई है। अब पूर्ण तत्त्व का प्रकाश हो गया है तथा ससार मिट गया है। साधना से प्राप्त ज्ञान-रूपी चिन्तामणि के प्राप्त होने पर साँसारिक चिन्ताओ से मुक्ति मिल गई है और सबसे विचित्र बात यह हुई कि सासारिक सशय भी समाप्त हो गये हैं। कुडलिनी मूलाधार चक्र से उत्थित होकर सहस्रार की ओर चल दी है तथा कुण्डलिनी रूपी पृथ्वी की शक्ति शून्य-गगन तत्त्व मे समाहित हो गई है। सहस्रार-कमल मे उदित चन्द्रमा का अमृत विषयो के विषरूप राहु को आत्मसात् कर रहा है अर्थात् अमृत्व पूर्ण आत्मानुभव मोह को नष्ट कर रहा है। कबीरदास ने ऐसे ही कायायोग के रहस्य को स्पष्ट किया है।

अलंकार—(1) रूपकातिशयोक्ति—प्राय समस्त पद—करणी, कारण, पावक पुहुप इत्यादि।

(ii) विरोधाभास—करणी तें कारण का मिटना, करणी तें कारण का नास। उपजी च्यत—गई। ससिहर—गहै।

(iii) विषय—पावक माहिं पुहुप प्रकास, पुहुप माहि पावक प्रज रै।

(iv) वृत्यानुप्रास—करणी क्रिया करम, पावक पुहुप प्रकास। पुहुप पावक प्रजरै पाप पुन्य, भौ भ्रम, भागा।

(v) रूपक—वास—वासना, भौ भ्रम।

(vi) श्लेष—आद्यन्त

(vii) यमक—कुल कुल, च्यत च्यत

(viii) भेदकातिशयोक्ति की व्यजना—ऐसी भई।

विशेष—(i) इस पद मे उलट बासी शैली की प्रतीकात्मकता दर्शनीय है।

(ii) प्रतीको के माध्यम से परम तत्व की अनुभूति दशा की सुन्दर व्यजना है।

(iii) इस पद मे कायायोग की साधना का सुन्दर वर्णन है।

(iv) चक्र—देखे टिप्पणी पद सख्या ४, २१०
विकास देखे टिप्पणी पद सख्या ४।
उलट बासी—देखे टिप्पणी पद स ८०

शून्य गगन तथा निरजन—देखे टिप्पणी पद स १६४।

चिंतामणि—देखें पद स० १२३। समभाव के लिए यह पद द्रष्टव्य है—

अबलौं नसानी, अब न नसैहौं।
राम कृपा भव-निसा सिरानी, जागे पुनि न डसैहौं।
पायो नाम चारुचिंतामनि, उर कर तें न खसैहौं।
स्यामरूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहिं कसैहौं।
परवस जानि हँस्यौ इन इन्द्रिन, निज बस ह्वै न हँसैहौं।
मन मधुकर पन कै तुलसी, रघुपति-पद-कमल बसैहौं।
(गोस्वामी तुलसीदास)

(v) इस पद की कई पक्तियो के श्लिष्ट प्रयोग से ज्ञानयोग और कायायोग दोनो का अथ निकलता हे। परन्तु विशेषता यह है कि दोनो का प्राप्य भ्रम नाश, ज्ञान तथा ईश्वर प्रेम है।

(३३०)

है हजूरि क्या दूरि बतावै,
दुंदर बाँधें सुन्दर पावै ॥टेक॥
सो मुलनां जो मन सूं लरै, अह निसि काल चक्र सूं भिरै॥
काल चक्र का मरदै मान, तां मुलनां कूं सदा सलांम॥
काजी सो जो काया विचारै, अहनिसि ब्रह्म अगनि प्रजारै॥

सुप्पनैं बिंद न देई झरनां, ता काजी कूं जुरा न मरणां ।।
सो सुलितांन जुद्वै सुर तांनै, बाहरि जाता भीतरि आनैं ।।
गगन मंडल मै लसकर करै, सो सुलितांन छत्र सिरि धरै ।।
जोगी गोरख गोरख करै, हिंदू रांम नाम उच्चरै ।।
मुसलमांन कहै एक खुदाइ कबीरा कौ स्वांमी घटि घटि रह्यौ समाइ ।।

शब्दार्थ - हजूरि=समीप । दु दर=द्वन्द्व, भेदभाव । बाध=वश मे करले, अपने नियन्त्रण मे करले । मुलना=मुल्ला, मसजिद मे नमाज पढाने वाला । बिंद न देई झरना=काम के वशीभूत न होना । जुटा=जटा, वृद्धावस्था । सुलतान=बादशाह । लसकर=लशकर, सेना ।

सन्दर्भ—कवीर पैगम्बरी मुसलमानो को उनकी सकुचित वृत्ति के प्रति सावधान करते हैं ।

भावार्थ—रे मुल्ला, वह भगवान तो तेरे पास है । तुम उसको दूर (सातवें आसमान पर) क्यो बताते हो ? जो अहकार जन्य भेद-भावना पर नियत्रण कर लेता है अर्थात् सम्प्रदाय-भावना के परे हो जाता है वही उस सुन्दर परम तत्व का साक्षात्कार करता है । असली मुल्ला वही है जो अपने मन के विकारो से सघर्ष करता है और रात-दिन काल चक्र से लडता है अर्थात् मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहता है । जो काल चक्र का मान नष्ट कर देता है अर्थात् मृत्यु (मृत्यु के भय) को जीत लेता है, वह मुल्ला सदैव वदनीय है । वास्तविक काजी वही है जो अपने शरीर मे विद्यमान चैतन्य-तत्त्व का चिन्तन करता है और इस प्रकार रात-दिन ज्ञानाग्नि को प्रज्वलित करता रहता है । जो काजी स्वप्न मे भी वीर्यपात नही होने देता अर्थात् कभी भी काम के वशीभूत नही होता है, उसको न वृद्धावस्था सताती है और न मृत्यु ही उसको व्यापती है । वास्तविक बादशाह वही है जो अपने श्वास प्रश्वास रूपी दो स्वरो को नियन्त्रित रखता है और बाहर जाते हुए प्राणो को पूरक एव कुम्भक द्वारा भीतर ले जाता है, इस प्रकार नाव को ऊद्ध्वं गति देते हुए युद्ध करता है । वही सुलतान सिर पर छत्र धारण करता है, अर्थात् राज्य का अधिकारी बनता है, जो शून्य मण्डल मे जाकर अपना डेरा डाल देता है अर्थात् अपनी चेतना को ब्रह्मरन्ध्र मे स्थित कर देता है । गोरखपथी योगी 'गोरख' जपता है, हिन्दू राम-नाम का उच्चारण करता है, मुसलमान कहते हैं कि उनका खुदा ही एक मात्र परमात्मा है, परन्तु कबीरदास कहते हैं कि उनका स्वामी (भगवान) प्रत्येक घट मे समाया हुआ है अर्थात् वह सर्वव्यापी है ।

अलकार—(i) गूढोक्ति—है—बतावैं ।
(ii) पदमैत्री—दु दर सुन्दर,
(iii) रूपकातिशयोक्ति—द्वसुर, लसकर
(iv) यमक—गोरख गोरख,
(v) पुनरुक्ति=घट घट

विशेप—(I) इस पद मे साम्प्रदायिक भावना के ऊपर करारी चोट है।

(II) कबीर का कहना है कि सभी सम्प्रदायो मे भेद-बुद्धि है। अतः ये अपने ईश्वर को एक विशेष रूप मे सीमित करके देखते हैं।

(III) विभिन्न शब्दो के व्युत्पत्तिपरक अर्थ देकर मूल धर्म-भावना के उद्बोधन का प्रयास है।

(३३१)

आऊँगा न जाऊँगा, मरूँगा न जीऊँगा।

गुरु के सबद मै रमि रमि रहूँगा ।।टेक।।

आप कटोरा आपै थारी, आपै पुरिखा आपै नारी ।।

आप सदाफल आपै नींबू, आपै मुसलमांन आपै हिंदू ।।

आपै मछ कछ आपै जाल, आपै झींवर आपै काल ।।

कहै कबीर हम नांही रे नांही, नां हम जीवत न मुवले मांही ।।

शब्दार्थ—मुवले=मरे हुए। सदाफल=नारियल।

सन्दर्भ—कबीरदास जीवन के मिथ्यात्व द्वारा एक परम तत्त्व की सत्ता का प्रतिपादन करते है।

भावार्थ—शुद्ध चैतन्य का प्रतिनिधित्व करते हुए कबीर कहते हैं कि मैं, न जन्म लूँगा, न मरूँगा और न यह सामान्य जीवन ही व्यतीत करूँगा। मैं गुरु के उपदेश द्वारा प्रतिपादित परम तत्व (राय) मे ही रमता रहूँगा। आत्मा तत्व को सब कुछ बताते हुए वह कहते हैं कि वही थाली है और वही कटोरा है। वह स्वय ही पुरुष है, और वही नारी है। वही सदैव फलने वाला नारियल है, वही नीबू है, वही मुसलमान है और वही हिन्दू है। वही मछली है, वही कछुआ है। वही उनको फँसाने वाला जाल है, वही उस जाल को फैलाने वाला मछुआ है तथा वही उनको मारने वाला काल है। कबीरदास कहते हैं कि हमारा कोई किसी प्रकार का अस्तित्व नही है। हम न जीवित कहे जा सकते हैं और न मरे हुए ही कहे जा सकते हैं।

अलंकार—(I) पद मैत्री—आइंगा—जीऊँगा। मछ कछ।

(II) पुनरुक्तिवदाभास—जाऊँगा मरूँगा।

(III) उल्लेख—एक ही तत्व का विभिन्न रूपों मे वर्णन होने के कारण।

(IV) पुनरुक्ति प्रकाश—नाही रे नाही,

विशेप—(I) समस्त दृश्यमान जगत (रूपात्मक जगत) के मूल मे एक ही तत्व की सत्ता बताकर 'अद्वैत वाद' का प्रतिपादन है।

(II) आऊँगा—रहूँगा—शुद्ध चैतन्य सर्वव्यापी एव सदा रहने वाला तत्व है। अत उसका न आने का प्रश्न है और न जाने का, न जन्म का और न मरण का। जड माया चैतन्य मे विना गतिशील नही हो सकती है। जड मे गति, और

जन्म मृत्यु आदि की धारणा ही क्योंकर की जाए ? अत जन्मादिक, लोक-परलोक मे जाना आदि प्रतीति मात्र है ।

(iii) कहै कबीर माँही । जीव की पृथक सत्ता केवल मिथ्या प्रतीति मात्र है । पर वह माया के ससर्ग से पृथक लगना है । शुद्ध आत्मतत्व के लिए जन्म-मरण शब्दो का व्यवहार व्यर्थ एव अनुपयुक्त हे । प्राण तथा इन्द्रिय-व्यापार से असपृक्त होने के कारण साधक जीव सामान्य व्यवहार मे जीवित नही है । परन्तु ससार का व्यवहार करते हुए प्रतीत होने के कारण मरे हुए भी नही कहे जा सकते है । इसी से न हम जीवित हैं और न मरे हुओ मे ही हैं ।

(३३२)

हम सब माँहि सकल हम मांही,
हम थे और दूसरा नाहीं ॥टेक ।
तीनि लोक मै हमारा पसारा, आवागमन सब खेल हमारा ॥
खट दरसन कहियत हम भेखा, हमही अतीत रूप नही रेखा ॥
हमही आप कबीर कहावा, हमही अपनां आप लखावा ॥

सदर्भ—कबीर उसे अवस्था का वर्णन करते हैं जब अश-अशी, भक्त भगवान, आत्मा-परमात्मा मे कोई अन्तर नही रह जाता है ।

भावार्थ—हम सभी मे है और सब हम मे हैं । हम से भिन्न और कोई नही है । तीनो लोको मे हमारा ही प्रसार है तथा यह जन्म मृत्यु मेरी लीला मात्र है । छ दर्शन हमारे ही वेष कहे जाते हैं अर्थात् छ हो दर्शनो मे हमारे (शुद्ध चैतन्य) के ही विभिन्न रूपो का वर्णन है । हम अर्थात् चैतन्य सबमे परे का तत्व है । हमारा न कोई रूप हे और न कोई आकार है । हम स्वय ही कबीर कहे जाते हैं और हमी ने अपना आत्म तत्व विभिन्न रूपो मे दिखाया है ।

शब्दार्थ—अलंकार—यमक— आप-आप

विशेष—(i) तीन लोक—आकाश, पृथ्वी, पाताल

(ii) षट्दर्शन— साख्य, योग, न्याय, वैशेपिक, मीमासा और वेदात ।

(iii) उस स्थिति का वर्णन करता है जब साधक 'अह' ब्रह्मास्मि का उद्घोष कर उठता है ।

(iv) अद्वैतवाद का सुन्दर प्रतिपादन है ।

(v) वह परमतत्त्व सर्वथा वर्णनातीत है । इसी से विभिन्न प्रकार से उसका वर्णन करके वाणी की असमर्थता प्रकट की गई है ।

(३३३)

सो धन मेरे हरि का नांउ,
गाँठि न बाँध्यौ बेचि न खांउँ ॥टेक॥
नांउ मेरे खेती नांउ मेरे बारी, भगति करौं मै सरन तुम्हारी ॥
नांउ मेरे सेवा नांउ मेरे पूजा, तुम्ह बिन और न जांनौं दूजा ॥

नांउ मेरे बंधव नाँव मेरे भाई, अत बिरियाँ नाँव सहाई ।।
नांउ मेरे निरधन ज्यूं निधि पाई, कहै कबीर जैसै रंक मिठाई ।।

शब्दार्थ—बारी=वाटिका । बंधन=बान्धव ।

संदर्भ—कबीरदास प्रभु-नाम की महिमा का प्रतिपादन करते हैं ।

भावार्थ मेरे पास हरि का नाम रूपी वह धन है जिसे मैं न गाँठ मे बांधता हूँ और न बेचकर खाता हूँ । यह नाम ही मेरी खेती है और यही मेरी बारी है । मैं तुम्हारी ही भक्ति करता हूँ और तुम्हारी शरण मे हूँ । आपका नाम ही मेरी सेवा है, नाम ही पूजा है । मैं आपके अतिरिक्त अन्य किसी देवता को नही जानता हूँ । भगवान का नाम ही मेरे लिए बान्धव है और भगवन्नाम ही मेरा भाई है । अन्त समय मे मुझको आपके नाम का ही सहारा है । भगवान का नाम मेरे लिए निरधन को प्राप्त हो जाने वाले खजाने के समान है । कबीर कहते हैं कि (गुरु के द्वारा प्राप्त) भगवन्नाम मेरे लिए ऐसे ही है जैसे किसी भिखारी को मिठाई मिल गई हो ।

अलंकार—(i) रूपक—हरि को नाँउ धन ।
(ii) व्यतिरेक—गाँठि—खाउँ ।
(iii) उल्लेख—नाम का विभिन्न रूपो मे वर्णन है ।
(iv) उपमा—नाँउ ··· मिठाई ।

विशेष—(i) गाँठि न बाँध्यौ बेचि न खाउँ तथा नाम मेरे सेवा आदि कथन के द्वारा कवि यह कहना चाहता है कि हरि का नाम साधन न होकर साध्य ही है । सामान्य धन की भाँति न तो वह उसका सग्रह (Hoardings) ही करते हैं और न उसके बदले वह किसी अन्य उपयोगी वस्तु को प्राप्त करने की आशा ही करते हैं । हरिनाम के द्वारा कबीर भुक्ति-मुक्ति कुछ भी प्राप्त नही करना चाहते हैं ।

(ii) खेती-बारी सासारिक वैभव से तात्पर्य है ।

(iii) इस पद मे अनन्यता की अभिव्यक्ति है तथा भक्ति को साधन एव साध्य दोनो ही बताया गया है । गोस्वामी तुलसीदास भी भक्ति का सबसे बड़ा फल भक्ति ही मानते हैं । यथा—

जो जगदीस तो अति भलौ जो महीस बड़ भाग ।
तुलसी चाहत जनम भर राम-चरन अनुराग ।

वस्तुत· भक्त के सहजशील का सजीव चित्रण है—

धर्म न अर्थ न काम रुचि गति न चहौं निर्वान ।
जनम-जनम रति राम पद यह बरदान न आन ।

(३३४)

अब हरि हूं अपनौं करि लीनौं,,
प्रेम भगति मेरौ मन भीनौं ।।टेक।।
जरै सरीर अग नहि मोरौं, प्रान जाइ तौ नेह न तौरौं ।।

च्यंतामणि क्यू पाइए ठोली, मन दे रांम लियौ निरमोली ।।
ब्रह्मा खोजत जनम गँवायौ, सोइ रांम घट भीतरि पायौ ।।
कहै कबीर छूटी सब आसा, मिल्यौ राम उपज्यौ बिसवासा ।।

शब्दार्थ—भीनाँ=भीग गया है, युक्त हो गया है। मोरौ=मोड़ूँगा। ठोली=योही बिना परिश्रम के । निरमोली=अमूल्य । आसा=सासारिक आशाएँ अथवा अन्य प्रकार की साधनाओ से मुक्ति प्राप्त होने की आशा ।

सदर्भ—कबीर प्रभु-भक्ति के प्रति अपनी दृढ निष्ठा व्यक्त करते हैं ।

भावार्थ—अब भगवान ने मुझको अपना बना लिया है और मेरा मन उनके प्रेम एव उनकी भक्ति के रस मे पूरी तरह निमग्न (भीग) गया है। प्रेम-भक्ति के मार्ग पर चलते हुए मेरा शरीर जल भी जाए, तब भी मैं इससे अपने अगो को नही मोड़ूगा—इस मार्ग को नही छोड़ूँगा। यदि प्रभु की भक्ति मे मुझे अपने प्राण देने पडे, तब भी मैं भगवान के प्रति प्रेम को समाप्त नही करूँगा। हरि-रूपी चिन्ता-मणि ऐसे ही बिना परिश्रम के क्या कभी प्राप्त होती है ? मैंने अमूल्य राम-नाम को अपना मन देकर प्राप्त किया है। मैंने जिस भगवान को इधर-उधर विभिन्न साधनाओ मे खोजते हुए अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत कर दिया। उसी भगवान को मैंने अपने हृदय के भीतर प्राप्त कर लिया है। कबीरदास कहते है कि अब मेरी समस्त सासारिक आशाएँ समाप्त हो गई हैं। राम का साक्षात्कार हो जाने से अब मेरे मन मे यह विश्वास उत्पन्न हो गया है कि मेरा उद्धार हो जाएगा ।

अलकार—(1) विशेषोक्ति की व्यजना—जरै तोरौ ।
(11) रूपकातिशयोक्ति—च्यतामणि ।
(111) वक्रोक्ति—क्यू पाइए ठोली ।

विशेष—भक्ति के उदय की आनन्दावस्था का वर्णन है ।

(३३५)

लोग कहै गोब्ररधनधारी,
ताकौ मोंहि अचभौ भारी ।।टेक।।
अष्ठ कुली परबत जाके पग की रैनां, सातौं सायर अजन नैनां ।।
ऐ उपमां हरि किती एक औपै, अनेक मेर नख ऊपरि रोपै ।।
धरनि अकास अधर जिनि राखी, ताक्री मुगधा कहै न साखी ।।
सिब बिरंचि नारद जस गावै, कहैं कबीर वाको पार न पावै ।।

शब्दार्थ—रैना=रेणु-धूलि । सायर=सागर । ओपै=शोभित । मेर=सुमेरु । रोपै=गाडना, जमाना । अधर=बिना किसी आधार के । मुगधा=मूर्ख । साखी=साक्ष्य, साक्षात्कार ।

सन्दर्भ—कबीर भगवान को वाणी के परे बताते हैं ।

भावार्थ—लोग भगवान को गोवर्धन पर्वत को धारण करने वाला कह कर उसकी शक्ति का वर्णन करते हैं। उनकी इस बुद्धि पर मुझे बहुत आश्चर्य होता है।

सम्पूर्ण अष्ट कुल के पर्वत उस परमात्मा के पैर की धूल मात्र हैं और सातो समुद्र उसके नेत्रो के अजन मात्र हैं। उन भगवान ने अनेक सुमेरु पर्वत अपने नाखून के ऊपर टिका रखे हैं। ऐसे शक्तिशाली भगवान के लिए गोवर्धन धारी की उपमा कहाँ तक उपयुक्त हो सकती है ? जिसने पृथ्वी और आकाश को विना किसी आधार के (निरावलब) टिका रखा है, उन भगवान के साक्षात्कार का वर्णन अज्ञानी मूर्ख कदापि नही कर सकते हैं, अर्थात् मूर्ख उनके स्वरूप की क्या साखी देंगे ? कवीरदास कहते है कि शिव, ब्रह्मा और नारद उस परमब्रह्म के यश का निरन्तर गान करते हैं परन्तु उसकी शक्ति का पार वे भी नही पा सकते है।

अलंकार—(i) परिकराकुर—गोवर्धन धारी।
(ii) अतिशयोक्ति—अष्ट कुली ···नैना।
(iii) वक्रोक्ति—किती एक ओपै।
(iv) व्यतिरेक—अनेक मेर·········रोपै।
(v) विभावना की व्यजना—धरनि·········राखी।
(vi) सम्बन्धातिशयोक्ति—पार न पावै।

विशेष—(i) असीम ब्रह्म को ससीम मानने की धारणा का प्रत्याख्यान किया गया है। इस प्रकार सगुण भक्ति का विरोध है।

(ii) असीम तत्त्व का ससीम एव सगुण बिम्बो से प्रतिपादन है।

(३३६)

राम निरंजन न्यारा रे,
अंजन सकल पसारा रे ॥टेक॥
अजन उतपति वो उंकार, अंजन मांड्या सब बिस्तार ॥
अंजन ब्रह्मा सकर इंद, अजन गोपी संगि गोव्यद ॥
अंजन बांणीं, अंजन बेद, अजन कीया नांनां भेद ॥
अंजन विद्या पाठ पुरांन, अंजन फोकट कथहि गियांन ॥
अजन पाती अंजन देव, अंजन की करै अजन सेव ॥
अंजन नाचै अंजन गावै, अंजन भेष अनंत दिखावै ॥
अंजन कहौं कहाँ लग केता, दांन पुनि तप तीरथ जेता ॥
कहै कबीर कोइ बिरला जागै, अंजन छाड़ि निरंजन लागै ॥

शब्दार्थ—निरजन=माया रहित तत्त्व। अजन=माया।

सन्दर्भ—कबीर कहते हैं कि यह समस्त ससार माया का ही पसारा है।

भावार्थ—माया रहित राम समस्त जगत से परे एव भिन्न है। यह समस्त जगत केवल माया का प्रसार है। ओकार की उत्पत्ति माया से है, माया ने ही इन विभिन्न नाम-रूपो मे विस्तार किया है। ब्रह्मा, शकर, इन्द्र तथा गोपियो के साथ रहने वाला कृष्ण सभी कुछ माया ही है। वाणी और वेद माया ही हैं। माया ने ही ये विभिन्न रूपात्मक भेद किए हैं अथवा माया के आश्रय से ही यह रूपात्मक जगत

ब्रह्म से भिन्न प्रतीत होता है। माया ही विद्या, पाठ और पुराण है। यह व्यर्थ का वाचिक ज्ञान भी माया ही है। पूजा करने के साधन पत्रादिक तथा पूज्य देव-माया ही हैं। माया रूप पुजारी माया रूप देवता की सेवा करता है। माया ही नाचती है और माया ही गाती है। माया ही अनन्त भेषो मे अपने आपको प्रदर्शित करती है। माया के बारे मे कहाँ तक कहूँ और उसके कितने रूपों का वर्णन करूँ ? दान, पुण्य, तप, तीर्थ आदि जितने जो कुछ हैं, सब माया ही हैं। कबीर कहते हैं कि किसी विरले को ही माया सम्बन्धी यह बोध होता है। और वही माया का परित्याग करके माया रहित तत्त्व (निरजन) मे लीन होता है (उसके प्रति अनुरक्त होता है)।

अलंकार—उल्लेख माया का विभिन्न रूपो मे वर्णन है।

विशेष—प्रकारान्तर से शाकर अद्वैत के मायावाद का प्रतिपादन है। जो कुछ भी अभिधेय है, वह सब माया है। उससे अतीत एव केवल अनुभूति गम्य ही निरंजन तत्त्व है।

(३३७)

अंजन अलप निरजन सार,
यहै चीन्हि नर करहु विचार ॥टेक ॥
अंजन उतपति बरतनि लोई, बिना निरंजन मुक्ति न होई ॥
अंजन आवै अंजनि जाइ निरजन सब घट रह्यो समाइ ॥
जोग ध्यांन तप सबै विकार, कहै कबीर मेरे रांम अधार ॥

शब्दार्थ—अजन=माया, दृश्यमान जगत। बरतनि=बरतना, व्यवहार करना।

सन्दर्भ—कबीर कहते हैं कि माया रूप जगत मिथ्या है। केवल माया रहित तत्त्व ही सार तत्त्व है।

भावार्थ—माया अथवा माया जनित जगत अल्प एव मिथ्या है। निरजन (ब्रह्म) भूमा एव सार तत्व है। रे मानव, यह समझकर चिन्तन करो अथवा इस प्रकार विवेक पूर्वक ब्रह्म को जानने के लिए चिन्तन करो। लोग माया के द्वारा ही उत्पन्न होते है और माया-जनित ससार मे ही व्यवहार करते हैं। निरजन के प्रति अनुरक्त हुए बिना मुक्ति नही होती है अथवा निरजन अवस्था मे अवस्थित हुए बिना मोक्ष नही होती है। माया ही जन्म लेती है और माया ही मरती है अर्थात् यह आवागमन तो माया का ही है। यह माया रहित निरजन ही समस्त अन्त करणो मे कूटस्थ रूप से अवस्थित है। जोग, ध्यान, तप आदि सब माया के ही विकार है। कबीर कहते हैं कि माया रहित राम ही मेरे आधार है अर्थात् उस परम तत्व की अनुभूति ही मेरा एक मात्र साधन और साध्य है।

अलंकार—अनुप्रास—'अ' की आवृत्ति होने के कारण।

विशेष—(1) शाकर अद्वैत का प्रतिपादन है। 'ब्रह्म-सत्य जगन्मिथ्या' का सरल शैली मे प्रतिपादन है।

(ii) समभाव के लिए देखें—

मै अरु मोर तोर तैं माया। जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया।
गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई।
तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। विद्या अपर अविद्या दोऊ।
एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा। जा बस जीव परा भव कूपा।
एक रचइ जग गुन बस जाकें। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें।
ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं। देखत ब्रह्म समान सब माहीं।

× × ×

माया ईस न कहुँ जान-कहिअ सो जीव।
बध मोच्छ प्रद सर्ब पर माया प्रेरक सीव।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(३३८)

एक निरंजन अलह मेरा,
हिंदू तुरक दहूँ नही मेरा ।।टेक।।
राखूं व्रत न महरम जांनां, तिसही सुमिरू जो रहै निदांना।
पूजा करूं न निमाज गुजारूं, एक निराकार हिरदै नमसकारूं ।।
नां हज जांऊं न तीरथ पूजां, एक पिछांण्या तौ का दूजा ।।
कहै कबीर भरम सब भागा, एक निरंजन सूं मन लागा ।।

शब्दार्थ—निदान=अंत मे। पिछाण्या=पहचान लिया। नेरा=पास।

सन्दर्भ—कबीर परम तत्व निरजन के प्रति अनुरक्त होने का उपदेश देते है।

भावार्थ—मेरी निष्ठा तो एकमात्र मायारहित अल्लाह (परमात्मा) मे है। हिन्दू और मुसलमान दोनो मे कोई भी उसके निकट नही पहुँच पाए हैं। अथवा इसका अर्थ इस प्रकार भी किया जा सकता है कि मुझे हिन्दू अथवा मुसलमान किसी भी सम्प्रदाय से कोई वास्ता नही है। मे न व्रत रखता हूँ और न मे मुहर्रम मे विश्वास रखता हूँ। मैं तो केवल उसका स्मरण करता हूँ जो एकमात्र सत्य होने से अन्तत. अवशिष्ट रह जाता है। अर्थात् जो माया एव उसके सम्पूर्ण प्रपच के लुप्त हो जाने के पश्चात् अवशिष्ट रह जाता हे। मे न किसी देवता की पूजा करता हू और न मसजिद मे जाकर नमाज ही पढता हूँ। मैं तो एक मात्र निराकार परमात्मा को हृदय मे धारण करके नमस्कार करता हूँ। न मैं हज (मक्का) जाता हूँ और न तीर्थों मे जाकर पूजा ही करता हूँ। अब मैंने तो एक परम तत्त्व को पहचान लिया है, तब फिर अन्य किसी देवता अथवा किसी साधना की क्या आवश्यकता है? कबीरदास कहते हैं कि मेरे समस्त भ्रम नष्ट हो गये हैं और एक मात्र तत्त्व निरजन मे मेरा हृदय रम गया है।

अलकार—वक्रोक्ति—एक'' ''''क्या दूजा?

विशेष --(i) बाह्याचार का विरोध है। हिन्दू और मुसलमान दोनो के धार्मिक लोकाचार की निरर्थकता का प्रतिपादन है।

(ii) राम अल्लाह आदि शब्दो के द्वारा व्यग्य भगवान के स्वरूप के प्रति कबीर की निष्ठा है। यही इस पद का प्रतिपाद्य है।

(iii) निर्गुण निराकार ब्रह्म के प्रति कबीर की अनन्य निष्ठा किसी भी सगुणोपासक भक्त की अनन्यता से किसी प्रकार कम नही है। यथा—

मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई। (मीराबाई)

(३३६)

तहां मुझ गरीब की को गुदरावै,
मजलसि दूरि महल को पावै ॥टेक॥
सतरि सहज सलार हैं जाकै, असी लाख पैकंबर ताकै ॥
सेख जु कहिय सहस अठ्यासी, छपन कोड़ि खेलिबे खासी ॥
कोड़ि तेतीसूँ अरू ह्यिलखांनां, चौरासी लख फिरै दिवांनां ॥
बाबा आदम पै नजरि दिलाई, नबी भिस्त घनेरी पाई ॥
तुम्ह साहिब हम कहा भिखारी, देत जवाब होत बजगारी ॥
जन कबीर तेरी पनह समांनां, भिस्त नजीक राखि रहिमांनां ॥

शब्दार्थ – गुदरावै=निवेदन करना, सेवा मे पहुँचाना। मजलिस—सभा। सलार=सरदार। भिस्त—बहिश्त, स्वर्ग। खवास=मुसाहिब। नबी=पैगम्बर।

संदर्भ—कबीर अपनी दीनता की दुहाई देकर भगवान से शरणागति की प्रार्थना करते हैं।

भावार्थ—वहाँ भगवान तक मुझ गरीब की प्रार्थना को कौन पहुँचाएगा। उसकी सभा बहुत दूर है। फिर उसके महल तक किसी की पहुँच किस प्रकार हो सकती है ? अथवा उसमे कोई कैसे स्थान प्राप्त कर सकता है ? उस परमात्मा के सत्तर हजार सैनिक सरदार हैं, अस्सी लाख पैगम्बर हैं, अठासी हजार शेख हैं एव छप्पन करोड मनोरजन करने वाले मुसाहिब हैं। इनके अतिरिक्त तैंतीस करोड अन्य प्रजाजन हैं। उसके चौरासी लाख मन्त्री हैं। इन सबमे से बाबा आदम पर खुदा की जरा सी नजर पडी और उस पैगम्बर को बहुत बडा स्वर्ग प्राप्त हो गया। हे भगवान तुम मालिक हो, और मैं भिखारी मात्र, आपको उत्तर देते हुए बदकारी (बुराई) होती है। कबीर कहते हैं कि यह सेवक आपकी शरण मे आया है। हे कृपालु ! आप इसको स्वर्ग के पास अर्थात् अपने निकट स्थान देने की कृपा करें।

अलंकार—(i) वक्रोक्ति—तहाँ गुदरावै।
(ii) गूढोक्ति—मजलिस पावै। तुम····भिखारी।
(iii) अनुप्रास—सतरि सहस सलार।

विशेष—(i) सगुणोपासक भक्तों के समान सालोक्य मुक्ति की कामना अभिव्यक्त है।

(ii) ईश्वर के असीम वैभव और अपनी अल्पता का मार्मिक उल्लेख है। इस उल्लेख के द्वारा साधक भगवान से कृपा की प्रार्थना करता है कि वह उसे अपने निकट रखले।

(३४०)

जौ जाचौं तो केवल रांम,
आंन देव सूं नांही कांम ॥टेक॥
जाकै सूरिज कोटि करै परकास, कोटि महादेव गिरि कविलास ॥
ब्रह्मा कोटि बेद ऊचरै, दुर्गा कोटि जाकं मरदन करै ॥
कोटि चद्रमां गहै चिराक, सुर तेतीसूं जीमै पाक ॥
नौग्रह कोटि ठाढे दरबार, धरमराइ पौली प्रतिहार ॥
कोटि कुबेर जाकै भरै भंडार, लक्ष्मी कोटि करै सिंगार ॥
कोटि पाप पुनि ब्यौहरै, इद्र कोटि जाकी सेवा करै ॥
जगि कोटि जाकै दरबार, गध्रप कोटि करै जैकार ॥
विद्या कोटि सबै गुंण कहै, पारब्रह्म कौ पार न लहै ॥
बासिग कोटि सेज बिसतरै, पवन कोटि चौबारै फिरै ॥
कोटि समुद्र जाकै पणिहारा, रोमावली अठारह भारा ॥
असखि कोटि जाक जमावली, रांवण सेन्यो जाथै कली ॥
सहसबांह के हरे परांण, जरजोधन घाल्यौ खै मांन ॥
बावन कोटि जाके कुटवाल, नगरी नगरी खेत्रपाल ॥
लट छूटी खेलै बिकराल, अनत कला नटवर गोपाल ॥
कंद्रप कोटि जाकै लांवन करै, घट घट भीतरि मनसा हरै ॥
दास कबीर भजि सारगपान, देहु अभै पद मांगौं दांन ॥

शब्दार्थ—जाचौं=माँगता हूँ। चिराक=चिराग, दीपक। खैमान=क्षयमान। कन्दर्प=कामदेव। लावण्य, प्रसाधन शार्ङ्गपाणि=धनुष धारण करने वाले, राम।

सन्दर्भ—कबीर अनन्त सामर्थ्यवान् भगवान की प्रार्थना करते हैं।

भावार्थ – यदि मैं याचना करता हूँ, तो केवल राम से ही करता हूँ। अन्य देवताओ से मुझे कुछ भी लेना-देना नही है। उन राम के यहाँ करोडो सूर्य प्रकाश करते है, करोडो महादेव जिनके कैलास पर्वत पर रहते हैं, कोटि ब्रह्मा जिसके यहाँ वेद-पाठ करते हैं, जिनकी आज्ञा से करोडो दुर्गा दुष्टों का दमन करती हैं, जिनके समक्ष करोडो चन्द्रमा दीपक लिये रहते हैं, तैंतीस करोड देवता जिनकी कृपा का प्रसाद प्राप्त करते हैं, करोडो नवग्रह जिनके दरवार मे खडे रहते हैं, जिनके दरवाजे पर धर्मराज प्रतिहारी का काम करते हैं, करोडो कुवेर जिनका भण्डार भरते हैं, जिनको प्रसन्न करने के लिए करोडो लक्ष्मी शृंगार करती हैं, करोड़ो पाप-पुण्य जिनके सकेत पर होते रहते हैं, करोड़ो इन्द्र जिनकी सेवा मे रहते

हैं, जिनके दरबार मे करोडो यज्ञ होते रहते हैं तथा करोडो गधर्व जिनका जय-जयकार करते हैं। करोडो विधाता जिनका गुणगान करते रहते हैं, उस परम ब्रह्म का किसी ने भी पार नहीं पाया है। उनके लिए करोडो शेष नागो ने सेज बिछा रखी है। और करोडो पवन उनके महल मे हवा करते हैं करोडो समुद्र उनके यहाँ पानी भरने वाले हैं, अठारह वनराजी जिनकी रोमावली हैं, जिसके असख्य करोड यमो की सेना है, जिनसे रावण की सेना भी पराजित हुई है, जिसने सहस्रबाहु के प्राणो का हरण किया था, और दुर्योधन, को जिसने क्षयमान करके नष्ट कर डाला था, बावन करोड जिसके कोटपाल है और नगरी-नगरी मे जिसके क्षेत्रपाल है जिनकी विकराल लटें (मेघों के रूप मे) भयकर नृत्य करती हैं। वह राम अनन्त कला से युक्त नटवर गोपाल हैं, करोड कामदेव उनका सौन्दर्य प्रसाधन करते हैं और उसी से घट-घट मे रहने वाली इच्छाओ को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। कबीरदास उन्ही धनुषधारी राम का भजन करते हैं और उनसे अभय पद के दान की याचना करते हैं।

अलंकार—(1) व्यक्तिरेक एव आतिशयोक्ति—पूरा पद।

विशेष—यह सगुण भक्तो की सी प्रार्थना है। इसमे प्रभु के विराट-दर्शन जैसी झाँकी प्राप्त होती है।

(11) समभाव के लिए देखें—

रुद्रादित्या वसवोयेच साध्या।
विश्वेऽश्विने मरुतञ्चोहम पाश्च।
गन्धर्व यक्षासुर सिद्ध सँद्या।
वीक्षन्ते त्वां विस्मिताञ्चैव सर्वे। (श्रीमद्भगवद्गीता)

उदर माझ सुनु अंडज राया। देखेउँ बहु ब्रह्माड निकाया।
अति बिचित्र तहँ लोक अनेका। रचना अधिक एकते एका।
कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा। अगनित उडगन रवि रजनीसा।
अगनित लोकपाल जम काला। अगनित भूधर राम बिसःला।
सागर सरि सर बिपिन अपारा। नाना भाँति सृष्टि बिस्तारा।

इत्यादि (रामचरितमानस)

जाके बिलोकत लोकप होत बिलोक, लहैं सुर-लोग सु-ठौरहि।
सो कमला तजि चंचलता करि कोटि कला, रिझवै सुर मौरहि।
ता को कहाय, कहै तुलसी, तू लजाहि न मांगत कूकुर-कौरहि।
जानकी जीवन को जन है जरि जाऊ सो जीह, जो जाँचत औरहि।

तथा—जग जाचिए कोउ न जाँचिये जो जिय जाँचिए जानकी जानहि रे।
जेहि जाँचत जाचकता जरि जाहि जेहि भारत जोरि जहाँ नहिरे।

(कवितावली—गोस्वामी तुलसीदास)

(३४१)

मन न डिगै तार्थं तन न डराई,
केवल रांस रहे ल्यौ लाई। टेक।
अति अथाह जल गहर गभीर, बांधि जंजीर जलि बोरे है कबीर ॥
जल की तरँग उठि कटि हैं जजीर, हरि सुमिरन बैठे हैं कबीर ॥
कहै कबीर मेरे संग न साथ, जल थल मैं राखै जगनाथ ॥

शब्दार्थ—दिगै=विचलित होता है। ल्यौ=लगन, लौ।

सन्दर्भ—कबीर सिद्धावस्था का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—मेरा मन अब विषय-वासनाओ के कारण विचलित नही होता है अर्थात् मैं अब सासारिक सुखों के प्रति आसक्त नही रहा हूँ। इसी कारण मुझ को अब अपने शरीर की ओर से भी भय नही है अर्थात् मुझको इस बात की जरा भी आशंका नही है कि मेरी ज्ञानेन्द्रियाँ मुझ को विषयो के प्रति प्रवृत्त हो जाएँगी। मैने केवल भगवान राम के प्रति अपनी लगन लगा रखी है। यह ससार रूपी जल अत्यन्त गहरा और गम्भीर था। कर्मों की शृखला ने कबीर को बाँध कर इसमे डुबो दिया था। इस ससार रूपी जल मे ही ईश्वर भक्ति की लहर उठी और कर्म-बन्धन की वह जजीर टूट गई। कबीर संसार-सागर से निकलकर हरि-स्मरण रूपी तट पर जाकर बैठ गये हैं। कबीर कहते हैं कि मेरा कोई संगी-साथी नहीं है अर्थात् ससार के किसी भी व्यक्ति के प्रति मैं अनुरक्त नही हूँ। जल-थल मे सर्वत्र मेरी रक्षा करने वाले तो एक मात्र जगत के स्वामी भगवान ही हैं।

अलंकार—(1) पदमैत्री—मन न—डराई।

(ii) रूपक – हरि सुमिरन तट।

(iii) रूपकातिशयोक्ति की व्यंजना—जल जजीर।

(iv) विभावना की व्यंजना—जल की तरग—जंजीर।

विशेष—(1) मन पर नियन्त्रण आवश्यक है। मन पर नियन्त्रण होते ही इन्द्रियाँ वश मे हो जाती हैं।

(ii) भक्ति के लिए संसार त्याग की आवश्यकता नही है। भक्ति तो मन की दशा विशेष है। जल की तरग उठि मे यही व्यजना है।

(iii) जल की तरंग कटि हैं जंजीर। मन के अन्तमुँखी होते ही समस्त कर्मों का क्षय हो जाता है। यथा—

सम्मुख होइ जीव मोहि जब हीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।

(रामचरितमानस)

(iv) तट बैठे हैं कबीर—तट पर बैठने का अभिप्रेत है—तटस्थ दृष्टि हो जाने। व्यक्ति ससार मे लिप्त नही रहता है। वह समस्त घटनाओ का दृष्टापात्र हो जाता है। कबीर का कहना है कि राम-भजन के प्रभाव से वह राग द्वेष से मुक्त हो गये हैं।

(३४२)

भलै नीदौ भलै नीदौ भलै नीदौ लोग,
तन मन रांम पियारे जोग ।।टेक।।
मैं बौरी मेरे रांम भरतार, ता कारनि रचि करौं स्यगार ।।
जैसै धुबिया रज मल धोवै, हर तप रत सब निंदक खोवै ।।
न्यंदक मेरे भाई बाप, जन्म जन्म के काटे पाप ।।
न्यंदक मेरे प्रांन अधार, बिन बेगारि चलावै भार ।।
कहै कबीर न्यदक बलिहारी, आप रहै जन पार उतारी ।।

शब्दार्थ—नीदौ=निंदा करो । बौरी=पागल । रज=मिट्टी । हरत-परत=विभिन्न प्रयत्नो द्वारा । वेगारि= मजदूरी ।

सन्दर्भ—कबीरदास निंदक को साधक का उपकारी वताते है ।

भावार्थ—ईश्वर के प्रति दाम्पत्य भाव मे तन्मय आत्मा सुन्दरी कह रही है कि भले ही मेरी निंदा करो, भले ही मेरी निंदा करो, लोगो भले ही मेरी निंदा करो । मेरे तन और मन प्यारे राम के सयोग मे अनुरक्त रहते हैं । राम मेरे पति हैं और मैं उनके पीछे पागल हू उनको रिझाने के लिए मैं अच्छी तरह रुचि पूर्वक शृगार करती हू । जिस प्रकार धोवी कपडो के मैल मिट्टी को धोता है, उसी प्रकार निंदा करने वाला व्यक्ति विविध प्रकार से निंदा करके भगवान की तपस्या मे लगे हुए साधक के समस्त अवगुणों को दूर कर देता है । निंदक को मैं माता-पिता की भाँति अपना हितैषी मानता हू क्योकि वह जन्म जन्मान्तर के पाप दूर कर देता है । निंदक मुझे प्राणो के समान प्रिय है क्योकि वह विना किसी प्रकार का पारिश्रमिक लिए ही मुझे अवज्ञा का भार सहन करने योग्य वना देता है । कबीरदास कहते हैं कि मैं निन्दक पर बलिहारी जाता हू । वह स्वय तो भवसागर मे रह जाता है और भक्त जन को भवसागर के पार उतार देता है ।

अलकार—(1) पुनरुक्ति प्रकाश—प्रथम पंक्ति । जनम जनम ।

(ii) उदाहरण—जैसे—खोवै ।

(iii) उल्लेख—निंदक का विभिन्न रूपों मे वर्णन ।

(iv) विभावना की व्यजना—बिन वेगारि—भार ।

(v) व्याज स्तुति—सम्पूर्ण पद ।

विशेष—(1) इस पद मे व्याज स्तुति द्वारा दिखाया है कि निंदा पाप कर्म है एव बन्धन का हेतु है ।

(ii) निंदा के प्रति सहिष्णु व्यक्ति अपने दोषो के प्रति जागरूक हो जाता है और अपने अवगुणो को क्रमश· दूर करता रहता है । रहीम ने भी इसी प्रकार का कथन किया है ।

निंदक नियरे राखिए आगन कुटी छवाइ ।
बिन पानी साबुन विना निरमल करै सुभाइ ।

(iii) मैं बौरी राम भरतार। इसमे सूफियों की पद्धति पर दाम्पत्य-प्रेम की व्यजना है। समभाव देखें—

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर-मुकुट, मेरो पति सोई।
छांड़ि दई कुल की कानि, कहा करि है कोई।
तथा— मै हरि बिन क्यों जिऊंरी माइ।
पिव कारन बौरी भई, ज्यों घुन काठहि खाइ। (मीराबाई)

(३४३)

जौ मै बौरा तौ रांम तोरा,
लोग मरम का जांनै मोरा ।।टेक।।
माला तिलक पहरि मनमानां, लोगनि रांम खिलौनां जांना ।।
थोरी भगति बहुत अहकारा, ऐसे भगता मिलै अपारा ।।
लोग कहै कबीर बौराना, कबीरा कौ मरम रांम भल जांनां ।।

शब्दार्थ—का = क्या।

सन्दर्भ—कबीर का कहना है कि वाह्याडम्बर वाले उपासक की अपेक्षा सच्चे भक्त राम के अधिक निकट रहते है।

भावार्थ—हे राम मैं जो पागल हो रहा हूँ, वह तो तुम्हारे ही प्रेम मे पागल हूँ। ससार के लोग मेरे इस पागलपन का रहस्य क्या समझें? (वे मुझ को सामान्य पागल समझते हैं और मेरे ज्ञान-भक्ति की बात नही जानते हैं।) मनमाने ढंग से माला-तिलक धारण करने वाले लोग राम को खिलौना समझ कर तरह-तरह से सजाते हैं अर्थात् यह काहिए कि औपचारिक पूजा के नाम पर लोग राम की प्रतिभा को खिलौना समझ कर माला-तिलक से सजाते हैं। ऐसे दिखावटी लोगो मे सच्ची भक्ति तो बहुत कम होती है और इनमे अहकार की माया बहुत होती है। ऐसे अहकारी भक्त बहुत मिलते हैं। लोग कहते हैं कि कबीर पागल हो गया है, परन्तु कबीर के इस पागलपन के रहस्य को (वास्तविक कारण को) भगवान राम अच्छी तरह जानते हैं।

अलकार—(i) गूढोक्ति—का जानै।

(ii) रूपक की व्यजना—राम खिलौना जाना।

विशेष—(i) वाह्याचार का विरोध है।

(ii) भगवान का भक्त सासारिक व्यवहार मे चतुर नही रह जाता है, वह पागल सा दिखाई देता है।

(iii) माला ··· खिलौना—खिलौना जैसे व्यक्ति की विभिन्न वासनाओ की तृप्ति का साधन होना है, उसी प्रकार वाह्य पूजा करने वाला भक्त भगवान की मूर्ति को अपनी कतिपय वासनाओं की तृप्ति का साधन मान बैठता है।

(३४४)

हरिजन हस दसा लिये डोलै,
निर्मल नांव चवै जस बोलै ।।टेक।।
मान सरोवर तट के बासी, रांम चरन चित आंन उदासी ।।
मुकताहल बिन चंच न लांवै, मौंनि गहै कै हरि गुन गांवै ।।
कऊवा कुबधि निकट नही आवै, सो हसा निज दरसन पावै ।।
कहै कबीर सोई जन तेरा, खीर नीर का करै नबेरा ।।

शब्दार्थ—हँस=ज्ञानी, शुद्ध विवेकी । आन=अन्य वस्तुएँ । चवै=चुवै, निस्सृत होता है ।

संदर्भ—कबीर सच्चे भक्त का वर्णन करते हैं ।

भावार्थ—भगवान के भक्त हस की भाँति संसार मे विचरण करते है अर्थात् वे जीवन मे विवेकपूर्ण आचरण करते हैं । उनके मुख से भगवान का निर्मल नाम सहज रूप से सदैव निकलता रहता है । वे सदैव भगवान का गुणगान करते हैं । वे मानसरोवर के किनारे रहते हैं । उनका हृदय राम के चरणो मे ही लगा रहता है तथा जगत की अन्य सभी वस्तुओ के प्रति वे उदासीन रहते हैं । ये हस ज्ञान एव भक्ति रूपी मोती के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु का स्पर्श भी नही करते हैं। वे या तो मौन रहते हैं, सवका भगवान का गुणगान करते हैं (उनके मुँह से राम-गुण-चर्चा के अतिरिक्त अन्य कोई वात निकलती ही नही है ।) कुवुद्धि रूपी कौआ इन मुक्तात्मा रूपी हसो के पास तक नही फटकता है । ऐसे ही विवेकी सतो को आत्म-स्वरूप का साक्षात्कार हो पाता है । कबीरदास कहते हैं कि जो भक्त नीर-क्षीर का विवेक कर पाता है अर्थात् जो सत्यासत्य का निर्णय करने मे समर्थ होता है, वही तेरा सच्चा भक्त है ।

अलंकार—साग रूपक—सम्पूर्ण पद ।

विशेष—(i) हस सोऽहम् का अपभ्र श रूप है । तात्पर्य आत्मज्ञानी है ।

(ii) मानसरोवर - कायायोग मे मानसरोवर का अर्थ शून्य-शिखर—ब्रह्म रन्ध्र है । राजयोग मे इसका अर्थ 'वुद्धि मनस' होता है । जो सदैव हृदय रूपी सरोवर मे आत्म-दर्शन करते रहते हैं और इस प्रकार अपने दोषो का प्रक्षालन करते रहते हैं ।

(iii) खीर नीर का निवेरा—हस के विषय मे यह प्रवाद प्रचलित है कि वह दूध मे से दूध तत्त्व को ग्रहण कर लेता है और पानी तत्व को छोड देता है । इस प्रवाद को लेकर ज्ञानी एव विवेकी जन का निरूपण करने की एक मान्य परम्परा है—

जड़ चेतन गुण दोषमय विश्व कीन्ह करतार ।
सत-हस पय-गुन गहहिं परिहरि वारि-विकार ।
(गोस्वामी तुलसीदास)

(३४५)

सति रांम सतगुर की सेवा,
पूजहु रांम निरजन देवा ।।टेक।।
जल कै मंजन्य जो गति होई, मीनां नित ही न्हावै ।।
जैसा मींनां तैसा नरा, फिरि फिरि जोनीं आवै ।
मन मैं मैला तीर्थ न्हांवै, तिनि बैकुण्ठ न जांनां ।
पाखड करि करि जगत भुलांनां, नांहिन रांम अयांनां ।।
हिरदै कठौर मरै बानारसि, नरक न बच्या जाई ।
हरि कौ दास मरै जे मगहरि, सेन्यां सकल तिराई ।।
पाठ पुरांन वेद नही सुमृत, तहां बसै निरकारा ।
कहै कबीर एक ही ध्यावो, बावलिया संसारा ।।

शब्दार्थ — सति = सत्य, सार रूप । मजनि = स्नान । जोनी आवै = जन्म लेता है । अयाना = अज्ञानी । बनारसि = वाराणसी । बच्या = बचाया । सेन्या = सेना । पाठ = स्तोत्र—पाठ । बावलिया = पागल ।

सन्दर्भ— कबीर कहते है कि अन्य समस्त साधनाओ को छोडकर केवल राम और सदगुरु की सेवा करो ।

भावार्थ — राम और सदगुरु की सेवा ही सत्य एव सार है । हे साधक, तुम मायारहित देवता राम की पूजा करो । भला यदि जल मे स्नान मात्र से मुक्ति की प्राप्ति हो जाए तो मछली नित्य ही पानी मे स्नान के कारण मुक्त हो गई होती । वार-वार स्नान से जिम प्रकार मछली मोक्ष को प्राप्त नही होती है, उसी प्रकार वारम्बार मज्जन-मार्जन करके मनुष्य भी मुक्त नही होता है और उसको वार-बार जन्म लेना पडता है । जिनके मन मे पाप विचार हैं और वे तीर्थ मे स्नान करते हैं, उनको वैकुण्ठ की हवा भी नही लगती है । जगत के जीव (तीर्थ व्रत, सेवा पूजा आदि) । विभिन्न पाखडो मे फँसे हुए व्यर्थ की बातो मे भ्रमित बने हुए हैं । परन्तु राम ऐसे अज्ञानी नही हैं, जो इन लोगो के पाखण्डपूर्ण व्यवहार को समझते न हो । जो लोग मन से निर्दयी हैं और काशी मे रहते हैं, वे लोग नरक से नही वच सकते । भगवान का सच्चा भक्त अगर मगहर मे भी मरते हैं तव भी उनकी पूरी सेना भी (उनके सब साथी भी) भवसागर के पार हो जाते हैं । स्तोत्र-पाठ, पुराण-वाचन, वेदाध्ययन और स्मृति-परायण, इनमे से कोई भी उस निराकार तत्व (परब्रह्म) का साक्षात्कार कराने मे समर्थ नही है । कवीरदास कहते हैं कि यह ससार तो विभिन्न देवताओं के आराधन एव अनेक साधनाओ के साधन मे पागल हैं । (कल्याण के इच्छुक साधको को) उस एक (मायारहित) परम तत्व का ही ध्यान करना चाहिए ।

अलकार—(i) गूढोक्ति—मन के . . नहाव ।
(ii) उदाहरण—जैसा मीना . . आवै ।

(iii) पुनरुक्ति प्रकाश—फिरि फिरि, करि करि।
(iv) पर्यायोक्ति—नाहिन राम अयाना।
(v) विरोधाभास—हरि को दास .. तिराई।
(vi) सबधातिशयोक्ति—पाठ . सुमृत।

विशेष— (i) वाह्याचार का विरोध स्पष्ट है।

(ii) जल के मजन्ये . .. नहाव समभाव देखे।

पडित ! बाद वदै सो झूठा।
राम कह्यां दुनियाँ गति पावै, (तौ) खांड कह्यां मुख मीठा।
विनु देखे विनु अरस-परस बिन, नाम लिए का होई ? (कबीरदास)

(iii) **हिरदै कठोर**—इसका अर्थ इस प्रकार भी हो सकता है—जो हृदय कठोर करके काशी-करवट लेते हैं। इसका पाठातर भी इस प्रकार मिलता है—'काशी करोत' लेते है।)

(iv) **मरै जे मगहरि**—'मगहर' आदि स्थानो को पौराणिक परम्परानुसार अशुभ स्थल माना जाता है। यह प्रवाद प्रचलित है कि जो कोई मगहर मे मृत्यु को प्राप्त होता है, वह नरक का भोग करता है। कबीर इस मान्यता को अन्ध विश्वास मानते थे और इसी कारण उन्होने इसके विरुद्ध आवाज उठाई थी। प्रस्तुत पद मे वह मगहर मे शरीर त्याग से स्वर्ग-लाभ की वात करते है। स्पष्टत यह एक अध विश्वास को एक अन्य अन्ध विश्वास के द्वारा मिटाने का प्रयत्न है। यदि मगहर मे मरने पर नरक नहीं मिल सकता है, तो वहाँ मरने पर स्वर्ग की प्राप्ति क्यो कर सम्भव होगी ? सुधारक गण अन्ध विश्वास को हटाने के प्रयत्न मे स्वय अन्ध विश्वासो के शिकार बन जाते हैं। ऐसे व्यक्तियो के विषय मे यह उक्ति सर्वथा सगत है कि "जिन लोगो ने कूडा साफ करना चाहा था, उनके नाम के कई घूरे और बढ गए हैं।"

बात यह है कि शकराचार्य ने जब बौद्धो को आर्यावर्त्त से खदेडा, तो उन्होने अपने अड्डे विहार मे स्थापित कर लिए और वहाँ उन्होने वामाचार फैलाया इसी कारण वैदिक मतानुयायी महानुभाव मगध (विहार) प्रदेश को उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगे थे। यथा—

लागहिं कुमुख बचन सुभ कैसे। मगहँ गयादिक तीरथ जैसे
(रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास)

(v) **मरै बनारसि**—सामान्यत· यह विश्वास है कि काशी (वनारस, वाराणसी) शिवजी के त्रिशूल के ऊपर वसी हुई है। वहाँ मरने पर स्वर्ग की प्राप्ति होती है। अतः वहुत से व्यक्ति अन्त समय मे काशी-वास करने के इच्छुक रहते हैं।

सम्भवतः इस पद मे 'काशी-करवट' की ओर सकेत है। काशी के एक कुएँ मे एक आरा लगा हुआ था। अध विश्वासी जनता उस कुएँ मे गिरकर अपने

आपको इस आरे के नीचे कटवा देती थी क्योंकि उन्हें विश्वास था कि इस प्रकार वे स्वर्ग प्राप्ति के अधिकारी बनते थे। यह 'काशी करवट' कहलाती थी।

आरा चलाने के कार्य नीचे ही नीचे गुप्त रूप से इस प्रकार होता था कि वह स्वचालित सा लगता था। इसका रहस्य खुलने पर अग्रेजो ने इसको बन्द करा दिया।

(३४६)

क्या ह्वै तेरे न्हाई धोई,
आतम रांम न चीन्हां सोई ।।टेक।।
क्या घट ऊपरि मंजन कीयै, भीतरी मैलि अपारा ।
रांम नांम बिन नरक न छूटै, जे धौवै सौ बारा ।।
का नट भेष भगवां बस्तर, भसम लगावै लोई ।।
ज्यू दादुर सुरसरी जल भीतरि, हरि बिन मुकति न होई ।।
परहरि कांम रांम कहि बौरे सुनि सिख बंधू मोरी ।
हरि कौ नॉव अभै पद दाता, कहै कबीरा कोरी ।।

शब्दार्थ—सोई=उसी। चीन्हा=पहिचाना। नट=तमाशा करने वाला, नाटक का पात्र। भगवा बस्तर=गेरुआ वस्त्र। सिख=सीख, शिक्षा। कोरी=कोली, जुलाहा। अभै = अभय।

सन्दर्भ—कवीर कहते है कि वाह्याचार का त्याग करके राम के नाम का स्मरण करना चाहिए।

भावार्थ—हे साधक, यदि तूने आत्माराम (आत्म-स्वरूप) को नही पहचाना है, तो तुम्हारे नहाने-धोने आदि वाह्याचार से क्या लाभ है ? जब अन्त' करण मे विषय वासनाओ का अपार मैल भरा हुआ है, तब ऊपर ऊपर से शरीर को स्नान कराने (धोकर साफ करने) से क्या लाभ हो सकता है ? भले ही कोई व्यक्ति सौ बार स्नान करके शरीर को धो डाले, परन्तु राम-नाम के विना नरक (पाप कर्म के फल) से छुटकारा नही हो सकता है। लोग गेरुआ वस्त्र धारण करते हैं और भस्म लगाते है, परन्तु इस प्रकार नाटक के पात्र की तरह विभिन्न वेश धारण करने से क्या लाभ हो सकता है ? जैसे मेढक सदैव गगा जल के भीतर रहता है, परन्तु केवल गंगा जल मे ही रहने के कारण उसकी मोक्ष नही हो जाती है, इसी प्रकार केवल गगा स्नान करते हुए ही प्रभु के नाम स्मरण विना मनुष्य की मुक्ति सम्भव नही है। हे भाई ! तुम मेरी शिक्षा मान लो, हे पागल ! तू विषय वासना का त्याग करके राम-नाम कहो। जुलाहा कवीर का निश्चित मत है कि हरि का नाम-स्मरण अभय पद-परम पद-का देने वाला है।

अलकार—(i) वक्रोक्ति—क्या है—पारा।
(ii) निदर्शना की व्यजना—राम नाम ‥ ‥ लोई।
(iii) उपमा—ज्यू दादुर ‥ होई।

विशेष—(i) बाह्याचार का विरोध व्यक्त है।

(ii) 'कोरी' शब्द मे व्यंजना है। जुलाहो को तुच्छ समझने वाले सवर्ण वर्ग से कबीर कहते हैं कि जिस समुदाय को तुम तुच्छ समझते हो, उसी 'कोली' वर्ग मे उत्पन्न कबीर तुम्हारे सम्मुख एक महान् सत्य को प्रकट कर रहा है।

(३४७)

पाँणी थै प्रगट भई चतुराई,
गुर प्रसादि परम निधि पाई ।।टेक।।
इक पांणी पाणी कूं धोवै, इक पांणी पांणी कूं मोहै ।।
पांणी ऊंचा पांणी नीचा, ता पाणी का लीजै सीचा ।।
इक पांणीं थैं प्यंड उपाया, दास कबीर रांम गुण गाया ।।

शब्दार्थ—पाणी=जल, लक्षण से प्रभु, भगवान को नारायण कहते हैं (नार =जल)। चतुराई=ज्ञान। प्यड=शरीर। उपाया=उत्पन्न किया।

संदर्भ—कबीरदास प्रभु की महिमा का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—प्रभु रूप जल से ही ससार का समस्त ज्ञान उत्पन्न हुआ है। इस परम ज्ञान रूपी खजाने को मैंने गुरु की कृपा से प्राप्त किया है। भक्ति रूपी जल विषय-वासना रूपी जल के मैल को नष्ट कर देता है, माया रूपी जल जीवात्मा रूपी जल को मोहित करता है। जल ही ऊपर है, जल ही नीचे है। अथवा ज्ञान रूप होकर जल ही व्यक्ति को उच्च पद प्रदान करता है और माया रूप होकर वही जल व्यक्ति को पतन के गर्त मे गिरा देता है। इसी सर्वव्यापी परम तत्व रूपी जल के द्वारा अपने अन्त करण को अभिसिंचित करना चाहिए। पानी (वीर्य) की एक बूद मात्र से इस शरीर की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार जल की महिमा को समझ करके कबीर जल रूप प्रभु का गुणगान करता है।

अलकार—यमक—एक ही शब्द 'पाणी' को विभिन्न प्रतीकार्थ होने के कारण।

(३४८)

भजि गोब्यद भूलि जिनि जाहु,
मनिसा जनम कौ एही लाहु ।।टेक।।
गुर सेवा करि भगति कमाई, जौ तैं मनिषा देही पाई ।।
या देही कूँ लौचै देवा, सो देही करि हरि की सेवा ।।
जब लग जुरा रोग नही आया, तब लग काल ग्रसै नहि काया ।।
जब लग हीण पड़ै नही बांणी, तब लग भजि मन सारगपांणी ।।
अब नहि भजसि भजसि कब भाई, आवैगा अत भज्यौ नहीं जाई ।।
जे कछू करौ सोई तत सार, फिरि पछितावोगे वार न पार ।।

सेवग सो जो लागै सेवा, तिनहीं पाया निरजन देवा ।।
गुर मिलि जिनि के खुले कपाट, बहुरि न आवै जोनीं बाट ।।
यहु तेरा औसर यहु तेरी बार, घट ही भीतरि सोचि बिचारि ।।
कहै कबीर जीति भावै हारि, बहु विधि कह्यौ पुकारि पुकारि ।।

शब्दार्थ—मनिखा=मनुष्य । लाहु=लाभ । लौचौ - ललकते है, चाहते है । जुरा=वृद्धावस्था । हीण=हीन, दुर्बल, क्षीण । सारग पाणी = हाथ मे धनुष धारण करने वाला, श्री राम । जोंनी बाट=जन्म के रास्ते ।

सन्दर्भ—कबीरदास भगवद् भक्ति करने के लिए पुकार-पुकार कर कहते हैं ।

रे मानव, तुम भगवान का भजन करो । इस बात को भूल मत जाओ । मनुष्य जन्म का यही लाभ है । जब तुम्हे मानव शरीर प्राप्त हो गया है, तो इससे गुरु की सेवा करो और प्रभु-भक्ति का उपार्जन करो । जिस मानव शरीर के देवता भी अभिलाषी है, वह तुम्हे प्राप्त है । इस मानव-शरीर के द्वारा भगवान की सेवा करो । जब तक तुमको वृद्धावस्था सम्बन्धी रोग नही घेरते हैं, इस शरीर को काल नही ग्रसता है और तुम्हारी वाक् शक्ति क्षीण नही होती है, उससे पहले मन को भगवान राम के भजन मे लगा दो । यदि तुम अब (शरीर के स्वस्थ रहते हुए) भगवान का भजन नही करोगे तब फिर हे भाई ! तुम उनका भजन कब करोगे ? अतकाल आने पर तुमसे भगवान का भजन नही किया जा सकेगा । इस समय जो कुछ कर लोगे, वही सार है— वही तुम्हारी सच्ची कमाई है । इस समय भजन करने पर तुमको बाद मे ऐसा घोर पश्चाताप होगा जिसकी कोई सीमा नही होगी । सच्चा भक्त वही है जो भट भक्ति मे लग जाए । जो अविलम्ब (अभी और कही) प्रभु-भक्ति मे लग जाते है, उन्ही को माया रहित प्रभु (निरजन) की प्राप्ति होती है । सद्गुरु के साक्षात्कार (गुरु के उपदेश) द्वारा जिनके ज्ञान-कपाट खुल गए हैं, जिन्हे ज्ञान की प्राप्ति हो गई है, वे फिर इस जन्म-मरण के चक्कर मे नही पडते हैं । हे मनुष्य ! तुझे स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ है । मोक्ष-साधन के लिए यही तेरी बारी है—चौरासी लाख योनियाँ भोगने के बाद 'साधन-धाम मोक्ष कर द्वार' मानव शरीर मे आने को तुम्हारी बारी आई है । इस बात को तुम अपने मन मे अच्छी तरह सोच-समझ लो । कबीर कहते हैं कि राम भजन के द्वारा मोक्ष प्राप्त करके चाहे तो तुम अपनी इस बारी (दाँव) को जीत लो अथवा भजन की उपेक्षा करके और मोक्ष को गँवाकर इस दाँव को हार जाओ । कबीर कहते हैं कि मैने तो बार-बार पुकार कर तुम्हे चेतावनी देकर अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया है ।

अलंकार – (i) गूढोक्ति—भजसि कब भाई ।
(ii) पदमैत्री—सार बार पार ।
(iii) रूपकातिशयोक्ति—कपाट ।
(iv) रूपक—जोनी बाट ।
(v) पुनरुक्ति प्रकाश—पुकारि पुकारि ।

विशेष—समभाव के लिए गोस्वामी तुलसीदास का यह कथन देखिए—

बडे भाग मानुष तन पावा । सुर नर मुनि सद्ग्रन्थन गावा ।

× × ×

नर तन सम नहिं कवनिउ देही । जीव चराचर जाचत तेही

नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी । ग्यान विराग भगति सुभ देनी ।

सो तनु धरि हरि भजहिंन जे नर। होहिं विषय रत मद मंद तर ।

काच किरिच बदलें ते लेहीं । कर ते डारि परस मनि देहीं ।

(रामचरितमानस)

तथा—हरि, तुम बहुत अनुग्रह कीन्हो ।

साधन-धाम बिबुध-दुरलभ तनु, मोहि कृपा कर दीन्हो । (विनयपत्रिका)

(३४६)

ऐसा ग्यांन बिचारि रे मनां,

हरि किन सुमिरे दुख भंजनां ।।टेक।।

जब लग मैं मै मेरी करै, तब लग काज एक नही सरै ।।

जब यहु मै मेरी मिटि जाइ, तब हरि काज सवारै आइ ।।

जब लग स्यध रहै बन मांहि, तब लग यहु बन फूलै नांहि ।।

उलटि स्याल स्यंघ कूँ खाइ, तब यहु फूलै सब बनराइ ।।

जीत्या डूबै हार्‍या तिरै, गुर प्रसाद जीवत ही मरै ।

दास कबीर कहै समझाइ, केवल रांम रहौ ल्यौ लाइ ।।

शब्दार्थ - भजना=नष्ट करने वाला । सरै=सिद्ध हो गया । स्यध=शेर अहकार । फूलै=भक्ति-भावना का उदय । स्याल=चेतन । मरै = जीवनमुक्त ।

सन्दर्भ—कबीरदास अहकार का त्याग करके राम भक्ति का उपदेश देते हैं ।

भावार्थ - रे मन, तू मन मे ऐसा विवेक धारण करता है । जिससे दु खो का नाश करने वाले प्रभु का भजन होने लगे ? जब तक 'मैं' और मेरी (अहभाव) मे लिप्त रहोगे, तब तक तुम्हारा एक भी कार्य सिद्ध नही होगा । जब यह 'मैं' और 'मेरी' की भावना समाप्त हो जाएगी, तब भगवान स्वय आकर तुम्हारे समस्त कार्य पूरे कर देंगे । जब तक अन्त करण रूपी वन मे अहकार रूपी शेर का निवास रहता है, तब तक इस अन्त करण रूपी वन मे भक्ति-भावना के फूल विकसित नही हो सकेंगे । जब शुद्ध बुद्ध चैतन्य इस अह रूपी सिह को समाप्त कर देगा, तभी यह अन्त करण रूपी वन ज्ञान और भक्ति को फूलो से युक्त हो जाएगा । इस दशा की प्राप्ति होने पर परिस्थिति एक दम बदल जाएगी । आज तक जिस अहकार ने चैतन्य को दबा रखा था, वह सदा सर्वदा के लिए नष्ट हो जाएगा और जो चैतन्य अहकार द्वारा पराभूत था, वह अब सदा-सर्वदा के लिए मुक्त हो जाएगा । इस समय साधक गुरु की कृपा प्राप्त करके जीवन्मुक्त हो जाता है । कबीरदास समझा

कर कहते हैं कि इसीलिए हे जीव, तुम भगवान मे निरन्तर अपनी लौ लगाए रहो। (यही कल्याण का मार्ग है)

अलंकार—(i) रूपकातिशयोक्ति—स्यघ, वन, स्याल।
(ii) गूढोक्ति—किन सुमिरै।
(iii) विरोधाभास—उलटि स्याल ' खाइ; जीत्या, तिरै; जीवत ही मरै।

विशेष—(i) नाथ पथी प्रतीको का प्रयोग है।
(ii) यह पद उलटवाँसी की शैली पर रचित है।
(iii) 'अहकार' के रहते हुए प्रभु कैसे आ सकते है? प्रेम-गली अत्यन्त सकरी है। इसमे 'मैं' और 'तू' मे एक ही रह सकता है।

प्रेम गली अति साँकरी तामें दो न समाँय।
रहिमन भरी सराइ लखि लौट मुसाफिर जाय।

(३५०)

जागि रे जीव जागि रे।
चोरन कौ डर बहुत कहत है, उठि उठि पहरै लागि रे ॥टेक॥
ररा करि टोप ममां करि बखतर, ग्यान रतन करि षाग रे।
ऐसै जौ अजराइल मारै, मस्तकि आवै भाग रे॥
ऐसी जागर्णी जे को जागै, ता हरि देइ सुहाग रे।
कहै कबीर जाग्या ही चाहिये, क्या गृह क्या बैराग रे॥

शब्दार्थ—वखतर=कवच। वाग=खड्ग, तलवार। अजराइल=अजराइल=मृत्यु का देवदूत।

सन्दर्भ—कबीर कहते हैं कि व्यक्ति को सदैव विवेकपूर्ण आचरण करना चाहिए।

भावार्थ—रे जीव, जागो, जाग जाओ। इस जीवन मे (काम क्रोध, लोभ, मोह मत्सर) रूपी चोरो का डर बहुत कहा जाता है। इसलिए तू उठ और उठकर पहरा लगा जिससे वोध वृत्ति रूपी धन की रक्षा होती रहे।) इसके लिए तू राम के नाम का इस प्रकार सहारा ले—रकार का शिरस्त्राण वना तथा मकार का कवच वना। ज्ञान रूपी रत्न की तलवार वनाले। इससे अज्ञान रूपी मृत्यु के देव दूत पर तुम ऐसा वार करो कि अहकार-रूपी उसका मस्तक पर तुम्हारा अधिकार हो जाए। ऐसी जाग मे जो कोई जागता है अर्थात् जाग कर जो कोई इस प्रकार सावधान रहता है, उस पर भगवान अपने सौभाग्य की कृपा करते हैं। तात्पर्य यह है कि जो आत्मा-सुन्दरी इस प्रकार की ज्ञानावस्था को प्राप्त करती है, उसको भगवान पति रूप मे प्राप्त होने हैं अर्थात् आत्मा का परमात्मा मे, सान्त का अनन्त मे लय हो जाता है। कबीर कहते हैं कि चाहे व्यक्ति गृहस्थ हो अथवा विरक्त, उसको सदैव विकार रूपी चोरो के प्रति सावधान रहना ही चाहिए।

अलंकार—(i) पुनरुक्ति प्रकाश—प्रथम पक्ति । उठि उठि ।
(ii) रूपकातिशयोक्ति चोट ।
(iii) रूपक—ररा ''''' पाग रे ।
(iv) गूढोक्ति—क्या गृह रे ।

विशेष—(i) ररा रे—राम-नाम की महिमा का प्रतिपादन है ।
(ii) अजराईल मारै—इस्लामी सस्कारो का प्रभाव है ।
(iii) देह सुहाग रे – रहस्यवाद का प्रभाव है ।
(iv) समभाव के लिए देखे—
(क) जतन बिनु मिरगनि खेत उजारे ।
× ×
अपने अपने रस के लोभी, करतब न्यारे-न्यारे ।
× ×
बुधि मेरी किरषी, गुरु मेरी बिझुका अक्खिर दोइ रखवारे ।
एवं तोरी गठरी मे लागे चोर, बटोहिवा कारे सोवै ।
पांच-पचीस तीन हैं चोखा, यह सब कीन्हा सोर । —कबीरदास

(ख) शकराचार्य ने भी इन मानवीय दुष्प्रवृत्तियो को डाकू कहा है, जो ज्ञान रूपी रत्न को लूटती रहती हैं—
काम क्रोधश्च लोभश्च, देहे तिष्ठान्ति तस्करा.
ज्ञान रत्नापहाराय तस्याज्जागृत, जागृत ।

(ग) मैं केहि कहौं विपति अति भारी । श्री रघुबीर धीर हितकारी ।
मम हृदय भवन प्रभु तोरा । तहँ बसे आइ बहु चोरा ।
× ×
तम, मोह, लोभ, अहकारा । मद, क्रोध बोध-रिपु मारा ।
अति करहिं उपद्रव नाथा । मरदहिं मोहि जानि अनाथा ।
मै एक अमिट बटपारा । कोऊ सुनै न मोर पुकारा ।
× × ×
कह तुलसीदास सुनु रामा । लूटहिं तसकर तव धामा ।
(गोस्वामी तुलसीदास विनयपत्रिका)

(३५१)

जागहु रे नर सोवहु कहा,
जम बटपारे रूंधे पहा ।।टेक।।
जागि चेति कछू करौ उपाइ, मोटा बैरी है जमराइ ।।
सेत काग आये बन मांहि, अजहू रे नर चेतै नांहि ।।
कहै कबीर तबै नर जागै, जम का डड़ मूड मै लागै ।।

शब्दार्थ— बटपारै=बटमार, लुटेरे। पहा=पथ। मोटा=बडा। सत=श्वेत। डड=डडा।

संदर्भ– कवीर जीव को मोह निद्रा का त्याग करने को कहते है।

भावार्थ—रे मानव, तुम जाग जाओ, इस अज्ञान-निद्रा मे क्यो सो रहे हो? यमरूपी लुटेरे ने तुम्हारे जीवन-पथ को रोक रखा है। (वह चाहे जब तुम्हे लूट लेगा)। जाग कर तथा सचेष्ट होकर अपने जीवन के सरक्षण का कुछ उपाय करो। यमराज तुम्हारा वहुत वडा शत्रु है। तुम्हारे इस जीवन रूपी वन मे श्वेत वाल रूपी श्वेत काग आगए हैं, जो तुम्हारे नाश के सूचक है। हे मानव! तुम अव भी सावधान क्यो नही होते हो? कवीर कहते हैं कि मानव तव होश मे आता है जब यमराज का डडा सिर पर वजने लगता है।

अलंकार—(i) गूढोक्ति—सोवहु कहा।
(ii) रूपक—जम वटपारै।
(iii) रूपकातिशयोक्ति—सेत काग, वन।

विशेष—(i) डड मूड मै लागै– लोकोक्ति का प्रयोग।
(ii) वन मे श्वेत कौओ का आना अत्यन्त अशुभ माना जाता है। वह नाश-सूचक होता है।

(३५२)

जाग्या रे नर नीद नसाई,
चित चेत्यौ च्यंतामणि पाई ॥टेक॥
सोवत सोवत बहुत दिन बीते, जन जाग्यां तसकर गये रीते।
जन जागे का ऐसहि नांण, विष से लागे बेद पुरांण॥
कहै कबीर अब सोवौं नांहि, रांम रतन पाया घट मांहि॥

शब्दार्थ—नसाई=नष्ट करके। च्यतामणि=रामनाम रूपी चिंतामणि। तसकर=चोर, लुटेरे। रीते=खाली हाथ। नाण=लक्षण।

संदर्भ—पूर्व पद के समान।

भावार्थ—रे मानव, अज्ञान की नीद समाप्त करके अव जाग जाओ। मन मे विवेक धारण करो। तुमको भगवन्नाम रूपी चिन्तामणि की प्राप्ति होगी। तुम्हे इस अज्ञान-निद्रा मे सोते हुए वहुत समय व्यतीत होगया है। मानव के जगते ही काम-क्रोधादि रूपी चोर खाली हाथ ही भाग जाते हैं। जागे हुए (ज्ञानी) मनुष्य का यही लक्षण है कि उसे वेद-पुराण भी विप के समान (व्यर्थ) प्रतीत होने लगते हैं। कवीर कहते हैं कि मुझे तो अपने अन्तःकरण मे राम-नाम रूपी रत्न की प्राप्ति होगई है। अव मैं तो अज्ञान के वशीभूत होकर नहीं सोऊँगा।

अलंकार—(i) अनुप्रास—नट नीद नसाई। चित चेत्यौ च्यतामणि।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—च्यंतामणि।
(iii) पुनरुक्ति प्रकाश—सोवत सोवत।

(iv) चपलातिशयोक्ति की व्यजना - जन जाग्या रीते।

(v) उपमा—विष से · · पुराण।

(vi) रूपक—राम रतन।

विशेष—(i) विष· पुराण—वेद-पुराण इत्यादि ज्ञान प्राप्ति के साधन मात्र हैं। सिद्धावस्था मे उनकी निरर्थकता स्वय सिद्ध है। इस कथन के ऊपर अविद्यावत् विषयाणि सर्वशास्त्राणि का प्रभाव स्पष्ट है।

(ii) अन्तिम पक्ति मे 'सोवौं' का पाठान्तर "सोबौ" है। अर्थ होगा—अब सोना नही है अर्थात् अब तुम मत सोओ। यह अर्थ भी सगत एव प्रसगानुकूल है।

(iii) समभाव के लिए देखें—

अब लौं नसानी, अब न नसैहौं।

× ×

पायौ नाम चारु चितामनि, डट कर ते न खसैहौं।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(३५३)

सतनि एक अहेरा लाधा,
मिर्गनि खेत सबनि का खाधा ॥टेक॥
या जगल मै पांचौ मृगा, एई खेत सबनि का चरिगा॥
पारधीपनौं जे साधै कोई, अध खाधा सा राखै सोई॥
कहै कबीर जो पचौं मारै, आप तिरै और कू तारै॥

शब्दार्थ—अहेरा=शिकार। लाधा=प्राप्त किया। मिर्गनि=मृगो ने खाधा=खा डाला। पारधीपना=शिकारीपना।

सन्दर्भ—कबीर का कहना है कि इन्द्रियो को वश मे करने वाला भवसागर के पार जा सकता है।

भावार्थ—सतो को एक शिकार प्राप्त होगई है। मृगो (काम-क्रोधादि अथवा पाँचो इन्द्रियो के विषयो) ने सब लोगो के जीवन-रूपी खेत चर डाले है। इस ससार रूपी जगल मे पाँच मृग (उपर्युक्त अनुसार) हैं। इन्होने ही समस्त प्राणियो के जीवन-रूपी खेतो को चर लिया है। जो कोई व्यक्ति इन मृगो को मारने के लिए शिकारीपना धारण करते है, वह इन मृगो के आधे खाए हुए जीवन-रूप खेत की रक्षा कर लेता है। कबीर कहते हैं कि जो पाँचो विकारो एव पाँचो इन्द्रियो के विषयो को समाप्त कर देता है, वह स्वय ही भवसागर के पार हो जाता है और अन्य लोगो को भी पार करा देता है।

अलंकार—(i) रूपकातिशयोक्ति—मृग खेत।

(ii) सागरूपक—खेत और जीवन के रूपक का निर्वाह है।

विशेष—(i) पारधीपनौं जे साधे—विषयासक्ति पर नियन्त्रण के अनुपात मे ही साधक का कल्याण होता है।

(ii) समभाव के लिए देखे—

जतन बिनु मिरगनि खेत उजारे।
टारे टरत नही निसि-बासुरि, बिडरत नही बिडारे।
अपने-अपने रस के लोभी, करतब न्यारे-न्यारे।
× ×
बुधि मेरी किरषी, गुरु मेरो बिझुका अखिर दोइ रखवारे।
(कबीरदास)

(३५४)

हरि कौ बिलौवनौं बिलोइ मेरी माई,
एसें बिलोइ जैसै तत न जाई ॥टेक।
तन करि मटकी मनहि बिलोइ, ता मटकी मै पवन समोइ॥
इला प्यगुला सुषमन नारी, बेगि बिलोइ ठाढी छछिहारी॥
कहै कबीर गुजरी बौरांनीं, मटकी फूटीं जोति समांनीं॥

शब्दार्थ—बिलोवना=बिलोने की वस्तु। छछिहारी=छाछ लेने वाली नारियाँ। गुजरी=गूजरी।

सन्दर्भ—कबीर आत्मा को सम्बोधित करके ज्ञान प्राप्ति की बात करते है।

भावार्थ—हे सखि, तुम इस जीवन-रूपी बिलोवने को भगवान का समझ कर उन्ही के लिए बिलाओ। परन्तु इस प्रकार बिलोओ कि सारवस्तु (मक्खन रूपी तत्त्व) नष्ट न हो जाए। इस शरीर रूपी मटको मे मन रूपी दही को बिलोओ। उस मटकी मे प्राणायाम रूप जल समो दो। इसको जल्दी-जल्दी बिलोओ। छाछ लेने वाली इडा, पिंगला और सुषुम्ना रूपी नारियाँ खड़ी हुई प्रतीक्षा कर रही हैं। कबीर कहते हैं कि जीवात्मा रूपी गूजरी इस बिलोने की क्रिया मे आत्मविस्मृत हो गई। फलस्वरूप यह मटकी फूट गई—शरीर के बन्धन समाप्त होगये और उसकी आत्म चेतना रूपी ज्योति उस महान ज्योति के साथ एकाकार होगई। सात का अनन्त मे लय होगया।

अलंकार—सागरूपक—जीवन से भक्तिरस प्राप्त करने और दही बिलौने के रूपक का निर्वाह है।

(ii) रूपकातिशयोक्ति—बिलोवनो।

विशेष—(i) हरि को बिलौवनो—ईश्वरार्पण बुद्धि से जीवन-यापन करो।

(ii) तत—ज्ञान और भक्ति रूपी महारस।

(iii) पवन समोइ—जैसे दही मे मिलाया हुआ जल घी को दही से अलग कर देता है, वैसे ही प्राणायाम के प्रभाव से मन की वासनाओ का खट्टापन दूर हो जाता है, और उसमें भगवद् प्रेम की स्निग्धता प्रमुख हो जाती है।

(iv) छछिहारी—इड़ा पिंगला एव सुषुम्ना की चर्चा काययोग के अन्तर्गत

की जाती है। इन्हे छछिहारी कहने का कारण यह है कि कायायोग मे तत्वरूप महारस की प्राप्ति नही हो पाती है। वह चैतन्य के साक्षात्कार का विषय है, परन्तु इतना रस तो मिल ही जाता है, जितनी स्निग्धता मठे मे होती है। अभिप्रेत यह है कि इस महारस के स्पर्श से तीनो नाडियाँ स्निग्ध एव पातिल साधना रस से आप्लावित अवश्य हो जाती हैं।

(v) इस पद मे ज्ञान एव भक्ति के महारस की प्राप्ति का वर्णन है। इस महारस की साधना मे कायायोग की सिद्धि तथा तृप्ति भी स्वयमेव हो ही जाती है। इसके साथ ही भक्ति का पर्यवसान अद्वैतावस्था अभेद बुद्धि मे होता है। यह मटकी फूटी ज्योति समानी कथन द्वारा प्रकट है।

(vi) इसमे ज्ञान और भक्ति की अभिन्नता प्रकट है।

(vii) कबीर ने आत्मा को गूजरी इसलिए कहा है कि अहीर और गूजर जाति का मुख्य व्यवसाय गाय-भैस पालकर दूध-घी का व्यापार करना है।

(३५५)

आसण पवन कियै दिढ रहु रे,
मन का मैल छाडि दै बौरै ॥टेक॥
क्या सींगी मुद्रा चमकांये, क्या विभूति सब अगि लगायें ॥
सो हिंदू सो मुसलमांन, जिसका दुरस रहै ईमांन ॥
सो ब्रह्मा जो कथै ब्रह्म गियांन, काजी सो जांनै रहिमांन ॥
कहै कबीर कछू आंन न कीजै रांम नांम जपि लाहा लीजै ॥

शब्दार्थ—आसन=योग के अष्टाग साधनो मे एक। पवन=प्राणायाम दिढ=दृढ। बौरे=बावले। सीगी=शृगी, योगियो द्वारा धारण किया जाने वाला उपकरण विशेष। मुद्रा=योगियो का एक आभूषण। दुरपद=दुरुस्त, ठीक, दृढ। काजी=मुसलमान न्यायाधीश जो शरा के अनुसार मामलो का निर्णय करे। रहिमान=दयालु प्रभु। आन=अन्य साधना। लाहा=लाभ, जीवन का लाभ।

सदर्भ—कबीर राम नाम की महिमा का प्रतिपादन करते है।

भावार्थ—हे पागल जीव, पवन रूपी आसन पर दृढतापूर्वक स्थित रहो अर्थात् तू समाधिस्थ होकर प्राणायाम की दृढ साधना करो और मन का कलुष दूर करलो। सीगी, मुद्रा आदि बाहरी उपकरणो के सजाने से तथा अगो (शरीर) पर भस्म लगाने से क्या होता है? सच्चा हिन्दू और सच्चा मुसलमान वही है, जिसका ईमान ठीक ठिकाने बना रहता है अर्थात जो प्रलोभनो द्वारा विचलित नही होता है। वही ब्राह्मण है जो ब्रह्मज्ञान की बात करता है। वही काजी (धम और न्याय का ज्ञाता) वही है जो भगवान के दयालु स्वरूप को पहचानता है अर्थात् जो प्रत्येक मामले पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करता हैं। कबीर कहते हैं कि और कुछ भी मत करो, केवल राम नाम की जप करके जीवन का लाभ प्राप्त करो अर्थात् जीवन को सार्थक बनाओ।

अलंकार—रूपक—आसण पवन।

(ii) वक्रोक्ति—क्या सीगी.... लगायें।

विशेष (i) धार्मिक वाह्याचार, विधि-विधान आदि केवल आडम्बर हैं। ये व्यर्थ हैं।

(ii) कबीर का कहना है कि अपने प्राणो पर नियन्त्रण रख कर स्व-स्वरूप का साक्षात्कार करना चाहिए। इस प्रकार ज्ञान और भक्ति मे, शुद्ध चैतन्य स्वरूप मे प्रतिष्ठित हो जाना चाहिए। ऐसी स्थिति मे अपने सहज धम मे प्रतिष्ठित रहने पर पूजा और साधना के बाहरी उपचारो की आवश्यकता नही रहती है।

(३५६)

तार्थं कहिये लोकाचार,
वेद कतेबक थैं ब्यौहार ।।टेक।।
जारि बारि करि आवै देहा, मूंवाँ पीछैं प्रीति सनेहा ।।
जीवत पित्रहि मारहि डंगा, मूंवां पित्र ले घाले गगा ।।
जीवत पित्र कूं अन न ख्वांवै, मूँवां पाछै प्यड भरांवै ।।
जीवत पित्र कूँ बोलै अपराध, मुवां पीछै देहि सराध ।।
कहि कबीर मोहि अचिरज आवै, कऊवा खाइ पित्र क्यू पावै ।।

शब्दार्थ—कतेव=कुरान, धर्म ग्रन्थ। मूवाँ=मरे। डगा=डडा। घाले=फेकते है।

सन्दर्भ—कबीरदास कहते हैं कि वाह्याचार केवल दम्भ प्रेरित होते हैं।

भावार्थ—वेद और कुरान लौकिक आचरण का वर्णन करते हैं। इस कारण उनकी बातो को मात्र लोकाचार कहा जाना चाहिए। व्यक्ति अपने सम्बन्धियो के मृत शरीर को जलाकर उसका चिन्ह तक मिटा देते है और फिर उसके बाद रो-पीट कर उसके प्रति अपनी प्रीति प्रकट करते हैं। पुत्र जीवित पिता को लट्ठ से मारता है और मरने पर उसकी अस्थियो को गंगा के जल मे डालने के लिए पहुँचता है। वह जीवित पिता को तो भोजन भी नही देता है और मरने पर उसकी बुभुक्षा की शांति करने के लिए पिण्डदान का दिखावा करता है। जीते जी पिता को अनेक दोप देता है (और उसके प्रति कटु शब्द कहता है) और मरने पर श्राद्ध के नाम पर श्रद्धा की अभिव्यक्ति का स्वाग करता है। कबीरदास कहते हैं कि इन समस्त वाह्याचारो को देख कर मुझको आश्चर्य होता है। कौए श्राद्ध के जिस अन्न को खाते हैं, उसे पितृ-गण क्यो कर प्राप्त कर सकते हैं ?

अलकार—(i) पदमैत्री—जारि बारि।

(ii) वक्रोक्ति—कउवा ... पावै।

विशेप—(i) सच्ची भावना से रहित कर्म काण्ड का खडन है।

(ii) कबीर ने यह नही विचार किया कि जो पुत्र जीवित पिता की पूरी श्रद्धा-भक्ति से सेवा करता है, वह यदि उसके मरने पर श्राद्ध आदि करता है, तो

वह सर्वथा उपयुक्त एव सगत है। कबीर वस्तुत ऐसे कुल मे उत्पन्न हुए थे जहाँ वेदाध्ययन कोसो नही दिखाई देता है। इसी कारण वह वेदो द्वारा प्रतिपादित धर्म-तत्व का साक्षात्कार नही कर पाए। वह स्थूल रूप के परे पदार्थ के सूक्ष्मरूप का चिन्तन करने का अवसर ही न पा सके थे।

(ii) जीवन • गगा— कबीर के इस कथन पर सम्भवत इस प्रकार की लोकोक्तियो का प्रभाव है—

"मरे बबा की बडी-बडी अखियाँ" अथवा 'जियत बाप से लट्ठमलट्ठा। मरे बाप की सिट्टम सिट्टा।"

(३५७)

बाप रांम सुनि बीनती मेरी,
तुम्ह सूँ प्रगट लोगनि सूँ चोरी ॥टेक॥
पहले क्रांम मुगध मति कीया, ता भैं कपै मेरा जीया ॥
रांम राइ मेरा कह्या सुनीजै, पहले बकसि अब लेखा लीजै ॥
कहै कबीर बाप रांम राया, अबहू सरनि तुम्हारी आया ॥

शब्दार्थ—मुगध मति=मोहित बुद्धि। बकस=क्षमा। लेखा=ब्यौरा, हिसाव।

संदर्भ—कबीर भगवान से अपने कृत्यो के लिए क्षमा याचना करते है।

भावार्थ—हे पिता राम, मेरी प्रार्थना सुन लीजिए। मैं अन्य लोगो से तो अपने अपराधो को छिपाता हूँ, परन्तु तुम्हारे सम्मुख वे प्रकट हैं। पहले काम ने मेरी बुद्धि को मोहित कर रखा था, और मैंने मूर्खता के कार्य किए। इसी कारण आपके सामने आते हुए मेरा हृदय कापता है (मुझे डर लगता है)। हे राजा राम आप मेरी विनती सुन लीजिए। पहले आप मेरे अपराधो को क्षमा कर दें और उसके बाद मेरे द्वारा किए गए कर्मो का हिसाब-किताब लगाइए। अव तो आपकी शरण मे आ गया हूँ।

अलकार—श्लेष—काम मुगधमति।

विशेष—(i) दैन्य की मार्मिक व्यजना है।

(ii) प्रपत्ति एवं शरणागति की सहज भाव से अभिव्यक्ति है।

(iii) 'बाद' मे ग्राम्यत्व वोष है।

(३५८)

अजहूं बीच कैसै दरसन तोरा,
बिन दरसन मन मांनै क्यूं मोरा ॥टेक॥
हमहि कुसेवग क्या तुम्हहि अजांनां, दुह मैं दौस कहौ किन रांमां ॥
तुम्ह कहियत त्रिभवन पति राजा, मन बछित सब पुरवन काजा ॥
कहै कबीर हरि दरस दिखावौ, हम हि बुलावौ कै तुम्ह चलि आवौ ॥

शब्दार्थ— बीच=अन्तर, भेद बुद्धि । अजाना=अपरिचित । पुरवन=पूरा करने वाले ।

सन्दर्भ कबीर भगवान से भक्ति की याचना करते हुए कहते हैं ।

भावार्थ—हे प्रभु ! मेरे और आपके बीच मे अभी भी अन्तर है । अर्थात् मैं और आप एकाकार नही हो पाए हैं । तब आपका दर्शन किस प्रकार हो ? परन्तु आपके दर्शनो के बिना भी मेरा हृदय व्याकुल है । मैं भी कुसेवक हूँ अथवा आप भी अज्ञ हैं—मेरी आन्तरिक भावनाओ से परिचित नही हैं ? दोनो ही मे दोष है, हे राम, यह क्यो नही कहते हो ? तुम्हे तीनो लोको का स्वामी कहा जाता है और तुम मन की समस्त इच्छाओ को पूर्ण करने मे समर्थ हो । कबीरदास कहते हैं कि हे भगवान, आप मुझे अपने दर्शन दें । या तो मुझे अपने पास बुला लें अथवा आप स्वय ही मेरे पास चले आएँ ।

अलंकार—(i) गूढोक्ति—कैसें⋯तोरा ।

(ii) सदेह—कुसेवक क्या तुम्हहि अजाना ।

विशेष—आप या तो मुझमे अद्वैत-भावना जगाकर अपने आप मे मुझे लवलीन करले अथवा ऐसी कृपा करे कि मुझे जीवन और जगत मे सर्वत्र आपकी व्यक्त प्रवृत्ति का सरस आभास प्राप्त होने लगे । प्रकारांतर से भक्ति की याचना है ।

(३५९)

क्यूं लीजै गढ़ बका भाई,
दोवर कोट अरु तेवड़ खाई ।।
कांम किवाड़ दुख सुख दरबांनीं, पाप पुंनि दरवाजा ।
क्रोध प्रधान लोभ बड़ दूंदर, मन मै वासी राजा ।।
स्वाद सनाह टोप ममिता का कुबधि कमांण चढ़ाई ।
त्रिसना तीर रहे तन भीतरि, सुबधि हांथि नहीं आई ।।
प्रेम पलीता सुरति नालि करि, गोला ग्यांन चलाया ।
ब्रह्म अग्नि ले दिया पलीता, एकै चोट ढहाया ।।
सत संतोष ले लरनै लागे, तोरे दस दरवाजा ।
साध संगति अरु गुर की कृपा थै, पकरयौ गढ़ कौ राजा ।।
भगवत भीर सकति सुमिरण की, काटि काल की पासी ।
दास कबीर चढ़े गढ़ ऊपरि, राज दियौ अविनासी ।।

शब्दार्थ—क्यूँ=किस प्रकार । गढ=किला, शरीर । वका=टेढा, दुर्गम कठिन । लीजै=विजय प्राप्त की जाए । दोवर=दोहरा अथवा द्वैत भाव । काठ=परकोटा, दीवाल । दोवर कोट=अन्नमय एव प्राणमय कोप । तेवर=तिहरी । तेवर खाई=तीन खाइयाँ—मनोमय, विज्ञानमय एव आनन्दमय कोप अथवा तीन गुण । दरवानी=पहरेदारी । दूंदर=द्वन्द्व । मैवासी=नायक, किलेदार । सनाह=सन्नाह=कवच । टोप=शिरस्त्राण । भगवत=भागवत कर्म । पासी=पाश ।

सन्दर्भ—कबीर हठयोगी साधना का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—रे भाई, इस कठिन शरीर रूपी किले पर किस प्रकार विजय प्राप्त की जाए? इसको दो दीवालें तीन खाइयाँ घेरे हुए है। दो दीवाल और तीन खाई का अर्थ पच कोष भी हो सकता है ओर "द्वैत भाव एव तीन गुण भी" हो सकता है। इस प्रकार यह पाँच आवरण वाला किला है। इसके काम रूपी किवाड हैं, सुख-दुख ही पहरेदार हैं तथा पाप और पुण्य इसके दरवाजे हैं। क्रोध यहा का प्रधान है और लोभ अपनी तृप्ति के लिए बहुत सघर्ष करता रहता है। मन रूपी नायक ही इस शरीर-रूपी दुर्ग का राजा है। इन्द्रिय-स्वाद ही इस किले के राजा का कवच है। इसने ममता का शिरस्त्राण पहन रखा हे। मन-रूपी राजा ने कुवुद्धि का धनुष चढा रखा है। इसके शरीर रूपी तरकश मे तृष्णा के तीर भर रहे हैं और इस किले मे ढूढने पर भी सुवुद्धि नही मिलती हे। इग दुर्ग को जीतने का उपाय यह है कि सुरति रूपी तोप की नाल मे ईश्वर प्रेम का पलीता से ज्ञानाग्नि लगाकर मैंने आत्म-वोध का गोला चलाया और इस प्रकार 'ब्रह्माग्नि लेकर मैंने इस किले मे पलीता लगाया और एक ही प्रहार से इस किले को ढा दिया (गिरा दिया) सत्य-निष्ठा एव सतोष की सेना को लेकर जब मै लडने लगा, तब मैंने किले के दसो द्वार (नवद्वार शरीर के तथा ब्रह्मरन्ध्र) तोड डाले अर्थात् शारीरिक सीमाएँ समाप्त होकर आत्म-चेतना का विश्व चेतना मे लय हो गया। साधु-सगति और गुरु की कृपा के सहारे मैंने अहकारी दुर्गपति मन को अपने वश मे कर लिया। भागवत कर्मो की भीड तथा नाम स्मरण की शक्ति के द्वारा मैंने काल का बन्धन भी तोड दिया। भगवान के दास कबीर ने इस शरीर-रूपी गढ पर आक्रमण किया और अविनाशी भगवान ने उसको इसका राज्य दे दिया अर्थात् अमर पद प्रदान कर दिया।

अलंकार—(i) रूपकातिशयोक्ति—गढ।

(ii) सागरूपक—सम्पूर्ण पद। शरीर और गढ के रूपक की निर्वाह है।

(iii) छेकानुप्रास की छटा—काम किवाड, पाप पुनि, मर मँवासी, स्वाद सनाह, कुवुधि कमाण। त्रिसिना तीर। प्रेम पलीता, गोला ग्यान, सत सतोष, दस दरवाजा, साध सगति, भगवत भीर, सकति सुमिरण, कटि काल।

विशेष—(i) विषयी जीवन और ज्ञान एव भक्ति साधना का जीवन—दोनो का एक साथ वर्णन किया गया है।

(ii) **काम-किवाड़**—इस शरीर की वृत्तियो एव विपयो के प्रति आकर्पण दोनो ही इच्छा द्वारा नियन्त्रित होते हैं। इसी से 'काम' को किवाड कहा है।

(iii) **दुख-सुख दरबानी**—वृत्तियाँ सुखात्मक एव दुखात्मक होती हैं। सुख-दुख के आदेश से ही वृत्तियो के आने-जाने की कल्पना की गई हे।

(iv) **पाप-पुंनि दरवाजे**—वृत्तियाँ पाप-पुण्य रूप हैं, अतः उनके ये दो दरवाजे हैं।

(v) **क्रोध-प्रधान**—"कामात् सजायते क्रोध," के अनुसार इच्छा की आपूर्ति क्रोध का हेतु है। अधिकाश इच्छाएँ पूरी नही हो पाती है। इसी से क्रोध की प्रधानता कही है।

(vi) **स्वाद सनाह**—जीव इन्द्रियो के स्वाद द्वारा सदैव वशीभूत बना रहता है। फलस्वरूप आत्म-हित की बातो का उस पर कोई प्रभाव नही पडता है। उपदेश के तीर स्वाद के कवच को पार नही कर पाते हैं।

(vii) **रोप-ममता**—मानव का अह राग-द्वेष से इतना घिर जाता है कि उसके मस्तिष्क मे विवेक की बात प्रवेश ही नही कर पाती है। 'अह' व्यक्ति का शिरो भाग है। इसकी रक्षा 'ममत्व' करता है। इसी से 'ममता' रूपी शिरस्त्राण कहा है।

(viii) **एकै चोढ ढहाया**—स्वरूप-स्थिति के कारण देहाध्यास छूट जाता है। यह अध्यास ही शरीर की जड है। अध्यास का नष्ट होना ही शरीर रूपी किले का ढह जाना है।।

(ix) 'नालिकर' के स्थान पर हवाई' पाठान्तर है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने 'हवाई' को ही ठीक माना है। उनका कहना है कि, नाले कबीर के मरणानातर बाबर के साथ आई थी। 'हवाई' गोलो को फेंकने का एक यन्त्र होता था, जिसका उल्लेख इतिहास मे नालो के प्रचलन के पूर्व पयाप्त मात्रा मे मिलता है।"

सुरति—देखें टिप्पणी पद स० १६२।

(३६०)

रैनि गई मति दिन भी जाइ,
भवर उड़े बग बैठे आइ ।।टेक।
कांचै करवै रहै न पानी, हंस उड्या काया कुमिलांनीं ।।
थरहर थरहर कपै जीव, नां जांनू का करिहै पीव ।।
कऊआ उड़ावत मेरी बहियां पिरांनीं, कहै कबीर मेरी कथा सिरानीं ।।

शब्दार्थ—रैनि = रात्रि, युवावस्था। दिन = वृद्धावस्था। बग = बगुला। करवै = मिट्टी का छोटा वर्तन, करुआ। हस = बोध। सिरोनी = समाप्त हुई।

सदर्भ—कबीरदास जीवात्मा रूपी पत्नी की परमात्मा रूपी पति से मिलन से पूर्व की मन स्थिति का वर्णन कर रहे हैं। उसका वर्णन एक ऐसी नवोढ़ा के रूप मे किया गया है जो प्रथम समागम भय के कारण प्रिय-मिलन मे सकोच करती है।

भावार्थ—यौवन रूपी रात्रि तो पति के वास्तविक स्वरूप के अज्ञान मे व्यतीत हो गई। अब परिपक्वावस्था रूपी बुढापा भी कही इसी प्रकार व्यतीत न हो जाए। युवावस्था रूपी रात्रि के प्रतीक काले बालो रूपी भौंरे तो उड गए हैं और वृद्धावस्था रूपी दिन के आगमन की सूचना देने वाले श्वेत केश रूपी बगुले

आ गए हैं। यह शरीर कच्ची मिट्टी के वर्तन (करुए) के समान है। इसमे जीवन रूपी पानी अधिक समय तक नहीं टिक पाता है। बोध रूप हस के निकल जाने पर यह शरीर रूपी कमल कुम्हला कर नष्ट हो जाता है जीवात्मा यह सब कुछ समझती हुई कहती है कि प्रिय समागम मे सम्भाव्य कष्ट की कल्पना करके मेरा मन भय के कारण थर-थर काँपता है कि मिलने पर प्रियतम न मालूम मेरी क्या दुर्दशा करेगा ? परन्तु इतने पर भी मेरा मन प्रियतम के दर्शनो के लिए उत्सुक है। उनके आगमन की प्रतीक्षा मे कौए उडाते-उडाते मेरी बाँहो मे दर्द होने लगा है। परन्तु प्रियतम अभी तक नहीं आए हैं)। कबीरदास कहते है कि इस प्रकार जीवात्मा की कथा समाप्त होती है कि वह परमात्मा से मिलना तो चाहती है, पर न्तु मिलन के लिए साधना करना चाहती है।

अलकार—(i) रूपकातिशयोक्ति—रैनि, दिन, भवर, वग, क·वै, हस।
(ii) पुनरुक्ति प्रकाश—थर थर।
(iii) श्लेष पुष्ठ रूपक—पानी।

विशेष—(i) 'करूवा उडावत'—यह एक लोक प्रचलित परम्परा हे कि नारियाँ कौआ उडा कर अपने प्रियजन के आगमन के शकुन का विचार करती है।

(ii) रहस्यवाद की मार्मिक व्यंजना है।

(iii) सरल रूपको द्वारा हृदय स्पर्शी भाव-व्यजना की गई है। ऐसे पद कबीर के उत्कृष्ट के प्रमाण हैं,

(iv) कामासक्ति के इस भक्ति-पद मे भक्ति-भावना एव लौकिक प्रेम दोनो की रसावस्था की अनुभूति है।

(v) इस पद मे मान्य साधक जीवन के क्रमिक विकास तथा उसके पारस्परिक समन्वय की सुन्दर व्यजना है। इसमे साधना के जीवन का पूरा लोकाखोखा भी है। अभिप्रेत यह है कि साधक प्राय पूरी निष्ठा एव तत्परता के साथ साधना मे रत नहीं होते हैं। वे 'कौवा' ही उडाते रहते हैं और उनका जीवन समाप्त हो जाता है। यदि अतिम पक्ति का यह अर्थ किया जाए कि हे प्रभु ! आप की प्रतीक्षा करते-करते मैं तो थक गई हूँ। अब मैं मरणासन्न हूँ, शीघ्र ही दर्शन दे दो, तब यह कथन एक भक्त का कथन हो जाएगा और इसमे सूफी पद्धति की विरह-व्यजना मानी जाएगी। इस प्रकार इस पद मे हमको ज्ञान, भक्ति और रहस्यवाद तीनो का सुन्दर समन्वय दिखाई देता है।

(३६१)

काहे कूँ भीति बनाऊ टाटी,
का जानूं कहा परिहै माटी ।।टेक।।
काहे कू मदिर महल चिणाऊं, मूवा पीछै घड़ी एक रहण न पाऊ ।।
काहे कू छाऊ ऊंच उंचेरा, साढ़े तीनि हाथ घर मेरा ।।
कहै कबीर नर गरब न कीजै, जेता तन तेती भुइ लीजै ।।

शब्दार्थ—भीत=दीवाल। टाटी=परदा। इंचेरा=ऊँचहरा=ऊँचा घर, छतें।

संदर्भ—कबीर जीवन की क्षणिकता का वर्णन करते हैं।

भावार्थ – मैं दीवार अथवा परदा (ओट) किस लिए बनवाऊँ ? पता नहीं इस शरीर की मिट्टी कहा गिरेगी ? मैं मन्दिर और महल किस लिए बनवाऊँ ? मरने के बाद तो यह शरीर उनमे एक क्षण भी नही रहने पाएगा। ऊँची-ऊँची छतें भी मैं किस लिए डालूँ। मेरा यह शरीर तो केवल साढ़े तीन हाथ लम्बा है। कबीरदास कहते हैं कि मनुष्य को इस शरीर के प्रति अभिमान एव ममता करके व्यर्थ वहुत स्थान घेरने का प्रयत्न नही करना चाहिए, गुजर भर के लिए जितना स्थान पर्याप्त हो, बस उतनी ही जगह लेना चाहिए। (मरने पर तो केवल कब्र मे ही सोना है।)

अलकार – (1) गूढोक्ति—काहे " माटी।

विशेष—(1) 'निर्वेद' की व्यजना है।

(ii) जीवन की क्षणभगुरता की चर्चा द्वारा अपरिग्रह का उपदेश है।

(iii) समभाव देखिए—

कहा चिणावे मेडिया, लॉबी भीति उसारि।
घर तो साडे तीन हाथ, घना त पौनि चारि। (कबीरदास)

[राग बिलावल]

(३६२)

बार बार हरि का गुण गावै,
गुर गमि भेद सहर का पावै ॥टेक।
आदित करै भगति आरंभ, काया मंदिर मनसा थभ ॥
अखंड अहनिसि सुरष्या जाइ, अनहद बेन सहज में पाइ ॥
सोमवार ससि अमृत झरै, चाखत बेगि तप निसतरै।
बाणीं रोक्यां रहै दुवार, मन मतिवाला पीवनहार ॥
मगलवार ल्यौं माहीत, पंच लोक की छाड़ौ रीत।
घर छाड़ै जिनि बाहरि जाइ, नही तर खरौ रिसावै राइ ॥
बुधवार करै बुधि प्रकास, हिरदा कवल मैं हरि का वास।
गुर गमि दोऊ एक समि करै, ऊरध पकज थैं सूधा धरै ॥
ब्रिसपति बिपिया देइ वहाइ, तीनि देव एकै सगि लाइ।
तीनि नदी तहाँ त्रिकुटी माहि, कुसमल धोवै अह निसि न्हाहि ॥
सुक्र सुधा ले इहि ब्रत चढ़ै, अह निसि आप आप सूँ लड़ै।
सुरपी पच राखिये सबै, तौ दूजी द्रिष्टि न पैसे कबै ॥
थावर थिर करि घट मै सोइ, जोति दीवटी मेल्है जोइ।
बाहरि भीतरि भया प्रकास तहाँ भया सकल करम का नास ॥

जब लग घट मै दूजी आंण, तब लग महलिन पावै जांण ।
रमित रांम सूं लागै रग, कहै कबीर ते निर्मल अग ।।

शब्दार्थ—गमि=अगम्य अथवा द्वारा । सहर=पाठान्तर सुहरि, अथवा सहचर=आत्माराम । आदित=आदित्यवार, सूर्यवार-इतवार । मनसा=सकल, प्रेम रूपी सकल्प । थभ =स्तम्भ । अहनिसि=दिन रात । रख्या=रखा जाए । बाइ=वायु । माहीत=लगाओ । पच लोक=पाँच विकार (काम, क्रोध लोभ, मोह मत्सर) । पकज=सहस्रार । कुसमल=कलमष । सुरषी=सुरक्षित, नियत्रित । थवर=स्थावर । थिर=स्थिर । दीवाटि=दीप यष्टि, दीयाधार ।

सदर्भ—कवीर योग-साधना विधि का वर्णन करते हैं । सप्ताह भर के व्रतो का नवीन साधना-परक एव अध्यात्मिक अर्थ दिया गया है ।

भावार्थ—कबीर कहते हैं कि प्रत्येक वार को हरि का गुणगान करना चाहिए । तव गुरु के द्वारा आत्माराम का कठिन रहस्य जाना जा सकता है । रविवार के दिन इस भक्ति-साधना को आरम्भ करो । इसके लिए शरीर रूपी मदिर को भगवद्प्रेम के सकल्प रूपी खम्भे का आधार प्रदान करो । इससे अखण्ड नाम कीर्तन की मधुर स्वरी दिन रात हृदय मे प्रवेश करेगी तथा अनहद नाद की वीणा भी सहज मे ही सुनाई देगी । सोमवार के दिन सहस्रार के चन्द्रमा से अमृत भरता है । उसके चखने मात्र से शरीर की तपन (कष्ट) से शीघ्र ही मुक्ति मिल जाती है । जीभ उलट कर अमृत के इस द्वार को रोक लेती है और इस रस मे मग्न मन इसको पीता रहता है । मगलवार को उस परम तत्व मे मन की लौ लगा दो तथा पाँचों विकारो की रीति छोड दो अर्थात् काम क्रोधादि पच विकारो के वशीभूत होना छोड दो । घर छोड कर वाहर मत जाओ (गृहस्थ के कर्त्तव्यो एव धर्म से विमुख मत बनो) अन्यथा राजा राम वहुत रुष्ट हो जाएँगे ।

बुधवार के दिन बुद्धि मे ज्ञान का प्रकाश करो । हृदय कमल मे भगवान का निवास है । गुरु के द्वारा प्राप्त ज्ञान के द्वारा ज्ञान एव प्रेम को समान भाव से ग्रहण करना चाहिए अथवा इडा-पिंगला को सम करे तथा सहस्रार कमल को उलटे से सीधा कर दे—अधोमुखी ऊर्ध्वमुखी कर देना चाहिए । वृहस्पतिवार को समस्त विषयो को फेंकदे और तीनो देवताओ (त्रिगुण) को एक स्थान पर लगादे—ब्रह्म मे लीन कर दे । त्रिकुटी स्थान की इडा, पिंगला और सुषुम्ना तीन नदियो मे रात दिन अपने कलमषो तथा विषय-राग को धोता रहे । शुक्रवार को साधना का अमृत लेकर यह व्रत धारण कर कि मैं रात-दिन अपने मन की कुवासनाओ से जूझता रहूँगा । इसके साथ पाँचो ज्ञानेन्द्रियो पर पूर्ण नियन्त्रण रखे । तव दूसरी दृष्टि (द्वैत भावना अथवा अन्य साधना के प्रति आसक्ति) व्यक्ति के मन-मानस मे घुसेंगे ही नही । शनिवार को अपना हृदय स्थिर करे तथा अन्त करण मे उसी परम ज्योति को प्रेम एव ज्ञानवृत्तियो के दीयाधार मे रखकर प्रकाशित कर दे । इस ज्योति के द्वारा वाहर-भीतर दोनो ही स्थानो पर प्रकाश होगा और समस्त कर्मफल समाप्त

हो जाएँगे। जब तक अन्त.करण मे द्वैत की भावना है, भेद-बुद्धि है, तब तक शरीर स्थित मन्दिर, जिसमे प्रभु का वास है, का रहस्य प्राप्त नही किया जा सकता है। कबीरदास कहते हैं कि राम मे रमण करते हुए मन पर राम के अनुराग का रंग चढ़ जाता है और अन्तःकरण निर्मल हो जाता है।

अलंकार—(i) पुनरुक्ति प्रकाश—बार बार।
(ii) रूपक – काया थभ। अनहद बेन। हिरदा कवल।
(iii) छेकानुप्रास—गुण गावै, गुर गमि; अखंड अहनिसि; सोमवार ससि। मन मतिवाला।
(iv) वृत्यानुप्रास—रमिता राम रंग।
(vi) रूपकातिशयोक्ति—ससि, दुवार, दोऊ। महलि।
(vii) चपलातिशयोक्ति—चाखत… निसतरै।

विशेष—(i) ये समस्त मान्यताएँ योगियो मे प्रचलित हैं जो अद्यतन किसी न किसी रूप मे कबीर पथियो मे भी मानी जाती हैं।

(ii) जिनि वाहिर जाइ—कबीर संसार छोड़ने की बात नही कहते हैं। उनका तो निश्चित मत था कि अपने कर्त्तव्यो का निर्वाह करते हुए ही सच्ची भक्ति हो सकती है। वह स्वय जुलाहे का व्यवसाय करते थे।

(iii) अनहद बेन—देखें टिप्पणी पद संख्या १५७।
(iv) ससि—देखे टिप्पणी पद स० ४, ७, २१०।
(v) त्रिकुटी—देखें टिप्पणी पद सं० ३, ४।
(vi) त्रिकुटी संगम—देखें टिप्पणी पद सं० ७।
(vii) सहज—देखें टिप्पणी पद स० १५५।
(viii) बाहर भीतर—प्रकाश……वाह्य दृष्टि द्वारा सत्यासत्य का विवेक होता है तथा अन्त दृष्टि द्वारा सत्य की अनुभूति होती है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी लिखा है कि—

राम नाम मणि दीप धरि जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर वाहिरेहु जो चाहसि उजियार।

(३६३)

रांम भजै सो जानिये, जाके आतुर नांहीं।
सत संतोष लीयें रहै, धीरज मन मांहीं॥
जन कौं कांम क्रोध व्यापै नही, त्रिष्णां न जरावै।
प्रफुलित आनंद मै, गोव्यंद गुंण गावै॥
जन कौं पर निंद्या भावै नहीं, अरु असति न भाषै।
काल कलपनां मेटि करि, चरनूं चित राखै॥
जन सम द्रिष्टी सीतल सदा, दुविधा नही आनै।
कहै कवीर ता दास सूं मेरा मन मांनै॥

शब्दार्थ—आतुर=व्याकुलता । जन=भक्त ।

सन्दर्भ—कबीरदास भक्त के लक्षणो का वर्णन करते हैं ।

भावार्थ—राम का भजन करने वाला वही सच्चा भक्त माना जाता है जिसके मन मे प्रभु कृपा के लिए व्याकुलता नही होती है । वह सदैव सत्य और सतोष धारण किए रहता है और वह मन मे धैर्य धारण करता है अर्थात् विपत्ति के समय विचलित नही होता है । भक्त को काम और क्रोध नही सताते हैं और उसको तृष्णा (भोगेच्छा) जलाती (उद्वेलित) नही करती है । वह सदैव आनन्द मग्न रह कर प्रफुल्लित दिखाई देता है और गोबिंद का गुणगान करता रहता है । भक्त को कभी किसी की निंदा करना अच्छा नही लगता है और वह कभी असत्य भाषण नही करता है (कभी झूठ नही बोलता है) । वह काल की कल्पना मिटाकर अनन्त मे निवास करता है ओर भगवान के चरणार्विन्द मे चित्त लगाये रहता है । वह सुख-दुख, हानि-लाभ, जय-पराजय आदि के प्रति समान भाव रखता है और अपने मन को सदैव शात रखता है । उसके मन मे किसी प्रकार का सदेह नही रहता है—वह आश्वस्त रहता है कि प्रभु भक्ति के पथ पर चल कर ही उसका कल्याण सम्भव है । कबीरदास कहते हैं कि इतने लक्षणो से युक्त भक्त के प्रति मेरे हृदय मे प्रेम और श्रद्धा का भाव रहता है ।

अलकार—(i) छेकानुप्रास—सत सतोष, अरु असति चरन् चित ।
(ii) वृत्यानुप्रास—ग्यद गुन गावै । मेरा मन मानै ।
(iii) परिकराकुर की व्यजना—गोव्यद ।

विशेष—(i) काल कल्पना—भूत, और भविष्य की चर्चा काल कल्पना है । सदैव वर्तमान मे निवास करना ही काल-कल्पना को मिटाना है । वर्तमान को क्षुरस्य धारा है । इसमे स्थिर रहना ही काल पर विजय करना है ।

(ii) तुलनात्मक अध्ययन के लिए देखें—

(क) दैवी सपदा प्राप्त पुरुष के लक्षण देखें—

अभयं सत्त्वसंशुद्धि र्जनि योग व्यवस्थित ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ।
अहिंसा सत्यम क्रोधस्त्याग शातिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्व लोलुप्त्वं मारदं हरि खापलम् ।

इत्यादि (श्रीमद्भगवद्गीता—१६।१-४)

तथा—देखें भक्त के लक्षण—

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो ।
श्री रघुनाथ-कृपालु-कृपा तें संत-सुभाव गहौंगो ।
जथा लाभ सतोष सदा, काहू सो कछु न चहौंगो ।
परहित-निरत निरंतर मन क्रम बचन नेम निबहौंगो ।
परुष वचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो ।

बिगत मान, सम सतिल मन, पर गुन नहिं दोष कहौंगो ।
परिहरि देह-जनित चिता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो ।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अविचल हरि भक्ति लहौंगो ।
(गोस्वामी तुलसीदास)

(३६४)

माधौ सो न मिलै जासौ मिलि रहिये,
ता कारनि वर कहु दुख सहिये ।।टेक।।
छत्रधार देखत ढहि जाइ, अधिक गरब थैं खाक मिलाइ ।।
अगम अगोचर लखीं न जाइ, जहाँ का सहज फिर तहाँ समाइ ।।
कहै कबीर झूठे अभिमान सो हम सो तुम्ह एक समान ।।

शब्दार्थ—सो=सः, आत्मा अथवा परमतत्त्व । छत्रधार=छत्रधारण करने वाला राजा । ढरि जाइ=नष्ट हो जाता है ।

सन्दर्भ—कबीरदास जीवन की नश्वरता का वर्णन करते है ।

भावार्थ—हे माधव, वह परम तत्व प्राप्त नही होता है जिससे तदाकार होकर रहना चाहिए, भले ही उसको प्राप्त करने के लिए साधक को बहुत से दुःख सहने पडे । छत्र धारण करने वाले राजा देखते ही देखते नष्ट हो जाते हैं । अधिक अभिमान के कारण व्यक्ति मिट्टी मे मिल जाते है । उस परम तत्व को प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है, वह इन्द्रिय गम्य नहीं है तथा उसको इन स्थूल नेत्रो द्वारा देखा भी नही जा सकता है । उसमे आत्मा का सहज स्वरूप जहाँ का तहाँ समाहित हो जाता है । कबीर कहते है कि बड़प्पन का अभिमान सर्वथा मिथ्या है । हम और तुम सब एक ही तत्व हैं और परस्पर समान हैं ।

विशेष—(i) ससार की नश्वरता का वर्णन है ।
(ii) निर्वेद संचारी की व्यजना है ।
(iii) एकत्व का प्रतिपादन है । व्यक्ति व्यक्ति की समानता तथा जीव और ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन है ।

(३६५)

अहो मेरे गोब्यंद तुम्हारा जोर,
काजी वकिवा हस्ती तोर ।।टक।।
वांधि भुजा भलै करि डारयौ, हस्ती कोपि मूंड मैं मारयौ ।।
भाग्यौ हस्ती चीसां मारी, वा मूरति की मैं वलिहारी ।।
महावत तोकूं मारौं साटी, इसहि मराऊं घालौं काटी ।।
हस्ती न तोरै धरै धियांन, वाकै हिरदै वसै भगवांन ।।
कहा अपराध संत हौ कीन्हां, वांधि पोट कुंजर कूं दीन्हां ।।
कुंजर पोट वहु वदन करै, अजहूं न सूझै काजी अंधरै ।।

तीनि बेर पतियारा लीन्हां, मन कठोर अजहूँ न पतीनां ।।
कहै कबीर हमारै गोब्यंद, चौथे पद ले जन का ज्यद ।।

शब्दार्थ—जोर=शक्ति । हस्तौ=हाथी । साटी=डंडा, कोडा । घालौं=डालता हूँ । पोट=पोटला, गठरी । कुंजर=हाथी । पतीना=विश्वास किया । जिंद=जीव । चौथे पद=सायुज्य मुक्ति ।

संदर्भ—कबीरदास प्रभु की महिमा का वर्णन करते है ।

भावार्थ—अहो मेरे गोविंद भगवान, शक्ति की महिमा अपार है । काजी ने वकवास कि इसे हाथी से मरवा दो । मेरे हाथो को अच्छी तरह बाँध कर हाथी के सामने डाल दिया गया । हाथी ने क्रोध करके सिर पर प्रहार किया । वह चीख मारकर स्वय ही भागा । मैं भगवान के उस स्वरूप की बलिहारी जाता हूँ जिसने हाथी को ऐसी प्रेरणा प्रदान की । काजी ने कहा, रे महावस, मैं तुमको कोडे लगवा दूँगा और इस हाथी को मरवा दूँगा तथा कटवा डालूँगा । परन्तु हाथी ने मुझको नही मारा । वह भगवान का ध्यान धारण किए हुए था । उसके हृदय मे तो भगवान बसे हुए थे ।" कबीर बोचते हैं कि सत कबीर ने क्या अपराध किया था, उसकी पोटली बनाकर उसे हाथी के समक्ष डाल दिया गया । भगवान ने हाथी को ज्ञान प्रदान किया । वह उठ गठरी (शरीर के बधे हुए शरीर) को वार-बार प्रणाम करने लगा, परन्तु उस मूर्ख काजी की समझ मे अभी भी नही आया । उसने इसी प्रकार तीन बार हाथी को आज माया, परन्तु उस निष्ठुर हृरय (जड हृदय) वाले काजी के मम मे फिर भी भगवान के प्रति विश्वास जाग्रत नही हुआ । कबीर कहते हैं कि हे मेरे गीविंद स्वामी इस भक्त जीव को चौथे पद (सायुज्य मुक्ति) कर लीजिए ।

विशेष—इस पद द्वारा उस जनश्रति की पुष्टि होती है जिसके अनुसार लोदी ने कबीर को हाथी मे पैर के नीचे डलवा दिया था ।

इस पद मे कबीर ने प्रभू की महिमा का वर्णन सगुण भक्तों की पद्धति पर किया है । यथा—

अब कै राखि लेउ भगवान ।
हौं अनाथ बैठ्यो द्रुम-डटियां, पारधि साधेवान ।
ताके डट मे भाज्यौ चाहत, ऊपर दुक्यो समान ।
दुहूं भाँति दुख भयो आवि यह, कौन उवारै प्रान ?
सुमिरत ही अहि डस्यो पारधी, कर छूट्यी संधान ।
सूरदास, सर लग्यो सचानहि, जय-जय कृपानिधान । (सूरदास)

(३६६)

कुसल खेम करु सलामति, ए दोह काकौं दीन्हां रे ।
आवत जांत दुहंघा लूटे, सर्व तत हरि लीन्हां रे ।। टेक ।।

माया मोह मद मैं पीया, मुगध कहै यहु मेरी रे।
दिवस चारि भले मन रजै, यहु नाही किस केरी रे ।।
सुर नर मुनि जन पीर अवलिया, मीरां पैदा कींन्हां रे।
कोटिक भये कहां लूं बरनूं सबनि पयानां दींन्हां रे ।।
धरती पवन अकास जाइगा, चद जाइगा सूरा रे।
हम नांहीं तुम्ह नांहीं रे भाई, रहे रांम भरपूरा रे ।।
कुसलहि कुसल करत जग खींना, पड़े काल भौ पासी।
कहै कबीर सबै जग बिनस्या, रहे रांम अबिनासी ।।

शब्दार्थ— खेम=क्षेम। सही सलामत=पूर्ण सुख-सुविधा। दहू धा=दोनो समय। सुब=सव। मुगध=मूर्ख। अवलिया=औलिया, पहुँचा हुआ मुसलमान फकीर, सिद्ध पुरुष। पीर=मुसलमानो का धर्म गुरु। मीरा=श्रेष्ठजन। पयाना=प्रयाण। खीना=क्षीण हुआ है। पासी=फाँसी। विनस्या=नष्ट हो गया।

सन्दर्भ—कबीर संसार की निस्सारता का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—कुशल-क्षेत्र और पूर्ण सुख-सुविधापूर्वक रहना ये दोनो बातें एक साथ ससार मे किसी को प्राप्त नही होती हैं अर्थात् इस ससार मे आते समय और जाते समय दोनो ही अवसरो पर हम लूटे जाते हैं और यहाँ हमारा समस्त तत्व हरण कर लिया जाता है अर्थात् इस जीवन मे हम अपने शुद्ध चैतन्य स्वरूप को सर्वथा भूल जाते हैं। यह जीव माया-मोह की शराब पिये रहता है और फिर वह मूर्ख यह कहता है कि यह सब सम्पत्ति मेरी है। मानव चार दिन के लिये भले ही अपना मन वहला ले, किन्तु यह माया (सांसारिक सम्पत्ति) किसी की नहीं है। देवता, मनुष्य, मुनि, भक्त, धर्मगुरु, सिद्ध महात्मा, श्रेष्ठजन आदि अनेक प्रकार के व्यक्ति भगवान ने उत्पन्न किए हैं। इस प्रकार के करोडो पैदा हुए, उनका वर्णन कहाँ तक करूँ ? परन्तु सव के सब इस ससार से प्रस्थान कर गये। पृथ्वी, वायु, आकाश, सूर्य और चन्द्र सभी नष्ट हो जाएंगे सभी नश्वर है। न हम रहेगे न तुम रहोगे और न हमारे भाई-वन्धु रहेगे। केवल एक राम ही रहेगे, वे ही सर्वत्र व्याप्त हैं। कुशलता का उपक्रम करता ही करता यह संसार नष्ट होता है और मृत्यु के वन्धन मे पडता है। कवीर कहते हैं कि सारा जगत विनष्ट हो जाता है। (नाशवान है) केवल अविनाशी राम ही रह जाते हैं (केवल राम ही अविनाशी हैं)।

अलंकार—(i) वक्रोक्ति—ए दोइ ·· रे।
(ii) वृत्यानुप्रास—माया मोह मद मुगध।
(iii) रूपक—माया मोह मद, काल पासी।
(iv) सभग पद यमक—कुसलहि कुसल।

विशेष—(i) ससार की असारता के वर्णन द्वारा वैराग्य का प्रतिपादन है।
(ii) 'निर्वेद' संचारी की व्यंजना है।

(iii) कुशल........दीन्हा रे। वैभव लेकर भी व्यक्ति कुशल-पूर्वक बना रहे—यह नहीं होने का। देखिए—

दुइ कि होइ एक समय भुआला। हँसब ठठाइ फुलाइब गाला।
दानि कहाइब अरु कृपनाई। होइ कि खेम कुशल रौताई।
(गोस्वामी तुलसीदास)

(iv) दिवस .....रे....कहावत प्रचलित है—"चार दिनाँ की चाँदनी फेरि अधेरी रात।"

(v) सबहि पयानां कीन्हा रे—समभाव की अभिव्यक्ति देखे—

हाय दई ! यह काल के ख्याल में फूल से भूलि सबै कुम्हलाने।
देव-अदेव कली- बलहीन चले गये मोहि की हौंस हिलाने।
यो जग बीच बचे नहिं मीच पै, जे उपजे ते मही में मिलाने।
रूप-कुरूप-गुनी-निगुनी जे जहाँ जनमे ते तहाँ ही बिलाने। (देव)

(३६७)

मन बनजारा जागि न सोई,
लाहे कारनि मूल न खोई ।।टेक।।
लाहा देखि कहा गरबांना, गरब न कीज मूरिख अयांनां ।।
जिन धन सच्या सो पछितांनां, साथी चलि गये हम भी जांनां ।।
निसि अधियारी जागहु बदे, छिटकन लागे सबही संधे ।।
किसका बंधू किसकी जोई, चल्या अकेला सगि न कोई ।।
ढरि गए मंदिर टूटे बंसा, सूके सरवर उड़ि गये हंसा ।।
पंच पदारथ भरिहै खेहा, जरि बरि जायगी कंचन देहा ।।
कहत कबीर सुनहु रे लोई, रांमनांम बिन और न कोई ।।

शब्दार्थ— बनजारा=व्यापार करने वाला, बनिज, व्यापारी। लाहे=लाभ छिटकन=बिछुडना। सधे=सगी साथी। जोई=योगिता, स्त्री बसा=वंश। पंच पदारथ=पच महाभूत। खेहा=मिट्टी। लोई=लोगो अथवा कबीर की शिष्या पत्नी।

संदर्भ—कबीरदास ससार की निस्सारता का प्रतिपादन करते हैं।

भावार्थ—रे मन रूपी व्यापारी, तू जग जा। सो मत। लाभ के फेर मे तू अपनी गाँठ की पूँजी मत गँवावे। अभिप्रेत यह है कि तुम अज्ञान वश सासारिक सुख-सुविधा को प्राप्त करने मे लगे हुए हो। ये सुख तो मिथ्या हैं और इनके चक्कर मे तुम अपने आत्मा के मूल तत्व आनन्द-स्वरूप को व्यर्थ ही नष्ट कर रहे हो। तुम वस्तु स्थिति को समझ कर इस चक्कर से निकल आओ। सांसारिक सुखो को प्राप्त करके तुम्हे क्यों अभिमान हो गया है ? हे अज्ञानी मूर्ख तू इन सासारिक सुखो पर अभिमान मत करो। जिन लोगो ने धन का सचय किया, वे सब पछताए। हमारे सब साथी मृत्यु के ग्रास होकर इस ससार से चले गये हैं।

हमको भी एक दिन जाना ही है। हे मानव ! यह जीवन अंधेरी रात्रि के समान है। तू जग जा। तेरी समस्त सगी साथी तुझसे बिछुडने लगे हैं। इस जगत मे कौन किसका भाई है और कौन किसकी स्त्री है ? जीव को अकेले ही जाना पडता है। कोई किसी के साथ नही जाता है। सारे महल गिर कर नष्ट हो गये, इनमे रहने वाले परिवार समाप्त हो गये, तालाब सूख गये और उन पर रहने वाले हस भी उड गये सासारिक वैभव का प्रतीक पच महाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और प्रकाश) से निर्मित यह शरीर मिट्टी मे मिल जाता है और सोने की भी देह जल कर भस्म हो जाती है। कबीर कहते हैं कि रे लोगो, सुनलो। राम-नाम के अतिरिक्त यहाँ अन्य कोई सहारा नही है।

अलंकार— (i) रूपक—मन बनजारा।
(ii) गूढोक्ति—कहा गरबाना।
(iii) निदर्शना की व्यजना—निसि सवे।
(iv) वक्रोक्ति—किसका····जोई।

विशेष—(i) लक्षणा—पच पदारथ।
(ii) जीवन और जगत की असारता का प्रतिपादन है।
(iii) 'निर्वेद' संचारी की व्यजनहै। ।

(३६८)

मन पतंग चेते नहीं जल अंजुरी समांन।
बिषिया लागि विगूचिये, दाझिये निदांन ।।टेक।।
काहे नैन अनदियै, सूझत नहीं आगि।
जनम अमोलिक खोइयै, सांपनि संगि लागि ।।
कहै कबीर चित चंचला, गुर गांन कह्यौ समझाइ।
भगति हीन न जरई जरै, भावै तहां जाइ ।।

शब्दार्थ—अँजरी=अजुली। विगूचिक=बर्बाद करता है। दाझिये=जल जाएगा। निदान=अन्ततः।

संदर्भ—कबीर माया ग्रस्त जीव को सावधान करते हैं।

भावार्थ—यह मन—रूपी पतंगा चेतता नही है और माया-रूपी दीपक पर प्राण देता है। वह इस बात को नही समझता है कि जीवन अंजलि-बद्ध जल के समान क्षणिक अस्तित्व वाला है। यह मन विषयो मे आसक्त होकर नष्ट हो रहा है। अन्तत इसको जलना ही है। तू संसार की चीजो को नेत्रो से देख कर क्यो आनन्दित होता है ? तुमको वासनाग्नि (देखने की आसक्ति मे निहित सताप)—क्यो नही दिखाई देती है ? वासना-रूपी सापिन के साथ लगा कर तूने अपने बहुमूल्य जीवन को व्यर्थ ही बर्बाद कर दिया। कबीर कहते हैं कि यह चित्त तो बिजली के समान चचल है। यह बात मुझको गुरु ने समझाकर बताई है। भक्तिहीन तो निश्चय ही ससार मे विषयाग्नि मे जलता है, क्योकि वह बिना सोचे विचारे विषयो

के वशीभूत होकर चाहे जहाँ चला जाता है वह गम्य अगम्य प्रत्येक स्थल पर चला जाता है।

अलंकार– (i) रूपक—मन पतग, चित चचला।
(ii) उपमा=जल अजुरी समान,
(iii) रूपकातिशयोक्ति—आगि, सापनि।

विशेष—'निर्वेद' सचारी की व्यजना।

(३६९)

स्वादि पतंग जरै जर जाइ,
अनहद सौं मेरौ चित्त न रहाइ ।।टेक ।।
माया के मदि चेति न देख्या, दुबिध्या मांहि एक नहीं पेख्यां ।।
भेष अनेक किया बहु कीन्हां, अकल पुरिष एक नहीं चीन्हां ।।
केते एक मूये मरहिगे केते, केतेक मुगध अजहू नहीं चेते ।।
तंत मंत सब ओषद माया, केवल राम कबीर दिढाया ।।

शब्दार्थ—मदि=मद, नशा। पेख्या=देखा। अकल=अखडित। मुगध=मूर्ख। दिढाया=दृढ किया।

सन्दर्भ—कबीर का कहना है कि अज्ञान के वशीभूत जीव विषयासक्ति मे नष्ट हो रहे हैं।

भावार्थ—विषयासक्त मेरा मन रूपी पतंग अनवरत रूप से विषयाग्नि मे जलता है। अनहद नाद मे मेरा चित्त नही लगता है—अर्थात् मेरा मन विषयो से पराङ्मुख होकर अन्तर्मुखी नही होता है। माया के मद से छुटकारा पाकर मैंने असली तत्त्व को नही समझ पाया है। ज्ञान जनित द्विविधा एव द्वैत-भावना मे पड कर मैं सर्वव्यापी एक (परम) तत्त्व का साक्षात्कार नही कर पाया। मैंने विषयासक्ति के वशीभूत होने के फलस्वरूप अनेकानेक जन्म धारण किए, परन्तु मैं उस एक अखण्ड अविनाशी परमपुरुष परमात्मा को नही देख पाया। इस ससार चक्र मे कितने ही मर गये और न मालूम कितने और मरेंगे, इतना सब कुछ देख कर भी कितने ही मूर्ख अब भी होश मे नही आ रहे हैं। तन्त्र-मन्त्र औषधि आदि सभी माया (धोखा अथवा नश्वर) हैं। इसी से मैंने अपने उद्धार के लिए अपना मत केवल राम की भक्ति मे दृढता पूर्वक लगा दिया है।

अलंकार—(i) रूपक—स्वादि पतंग।
(ii) वृत्यानुप्रास—जरै जरि जाइ,।
(iii) गूढोक्ति—मरहिगे केते।

विशेष— (ii) अनहद·····देखें टिप्पणी पद स० १६४।
(ii) विषयों से विरक्त होने से ही कल्याण सम्भव है।

(३७०)

एक सुहागनि जगत पियारी,
सकल जीव जंत की नारी ।।टेक।।
खसम मरै वा नारि न रोवै, उस रखवाला औरै होवै ।।
रखवाले का होइ विनास, उतहि नरक इक भोग विलास ।।
सुहागनि गलि सोहै हार, सतनि विख बिलसै संसार ।।
पीछै लागी फिरै पचिहारी, संत की ठठकी फिरै बिचारी ।।
संत भजै वा पाछी पड़ै, गुर के सबदं मारयौ डरै ।।
साषत कै यहु प्यंड परांइनि, हमारी द्रिष्टि परै जैसै डांइनि ।।
अब हम इसका पाया भेद, होइ कृपाल मिले गुरदेव ।।
कहै कबीर इब बाहरि परी, ससारी कै अचल टिरी ।।

शब्दार्थ—सुहागनि नारी=माया रूपी सुन्दरी नारी। खसम=पति। बिलसै=भोगता है। पचिहारी=पक जाता है। ठिठकी=डरी हुई। साषत=शाक्त। प्यड पराइनि=शरीर द्वारा वह इसके परायण है, वह नारी है जिसके द्वारा शाक्त वामाचार की साधना करता है।

सन्दर्भ—कबीरदास माया के सर्वव्यापी अहितकारी प्रभाव का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—माया रूपी एक सुन्दरी नारी है, जो जगत की प्यारी है। वह सम्पूर्ण जीव-जन्तुओ की प्रेयसी है। जब उसका पति मर जाता है तो वह उसके लिए रोती नही है। उसका रखवाला कोई दूसरा बन जाता है। इसके रखवाले का नाश हो जाता है। उसे इस लोक मे जाकर नरक भोगना पडता है, चाहे यहाँ वह भोग-विलास ही करता हो। इस सुहागिन के गले मे सुन्दर एव आकर्षक वासना-रूपी हार सुशोभित होता है। यह सतो के लिए विष-तुल्य है, परन्तु ससार के प्राणी इसको भोगते है। यह सतो के पीछे लगी फिरती है, परन्तु उनको मोहित करने के प्रयत्न मे यह हार जाती है। यह बेचारी माया सतो के डर से ठिठकी हुई उधर-इधर भागती फिरती है। सत लोग इससे दूर भागते है और यह उनके पीछे पड़ी रहती है। गुरु के उपदेश द्वारा माटी हुई यह माया संतो से डरती है। शाक्त को यह अत्यन्त प्रिय होती है, (शाक्त के लिए तो माया वह नारी है जिसके माध्यम से वह वामाचार की साधना करता है। इसी से कबीर कहते हैं कि शाक्त के यहाँ इसका परायण होने वाला पिंड है।) परन्तु भक्तो की दृष्टि मे वह पूर्ण चुड़ैल है। जब कृपालु गुरुदेव से मेरा साक्षात्कार हुआ तब इस माया सुन्दरी का रहस्य मेरी समझ मे आया। कबीर कहते है कि यह माया मुझसे तो बाहर दूर पडी हुई है अर्थात मुझे तो यह स्पर्श भी नही कर सकती है। यह विषयी व्यक्तियो के साथ इसका स्थायी सम्बन्ध रहता है अथवा विषयी व्यक्ति के पास से टाले नहीं टलती है।

अलंकार—(i) साग रूपक' ' पूरा पद।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—सुहागिन।
(iii) उपमा—विष (के समान)। जैसे डाइनि।
(iv) विशेपोक्ति की व्यजना—खसम मरै वा नारि न रोवै।

विशेष—(i) शाक्त के प्रति विरोध प्रकट है।
(ii) वाहिर टरी—पिटी। ठीक ही है—

भागती फिरती थी दुनियाँ जव तलव करते थे हम।
अव जो नफरत हमने की, वह खुद-वखुद आने को है।

(३७१)

परोसनि मांगै कंत हमारा,
पीव क्यू बौरी मिलहि उधारा ॥टेक॥
मासा मांगै रती न देऊ, घटे मेरा प्रेम तौ कासनि लेऊं॥
राखि परोसनि लरिका मोरा, जे कछु पाऊं सु आधा तोरा॥
बन बन ढूढौं नैन भरि जोऊं, पीव मिलै तौ विलखि करि रोऊं॥
कहै कबीर यहु सहज हमारा, बिरली सुहागनि कंत पियारा॥

शब्दार्थ—परोसनि=अन्य सासारिक आत्मा, माया। कत=पति, परमात्मा। वौरी=पागल। कासनि=किससे। पुत्र=विवेक।

सन्दर्भ—कबीर का कहना है कि राम के प्रति सच्चा अनुराग किसी किसी को ही होता है। वह भक्त ज्ञानी एव साधक जीवात्मा के रूप मे अपनी सहजानुभूति को व्यक्त करते हैं।

भावार्थ—माया रूपी हे पडौसनि, तुम मुझसे मेरा परमात्मा रूपी पति माँग रही हो? पर, हे पगली, पति कही उधार मिलता है? (परमात्मा की प्राप्ति स्यय साधना करने पर होती है। सिद्धि उधार अथवा किराए पर मिलने वाली वस्तु नही है।) तुम माशा भर माँगो, मैं रत्ती भर भी नही दूंगी। यदि उधार देने के कारण अथवा यो ही दे देने के कारण, परमात्मा के प्रति मेरे प्रेम मे भी कमी आ गई है, तो फिर उसकी पूर्ति मैं कहाँ से करूँगी? हे मेरी आत्मा रूपी पडौसिन, तू मेरे कर्म-वन्धन रूप पुत्र की रखवाली कर। ऐसा करने पर परमेश्वर रूपी पति से मुझे जो आनन्द-भक्ति की प्राप्ति होगी, उसमे से आधा तुझको दे दूँगी। मैं वन-वन अर्थात् विभिन्न साधनाओं मे अपने पति को ढूढ रही हूँ और नेत्रों की शक्ति भर उसको चारो ओर देखती फिरती हूँ और प्रियतम के दर्शन होने पर प्रेमातिरेक के कारण फूट फूट कर रोती हूँ। कबीर कहते हैं कि अपने परमात्मा रूपी पति से प्रेम करना जीवात्मा रूपी पत्नी का सहज स्वभाव है। परन्तु फिर भी विरली आत्मा रूपी सौभाग्यवती नारी को अपने परमात्मा रूपी पति से वास्तविक प्रेम होता है।

अलंकार—(i) साग रूपक·······सौभाग्यवती नारी एवं जीवात्मा के रूपक का निर्वाह है।
(ii) वक्रोक्ति—पीव·······उधारा।
(iii) गूढोक्ति—कासनि लेऊं।
(iv) पुनरुक्ति प्रकाश—बन बन।
(v) विरोधाभास की व्यंजना—पीव मिलै·······रोऊँ।

विशेष—(i) प्रतीको का प्रयोग है—परौसनि, कंत, लरिका, सुहागिन।

(ii) सूफी शैली के दाम्पत्य प्रेम का वर्णन है।

(iii) इस पद मे कबीर भक्ति-क्षेत्र का अतिक्रमण करके प्रेम के क्षेत्र मे चले जाते हैं। अतएव रहस्यवाद की मार्मिक व्यंजना दिखाई देती है। प्रेमी प्रिय पर एकाधिकार चाहता है। प्रेम का क्षेत्र एकान्त होता है। कबीर की जीवात्मा भी यही चाहती है कि प्रिय के ऊपर मेरा एकाधिकार रहे। प्रिय पर पूर्ण स्वत्व स्थापित करने की मन स्थिति का मार्मिक शब्दो मे उद्घाटन किया गया है।

(iv) पीव क्यूं—उधारा। लौकिक दृष्टि से अर्थ करने पर यह कथन, उन लोगो पर एक प्रकार का व्यग्य करता है, जो दान दक्षिणा लेकर दूसरो के नाम भजन-पूजन, मत्र-जाप आदि करते है। ठीक ही है—बिना मरे, स्वर्ग के दर्शन नही होते हैं।"

(v) माशा—१ तोले का १२ वा भाग।

(vi) रत्ती—१ माशे का ८ वाँ भाग।

(vii) माशा माँगना और रत्ती न देना—लोकोक्ति है। यहाँ अर्थ इस प्रकार होगा—माया का यह प्रयत्न करना कि जीवात्मा परमात्मा से बहुत दूर तक पृथक रहे तथा जीवात्मा का यह सकल्प कि वह क्षण भर के लिए भी उनसे विलग नही होगी।

पड़ौसिन—माया के साथ जीव का साहचर्य है, परन्तु माया पराई है—जीव की नही। जीव के साथ माया का सम्बन्ध केवल अज्ञान के कारण है—वह सम्बन्ध पारमार्थिक एव सच्चा सम्बन्ध नही है। इसी से वह पडौसिन है।

(ix) लरिका—कर्म जीवात्मा के प्रयास से उत्पन्न होता है। इसी से वह जीवात्मा का लडका है। भक्ति के परिपाक के लिए सासारिक कर्म का त्याग आवश्यक है। वह माया ही को सौपे जा सकते हैं।

(x) जे कछु··· ·· तोरा—चैतन्य स्वरूप आतमा और माया का सम्बन्ध मुधा होते हुए भी शाश्वत हैं। भक्ति के उल्लास आदि वृत्यात्मक अनुभूति का सम्बन्ध अन्त·करण (माया) और चैतन्य (आत्मा) दोनो के साथ रहता है। इसी से आधा तोरा' (माया का) कहा गया है।

(३७२)

रांम चरन जाकै रिदै वसत है, ता जन कौ मन क्यूं डोलै॥
मानौं आठ सिध्य नव निधि ताकै, हरषि हरषि जस बोलै॥टेक॥

जहाँ जहाँ जाइ तहां सच पावै, माया ताहि न झोलै ।
बारंबार बरजि विषिया तैं, लै नर जौ मन तौल ।।
ऐसी जे उपजै या जीय कैं, कुटिल गांठि सब खोलै ।
कहै कबीर जब मन परचौ भयौ, रहै रांम कै बोलै ।।

शब्दार्थ—डोलैं = विचलित हो । सच = सुख । झोलैं = जलाती है । सताती है । तोलै = सयमित करता है । रहै = आचरण करता है । बोलैं = आदेशानुसार ।

सन्दर्भ— कबीर कहते हैं कि सच्चा भक्त वही है जो राम के आदेशानुसार आचरण करे ।

भावार्थ—जिसका हृदय भगवान के चरणो मे लगा हुआ है, उसका मन चचल नही होता है । उसे तो आठो सिद्धियाँ और नवो निधियाँ सहज ही प्राप्त हो जाती हैं और वह व्यक्ति हर्षित हो-हो कर प्रभु का गुणगान करता है । वह जहाँ भी जाता है । वहाँ अमित सुख-शाति का लाभ प्राप्त करता है । माया उसको सता नही पाती है । जिस व्यक्ति के हृदय मे ऐसी श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न हो जाती है कि वह विषयों से अपने मन को बारम्बार विमुख करके जो अपने मन को नियन्त्रित करके प्रभु भक्ति मे लगा देता है, वह माया जन्य समस्त जटिल गुत्थियो को सहज ही सुलझाने मे समर्थ होता है । कबीर कहते हैं कि जब इस प्रभु-प्रेम से मन का परिचय हो जाता है, तब वह राम के आदेशानुसार ही आचरण करता है ।

अलंकार—(i) पुनरुक्ति प्रकाश—जहाँ जहाँ ।
(ii) अनुप्रास—बारबार बरजि विषया ।

विशेष—(i) ससार से विमुख होकर प्रभु के नाम पर समस्त कार्य करना, स्वार्थ त्याग कर पारमार्थिक व्यवहार करना ही राम के आदेशानुसार आचरण करना है । गोस्वामी तुलसीदास ने भी 'विनय पत्रिका' मे कहा है कि—

तुम अपनायो तब जानिहो जब मन फिरि परिहै ।
जेहि स्वभाव विषयनि लग्यो तेहि सहज नाथ सों नेह छाँड़ि छल करि है ।

(ii) आठ सिद्धि, नव निधि—देखें टिप्पणी पद स० १२३ ।

(iii) जब भक्त का मन पूर्णत: सयमित हो जाता है तभी भक्ति एवं प्रेम दृढ होते हैं । सच्चे भक्त का यही लक्षण है ।

(iv) कबीर के राम दशरथि सगुण राम नही है । निराकार निर्गुण ब्रह्म हैं । वह पुकार कर कह चुके हैं—

दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना । राम-नाम का मरम न जाना ।

(३७३)

जंगल मै का सोवनां, औघट है घाटा ।।
स्यंघ बाघ गज प्रजलै, अरु लबी बाटा ।।टेक।।
निस बासुरि पेड़ा पड़ै, जमदांनी लूटै ।
सूर धीर साचै मतै, सोई जन छूटै ।।

चालि चालि मन माहरा, पुर पटण गहिये ।
मिलिये त्रिभुवन नाथ सू , निरभै होइ रहिये ।।
अमर नहीं संसार मै, बिनसै नर देही ।
कहै कबीर बेसास सूं, भजि रांम सनेही ।।

शब्दार्थ—औघट=अवघट, दुर्गम । प्रजलै=सताते हैं । पेडा पडै=डकैती पडती है । जमदानी=यमराज की सेना । माहरा=कुशल । बेसास = विश्वास ।

सन्दर्भ—कबीरदास कहते है कि जीवन रूपी जगल को पार करने के लिए राम-नाम ही एकमात्र अवलम्बन है ।

भावार्थ—साधनाहीन जीवन व्यतीत करना इतना ही कठिन एवं भयप्रद है जितना किसी बीहड स्थान पर रात्रि व्यतीत करना अथवा किसी दुर्गम घाट पर किसी नदी मे स्नान करना । इस जीवन के जगल मे हिंसा, विषय-लोलुपता एव अहकार रूपी सिह, बाघ और हाथी घूमते रहते हैं । साथ ही यह जीवन मार्ग बहुत लम्बा भी है । इस जीवन के जगल मे कामादिक द्वारा रात दिन डकैती पडती रहती है (विषय विकार प्रतिक्षण हमारे चैतन्य स्वरूप को तिरोहित करते रहते हैं । यहाँ यमराज की सेना हमारी आयु-रूपी सम्पत्ति को सदैव क्षीण करती रहती है । जो शूरवीर धैर्यवान एव सत्यनिष्ठ हैं, वे ही इस लूट मार से बच पाते हैं । अतः हे कुशल मन, तू साधना के मार्ग पर निरन्तर अग्रसर होता रहे और ज्ञान-भक्ति के नगर मे पहुँच जा । वहाँ त्रिभुवन नाथ से मिलेंगे और संसार के भयो से मुक्त होकर रहेगे । इस ससार मे कोई भी सदैव नही बना रहा है—संसार का प्रत्येक प्राणी एव पदार्थ नश्वर है । यह मानव शरीर नष्ट होता ही है । कबीर कहते हैं कि इस कारण विश्वास पूर्वक सबसे प्रेम करने वाले राम का भजन करते रहो ।

अलंकार—(1) साग रूपक—जीवन माया और जंगल की माया का रूपक बांधा है ।
(11) पुनरुक्ति प्रकाश·· · ···चालि चालि ।

विशेष—(1) प्रतीको का सफल प्रयोग है । जंगल, सिह, वाघ, गज
(11) ससार के प्रति विरक्ति का प्रतिपादन है ।

राग ललित

(३७४)

राम ऐसो ही जांनि जपौ नरहरी,
माधव मदसूदन वनवारी ।।टेक।।
अनदिन ग्यान कथै घरियार, धूवां धौलह रहै संसार ।।
जैसे नदी नाव करि संग, ऐसै ही मात पिता सुत अग ।।
सबहि नल दुल मलफ लकीर, जल बुदबुदा ऐसो आहि सरीर ।।
जिभ्या रांम नांम अभ्यास, कहौ कबीर तजि गरभ बास ।।

शब्दार्थ—जानि=जानकर। घड़ियाल=बडा घटा। धौलहर=महल।

सन्दर्भ—कबीर कहते हैं कि आवागमन से मुक्ति के लिए राम-नाम का भजन करो।

भावार्थ—नृसिंह, माधव, मधुसूदन, वनवारी आदि राम ही है, ऐसा समझ कर तुम राम का भजन करो। (विभिन्न अवतार उस एक परम तत्त्व के ही अभिव्यक्त रूप हैं।) बजने वाला घटा अर्थात् प्रति पल व्यतीत होता हुआ समय प्रतिदिन यही ज्ञान देता है कि यह ससार धुँए के महल के समान मिथ्या एवं नश्वर है। जैसे नदी नाव का सयोग क्षणिक होता है, उसी प्रकार माता, पिता एवं पुत्र का संयोग आकस्मिक एव क्षणिक है। ये सारे सम्वन्ध उसी प्रकार मिथ्या, नीरस एव भ्रम हैं जिस प्रकार तोते के लिए सेमर का फल। यह ससार जल के वुलवुले के समान क्षणिक एव नश्वर है। कवीरदास कहते है कि जीभ से राम-नाम कहने का अभ्यास वनाए रखो जिससे गर्भ-वास (पुनर्जन्म) से मुक्ति प्राप्त हो सके।

अलंकार—(i) उल्लेख एक ही तत्त्व का विभिन्न नामो का वर्णन है।

(ii) उपमा—धुवा जल बुदवुदा ऐसो।

(iii) रूपक धूवा ससार।

(iv) उदाहरण—जैसे अग।

विशेष—(i) ससार की नश्वरता एव निस्सारता का प्रतिपादन है।

(ii) निर्वेद सचारी की व्यजना है।

(iii) ग्यान कथै गरिघार—लक्षण और मानवीकरण है।

(iv) सम्पूर्ण देवताओ मे वही एक परमतत्त्व व्याप्त है। यह अभेद बुद्धि ही भारतीय दृष्टि की विशेपता है। कबीर ने उपासना के क्षेत्र मे इसी भारतीय पद्धति को अपनाया है।

विभिन्न पौराणिक अवतारो के नामो का वर्णन यह प्रकट करता है कि कबीर के ऊपर जन-मानस को मान्य पौराणिक सस्कृति का व्यापक प्रभाव था।

(vi) धूवा धौलह है ससार—समभाव के लिए देखें—

राम जपु, राम जपु, राम जपु, वावरे।
जग नभ वाटिका रही है फलि फूलि रे।
धुवाँ कैसे धौरहर देखि तू न भूलि रे।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(vii) नल दुल मलफ लकीर—पाठ अस्पष्ट है। हमने इस पक्ति का अर्थ डा० माताप्रसाद गुप्त तथा डा० भगवतस्वरूप मिश्र द्वारा किए अर्थों के आधार पर लिख दिया है।

(३७५)

रसनां रांम गुन रमि रस पीजै,
गुन अतीत निरमोलिक लीजै ॥ टेक ॥

निरगुण ब्रह्मकथौ रे भाई, जा सुमरित सुधि बुधि मति पाई ।।
बिष तजि रांम न जपसि अभागे, का बूड़े लालच के लागे ।।
ते सब तिरे राम रस स्वादी, कहै कबीर मेड़े बकबादी ।।

शब्दार्थ – निरमोलिक=अमूल्य । बकवादी=ज्ञान वघारने वाले ।

सन्दर्भ—कबीर निर्गुण राम की भक्ति का उपदेश देते हैं ।

भावार्थ—हे जिह्वा ! तू राम के गुणो मे तन्मय होकर भक्ति के आनन्द को प्राप्त करो । रे भाई, निर्गुण ब्रह्म का गुणगान करो जिसका स्मरण करने से सदवुद्धि, ज्ञान तथा विवेक की प्राप्ति होती है । रे अभागे जीव, तू विषयो के प्रति आसक्ति का त्याग करके राम नाम का भजन क्यो नही करता है ? विषय-सुख के लोभ मे पढकर तू भव-सागर मे क्यो डूबता है ? कबीर कहते हैं कि जो व्यर्थ ज्ञान का बखान करते है, वे भवसागर मे डूब जाते हैं ओर जो भगवान राम की भक्ति करके आनन्द मग्न होते हैं, वे सब भवसागर के पार हो जाते है (मोक्ष को प्राप्त होते है ।)

अलंकार—(i) अनुप्रास—रसना राम रमि रस ।
(ii) पदमैत्री—सुधि वुधि ।
(iii) गूढोक्ति— न जपसि अभागे, का" " " लागे ।

विशेष—(i) कबीर सच्ची भक्ति का प्रतिपादन करते हैं । व्यर्थ की शास्त्र-चर्चा को व्यर्थ बताते हैं । वे तो वार बार कहते हैं कि "पडित वाद वदै सो झूठा ।"

कबीर कथनी को त्याग कर करनी के द्वारा ही उद्धार की कल्पना करते हैं ।

(ii) कवीर के राम निरगुण निराकार परमब्रह्म हैं, दाशरथि अवतारी राम नही ।

(३७६)

निवरक सुत ल्यौं कोरा,
रांम मोहि मारि कलि विष बोरा ।।टेक।।
उन देस जाइबो रे बाबू, देखिबो रे लोग किन किन खैबू लो ।।
उड़ि कागा रे उन देस जाइबा, जासूं मेरा मन चित लागा लो ।।
हाट ढूंढ़ि ले, पटनपुर, ढु ढ़ि ले, नही गांव कै गोरा लो ।।
जलविन हंस निसह बिन रबू कबीर कौ स्वांमी पाइ परिकै मनैबूलो ।।

शब्दार्थ—निवरक= निर्वल । कोरा=गोद । वावू=भद्र पुरुषो । खैबूलो=खाते है, रहन-सहन से तात्पर्य है । हाट=वाजार । पटनपुर=नगर । गोरा=गोला-किनारे की सडक । रबू=रवि=सूर्य । मनैवूलो=मना लेना ।

संदर्भ—कवीर की जीवात्मा परमात्मा की प्राप्ति के लिए अपनी आतुरता व्यक्त करती है ।

भावार्थ—हे राम, निर्बल बालक की भाँति मुझे गोद मे लेने की कृपा करें अर्थात् मुझको अपना संरक्षण प्रदान करें। कलिकाल ने मुझको मार कर (शुद्ध चैतन्य स्वरूप से वचित करके) विषय-वासनाओ मे डुबा दिया है। हे भद्र महाशयो, तुम्हे प्रभु के देश मे जाना है और देखना है कि वहाँ के निवासी किस प्रकार रहते हैं—उनकी रहन-सहन कैसी है। हे काग, तुझे उड कर उनके देश को जाना है, जिनसे मेरा मन लगा हुआ है। बाजार ढूँढना और नगर को ढूँढ लेना। गाँव के किनारे ही ढूँढ कर मत चले आना। प्रियतम के बिना मेरी वही दशा है जो जल के बिना हस की तथा सूर्य के बिना रात्रि की होती है। कबीर कहते हैं कि मेरी जीवात्मा अपने पति परमात्मा को पैरो पडकर मना लूँगा अपने अनुकुल कर लूँगा।

अलकार—(i) पुनरुक्ति प्रकाश – किन किन।

(ii) उपमा—निदरक सुत।

(iii) रूपक—विष।

विशेष—(i) सूफी प्रेम-पद्धति के दाम्पत्य-प्रेम का प्रभाव स्पष्ट है। जायसी ने भी लिखा है—

पिय सो कहेउ सदेसड़ा हे भँवरा हे काग।

सो धनि विरहै जरि मुई जेहि के धुवाँ हम लागि।

(ii) सिद्धो और सन्तो के साहित्य मे 'काग' अज्ञानी चित्त का प्रतीक है। परन्तु यहाँ कबीर ने अज्ञानी चित्त के साथ प्रेम-सदेश ले जाने की वृत्ति को सन्नि-विष्ट कर दिया है। यह लोक-परम्परा का प्रभाव है। प्रियतम के सदेश और कौए का निकट सम्बन्ध माना जाता है। इसमे समस्त बन्धु जीवाओ को परिलौकिक चिन्तन की प्रेरणा प्रदान की गई है।

राग बसंत

(३७७)

सो जोगी जाकै सहज भाइ,

अकल प्रीति की भीख खाइ ॥ टेक ॥

सबद अनाहद सींगी नाद, काम क्रोध बिषिया न बाद ॥

मन मुद्रा जाकै गुर कौ ग्यांन, त्रिकुट कोट मैं धरत ध्यान ॥

मनहीं करन कौं सनांन, गुर कौ सबद ले ले धरै धियांन ॥

काया कासी खोजै बास, तहां जोति सरूप भयौ परकास ॥

ग्यांन मेषली सहज भाइ, बक नालि कौ रस खाइ ॥

जोग मूल कौ देह बद, कहि कबीर थिर होइ कंद ॥

शब्दार्थ—भाव=प्रेम भाव। अकल=अखडित। वाद=वाद-विवाद। मुद्रा=योगियो का उपकरण विशेष। मेखली=करधनी, कटिसूत्र। वक नालि= सुषुम्ना। कद= मिश्री।

संदर्भ—कबीर सच्चे योगी के लक्षणो का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—वही सच्चा योगी है जो सहज भाव मे स्थित है अथवा जिसके मन मे प्रभु के प्रति स्वाभाविक प्रेम है तथा जो भगवान की प्रीति की ही याचना करता है। जो अनाहद नाद का ही शृंगी नाद सुनता है और जो काम-क्रोधादिक विषयो एव शास्त्रार्थ मे नही फँसता है। गुरु के द्वारा दिया गया ज्ञान ही उसके मन को स्थिर करने वाली मुद्रा है। वह अपनी त्रिकुटी मे परम तत्व का ध्यान करता है। वह मन को पवित्र करने वाली ज्ञान-चर्चा रूपी जल मे स्नान करता है और गुरु के ज्ञान को प्राप्त करके उसी पर ध्यान लगाये रहता है। वह अपनी काया-रूपी काशी मे निवास करता है। वही पर उसके लिए परम-ज्योति स्वरूप भगवान प्रकाशित होते हैं। वह ज्ञान रूपी मेखला को धारण करके सहज भाव मे स्थित रहता है। वह सुषुम्ना के ऊपरी भाग मे स्थित वक्र नाल से झरने वाले अमृत रस का पान करता है। इसके लिए वह मूलाधार को बाँध देता है (योगी प्राणो की अग्नि से कुण्डलिनी को सीधा करके उसे सुषुम्ना मे प्रविष्ट करा देता है और मूल बध लगा देता है। यह अमृत का क्षण रोकने के लिए किया जाता है, क्योंकि कुण्ड-लिनी के सोते रहने पर भी अमृत क्षरित होता रहता) कबीर कहते हैं कि इससे क्षरणशील मधुर एवं तरल अमृत मिश्री की तरह सघन होकर स्थिर हो जाता है और योगी को अमरत्व प्रदान कर देता है।

अलंकार—(i) रूपक—प्रीति की भीख। सबद ' नाद। मन ध्यान। काया कासी—ग्यान मेखली।

(ii) पुनरुक्ति प्रकाश—लेते।

(iii) पदमैत्री नाद वाद। ग्यान ध्यान। बास परकास। भाइ खाइ। बन्द कन्द।

विशेष—(i) इस पद मे काया योग का वर्णन है। इसके लिए देखें टिप्पणी पद सं० ४।

(ii) त्रिकुटी देखें टिप्पणी पद स० ३, ४ ७।

(iii) सहज - देखें टिप्पणी पद सं० ७, १५५।

(iv) अनहदनाद—देखें टिप्पणी पद स० १५७।

(vi) शरीर मे ही समस्त तीर्थो को मान कर कबीर ने बाह्याचार का विरोध किया है। साथ ही उन पर तान्त्रिक साधना का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है।

(vii) मन मुद्रा जाके गुरु को ध्यान—इस कथन के द्वारा तात्रिक साधना के बाह्याचार के प्रति विरोध प्रकट है। तातपर्य यह है कि कबीर सब प्रकार की बाह्य साधना को व्यर्थ समझते हैं। वह तो उसी को सच्चा योगी मानते हैं जो आभ्यन्तर साधना का आश्रय ग्रहण करता है।

(viii) काया-काशी यहाँ भी काशीवास को लक्ष्य करके कबीर ने दम्भ का

विरोध किया है। अभिप्रेत यह है कि सच्चा योगी अन्तर्मुखी चित्तवृत्ति बना कर अपनी काया के भीतर (अन्त करण) मे स्थित शिव तत्व की उपासना करता है।

(३७८)

मेरौ हार हिरांनौं मै लजाऊ,
सास दुरासनि पीव डराऊं ॥ टेक ॥
हार गुह्यौ मेरौ राम ताग, बिचि मान्यक एक लाग ॥
रतन प्रवालै परम जोति, ता अंतरि अंतरि लागे मोति ॥
पंच सखी मिलिहै सुजांन, चलहु तजई थे त्रिबेणी न्हांन ॥
न्हाइ धोइ के तिलक दीन्ह, नां जानूं हार किनहूं लीन्ह ॥
हार हिरांनौ जन बिमल कीन्ह, मेरौ आहिपरोसनि हार लीन्ह ॥
तीनि लोक की जानै पीर, सब देव सिरोमनि कहै कबीर ॥

शब्दार्थ—हार=शुद्ध चित्तवृत्ति से तात्पर्य है। पुरासनि=कठोर, क्रुद्ध होने वाली। सास=बोध वृत्ति। ताग=डोरा। मान्यक=माणिक। बिमन=दुखी।

संदर्भ—कबीर की आत्मा सुन्दरी प्रभु के वियोग मे दुखी होकर कहती है।

भावार्थ—ईश्वरोन्मुखी वृत्ति रूपी मेरा हार खो गया है। इससे मैं लज्जित हो रही हूं। मुझे बोध वृत्ति रूपी कठोर और परमात्मा रूपी पति का डर लग रहा है। वृत्ति वृत्ति रूपी मेरा वह हार हरि-नाम रूपी तागे मे पिरोया हुआ था। इसके बीच बीच मे प्रीति और समर्पण के मणि माणिक लगे हुए थे। उसमे भक्ति की परमज्योति रूपी अनेक मूगे तथा अन्य रत्न लगे हुए थे। उसमे थोडे-थोडे अन्तर पर मुक्ति रूपी मोती लगे हुए थे। मेरी पाचो इन्द्रियो एव उनकी आसक्ति रूपी सखियो ने मुझ से कहा था कि चलो त्रिगुण-रूपी त्रिवेणी मे स्नान कर आएँ (इन्द्रियो से प्रेरित मैं त्रिगुणात्मक ससार मे लिप्त होने चली गई)। विषय-सुख भोग कर जब मैंने शृंगार का तिलक किया—अर्थात् काम भाव को जीवन का सार समझा, तो उस समय मुझे मालूम हुआ कि बोध वृत्ति रूपी मेरा हार किसी ने ले लिया है। हार खो जाने से हम सबका मन दुखी हो गया। माया (वासना) रूपी मेरी पडौसिन ने ही मेरा हार ले लिया है। कबीर कहते हैं कि सब देवताओ के शिरोमणि भगवान राम तीनो लोको के प्राणियो की व्यथा को समझते हैं। (वह शुद्ध अन्त करण का बोध-वृत्ति रूपी हार मुझे वापिस दिला कर मेरी व्यथा दूर करेंगे ऐसा मेरा विश्वास है।)

अलंकार— (i) सागरूपक-सम्पूर्ण पद मे। हार और बोध-वृत्ति के रूपक का आद्यन्त निर्वाह है।

(ii) पुनरुक्ति प्रकाश—बिचि बिचि, अतरि अतरि।

(iii) अनुप्रास—७ वी पक्ति, हार हिरानो, हार।

विशेष—(i) साधना के प्रतीकों का प्रयोग है।

(ii) जीव की शोभा ईश्वर-प्रेम है। इससे उसे हार कहते हैं। इस वर्णन पद्धति पर सूफियो की पीर और उनके दाम्पत्य प्रेम का गहरा प्रभाव है। यथा—

सखी एक तेइ खेल न जाना। मै अचेत मनि-हार गँवाँना।
कवँल डार गहि में बेकरारा। कासो पुकारौं आपन हारा।
× × ×
घर पैठत पूँछब यह हारू। कौन उतर पाइब पैसारू
× × ×
न जानौ कौन पौन लेइ आवा। पुन्य दसा मैं, पाय गँवावा।
ततखन हार बेगि उतिराना। पावा सखिन्ह चंद बिहँसाना।
(मानसरोदक खण्ड, पद्मावत, मलिक मुहम्मद जायसी।)

यहाँ चद शब्द पद्मिनी के लिए प्रयुक्त है, जो वुद्धि या शुद्ध चित्तवृत्ति की प्रतीक है।

(iii) कबीर ने यहाँ यह वर्णन सामान्य भारतीय वधू की मन' स्थिति की दृष्टि से किया है। एक कुल-वधू का आभूपण खो जाने पर उसे सास और पति का डर सताने लगना है। इस प्रकार कबीर द्वारा इस मनोदशा का वर्णन वहुत ही मार्मिक एव स्वाभाविक वन गया है।

(iv) हार गुह्यौ राम ताग—राम-प्रेम ही इस हार का मूलाधार है। इसी से उसको 'तागा' कहते है। यथा—

जुगुति बेध पुनि पोहिय राम चरित बर तागा।
पहिरे सज्जन विमल उर जिनके अति अनुरागा।
(गोस्वामी तुलसीदास)

(v) लागै मोति—मुक्ति को मुक्ता कहते हैं। इसमे श्लेष के चमत्कार के साथ साधर्म्य की भावना भी मुखरित रहती है—

मुक्ति-मुक्ता को मोल-मालही कहा है,
जव मोहन लला पै मन-मानिक ही वार चुकौं।
(जगन्नाथदास रत्नाकर)

(vi) संवाद शैली का सुन्दर प्रयोग है।

(vii) पच सखी—लीन्ह। विपयासक्ति के वशीभूत होकर ही जीव इस त्रिगुणात्मक जगत मे लिप्त होता है। यही उसका माया के वशीभूत होकर शुद्ध चित्त-वृत्ति का खो जाना है। यह माया ही पडोसिन है।

पड़ोसिन के लिए देखें टिप्पणी पद सख्या ३७।

(३७९)

नहीं छाड़ौं वावा रांम नांम,
मोहि और पढन सूं कौंन काम ।। टेक ।।

प्रह्लाद पधारे पढ़न साल, सग सखा लीवे बहुत बाल ।।
मोहि कहा पढ़ावै आल जाल, मेरी पाटी मै लिखि दे श्री गोपाल ।।
तब सनां मुरकां कह्यौ जाइ, प्रहिलाद बधा-ौ बेगि आइ ।।
तूं राम कहन की छाड़ि बांनि बेगि छुड़ाऊ मेरौ कह्यौ मांनि ।।
मोहि कहा डरावै बार बार, जिनि जल थल गिर कौ कियौ प्रहार ।।
बांधि मारि भावै देह जारि, जे हू रांम छाडौं तौ मेरे गुरहि गारि ।।
तब काढ़ि खड़ग कोप्यो रिसाइ, तोहि राखनहारौ मोहि बताइ ।।
खभा मै प्रगट्यौ गिलारि, हरनाकस मार्‍यो नख बिदारि ।।
महापुरुष देवाधिदेव, नरस्यंघ प्रकट कियौ भगति भेव ।
कहै कबीर कोई लहै न पार, प्रहिलाद ऊबार्‍यौ अनेक बार ।।

शब्दार्थ—साल=चटसाल,पाठशाला । आल-बाल=इधर उधर की बातें । पाटी=पट्टी । सडा मुरका=सब लडको । गिलारि=मुरारि ।

सन्दर्भ—कबीर भगवान की भक्त-वत्सलता का वर्णन करते हैं ।

भावार्थ—मैं राम नाम छोडूँगा । मुझ को राम-नाम के अतिरिक्त और और कुछ पढने से क्या काम है ? प्रहलाद अनेक बाल-सखाओ के साथ पाठशाला मे पढने के लिए गये । उन्होने अपने अध्यापक से कहा कि मुझे इधर-उधर की व्यर्थ की बातें क्यो पढाते हो ? मेरी तख्ती पर तो आप केवल 'श्रीगोपाल' लिख दें । इसके बाद सब लडको ने जाकर प्रहलाद के पिता से शिकायत की । वह तुरन्त ही आकर प्रहलाद को बाँधकर ले गये । उन्होने प्रहलाद से कहा कि तू राम-नाम कहने की आदत छोड दे । तू मेरा कहना मान जा । मैं तुझ को अभी हाल बन्धन मुक्त कर दूँगा । प्रहलाद ने उत्तर दिया, "आप मुझे बारबार क्या डरा रहे हैं ? आप चाहे तो मेरे ऊपर जल थल पर्वत कही भी ले जाकर प्रहार करें । मुझे बाँध कर मार दें, अथवा मेरी देह को जला दें । अगर मैं राम-नाम को छोड दूँगा तो मेरे गुरुदेव (अन्त करण की शुद्ध-चैतन्य वृत्ति) का अपमान होगा । तब पिता ने क्रोध पूर्वक तलवार निकाल कर कहा, "अब मुझे बता, तेरा रक्षक कहाँ है ।" उसी समय खम्भे मे भगवान मुरारि प्रकट हुए और उन्होने हरिण्यकशिपु को नाखूनो से फाड कर मार डाला । भक्ति भाव ने महापुरष एव सम्पूर्ण देवताओ के स्वामी नृसिह भगवान को प्रकट किया था । कबीर कहते हैं कि उनकी शक्ति का पार कोई नही पा सकता है । उन्होने अनेक बार प्रहलाद सदृश भक्तो का उद्धार किया है ।

अलंकार—(i) वक्रोक्ति—मोहि'' काम ।
(ii) दृष्टान्त—प्रहलाद ''' बाल ।
(iii) पदमैत्री—आल जाल । कानि, मानि । जल थल ।
(iv) पुनरुक्ति प्रकाश—बार-बार ।
(v) सम्बन्धातिशयोक्ति—कोई लहै न पार ।

विशेष— (i) संडा मुरका का पाठान्तर सठै भरकै भी है। तब अर्थ होगा —छड़ी मारकर गुरु ने जाकर शिकायत की।

(ii) इस पद मे कबीर की भक्ति-पद्धति सर्वथा सगुण भक्तो जैसी दिखाई देती है। इस आख्यान का आश्रय लेने से वह परम्परावादी अर्थ मे गृहीत अवतारवाद मे विश्वास रखने वाले प्रतीत होते हैं। परन्तु उनके मूल जीवन-दर्शन को ध्यान रखते हुए उनको सगुणोपासक मानना भूल होगी। बात यह है कि कबीर जनता को भगवान के प्रति आश्वस्त करना चाहते थे। इसके लिए भगवान की अमोघ शक्ति एवं शरणागतवत्सलता की चर्चा आवश्यक थी। इन पदो मे उसी की व्यंजना समझना चाहिए।

पारमार्थिक दृष्टि से निर्गुण भक्त कबीर और तुलसी प्रभृति भक्तो मे कोई अन्तर नही ठहरता है। दोनों के ही राम परमार्थतः निर्गुण निराकार राम हैं। विवेचन के स्तर पर दोनो ही पद्धतियाँ भिन्न है। परन्तु व्यवहार के क्षेत्र मे वे फिर एक दूसरे के बहुत कुछ निकट आ जाते हैं। और ऐसा क्यो न होता? गोस्वामी तुलसीदास ने स्पष्ट लिखा है कि—

> अन्तरजामिहुँ ते बड़ बाहर जामी हैं प्रभु नाम लिये तें।
> पैंजि परै प्रहलादहुँ को प्रकटे प्रभु पाहन तें न हिए तें।

(३८०)

हरि कौ नांउं तत त्रिलोक सार,
लै लीन भये जे उतरे पार ॥ टेक ॥
इक जंगम इक जटाधार, इक अंगि बिभूति करै अपार ॥
इक मुनियर इक मनहूं लीन, ऐसै होत होत जग जात खीन ॥
इक आराध सकति सीव, इक पड़दा दे दे बधै जीव ॥
इक कुलदेव्यां कौ जपहि जाप, त्रिभवनपति भूले त्रिबिध ताप ॥
अनहि छाड़ि इक पीवहि दूध, हरि न मिलै बिन हिरदै सूध ॥
कहै कबीर ऐसैं बिचार, राम बिना को उतरे पार ॥

शब्दार्थ—लै लीन=लवलीन। सकति=शक्ति। सीव=शिव। पड्दा=परदा।

संदर्भ—कबीरदास राम भक्ति की महिमा का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—भगवान का नाम ही तीनो लोको मे एक मात्र सारतत्व है। जो इसमे लवलीन हुए वे भवसागर के पार उतर गये। साधुओ ने अनेक सम्प्रदाय बना रखे हैं। एक जगम है, दूसरा जटाधारी है। एक अपने शरीर मे अनाप-शनाप राख मल लेता है, तो एक मौन व्रत धारण करके अपने आप मे ही लीन बना रहता है। इस प्रकार होते-होते ससार मे भगवद-निष्ठा क्षीण होती जा रही है। एक शक्ति की उपासना करता है, तो कोई शिव को पूजता है, तो दूसरा परदे की ओट मे जीव की हत्या करता है। एक कुल देवियो का जप करता है और इस प्रकार लोग

विविध ताप मे भगवान त्रिभुवन पति भगवान को भूलते हैं। (वाह्याचारो के कारण लोभ दु ख हर्त्ता भगवान को विस्मृत कर बैठते हैं।) कुछ अन्न छोड कर केवल दूध पीकर रहते हैं। परन्तु भगवान तब तक नही मिलते हैं जब तक व्यक्ति का हृदय साफ न हो—उसकी कथनी-करनी समान न हो। कबीरदास कहते हैं कि व्यक्ति को एक निश्चित रूप से समझ लेना चाहिए कि राम की भक्ति के बिना कोई भी भवसागर पार नही कर सकता है।

अलकार - (i) पुनरुक्ति प्रकाश · दे दे।
(ii) अनुप्रास—त्रिभुवन पति त्रिविधि ताप।
(iii) वक्रोक्ति—राम... ....पार।

विशेष—(i) वाह्याचार का विरोध व्यक्त है। विभिन्न सम्प्रदाय बन जाने के कारण प्रभु-भक्ति क्षीण हो गई है।

(ii) हरि न मिलै बिन हिरदै सूध। समभाव देखें—

सूधे मन सूधे बचन सूधी सब करतूति।
तुलसी सूधी सकल बिधि रघुबर प्रेम प्रसूति।

तथा— निरमल मन जन सो मोहि भावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा।

(iii) त्रिविध ताप—दैहिक, दैविक एव भौतिक।

(३८१)

हरि बोलि सूवा बार बार,
तेरी ढिग मीनां कछू करि पुकार॥ टेक॥
अंजन मंजन तजि बिकार, सतगुरु समझायौ तत सार॥
साध सगति मिलि करि बसंत, भौ बद न छूटै जुग जुगंत॥
कहै कबीर मन भया अनद, अनंत कला भेटे गोब्यद॥

शब्दार्थ—सुवा=तोता। जीव से तात्पर्य है। मीना=मीनी (पाठान्तर), मृत्यु का प्रतीक, वैसे मीना राजपूताने की एक युद्ध प्रिय जाति है। अजन=लेप, चदनादि का लेप। मजन=मार्जन, स्नानादि। बसत=आनन्द। जुग-जुगत= युग युगातर। अनत कला=अनत कलाओ वाले।

संदर्भ—कबीर कहते हैं कि साधु-सगति द्वारा ही भवसागर के पार हो सकते हैं।

भावार्थ—रे जीव रूपी तोते, वार वार भगवान का नाम-स्मरण कर। तम्हारे पास ही मृत्यु रूपी बिल्ली कुछ कह रही है। (बिल्ली म्याऊँ-म्याऊँ करती है। मृत्यु भी मानो यह कहती रहती है—मैं आऊँ, मैं आऊँ।) चन्दनादि का लेप तथा तीर्थादि मे स्नान आदि विकारो को छोड दो। मुझे सत्गुरु ने ही यही सार तत्व सिखाया है। साधु-सगति मे वस कर वसन्तोत्सव (आनन्द) मनाओ अन्यथा तुम्हारे भव-वधन युगयुगातर (जन्म जन्मातर) तक नही छूटेंगे। कवीर कहते हैं कि

इससे अनत कला वाले भगवान से तुम्हारा साक्षात्कार होगा और तुम्हारे मन को आत्मानन्द की प्राप्ति होगी।

अलंकार (i) रूपकातिशयोक्ति—सुवा, मीना। बसंत।
(ii) पुनरुक्ति प्रकाश—बार बार।
(iii) रूपक—अंजन मंजन विकार; भौबन्ध।
(iv) पदमैत्री—अजन भंजन।
(vi) सभग पद यमक—जुग जुगत।

विशेष—(i) बाह्याचार का विरोध है।
(ii) सत्सग एवं गुरु की महिमा का प्रतिपादन है।
(iii) वसंत—वसन्तोत्सव वसत पचमी से होली की पूर्णिमा तक (४० दिन तक) मनाया जाता है।

(३८२)

बनमाली जानै बन की आदि,
राम नाम बिन जनम बादि ॥ टेक ॥
फूल जु फूले रुति बसंत, जामै मोहि रहे सब जीव जंत ॥
फूलनि मैं जैसै रहै तबास, यूं घटि घटि गोविंद है निवास ॥
कहै कबीर मनि भया अनद, जगजीवन मिलियौ परमानंद ॥

शब्दार्थ—आदि=आरम्भ, उत्पत्ति। बादि=व्यर्थ। रुचि बसत। आसक्ति का ससार। फूल=भोग-विलास।

सन्दर्भ—कबीर दास प्रभु-साक्षात्कार के आनन्द का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—वनमाला धारण करने वाले प्रभु रूपी वनमाली इस जगत रूपी वन के आदि (उत्पत्ति) को जानते हैं। राम-नाम के बिना यह जीवन व्यर्थ है। ऋतुवसत रूपी आसक्ति के ससार मे विभिन्न आकर्षक भोगो के रूप मे जो फूल फूले हुए हैं, उनके द्वारा जगत के समस्त जीव-जन्तु मोहित हो रहे हैं—अपने कर्तव्य को भूले हुए हैं। जिस प्रकार फूल मे सुगध रहती है, उसी प्रकार सबके अन्त करणो मे भगवान व्याप्त हो रहे हैं। कबीरदास कहते हैं कि जब परमानद रूप जगजीवन (ईश्वर) का साक्षात्कार हुआ, तो मन 'आनदित हो गया।

अलंकार (i) रूपकातिशयोक्ति—सम्पूर्ण पद। वन, फूल, वसत।
(ii) साग रूपक—जीवन और वन का रूपक।
(iii) परिकराकुर—वनमाली।
(iv) उदाहरण—फूलनि ··निवास।
(vi) पुनरुक्ति प्रकाश—घटि घटि।
(vii) रूपक—जगजीवन परमानंद।

विशेष—(i) वन की आदि—ससार का प्रारम्भ कब और कैसे हुआ, यह अगम्य प्रश्न है। इसी से उसको भगवान ही जानते हैं।

(ii) जीवन के प्रति वैराग्य, भगवान के सर्वव्यापकत्व एव भगवन्नाम-स्मरण का प्रतिपादन है।

(iii) फूलनि मे···· निवास।—समभाव देखिए—

ज्यो तिल माही तेल है, ज्यो चकमक में आग।
तेरा साई तुज्झ में जाग सकै तो जाग।
तेरा साईं तुज्झ में, ज्यूँ, पुहुपन में वास।
कस्तूरी के मिरग ज्यूँ, फिरि-फिरि सूँघे घास।

(३८३)

मेरे जैसे बनिज सौं कवन काज,
मूल घटै सिरि बधै ब्याज ॥ टेक ॥
नाइक एक बनिजारे पांच, बैल पचीस कौ संग साथ ॥
नव बहियां दस गौंनि आहि, कसनि बहतरि लागे ताहि ॥
सात सूत मिलि बनिज कीन्ह, कर्म पयादौ सग लीन्ह ॥
तीन जगाती करत रारि चल्यौ है बनिज वा बनज झारि ॥
बनिज खुटानौं पूंजि टूटि, षाडू दह दिसि गयौ फूटि ॥
कहै कबीर यहु जन्म बाद, सहजि समांनू रही लादि ॥

शब्दार्थ—बनिज=व्यापार अथवा व्यापारी। वनजारे=टाँडा लादकर चलने वाले व्यापारी। कसनि=कसनियाँ। गवनि=गूनें, बोरियाँ। सात सूत=सात धातु। जगाती=कर लेने वाले। खटानौं=समाप्त हो गई। टाडो=सामान।

संदर्भ—कबीरदास वासनामय जीवन की निरर्थकता का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—मेरे द्वारा किए जाने वाले व्यापार से क्या लाभ हो सकता है, जिसमे मूल धन (आत्म तत्त्व) घटता जाता है और बधन के हेतु कर्म-रूपी व्याज की वृद्धि होती जाती है। नायक एक है और पाँच बनजारे (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ) हैं। (जो विषय भोगो को खरीदते हैं।) शरीर के २५ प्रकृति रूपी पच्चीस बैल विषयो का बोझ ढोते हैं। इन बैलो पर नापने के नौ हाथ (चार अन्त करण एव पच प्राण) तथा दस इन्द्रियो (उनके विषय) रूपी दस बोरियाँ लदी हुई हैं। इनको शरीर की बहत्तर नाडियो रूपी रस्सियो से बाँधा गया है। सात धातुओ ने मिलकर शरीर के इस व्यापार को मालूम किया था और भाग्य रूपी प्यादे (पैदल चलने वाला सैनिक) को अपने साथ ले लिया था (वही मार्गदर्शक एव रक्षक है।) सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण रूपी ये तीन कर (टैक्स) उगाहने वाले झगडा कर रहे हैं। इन्होने कर के लिए इतना झगडा किया अथवा झगडा करके इन्होने इतना कर वसूल कर लिया कि इस जीवन रूपी व्यापारी को सम्पूर्ण जीवन रूपी वाणिज्य की सामग्री इन तीनो गुणो को समर्पित कर देनी पडी और जीव रूपी व्यापारी यहाँ से हाथ झाडकर चल दिया। अब तो व्यापार समाप्त हो गया (उसमे टोटा आ गया है), पूँजी कम पड गई है और यह चैतन्य रूपी टाँडा दस इन्द्रियो रूपी दसो

दिशाओं मे फूट कर वह निकला है। कबीर कहते है कि यह जन्म व्यर्थ जा रहा है। अब तो मैं केवल सामान को लादने का काम करता हूँ और मै अपने सहज स्वरूप को प्राप्त हो गया हूँ।

अलंकार—(1) सागरूपक—जीवन को आद्यन्त एक व्यापार के रूप मे प्रस्तुत किया है।

वक्रोति—कवन काज।

(III) रूपक—कर्म पयादौ।

विशेष—प्रतीको का प्रयोग है।

(क) नायक—जीव।

(ख) वनजारे पाँच—पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ।

(ग) बैल पच्चीस—पच्चीस प्रकृतियाँ।

आकाश की—काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय।

वायु की—चलन, बलन, धावन, प्रसारण, संकोचन।

अग्नि की—सुधा, तृषा, आलस्य, निद्रा, मैथुन।

जल की—लार, रक्त, पसीना, मूत्र, वीर्य।

पृथ्वी—अस्थि, चर्म, मास, नाडी, रोम।

नौ वहियाँ—शरीर के नवद्वार, अथवा नौ हाथ (जिनसे नापते हैं)—चार अन्त:करण—मन चित्त बुद्धि एव अहकार। तथा पंच प्राण—प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान) सात सूत—सप्त धातु—रस, रक्त, माँस, वसा, मज्जा, अस्थि और शुक्र।

तीन जगाती—त्रिगुणात्मक प्रकृति—सत, रज, तम।

दस गूनें—दस इन्द्रियो के अतिरिक्त इनका अर्थ दस वायु भी हो सकती हैं—प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कर्म, कूकरत देवदत्त तथा धनंजय।

वहत्तर कसनियाँ — वहत्तर नाडिया।

(३८४)

माधौ दारन दुख सह्यौ न जाइ,
मेरी चपल बुधि तातैं कहा वसाइ ॥ टेक ॥
तन मन भींतरि बसै मदन चोर, जिनि ज्ञांन रतन हरि लीन्ह मोर।
मैं अनाथ प्रभू कहूं काहि, अनेक बिगूचे मैं को आहि ॥
सनक सनंदन सिव सुकादि, आपण कवलापति भये ब्रह्मादि।
जोगी जगम जती जटाधार, अपनै औसर सब गये हैं हारि ॥
कहै कबीर रहु संग साथ, अभिअतरि हरि सू कहौ बात।
मन ग्यांन जांनि कै करि विचार, रांम रमत भौ तिरिबौ पार ॥

शब्दार्थ—दारन=दारुण, कठोर। चपल=चचल। वसाइ=वश नहीं है। बिगूचा=दबोचा, उलझन मे डाल दिया।

सन्दर्भ— कबीरदास काम के व्यापक प्रभाव का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—हे माधव ! काम के द्वारा दी जाने वाली दारुण व्यथा मेरे लिए असह्य हो उठी है। मेरी चचल बुद्धि मुझे काम (विषय) की और आकृष्ट करती है उस पर मेरा कोई वश नही चलता है। मेरे शरीर और मन के भीतर कामदेव रूपी चोर रहता है। उसने मेरे आत्म-बोध रूपी रत्न का अपहरण करलिया है। हे प्रभु, मैं अनाथ हूँ। मैं अपनी व्यथा किससे निवेदन करूँ ? इस काम ने अनेक बडे-बडो को दबोच डाला है। मेरी तो चलाई ही क्या है ? सनक, सनदन, शिव, शुकदेव, स्वय विष्णु ब्रह्मादि जैसे देवता, जोगी जगम, जटाधारी, आदि साधु-सभी अपना समय आने पर (अथवा इससे पाला पडने पर) इसके सम्मुख हार गये हैं। कबीर कहते हैं कि साधुओ की सगति मे रहो तथा अपने अन्त करण मे विराजमान प्रभु से अपनी व्यथा निवेदित करो। मन मे यह बात अच्छी तरह सोच-विचार कर समझ लेनी चाहिए कि भगवान (राम) मे रमण करते हुए ही भवसागर को पार किया जा सकता है।

अलंकार— (i) वक्रोक्ति—मेरी ' ''' बसाइ।
(ii) रूपक—मदन चोर, ज्ञान रतन,
(iii) पर्यायोक्ति—मैं को आहि।
(iv) अनुप्रास—सनक सनदन, सिव सुकादि सब; जोगी जगम जती जटाधर।
(vi) अत्युक्ति—सनक ' हारि।

(३८५)

तू करी डर क्यूं न करै गुहारि,
तूं बिन पंचाननि श्री मुरारि ॥ टेक ॥
तन भींतरि बसै मदन चोर, तिनि सरबस लीनौं छोर मोर ॥
मांगै देइ न बिनै मांन, तकि मारै रिदा मैं कांम बांन ॥
मै किहि गुहरांऊ आप लागि, तू करी डर बड़े बडे गये हैं भागि ॥
ब्रह्मा बिष्णु अरु सुर मयक, किहि किहि नहीं लावा कलक ॥
जप तप सजम सुंचि ध्यान, बंदि परे सब सहित ग्यांन ॥
कहि कबीर उबरे द्वै तीनि, जा परि गोबिंद कृपा कीन्ह ॥

शब्दार्थ—करी=हाथी। पचाननि=सिंह। सरबस=सर्वस्व। बिना बिनै=विनय। गुहारि=पुकारना। मयंक=चन्द्रमा। सु चि=शुचि, पवित्रता।

सन्दर्भ—कबीरदास काम के व्यापक प्रभाव का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—हे मेरी जीवात्मा, तू काम रूपी हाथी से डर कर सहायतार्थ क्यो नही पुकारती है ? तुम पूछो कि मैं किसको पुकारूँ, तो इसका उत्तर यह है कि मुरारी रूपी सिंह के अतिरिक्त तुम किसको पुकारोगी ? अर्थात् कामरूपी हाथी से रक्षा के लिए तुमको मुरारि सिंह से ही पुकार करनी चाहिए। मेरे शरीर के भीतर कामदेव

रूपी चोर रहता है। उसने मेरे सम्पूर्ण चैतन्य का हरण कर लिया है। मांगने पर वह मेरे चैतन्य रूप को देता नही है और अनुनय विनय भी नही मानता है। इतना ही नही, वह कामदेव मेरे हृदय मे तान-तान कर वाण मारता है। हे कामदेव, मैं अपनी रक्षा के लिए किसको पुकारूँ ? तुम्हारे डर के मारे बडे-वडे भाग खड़े हुए हैं। ब्रह्मा, विष्णु और चन्द्रदेव तुमने किस-किसको कलकित नही किया है ? जप, तप, सयम, पवित्रता ध्यान और ज्ञान सभी व्यक्ति इसके समक्ष पराजित हो गये हैं। कवीर कहते हैं कि इसके प्रभाव से केवल वे ही दो-तीन व्यक्ति बच पाए हैं जिन पर भगवान ने अनुग्रह किया है।

अलकार—(i) गूढोक्ति—प्रथम पक्ति, किहि गुहराऊँ।
(ii) रूपक—मदन चोर, काम वान।
(iii) विशेषोक्ति की व्यजना—मागे देह……मान।
(iv) पुनरुक्ति प्रकाश—किहि किहि।
(v) वक्रोक्ति—किहि…कलक।
(vi) सहोक्ति—सव सहित ग्यान।

विशेष—(i) काम के सर्वव्यापी एव सर्वग्रासी प्रभाव की ओर सकेत है।

(ii) जा परि—कीन्ह। पुष्टि मार्गीय भक्त की भाँति कबीरदास उद्धार के लिए प्रभु-कृपा पर अवलम्बित दिखाई देते है।

(iii) कामदेव के वान—५ हैं—मोहन, उन्मादन, संतपन, शोपण और निश्चेष्टीकरण।

(३८६)

ऐसौ देखि चरित मन मोह्यौ मोर,
ताथै निस वासुरि गुन रमौ तोर ।। टेक ।।
इक पढ़हि पाठ इक भ्रमैं उदास, इक नगन निरंतर रहैं निवास ।।
इक जोग जुगुति तन हूहि खींन, ऐसैं रांम नांम सगि रहैं न लीन ।।
इक हूहि दीन एक देहि दांन, एक करै कलापी सुरा पांन ।।
इक तत मंत ओषध वांन, इक सकल सिध राखै अपांन ।।
इक तीर्थ व्रत करि काया जीति, ऐसैं रांम नांम सूं करै न प्रीति ।।
इक धोम घोटि तन हूंहि स्यांम, यू मुकति नहीं विन रांम नांम ।।
सत गुर तत कह्यौ विचार, मूल गह्यौ अनभै विसतार ।।
जुरा मरण थे भये धीर, रांम कृपा भई कहि कबीर ।।

शब्दार्थ—खनी=क्षीण। कलापी=कलाप=करधनी, लक्षण से कोपीन, अतः कलापी का अर्थ कोपीनधारी हुआ। अयान=अपान वायु, भीतर को खीची जाने वाली सास-तात्पर्य 'प्राणायाम' से है। धोम=धुँआ। मूल=परम तत्व। जुरा=जरा, वृद्धावस्था। धीर=निश्चल, अविचल। अनभै=निर्भय अवस्था।

संदर्भ—कबीरदास बाह्याचार के कारण उत्पन्न समार की दुर्दशा का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—हे प्रभु ससार के लोगो के आचरण (ससार की दुर्दशा) देखकर ही मेरा मन आपकी ओर आकृष्ट हुआ है। इससे मैं दिन रात आपके गुणो मे रमा हुआ हूँ (आपकी भक्ति मे तल्लीन हो गया हूँ)। कोई वेद पाठ मे भूला हुआ है, कोई ससार के प्रति उदासीन होकर घूमता है, कोई निरन्तर नग्न बना हुआ रहता है, और कोई योग की युक्तियो से (हठयोग की साधना द्वारा) अपने शरीर को ही सुखाता है। ऐसे व्यक्ति राम-नाम मे लवलीन नही रहते हैं। कोई भिखारी बन जाता है और कोई दानी बना हुआ दिखाई देता है। कुछ ऐसे साधु हैं जो कोपीन तो धारण किए हुए हैं, परन्तु (वामाचार का अवलम्बन करते हुए) शराब पीते हैं। कोई तत्र-मत्र एव जडी-बूटियो की साधना करता है और कोई प्राणायाम की साधना करता है और कोई प्राणायाम की साधना करके पूर्ण सिद्ध होने का दम्भ करता है। कोई तीर्थ-व्रत करके अपने शरीर पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। वाह्याचारो मे विश्वास करने वाले ये व्यक्ति राम-नाम से प्रेम नही करते हैं। कोई धुएँ मे घुट-घुट कर अपना शरीर काला कर देता है। परन्तु राम नाम के बिना इस प्रकार की साधनाएँ करने से मुक्ति की प्राप्ति नही होती है। सत्गुरू ने विचार करके तत्व की बात बताई है। हृदय मे निर्भय अवस्था का विस्तार करने वाले परम तत्व को ग्रहण करो। कबीर कहते हैं कि (गुरु के उपदेशानुसार आचरण करके) अब मैं वृद्धावस्था और मृत्यु के प्रति निश्चल हो गया हूँ अर्थात् इनके भय से मुक्त हो गया हूँ। अब मेरे ऊपर राम की कृपा हो गई है।

अलंकार—(i) अनुप्रास—मन मोह्यौ मोर। नगिन निरतर निवास।
(ii) विरोधाभास—कलापी सुरापान।
(iii) पदमैत्री—तत मत।
(iv) तद्‌गुण की व्यजना—धोम धोटि तन हूहि स्याम।

विशेष—(i) वाह्याचारो का विरोध है। राम-नाम के महत्व का प्रतिपादन है।

(ii) 'वैराग्य' की व्यजना है।

(३८७)

सब मदिमाते कोई न जागा,
ताथै सग ही चोर घर मुसन लागा।। टेक ।।
पंडित माते पढि पुरांन, जोगी माते धरि धियान।।
सन्यासी माते अहमेव, तपा जु माते तप कै भेव।।
जागे सुक उधव अकूर, हणवत जागे लै लगूर।।
सकर जागे चरन सेव, कलि जागे नामा जैदेव।।

ए अभिमान सब मन के कांम, ए अभिमांन नहीं रहों ठाम ॥
आतमां राम कौ मन बिश्रांम, कहि कबीर भजि रांम नांम ॥

शब्दार्थ—मद=उन्माद, गर्व। माते=मस्त, बेसुध। मुसन लाऊ=लूट रहे है।

सन्दर्भ—कबीरदास ससारी व्यक्तियो की अज्ञान-दशा का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—समस्त ससार मन्दान्ध (उन्माद एव गर्व मे अन्धा, होकर अज्ञान की निद्रा मे मदहोश होकर सो रहा है। कोई भी ज्ञान लाभ कर सचेत नही होता है। इसी से साथ मे लगे हुए कामादिक चोर जीव के शरीर को (जीवन को) लूट रहे हैं। (विवेक को नष्ट तथा विशुद्ध चैतन को तिरोहित कर रहे हैं।) पडित पुराण पढकर मदमस्त है, योगी ध्यान-योग के अहकार मे मदहोश हैं। सन्यासी 'अहमेव' की भावना के अहकार मे तथा तपस्वी तप के भ्रम मे अपने आपको भूले हुए हैं। शुकदेव, उद्धव, अक्रूर, और जामवत सहित हनुमान ईश्वर-प्रेम मे अनुरक्त होकर ही इस अज्ञान-निद्रा से जागे थे। शकर को भी भगवान के चरणो की सेवा से ही बोध हुआ था। कलियुग मे नामदेव और जयदेव को भी (इसी प्रकार) ज्ञान हुआ। (ज्ञान तप आदि के) उपर्युक्त समस्त अभिमान केवल मन मे उत्पन्न होते हैं। इन अभिमानो के कारण साधक का मन सदैव चचल बना रहता है। इसी से कबीर कहते हैं कि आत्मारामो के मन के विश्राम राम-नाम का भजन करना चाहिए—अर्थात् मन का वास्तविक विश्राम आत्माराम है। वहाँ पर मन अपनी सम्पूर्ण चंचलता सहित शुद्ध चैतन्य मे विलीन हो जाता है। यह ज्ञान और प्रेम द्वारा ही सम्भव है। इसी से कबीर कहते हैं कि, हे जीव, राम-नाम का स्मरण करो।

अलंकार—रूपकातिशयोक्ति - चोर, घर

विशेष—(i) दम्भ उत्पन्न करने वाले वाह्याचारो का विरोध है। साथ ही सच्ची भक्ति-भावना का प्रतिपादन है।

(ii) पुराण एव इतिहास प्रसिद्ध भक्तो की चर्चा द्वारा तीन बातें प्रकट होती है—(क) कबीर का विरोध केवल दम्भ से था। जहाँ भी सचाई थी, वहाँ कबीर का मन रम जाता था। (ख) भारत मे पौराणिक सस्कृति का व्यापक प्रभाव था। जनता के मन को प्रभावित करने के लिए पौराणिक पात्रो का उल्लेख आवश्यक था। तथा (ग) कबीर के ऊपर हिन्दू सस्कारो का गहरा प्रभाव था।

(३८८)

चलि चलि रे भवरा कवल पास,
भवरी बोलै अति उदास ॥ टेक ॥
तैं अनेक पुहप कौ लियौ भोग, सुख न भयौ तब बढ्यौ है रोग ॥
हौं ज कहत तोसूं बार बार, मैं सब बन सोध्यौ डार डार ॥
दिनां चारि के सुरंग फूल, तिनहि देखि कहा रह्यौ है भूल ॥
या बनासपती मैं लागैगी आगि, तब तू जैहौ कहां भागि ॥

पहुप पुरांने भए सूक, तब भवरहि लागी अधिक भूख ॥
उड़्यो न जाइ बल गयो है छूटि, तव भवरी रू'नी सीस कूटि ॥
दह दिसि जोवै मधुप राइ, तब भवरी ले चली सिर चढ़ाइ ॥
कहै कबीर मन कौ सुभाव, रांम भगति बिन जम कौ डाव ॥

शब्दार्थ—भ्रमर=मन । भ्रमरी=विवेक-बुद्धि । सुरंग=सुन्दर रग । वनस्पति वन । रूनी=रोई । डाव=भय ।

सन्दर्भ—कबीर का कहना है कि अन्तत राम भक्ति ही जीवन की सार्थकता है ।

भावार्थ—विवेक-बुद्धि रूपी भ्रमरी ससार की विषय-वासनाओ से दु खी एव उदास होकर कहती है कि रे मन-रूपी भ्रमर, तुम भगवान के चरण कमलो के प्रति अनुरक्त बनो । तुमने अनेक विषय रूपी पुरुषो का रस भोगा है । उससे तुमको कुछ भी सुख प्राप्त नही हुआ, अपितु मोह-रूप रोग की वृद्धि हुई है । यह बात तुमसे बार-बार कह चुकी हूँ । इस ससार रूपी वन की डाल-डाल पर मैंने आनद की खोज की, (लेकिन सब व्यर्थ) । ये विषय रूपी सुन्दर रग के फूल केवल चार दिन के ही हैं । इन्हे देखकर तू क्यो मोहित हो रहा है ? इस ससार रूपी जगल मे आग लग जाएगी । तब तुम अपने प्राणो के रक्षार्थ कहाँ भाग कर जाओगे ? (तव भी तुम्हे भगवान की शरण मे ही जाना पडेगा ।) परन्तु भ्रमर ने भ्रमरी की बात नही मानी । कुछ दिनो पश्चात् फूल पुराने पड कर सूख गये (विषय की सामर्थ्य क्षीण हो गई), तब भ्रमर रूपी मन को ईश्वर-प्रेम की भूख जोर के साथ लगी । परन्तु इस समय उसका शरीर इनना हीनवीर्य हो गया था कि उससे उडा ही नही जाता था । उसकी यह दशा देख कर बुद्धि रूपी भ्रमरी सिर पीट-पीट कर रोने लगी । मन रूपी भ्रमर भी अपने किए पर पश्चाताप करता हुआ दसो दिशाओ मे घूम घूम कर रोने लगा । तब भ्रमरी उसको अपने सिर पर चढाकर भगवान के चरणारविन्द के पास ले गई । कबीर कहते हैं कि मन रूपी भ्रमर का यह सहज स्वभाव है कि जब तक उसको भगवान के चरण-कमलों का सान्निध्य प्राप्त नही होता है, तब तक मृत्यु भय से उसकी मुक्ति नही होती है ।

अलंकार—(i) रूपकातिशयोक्ति—भवरा, भवरी, पुहुप, वन ।
(ii) साग रूपक—सम्पूर्ण पद ।
(iii) वीप्सा—चलि चलि रे ।
(iv) विशेषोक्ति—तै · सुख न भयो ।
(v) विरोधाभास—भयो तव · · रोग, पुहुप पराने · · · भूख ।
(vi) पुनरुक्ति प्रकाश—वार वार, डार-डार ।
(vii) गूढोक्ति—कहा · भूल ।

विशेष—(i) इस पद मे बुद्धि-मनस और काम मनस के द्वन्द्व का सुन्दर वर्णन है । अन्तत· बुद्धि मनस की विजय होती है और काम मनस का बुद्धि मनस मे

पर्यवसान हो जाता है। यही बुद्धिरूपी भ्रमरी का मन रूपी भ्रमर को अपने सिर पर चढ़ाना है।

सद्प्रवृत्तियो एव दुष्प्रवृत्तियो का यह मानसिक शाश्वत है। इसी प्रकार देवासुर-सग्राम, पाण्डव-कौरवो का महाभारत, राम-रावण का युद्ध आदि कहा गया है। बुद्धि मनस विश्व-चेतना की वाहिका है। वही विश्व-चेतना स्वरूप भगवद् चरणो के प्रति उन्मुख वृत्ति है।

विवेक एव भक्ति के प्रति वासनात्मक मन का समर्पण जीव का स्वभाव एव जीवन की सार्थकता है। इसी का बर्णन इस पद मे किया गया है।

(ii) विविध रस-लोलुप होने के कारण मन भ्रमर है। भ्रमर को तृप्ति केवल कमल प्रदान कर पाता है और वह उसी के कोश मे आबद्ध हो जाता है। इसी से भगवान के चरणो को कमल कहते हैं। चरण कमलो का स्मरण करते-करते वासनात्मक बुद्धि का अद्वैत बुद्धि मे पर्यविसान ज्ञानी भक्तों का प्रतिवाद्य रहा है। भ्रमर गीत की परम्परा का साहित्य इसका ज्वलत उदाहरण है।

(३८६)

आवध रांम सबै करम करिहू,
सहज समाधि न जमथै डरिहूं ॥ टेक ॥
कुभरा ह्वै करि बासन घरिहू, धोबी ह्वै मल धोऊं ।
चमरा ह्वै करि रगौ अघौरी, जाति पांति कुल खोऊं ॥
तेली ह्वै तन कोल्हू करिहौ, पाप पुनि दोऊ पीरौं ।
पच बैल जब सूध चलाऊं, राम जेवरिया जोरू ॥
ज्ञत्री ह्वै करि खड़ग सँभालूं, जोग जुगति दोउ साधूं ।
नऊवा ह्वै करि मन कूं मूडूं, बाढ़ी ह्वै कर्म बाढूँ ॥
अवधू ह्वै करि यहु तन धूतौं बधिक ह्वै मन मारू ।
बनिजारा ह्वै तन कू बनिजूं, जुवारी ह्वै जम हारूं ॥
तन करि नवका मन करि खेवट, रसना करऊ बाडारू ।
कहि कबीर भौसागर तरिहूं, आप तिरू बप तारूं ॥

शब्दार्थ—आवध=अवधि पति। कुभरा=कुम्हार। घरिहूं=बना दूंगा। अघौरी=घिनौनी वस्तुएँ। पीरौं=पेलूंगा। अवधू=अवधूत, जोगी। करऊ बाडारू=डा० माताप्रसाद गुप्त ने इसका अर्थ करउवा=डालू करके 'पतवार डालूंगा' लिखा है। डा० भगवत्स्वरूप मिश्र ने इसका अर्थ "करऊ-बाडारू" करके रस्सा बना दूंगा लिखा है। केवट के सदर्भ मे 'पतवार' अधिक सगत है। इसी से हमने इसका अर्थ 'पतवार' ही किया है। बप=बाप, पूर्वज।

सन्दर्भ—कबीरदास कर्म की कुशलता द्वारा उद्धार की कामना करते हैं।

भावार्थ—हे अवधपति राम, मैं सब कर्म करूंगा और सहज समाधि को

प्राप्त करूंगा और मैं इस प्रकार कर्मों को ज्ञान की साधना मे परिणत करता हुआ मृत्यु का आलिंगन करने को सदैव तैयार रहूँगा।

कुम्हार होकर मैं सुन्दर वर्तन बना दूंगा। धोबी होकर मैं कपडो का मैल अच्छी तरह धो दूंगा। चमार होकर मैं चमडा जैसी घिनौनी वस्तु को अच्छी तरह रंगूगा और इस प्रकार जाति-पाँति और कुल के कारण उत्पन्न हीनत्व भावना को समाप्त कर दूंगा। तैली होने पर मैं अपने शरीर को कोलू बनाकर उसमे पाप-पुण्यो को पेरूंगा तथा भक्ति रूपी तैल निकालूंगा। अपनी पाँचो इन्द्रियो को कोल्हू का बैल बना दूंगा और राम-प्रेम की रस्सी से नाथ कर उसे (पचइन्द्रिय रूपी बैल) को भक्ति के सीधे मार्ग पर चलाऊंगा। क्षत्रिय होने पर मैं विवेक की तलवार चला दूंगा तथा योग एव ज्ञान दोनो को सिद्ध करूंगा। (विवेक पूर्वक दुष्टो को दण्ड दूंगा तथा दण्ड निर्धारित करते समय तटस्थ की भाँति व्यवहार करूंगा। यही ज्ञान एव योग की साधना है।) नाई होने पर अपने मन की समस्त वासनाओ को मूड दूंगा। बढई होकर मैं कर्मों के वधन को काटूंगा। अवधूत होने पर मैं इस शरीर के मल को धोकर साफ करूंगा और वधिक के रूप मे इस वासनामय मन को ही मार डालूंगा। व्यापारी वनने पर मैं परम तत्त्व का व्यापार करूंगा। जुवारी होने पर मैं मृत्यु भय को ही दाव पर लगाकर हार जाऊँगा (मैं अपने शरीर की नौका और मन का केवट एव जिह्वा की पतवार वनाकर भव-सागर के पार जाऊँगा। कवीर कहते हैं कि इस प्रकार मैं स्वय तिरूंगा और अपने पूर्वजों (अन्य व्यक्तियो) का भी उद्धार कर दूंगा।

अलंकार—(i) रूपक-तन कोल्हू, राम जेवरिया। पंच बैल तन करि " डारूं।

(ii) भौ सागर।

(iii) अनुप्रास—तरिहै, तिरूं, तारूं।

विशेष—(i) कर्म की महिमा का प्रतिपादन है। निष्ठापूर्वक कार्य ही मोक्ष का साधन बनता है। "योग की कर्मसु कौशलम् (गीता)

(ii) कवीर की यह मान्यता प्रकट है कि सभी जातियो के व्यक्ति अपने व्यावसायिक कर्मों को आध्यात्मक रूप प्रदान करके परम पद के अधिकारी वन सकते हैं। यही समन्वय एव तत्त्व दृष्टि है। वह स्वय जुलाहे थे और अपने कर्म को निष्ठापूर्वक करते हुए परमपद के अधिकारी बने थे।

(iii) इस पद मे सभी जातियो के कर्मों का साधना-परक अर्थ किया गया है। व्यक्ति चाहे जिस सामाजिक स्थिति मे हो उसे ईश्वर-भक्ति का पूर्ण अधिकार एव अवसर प्राप्त है। यह मान्यता भारतीय दृष्टिकोण के अनुरूप है। तुलना करें—

(क) श्रेयान्स्वधर्मो विगुण परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधन श्रेय परधर्मो भयावह.।

श्री मदभगवद्गीता, ३/३५

(ख) मम माया संभव संसारा। जीव चराचर विविध प्रकारा।

× × ×

पुनि पुनि सत्य कहउँ तोहि पाही। मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं।

× × ×

भगतिवंत अति नीचउ पुरानी। मोहि प्रानप्रिय अस मम बानी।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(iv) तन कर····डारूँ। कबीर को यह कामना बहुत कुछ इस प्रकार की है—जेहि जोनि जन्मौ कर्म बस तहाँ राम पद अनुरागऊँ।

राग मालीगौड़ी

(३९०)

पंडिता मन रजिता, भगति हेत ल्यौ लाइ रे।
प्रेम प्रीति गोपाल भजि नर और कारण जाइ रे॥ टेक॥
दांम छै पणि कांम नांही, ग्यांन छै पणि धंध रे।
श्रवण छै पणि सुरति नांहीं, नैन छै पणि अंध रे॥
जाकै नाभि पदम सु उदित ब्रह्मा, चरन गग तरग रे।
कहै कबीर हरि भगति बांछूं, जगत गुर गोब्यद रे॥

शब्दार्थ—रजिता = अनुरक्त। कारण=उपाय। जाइरे=जाने दो। दाम=घन। छै=है। पणि=पर। नाभि=टुडी। वाछू=वांछा करता हूँ।

सन्दर्भ—कबीर कहते है कि भगवान की भक्ति ही काम्य होनी चाहिए।

भावार्थ—रे विषयो मे अनुरक्त मन वाले पडित तुम भगवान की भक्ति मे अपना मन लगाओ। प्रेम और प्रीति (श्रद्धा) पूर्वक भगवान का भजन करो तथा अन्य सब वातो को (व्यर्थ समझ कर) जाने दो। तुम्हारे पास घन है परन्तु उसके सदुपयोग के लिए काम नही करते हो। तुमको बौद्धिक ज्ञान प्राप्त है, परन्तु तुम ससार के धन्धो मे फँसे हुए हो। तुम्हे श्रवणशक्ति प्राप्त है, परन्तु भगवद् चर्चा सुनकर तुम्हारे भीतर भगवान की स्मृति नही जागती है। तुम नेत्रो के होते हुए भी भगवान का साक्षात्कार न कर सकने के कारण अधे ही कहे जाओगे। कबीर कहते हैं कि जिन भगवान के नाभि-कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई है तथा जिनके चरणो से गगा की धारा प्रकट होकर वही है, मैं उन्ही भगवान की भक्ति की कामना करता हूँ। वे गोविन्द ही जगत को ज्ञान प्रदान करने वाले गुरु हैं।

अलंकार—(i) पदमैत्री—पडिता मन रजिता। गंग तरग।
(ii) विशेपोक्ति की व्यंजना—दाम—नाही, श्रवण—नाही।
(iii) विरोधाभास—ग्यान—धध रे। नैन अधरे।
(iv) परिकराकुर—गोविन्द।

विशेष—(i) इस पद मे कबीर के राम विष्णु के अवतार रूप मे हमारे सामने आते हैं और वह सगुण भक्त कवियो की पक्ति मे खड़े हुए दिखाई देते हैं।

(ii) कबीर के ऐसे कथनो को अर्थवादी ही मानना चाहिए। इस पद मे वर्णित घटनाओ को कबीर ने सत्य माना हो—यह आवश्यक नही है। भगवान की शक्ति करुणा आदि गुणों की व्यजना ही उन्हे अभिप्रेत है। कबीर की भगवान की दयालुता, भक्त वत्सलता आदि मे आस्था थी इसमे कोई सदेह नही है। उन्हे हम सगुणोपासक मान सकते हैं, परन्तु तुलसी सूर प्रभृति भक्त कवियो की भाति साकारोपासक नही मान सकते है। और फिर बात वही है। भारतीय मन-मानस को प्रभावित करने के लिए पौराणिक आख्यानो की चर्चा के बिना काम नही चल सकता है।

(३९१)

विष्णु ध्यांन सनान करि रे, बाहरि अंग न धोइ रे ।
साच बिन सीझसि नहीं, काई ग्यान दृष्टै जोइ रे ।। टेक ।।
जजाल मांहैं जीव राखै, सुधि नही सरीर रे ।।
अभिअतरि भेदै नही, कांई बाहरि न्हावे नीर रे ।
निहकर्म नदी ग्यान जल, सुनि मडल मांहि रे ।।
औधूत जोगी आतमां, काई पेखै सजमि न्हाहि रे ।
इला प्यगुला सुषमनां, पछिम गगा बालि रे ।।
कहै कबीर कुसमल झड़ै, कांई मांहि लौ अग पषालि रे ।

शब्दार्थ—अभिअन्तरि=आभ्यन्तर, हृदय, मन। सीझसि=सिद्धि है। जोइ=दिखाई देता है। औधूत=अवधूत साधक, हठयोगी साधक। सजमि=सयम। कुसमल=पाप। झडैं=धुल जाएँगे। पषालि=धोले। बालि= सुषुम्ना। पछिम=सुषुम्ना। गगा=इडा।

सन्दर्भ—कुछ साधक बाह्य साधनो एव साधनाओ मे व्यर्थ समझ एव शक्ति खोते रहते हैं और अन्तरात्मा को निर्मल नही बनाते हैं। कबीरदास इन्ही को सावधान करते हैं।

भावार्थ—कबीरदासजी शरीर को मल-मल कर स्नान करने वाले साधकों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि विष्णु-ध्यान का स्नान करो बाहर से अगो को मत धोते रहो। भाव यह है कि पानी से शरीर के बाह्यागो को धोने से कोई लाभ नही होगा भगवान् का ध्यान करके अपने मन को निर्मल बनाना ही मुख्य काम है। सत्य के बिना सिद्धि की प्राप्ति नही होती है अत ज्ञान दृष्टि से देखने का प्रयत्न क्यो नही करते हो ? तूने अपने जी को जगत् के जजाल मे डाल रखा है और तुझको अपने शरीर का भी होश नही है। भाव यह है कि तू विषय के मोहवश अपने शरीर के स्वास्थ्य के प्रति भी असावधान हो गया है। अपने अन्दर प्रवेश नहीं करते हो अर्थात् आत्म-चिन्तन से विमुख हो। ऐसी स्थिति मे बाहर जल से क्या स्नान करते हो—बाहरी टीमटाम से कोई लाभ नही है। शून्य मण्डल मे निष्काम कर्म की नदी बहती है उसमे ज्ञान का जल है। जो योगी सयम के द्वारा उस नदी मे स्नान करता

है, वह सर्वथा शुद्धात्मा बन जाता है। इडा, पिगला और सुषुम्ना, जिन्हें गंगा, वंकनाल एव अवधूती भी कहते हैं—के सगम मे अपने-अपने अगो को धोलो। इसमे तेरे समस्त पाप घुल जाएँगे।

अलंकार—रूपक— ग्यान दृष्टि, निहकर्म जल,

विशेष—बाह्य कर्म-काण्ड को व्यर्थ बताकर योग-साधन की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। कबीरदास के ऊपर नाथ-सम्प्रदाय की साधना का स्पष्टतः गहरा प्रभाव दिखाई देता है।

(२) इडा को गगा कहा है। सुषुम्ना को बकनाल या पश्चिम दिशा भी कहते हैं। सुषुम्ना को अवधूती या बालरडा तपस्विनी भी कहा गया है।-६ वी पक्ति कबीरदास का अभिप्राय इडा पिंगला और सुषुम्ना के सगम से है। कथन मे कुछ दुष्क्रमत्व दोष आगया है।

(३६२)

भजि नारदादि सुकादि बंदित, चरन पंकज भांमिनी।
भजि भजिसि भूषन पिया मनोहर, देव देव सिरोवनीं॥टेक॥
बुधि नाभि चदन चरचिता, तन रिदा मदिर भीतरा।
रांम राजसि नन बानी, सुजात सुदर सुंदरा॥
बहु पाप परबत छेदनां, भौ ताप दुरिति निवारणां।
कहै कबीर गोब्यद भजि, परमांनंद बंदित कारणां॥

शब्दार्थ—भामिनी= सुन्दर स्त्री (जीवात्मा); छेदणां=नष्ट करने वाले। दुरित=सकट। निवारणा=दूर करने वाले। कारणा=कारणभूत, उत्पत्ति के कारण। भूषन पिया=लक्ष्मी।

सन्दर्भ—कवीर भगवद भजन का उपदेश देते हैं।

भावार्थ—री आत्मा सुन्दरी, नारद इत्यादि मुनि तथा शुकदेव इत्यादि ऋषियो के द्वारा वन्दित भगवान के चरण-कमलो का भजन कर। लक्ष्मी के हृदय के आभूषण एव अत्यन्त मनोहर तथा सम्पूर्ण देवताओ के सिर पर मणि के समान शोभा देने वाले इन चरणों का भजन कर। चन्दन से चर्चित बुद्धि-रूपी नाभि तथा शरीर एव हृदय-रूपी मन्दिर मे विराजमान आत्मारूपी राम सुशोभित हो रहे हैं। राम अत्यन्त ज्ञानी हैं। वह अपने सुन्दर नेत्रो एव वाणी से सुशोभित हैं तथा सुन्दरो मे भी सुन्दर है अथवा सुन्दरो की सुन्दरता हैं। वह सम्पूर्ण पापो के पहाडो को नष्ट करने वाले हैं तथा ससार के कष्टो एव संकटो को दूर करने वाले हैं। कवीर कहते हैं, तू उन गोविंद का भजन कर जो परमानंद स्वरूप हैं तथा सृष्टि के उत्पत्ति कारणो (सृष्टि के उत्पादक तत्वो) द्वारा वन्दित हैं।

अलकार—(i) रूपक-चरन पकज, बुधि-नाभि तन रिदा मन्दिर।
(ii) सभग पद यमक—भजि भजिसि।
(iii) यमक—देव देव।

(iv) अनुप्रास—सुजान सु दर सुयश ।

(v) अतिशयोक्ति—सु दर सुन्दरा ।

विशेष—(i) भूषन पिया का अर्थ सीता भी हो सकता है । कबीर ने कही कही राम को परब्रह्म और विष्णु दोनो ही रूपो मे स्वीकार किया है ।

(ii) कबीर राम के गुणो की वन्दना बार-बार करते हैं, यद्यपि उन्हे निराकार एव निगु‍ॅण ही मानते हैं । इस विरोधाभास के कारण ही कबीर सामान्य पाठक को कबीर की वाणी, अट पटी प्रतीत होने लगती है ।

(iii) सुन्दर सुन्दरा—तुलना करें—

सुन्दरता कहँ सुन्दर करई । छबिगृह दीपसिखा मनु बरई ।

(गोस्वामी तुलसीदास)

राग कल्याण

(३९३)

ऐसैं मन लाइ लै रांम रसनां,
कपट भगति कीजै कौंन गुणां ।।टेक।।
ज्यूं मृग नादें बेध्यौं जाइ, प्यड परैं वाकौ ध्यांन न जाइ ।।
ज्यूं जल मीन हेत करि जांनि, प्रांन तजै बिसरै नहीं बानि ।।
भ्रिगी कीट रहै ल्यौ लाइ, ह्वै लै लीन भ्रिग ह्वै जाइ ।।
रांम नांम निज अमृत सार, सुमिरि सुमिरि जन उतरे पार ।।
कहै कबीर दासनि को दास, अब नही छाड़ौं हरि के चरन निवास ।।

शब्दार्थ—कौन गुणा=क्या लाभ । प्यड शरीर ।

सन्दर्भ—कबीर राम के प्रति अनन्य प्रेम का प्रतिपादन करते हैं ।

भावार्थ—हे जीव, इस दिखावटी और बनावटी भक्ति का क्या उपयोग है ? इससे कुछ भी लाभ नही होना है । भगवान राम की भक्ति के रसास्वादन मे मन लगा कर तू ऐसा तन्मय होजा, जैसे हिरण मधुर ध्वनि मे अनुरक्त होकर वाणों से विद्ध होता रहता है एव उसका शरीर भी गिर जाता है (वह मर जाता है । परन्तु नाद से उसका ध्यान नही हटता है, मछली जल से प्रेम के कारण उससे वियुक्त होने पर अपने प्राण भले ही त्याग देती है परन्तु जल से प्रेम करने का अपना स्वभाव नही छोडती है, तथा कवि भ्रमर मे ध्यान लगाए रहता है और उसी मे लीन होकर भृग ही बन जाता है—(परन्तु व्यक्तित्व का मोह करके भ्रमर को नही छोडता है) राम नाम ही वास्तव मे आत्म स्वरूप, अमृत स्वरूप एव सार तत्व है । उसी को बार-बार स्मरण करके अनेक भक्त जन भवसागर के पार उतर गये हैं । कबीर कहते हैं कि मैं तो भक्तो का भी भक्त हूँ (दासानुदास) हूँ । अब मेरा मन रूपी भ्रमर भगवान के चरणारविन्द मे निवास करना (अनुरक्त रहना) नहीं छोडेगा ।

अलकार—(i) उदाहरण—ज्यूं ······है जाइ ।

(ii) वक्रोक्ति— कौन गुणा ।
(iii) उल्लेख—निज अमृत सार ।
(iv) पुनरुक्ति प्रकाश—सुमिर सुमिर ।
(v) सभंग पद यमक— दासनि दास ।

विशेष— (i) अनन्य भक्ति का प्रतिपादन है ।
(ii) मृग, मीन, भृंगी परम्परागत प्रेम-प्रतीक हैं ।

राग सारंग

(३९४)

यहु ठग ठगत सकल जग डोलै,
गवन करै तब मुषहु न बोलै ।।टेक।।
तू मेरौ पुरिषा हौं तेरी नारी, तुम्ह चलतैं पाथर थैं भारी ।।
बालपनां के मींत हमारे, हमहि लाड़ि कत चले हो निनारे ।।
हम सुं प्रीति न करि री बौरी, तुम्ह से केते लागे ढौरी ।।
हम काहू संगि गये न आये, तुम्ह से गढ़ हम बहुत बसाये ।।
माटी की देही पवन सरीरा, ता ठग सूं जन डरै कबीरा ।।

शब्दार्थ—ठग=जीव । नारी=देह से तात्पर्य है । पाथर=पत्थर । थैं भारी=से भी अधिक कठोर । निनारे=न्यारे, अलग । ढौरी=लगन । गढ =अड्डा ।

सन्दर्भ—कबीर जीवन की निस्सारता का निरूपण करते हैं ।

भावार्थ—यह जीव रूपी ठग समस्त ससार को ठगता हुआ घूमता है । यह शरीर का आश्रय लेकर ससार के सुखो को भोगता है और फिर शरीर को छोड कर चला जाता है । (जाते समय यह शरीर के प्रति निर्मोही हो जाता है) और शरीर से मु ह से भी नही बोलता है । इस समय यह काया उससे कहती है कि तुम मेरे पुरुष (पति) हो और मैं तुम्हारी आश्रिता पत्नी हूँ । तुम इस पत्थर से भी अधिक कठोर बन कर चले जा रहे हो ? तुम तो हमारे बालकपन के मित्र हो । तुम हमसे अलग होकर कहाँ जा रहे हो ? जीव उत्तर देता है कि, "हे पगली हमसे प्रीति मत करे । तुम्हारी जैसी न मालूम कितनी नारियो से हमने लगन लगाई है । हम किसी भी शरीर के साथ न तो आए हैं और न किसी शरीर के साथ जाते ही हैं । हमने तुम्हारे जैसे काया रूपी अनेक अड्डे बसाए हैं (हम तो अड्डे पर टिकते हैं और चले जाते हैं । जिस ठग रूपी जीव की काया स्थूल मिट्टी की भाँति नश्वर हैं तथा जिसका प्रेरक तत्त्व हवा की तरह अस्थिर है, उससे भगवान का भक्त कबीर बहुत डरता है, अर्थात् उसके प्रति कबीर बिल्कुल आसक्त नहीं हैं ।

अलंकार—(i) सभग पद यमक—ठग ठगत ।
(ii) व्यतिरेक—पाथर थैं भारी ।
(iii) रूपक—माटी'' 'सरीरा ।

(iv) रूपकातिशयोक्ति—ठग ।

विशेष—(i) देह की नश्वरता, जीव का अनेक योनियो मे भटकना तथा शरीर की आसक्ति का विपरीत लक्षणा द्वारा अच्छा वर्णन किया गया है ।

(ii) जीव न मालूम कब शरीर को छोड दे इससे भगवान का भजन ही सार है । यह व्यजना है ।

(३६५)

धनि सो घरी महूरत्य दिनां,
जब ग्रिह आये हरि के जनां ।।टेक।।
दरसन देखत यहु फल भया, नैंनां पटल दूरि ह्वै गया ।।
सब्द, सुनत संसा सब छूटा, श्रवन कपाट बजर था तूटा ।।
परसत घाट फेरि करि घड़्या, काया कर्म सकल झड़ि पड़्या ।।
कहै कबीर संत भल भाया, सकल सिरोमनि घट मैं पाया ।।

शब्दार्थ—मुहुर्त्त=समय (काल), पटल=पर्दा। कपाट=किवाड । बजर=वज्र । घाट=शरीर । फेरि करि=दुबारा । घडया=निर्माण कर दिया । सकल सिरोमनि=भगवान । काया-कर्म=इन्द्रियासक्ति ।

सदर्भ—कबीरदास सत्संग की महिमा का वर्णन करते है ।

भावार्थ—वह घडी, वह समय तथा वह दिन धन्य था जब घर पर भगवान के भक्त पधारे । उनके दर्शन करते ही यह प्राप्त हो गया कि आखो के सामने से अज्ञान का पर्दा हट गया । उनके उपदेशामृत को सुनते ही समस्त संशय दूर हो गये तथा कानो पर लगे हुए बज्र के किवाड भी टूट गये । उनके स्पर्श मात्र से यह काया दूसरी ही होगई अथवा उनके सत्सग द्वारा मुझे एक नवीन जीवन ही प्राप्त हो गया तथा विषय-भोगो के प्रति समस्त आसक्ति समाप्त हो गई । कबीर कहते हैं कि मुझको सत बहुत ही अच्छे लगे, क्योकि उनकी सगति के प्रभाव से मुझको अपने हृदय मे सम्पूर्ण विश्व के शिरोमणि भगवान का साक्षात्कार हो गया ।

अलकार—(i) चपलातिशयोक्ति की व्यजना—दरसन·······पडया ।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—पटल ।

विशेष—समभाव के लिए देखें—

जा दिन संत पाहुने आवत ।
तीरथ कोटि स्नान करे फल, जैसो दरसन पावत ।
× × ×
बंधन-करम कठिन जे पहले, सोऊ कारि कहावत ।
सगति रहै साधु की अनुदिन, भव-दुख दूरि नसावत ।
सूरदास, या जनम-मरन तें, तुरत परम-गति पावत ।

(सूरदास)

राग मलार

(३९६)

जतन बिन मृगनि खेत उजारे।
टारे टरत नहीं निस बासुरि, बिडरत नहीं बिडारे ।।टेक।।
अपनें अपनें रस के लोभी, करतब न्यारे न्यारे।
अति अभिमांन बदत नहीं काहू, बहुत लोग पचि हारे ।।
बुधि मेरी किरषी, गर मेरौ बिझुका, अखिर दोइ रखवारे
कहै कबीर अब खान न दैहू, बरियां भली सभारे ।।

शब्दार्थ—जतन=यत्न, साधना। मृगनि=पशुओ, पाशविक वृत्तियाँ-काम क्रोधादि। बिडरत=बिडारना, भगाना। किरषी=कृषि। बिझुका=विजूका, खेत मे जन्तुओ को डराने के लिए खडा किया हुआ पुतला इत्यादि।

सन्दर्भ—कबीरदास विषयासक्ति का वर्णन करते है।

भावार्थ—साधना के अभाव मे काम क्रोधादिक विकारो (अथवा इन्द्रियासक्ति) रूपी पशुओ ने मेरे जीवन रूपी खेत को नष्ट कर दिया है। ये रात दिन घेरे रहते हैं, हटाने से हटते नही हैं और भगाने से भगते नही है। तात्पर्य यह है कि मन को कितना भी समझाओ और विषयो से हटाने का प्रयत्न करो, परन्तु वह मानता ही नही है। पाशविक वृत्तियो रूपी ये पशु अपने अपने विषय-स्वाद के लोभी हैं और अलग-अलग ढग से विषय की ओर प्रवृत्त होते हैं और उसका भोग करते हैं (जिस प्रकार प्रत्येक पशु) अपनी भिन्न रुचि के अनुसार खेत मे उत्पन्न होने वाली वस्तु को खाता है। प्रत्येक पशु का खेत मे घुसने और उसको उजाडने का तरीका भी भिन्न होता है।) इन सवको अपनी सामर्थ्य का बहुत ही घमड है और ये अपने आगे किसी साधक को कुछ भी नही समझते हैं। इनके ऊपर नियन्त्रण करने के प्रयास मे बहुत से साधक थक कर बैठ गये अर्थात् असफल हो गये। कबीर कहते हैं कि अव मैंने ठीक समय पर समस्त स्थिति को समझ लिया है। अपनी बुद्धि रूपी कृषी की रखवाली के लिए मुझे गुरु का उपदेश रूपी विजूका मिल गया तथा 'रा' और 'म' ये दो अक्षर उस खेती की रखवाली करने वाले मिल गये हैं। अव मैं इन मृगो को जीवन-रूपी खेत नष्ट नही करने दूँगा।

अलकार—(i) सांगरूपक—सम्पूर्ण पद खेत और जीवन का रूपक है।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—मृगनि।
(iii) पुनरुक्ति प्रकाश—न्यारे-न्यारे।
(iv) विशेषोक्ति—हारे · · बिडारे।

विशेष—(i) व्यजना यह है कि सद्गुरु की कृपा और प्रभु की भक्ति के द्वारा ही विषयासक्ति को वश मे किया जा सकता है, अन्यथा नही।

(ii) 'वरियाँ' का अर्थ 'वाड' भी हो सकता है। तव इस पक्ति का अर्थ इस प्रकार होगा—"मैंने अपने खेत की सयम एव सात्विक बुद्धि रूपी वाड़ ठीक कर

ली है। 'वरियाँ' का अर्थ 'वेला' करने पर इस पक्ति का अर्थ इस प्रकार किया जाता है, 'अवसर रहते ही मैने खेत को सम्हाल लिया है।" परन्तु हमको जो अर्थ सर्वाधिक उपयुक्त प्रतीत हुआ हमने ऊपर वही लिख दिया है।

(iii) तुलसी की भांति कबीर भी 'राम' नाम की महिमा गाते हुए थकते नही हैं।

(३६७)

हरि गुन सुमरि रे नर प्रांणी।
जतन करत पतन ह्वै जैहै, भावै जांमण जांणी ॥टेक॥
छीलर नीर रहै धूं कैसै, को सुपिनै सच पावै॥
सूकित पांन परत तरवर थै, उलटि न तरबरि आवै॥
जल थल जीव डहके इन माया, कोई जन उबर न पावै।
रांम अधार कहत हैं जुगि जुगि, दा१ कबीरा गावै॥

शब्दार्थ—भावै=मन को अच्छा लगे। जाणम जाणी=जानने योग्य बात को जान ले। छीलर=छिछला पोखर। पान=पत्ता। डहके=धोखा दिया। उबर पावै=उद्धार हो पाया।

सन्दर्भ—कबीर माया के सर्वव्यापी प्रभाव का वर्णन करते है।

भावार्थ– रे प्राणी, तुम भगवान के गुणो का स्मरण करो। इस प्रकार के प्रयत्न (वाह्याचार) करते हुए तेरा शरीर नष्ट हो जाएगा। तुम चाहो, तो इस जानने योग्य तथ्य को जान लो। छिछले पोखर मे पानी कब तक रह सकता है? वह तो सूखेगा ही। (अल्पशक्ति वाला शरीर तो नष्ट होगा ही)। स्वप्न मे प्राप्त होने वाले सुख से कौन सुखी हो सकता है? जो पत्ता पेड से गिर गया है, वह उलट कर वापिस उस वृक्ष मे नही लगता है। जल-थल के सम्पूर्ण जीव इस माया के धोखे मे पडे हुए है। भगवान का कोई भक्त ही इससे छुटकारा पा सकता है। कबीरदास कहते हैं कि एक मात्र राम-नाम ही युग युगातर से इस माया से बचने का आधार रहता आया है।

अलंकार—(i) विशेषयोक्ति—जतन .. जैहै।
(ii) अनुप्रास—जतन जैहै जाणम जाणी।
(iii) वक्रोक्ति—छीलर पावै।
(iv) निदर्शना—छीलर आवै।
(vi) पुनरुक्ति प्रकाश—जुगि जुगि।

विशेष—(i) वाह्य साधनो का विरोध है।
(ii) मन की पवित्रता का प्रतिपादन है।
(iii) राम-नाम की महिमा अपार है।
(iv) समभाव देखें—

मनिखा जनम दुर्लभ है देह न वारम्वार।
तर-वर से फल झाड़ि पडया, बहुरि न लागै डार।

पात झड़ता यूँ कहै, सुनि तर-वर वन-राइ।
अब के बिछुड़े ना मिलै, दूरि पड़ेंगे जाइ। (कबीरदास)

राग धनाश्री

(३९८)

जपि जपि रे जीयरा गोब्यंदो, हित चित परमांनदौ रे।
विरही जन कौ बाल हौ, सब सुख आंनदकदौ रे ॥टेक॥
धन धन झीखत धन गयौ, सो धन मिल्यौं न आये रे।
ज्यूँ बन फूली मालती, जन्म अबिरथा जाये रे॥
प्रांणी प्रीति न कीजिये, इहि झूठै संसारो रे।
धूंबां केरा धौलहर, जात न लागै बारो रे॥
माटी केरा पूतला काहे गरब कराये रे।
दिवस चारि कौ पेखनौ, फिरि माटी मिलि जाये रे॥
कांमीं रांम न भावई, भावै बिषै बिकारो रे।
लोह नाव पाहन भरी, बूड़त नांहीं बारो रे॥
नां मन मूवा न मरि सक्या, नां हरि भजि उतर्‌या पारो रे।
कबीरा कंचन गहि रह्यौ, कांच गहै संसारो रे॥

शब्दार्थ – बालहौ=वल्लभ, प्रिय। धौलहर=महल। जात=नष्ट होते हुए। देखनौ=देखना भर।

सन्दर्भ—कबीरदास जीवन की निस्सारता का वर्णन करते है।

भावार्थ—रे जीव, तुम सदैव गोविन्द का भजन करते रहो। उन परमानंद स्वरूप प्रभु मे ही अपनी प्रीति और चित्त लगाओ। भगवान विरही भक्तजनो को प्रिय तथा सब प्रकार का सुख एवं आनन्द देने वाले हैं। सासारिक सुख-सम्पत्ति के लिए परेशान होते हुए यह जीवन-रूपी धन नष्ट हो गया और वह भी तुम्हे प्राप्त न हो सका। जिस प्रकार निर्जन वन मे फूलने वाली मालती का जन्म व्यर्थ जाता है—वह अपनी सुगन्ध द्वारा किसी को भी उल्लसित नही कर पाती है, उसी प्रकार सेवा रहित प्राणी का जन्म व्यर्थ ही चला जाता है। इन सासारिक प्राणियो के मोह मे मत फँसो। यह समस्त ससारी मिथ्या हैं। ये धुएँ के महल के समान है। इनको नष्ट होते देर नही लगती है। यह शरीर मिट्टी का खिलौना है। यह सहज ही नष्ट हो जाता है। इस पर क्या गर्व करना ? यह शरीर तो चार दिन तक देखने भर की शोभा मात्र है। यह तो फिर मिट्टी मे ही मिल जाएगा। विषयासक्त व्यक्ति को राम भक्ति अच्छी नही लगती है, उसको तो विषय रूपी विकार ही अच्छे लगते हैं। विषयी मानव का जन्म पत्थरो से भरी हुए लोहे की नाव के समान है, जिसको डूबते हुए देर नही लगती है। वासनात्मक मन न कभी मरा और न कभी मर सकेगा। विषयी व्यक्ति हरि का भजन करके कभी पार भी नही उतर सके हैं। कबीरदास कहते हैं कि मैंने तो हरि भक्ति रूपी सुवर्ण का आश्रय ले लिया है। इन

विषयी-प्राणियो ने विषयासक्ति रूपी काच के टुकडे को पकड रखा है। (ये कितने मूर्ख हैं।)

अलंकार—(i) पुनरुक्तिप्रकाश—जपि जपि। धन धन।

(ii) अनुप्रास—जपि जपि जीयरा। मन मूवा मरि।

(iii) पदमैत्री—हित चित।

(iv) यमक—धन धन।

(vi) उपमा—ज्यूं बन फूली मालती।

(vii) दृष्टान्त—धुवा केरा वारो रे।

(viii) गूढोक्ति—काहे गरव कराये रे।

(ix) रूपक—विषय-विकार।

(x) विशेषोक्ति—ना हरि भजि उतर्‌या पारो रे।

(xi) रूपकातिशयोक्ति—कचन, काच।

विशेष—(i) ससार की निस्सारता एव क्षण भगुरता का काव्यात्मक वर्णन है।

(ii) निर्वेद सचारी की व्यजना है।

(iii) ज्यू बन'' जाये रे—समभाव की अभिव्यक्ति देखें=

सो अनन्य गति जाकें मति न टरइ हनुमत।
मै सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवत।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(iv) धूवा केरा धौलहर'' वारो रे।—तुलना कीजिए—

जग-नभ-वाटिका रही है फलि फूलि रे।
धुवां कैसे धौरहर देखि तू न भूलि रे।

(विनय पत्रिका, तुलसी)

(३९९)

न कछु रे न कछू रांम बिनां।
सरीर धरें की रहै परंमगति, साध सगति रहनां ॥टेक॥
मदिर रचत मास दस लागे, बिनसत एक छिनां।
झूठे सुख के कारनि प्रांनीं, परपच करत घनां॥
तात मात सुत लोग कुटब मै, फूल्यो फिरत मनां।
कहै कबीर रांम भजि बौरे, छांड़ि सकल भ्रमनां॥

शब्दार्थ—घना=बहुत। प्रपच=फैलाव।

सन्दर्भ—कबीर संसार की असारता का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—भगवान की भक्ति के बिना कुछ भी नही है, कुछ भी नही है (जीवन निस्सार है) शरीर धारण करने की सार्थकता साधुओ की सगति मे रहना है। इस शरीर रूपी मन्दिर को बनने मे दस महीने लगते हैं, परन्तु यह एक क्षण

मे ही नष्ट हो जाता है। यह जीव ससार के मिथ्या सुखो की प्राप्ति के लिए अनेक प्रकार का फैलाव (प्रपच) रचता है। यह जीव पिता, माता, पुत्र तथा कुटुम्ब के लोगो मे मन से (व्यर्थ ही) फूला हुआ फिरता है। कबीरदास कहते हैं कि हे पागल जीव, तुम सम्पूर्ण भ्रमो को छोडकर भगवान का भजन करो।

अलकार—(i) पुनरुक्ति प्रकाश—न कछुरे न कछु रे।
(ii) अनुप्रास – सरीर साधु सगति।
(iii) रूपकातिशयोक्ति – मदिर।

विशेष—(i) ससार की निस्सारता का वर्णन है।
(ii) सत्सग की महिमा का प्रतिपादन है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी कहा है कि—

बिनु सत्संग बिवेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ कि सोई।

(४००)

कहा नर गरबसि थोरी बात।
मन दस नाज, टका दल गंठिया, टेढ़ौ टेढ़ौ जात ॥ टेक ॥
कहा लै आयो यहु धन कोऊ, कहा कोऊ लै जात।
दिवस चारि की है पतिसाही ज्यूं बनि हरियल पात ॥
राजा भयौ गांव सौ पाये, टका लाख दस ब्रात ॥
रावन होत लंक कौ छत्रपति, पल मै गई बिहात।
माता पिता लोक सुत बनिता, अंति न चले संगात।
कहै कबीर रांम भजि बौरे, जनम अकारथ जात ॥

शब्दार्थ—गरबसि-गर्व करते हो। गंठिया=गाँठ। हरियल=हरे। ब्रात=बरात, समूह। वनिता=स्त्री। विहात=नष्ट हो गई।

सन्दर्भ—कबीर ससार की असारता का प्रतिपादन करते है।

भावार्थ—रे मानव, थोडे से ऐश्वर्य को प्राप्त करके क्यो घमण्ड करता है? तुम्हारे पास दस मन नाज है और तुम्हारी गाँठ मे पाँच आने पैसे (अत्यल्प सम्पत्ति) है। बस, इसी को पाकर तुम टेढ़े-टेढ़े चलने (इतराने) लगे हो। इस सासारिक वैभव को क्या कोई साथ लेकर आता है, और क्या कोई इसे अपने साथ ले जाता है? यह सब बादशाही वन के हरे पत्ते की तरह चार दिन (अत्यल्प समय) की है। जैसे वन के पत्ते चार दिन बाद सूख जाते हैं, उसी प्रकार ससार का समस्त धन वैभव शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। तुम राजा बन गये, तुम्हे सौ गाँव प्राप्त हो गये, दस लाख रुपये मिल गये तथा दस लोगो का समूह भी तुम्हारे साथ हो गया। पर इस सबसे क्या होता है? रावण तो सोने की लका का राजा था। परन्तु एक क्षण भर मे उसका समस्त वैभव नष्ट (ऐश्वर्य) नष्ट हो गया। माता, पिता, परिजन, पुत्र, स्त्री—इसमे से कोई भी अन्तत. साथ नही जाता है। कबीर कहते हैं कि "हे सासारिक सुख-वैभव के पीछे पागल बने हुए मनुष्य इस प्रकार तुम्हारा

जन्म व्यर्थ ही व्यतीत हुआ जा रहा है। तू राम का भजन कर (जिससे तेरा कल्याण हो।)

अलकार—(i) गूढोक्ति—कहा···· बात।
(ii) वक्रोक्ति—कहा लै आयो · ात।
(iii) उपमा—ज्यूँ बनि हरियल पात।
(iv) दृष्टान्त—रावण विहात।

विशेष—(i) ससार और उसके सम्बन्धो की असारता का प्रतिपादन है।
(ii) जीवन की क्षण भगुरता की व्यजना है।
(iii) 'निर्वेद' एव वैराग्य की अभिव्यक्ति है।

(४०१)

नर पछिताहुगे अधा।
चेति देखि नर जमपुरी जैहै, क्यू बिसरौ गोब्यंदा ॥ टेक ॥
गरम कुंडिनल जब तू बसता, उरध ध्यान ल्यौ लाया।
उरध ध्यांन मृत मडलि आया, नरहरि नांव भुलाया ॥
बाल बिनोद छहूं रस भीनां, छिन्न छिन मोह बियापै।
बिष अंमृत पहिचांनन लागौ पांच भांति रस चाखै ॥
तरन तेज पर त्रिय मुख जोवै, सर अपसर नहीं जांनै।
अति उदमादि महामद मातौ, पाप पु नि न पिछांनै ॥
प्यंडर केस कुसुम भये धौला, सेत पलटि गई बांनी।
गया क्रोध मन भया जु पावस, कांम पियास मदांनीं ॥
तूटी गांठि दया धरम उपज्या, काया कवल कुमिलांनां।
मरती बेर बिसूरन लागौ, फिरि पीछे पछितांनां ॥
कहै कबीर सुनहुँ रे संतौ, धन माया कछू संगि न गया।
आई तलब गोपाल राइ की, धरती सेन भया ॥

शब्दार्थ—उरध ध्यान=ऊपर को ध्यान, भगवान मे ध्यान। मृतमडलि=मृत्यु-लोक। तरण=तारुण्य, जवानी। सर अदसर=अवसर कुअवसर। प्यडर=पाडुर=भूरा। पावस=आदि, दया धर्म की बात करने लगा। गाँठ=अहकार की गाँठ। विसूरन=वेदना से दु खी। मदानी=मद पड गई।

सन्दर्भ—पूर्व पद के समान।

भावार्थ—अरे अधे मनुष्य, अपने इन कर्मों के फल स्वरूप तुझको अन्त मे पछताना पडेगा। तू सचेत होकर देख। तुझको यमपुरी जाना है। तुम गोविन्द को क्यो भूल गये हो? जब तुम गर्भ कुण्ड मे थे तब तुमने (उसके कष्टो से त्राण पाने के लिए) भगवान मे ध्यान लगाया। फल स्वरूप तुम उससे निकलकर इस मृत्यु लोक मे आ गए। यहाँ आकर तुमने हे मानव फिर हरि का नाम (अथवा नृसिह भगवान को) भुला दिया है। बाल्यावस्था मे क्रीडाएँ करते हुए तुमने छओ रसो के

भोजन का स्वाद लिया। धीरे धीरे करके तुम मोह मे फँसते गये। जब तुम बड़े हुए तो तुमको कटु और मधुर की पहचान होने लगी। इस समय तुम पाँचो इन्द्रियो के विषय रस का भोग करने लगे। जवानी की तेजी प्राप्त होने पर तुम स्त्री के मुख की ओर टकटकी लगाए रहे और उसका भोग करते समय तुमने अवसर कुअवसर का ध्यान नही रखा। उस समय तुम अत्यन्त उच्छृंखल (विवेक शून्य) होकर आपे के बाहर हो गये तथा तुम्हे पाप-पुण्य का विवेक नही रहा। केश भूरे होकर पुष्पो की भाँति एक दम सफेद हो गये। और वाणी मे भी फर्क आ गया। वात पीछे आने वाला क्रोध समाप्त होगया और हृदय दया रूपी पावस ऋतु से गीला रहने लगा (दैन्य आगया) काम की प्यास भी मंद पड़ गई। अहंकार की गाँठें समाप्त हो गई और स्वय के प्रति दया एव करुणा के भाव जाग्रत होने लगे। (इस वृद्धावस्था मे) कायारूपी कमल मुरझा जाता है। मरते समय पश्चाताप की वेदना से दु खी होता है, अपने अतीत पर पछताने लगता है। परन्तु इस समय पछताने से क्या होता है ? कबीरदास कहते हैं कि हे सतो। सुनो, धन, सम्पत्ति (आसक्ति के विषय) कुछ भी तुम्हारे साथ नही जा सकेगा। जब राजा गोपाल का आदेश आता है, तव प्राणी को उसी समय धरती पर सो जाना पड़ता है।

अलंकार—(i) पुनरुक्ति प्रकाश· · ·छिन छिन।
(ii) अनुप्रास—तरण तेज विष, पाप पु नि पिछानै।
(iii) भग पद यमक—सर अवसर।
(iv) उपमा—कुसुम भये धौला।
(v) रूपक—काया कवल।

विशेष—(i) पावस—लाक्षणिक प्रयोग है।
(ii) ससार की असारता, निस्सारता एव नश्वरता का प्रतिपादन है।
(iii) 'निर्वेद' की व्यजना है।
(iv) छ· रस मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय और तिक्त।

(४०२)

लोका मति के भोरा रे।
जौ कासी तन तजै कबीरा, तौ रांमहि कहा निहोरा रे॥ टेक॥
तव हम वैसे अब हम ऐसे, इहै जनम का लाहा।
ज्यूं जल मै जल पैसि न निकसै, यूं ढुरि मिल्या जुलाहा॥
रांम भगति परि जाकौ हित चित, ताकौं अचिरज काहा।
गुर प्रसाद साध की संगति, जग जीतें जाइ जुलाहा॥
कहै कबीर सुनहु रे संतौ, भ्रंमि परे जिनि कोई।
जस कासी तस मगहर ऊसर, हिरदै रांम सति होई॥

शब्दार्थ—लोका=ससार के लोग। निहोरा=अनुरोध, प्रार्थना।
सन्दर्भ—कबीरदास अंध विश्वासो का खण्डन करते हुए कहते हैं।

भावार्थ—लोगो की बुद्धि भोली है—वे सहज ही हरेक बात पर विश्वास कर लेते हैं। कबीर कहते हैं कि यदि काशी मे शरीर छोडने पर मोक्ष की प्राप्ति हो जाए, तो फिर मोक्ष के लिए राम से कोई प्रार्थना क्यो करे। पहले हम भी अंधविश्वासों मे फँसे हुए थे, परन्तु अब उनसे मुक्त होकर इस प्रकार की विवेक पूर्ण बातें करने लगे हैं। अन्ध विश्वास से मुक्त होकर सच्ची ईश्वर-भक्ति के प्रति उन्मुख हो जाना ही इस मानव-जीवन की सार्थकता है। जैसे जब एक बार जल मे प्रविष्ट हो जाने पर फिर बाहर अलग नही निकाला जा सकता है—वह उसके साथ एक रस हो जाता है, उसी प्रकार यह जुलाहा कबीर भक्ति से द्रवित होकर ब्रह्म के साथ एकाकार हो गया। राम भक्ति मे जिसका प्रेम है और राम-चरणो मे जिसका चित्त लगा हुआ है, उसके लिए इस प्रकार की अद्वैतावस्था की प्राप्ति कोई आश्चर्य की बात नही है। गुरु की कृपा और साधु सगति के प्रभाव से निम्न जाति जुलाहा मे उत्पन्न यह कबीर जीवन-मुक्त हो रहा है। कवीर कहते है कि हे सतो, सुनो। कोई भी किसी प्रकार के भ्रम मे न रहे। अगर भगवान के प्रति सत्य निष्ठा है, तो अवश्य मोक्ष की प्राप्ति होगी। फिर चाहे काशी मे शरीरात हो, चाहे मगहर में।

अलंकार—(i) पर्यायोक्ति—जौ कासी····निहोरा।
(ii) उदाहरण— ज्यूँ जुलाहा।
(iii) वक्रोक्ति—ताकौ अचिरज काहा ?
(iv) अनुप्रास—जग जीतैं जाइ जुलाहा।
(vi) व्यतिरेक की व्यजना—जग जीतैं जाइ जुलाहा।

विशेष—(i) अध विश्वास का खण्डन है।
(ii) कबीर के 'मगहर' वास वाली बात की पुष्टि होती है।
(iii) 'जुलाहा' शब्द मे सवर्ण जाति पर कटाक्ष है। नीच जाति मे जन्म लेकर भी कबीर ने मोक्ष प्राप्त करली और बडे-बडे धर्म ध्वज रह गये। ठीक कही है—

जाति पाँति पूछै ना कोई। हरि कौ भजै सो हरि कौ होई।

तथा—

भगतिवंत अति नीचउ प्रानी। मोह प्रानप्रिय असि मम बानी।

(४०३)

ऐसी आरती त्रिभुवन तारै,
तेज पुंज तहाँ प्रांन उतारै॥ टेक॥
पाती पंच पहुप करि पूजा, देव निरजन और न दूजा।
तनमन सीस समरपन कीन्हां, प्रगट जोति तहा आतम लीनां॥
दीपक ग्यांन सबद धुनि घटा, पर पुरिख तहां देव अनंता।
परम प्रकास सकल उजियारा, कहै कबीर मै दास तुम्हारा॥

शब्दार्थ—पाती पच=पच ज्ञानेन्द्रियाँ रूपी पत्ती। पहुप=मनरूपी फूल। सवद=अनहदनाद।

सन्दर्भ—इस पद मे कबीरदास एक ऐसी आरती का वर्णन करते हैं जिसके प्रकाश मे परमात्मा के दर्शन हो जाते हैं।

भावार्थ—कबीरदास कहते हैं कि साधक को अपने इस देव की आरती इस प्रकार मेरे द्वारा निर्दिष्ट ढग से उतारनी चाहिए जो तीनो लोको को तारने वाली है। इस आरती को प्राण वहाँ उतारता है जहाँ तेज-पुंज हरि का निवास है। पाँचो ज्ञानेन्द्रियो को पाँच बत्तियों के रूप मे लेकर एक मात्र निरजन देव की पूजा करनी चाहिए। इसके बाद नैवेद्य के स्थान पर अपना तन, मन और शरीर समर्पित कर दे और फिर सहस्रार मे प्रकट होने वाली ज्योति मे अपनी आत्मा को पूरी तरह लीन कर देना चाहिए। इसके बाद ज्ञान का दीपक लेकर अनहदनाद रूपी घटे का शब्द करते हुए उस अनन्त परमपुरुष का पूजन करना चाहिए। वास्तव मे उसी परमपुरुष के प्रकाश से यह समस्त ससार प्रकाशित हो रहा है। कबीरदास कहते हैं कि उस ज्योति के सम्मुख साधक को कहना चाहिए कि हे प्रभु! मैं आपका सेवक हूँ। (कबीरदास जी अपने आपको इसी परम ज्योति स्वरूप पुरुष का दास कहते हैं।)

अनहदनाद—देखें टिप्पणी पद स० १६४।

अलंकार—(i) अनुप्रास—पाती पत्र पहुप पूजा।
(ii) रूपक पाती पच पहुप। दीपक ज्ञान, सबद धुनि घंटा।
(iii) पदमैत्री—तन मन समरपन।
(iv) सागरूपक—सम्पूर्ण पद मे। आरती के वाह्य उपकरणो के आध्यात्मिक अर्थो की कल्पना से सम्पूर्ण आरती ही आध्यात्मिक साधना एवं भक्ति मे परिणत हो गई है।

विशेष—प्राय समस्त सम्प्रदायो मे पूजा के अन्त मे भगवान की आरती उतारी जाती है। कबीरदास ने भी पदावली के अन्त मे अपने इष्ट देव की आरती उतारी है। यह बात दूसरी है कि इस आरती का स्वरूप लौकिक की अपेक्षा आध्यात्मिक अधिक है। उनके मतानुसार प्रभु के प्रति सर्वस्व समर्पण ही वस्तुतः उनकी सच्ची आरती उतारना है।

रमैंणी

दृष्टव्य—रमैनी को रामणी अथवा 'रामायण' का विगडा रूप माना गया है। रमैनियो की रचना दोहा-चौपाइयो मे की गई है। कबीर की रमैनी के वर्ण्य विषय हैं—स्तुति-वर्णन, उपदेश-वर्णन अथवा लोकोपकार का निरूपण आदि।

राग सूहौ

तू सकल गहगरा, सफ सफा दिलदार दीदार ॥
तेरी कुदरति किनहू न जानीं, पीर मुरीद काजी मुसलमानी ।
देवी देव सुर नर गण गध्रप, ब्रह्मा देव महेसुर ॥
तेरी कुदरति तिनहूं न जांनी ॥ टेक ॥

शब्दार्थ—गहगरा=गहगहा, प्रफुल्ल, आनन्द से युक्त। सफ सफा=स्वच्छ एव उज्ज्वल। दीदार=साक्षात्कार स्वरूप। कुदरति=माया अथवा सृष्टि। पीर=धर्मगुरु। मुरीद=चेला। काजी=मौलवी। मुसलमानी=मुसलमान सम्बन्धी।

सन्दर्भ—कबीर भगवान की महिमा का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—हे भगवान तुम तुम्हारा दर्शनपूर्ण आनन्द स्वरूप, स्वच्छ एवं उज्ज्वल तथा प्रेमास्पद है। किसी मे भी तुम्हारी लीला (सृष्टि के रहस्य) को नही जाना है। मुसलमानो मे सिद्ध या धर्मगुरु (पीर), चेले, न्यायकर्त्ता विचारक (काजी) कहे जाने वाले, तथा देवी देवता, सुर, नर, गंधर्व, ब्रह्मा, महेश्वर आदि कोई तेरी लीला को नही समझ पाए हैं।

अलंकार—सम्बोधितशयोक्ति—सम्पूर्ण छन्द।

[१] एकपदी रमैणी

(१)

काजी सो जो काया बिचारैं, तेल दीप मैं बाती जारै ॥
तेल दीप मै बाती रहै, जोति चीन्हि जे काजी कहै ॥
मुलनां बंग देइ सुर जांनी, आप मुसला बैठा तांनीं ॥
आपुन मै जे करै निवाजा, सो मुलना सरबत्तरि गाजा ॥
सेष सहज मै महल उठावा, चद सूर बिचि तारी लावा ॥
अर्ध उर्घ बिचि आनि उतारा, सोई सेष तिहूं लोक पियारा ॥

जगम जोग बिचारै जहू वां जीव सीव करि एकै ठऊवां ॥
चित चेतनि करि पूजा लावा, तेतौ जंगम नांउं कहावा ॥
जोगी भसम करै भौ भारी, सहज गहै बिचार बिचारी ॥
अनभै घट परचा सू बोलै, सो जोगी निहचल कदे न डोलै ॥
जैन जीव का करहु उबारा, कौंण जीव का करहु उधारा ॥
कहां बसै चौरासी का देव, लहौ मुकति जे जांनौ भेव ॥
भगता तिरण मतै संसारी, तिरण तत ते लेहु बिचारी ॥
प्रीति जांनि रांम जे कहै, दास नांउ सो भगता लहै ॥
पंडित चारि बेद गुंण गावा, आदि अंति करि पूत कहावा ॥
उतपति परलै कहौ बिचारी, संसा घालौ सबै निवारी ॥
अरधक उरधक ये सन्यासी, ते सब लागि रहै अबिनासी ॥
अजरावर कौं डिढ करि गहै, सो संन्यासी उन्मन रहै ॥
जिहि धर चाल रची ब्रह्मंडा, पृथमीं मारि करी नव खडा ॥
अबिगत पुरिस की गति लखी न जाइ, दास कबीर अगह रहे ल्यो लाई ।

शब्दार्थ—काया=शरीर मे स्थित चैतन्य । काजी=विचारक । मुसल्ला=वह दरी जिस पर नमाज पढी जाती है । सरवत्तरि=सर्वत्र । सेष = शेख=मुसलमानो की एक श्रेष्ठ जाति । आनी उतरा=अपने आप को अवस्थित कर देता है । सीव=शिवत्व । अनभै=अभय । आदि-अत = ब्रह्मा । अरधक-उरधक=नीच ऊँच । अजरावर अजर-अमर । उन्मन=समाधि की अवस्था । अगह=अगम्य ।

सन्दर्भ—कबीरदास समस्त धर्मावलम्बियो को, विशेषकर मुसलमानो को, वाहरी पाखण्ड छोडकर परम तत्व मे प्रतिष्ठित होने का उपदेश देते है ।

भावार्थ—काजी (विचारक) वही है जो शरीर मे स्थित चैतन्य का चिन्तन करता है । वह ईश्वर के प्रेम रूपी तैल मे ज्ञान की बत्ती जलाता है । जो प्राण रहते हुए परम-ज्योति को पहचान लेता है, वही सच्चा काजी है । मुल्ला खुदा की आवाज के नाम पर वाग देता है और मुसल्ला फैलाकर नमाज पढने वैठ जाता है । परन्तु जो अपने शरीर के भीतर नमाज पढता है अर्थात् शरीर मे व्याप्त परम ज्योति की अराधना करता है वही मुल्ला सर्वत्र गरजता है अर्थात् हृदय मे भगवान की आवाज सुनकर निर्भय वना हुआ घूमता है । शेख वही है जो सहज अवस्था को प्राप्त करता है, चन्द्र और सूर्य (इडा, पिंगला) नाड़ियो को समन्वित करके सुषुम्ना मे समाहित करा देता है तथा प्राण वायु को रोक लेता है । वह अधोवर्ती और ऊर्ध्ववर्ती कमलो के वीच स्थित अनाहत (हृदय) चक्र मे स्थित भगवान् के समीप अपने आप को अवस्थित करता है । ऐसा ही शेख वास्तव मे तीनो लोको का प्रिय वनता है । जगम साधु वही है जो योग का चिन्तन करता है । उस स्थान पर ध्यान केन्द्रित करता है जहां पर जीव और ब्रह्म का भेद समाप्त हो जाता है । जो चित्त को परम चैतन्य में अवस्थित करके पूजा करते है, वे ही वास्तव मे जंगम नाम के

अधिकारी है। सच्चा योगी वही है जो ससार के प्रति आसक्ति को भस्म कर लेता है तथा चिन्तनपूर्वक सहज तत्व को ग्रहण करता है। वह अपने अन्त करण मे ही अभय तत्व से परिचय प्राप्त करके वात करता है। उसी का मनन और निदिध्यासन करता है। ऐसे योगी का निश्चय कभी डिगता नही है। हे जैनी, तुम अहिंसा द्वारा जीव की रक्षा करने का दम्भ भरते हो, पर यह तो विचार करो कि तुम किस जीव का उद्धार कर रहे हो ? (जीव का स्वरूप पहिचान कर) यह जानने का प्रयत्न करो कि चौरासी लाख योनियो का स्वामी कहाँ रहता है ? इस रहस्य को समझने पर ही तुमको मुक्ति की प्राप्ति हो सकेगी। भक्त इस ससार से तिरने (पार होने) का सकल्प करता है, पर वह पहले यह तो समझ ले कि तात्विक रूप से तिरना है क्या ? प्रेम का स्वरूप समझ कर जो राम का स्मरण करता है, वही भक्त भगवान का दास कहला सकता है। पण्डित चारो वेदो का गुणगान करता है और विश्व के आदि और अन्त स्वरूप ब्रह्म का पुत्र कहलाता है। पर हे पडित उत्पत्ति (आदि) एव प्रलय (अत) के वास्तविक स्वरूप का चिन्तन करके उसका वर्णन करो। इस पर विचार करके सम्पूर्ण भ्रम और सशय को समाप्त करो। नीची और ऊँची सभी स्थितियों के सन्यासी वास्तव मे उस एक अविनाशी तत्व मे ही अनुरक्त रहते हैं। जो सन्यासी उस अजर,अमर तत्व को दृढतापूर्वक (पूर्ण निष्ठा के साथ) ग्रहण कर लेता है, वह समाधि को प्राप्त करता है, और परमतत्व मे प्रतिष्ठित हो जाता है। जिसने पृथ्वी को गति प्रदान की, ब्रह्माण्ड की सृष्टि की और पृथ्वी को नवखण्डो मे विभाजित कर दिया, उस अविगत पुरुष की माया किसी के द्वारा भी नही जानी गई है। भक्त कबीर उस अगम्य तत्व मे अपनी लौ लगाए हुए हैं।

अलकार—(i) रूपक—तेल ‥जारै।
(ii) भ्रान्तिमान—मुलना जानी।
(iii) पदमैत्री—अर्ध उर्ध। अरधक उरधक।
(iv) अनुप्रास—जगम जागे जहू वा, जीव। तिरण तत ते।
(v) वक्रोक्ति—कौन उधारा।
(vi) सम्बन्धातिशयोक्ति—अविगत जाइ।

विशेष—धार्मिक कृत्यो तथा कायायोग की अपेक्षा ज्ञान एव भक्ति भी श्रेष्ठता का प्रतिपादन है।

[२] सतपदी रमैणी

(२)

कहन सुनन कौ जिहि जग कीन्हा, जग भुलांन सो किनहू न चीन्हा ।।
सत रज तम थै कीन्ही माया, आपण मांझै आप छिपाया ।।
ते तौ आहि अनद सरूपा, गुन पल्लव बिस्तार अनूपा ।।
साखा तत थै कुसम गियांनां, फल सो आछा रांम का नांमां ।।

सदा अचेत चेत जीव पंखी, हरि तरवर करि बास ।
झूठे जगि जिनि भूलसि जियरे, कहन सुनन की आस ।।

शब्दार्थ—कुसम=फूल ।

सदर्भ—कबीर जगत के मिथ्यात्व का प्रतिपादन करते है ।

भावार्थ—कहने-सुनने के लिए ही (केवल लौकिक दृष्टि से ही जिस जग की रचना हुई है, उसके वास्तविक स्वरूप को किसी ने नही जाना है और ससार के सम्पूर्ण जीव उसमे भ्रमित हैं । सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण के द्वारा इस माया-मोह की सृष्टि हुई है । इस चैतन्य तत्व ने अपने आपको अपनी ही माया के द्वारा आवृत्त कर लिया है । वह तत्व स्वय तो आनन्द स्वरूप है । ये तीनो गुण इस जगत् रूपी वृक्ष के पत्ते है । उसकी शाखाओ मे ग्यान के फूल लगे है और रामनाम उस का फल है । रे निरतर अज्ञान मे अचेत रहने वाले जीव रूपी पक्षी जागो और हरि रूपी इस वृक्ष की शरण मे चले जाओ । रे जीव, इस मिथ्या ससार के मोह मे अपने आपको मत भूलो । इस जगत की समस्त आशाएँ केवल कहने-सुनने भर के लिए है—उनका परमार्थत कोई अस्तित्व नही है ।

अलंकार—(i) सवधातिशयोक्ति—किनहूँ न चीन्हा ।
(ii) साग रूपक - गुन पल्लव " जामा ।
(iii) सभग पद यमक अचेत चेत ।
(iv) रूपक – जीव पखी, हरि तरवर ।

विशेष—(i) ज्ञान और भक्ति का समन्वित सदेश है ।

(ii) ससार को 'कहन सुनन' की आस कहकर उसके क्षणभंगुर स्वरूप का कथन किया गया है ।

(iii) कहन-सुनन मे लक्षण का चमत्कार दृष्टव्य है ।

(iv) उन्मनि--देखें टिप्पणी पद स १४४ ।

(v) गुन पल्लव नामा – तुलना करें –

अव्यक्त मूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने ।
पट कध साखा पंच वीस अनेक पर्न सुमन घने ।
फल जुगल विधि कटु मधुर वेलि अकेजि जेहि आश्रित रहे ।
पल्लव फूलत नवल नित संसार विटप नमामहे ।

(गोस्वामी तुलसीदास, रामचरितमानस)

(३)

सूक विरख यहु जगत उपाया, समझि न परै विषम तेरी माया ।।
साखा तीनि पत्र जुग चारी फल दोइ पाप पुंनि अधिकारी ।
स्वाद अनेक कथ्या नही जांहीं, किया सदित्र सो इन मै नाहीं ।।
तोतौ आहि निनार निरंजना, आदि अनादि न आंनां ।
कहन सुनन कौं कीन्ह जग आपै आप भुलानां ।।

शब्दार्थ—सूक=सूखा हुआ, निष्तत्व एव नीरस। निनार=भिन्न।

सन्दर्भ—पूर्व पद के समान। विषम=दुर्बोध।

भावार्थ- हे भगवान, आपने निष्तत्व एव नीरस जगतरूप वृक्ष को उत्पन्न किया है। हे प्रभु आपकी यह माया बडी ही दुर्बोध है, समझ मे नही आती है। त्रिगुणरूपी इसकी तीन शाखायें हैं चार युग ही इसके पत्ते हैं और पाप-पुण्य ही इसके दो फल हैं। इन फलो के विषय भोगरूप अनेक स्वाद हैं जिनका वर्णन नही किया जा सकता है। जिसने इन सबको बनाया है, वह इनमे लिप्त नही है—वह इनसे पृथक एव निरजन माया-रहित तत्व है। आदि और अनादि नाम से जिसे अभिहित किया जाता है, वह यही निरजन तत्व है, कोई दूसरा नही। उसने केवल कहने सुनने के लिए जगत की सृष्टि की है—अर्थात् जगत एव जगत की सृष्टि करना यह सब कोई पारमार्थिक सत्य नही है, केवल कथन मात्र है। सृष्टि कुछ हुई ही नही, वह तो विवर्त मात्र है। ब्रह्म स्वय अपनी माया मे ही भूले हुए हैं। हम सब स्वय अपने बाह्य रूप मे लिप्त होकर अपने वास्तविक आभ्यतर स्वरूप को भूले हुए हैं। यही जगत है।

अलंकार—(i) विरोधाभास—मूक · उपाया।

(ii) साग रूपक – सम्पूर्ण पद।

विशेष—(i) देखें टिप्पणियाँ पूर्व रमैणी।

(ii) इसमे अद्वैतवाद एव मायावाद के अनुसार जगत का निरूपण है।

(iii) यहाँ जगत की सृष्टि की ज्ञान परख एव भक्ति परख दोनो प्रकार की व्याख्यायें हैं। जीव दोनो की समन्वित दृष्टि से ससार को देखे-यही उपदेश है। भक्त के लिए जगत आनन्द रूप तथा ज्ञानी के लिए विवर्त रूप है।

(४)

जिनि नटवै नटसरी साजी, जो खेलै सो दीसै बाजी।
मो बपरा थे जोगति ढाठी, सिव बिरंचि नारद नहीं दीठी॥
आदि अंति जो लीन भये है, सहजै जांनि संतोखि रहे हैं।
सहजै रांम नांम ल्यौ लाई, रांम नांम कहि भगति दिढाई॥
रांम नांम जाका मन मांनां, तिन तौ निज सरूप पहिचांनां।
निज सरूप निरजनां, निराकार अपरपार अपार।
रांम नांम ल्यौ लाइस जियरे, जिनि भूलै बिस्तार॥

शब्दार्थ—नरसरी=नाट्यशाला सृष्टि। नटवै=नट, सृजक। दीसै=दृष्टिगत होता है। बाजी=किसी किसी को। दिढाई=दृढ करना। बपरा=बेचारा।

सन्दर्भ—कबीर जगत की अनिवर्चनीयता का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—जिस सर्जन कर्त्ता ने इस जगतरूपी नाट्यशाला की रचना की है और इसमे वह जो लीला करता है वह किसी किसी को ही दृष्टिगत होती है।

मैं वेचारा तो किनमे हूँ। मैं तो इन्ही आँखो से इस जगत को देखता हुँ। शिव, ब्रह्मा तथा नारद सरीखे ज्ञान-दृष्टि वाले भी इसको नही जान पाए हैं। वे तो सम्पूर्ण भूतो के आदि एव अत रूप भगवान मे लीन रहते हैं तथा भगवान के सहज रूप का ज्ञान करके उसमे सतोष का अनुभव करते है। वे सहज ही राम नाम मे अपना ध्यान लगा लेते हैं और निरन्तर राम के नाम स्मरण से अपनी भक्ति को दृढ करते रहते हैं। जिनका मन राम-नाम मे तन्मय हो जाता है, उन्हे आत्म-स्वरूप का साक्षात्कार हो जाता है। कबीर कहते हैं कि भगवान का स्वरूप तो निरंजन माया रहित है। वह निराकार, अजेय और असीम है। अत. हे जीव, तुम राम-नाम मे अपनी लौ लगाओ और इस जगत के पसारे मे भ्रमित मत हो ओ।

अलंकार—(i) संवंधातिशयोक्ति—सिव…… दीठी।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—नटवै नटसारी।

विशेष—(i) जगत की अनिवर्चनीयता की ओर सकेत है।
(ii) प्रेमा भक्ति के द्वारा ही प्रभु की लीला समझ मे आ सकती है।

(५)

करि बिसतार जग धंधै लाया, अंध काया थै पुरिष उपाया ।।
जिहि जैसी मनसा तिहि तैसा भावा, ताकूं तैसा कीन्ह उपावा ।
तेतौ माया मोह भुलांनां, खसम रांम सो किनहूं न जांनां ।।
जिनि जांन्यां ते निरमल अंगा, नहीं जांन्यां ते भये भुजगा ।
ता मुखि बिष आवै विष जाई, ते बिष ही बिष मै रहा समाई ।।
माता जगत भूत सुधि नांही, भ्रंमि भूले नर आवै जाहीं ।
जानि वूझि चेते नही अधा, करम जठर करम के फंधा ।।
करम का वाध्या जीयरा, अह निसि आवै जाइ ।
मनसा देही पाइ करि हरि बिसरै तौ फिर पीछै पछिताइ ।।

शब्दार्थ—धंधै लाया = कर्म जाल मे फसा दिया। भुजगा = सर्प = विष से पूर्ण अर्थात् विषयी। जठर = पेट।

सन्दर्भ—कवीर जगत के प्रपचो मे फँसे हुए जीव का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—भगवान ने यह माया का विस्तार करके जगत के लोगो को अनेकानेक धन्धो (कर्म-जाल) मे फँसा दिया है। इस जड़ शरीर से जीव की उत्पत्ति की है। जिस जीव की जैसी वासना होती है, उसको वैसी ही वस्तुएँ रुचिकर होती हैं। उनके लिए भगवान ने वैसे ही साधन जुटा दिए हैं। उन्ही साधनों के अनुरूप वे जीव माया-मोह मे भ्रमित होते रहते हैं। कोई भी जीवात्मा अपने पति रूप राम को नहीं जान पाती है। जिन जीवात्माओ ने उन प्रभु को जान लिया अर्थात् जिन जीवो के मन मे भगवान का प्रेम उत्पन्न हो जाता है, उनका अन्तःकरण पूर्णतः निर्मल हो जाता है। जो उसे नहीं जान पाता है, वे सदैव विषपूर्ण सर्प की तरह विषयी ही बने रहते हैं—उनके अगो से निरन्तर वासना

रूपी विष ही निस्सृत होता रहता है, और जो कुछ उनके मुख मे जाता है, वह भी विष ही बन जाता है। (उनकी समस्त आकाक्षाएँ वासना से विषैली होती हैं और उनके सम्पूर्ण भोग एव कार्य वासना के विष मे परिणत होते हैं।) यह सारा जगत वासना के विष से ग्रस्त होकर उन्मत्त हो रहा है और इन प्राणियो को अपना होश नही है। मनुष्य भ्रम से अपने स्वरूप को भूला हुआ आवागमन के चक्र मे पडा हुआ है। यह अज्ञानग्रस्त प्राणी जान बूझ कर मोह निद्रा मे फँस गया है और चेतता नही है, और इसी से वह कर्म की जठराग्नि मे जलता है और कर्म के फदो मे फँसा हुआ है। कर्म के बन्धनो मे बधा हुआ यह जीव रात-दिन (निरन्तर) आवागमन के चक्कर मे घूमता है। वह अपनी अभीप्सित मानव योनि प्राप्त करके भी भगवान को भूल जाता है और अन्त मे पछताता है।

अलंकार—(i) रूपक—जग धवैं, करम जठर, करम के फदा।

(ii) विरोधाभास—अध' ' ' उपाया।

(iii) सवधातिशयोक्ति—किनहूँ न जाना।

(iv) रूपकातिशयोक्ति—भुजगा।

(v) श्लेष—विप।

(vi) अनुप्रास—भूत, भ्रमि, भूले।

विशेष—(i) माया-मोह ग्रस्त जीव का सजीव चित्रण है।

(ii) विषयी जीव के लिए भुजग शब्द का प्रयोग बडा ही अर्थ गर्भित है यह 'विषयी' का परम्परागत गृहीत प्रतीक है।

(iii) साँप को दूध पिलाने से विष मे वृद्धि होती है। विपयी की विषय-भोग के द्वारा विषयाग्नि मे वृद्धि होती है।

(६)

तौ करि त्राहि चेति जा अंधा, तार परकीरति भजि चरन गोब्यवा ॥
उदर कूप तजौ ग्रभ बासा, रे जीव रांम नांम अभ्यासा ।
जगि जीवन जैसे लहरि तरगा, खिन सुख कूं भूलसि बहु संगा ॥
भगति कौ हीन जीवन कछू नांहीं, उतपति परलै बहुरि समाहीं ।
भगति हीन अस जीवनां, जन्म मरन बहु काल ।
आश्रम अनेक करसि रे जियरा, रांम बिना कोई न करै प्रतिपाल ॥

शब्दार्थ—त्राहि=दैन्यपूर्वक रक्षा की प्रार्थना। परकीरति=अन्य व्यक्तियो की खुशामद। कूप=कुआँ। अन्धा=धुन्धा, अस्पष्ट दृष्टि वाला।

सन्दर्भ—कबीरदासजी कहते हैं कि राम-भक्ति ही उद्धार का एकमात्र उपाय है।

भावार्थ—हे अस्पष्ट दृष्टि वाले जीव, चेतना और दीनतापूर्वक भगवान से रक्षा की प्रार्थना कर। अन्य व्यक्तियो की खुशामद तथा अन्य देवताओ की आराधना छोड़कर भगवान गोविंद के चरणो का ध्यान करो। उदररूपी कुएँ (गर्भ) मे तुमको

बार-बार आना पडता है। उससे मुक्ति प्राप्त करने के लिए हे जीव ! तू भगवन्नाम का अभ्यास कर। यह ससार का जीवन तो जल की तरङ्ग के समान क्षणिक है। इसके क्षणिक सुख के पीछे तुम अनेक साधु-सतो की सङ्गति मे उपलब्ध ज्ञान-चर्चा की उपेक्षा क्यो करते हो ? भक्ति से रहित जीव का जीवन वास्तव मे कुछ नही है। वह तो उत्पन्न होता है और फिर नष्ट हो जाता है। (वह अनेक बार जन्म लेता है और मरता है—बस इसी क्रम मे फँसा रहता है।) हे जीव, तुम भले ही अनेक आश्रमो (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास) का पालन करो, परन्तु भगवान राम की भक्ति के बिना तुम्हारी कोई रक्षा नही करेगा।

अलंकार—(i) रूपक—उदर-कूप।
(ii) उपमा—जैसें लहरि तरङ्गा।
(iii) विशेषोक्ति की व्यजना—आश्रम 'कोई न करै प्रतिपाल।

विशेष—(i) निर्वेद सचारी की व्यजना है।
(ii) ज्ञान-भक्ति के प्रकाश को न देख सकने वाले प्राणी को 'चुधा' कहकर कबीर ने अज्ञानी के स्वरूप को मूर्त्तिमत्ता प्रदान कर दी है।

(७)

**सोई उपाव करि यहु दुख जाई, ए सब परहरि बिसै सगाई ॥
माया मोह जरै जग आगी, ता सगि जरसि कवन रस लागी ।
त्राहि त्राहि करि हरी पुकारा, साध सगति मिलि करहु बिचारा ॥
रे रे जीवन नहीं बिश्रांमां, सब दुख खंडन रांम को नांमां ।
रांम नांम ससार मै सारा, रांम नांम भौ तारन हारा ॥
सुम्रित बेद सबै सुनै, नहीं आवै कृत काज ।
नहीं जैसै कुंडिल बनित मुख मुख सोभित बिन राज ॥**

शब्दार्थ—सगाई=सम्बन्ध। भौ=ससार। सुम्रित=स्मृति, धर्मशास्त्र।

सन्दर्भ—पूर्व रमैंणी के समान।

भावार्थ—रे जीव, तुमको वही उपाय करना चाहिए जिससे यह संसार का (आवागमन का) दुख दूर हो। इन समस्त विषयो (भोगेच्छाओ) तथा सासारिक सम्बन्धो को त्याग दो। यह सारा ससार माया-मोह की आग मे जल रहा है। तुम किस आनंद के लोभ मे फँसकर इस विषयाग्नि के साथ जलना चाहते हो ? हे जीव, दीनतापूर्वक भगवान से रक्षा की पुकार करो तथा साधुओ की सङ्गति मे बैठकर उस परम तत्व का चिंतन करो। हे जीव, तुम्हे कही अन्यत्र सुख-शाति नही मिलेगी। भगवान राम का नाम ही समस्त दुखो को मेटने वाला है। राम नाम ही ससार मे सार वस्तु है और यही भवसागर से पार करने का साधन है। धर्मशास्त्र, वेद आदि सब सुन लो, परन्तु इनमे कोई भी पुण्य-कार्य नही होता है अर्थात् ये सब (राम-भक्ति के अभाव मे) व्यर्थ ही रहते हैं, जैसे कुण्डल आदि आभूषणो से युक्त नारी का मुख सौभाग्य-चिन्ह के अभाव मे सुशोभित नही होता है।

अलकार—(1) मानवीकरण—साधनाओं का ।
(ii) उदाहरण—नही जैसे' बिन राज ।
(iii) गूढोक्ति— जरसि कवन आगी ?
(iv) रूपक की व्यजना – भौ ।
(v) सवधातिशयोक्ति—सुम्रित 'काज ।

विशेष (1) वाह्याचार की व्यर्थता एव भगवद्भक्ति की महत्ता का प्रतिपादन है ।

(ii) रामभक्ति को सौभाग्यसूचक चिन्ह कहना बडा ही सार्थक प्रयोग है ।

(iii) कबीर के राम दाशरथि राम न होकर निर्गुण निराकार राम हैं। कबीर राम के साकार रूप की आराधना का प्रतिपादन न करके उनके गुणो के अनुसरण का उपदेश देते हैं ।

(८)

अब गहि रांम नांम अबिनासी, हरि तजि जिनि कतहूं कै जासी ।
जहां जाइ तहां तहां पतगा, अब जिनि जरसि समझि बिष सगा ।।
चोखा रांम नांम मनि लीन्हां भिंग्री कीट भ्यन नहीं कीन्हां ।
भौसागर अति वार न पारा, ता तिरबे का करहु बिचारा ।।
मनि भावै अति लहरि बिकारा, नहीं गमि सूझै बार न पारा ।
भौसागर अथाह जल, तामे बोहित रांम अधार ।
कहै कबीर हम हरि सरन, नब गोपद खुर बिस्तार ।।

शब्दार्थ—कै=किधर, कहाँ । वौहित=जहाज, नौका । गोपद=गाय का पैर ।

सन्दर्भ—पूर्व रमैणी के अनुसार ।

भावार्थ—हे जीव । अब तुम अविनाशी (सत्य स्वरूप) भगवान के नाम स्मरण की शरण ग्रहण करो । हरि का आश्रय मत छोडो । उसे छोडकर तुम अन्यत्र जाओगे भी कहाँ ? जहाँ भी तुम जाओगे, वहाँ-वहाँ तुमको वासना रूपी अग्नि मे पतगा बन कर जलना पडेगा । अब विषयासक्ति के वास्तविक रूप को समझ लो और विषय की अग्नि मे अपने जीवन को नष्ट मत करो । जो प्राणी राम-नाम रूपी श्रेष्ठ मणि का आश्रय ग्रहण कर लेते हैं उनको भगवान भृग कीट न्याय से अपने आपसे भिन्न नही करते हैं । इस भवसागर की कोई सीमा नही है । इसके पार होने के उपाय पर विचार करना चाहिए। जिनके मन विषय-विकार रूपी लहर के प्रति आकर्षित होते हैं, उन्हे भवसागर की न सीमा दिखाई देती है और न उसके पार जाने का कोई उपाय ही सूझता है । इस ससार रूपी सागर मे विषयो का अथाह जल है तथा इसको पार करने का एक मात्र साधन राम-भक्ति रूपी नाव है । कबीर दास कहते हैं कि हमने तो भगवान की शरण ले ली है । इससे हमे तो यह भव का विस्तार केवल गाय के खुर के समान ही प्रतीत होने लगा है ।

अलंकार—(i) वक्रोक्ति—कतहूँ कै जासी।
(ii) रूपक—राम नाम मनि। भौसागर। लहरि विकारा।
(iii) साग रूपक—भौसागर विस्तार।

विशेष—भृ गी कीट न्याय—भृ ग से चिपक जाने पर कीडा भृ ग रूप हो जाता है (आत्मसात कर लिया जाता है) यह वेदान्तियो का प्रभाव है।

[३] बड़ी अष्टपदी रमैणी

(६)

एक बिनांनीं रच्या बिनांन, सब अयांन जो आपै जांन ॥
सत रज तम थै कीन्हीं माया, चारि खानि बिस्तार उपाया ॥
पंच तत ले कीन्ह बंधान, पाप पुनि मांन अभिमानं ॥
अहकार कीन्हे माया मोहू, संपति बिपति दीन्हीं सब काहू ॥
भले रे पोच अकुल कुलवंता, गुणी निरगुणीं धन नीधनवंता ॥
भूख पियास अनहित हित कीन्हां, हेत मोर तोर करि लीन्हां ॥
पच स्वाद ले कीन्हां बंधू, बंधे करम जो आहि अबधू ॥
अवर जीव जत जे आहीं, संकुट सोच बियापै ताहीं ॥
निद्या अस्तुति मांन अभिमांना, इनि झूठै जीव हत्या गियांना ॥
बहु विधि करि ससार भुलावा, झूठै दोजगि साच लुकावा ॥
माया मोह धन जोबनां, इनि बंधे सब लोइ।
झूठ बियापिया कबीर, अलख न लखई कोइ ॥

शब्दार्थ—विनानी=विज्ञानी, वैज्ञानिक। विनान=विज्ञानमथ। खानि=और अथवा चार प्रकार की सृष्टि।

सन्दर्भ—कबीर अज्ञानमय ससार का वर्णन करते है।

भावार्थ—एक विज्ञानघन भगवान ने इस विज्ञानमय जगत की रचना की है। जो जीव केवल अपने आपको जानता है, वह अज्ञानी है। भगवान ने सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण से इस सृष्टि की रचना की है और इसको चार प्रकार की योनियो मे विभाजित करके चारो ओर फैला दिया गया है। इसको पाच तत्वो मे बाध दिया है। अर्थात् प्रत्येक पदार्थ की रचना केवल पच महाभूतो के आधार पर कर दी गई है। पाप-पुण्य, मान-अभिमान, अहकार, माया-मोह आदि सभी इन पाचो तत्वों तथा उनकी प्रकृति से उत्पन्न हुए हैं। भगवान ने सबको कर्मानुसार सम्पत्ति और विपत्ति प्रदान कर दी है। भले-बुरे, कुलीन-अकुलीन, गुणी-अगुणी, धनी-निर्धन, भूख,-प्यास, हित-अहित, स्नेह के आधार पर मेरा-तेरा आदि के युग्मो की सृष्टि भगवान ने की। पंच इन्द्रियों के स्वादों को बधन का हेतु बनाया और उस बन्धन मे शाश्वत बन्धन रहित जीव स्वय ही बध गया। जितने भी निम्न कोटि के जीव हैं उन सबको सकट और चिन्ता व्याप्त कर लेते हैं। निन्दा-स्तुति, मान, अहकार ये सब यद्यपि झूठे हैं, तथापि इन्होंने जीव के ज्ञान-स्वरूप को नष्ट कर दिया है।

यह जीव माया जनित अनेकानेक सासारिक प्रपचो मे अपने को भूल गया है। ये सासारिक बन्धन झूठे हैं, पर इन्होने सत्य स्वरूथ को आवृत्त कर लिया है। माया-मोह और धन-यौवन ने सब लोगो को बाँध रखा है। जीव को झूठ ही झूठ ने व्याप्त कर रखा है। कबीर कहते हैं कि इस कारण वह अलस्य सत्य स्वरूप भगवान के दर्शन नही कर पाता है।

अलकार— (i) विरोधाभास—सब' जान। बधे करम अबधू।

(ii) रूपक—माया मोह ' लोह।

विशेष—(i) चार प्रकार की सृष्टि—अण्डज, स्वेदज, उद्भिज और जरायुज।

(ii) पच तत्व—पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश।

"हस-देह' के धैर्य शील, विचार, दया और सत्य से क्रमश' आकाशादि पाच तत्त्व उत्पन्न हुए। ये बन्धन के हेतु बन गये। जीव मे इनसे अहकार जाग गया। कबीर पंथ मे ब्रह्म सच्चिदानद तक को बन्धन मे माना गया है। इसी सिद्धात का ऊपर सकेत है।

(iii) विज्ञानमय जगत—कारण-कार्य को नियम द्वारा संचालित होने के कारण यह जगत विज्ञानमय है। तटस्थ रूप से नियम लागू करने के कारण ही परमात्मा विज्ञानी है। तभी तो कहा है—

चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुण कर्म विभागरा ।
तस्य कर्त्तारमपि मा विद्धयकर्त्ता रमव्ययम्। (श्रीमद्भगवद्गीता)

(iv) सब अयान जो आपै जान—इस संसार मे तीन भ्रम सबको व्याप्त कर रहे हैं—देश, काल एव पृथकत्व। समस्त जीवन एक है अर्थात् सबको एक ही चेतन तत्व व्याप्त किए हुए हैं। परन्तु हम अपने को पृथक समझते हैं तथा जगत् को मैं और मैं—नही (तू) की दो भिन्न परिधियो मे रख कर देखते हैं। यह अज्ञान अथवा भ्रम है जो केवल अपने को ही जानता है तथा सम्पूर्ण विश्व एव उसके रचयिता को नही जानता, वह अज्ञानी है। अपने आपको शेष सृष्टि से पृथक् करके देखने वाला निश्चय ही अज्ञानी है।

(१०)

झूठनि झूठ साच करि जांनां, झूठनि मैं सब साच लुकानां ॥
धंध बध कीन्ह बहुतेरा, क्रम बिबर्जित रहै न मेरा ॥
षट दरसन आश्रम षट कीन्हां, षट रस खाटि काम रस लीन्हां ॥
चारि बेद छह सास्त्र बखानें, बिद्या अनंत कथै को जांनें ॥
तप तीरथ कीन्हें व्रत पूजा, धरम नेम दानं पुंन्य दूजा ॥
और अगम कीन्है ब्यौहारा, नहीं गमि सूझै वार न पारा ॥
लीला करि करि भेख फिरावा, ओट बहुत कछू कहत न आवा ॥
गहन ब्यंद कछू नही सूझै, आपन गोप भयौ आगम बूझै ॥

भूलि पर्यो जीव अधिक डराई, रजनी अंध कूप ह्वै आई ॥
माया मोह उनवै भरपूरी, दादुर दामिनि पवनां पूरी ॥
तरिपै बरिषै अखंड धारा, रैनि भांमनी भया अँधियारा ॥
तिहि बियोग तजि भए अनाथा परे निकुंज न पावै पथा ॥
वेद न आहि कहू को मान, जानि बूझि मै भया अयान ॥
नट बहु रूप खेलै सब जांनै, कला केर गुन ठाकुर मांनै ॥
ओ खेल सब ही घट मांहीं, दूसर कै लेखै कछु नाहीं ॥
जाके गुन सोई पै जांनै ओर को जानै पार अयानै ॥
भले रे पांच औसर जब आवा, करि सनमांन पूरि जम पावा ॥
दान पुन्य हम दिहूँ निरासा, कब लग रहूं नटारंभ काछा ॥
फिरत फिरत सब चरन तुरांनै, हरि चरित अगम कथै को जानै ॥
गण गध्रप मुनि अंत न पावा, रह्यो अलख जग धंधै लावा ॥
इहि बाजी सिव बिरचि भुलांनां, और बपुरा को क्यंचित जानां ॥
त्राहि त्राहि हम कीन्ह पुकारा, राखि साईं इहिबारा ॥
कोटि ब्रह्मंड गहि दीन्ह फिराई, फल कर कीट जनम बहुताई ॥
ईस्वर जोग खरा जब लीन्हां, टर्यो ध्यांन तप खंड न कीन्हां ॥
सिध साधिक उनथै कहु कोइ, मन चित अस्थिर कहुँ कैसै होई ॥
लीला अगम कथै को पारा, बसहु समीप कि रहौ निनारा ॥

खग खोज पीछै नहीं, तूं तत अपरपार ।
बिन परचै का जांनियै, सब झूठे अहंकार ॥

शब्दार्थ—लुकाना=छिप गया, आवृत्त हो गया । बध=बन्धन । विर्वजित=परे, वंचित । खग=पक्षी रूपी जीव । पीछै नही=पीछे मत रह । परिचै=साक्षात्कार ।

सन्दर्भ—कबीर का कहना है कि भगवान का साक्षात्कार वाह्याचार के द्वारा सम्भव नही है । वह साधना का विषय है ।

भावार्थ—जीव ने झूठ के भी झूठ (पूर्ण रूपेण मिथ्या) इस जगत को सत्य समझ लिया है । इस झूठे स्वरूप मे वह सत्य तत्त्व छिप गया है । जीव ने अपने ऊपर अनेक प्रकार के कर्मों के बधन डाल रखे हैं । इस कारण कर्मों से रहित वह परम तत्त्व इस कर्म-बन्धन वाले जीव के समीप नही रहता है । छ दर्शनो तथा छः आश्रमो की रचना की गई है, परन्तु जीव तो छ रसो के स्वाद मे तथा काम मे रस लेता रहा है । चारो वेदों तथा छः शास्त्रों ने उस परम तत्त्व का दर्णन किया है, उन्होने अनन्त विद्याओ ने भी उसका वर्णन किया है । परन्तु उस परम तत्त्व को कौन जान पाया है ? जीव ने तप, तीर्थ, व्रत, पूजा, धर्म, नियम, पुण्य तथा अन्य कितनी ही साधनायें की । वह शास्त्रानुसार आचरण करता रहा, पर इनसे उस परम तत्त्व तक उसकी पहुंच नही हो सकी । भगवान अपनी लीला से जीव को अनेकानेक

योनियो मे घुमाते है। यह लीला माया के गहरे पर्दे मे छिपी हुई है, अत इसके विषय मे कुछ भी नही कहा जा सकता है। बिन्दु तत्त्व अत्यन्त गहन है। वह तनिक भी नही दिखाई देता है। यह जीव तत्त्व स्वय ही अपने अज्ञान के कारण आवृत्त रहता है और शास्त्रो के द्वारा (विद्याध्ययन के द्वारा) उसको जाना नही जा सकता है। अज्ञान मे भूला हुआ जीव द्वैत भावना के कारण अत्यधिक भयभीत है। अज्ञान की रात अध कुए के रूप मे गहन से गहनतर होती जा रही है। माया-मोह की घटायें उमड आई है। सशयो के मेढको की टर्र-टर्र, विपयासक्ति की चपलता की चमक एव वासना के अधड की आवाज से जीवन का सम्पूण वातावरण भरा हुआ है। इसमे भय की गर्जना एव विपत्तियो की अखण्ड वर्पा हो रही है। मोह रूपी रात्रि अत्यन्त भयानक हो गई है और चारो ओर अज्ञान का गहरा अधकार छाया हुआ है। भगवान से वियुक्त होकर जीव अनाथ हो गया है। वह इस ससार रूपी जगल मे भटक गया है और उसको इसके पार जाने का मार्ग नही मिल रहा है। जीव को स्वय तो ज्ञान नही है और वह किसी की कहना भी नही मानता है। इस प्रकार वह जान-बूझ कर अज्ञानी बन कर दु ख उठा रहा है। नट अनेक प्रकार के खेल करता है और उनके विषय मे सब कुछ जानता है। कलाकार के गुणो का उसका सहृदय स्वामी ही उसका सम्मान कर पाता है। नट की तरह भगवान भी सबके शरीर के भीतर क्रीडा कर रहे हैं, परन्तु दूसरे उसको कुछ नही समझते है। गुण की पहिचान गुणी ही कर सकता है—जिसकी बात होती है, वही उसको समझ पाता है, अन्य अज्ञानी उसको नही समझ पाता है। चाहे भला हो चाहे बुरा हो, अवसर आने पर यमराज के द्वारा सब पूरा सम्मान पाते है। दान-पुण्य भी हमारी निराशा के हेतु बनते हैं (क्योकि इनके कारण हमे फल भोगने के लिए जन्म लेना पडता है) पता नही, कब तक जीवन की इस नट-विद्या का खेल-खेलना पडेगा। जीवन के जगल मे मारे-मारे फिरते हुए हमारे पैर टूट गये हैं। भगवान का चरित्र अगम्य है, उसका वर्णन कौन कर सकता है ? देवता, गन्धर्व, मुनि आदि भी भगवान की माया का पार नही पा सके हैं। भगवान अलक्ष्य बने रहकर सबको दुनियाँ के धन्धो मे लगाये रखते हैं। भगवान की लीला मे तो शिव और ब्रह्मा भी भूले हुए है और कोई बेचारा अन्य जीव तो उन्हे किंचित मात्र भी नही जान सकता है। सब जीव दैन्य भाव से पुकार करते हैं कि, हे स्वामी रक्षा करो, रक्षा करो। आपने मुझको करोडो ब्रह्माण्डो मे घुमा दिया है। अनेक जन्मो तक आपने मुझे गूलर के कीडे की भाँति माया मे बन्द रखा है। अब मैंने ईश्वर की उपासना का योग धारण कर लिया है। इसमे न मेरा ध्यान टूटा है ओर न तप खण्डित हुआ है। सिद्ध साधको ने जो कुछ बताया है, उससे मन और चित्त स्थिर नही हो पाता है। आपकी लीला तो अगम्य है। उसका वर्णन करके कौन पार पा सकता है—अर्थात् उसका पूर्णतया वर्णन कोई नही कर सकता है। कबीर कहते है कि हे जीव रूपी पक्षी भगवान की खोज मे पीछे मत रहे। भगवान तुम अपार हो। जब तक उनका साक्षात्कार नही हो जाता है, तब तक

उनके बारे मे कोई कुछ नही कह सकता है। उसके बारे मे जो लोग भी बात करते हैं, वे सब झूठे और अहकारी हैं।

अलंकार—(i) सभग पद यमक—झूठनि झूठ।
(ii) विरोधाभास—झूठनि-साच 'जाना।
(iii) पदमैत्री—बंध बध।
(v) वक्रोक्ति—को जानै ! और को जानै। कथै को जानै।
(vi) विशेषोक्ति – तप तीरथ ·· ·· नही सूझै। क्यंचित आना।
(vii) पुनरुक्ति प्रकाश—करि करि। फिरत फिरत।
(viii) उपमा—रजनी अधकूप ह्वै। फल कर कीट।
(ix) सागरूपक—वर्षा का रूपक – दादुर · ·· अंधियारा।
(x) वीप्सा – याहि याहि, राखि राखि।
(xi) सवधातिशयोक्ति—गण ···न पावा।
(xii) रूपकातिशयोक्ति—खग।

विशेष—(i) षट् दरशन न्याय, साख्य, योग पूर्व मीमासा उत्तर मीमासा और वैशेषिक।

(ii) आश्रम षट—आश्रमो की सख्या चार ही मानी जाती है। षट् आश्रम से क्या तात्पर्य है—कह नही सकते।

(iii) षट् रस—मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय और तिक्त।

(iv) चार वेद—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद।

(v) छः शास्त्र—धर्म, दर्शन, साहित्य, विज्ञान, व्याकरण तथा कला सम्बन्धी ग्रथ।

(vi) भगवान का विवेचन—कथन-श्रवण-मनन का विपय नही है। वह सर्वथा अनुभूति गम्य है।

(vii) हरि चरित—इस कथन के द्वारा ऐसा लगता है कि कबीर विष्णु को परब्रह्म मानते हैं। आगे चल कर वह इहि बाजी सिव विरचि भुलाना कहते हैं। यहाँ भी विष्णु का उल्लेख नहीं होता है। सम्भवत कबीर राम को विष्णु का अवतार मानते हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने भी लिखा है कि—

तासु तेज समान प्रभु आनन। हरषे देखि संभु चतुरानन।

विष्णु रूप राम उपस्थित हैं। इसी से गोस्वामीजी केवल शिव और विरच के हर्षित होने की बात कहते है। हमारा विचार है कि कबीर वैष्णव तो नही थे, परतु उनके ऊपर वैष्णव मत का व्यापक प्रभाव अवश्य था।

(११)

अलख निरजन लखै न कोई, निरभै निराकार है सोई।
सुंनि असथूल रूप नहीं रेखा, द्रिष्टि अद्रिष्टि छिप्यौ नहीं पेखा॥
बरन अबरन कथ्यौ नहीं जाई, सकल अतीत घट रह्यौ समाई।

आदि अंति ताहि नहीं मधे, कथ्यौ न जाई आहि अकथे ।।
अपरंपार उपजै नही बिनसै, जुगति न जांनियै कथिये कैसे ।
जस कथिये तस होत नही, जस है तैसा सोइ ।
कहत सुनत सुख उपजै, अरु परमारथ होइ ।।

शब्दार्थ—निरजन=माया रहित ।

संदर्भ—कबीर परमतत्व की अनिवर्चनीयता का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—प्रभु अलक्ष्य एव माया रहित है। उनको कोई देख नही सकता है। अभय एव निराकार तत्व वही हैं। वह न शून्य हैं, न स्थूल हैं। न उनका कोई रूप है और न रेखा ही। वह न दृष्ट है और न अदृष्ट है, वह न प्रकट है और न छिपा हुआ ही है। उसका कोई रग नही है, परन्तु उसको रग रहित भी नही कहा जा सकता है। सबसे अतीत होते हुए भी वह घट-वट मे समाया हुआ है। उसके आदि, मध्य, अन्त भी नही है, क्योकि वह देश-काल के परे है। उस तत्व का वाणी के द्वारा वर्णन नही किया जा सकता है, वह वाणी से अतीत है—अकथ्य है। वह अपरम्पार है। न उनकी उत्पत्ति होती है और न उसका विनाश ही होता है। वह किसी भी युक्ति या प्रमाण का विषय नही है। अत शब्दो के द्वारा जैसा भी कहो, वह वैसा नही है। वह तो जैसा है तैसा ही है। उसके विषय मे कहने-सुनने (चर्चा करने) से आनन्द की अनुभूति होती है तथा उसके गुण-वर्णन से परमार्थ की सिद्धि होती है।

अलंकार—(i) अनुप्रास—निरजन, न निरभै निराकार।
(ii) विरोधाभास—सुनि समाई।
(iii) सभगपद यमक—दिष्टि अदिष्टि, बरन अबरन।
(iv) सबधातिशयोक्ति—कथ्यौ न जाई।
(v) गूढोक्ति—कथिये कैसे।

विशेष—(i) इस रमैणी मे 'नेतिनेति' सदृश भावाभिव्यक्ति है।
(ii) परम 'तत्व' के पारमार्थिक स्वरूप की स्वानुभूति को जगाने का प्रयास है।

(१२)

जांनसि नहीं कस कथसि अयांनां, हम निरगुन तुम्ह सरगुन जांनां ।।
मति करि हींन कवन गुन आंही, लालचि लागि आसिरै रहाई ।
गुन अरु ग्यांन दोऊ हम हीनां, जैसी कुछ बुधि बिचार तस कीन्हां ।।
हम मसकीन कछू जुगति न आवै, ते तुम्ह दरवौ तौ पूरि जन पावै ।
तुम्हारे चरन कवल मन राता, गुन निरगुन के तुम्ह निज दाता ।।
जहुवां प्रगटि बजावहु जैसा, जस अनभै कथिया तिनि तैसा ।
बाजै तंत्र नाद धुनि होई, जे बजावै सो ओरै कोई ।।
बाजी नाचै कौतिग देखा, जो नचावै सो किनहू पेखा ।।

आप आप थ जानिये, है पर नाहीं सोइ ।
कबीर सुपिनै केर धन ज्यूं, जागत हाथि न होइ ।।

शब्दार्थ—मति करि हीन=विवेक शून्य । बधि=बुद्धि । दरवौ=द्रबौ, कृपा करदो । बाजी=बाजीगर, नट । कौतिग=तमाशा ।

संदर्भ—पूर्व रमैणी के समान ।

भावार्थ रे अज्ञानी, तुम इस परम तत्व के स्वरूप को जानते तो हो नही, फिर उसका वर्णन किस प्रकार करते हो ? मैंने उसको निर्गुण समझा है और तुमने उसको सगुण के रूप मे जाना है । तुम तो विवेकहीन हो । तुममे ऐसा कौनसा गुण है जिससे तुम उस परमतत्व के वास्तविक स्वरूप को जान सके हो ? तुम तो माया-मोह और लोभ-लालच के आश्रित हो । हम भी परमतत्व के साक्षात्कार के उपयुक्त गुणो (विवेक वैराग्य, षट सम्पत्ति इत्यादि) से तथा बोध से रहित हैं । फिर भी हमको सद्गुण की कृपा से जैसी जो कुछ (थोडी बहुत) बुद्धि प्राप्त हुई है, उसी के आधार पर हमने परमतत्व के स्वरूप पर विचार किया है । हम जीव मात्र मतिहीन है । हमे भगवान के स्वरूप को समझने की युक्ति नही आती है । ईश्वर से अनुग्रह की प्रार्थना करते हुए कबीर कहते हैं कि हे प्रभु, जब आप इस जन पर द्रवीभूत होंगे, तभी वह आपके पूर्ण स्वरूप को प्राप्त हो सकेगा (मेरा मन आपके चरण-कमलो मे ही अनुरक्त है ।) तुम चाहे सगुण हो चाहे निर्गुण तुम्ही मुझको ज्ञान देने वाले हो । तुम जहाँ भी जिस प्रकार प्रकट होकर अपने आपको अभिव्यक्त कर देते हो, उसी के अनुसार जो जिस रूप मे ही आपके साक्षात्कार के अनुभव को व्यक्त कर देता है, उसके लिए तुम वैसे ही हो । हृदय की तन्त्री बजती है । उसमे नाद उत्पन्न होता है, परन्तु इस तन्त्री को बजाने वाला कोई दूसरा ही है । जादूगर (नट) नाचता है और दुनियाँ उसका तमाशा देखती है, परन्तु जो नाचने वाले को नचाता है उसे कोई नही देख पाता है । हर व्यक्ति उसे अपनी वासना के अनुसार समझता और देखता है, परन्तु वह वास्तव मे वैसा नही है । कबीर कहते है कि व्यक्ति की वासना से समझे जाने वाले भगवान का स्वरूप तो स्वप्न के धन के समान है जो जागने पर हाथ नहीं लगता है ।"

अलंकार—(i) रूपक—चरन कमल ।

(ii) उपमा—सुपिने केरि धन ज्यू ।

विशेष—(i) तत्वथा के सिद्धान्त के आवरण मे भगवान के अनिवर्चनीय स्वरूप (अवाङ्मनसगोचर) का प्रतिपादन है ।

(ii) पुन निरगुन दाता कबीर एक सच्चे भक्त के रूप मे हमारे सामने आते है—

जो जगदीश तो अति भलो जो महीश बड भाग ।
तुलसी चाहत जनमि भरि रामचरन अनुराग ।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(III) जस अनभै कथिता तिनि तैसा । तुलना करें—

जाकी रही भावना जैसी । प्रभु मूरत देखी तिन तैसी ।

तथा— अमित रूप प्रगटे तेहि काला । जथाजोग मिले सबहि कृपाला ।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(IV) सगुण भक्तो जैसे दैन्य की मार्मिक अभिव्यक्ति है ।

(१३)

जिनि यहु सुपिनां फुर करि जांनां, और सबै दुखयादि न आंनां ।,
ग्यांन होन चेतै नहीं सूता, मैं जाग्या बिष हर भै भूता ।।
पारधी बांन रहै सर सांधें, विषम बांन मारै विष बांधें ।।
काल अहेड़ी संझ सकारा, सावाज ससा सकल ससारा ।।
दावानल अति जरें बिकारा, माया मोह रोकि ले जारा ।।
पवन सहाइ लोभ अति भइया, जम चरचा चहुँदिसि फिरि गइया ।।
जम के चर चहुँ दिसि फिरि लागे, हंस पखेरूवा अब कहां जाइबे ।।
केस गहैं कर निस दिन रहई, जब धरि ऐंचे तब धरि चहई ।।
कठिन पासि कछू चलै न उपाई जम दुबारि सीझे सब जाई ।।
सोई त्रास सुनि रांम न गावै, मृगत्रिष्णां झूठी दिन धावै ।।
मृत काल किनहूँ नही देखा, दुख कौं सुख करि सबही लेखा ।।
सुख करि मूल न चीन्हसि अभागी, चीन्है बिनां रहै दुख लागी ।।
नींब काट रस नींब पियारा, यूं बिष कूं अंमृत कहै ससारा ।।
बिष अंमृत एकै करि सांनां, जिनि चीन्ह्यां तिनही सुख मांनां ।।
अछित राज दिन दिनहि सिराई, अमृत परहरि करि विष खाई ।।
जांनि अजांनि जिन्है बिष खावा, परे लहरि पुकारै धावा ।।
विष के खांयें का गुन होई, जा बेद न जानै परि सोई ।।
मुरछि मुरछि जीव जरिहै आसा, कांजी अलप बहु खीर बिनासा ।।
तिल सुख कारनि दुख अस मेरू चौरासी लख लीया फेरू ।।
अलप सुख दुख आहि अनता, मन मैगल भूल्यौ मैमता ।।
दीपक्क जोति रहै इक सगा, नैन नेह मांनू परै पतगा ।।
सुख बिश्रांम किनहू नही पावा, परहरि काल दिन आइ तुरावा ।।
लालच लागे जनम सिरावा, अंति काल दिन आइ तुरावा ।।
जब लग है यहु निज तन सोई, तब लग चेति न देखै कोई ।।
जब निज चलि करि किया पयांनां, भयौ अकाज तब फिरि पछितांनां ।।

मृगत्रिष्णां दिन दिन ऐसी, अबमोहि कछू न सौहाइ ।
अनेक जतन करिये, टारिये, करम पासि नहीं जाइ ।।

शब्दार्थ—फुर=सत्य । विपहर=विषधर । भूता=भयभीत होकर भाग जाते है । सकारा =सवेरे । सावज=मृगयायोग्य पशु । पारधी=शिकारी । ससा=

शशक, खरगोश। दावानल=बन मे लगने वाली अग्नि। पाश=फंदा। काट=कीट, कीडा।

सदर्भ—कबीर विषयासक्त जीव की दुर्दशा का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—जो इस स्वप्नवत् संसार को सत्य समझते हैं, उन्हे इससे उत्पन्न होने वाले दु खो का ध्यान नही रहता है। रे विवेकहीन जीव, तुम जागते नही हो। अज्ञान की निद्रा मे सो रहे हो। पर मैं तो विषय भोग रूपी विषधर सर्प से भयभीत होकर जाग गया हूँ। इस ससार मे मोह रूपी शिकारी वासनारूपी विष मे बुझे हुए भी बाण मार रहा है। मृगया का पूरा रूपक बाँधते हुए कबीरदास कहते है कि काल रूपी शिकारी शाम-सवेरे (हर समय) तैयार खडा है। ससार के समस्त प्राणी उसके मृगया योग्य खरगोश हैं। यहाँ विपय विकार रूपी दावानल सुलग रहा है। माया-मोह ने इन विकारो को एकत्र करके प्रज्वलित कर दिया है। विषयो के प्रति लोभ (आसक्ति) की भावना पवन रूप होकर इस अग्नि को और भी अधिक प्रज्वलित करने मे सहायक हो रही है। इस ससार रूपी जगल मे यम के शिकार की चर्चा सर्वत्र व्याप्त है। इन जीव-रूपी पशु-पक्षियो को घेरने के लिए त्रयताप रूपी यम के दूत चारो ओर फिर रहे हैं। जीव रूपी पक्षी अब बचकर कहाँ जाएँगे। यम के दूत दिन रात जीव के बालों को पकडे रहते है। जब अपन दबोचना चाहेगे, तभी उसको खीच कर पकड़ लेंगे। यम का फदा अत्यन्त कठोर है। उसके समक्ष किसी का वश नही चलता है। हरेक प्राणी को यम के द्वार पर पहुँचकर यातना भोगनी पडती है। इन दु खो की बात सुनकर भी जीव राम का गुणगान नही करता है और मृगतृष्णा रूप मिथ्या विषयो की ओर भागता फिरता है। मृत्यु की ओर किसी का ध्यान नही रहता है। वह सासारिक विषयो को जो मूलत. दुख रूप हैं, सुख रूप माने रहता है। कबीर चेतावनी देते हुए कहते हैं कि रे अभागे, तुम सम्पूर्ण सुखो के मूल भगवान को तो पहचानते नही हो। उनको पहचाने बिना तुमको दुःख घेरे ही रहेगे। जिस प्रकार नीम के कीडे को नीम को कडुआ रस ही प्रिय लगता है, उसी प्रकार विपयी जन विषरूप विपयो को अमृत रूप कहते हैं। मोह ग्रस्त ससारी जीवो के लिए विष और अमृत को समान समझ लिया है। जिन विवेकी जन ने भगवान के आनन्द स्वरूप (प्रेम) को विपयो से पृथक करके समझ लिया है, वे ही वस्तुत. सुख के भागी बनते हैं। विपयो का राज्य (महत्व) आयु के साथ दिनोदिन क्षीण होता जाता है, परन्तु फिर भी जीव ईश्वर-प्रेम के अमृत को छोडकर स्वभाववश विपयो के विप का सेवन करता है। जो जीव जान-बूझकर अथवा धोखे से विपयो के विप को खाते हैं, वे भवसागर की लहरो मे पड़े हुए पुकारते रहते हैं। विपयो के सेवन मे क्या गुण है (यह मेरी समझ मे तो आता नहीं है।) जो ज्ञान शून्य हैं, वे ही इन विपयो मे लिप्त होते हैं। कुम्हला कुम्हला कर जीव धीरे धीरे विपयो की आशा (आसक्ति) मे झुलसता रहता है। वासना रूपी काजी यद्यपि बहुत ही स्वल्प है, तथापि वह जीव के आनन्द स्वरूप रूपी दूध को फाड देती है अर्थात् उसके आनन्द को मिटा

देती है। वह तिल के समान थोडे से विषयानंद के पीछे सुमेरु पर्वत के समान वृहद् दुखो को अपना लेता है और इस प्रकार वह चौरासी लाख योनियो मे भटकना स्वीकार करता है। इस ससार मे सुख थोडा है और दुख बहुत है, परन्तु फिर भी मन रूपी हाथी इन विषयो मे मस्त बना हुआ फूल रहा है। वासना के दीपक की लौ जीव के साथ लगी हुई है। उसके नेम (इन्द्रियो के उपलक्षण) उसके प्रति आसक्ति-वश आकृष्ट होकर उसमे पतगो की तरह गिरकर भस्म होते रहते हैं। जो जन ईश्वर प्रेम रूप सत्य को छोडकर विपयासक्ति रूप झूठ की ओर दौडते हैं, उनको सुख-शान्ति की प्राप्ति कभी भी नही होती है। विषयो के लालच मे लोग अपना सारा जीवन नष्ट कर देते हैं। अत काल आने पर वे घवडा कर भागना चाहते हैं। जब तक यह जीव इस शरीर के सुखोपभोग मे अपने आपको भूला रहता है, तबतक वह जग कर विपय-वासनाओ के इस दु खात्मक रूप को नही देख पाता है। जब वह शरीर को छोडकर प्रयाण करता, तब उसकी समझ मे यह बात आती है कि उसने अनुचित काम ही किया और फिर वह पश्चाताप करने लगता है। विपय वासनाओं की मृगतृष्णा दिन प्रतिदिन बढती जा रही है। मुझे अब इस जीवन मे कुछ भी अच्छा नही लग रहा है। मैंने कर्म-बन्धन को समाप्त करने के लिए अनेक प्रयत्न किये, परन्तु कर्म के बन्धन समाप्त होने मे नही आ रहे हैं।

अलंकार—विरोधाभास—सुपना जाना, दुख · · लेखा,
(ii) रूपकातिशयोक्ति - विषहर, पारधी, लहरि।
(iii) रूपक—विप वान, मन मैंगल, नैन पतगा।
(iv) साग रूपक—काल जाइबे।
(v) उदाहरण— नीव ··· ससारा।
(vi) सभंग पद यमक—दिन दिनहि, जानि अजानि।
(vii) पुनरुक्ति प्रकाश—मुरछि मुरछि, दिन दिन।
(viii) विभावना—काजी ··· विनासा।
(ix) विशेषोक्ति—अनेक जतन · · नही जाइ।

विशेष—(i) ईश्वर-प्रेम से रहित समस्त साधनाएँ व्यर्थ हैं।
(ii) कस गहे ·· · · चहई—समभाव के लिए देखें—

कबिरा गर्व न कीजिए, काल गहे कर केस।
ना जाने कित मारिहै, क्या घर क्या परदेस।

(१४)

रे रे मन बुधिवंत भंडारा, आप आप ही करहु बिचारा ॥
कवन सयांन कौन बौराई, किहि दुख पाइये किहि दुख खाई ॥
कवन सार को आहि असारा, को अनहित को आहि पियारा ॥
कवन साच कवन है झूठा, कवन करूं को लागै मीठा ॥
किहि जरियै किहि करिये अनदा, कवन मुकति को मल के फंदा ॥

रे रे मन मोहि ब्यौरि कहि, हौं तत पूछौं तोहि ।
संसै सूल सबै भई, समझाई कहि मोहि ॥

शब्दार्थ—बुधिवत=बुद्धिमान । सयान=चतुर । बौराई=पागल, मूर्ख । ब्यौरि=ब्यौरा । करू=कडुआ ।

संदर्भ—कबीरदास आत्मालोचन द्वारा विवेकपूर्ण पथ निर्धारित करते हैं ।

भावार्थ—हे मन तुम बुद्धिमान हो, तथा ज्ञान के भण्डार हो । तुम स्वयं अपने आप ही विचार करो । जीवो मे कौन चतुर है और कौन पागल अथवा मूर्ख है—वह जो विषयो मे अनुरक्त है अथवा वह जो ईश्वराभिमुख है । कौन से कर्म दुःख के हेतु हैं और किन कर्मों से दुःख की निवृत्ति होती है ? किस मे हर्ष है, किसमे विषाद है ? किसे अहित समझे और किसे हित माने ? कौन वस्तु सार है और कौन निस्सार है ? कौन प्रेम शून्य है और कौन प्रेम करने वाला है ? क्या सत्य है और क्या मिथ्या है । जीवन की कौन सी अनुभूति कडुवी है और कौन सी अनुभूति मधुर है ? कौन वस्तुतः दुःखो से जल रहा है और कौन सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करता है ? कौन से कर्म मुक्ति के हेतु बनते है और किन कर्मों के करने से गले मे फंदा पडता है ? जीवन के मूल तत्व एव प्रयोजन के इन प्रश्नों पर तुम स्वय विचार करके मुझे बताओ । रे मन, मैं तुमसे तत्त्व की बात पूछ रहा हूँ । संशय मेरे लिए शून्य हो गये हैं । तुम मुझ को समझाकर ब्यौरेवार बताओ ।

अलंकार—(i) वीप्सा—रे रे ।
(ii) सभंग पद यमक—अनहित हित ।

(१५)

सुनि हसा मै कहूँ बिचारी, त्रिजुग जोनि सबै अधियारी ॥
मनिषा जन्म उत्तिम जौ पावा, जांनू रांम तौ सयांन कहावा ॥
नहीं चेतै तौ जनम गंमावा, पर्‌यौ बिहांन जन फिरि पछतावा ॥
सुख करि मूल भगति जौ जांनैं, और सबै दुख या दिन आंनैं ॥
अंमृत केवल रांम पियारा, और सबै विष के भडारा ॥
हरिख आहि जो रमियें रांम, और सुबै बिसमा के कांमां ॥
सार आहि संगति निरवांनां, और सबै असार करि जांनां ॥
अनहित आहि सकल संसारा, हित करि जांनियें रांम पियारा ॥
साच सोई जे थिरह रहाई, उपजै बिनसै झूठ ह्वै जाई ॥
मीठा सो जो सहजै पावा, अति कलेस थें करू कहावा ॥
नां जरियें नां कीजै मैं मेरा, तहाँ अनंद जहां राम निहोरा ॥
मुकति सोज आपा पर जांनैं, सो पद कहां जु भरमि भुलानैं ॥
प्रांननाथ जग जीवनां, दुरलभ रांम पियार ।
सुत सरीर धन प्रग्रह कबीर, जीयेरे तर्वर पंख बसियार ॥

शब्दार्थ—हसा=शुद्ध चैतन्य। त्रिजुग=तिर्यक योनि, पशु पक्षी आदि प्राणी। प्रग्रह=परिग्रह, धन का सचय। निहोरा=शरणागति।

सन्दर्भ—कवीरदास के गुरु (बुद्धि मनस) रमैंणी सख्या १४ मे पूछे गये प्रश्नो का उत्तर देते हुए सार वस्तुओ को बताते हैं।

भावार्थ—हे जीव, आत्म स्वरूप मे स्थित होकर सुनो, मैं विचार करके तुम्हारे प्रश्नो का उत्तर देता हु । पशु-पक्षी आदि प्राणियो की समस्त योनिया हैं—अज्ञान की हेतु हैं। यदि किसी को मिल सके, तो पाने योग्य केवल मनुष्य जन्म ही उत्तम है। अगर मैं परम तत्व राम को जान सकू तो बुद्धिमान समझा जाऊँगा। जीव यदि चेतकर भ्रम एव अज्ञान को नही त्यागता है, तो वह अपना जन्म व्यर्थ ही गँवा देता है। ज्ञानोदय रूपी प्रभात काल को यदि वह छोड देता है, तो फिर अन्त मे उसको पछताना पडता है। जो भक्ति को समस्त सुखो का मूल समझता है वह भक्ति से रहित अन्य समस्त वस्तुओ को दु ख के रूप मे मानता है। राम का प्रिय होना ही केवल अमृत रूप है, तथा विषय-वासना विष के भण्डार हैं। राम मे रमना ही केवल हर्ष का हेतु है, शेष तो विषाद हेतुक कार्य हैं। निवृत्ति परायण की सगति ही सार वस्तु है। शेष सव की सगति व्यर्थ है। समस्त ससार अमगलकारी है, केवल प्रिय राम ही मगलकारी है। सत्य वही है जो स्थिर रहता है। जो उत्पन्न होता है और नष्ट होता है, वह तो मिथ्या और झूठ है। मधुर वही है जो सहज भाव से प्राप्त होता है और जिसकी प्राप्ति मे कलेश भोगने पडते हैं, वही कडुआ है। जिसमे मैं और मेरी की भावना नही है, उसको जलना नही पड़ता है। जहाँ राम की शरणागति है, वही आनन्द है। मुक्ति वह अवस्था है जिसमे व्यक्ति अपने स्वरूप को तथा परम स्वरूप को पहचानता है। निर्वाण पद वह अवस्था है जहाँ समस्त भ्रम दूर हो जाते हैं। प्राणनाथ राम ही ससार के जीवनाधार हैं तथा राम का प्रेम अत्यन्त दुर्लभ वस्तु है। पुत्र, शरीर, धन, परिग्रह तथा परिजनो के लिए जीना तो केवल पक्षा का वक्ष पर थोडी देर का बसेरा मात्र है। अभिप्राय यह है कि राम भक्ति जीवन को स्थिरता प्रदान करती है। शेष जीवन एव सम्बन्ध क्षणिक हैं एव महान उद्देश्य से हीन हैं।

अलकार—सभग पद यमक—मार असार, अनहित हित।

विशेष—(i) सत्यासत्य का सुन्दर निरूपण है।

(ii) सो पद · भुलानै—कबीर पन्थ मे 'ब्रह्मपद' आदि अवस्थाओ को ही परम प्राप्तव्य मान लेने को भ्रम कहा गया है। अत इस पद को भी भ्रम मे भुलाने वाला कहा गया है। अत इस पक्ति का अर्थ इस प्रकार भी किया जा सकता है—जो भ्रम मे भुलाने वाला है उसे 'पद' की सज्ञा कैसे दी जा सकती है?

(iii) ना जरिये·· ····मेरा—अहकार, ममता एव रागद्वेष ही वस्तुतः ताप के हेतु हैं।

(iv) मनिषा जनम' ''' पावा—समभाव देखे—"बडे भाग मानुष तन पावा" क्योंकि यह 'साधन धाम मोक्ष कर द्वारा" है।

तथा— हरि, तुम बहुत अनुग्रह कीन्हो।
साधन-धाम बिबुध-दुरलभ तनु, मोहि कृपा करि दीन्हों।
(गोस्वामी तुलसीदास)

(१६)

रे रे जीय अपनां दुख न सभारा, जिहि दुख व्याप्या सब ससारा ॥
माया मोह भूले सब लोई, क्यचित लाभ मांनिक दीयौ खोई ॥
मैं मेरी करि बहुत बिगूता, जननी उदर जन्म का सूता ॥
बहुते रूप भेष बहु कींन्हां, जुरा मरन क्रोध तन खींनां ॥
उपजै बिनसै जोनि फिराई, सुख कर मूल न पावै चाही ॥
दुख संताप कलेस बहु पावै, सो न मिलै जे जरत बुझावै ॥
जिहि हित जीव राखिहै भाई, सो अनहित ह्वै जाइ बिलाई ॥
मोर तोर करि जरे अपारा, मृग त्रिष्णां झूठी संसारा ॥
माया मोह झूठ रह्यौ लागी, का भयौ इहां का ह्वै है आगी ॥
कछु कछु चेति देखि जीव अबही, मनिषा जनम न पावै कबही ॥
सार आहि जे सग पियारा, जब चेतै तब ही उजियारा ॥
त्रिजुग जोनि जे आहि अचेता, मनिषा जनम भयौ चित चेता ॥
आतमां मुरछि मुरछि जरि जाई, पिछले दुख कहता न सिराई ॥
सोई त्रास जे जांनै हंसा, तौ अजहू न जीव करै संतोसा ॥
भौसागर अति वार न पारा, ता तिरिबे का करहु बिचारा ॥
जा जल की आदि अति नहीं जानियें, ताकौ डर काहे न मानियें ॥
को बोहिथ को खेवट आही, जिहि तरिये सो लीजै चाही ॥
समझि विचारि जीव जब देखा, यहु ससार सुपन करि लेखा ॥
भई बुधि कछु ग्यांन निहारा, आप आप ही किया बिचारा ॥
आपण मैं जे रह्यौ समाई, नेडै दूरि कथ्यौ नहीं जाई ॥
ताके चीन्हें परचौ पावा, भई समझि तासूं मन लावा ॥
भाव भगति हित बोहिथा, सतगुर खेवनहार।
अलप उदिक तब जांणिये, जब गोपदखुर बिस्तार ॥

शब्दार्थ – सभारा=ध्यान दिया। मानिक=माणिक, चैतन्य स्वरूप रूपी मणि। बिगूता=बर्बाद किया। त्रिजुग=तिर्यक, पशु पक्षी आदि की योनि। अलप=अल्प, थोडा सा जो दुर्लंघ्य न हो।

सन्दर्भ—कबीर जीव के अज्ञान का वर्णन करते हुए कहते हैं।

भावार्थ—अरे जीव, तुमने अपने दुःख के कारण पर ध्यान नहीं दिया। वासनाजन्य इस दुःख से समस्त संसार ग्रसित है। सब जीव माया मोह में भूले हुए

हैं। विषय-सुख के थोडे से लाभ के लिए तुमने स्व-स्वरूप प्रतिष्ठा (चैतन्य स्वरूप) रूपी माणिक को गवाँ दिया है। मैं और 'मेरी करते हुए तुमने अपने आपको बहुत बर्बाद किया है। माता के गर्भ मे सोते हुए तेरा जन्म व्यतीत हो गया अर्थात् विभिन्न जन्म धारण करते समय तुमको अनेक बार गर्भ-वास करना पडा और इस प्रकार माता के उदर मे सोते हुए तुम्हारे जन्म का अधिकाश भाग व्यतीत हो गया। विभिन्न योनियो मे तुमने बहुत से वेष और रूप धारण किए। वृद्धावस्था, मृत्यु तथा क्रोध तेरे शरीरो को क्षीण करते रहे। तुम जन्म लेते हो, मरते हो तथा अनेक योनियो मे भटकते फिरते हो परन्तु आनन्द के मूल स्रोत अपने शुद्ध स्वरूप अथवा ईश्वर प्रेम की ओर उन्मुख नही होते हो। यह जीव अनेक दु खो एव सतापो को भोगता है, परन्तु इसको उस परम तत्व का साक्षात्कार नही हुआ है, जो इसके समस्त दु खो को दूर कर देगा।

रे भाई, यह जीव जिन विषयो को मगलकारी समझ कर उनसे प्रेम करता रहा है, जिनके लिये, यह जिया है, वे इसका अमगल करके नष्ट होते रहे है। अपने और 'पराये' के राग द्वेष मे फस कर यह जीव अपार सतापो मे जलता रहा है और मृगतृष्णा रूपी झूठे ससार के पीछे भटकता ही रहा है। यह झूठे माया-मोह मे ही फसा रहा है। यहाँ इस लोक मे क्या हुआ और आगे (परलोक मे) क्या होगा, इसकी इसको बिल्कुल चिंता नही है। रे जीव ! अब भी चेत जा और आँखे खोल कर वास्तविकता को देख। तुमको यह मनुष्य शरीर फिर नही मिलेगा। जीवन का सार यही है कि राम-प्रेम की अनुभूति बनी रहे। इसके लिए कोई विशिष्ट अवसर नही चाहिए। जब चेत जाओ, तब ही ज्ञान का प्रकाश हो जाएगा। जब ही प्रभु-साक्षात्कार की आकाक्षा जाग्रत हो जाए तब ही अज्ञानान्धकार दूर हो जाता है। पशु-पक्षियो की विभिन्न योनियो मे यह जीव अज्ञान मे अचेत पड़ा हुआ घूमता रहा। मानव योनि मे अपने पर उसको कुछ बोध हुआ। विषयासक्ति के फलस्वरूप आत्म-स्वरूप धीरे-धीरे नष्ट होता रहता है। पिछले जन्म के दु.खो को भी शात नही कर पाता है। अगर जीव उन्ही दु खो के प्रति सजग हो जाय, तो वह अपनी वर्तमान परिस्थितियो मे सतोष न करे और उस मूलतत्त्व को प्राप्त करने के लिए आतुर हो जाय। यह भवसागर असीम है—इसका पार नही है। इसको पार करने के उपाय पर विचार करो। जिस भव-जल का आदि और अन्त जानना सम्भव नही है, उससे भयभीत क्यो नही होना चाहिए ? इसको पार ले जाने वाला कौन सा साधन नौका स्वरूप है और कौन सा सद्गुरु इनके लिए केवट स्वरूप है, इसका विचार करके उन्ही का आश्रय ग्रहण करना चाहिए। यह जीव ने जब सोच विचार करके देखा, तब उसे यह संसार स्वप्नवत् ही प्रतीत हुआ, कुछ बुद्धि तथा विचार जाग्रत हुआ और उसने स्वय ही आत्म स्वरूप का चिन्तन किया तब उसको प्रतिभासित हुआ कि जो तत्व उसमे समाहित हो रहा है उसको दूर अथवा पास कुछ भी नही कहा जा सकता है। उस

तत्व को पहचानने पर ही जीव का आत्म-बोध जागा, विवेक हुआ और फिर उसी मे उसका मन लग गया। इस भव सागर को पार करने के लिए भावभक्ति अथवा ईश्वर-प्रेम ही नौका है तथा सद्गुरु ही इस नौका को खेने वाले केवट हैं। जब ईश्वर की कृपा होने पर यह भवसागर गोपद-खुर के समान प्रतीत होने लगे तब समझ लेना चाहिए कि यह भवसागर अल्प (ससीम) है और तब यह दुर्लंघ्य नही रह जाता है।

अलकार—(i) वीप्सा—रे रे।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—मानिक।
(iii) विरोधाभास – जेहि हित …बिलाई।
(iv) सभग पद यमक—हित अनहित।
(v) रूपक—मृगतृष्णा……ससारा। भौ सागर।
(vi) पुनरुक्ति प्रकाश—कछु कछु। मुरछि मुरछि।
(vii) विशेषोक्ति की व्यजना—पिछले… सिराई।
(viii) वक्रोक्ति—काहे न मानियै।
(ix) उपमा—सताप सुपन करि।
(x) यमक—आप आप।
(xi) सबधातिशयोक्ति—कथ्यौ नहिं जाई।
(xii) साग रूपक—भाव भगति……बिस्तार।

विशेष—इस रमैंणी की भाव—व्यजना पर वेदान्तियो के कथन 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिरया' का गहरा प्रभाव है।

[४] दुपदी रमैंणी

(१७)

भया दयाल विषहर जरि जागा, गहगहान प्रेम बहु लागा।
भया अनद जीव भये उल्हासा, मिले रांम मनि पूगी आसा॥
मास असाढ़ रवि धरनि जरावै, जरत जरत जल आइ बुझावै।
रुति सुभाइ जिमीं सब जागी, अंमृत धार होइ झर लागी॥
जिमीं मांहि उठी हरियाई, बिरहनि पीव मिले जन जाई।
मनिकां मनि के भये उछाहा, कारनि कौंन बिसारी नाहा॥
खेल तुम्हारा मरन भया मोरा, चौरासी लख कीन्हां फेरा।
सेवग सुत जे होइ अनिआई, गुन औगुन सब तुम्हि समाई॥
अपने औगुन कहू न पारा, इहै अभाग जे तुम्ह न संभारा।
दरबो नहीं कांइ तुम्ह नाहा, तुम्ह बिछुरे मै बहु दुख चाहा॥
मेघ न बरिखै जांहि उदासा, तऊ न सारंग सागर आसा।
जलहर भर्यो ताहि नहीं भावै, कै मरि जाइ कै उहै पियावै॥
मिलहु रांम मनि पुरवहु आसा, तुम्ह बिछुर्यां मैं सकल निरासा।

मैं रनिरासी जब निध्य पाई, रांम नांम जीव जाग्या जाई ॥
नलिनीं कै ज्यू नीर अधारा, खिन बिछुर्‌यां थैं रवि प्रजारा ।
रांम बिना जीव बहुत दुख पावै, मन पतग जगि अधिक जरावै ॥
माघ मास रुति कवलि तुसारा, भयौ बसत तब बाग सभारा ।
अपनैं रगि सब कोह राता, मधूकर बास लेहि मैंमंता ॥
बन कोकिला नाद गहगहांना, रुति बसंत सब कै मनि मानां ।
बिरहन्य रजनी जुग प्रति भइया, बिन पीव मिले कनप टलि गइया ॥
आतमां चेति समझि जीव जाई, बाजी झूठ रांम निधि पाई ।
भया दयाल निति बाजी बाजा, सहजैं रांम नांम मन राजा ॥

जरत जरत जल पाइया, सुख सागर कर मूल ।
गुर प्रसादि कबीर कहि, भागी संसै सूल ॥

शब्दार्थ—गहगहान=गहन, घना। पूगी—पूर्ण हुई। घदासा=उदासा, उदासीन। जलहर=जलाशय। रनिरासो=निराश रक। पतग=सूर्य। मैंमता=मस्त। वाजी=सृष्टि का खेल।

सन्दर्भ—कवीर सिद्धावस्था का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—भगवान की कृपा हो गई, फलस्वरूप विषय रूपी जहरीला सर्प भस्म होगया और जीव जग गया, और वह गहन ईश्वर प्रेम से पूर्ण होगया। आनद छा गया और जीव उसमे मग्न हो गया। राम का साक्षात्कार हो गया और उसके मन की आकाक्षा पूर्ण हो गई। ज्ञान-विरह के आषाढ मास मे मिलन की तीव्र आकाक्षा के सूर्य ने जीव के चैतन्य रूपी धरा को अत्यधिक सतप्त कर दिया था। वह निरन्तर जल रहा था। भगवान की कृपा के जल ने बरस कर उसको शात कर दिया। प्रेम की सुन्दर वर्षा ऋतु मे सम्पूर्ण पृथ्वी (सृष्टि) प्रेमोल्लास मे जाग उठी और उस समय चारो ओर अमृत की धारा की झडी लग गई (जीव को एक दम नवीन दृष्टि प्राप्त हो गई—उसकी ऋतु बदल गई। पृथ्वी मे हरियाली प्रकट हो गई अर्थात् जीव को सम्पूर्ण सृष्टि आनन्दमय दिखाई देने लगी। विरहिणी जीवात्मा को मानों उसके प्रियतम भगवान मिल गये हैं। मन ही मन मे उत्सव होने लगा। जीवात्मा ने परमात्मा से कहा कि हे नाथ। आपने मुझको किस कारण वश भुला दिया था। तुम्हारे लिए तो यह विरह और मिलन (जन्म और मृत्यु) खेल (लीला) है, परन्तु मैं तो इसमे परेशान होकर मर ली। तुम्हारी इस लीला के कारण मुझे तो चौरासी लाख योनियो मे भटकना पडा। सेवक और पुत्र से जो भी अनुचित कृत्य हो जाता है, उसके गुण और अवगुण सब कुछ आपकी ही सामर्थ्य के फलस्वरूप हैं अथवा सब आपके ही हैं। उनका यश-अपयश सब आपका ही है। हे स्वामी, मैं अपने अवगुणो का वर्णन नही कर सकती हू। मेरा सवसे बडा दुर्भाग्य यही है कि आपने मेरी सभाल नही की अर्थात् मुझको भुला दिया। हे स्वामी, तुम मेरे ऊपर द्रवित क्यो नही होते हो, आपसे विछुड कर मैंने बहुत दुःख पाए हैं। आपके प्रेम के

वादल मुझ कर बरसते नही हैं और मेरे प्रति उदासीन रहते हुए चले जाते है। परन्तु मेरा चित्त रूपी चातक ससार के विषय रूपी समुद्र के जल द्वारा अपनी प्यास वुझाने की आशा नही करता है। विषय सुखो से भरा हुआ यह ससार-समुद्र उसको अच्छा नही लगता है। वह प्यास के कारण भले ही मर जाए, परन्तु पिएगा तभी जव आप प्रेम की स्वाँति बूँद पिलाएँगे। हे प्रियतम, आप मिलें और मेरा मनोरथ पूरा कर दें। तुम्हारे वियोग मे अत्यन्त निराश हो गया हूँ। मै निराश रंक तभी अमित सम्पत्ति की प्राप्ति समझूँगा जब आप मे मेरा मन पूर्ण रूपेण रम जायेगा। जिस प्रकार कमलिनी का एकमात्र अवलम्ब जल होता है, उससे पल भर भी वियुक्त हो जाने पर सूर्य का ताप उसे जला देता है, वैसे ही जीवात्मा अपने प्राणाधार राम के प्रेम से वचित होकर अत्यधिक दुख का अनुभव करती है। वासनात्मक मन रूपी सूर्य अधिक तीक्ष्ण होकर जीवात्मा रूपी कमलिनी को जलाने लगता है। मोह रूपी माघ मास की जडता ने जीवात्मा रूपी कमलिनी पर तुषारापात किया परन्तु ईश्वर प्रेम रूपी वसंत की उष्णता ने (जाग्रत होकर) जीवन-वन की रक्षा कर ली। अन्तःकरण की सद्वृत्तियाँ अपने-अपने अनुरूप उस प्रेम मे अनुरक्त हो गई। मन रूपी मधुकर प्रेम-परिमल मे मस्त हो गया। उस चैतन्य रूपी विकसित वन मे चित वृत्ति रूपी कोकिल का गहन मधुर सगीत गुंजारित होने लगा। इस प्रकार प्रेम की इस वसत ऋतु शरीर की सम्पूर्ण वृत्तियो को रुचिकर हुई—इसने समस्त वृत्तियो को उल्लसित कर दिया। जीवात्मा रूपी विरहिणी की एक-एक रात युगो के समान हो गई थी। उसको प्रियतम से विना मिले हुए अनेक कल्प बीत गये थे। अव आत्मा को वोध हुआ है—जीव ने रहस्य को समझ लिया है। उसने इस जगत के खेल को मिथ्या समझ लिया है और उसको भगवान राम के प्रेम की अमूल्य निधि प्राप्त हो गई है। अव भगवान की कृपा हो गई है और चारो ओर प्रेम-संगीत सुनाई दे रहा है—आनन्द ही आनन्द है। (हृदय मे अनहदनाद का मधुर सगीत सुनाई दे रहा है) भगवान राम सहज रूप से उसके हृदय के राजा हो गये हैं अर्थात् भगवान के प्रति उसके मन मे सहज स्वाभाविक भक्ति उत्पन्न हो गई है। विषय-वासनाओ अथवा प्रभु विरह मे जलती रहने वाली जीवात्मा को सम्पूर्ण सुखो के मूल प्रेम-जल की प्राप्ति हो गई है। कबीरदास कहते है कि यह सब गुरु की कृपा का फल है। अव मेरे मोह एवं अज्ञान जनित सशय और कष्ट समाप्त हो गये हैं।

अलकार—(i) रूपकातिशयोक्ति—विषहर।
(ii) विरोधाभास की व्यंजना—जरि जाग, खेल ''मोरा।
(iii) साग रूपक—मास '''जाई, मेघ '' पियावै, माघ''''माना।
(iv) सभग पद यमक—गुन औगुन।
(v) अतिशयोक्ति—अपने '''' पारा।
(vi) उदाहरण—नलिनी ' '' प्रजारा।
(vii) रूपक—मन पतग, जल''' ''' मूल।

(viii) पुनरुक्ति प्रकाश   जरत जरत ।

विशेष—(i) खेल तुम्हारा   मोरा—किसी की जान गई और आपकी अदा ठहरी ।

(ii) मेघ न वरसै ···पियावै—समभाव के लिए तुलनात्मक अध्ययन करें—

जौं धन वरषै समय सिर जौं भरि जनम उदास ।
तुलसी या चित चातकहि तऊ तिहारी आस ।
जीव चराचर जहँ लगे हैं सवको हित मेह ।
तुलसी चातक मन वस्यो घन सो सहज सनेह ।
(गोस्वामी तुलसीदास)

(iii) भया दयाल····   आस—तुलना करे ।

सुनि हो मैं हरि आवन की आवाज ।
महल चढे-चढि जोऊँ सजनी, कव आवे महाराज ।
दादुर मोर पपीहा वोले, कोमल मधुरे साज ।
उमग्या इन्द्र चहुँ दिसि वरसै, दामण छोड़ी लाज ।
धरती रूप नवा-नवा धरिया, इन्द्र मिलण कै काज ।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, वेगि मिलौ महाराज ।   (मीराँवाई)

(iv) अपने औगुन—पारा   तुलना करें ।

जो अपने सव औगुन कहहू । वाढहि कथा पार न लहहूँ ।
(गोस्वामी तुलसीदास)

(v) मैं रनिरासो—जाई ·   समभाव के लिए देखें ।

तुम अपनायौ तब जानिहौं, जव मन फिरि परिहै ।

तथा—जेहि सुभाव विषयानि लग्यो, तेहि सहज नाथ सौं नेह छाडि छल करिहै ।
(गोस्वामी तुलसीदास)

(१८)

रांम नांम निज पाया सारा, अबिरथा झूठ सजल संसारा ।
हरि उतग मै जाति पतगा, जबकु केहरि कै ज्यूं संगा ।।
क्यचिति ह्वे सुपनै निधि पाई, नही सोभा कौं धरो लुकाई ।
हिरदै न समाइ जांनिगै नहीं पारा, लागै लोभ न और हकारा ।।
सुमिरत हू अपनै उनमानां, क्यचित जोग रांम मैं जांनां ।
मुखां साध का जानियै असाधा, क्यचित जोग रांम मै लाधा ।।
कुबिज होइ अमृत फल बंछ्या, पहुँचा तब मन पूगी इछ्यां ।
नियर थै दूरि दूरि थै नियरा, रामचरित न जानियै जियरा ।।
सीत थै अगिन फुनि होई, रबि थै ससि थै रवि सोई ।
सीत थै अगिन परजरई, जल थै निधि निधि थै थल करई ।।
बज्र थै तिण खिण भीतरि होई, तिण थै कुलिस करै फुनि सोई ।
गिरवर छार छार गिरि होई, अविगति गति जानै नहीं कोई ।।

शब्दार्थ—उतग=ऊँचा। पतगा=कीडा—निम्न कोटि का प्राणी। जंवुक=गीदड, सियार। अपने उपमाना=अपनी सामर्थ्य के अनुसार। हकारना=पुकारना। मुखाँ साध=मुख से साधना करता हूँ। कुविज=कुबड़ा।

सन्दर्भ—कवीर राम की माया का वर्णन करते है।

भावार्थ—मैंने अपने सारतत्व रामनाम को प्राप्त कर लिया है। मुझ को यह भी ज्ञान हो गया है कि यह समस्त संसार मिथ्या और निष्प्रयोजन है। भगवान अत्यन्त उच्च हैं और मैं निम्न कोटि का प्राणी हूँ। मेरा और भगवान का साथ वैसा ही है जैसा गीदड और सिंह का साथ हो। मुझ को राम नाम की निधि ऐसे ही मिल गई है जैसे किसी अत्यन्त दरिद्र को स्वप्न मे निधि मिल जाती है। इस अपार शोभा वाली निधि को मैं छिपाकर नही रखूगा। भक्ति का आनन्द मेरे हृदय मे समा नही रहा है और इसकी कोई सीमा नही है। इस आनन्द के प्रति मुझे ऐसा लालच हो गया है कि मैं इसके आनन्द मे भागीदार होने के लिए अन्य किसी को पुकारता भी नही हूँ। मैं अपने हिसाब से (सामर्थ्य के अनुसार) राम नाम का स्मरण करता हूँ। इससे मुझ को राम के प्रेम-योग का कुछ थोड़ा वहुत ज्ञान हो गया है। मैं मुख से राम-नाम की साधना करता हूँ, परन्तु उस असाध्य भगवान को प्राप्त करना मैं क्या जानू ? मुझे तो केवल राम-नाम की किंचित उपलब्धि हुई है। मैं कुवडा हूँ मैंने ऊँचे पर लगने वाले अमृत फल की इच्छा की, मैं जव इस फल तक पहुँच गया, तव मेरी मनोकामना पूरी हुई अर्थात् जव तक मुझे मोक्ष की प्राप्ति नही हो गई, तव तक मैं अपने सीमित साधनों के द्वारा निरन्तर प्रयत्नशील वना रहा। वह परम तत्व अपना ही स्वरूप है। अत्यन्त समीप होते हुए भी अपने से भिन्न एव दूर प्रतीत होता है। राम के चरित्र को मेरा मन नही जानता है—वह अगम्य एव शब्दातीत है। इसकी माया अनिर्वचनीय है जो शीत से अग्नि, सूर्य से चन्द्रमा तथा चन्द्रमा से सूर्य कर देती है। शीत से अग्नि प्रज्वलित हो जाती हे। जल की एक बूंद भी जलनिधि मे परिणत हो जाती है और फिर वही जलराशि पृथ्वी के रूप मे ठोस हो जाती है। एक क्षण मे ही यह तत्त्व वज्र से तिनका वन जाता है और फिर दूसरे ही क्षण वह पुन कठोर वज्र मे परिणत हो जाता है। वह पहाड से रेणु और रेणु से पहाड वन जाता है। उस अविगत की माया (लीला को कोई भी नही जान सका है।

अलंकार—(i) उदाहरण—हरि ··· सगा।
(ii) अतिशयोक्ति—हिरदै ····· पाई।
(iii) विरोधाभास—नियरि तैं ······ नियरा, सोत···· फुनि होई।
(iv) सर्वधातिशयोक्ति—गति जानै नहिं कोई।

विशेष—(i) पतगा मे उपलक्षणा है।
(ii) कुबिज ···· बछ्या—समभाव देखें—।

करन चहउँ रघुपति गुन गाहा । लघु मति मोरि चरित अवगाहा ।
× × ×
मति अति नीच ऊँचि रुचि पाछी । चहिअ अमिय जग जुरइ न छाछी ।
इत्यादि । (गोस्वामी तुलसीदास)

(१९)

जिहि दुरमति डोल्यौ संसारा, परे असूझि वार नही पारा ॥
बिख अमृत एकै करि लीन्हां, जिनि चीन्हां सुख तिहकू हरि दीन्हां ॥
सुख दुख जिनि चीन्हां नही जानां, ग्रासे काल सोग रुति मांनां ॥
होइ पतग दीपक मै परई, झूठै स्वादि लागि जीव जरई ॥
कर गहि दीपक परहि जु कूपा, यहु अचिरज हम देखि अनूपा ॥
ग्यांनहीन ओछी मति बाधा, मुखा साध करतूति असाधा ॥
दरसन समि कछू साध न होई, गुर समांन पूजिये सिध सोई ॥
भेष कहा जे बुधि बिसूधा, बिन परचै जग बूड़नि बूड़ा ॥
जदपि रबि कहिये सुर आही, झूठे रबि लीन्हा सुर चाही ॥
कबहुँ हुतासन होइ जरावै, कबहूँ अखड धार वरिषावै ॥
कबहूँ सीत काल करि राखा, तिहू प्रकार दुख देखा ॥
ताकूं सेवि मूढ़ सुख पावै, दौरै लाभ कूं मूल गवावै ॥
अछित राज दिने दिन होई, दिवस सिराइ जनम गये खोई ॥
मृत काल किनहूँ नही देखा, माया मोह धन अगम अलेखा ॥
झूठै झूठ रह्यौ उरझाई, साचा अलख जग लख्या न जाई ॥
साचै नियरै झूठै दूरी, विष कूँ कहै संजीवन मूरी ॥

शब्दार्थ—दुरमति=कुबुद्धिवाले, दुर्बुद्ध लोग । डोल्यौ=भटकते फिरते हैं । रुति=रुचि, अनुरक्ति । वाधा=आवद्ध । साध=साधु । असाधा =असाधु, दुष्ट । विसूधा=विकृत हो जाए । सजीवनी=जीवन देने वाली ।

सन्दर्भ—कबीर मोह-भ्रम गुप्त अज्ञानी जन का वर्णन करते है ।

भावार्थ—जो दुर्बुद्धि वाले व्यक्ति इस ससार के माया जाल मे भटकते रहते हैं, उनके लिए इस भवसागर का आर-पार नही है । ऐसे व्यक्ति विषयासक्ति रूपी विष और ईश्वर प्रेम रूपी अमृत मे कोई भेद नही समझते हैं । जो इस भेद को जान लेते हैं, उनको भगवान आनन्द प्रदान करते हैं । जो ईश्वर-प्रेम के सुख तथा विषयो के दुख के अन्तर को नही समझ पाए हैं, वे काल से ग्रसित रहे तथा उन्होने शोक को स्वीकार किया । ऐसे व्यक्ति मिथ्या विषय भोग के आनन्द के पीछे पतगो की भांति विषय-वासना के दीपक मे पडते हैं और नष्ट होत हैं । हमने यह एक अनोखा आश्चर्य देखा है कि व्यक्ति अपने हाथ मे ज्ञान का दीपक होने पर भी विपयो के कुएँ मे गिरते है । ऐसे ज्ञानहीन व्यक्ति ओछी बुद्धि (कुबुद्धि) द्वारा आवद्ध रहते हैं । वे चेहरे से (देखने मे) साधु लगते हैं, परन्तु कर्मो से असाधु

(दुष्ट) होते हैं। तत्त्व-दर्शन के समान कुछ भी साध्य (प्राप्तव्य) नही है। गुरु के समान जिसकी पूजा होने लगती है, वही वास्तव मे सिद्ध पुरुष है। इस वेष का क्या लाभ है जिसमे बुद्धि मोह ग्रस्त एव मलीन हो जाय ? परम तत्त्व से परिचय के अभाव मे यह जगत मोह मे डूबा हुआ है। यद्यपि यह कहा जाता है कि सूर्य देवता परम तत्त्व हैं। पर वह तो झूठा देवता है। व्यक्ति इस झूठे देवता से सुख चाहता है। वह सूर्य कभी तो आग बन कर जलाता है और कभी अखण्ड वर्षा की धारा बहाता है। और कभी अत्यन्त ठडक (शीतकाल) का समय कर देता है। इन तीनो स्थितियो (गर्मी, वर्षा, जाडा) मे बहुत दु ख है। ऐसे दु खदायी एव झूठे देवता की आराधना करना। मूर्ख क्या कभी सुख प्राप्त कर सकता है ? वे लाभ के लिए दौडते है, और अपनी गाठ की पूँजी (अपना सहज आनन्द स्वरूप) भी गवाँ बैठते हैं। विषयो का यह राज्य दिनो-दिन क्षीण हो रहा है। दिन बीतते जा रहे हैं और जन्म व्यर्थ जा रहा है। मृत्यु की ओर किसी का ध्यान नही है। माया, मोह, धन (सासारिक आकर्षण) का कोई हिसाब नही है—वे अगम्य एव अनिर्वचनीय हैं—उनकी कोई सीमा नही है। जीव मिथ्या वासनाओ वाले इस मिथ्या ससार मे ही उलझा हुआ है। सत्य एव अलक्ष परम तत्त्व को जगत के लोग देखने का प्रयत्न ही नही करते हैं। ईश्वर के प्रति सच्ची निष्ठा वाले जीव के लिए वह परम हैं। ईश्वर के प्रति सच्ची निष्ठा वाले जीव के लिए वह परम तत्त्व, अत्यन्त निकट है और जो मिथ्या वासनाओ से ग्रस्त है, उसके लिए वह परम तत्व दूर है। परन्तु (दुर्भाग्य तो यह है कि) यह मोह ग्रस्त जीव वासनाओं के विष को ही सजीवनी बूटी मान बैठता है।

अलकार—(i) विरोधाभास —कर गहि ·· ·कूपा।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—दीपक कूपा।
(iii) छेकानुप्रास—अचरज अनूपा।
(iv) विषम—सुखा ··· असाधा।
(v) अनन्वय की व्यजना—दरसन···· होई।
(vi) वृत्यानुप्रास—समि साध समान सिध सोई।
(viii) गूढोक्ति—भेष कहा ··· ···विसूधा।
(viii) विरोधाभास—विष कू · मूरी।
विशेष—उपलक्षणा पद्धति पर वाह्याचार का विरोध है।

(२०)

कथ्यो न जाइ नियरे अरु दूरी, सकल अतीत रह्या घट पूरी ॥
जहा देखौं तहां रांम समांनां, तुम्ह बिन ठौर और नहीं आनां ॥
जदपि रह्या सकल घट पूरी, भाव बिनां अभि अतरि दूरी ॥
लोभ पाप दोऊ जरं निरासा, झूठे झूठ झूठि लागि रही आसा ॥
जहुवां ह्वै निज प्रगट बजावा, सुख सतोष तहां हम पावा ॥

नित उठि जस कीन्ह परकासा, पावक रहै जैसे काष्ट निवासा ॥
बिना जुगति कैसे मथिया जाई, काष्टै पावक रह्या समाई ॥
कष्टै कष्ट अग्नि पर जरई, जारै दार अग्नि समि करई ॥
ज्यूं रांम कहे ते रांमै होई, दुख कलेस घालै सब खोई ॥
जन्म के कलि विष जांहि बिलाई, भरम करम का कछु न बसाई ॥
भरम करम दोऊ बरतै लोई इनका चरित न जांनै कोई ॥

शब्दार्थ – आना=अन्य । जहुँवा=जिस अवस्था । कष्टै कष्ट=काठ से काठ को । कलिविष=कल्मप, पाप ।

संदर्भ—पूर्व रमैणी के समान ।

भावार्थ- परमतत्व न पास कहा जा सकता है और न दूर । वह सबसे परे होते हुए भी घट-घट मे व्याप्त है । मैं जहाँ कही भी देखता हूँ, वहाँ राम को ही व्याप्त देखता हूँ । हे भगवन् ! तुम्हारे बिना मैं कोई स्थान नही जानता हूँ—अर्थात् कोई ऐसा स्थान नही है जहाँ तू न हो । यद्यपि वह तत्व समस्त हृदयो मे व्याप्त है तथापि वह आभ्यन्तर मे विराजमान् तत्व भक्ति-भाव के बिना दूर (अप्राप्य) ही बना रहता है । जीव लोभ और पाप के वशीभूत होकर निराशा की अग्नि मे जलते रहते हैं । झूठी वासनाओ मे ग्रस्त झूठे व्यक्ति झूठे विषय-भोगो से सुख की आशा करते रहते हैं । जिस अवस्था मे पहुँच कर मैं अपने मे व्याप्त अनाहद स्वरूप को ध्वनित कर पाया, वही मुझको सुख और सतोष की प्राप्ति हुई । वह परमतत्व सदैव अपने आपको सम्पूर्ण विश्व मे प्रकाशित करता है जैसे काठ मे अग्नि अव्यक्त रूप से निवास करती है । यद्यपि काष्ठ मे अग्नि व्याप्त रहती है तथापि प्रयत्न पूर्वक मथन किए बिना उसको प्रकट नही किया जा सकता है । (वैसे ही साधना के बिना अन्त करण मे व्याप्त परम तत्त्व) (अनाहत स्वरूप) का साक्षात्कार नही किया जा सकता है । काठ को काठ से रगड कर अग्नि प्रकट की जाती है । वह अग्नि प्रज्वलित होकर लकड़ी को भी अग्निमय कर लेती है । उसी प्रकार हृदय से प्रकट किए हुए राम का जप करने से साधक भी राममय हो जाता है । राम के साथ उसकी यह एकाकारता उसके सम्पूर्ण दु खो एव क्लेशो को नष्ट कर देती है, इससे उसके जन्मजात समस्त पाप विलीन हो जाते हैं । राम मय स्थिति प्राप्त हो जाने पर भ्रम तथा कर्म बन्धनो का कुछ भी वश नही चलता है, अर्थात् व्यक्ति अज्ञान जन्य भ्रम तथा कर्म-वन्धन से छुटकारा पा जाता है । ससार के प्राणी भ्रम तथा भ्रम जनित कर्मों मे ही व्यवहार करते रहते हैं । इनके स्वरूप को कोई भी नही समझ पाता है ।

अलंकार—(i) विरोधाभास—नियरै · पूरी । जदपि पूरी ।
(ii) सवधातिशयोक्ति—कथ्यो न जाइ, भरम ·· वसाई । इनका कोई ।
(iii) पदमैत्री—ठौर और । होई खोई । भरम करम ।

(iv) रूपक—निरासा।
(v) यमक—झूठै झूठै।
(vi) अनुप्रास—झूठे झूठै झूठ।
(vii) उदाहरण—नित उठि ·· निवासा,। जारै ··· होई।
(viii) वक्रोक्ति—बिना ······जाई।
(x) तद्गुण - अग्नि सम करई।

विशेष – (i) परमतत्व की अनिवर्चनीयता एव सर्वव्यापकता का निरूपण है।

(ii) सर्व घट वासी प्रभु को काष्ठ से व्याप्त अग्नि के समान बताकर कबीर ने एक दुरूह विषय को सहज ही हृदयगम्य कर दिया है। यहाँ पर इन्होने 'अद्वैत वादियो की-भाँति' काष्ठवह्नि न्याय द्वारा ब्रह्म के स्वरूप को स्पष्ट किया है।

(गोस्वामी तुलसीदास ने भी लिखा है)

एक दारुगत देखिअ एकू। पावक सम जुग ब्रह्म विवेकू।

(२१)

इन दोऊ ससार भुलावा, इहके लागे ग्यांन गंवावा।।
इनकौ मरम पै सोई बिचारी, सदा आनद लै लीन मुरारी।।
ग्यांन द्रिष्ठि निज पेखै जोई, इनका चरित जांनै पै सोई।
ज्यू रजनी रज देखत अधियारी, डसे भुवंगम बिन उजियारी।।
तारे अगिनत गुनहि अपारा, तऊ कछू नहीं होत अधारा।।
झूठ देखि जीव अधिक डराई, बिनां भुवगम डसी दुनियांई।।
झूठे झूठे लागि रही आसा, जेठ मास जैसे कुरंग पियासा।।
इक त्रिषावंत दह दिसि फिरि आवै, झूठै लगा नीर न पावै।।
इक त्रिषावंत अरु जाइ जराई, झूठी आस लागि मरि जाई।।
नीझर नीर जांनि परहरिया, करम के बांधे लालच करिया।।
कहै मोर कछू आहि न वाही, भरम करम दोऊ मति गवाई।।
भरम करम दोऊ मति परहरिया, झूठै नांऊ साच ले धरिया।।
रजनी गत भई रवि परकासा, भरम करम धू केर बिनासा।।
रवि प्रकास तारे गुन खीनां, आचार व्योहार सब भये मलीना।।
विष के दाधे विष नहीं भावे, जरत जरत सुखसागर पावै।।

शब्दार्थ—दोऊ=माया मोह। लागें=इनके कारण। पेख=देखै। रज=ज्योति, प्रकाश। नीझर=निर्झर=आनन्द का निर्झर।

सदर्भ--कबीर कहते है कि अज्ञान एव दुःख ग्रस्त जीव को अन्ततः ज्ञान एव प्रकाश की प्राप्ति हो जाती है।

भावार्थ— माया-मोह इन दोनो मे फस कर यह अपने आत्म स्वरूप को भुल जाता है। इन दोनो बातो के रहस्य पर जो चिंतन करता है, वह परमतत्त्व मे लीन

होकर सर्वदा आनन्द का ही अनुभव करता है। जो व्यक्ति ज्ञान दृष्टि से अपने स्वरूप का साक्षात्कार करता रहता है, वही भ्रम के रहस्य तथा कर्म की सच्ची प्रक्रिया को समझ पाता है।

जैसे रात्रि मे दृष्टि का अन्धकार रहता है और प्रकाश के अभाव मे भ्रम जनित सर्प उसको डस लेता है, वैसे ही यह जीवन है। इसमे अज्ञान का अधकार है और इसमे मोहरूपी सर्प उसको डस लेता है। असख्य तारे हैं, उनकी शक्ति भी अपार है, परन्तु फिर भी वे दृष्टि का आधार नही बन पाते हैं अर्थात् उनका प्रकाश देखने की सामर्थ्य प्रदान नही कर पाता है। इस भ्रम जनित ससार-सर्प को देख कर जगत के लोग भयभीत रहते हैं। विना ही सर्प के यह दुनियाँ दशित अनुभव करती है। भ्रम मे पडे हुए जीव को इन झूठे विषयो से आशा वधी हुई है। जैसे जेठ के महीने मे (अधिक तेज धूप के समय) प्यास से पीडित हरिण मृगतृष्णा मे भटकता रहता है, वैसे ही मानव विषयो के प्रति आसक्त होकर दसो दिशाओ मे भटकता है। वह मिथ्या मृगतृष्णा मे फँसे होने के कारण जल नही पाता है। उसी प्रकार विषयासक्त व्यक्ति को भी विषयासक्ति के द्वारा तृप्ति नही हो पाती है। एक तो वह प्यास से पीडित रहता है और दूसरे वह सूर्य के ताप से जल रहा है। मृगतृष्णा के जल की झूठी आशा मे भटकता हुआ वह मृग मर जाता है। यही जीव की अवस्था है। इस जीव रूपी मृग ने जान-बूझकर आत्मज्ञान (ईश्वर प्रेम) के आनन्द निर्झर को छोड दिया। अपने कर्मों के वन्धन के वशीभूत होकर मानव वाह्य विषयो के लालच मे पड गया। जहाँ कुछ भी नही है, जीव-मृग ने उसी मे अपनी ममता जमा ली है। इसी प्रकार भ्रम एव भ्रमजनित कर्म दोनो ने मानव का विवेक नष्ट कर दिया। सत्य वस्तु पर झूठा नाम आरोपित करके उसको अपने पास रखा।

अन्त मे अज्ञान की रात्रि समाप्त हुई और ज्ञान का सूर्य प्रकाशित हो गया। भ्रम और करम की धुन्ध का भी नाश हो गया। सूर्य रूपी आत्म ज्ञान के प्रकाश मे बहु देवोपासना रूपी तारागण क्षीण होगये (मन्द पड गये)। सम्पूर्ण सासारिक आचार-व्यवहार मलीन पड गये। वास्तव मे विपयासक्ति के द्वारा सताए हुए को विषय रूपी विप अच्छा नही लगता है। विषयो से जलते-जलते अन्त मे जीव सुख सागर भगवान एव उनके प्रेम को प्राप्त हो जाता है।

अलंकार— (i) रूपकातिशयोक्ति—सम्पूर्ण रमैणी।
(ii) साग रूपक—सम्पूर्ण रमैणी।
(iii) रूपक—ग्यान दृष्टि।
(iv) उदाहरण—ज्यू उजियारी। झूठे · पियासा।
(v) विशेपोक्ति—तारे अधारा।
(vi) विभावना—विना दुनियाई।
(vii) पुनरुक्ति प्रकाश—जरत जरत।

विशेष—(i) जीव के लिए भविष्य की आशा का सदेश है। कष्ट-सहन करते

हुए जीव अपनी भूलो से सीखता जाता है, क्रमशः विकसित होता जाता है और ज्ञानान्धकार से मुक्त हो जाता है। विषयी जीव स्वय विषयो से विरक्त हो जाता है और अन्तत परम तत्त्व को प्राप्त कर लेता है।

विषय-दग्ध जीव की स्थिति दूध से जले हुए उस व्यक्ति के समान हो जाती है जो छाछ को फूक फूक कर पीता है। भ्रम जनित रज्जु सर्प से दशित व्यक्ति लोक-व्यवहार मे भी रस्सी को सर्प समझने लगता है। जो तुलसीदास सर्प को रस्सी समझकर प्रियतमा की अट्टालिका पर चढ गये थे, उन्ही तुलसी ने प्रत्येक रस्सी को सर्प समझ कर छोड दिया था।

(ii) झूठ देखि" " दुनियाई—समभाव के लिए देखे—

केशव कहि न जाइ का कहिये।

× × ×

सून्य भीति पर चित्र, रंग नहि तनु बिनु लिखा चितेरे।

× × ×

रविकर-नीर बसै अति दारुन, मकर रूप तेहि माहीं।
बदन हीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं।
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पहिचानै।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(२२)

अनित झूठ दिन धावै आसा, अध दुरगंध सहै दुख त्रासा ॥
इक त्रिषावत दुसरै रवि तपई, दह दिसि ज्वाला चहूँ दिसि जरई ॥
करि सनमुखि जब ग्यान विचारी, सनमुखि परिया अगनि मझारी ॥
गछत गछत जब आगै आवा, बिब उनमॉन ढिबुवा इक पावा ॥
सीतल सरीर तन रह्या समाई, तहां छाड़ि कत दाझै जाई ॥
यूं मन बारूनि भया हमारा, दाधा दुख कलेस संसारा ॥
जरत फिरै चौरासी लेखा, सुख कर मूल किनहूँ नहीं देखा ॥
जाकै छाडै भये अनाथा, भूलि परै नहीं पावै पंथा ॥
अछै अभि अंतरि नियरै दूरी, बिन चीन्ह्यां क्यूं पाइये मूरी ॥
जा बिन हंस बहुत दुख पावा, जरत गुरि रांम मिलावा ॥
मिल्या रांम रह्या सहजि समाई, खिन बिछुर्यां जीव उरझै जाई ॥
जा मिलियां तै कीजै बधाई, परमानद रैनि दिन गाई ॥
सखी सहेली लीन्ह बुलाई, रुति परमानद भेटियै जाई ॥
सखी सहेली करहि अनदू, हित करि भेटे परमानंदू ॥
चलो सखी जहुँवां निज रांमा, भये उछाह जाडे सब कामां ॥
जांनूं कि मोरै सरस बसता, मै बलि जांऊ तोरि भगवता ॥

भगति हेत गावै लैलीनां, ज्यूं बन नाद कोकिला कीन्हां ॥
बाजै संख सबद धुनि बेनां, तत मन चित हरि गोबिंद लीनां ॥
चल अचल पांइन पगुरनी, मधुकरि ज्यूं लेहि अघरनीं ॥
सावज सीह रहे सब मांची, चंद अरु सूर रहे रथ खांची ।
गण गंध्रप मुनि जोवै देवा, आरति करि करि बिनवै सेवा ॥
बासि गयद्र ब्रह्मा करै आसा, हम क्यूं चित दुर्लभ रांम दासा ॥

शब्दार्थ—अनिल=पवन । अध=अधड, आधी । तृषावत=प्यासा, पानी का इच्छुक । मझारी=मध्य । गछत गछत=चलते-चलते । बिंव=दो, योग्यता एव शक्ति । ढिडवा=गडढा । बारूनि=वारुणि=मदिरा ।

सन्दर्भ—कबीरदास ज्ञानोदय की दशा का वर्णन करते हैं ।

भावार्थ—पवन दिन भर झूठी आशा मे भटकता रहता है । वह अधड बना हुआ दुर्गन्ध से परिपूर्ण अनेक प्रकार के दु खो एव कष्टो को सहन करता रहता है । एक तो प्यासा रहता है और दूसरे सूर्य उसको अत्यधिक तप्त करता रहता है । उसको दसो दिशाओ मे (सर्वत्र) अग्नि का सामना करना पडता है और इस प्रकार वह जहाँ जाता है वहाँ (चारों दिशाओ मे) वह जलता ही रहता है । जब अपने दु खो पर विचार करके वह आगे बढा तो सामने ही वह जलती हुई अग्नि मे गिर गया चलते-चलते जब वह आगे आया, तो उसको अपनी योग्यता एव शक्ति के अनुरूप एक छोटा सा-गर्त (शरीर की उपाधि) प्राप्त हो गया । उसमे वायु का शरीर शीतल होकर समा गया, वह उसी मे रचपच गया । एक आसक्ति को छोडकर उसको दूसरे शरीर के प्रति आसक्ति भी खूब प्राप्त हुई । पवन की तरह मेरा भी मन सासारिक सुखो की मदिरा मे रचपच गया । इस प्रकार हमको पुन दु खो एव सासारिक क्लेशो मे दग्ध होना पडा । हम चौरासी लाख योनियो मे दग्ध होते हुए भटकते फिरे, परन्तु आनद के हेतु भगवान एव उनके प्रति प्रेम की ओर कभी अथवा किसी ने भी ध्यान नही दिया । जिस भगवान को छोडने के कारण हम जीव अनाथ हो गये, उसी को वह सर्वथा भूल गया है और उसके साक्षात्कार के उपयुक्त साधना पर वह अग्रसर नही होता है । वह परमतत्त्व जीव के हृदय (अन्त करण) मे विराज मान रहता है, और (अज्ञान के कारण) वह पास होते हुए भी दूर ही रहता है । उस तत्त्व को पहचाने विना जीव को आनद कद भगवान किस प्रकार दर्शन दे सकते हैं । जिस परम तत्त्व के अभाव मे जीव अत्यन्त दु खी हुआ । सासारिक कथाओ मे जलते रहने वाले उस जीव को सद्गुरु ने राम तत्त्व से मिला दिया । राम तत्त्व का साक्षात्कार हो जाने पर जीव सहज स्वरूप मे तदाकार हो गया । उस परम तत्व से वह क्षण भर को बिछुडा और फिर मायाजाल मे फस गया । उस प्रियतम को साक्षात्कार होने पर आनद के वधाये गाये गये । और परमानद प्रभु के साथ दिन रात आनन्द के साथ (गाते हुए) व्यतीत हुए । जीवात्मा अपनी समस्त सखी सहेलियो (अन्त करण की प्रेमानुकूल प्रवृत्तियो) को एकत्र कर लिया और वह हर्ष एव उल्लास

के साथ परमेश्वर से जाकर मिल गईं। सारी ज्ञानेन्द्रियाँ आनंदमय हो गईं तथा अत्यधिक प्रेम के साथ भगवान के प्रेम मे मग्न हो गईं। सखियाँ वहाँ चली जहाँ उनके परमानन्द राम थे अर्थात् समस्त वृत्तियाँ रामोन्मुख हो गईं। उनके मन मे अत्यन्त उल्लास था और उन्होने समस्त विषयासक्ति का त्याग कर दिया। आनन्द मे उल्लसित जीवात्मा कहती है कि मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मेरे हृदय मे वसत का विकास हो गया है। हे भगवान, मैं आपकी वलिहारी जाती हूं। मेरा हृदय भक्ति रूपी वसत मे लवलीन होकर उसी प्रकार गा रहा है जैसे वन मे कोकिला गूंज रही हो। हृदय मे शखो का शब्द होता है और वीणा की ध्वनि हो रही है। जीव का तन मन चित्त भगवान मे तन्मय हो गया है। अब तक जो भगवान अचल (कठोर एव निर्जीव) प्रतीत होते थे, अब भक्ति के प्रभाव से द्रवित (सजीव एव करुणार्द्र) हो गये हैं और जो पंगु थे, उन्हे पैर मिल गये है अर्थात् जो भगवान के प्रति उन्मुख होने मे असमर्थ थे, वह अब भक्ति-पथ पर अग्रसर हो गये हैं। भक्त लोग भ्रमर की भांति भगवान के अधर रस का पान कर रहे हैं। शिकार योग्य पशु और शिकारी सिंह वैर-भाव भूल कर भक्ति मे तन्मय हो गये हैं। सूर्य और चन्द्रमा भी अपने अपने रथो को खीचकर खडे हो गये हैं। देवगण, गन्धर्व, मुनि तथा जितने भी देवता हैं, वे सब भगवान की छवि का दर्शन-लाभ करते हैं तथा उनकी आरती करते हैं, प्रार्थना करते हैं तथा सेवा करते हैं। वासुकी, इन्द्र, ब्रह्मा आदि सब भक्ति (ज्ञानोदय) की इस दशा को प्राप्त करने की इच्छा करते हैं और यह मनोरथ करते हैं कि हमारे चित्त मे राम के प्रति दुर्लभ दास्य भक्ति का निवास हो।

अलकार —(i) मानवीकरण—पवन सम्बन्धी उक्तियाँ। चद अरु सूर्य····· खाची पवन को यदि मन का प्रतीक माना जाए, तो यहाँ अप्रस्तुत विधान का अश मानने से 'उपमा' अलकार भी हो सकता है।

(ii) यमक—सनमुखि।

(iii) पुनरुक्ति प्रकाश—गछत गछत, जरत-जरत, करि-करि।

(iv) गूढोक्ति—तहाँ छाडि ·· ···जाई।

(v) रूपक —मन वारुनि।

(vi) विरोधाभास—अष्टै····· ·· पूरी।

(vii) वक्रोक्ति—विन ·· ···पूरी।

(viii) उपमा—ज्यूं····· ·कीन्हा, मधुकर·······अवरनी।

(ix) सभग पद यमक—चल अचल।

विशेष—(i) ज्ञानोदय, अथवा भक्ति के उदय दशा का सजीव वर्णन है।

(ii) निसर्ग के रहस्यवाद की सुन्दर व्यजना है।

(iii) गावज···· ·· माची—समभाव देखें—

कहलाने एकत वसत अहि मयूर मृग बाघ।
जगत तपोवन सो कियो, दीरघ दाघ निदाघ। (बिहारी)

(iv) चद अरु सूर रहे रथ खाँची—समभाव की अभिव्यक्ति देखें—
गुन-गभीर-गोपाल मुरली कर लीन्हीं तर्बाह उठाइ।
धरि करि वेनु अधर मनमोहन कियो मधुर धुनि गान।
मोहे सकल जीव जल-थल के सुनि वार्यो तन-प्रान।
× × ×
डुलति लता नहि मरुत मद गति सुनि सुन्दर मुख बैन।
खग मृग मीन अधीन भये सब, कियो जमुन-जल सैन। (सूरदास)

(२३)

भगति हेतु रांम गुन गांवै, सुर नर मुनि दुरलभ पद पांवै ॥
पुनिम बिमल ससि मास बसंता, दरसन जोति मिले भगवता ॥
चंदन बिलनी बिरहनि धारा, यूं पूजिये प्रांनपति रांम पियारा ॥
भाव भगति पूजा अरु पाती, आतमरांम मिले बहु भांती ॥
रांम रांम रांम रुचि मांनै, सदा अनद रांम ल्यौ जांनै ॥
पाया सुख सागर कर मूला, जो सुख नहीं कहू सम तूला ॥
सुख समाधि सुख भया हमारा, मिल्या न बेगर होइ ।
जिहि लाधा सो जांनिहै, रांम कबीरा और न जांनै कोइ ॥

शब्दार्थ - पुनिम=पूर्णिमा । विलनी=विल्व, वेल का फल । वेगर=पृथक । लाधा=लाभ प्राप्त किया ।

संदर्भ— कबीरदास सच्चे भक्त का वर्णन करते हैं।

भावार्थ— भक्त जन भगवान की भक्ति की प्राप्ति के लिए राम के गुणो का स्मरण करते हैं और उस परम पद को प्राप्त करते है, जो देवता, सिद्ध जन एव मुनियो के लिए भी दुर्लभ है। वसत मास की पूर्णिमा के निर्मल चन्द्रमा के प्रकाश मे भगवान की ज्योति के दर्शन होते हैं। बिरहिणी जीवात्मा ने भावनाओ का चन्दन एव बेल-फल धारण किया और इस प्रकार अपने प्राणपति राम की पूजा की। भाव की पूजा की सामग्री है तथा भक्ति ही फूल-पत्ती हैं। इस प्रकार की पूजा करने पर जीवात्मा को आत्माराम की प्राप्ति हो गई। अव 'राम-नाम' के निरन्तर उच्चारण मे ही मन लगता है और सदैव राम मे लौ लगाकर आनद का अनुभव करती है। जीवात्मा को आनन्द सागर के मूल स्रोत भगवान (भगवद् प्रेम) की प्राप्ति हो गई है। उस सुख की समानता मे अन्य कोई सुख नही कर सकता है। मेरा यह सुख समाधि के सुख के समान है। अव मैं परमात्मा के साथ एकाकार हो गई हूँ और उनसे पृथक् नही होऊँगी। कबीरदास कहते हैं कि इस आनद को वे ही जान सकते हैं— जिनको इसकी अनुभूति का लाभ हुआ है, अन्य कोई इसको नही जान सकता है।

अलंकार—(i) व्यतिरेक की व्यजना—सुर नर ······ पावै।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—ससि, वसता।
(iii) रूपक—भाव ······ पाती।

(iv) पुनरुक्ति प्रकाश—राम की आवृत्ति ।
(v) अनन्वय—जो सुख ... तूला ।
(iv) उपमा—सुख ... हमारा ।

विशेष—(i) बसन्त एवं ससि सुन्दर प्रतीक हैं। बसत है भक्ति के उदय का महोत्सव। चन्द्रमा है प्रेम का प्रतीक।

(ii) भक्ति की दशा का मार्मिक वर्णन है।

(iii) रहस्यवाद की व्यजना है।

(iv) जिहि... जानै कोइ— इस प्रकार की पक्तियो मे कबीरदास भक्ति के उदय के महोत्सव का दिव्य सगीत गाते हुए दिखाई देते हैं, उसे मौन आचरण कहिए अथवा गूगे का गुड कहिए। यथा—

अपुनपौ आपुन ही में पायो।
सबद-ही सबद भयो उजियारो, सतगुरु भेद बतायो।
× × ×
सूरदास, समुझे की यह गति, मन ही मन मुसकायो।
कहि न जाइ या सुख की महिमा, ज्यो गूंगे गुर खायो। (सूरदास)

[५] अष्टपदी रमैणी

(२४)

केऊ केऊ तीरथ ब्रत लपटांनां, केऊ केऊ केवल रांम निज जांनां ॥
अजरा अमर एक अस्थांनां, ताका मरम काहू बिरलै जांना ॥
अवरन जोति सकल उजियारा, द्रिष्टि समांन दास निस्तारा ॥
जे नही उपज्या धरनि सरीरा, ताकै पथिन सींच्या नीरा ॥
जा नहीं लागे सूरजि के बांनां, सो मोहि आंनि देहु को दानां ॥
जब नहीं होते पवन नही पानीं, जब नही होती सिष्टि उपांनी ॥
जब नहीं होते प्यंड न वासा, तब नहीं होते धरनि अकासा ॥
जब नहीं होते गरभ न मूला, तब नहीं होते कली न फूला ॥
जब नही होते सबद न स्वाद, तब नहीं होते बिद्यान बाद ॥
जब नही होते गुरू न चेला, गम अगमै पंथ अकेला ॥
अवगति की गति क्या कहूँ, जसकर गाँव न नांव ।
गुन विहूँन का पेखिये काकर धरिये नांव ॥

शब्दार्थ—लपटाना = लिप्त। वर्ण = रग, रूप। निस्तारा = कल्याण।

सन्दर्भ—कबीरदास परम तत्व की अनिर्वचनीयता का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—कुछ लोग तीर्थ व्रत आदि मे ही लिप्त बने रहते हैं। कुछ लोग केवल राम को ही अपना सर्वस्व समझते है। वह अजर एवं अमर तत्त्व एक ही स्थान पर है। इसके रहस्य को कोई विरला ही जानता है। वह रूप रहित ज्योति है जिसका प्रकाश सवत्र फैला हुआ है। उस ज्योति के दृष्टि मे समाते ही (उसका

साक्षात्कार होते ही भक्त का कल्याण हो जाता है। वह ज्योति उत्पन्न नही हुई और उसने शरीर भी धारण नहीं किया। उसको प्राप्त करने का मार्ग जल से सीचा हुआ नही है अर्थात् सरल सुगम नही है। वहाँ तक सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँचता है। उस परम ज्योति को लाकर मुझको कौन प्रदान करेगा ? उस ज्योति के साक्षात्कार की अवस्था मे न हवा है न पानी। उस अवस्था मे सृष्टि की उत्पत्ति भी नही हुई थी। उस समय न शरीर था, न उसका निवासी प्राण ही। उस समय न धरती थी न आकाश ही। उस समय न गर्भ था न उसका मूल कारण ही न उपादान कारण मूल प्रकृति थी और न मित्र कारण पुरुष ही) तब न कली थी और न फूल था अर्थात् अव्यक्त व्यक्त की कल्पना नहीं थी। उस अवस्था मे न शब्द था और न उसका भोग ही। तब न ये विधाएँ थी और न उससे सम्बन्धित वाद-विवाद ही। उस अवस्था मे गुरु और चेला भी नही थे। उस समय गम्य और अगम्य करके विविध मार्ग नही थे—केवल सहज प्रेम-साधना का एक ही मार्ग था। उस अविगत के स्वरूप का क्या वर्णन करूँ ? उसका न कोई गाँव (निवास स्थान) है और न कोई नाम। उस गुणातीत को किस प्रकार देखा जा सकता है ? उसका नाम भी क्या रखा जा सकता है ? अभिप्राय यह है कि वह परम तत्त्व स्थान, नाम, गुण आदि से रहित है तथा शब्द और अर्थ के द्वारा जो कुछ अभिधेय है उससे वह परे है।

अलंकार—(i) पुनरुक्ति प्रकाश—केऊ केऊ।
(ii) विरोधाभास—अवरन ज्योति ·· उजियारा।
(iii) वक्रोक्ति—सो मोहि · दाना, गुन विहून···· नाव।
(iv) सभग पद यमक—पानी उपानी।

विशेष—(i) वह परम अनादि, अरूप, अवर्णनीय, अगोचर है।
(ii) सबद—उपलक्षणा पद्धति से तात्पर्य है इन्द्रियासक्ति।
(iii) गम अगमै पथ अकेला—वह ज्ञाता और ज्ञेय के भेदो से रहित केवल ज्ञान स्वरूप है।
(iv) ब्रह्म की अनिवर्चनीयता एव अद्वैत का प्रतिपादन कबीर पर वेदात दर्शन के प्रभाव को द्योतित करता है।

(२५)

आदम आदि सुधि नहीं पाई, मां मां हवा कहां थै आई ॥
जब नहीं होते रांम खुदाई, साखा मूल आदि नहीं भाई ॥
जब नहीं होते तुरक न हिंदू, माका उदर पिया का व्यंदू ॥
जब नहीं होते गाई कसाई, तब बिसमला किनि फुरमाई ॥
भूले फिरै दीन ह्वै धांवै ता साहिब का पंथ न पावै ॥
संजोगे करि गुण धर्या, बिजोगे गुण जाइ।
जिभ्या स्वारथि आपणै, कीजै बहुत उपाइ ॥

शब्दार्थ—आदम=आदि मानव। आदि=मूल तत्त्व।

सन्दर्भ— कबीरदास मानव के अज्ञान का वर्णन करते है।

भावार्थ—आदि मानव को मूल तत्त्व का ज्ञान नही हुआ। मानव जाति की माता हौवा कहाँ से आई ? मूल तत्व की वह अवस्था थी जहाँ न राम था, न खुदा ही। भाई, उस अवस्था मे शाखा, मूल आदि कुछ भी कल्पना नही है। वहाँ न मुसलमान है न हिन्दू। न माता का गर्भ है, न पिता का विन्दु ही अर्थात् उस स्थिति मे माता-पिता की भी कल्पना नही है। उस समय गाय न थी उसको मारने वाला कसाई नही था। तव भगवान के नाम पर हलाल करने का हुक्म किसने दिया ? जीव अज्ञान मे भूला हुआ उसकी खोज मे दीन बना हुआ इधर-उधर भटक रहा है। उसको भगवत्प्राप्ति का मार्ग नही मिल रहा है। भक्ति के द्वारा भगवान से तादात्मय स्थापित करने से जीव मे सद्‌गुणो का विकास होता है और उससे पराङ्-मुख (विमुख) होने पर वे समस्त सद्‌गुण समाप्त हो जाते है। परन्तु फिर भी मानव अपनी जिह्वा के स्वाद (इन्द्रिय भोग) के वशीभूत होकर उसकी तृप्ति के लिए अनेक उपाय करता फिरता है।

अलंकार—(i) सभग पद यमक—आदिम आदि।
(ii) सम्वन्धातिशयोक्ति—आदम···· पाई।
(iii) गूढोक्ति—मामा ····· आई।
(iv) वीप्सा—मा मा।
(v) वक्रोक्ति—विसमला ··· फुरमाई।
(vi) विशेपोक्ति—भूले फिरे ··· ···न पावै।
(vii) पदमैत्री—व्यदू हिन्दू।

विशेप—(i) 'एकोब्रह्म द्वितीयो नास्ति' का प्रतिपादन है। मूल तत्त्व संश्लेष्टावस्था मे रहता है। उसका विश्लेपण नाम-रूप अथच उपाधि का हेतु वनता है। द्वैत वुद्धि ही समस्त भेद एव सघर्ष का मूल हेतु है।

(ii) जिभ्या स्वारथि— उपलक्षणा पद्धति से - इन्द्रियासक्ति।

(iii) भक्ति भाव का प्रतिपादन है। भगवान की कृपा द्वारा ही जीव को सद्‌गुण प्राप्त होते हैं। जव भगवान कृष्ण ने अपना वरदहस्त हटा लिया तो अर्जुन के गाण्डीव की प्रत्यचा शिथिल हो गई और उसके सरक्षण मे जाने वाली गोपियों को साधारण भीलों ने लूट लिया था।

(२६)

जिनि कलमां कलि मांहि पठावा कुदरति खोजि तिनहूँ नहीं पावा ॥
कर्म करींम भये कर्तूता, वेद कुरान भये दोऊ रीता ॥
कृतम सो जु गरभ अवतरिया, कृतम सो जु नाव जस धरिया ॥
कृतम सुनित्य और जनेऊ, हिंदू तुरक न जानैं भेऊ ॥
मन मुसले की जुगति न जांनैं, मति भूलै द्वै दीन बखानैं ॥

पाणी पवन संयोग करि, कीया है उतपाति ।
सुनि मै सबद समाइगा, तब कासनि कहिये जात ।।

शब्दार्थ—कलमा= वह वाक्य जो मुसलमानो के धर्म-विश्वास का मूल मंत्र है "ला इलाह इल्लिल्लाह, मुहम्मद रसूलिल्लाह ।" मा कुदरति= माया । खोजि= पता, रहस्य । रीता=वाह्याचार के ग्रन्थ ।

संदर्भ—कवीरदास धार्मिक वाह्याचार की निरर्थकता बताते हैं ।

भावार्थ—जिसने इस कलियुग मे कलमा का उपदेश मानवो तक पहुँचाया, वह भी भगवान की माया का रहस्य नही समझ सका । मोह एव अज्ञान के प्रभाव के कारण श्रेष्ठ कर्म भी निंद्य कर्मों मे परिणत हो जाते है । वेद और कुरान जैसे धर्म के श्रेष्ठ ग्रन्थ भी अज्ञानी व्यक्तियो के हाथो मे पड जाने के कारण वाह्याचार के आधार वन गये । जो गर्भ मे उत्पन्न होता है, वह कृत्रिम है जो नाम और यश धारण करता है, वह भी कृत्रिम है । सुन्नत करवाना और यज्ञोपवीत धारण करना दोनो ही वाह्याडम्वर मात्र हैं । हिन्दू और मुसलमान दोनो ही परम तत्व के वास्तविक रूप को नही जानते हैं । व्यक्ति अपने मन का सुधार करने का उपाय तो जानता नही है और मति भ्रष्ट होकर दो भिन्न धर्मों की वात करता है । जल और हवा, विन्दु एव प्राणी के सयोग से भगवान ने इस शरीर की उत्पत्ति की है । रे मानव जब शब्द शून्य मे समा जाएगा अर्थात जब व्यक्ति व्यापक चैतन्य मे विलीन हो जाएगा, तव उस समय जाति-भेद की बात किससे करेगा ?

अलंकार—(i) वृत्यानुप्रास—कलमा कलि कुदरति । करम करीम ।
(ii) सवधातिशयोक्ति—कुदरति पावा । हिंदू—मेऊ ।
(iii) दृष्टान्त—वेद कुरान रीता ।
(iv) विरोधाभास—कृतम घटिया ।
(v) वक्रोक्ति—तब कासनि जाति ।

विशेष—(i) वाह्याचार का विरोध है ।

(ii) कवीर कहते हैं कि धर्म ग्रन्थ झूठे नही है । अज्ञानियो एव स्वार्थियो के हाथो मे पडकर वे वाह्याचार के मात्र साधन बन कर रह गये है । उनका वास्तविक स्वरूप तिरोहित हो गया है ।

(iii) कृतम " घटिया—व्यजना यह है कि परम तत्व अजन्मा एव नाम-रूप के परे है ।

(iv) पारमार्थिक अवस्था अभेदात्मक है । पारमाणविक दशा मे अभेद की ही कल्पना की जा सकती है ।

(२७)

तुरकी धरम बहुत हम खोजा, बहु बजगार करै ए बोधा ।।
गाफिल गरब्र करै अधिकाई, स्वारथ अरथि बधै ए गाई ।।

जाकौ दूध धाइ करि पीजै, ता माता कौं वध क्यूं कीजै ।।
लहुरै थकै दुहि पीया खीरो, ताका अहमक भकै सरीरो ।।
बेअकली अकलि न जांनही, भूले फिरै ए लोइ ।
दिल दरिया दीदार बिन, भिस्त कहाँ थै होइ ।।

शब्दार्थ—तुरकी धर्म = इसलाम धर्म । वजगार=अनुचित कार्य । बोधा= जान बूझ कर । गोफिल=गाफिल, अहकार मे मदहोश । अहमक=पागल, मूर्ख । दिल दरिया=विशाल हृदय । दीदार=साक्षात्कार । भिस्त=वहिश्त, स्वर्ग । लहुरै =छोटे वच्चे ।

सन्दर्भ—कवीरदास इसलाम धर्म के वाह्याचार के प्रति विरोध प्रकट करतेहैं।

भावार्थ—हमने इसलाम धर्म के सच्चे अनुयायियो की बहुत खोज की । ये लोग जान-बूझ कर अनेक अनुचित कार्य करते हैं । ये धर्म के अहकार मे मदहोश रहते हैं और स्वार्थ के वशीभूत होकर गाय का वध करते हैं । माता के समान जिसके दूध को पिया जाता है, उस (गाय) का वध क्यो किया जाना चाहिए । छोटे वच्चे तथा थके हुए (रोगी एव वृद्ध) व्यक्ति जिसका दूध पीते हैं, उसी गाय के शरीर को मूर्ख व्यक्ति खाते है । वे मूर्ख लोग ज्ञान की वात को जानते नही हैं, परन्तु अपने ज्ञान के अहकार मे भूले हुए रहते है । उदार हृदय वाले सबको प्रेम करने वाले भगवान के साक्षात्कार के विना व्यक्ति को स्वर्ग की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है ? अर्थात् करुणा सागर भगवान के सच्चे स्वरूप दर्शन के अभाव मे सुख-शाति की प्राप्ति सम्भव नही है ।

अलंकार—(i) गूढोक्ति—ता माता····कीजै ।
(ii) अनुप्रास—दिल दरिया दीदार ।
(iii) वक्रोक्ति—भिस्त····होइ ।

विशेष—(i) मासाहार का विरोध है—विशेष कर गोहत्या का यह वैष्णव धर्म का प्रभाव है ।

(ii) वाह्याचार का विरोध है, तथा भगवत्प्रेम का प्रतिपादन है । 'दिल दरिया' मे विश्व-प्रेम की व्यजना है ।

(२८)

पंडित भूले पढ़ि गुन्य वेदा, आप न पावैं नांनां भेदा ।।
संध्या तरपन अरु षट करमां, लागि रहे इनकै आशरमा ।
गायत्री जुग चारि पढाई, पूछौ जाइ मुकति किनि पाई ।।
सब मे रांम रहे ल्यौ सींचा, इन थै और को नीचा ।।
अति गुन गरब करै अधिकाई, अधिकै गरबि न होइ भलाई ।
जाकौ ठाकुर गरब प्रहारी, सो क्यूं सकई गरब सहारी ।।
कुल अभिमांन विचार तजि, खोजौ पद निरबांन ।।
अंकुर बीज नसाइगा, तब मिलै बिदेही थान ।।

शब्दार्थ—गुनि=गुन कर, मनन करके। आप=आत्म स्वरूप। सहारी=सहन करना। विदेही थान=विदेह पद, जीवन्मुक्त की अवस्था।

सन्दर्भ—पूर्व पद के समान।

भावार्थ—पडित लोग वेदो के अध्ययन एव मनन मे ही भ्रमित हो गये। नाना प्रकार की ऊहा पोह के चक्कर मे उनको आत्म-स्वरूप की प्राप्ति नही हो सकी। वे सध्योपासन, तर्पण एव ब्रह्मोचित छ कर्मों के विधि-विधान ही मे लगे रहते हैं और उन्ही के आश्रित बने रहते है। ये चार युगो से (कल्प के प्रारम्भ से) अद्वैत-तत्व (अभेद भाव) का प्रतिपादन करने वाले गायत्री मन्त्र को पढ़ते-पढाते आ रहे हैं। इनसे पूछा जाय कि इसके द्वारा किस-किसने मुक्ति की प्राप्ति की है। सम्पूर्ण प्राणियो मे राम व्याप्त है। फिर भी ये लोग कुछ लोगो को पवित्र करने के लिए जल के छीटें देते हैं। इस प्रकार कतिपय व्यक्तियो से अधिक नीच कौन हो सकता है? ये लोग। अपने आपको अत्यधिक श्रेष्ठ मान कर घमण्ड करते हैं, परन्तु अधिक घमण्ड करने से भलाई नही होती है। जिन ब्राह्मणो का भगवान गर्व को नष्ट करने वाला है, वह ब्राह्मणो के गर्व को ही किस प्रकार सहन कर सकता है? कबीर कहते हैं कि रे पडित अपने कुल की उच्चता का अभिमान छोड कर निर्वाण (मोक्ष) पद प्राप्त करने के लिए साधना करे। जब अहकार और भेदभाव का अकुर एव बीज नष्ट हो जाएगा (इनका समूल नाश हो जाएगा) तब तुमको जीवन्मुक्ति की अवस्था भी प्राप्ति हो सकेगी।

अलंकार—वक्रोक्ति—पूछो दाई। इनथैं नीचा।
सो क्यू ··· सहारी।

विशेष—(i) वाह्याचार का विरोध है।

(ii) षटकर्म—स्नान, सन्ध्या, पूजा, तर्पण, जप और होम। अथवा—अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह।

(iii) जाको—सहारी। हिन्दू धर्म ग्रन्थों मे इस प्रकार के वाक्याश प्राय पढने को मिल सकते हैं कि—"गरव गुपालहिं भावत नाही।" अथवा—

नारद कहेउ सहित अभिमाना। कृपा तुम्हारि सकल भगवाना।
करुनानिधि मन दीख बिचारी। उर अंकरेउ गरव तरु भारी।
बेगि सो मैं डारिहउँ उखारी। पन हमार सेवक हितकारी।
(रामचरितमानस—गोस्वामी तुलसीदास)

(२९)

खत्री करै खत्रिया धरमो, तिनकूं होय सवाया करमो।।
जीवहि मारि जीव प्रतिपारैं, देखत जनम आपनौं हारैं।।
पच सुभाव जु मेटै काया, सब तजि करम भजै रांम राया।।
खत्री सो जु कुटुब सूं सूझै, पचू मेटि एक कूं बूझै।।
जो आवध गुर ग्यांन लखावा, गहि करवाल धूप धरि धावा।।

हेला करै निसानै घाऊ, झूझ परै तहां मनमथ राऊ ॥
मनमथ मर न जीवई, जीवण मरण न होइ ।
सुनि सनेही रांम बिन, गये अपनपौ खोइ ।

शब्दार्थ—खत्री=क्षत्री। प्रतिपारै=प्रतिपालन करता है। पंचू=पाँच आसक्तियाँ। आवध=आजन्म, जीवन भर। करवात=तलवार। धूप=जोश। रेला करै=हल्ला बोलकर।

सन्दर्भ—कबीर हिंसा का विरोध करते है।

भावार्थ—क्षत्री क्षात्र धर्म का पालन करते हुए हिंसा करते हैं। फलत: उनके कर्म-बन्धन सवाए हो जाते हैं और भी अधिक बढ जाते हैं। जीवो को मारकर वे अन्य जीव (शरीर) का पालन करते है। उससे वे देखते-देखते अपना लोक बिगाड लेते हैं। अपने काम-क्रोधादि पाँचो स्वभावो को छोडकर तथा सम्पूर्ण कर्मों का त्याग करके राजा राम का भजन किया जाए—इसी मे जीव का कल्याण हैं। छत्री वही है जो अपने विकारो के कुटुम्ब से सघर्ष करता है और पच इन्द्रियो की आसक्ति को समाप्त करके अपने अन्त.करण मे एक परम तत्व का बोध जगाता है, वही वास्तव मे सच्चा क्षत्रिय वीर है। जो गुरु द्वारा प्राप्त ज्ञान पर अपनी दृष्टि जन्म भर जमाए रहता है, हाथ मे ज्ञान की तलवार लेकर जोश के साथ (विकारो पर) आक्रमण करता है तथा हल्ला बोलकर ठीक निशाने पर चोट करता है तथा जिससे युद्ध करते हुए कामदेव नामक राजा की मृत्यु हो जाती है, वही वास्तव मे सच्चा क्षत्रिय वीर है। इसके पश्चात् मरा हुआ कामदेव जीवित नही होता है अर्थात् सच्चे क्षत्रिय वीर को जन्म भर कामदेव नही सताता है और वह जीवन-मरण के चक्र मे नही पडता है—अर्थात् वह मोक्ष को प्राप्त हो जाता है। राम के प्रेम से रहित (शून्य) होकर जो आचरण करते है, वे अपने वास्तविक स्वरूप को खो देते हैं—अथवा उन्हे आत्म-बोध नही होता है।

अलंकार—(i) विरोधाभास=जीवहि प्रतिपारै।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—करवाल।

विशेष—आध्यात्मिक साधना का प्रतिपादन है। वीर वही है जो अपने विकारो पर विजय प्राप्त करले। वस्तुतः 'मैं और तेरा' की भावना से प्रसूत यह संसार ही तो हमारा वास्तविक शत्रु है। इसी पर विजय प्राप्त करके हम मोक्ष के अधिकारी बन जाते हैं। जैन धर्म मे साधक को 'जिन्' या 'वीर' कहा गया है। इसी से परम साधक वर्द्धमान 'महावीर' कहलाए। हिन्दुओ के देवता हनुमान भी अभिमान रहित होकर महावीर' कहे गये। गोस्वामी तुलसीदास ने भी कहा है कि—

महा अजय ससार रिपु जीति सकइ सो वीर।
जाके अस रथ होइ सो सुनहु सखा मतिधीर॥

(३०)

अरु भूले षट दरसन भाई, पाखंड भेस रहे लपटाई ।।
जैन बोध अरु साकत रौनां चारवाक चतुरग बिहूँना ।।
जैन जीवकी सुधि न जाने, पाती तोरि देहुरै आनै ।।
अरु प्रिथमी का रोम उपारै, रेखत जीव कोटि सघारै ।।
मनमथ करम करै अस रारा, कलपत बिंद धसै तिहि द्वारा ।।
ताको हत्या होइ अदूभूता, षट दरसन मै जैन बिगूता ।।
ग्यान अमर पद बाहिरा, नेड़ा ही तै दूरि ।
जिनि जान्यां तिनि निकट है, रांम रहा सकल भरपूरि ।।

शब्दार्थ—लपटाई=लिप्त । देहुरा=देवालय । प्रिथमी=पृथ्वी । तुला=तुल्य । असरारा=लगातार ।

सन्दर्भ—कबीरदास जैनियो की औपचारिक अहिंसा का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—हे भाइयो ! आप लोग छ दर्शनो (वैशेषिक, सांख्य, न्याय आदि) के द्वारा प्रतिपादित परम तत्व के वास्तविक रूप को तो भूल गये है और उनके नाम पर प्रचारित विभिन्न पाखण्डो एव वाह्याचारो मे लिप्त होकर रह गये हैं । जैन, बौद्ध, शाक्तो की सेना, चार्वाक चारो मतावलम्बी ज्ञान से शून्य हो गये है । जैनी अहिंसक मानते हुए भी जीव हिंसा का वास्तविक अर्थ नही समझते हैं । ये लोग फूल-पत्ती तोड कर अपने देवालय मे चढाते हैं । दौना मे भर कर मरुआ, चम्पक आदि फूलो को लाते हैं । इन फूलो मे भी जीवो के समतुल करोडो छोटे-मोटे कृमि कीट रहते हैं । देवालय को बनाते समय ये पृथ्वी के रोमो (पेड-पौधे, घास आदि) को उखाडते है और देखते ही देखते करोडो जीवो का सहार कर देते हैं । काम के वशीभूत होकर ये निरन्तर अनेक प्रकार के कर्म करते रहते है और उनसे उत्पन्न क्लेशो को भोगते हुए बिन्दु पात करते है, तथा आवागमन के कारण भूत द्वार मे प्रवेश करते है । जैन मतावलम्बियो की अहिंसा सम्बन्धी धारणा बहुत ही अद्भुत होती है । ये जैन लोग अपने षट्दर्शनो मे ही ज्ञान-भ्रष्ट हो गये हैं । ये वास्तविक ज्ञान से आरम्भ अमर पद से विमुख हैं । अत जो आत्म तत्व व्यक्ति के सर्वथा निकट है, वह अज्ञान के द्वारा ग्रसित इन लोगो से बहुत दूर हो जाता है । जिन लोगो को ज्ञान एव विवेक प्राप्त है, उनके लिए आत्म-तत्व अत्यन्त निकट रहता है । वह उनका स्वरूप ही है । उन्हें तो सर्वत्र राम (आत्म तत्व) ही व्याप्त दिखाई देता है ।

अलकार—(i) रूपक—रोम ।
(ii) विरोधाभास—नेडा ही ते दूरि ।

विशेष—कबीर का कहना है कि जैन धर्म मतावलम्वी अहिंसा का वास्तविक अर्थ नही समझते हैं । वे अपने मन्दिरो और उनमे होने वाली पूजा के

नाम पर जीव-हत्या करते रहते हैं। इस प्रकार वह प्रकारान्तर मे जैनियो के वाह्याचारो, उनके मठाधीशो आदि के प्रति अपना विरोध प्रकट करते हैं।

(३१)

आपन करता भये कुलाला, बहु बिधि सिष्टि रची दर हाला ॥
विधनां कुंभ किये द्वै थांना, प्रतिबिंबता मांहि समांनां ॥
बहुत जतन करि बानक बांनां, सौंज मिलाय जीव तहां ठांना।
जठर अगनि दी की परजाली, ता मैं आप करै प्रतिपाली ॥
भीतर थै जब बाहिर आवा, सिब सकती द्वै नांव धराबा ॥
भूलै भरमि पर जिनि कोई, हिंदू तुरक झूठ कुल दोई ॥
घर का सुत जे होइ अयांनां, ताके संगि क्यूं जाइ सयांनां ॥
साची बात कहै जे वासूं, सो फिरि कहै दिवांनां तासूं ॥
गोप भिन है एकै दूधा, कासू कहिए बांम्हन सूधा ॥
जिनि यहु चित्र बनाइया, सो साचा सुतधार।
कहै कबीर ते जन भले, जे चित्रवत लेहि विचार ॥५॥

शब्दार्थ—कुलाला=कुम्हार, सृष्टिकर्त्ता। दरहाला=आजकल, अर्थात् शीघ्र ही। विधना=सृष्टिकर्त्ता, भगवान। सौंज=साधन।

सन्दर्भ—कबीर कहते है कि यह सृष्टि माया स्वरूप है। मनुष्य को किसी प्रकार भी कर्त्ता अभिमान नही करना चाहिए।

भावार्थ—भगवान स्वय कुम्हार बन गये और उन्होने विविध नाम रूपात्मक इस सृष्टि की रचना तत्काल कर डाली। इस कर्त्ता ने दो स्थानो पर घडे (प्राणी) तैयार किये अर्थात् द्वैत से सृष्टि की और उन अन्त करण रूपी घडो मे स्वय प्रतिबिम्ब बन कर समा गये। बहुत यत्न करके अनेक साधनो को जुटाकर तथा पच तत्वो आदि को मिलाकर उसने जीव बनाया। मातृ-उदर मे गर्भस्थ शिशु को जठराग्नि जलाये डालती थी किन्तु वहाँ भी वह दयालु जीव की रक्षा करता था। यही गर्भ जब उदर से बाहर आया, तब उसने अपने दो नाम शिव (पुरुष) और शक्ति (नारी) रख लिये—अर्थात् इस विविध रूपात्मक जगत का मूल स्रोत वह एक (ब्रह्म) ही है। अब कोई इस भ्रम मे न रहे कि हिन्दू और मुसलमान उत्पत्ति की दृष्टि से दो भिन्न कुल के हैं। अगर घर लडका मूर्ख होता है, तो घर के समझदार लोग उसको अपने साथ नही लगाते हैं। परन्तु अगर मैं सच्ची बात कहता हूँ अगर मैं जीव को माया द्वारा आवृत्त होने की बात कहता हूँ, तो लोग मुझे पागल कहते हैं। सब एक ही परम तत्व रूप दूध से उत्पन्न हुए हैं, केवल ग्वाले (पिता) का ही भेद है। ऐसी स्थिति मे ब्राह्मण और शूद्र किसमे कहे? जिसने सृष्टि का यह चित्र बनाया है, वह सच्चा सूत्रधार है। वे व्यक्ति ही वास्तव मे ज्ञानी हैं, जो इस संसार को चित्रवत (मिथ्या) समझते हैं।

अलकार—(1) निदर्शना—भूलै ... सयाना।

(ii) विरोधाभास—साची ' तासू ।

विशेष—(i) इसमे अद्वैतवाद के प्रति बिम्बवाद का प्रतिपादन है ।

(ii) जगत को चित्रवत् बताकर अद्वैतवाद के मिथ्यावाद का प्रतिपादन है ।

[६] बारहपदी रमैणी

(३२)

पहली मन मै सुमिरौं सोई, ता सम तुलि अबर नही कोई ।।
कोई न पूजै वांसूं प्रांनां, आदि अंति वो किनहू न जांनां ।।
रूप सरूप न आवै बोला, हरू गरू कछु जाइ न तोला ।।
भूख न त्रिषा धूप नही छांहीं, सुख दुख रहित रहै सब मांही ।।
अविगत अपरंपार ब्रह्म, ग्यान रूप सब ठांम ।
बहु बिचार कर देखिया, कोई न सारिख रांम ।।

शब्दार्थ—तुलि=तुल्य, समान । अवर=अन्य । हर=हलका, । गद= भारी । प्राना=ज्ञानेन्द्रिय । पूजै=पूरा पड सकना । वासू =उससे । सारिख= सरीखा, सदृश ।

सन्दर्भ—कबीर परम तत्व को अगम एव अगोचर बताते हैं ।

भावार्थ—सर्वप्रथम मैं उस परमात्मा का स्मरण करता हूँ जिसके समान अन्य कोई नही है—अर्थात् मैं अद्वितीय एव महिमा वाले परमात्मा का स्मरण करता हूं । ज्ञानेन्द्रियो द्वारा उसको प्राप्त नही किया जा सकता है । उसका आदि और अंत को कोई नही जानता है । उसके रूप, रेखा, वर्ण आदि का विचार हमसे करते नही बनता है । हल्का या माटी के रूप मे उसको तोला भी नही जा सकता है । अर्थात् न उसे भूख लगती है, न प्यास लगती है तथा धूप-छाँह उसको कुछ भी नही सताती है । वह तत्व सुख-दुख से निर्लिप्त होकर घट-घट मे व्याप्त है । वह अविगत, अपार एव ज्ञान स्वरूप ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है । हमने बहुत विचार करके देख लिया है कि राम के समतुल्य कोई भी दूसरा तत्व नही है ।

अलंकार—(i) अनन्वय—ता सम ···कोई, कोई न ··राम ।

(ii) सम्बन्धतिशयोक्ति—कोई तोला ।

विशेष—राम इन्द्रिय ग्राह्य नही है, भौतिक गुणो के परे है तथा वर्णनातीत है ।

(iii) वह द्वैत रहित अद्वैत तत्व है ।

(३३)

जो त्रिभवन पति ओहै ऐसा, ताका रूप कहौ धौं कैसा ।।
सेवत जन सेवा कै तांई, बहुत भांति करि सेवि गुसांई ।।
तैसी सेवा चाहौ लाई, जा सेवा बिन रह्या न जाई ।।
सेव करतां जो दुख भाई, सो दुख सुख वरि गिनहु सवाई ।।
सेव करता सो सुख पावा, तिन्य दुख दोऊ बिसरावा ।।

सेवग सेव भुलानियां, पथ कुपंथ न जान।
सेवक सो सेवा कर, जिहि सेवा भल मांन ॥

शब्दार्थ— ताई = लिये। करता = करते हुए। विसरावा = भूल जाता है। भल मान = सुख का अनुभव।

सन्दर्भ—कवीरदास निस्स्वार्थ सेवा का प्रतिपादन करते हैं।

भावार्थ—जो त्रिभुवन पति ऐसे महान हैं उनका स्वरूप-वर्णन किस प्रकार किया जा सकता है ? भक्त-गण तो केवल इसकी सेवा करने के लिए ही बनाए है। वे तो अपने स्वामी की विविध प्रकार से सेवा कर सकते हैं। सेवक को वही सेवा-भक्ति करनी चाहिए जिसके विना उससे रहा न जाए—अर्थात् प्रभु-भक्ति सदैव अहेतुकी होनी चाहिए। यदि प्रभु-सेवा करते हुए मुझे दुख उठाना पडे तो इस दुख को सवा गुना सुख मान कर ग्रहण करना चाहिए। जो भक्त प्रभु-सेवा मे सुख का अनुभव करता है, उसके लिए सासारिक दुख-सुख दोनो समाप्त हो जाते हैं, अर्थात् वह कर्म वन्धन से मुक्त हो जाता है। कबीर कहते हैं कि आजकल के सेवक प्रभु-सेवा के महत्व का भूल वैठे है तथा पथ-कुपथ का विवेक न करते हुए चाहे जिस साधना का अवलम्बन करने लगते है। भक्त तो वही है जो प्रभु-सेवा मे गौरव एव सुख का अनुभव करता है।

अलकार—(i) गूढोक्ति—कहौ धौं कैसा।
(ii) अनुप्रास—सेव सो सुख सुख, सेवक सेवा सेवा।
(iii) सभग पद यमक—पथ कुपथ।

विशेष—सेवा-भाव ही भक्ति का मूल आधार है।—समभाव देखे—

सो अनन्य गति जाकें मति न टरइ हनुमत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत।

(३४)

जिहि जग की तस की तस के ही, आपै आप आथि है एही।
कोई न लखई वाका भेऊ, भेऊ होइ तौ पावै भेऊ॥
वावै न दाहिन आगे न पीछू, अरध न उरध रूप नहीं कीछू॥
माय न वाप आव नहीं जावा, नां वहु जण्यां न को वहि जाया॥
वो है तसा वोही जानै, ओही आहि आहि नही आंनै॥
नैनां वैन अगोचरी, श्रवना करनी सार।
वोलन कै सुख कारनै, कहिये सिरजनहार॥

सन्दर्भ—पूर्व पद के समान।

भावार्थ—ससार की जैसी भी रचना हुई है, वह केवल इसने ही (परमात्मा ने ही) की है। वह स्वय उसमे आप विलीन हो जाता है। उसके भेद को कोई नही जान पाता है। उसका कुछ भेद हो तब तो कोई उसको प्राप्त करे

अर्थात् उसका कोई भेद है ही नही—वह भेदातीत है। इसलिए उसका भेद जानने का प्रश्न ही उत्पन्न नही होता है। न उसमे बायाँ है, न दाहिना है, न आगे है और न पीछे, न नीचे है और न ऊपर है। उसका कोई रूप भी नही है। उसके न माता है, न पिता है। न उसका जन्म होता है और न उसकी मृत्यु होती है। न उसने किसी को (लौकिक अर्थ मे) उत्पन्न ही किया है। वह जैसा है उसको वह स्वयं ही जानता है अर्थात् अपने स्वरूप को वह स्वयं ही जानता है। केवल उसी एक परम तत्व की स्थिति है। उसके अतिरिक्त कुछ है ही नही। वह परम तत्व नेत्र और वाणी से अगोचर है। वह श्रवण और कर्म का सार है अर्थात् उसी के गुणो का श्रवण करना चाहिए। उसी का गुणगान श्रवणीय है। और कर्म भी केवल उसकी भक्ति के लिए ही करना चाहिए। वचन की सुविधा को ध्यान मे रखते हुए उसको सृष्टिकर्त्ता कहा गया है।

अलंकार—(i) सम्बन्धातिशयोक्ति—कोई न लख है बाका भेऊ। नैन ·· पार।
(ii) वक्रोक्ति—भेऊ ···केऊ।
(iii) पदमैत्री—भेऊ केऊ। अरध उरध।
(iv) विभावना की व्यजना—माई न बाप।
(v) अनन्वय—वो आनैं।
(vi) काव्यलिग—बीलन · सिरजन हार।

विशेष—'तत्तथा के सिद्धान्त का आश्रय लिया गया है। जगत् के असत् तथा परम तत्व के अवाङ् मन गोचर होने का वर्णन है।

(३५)

सिरजनहार नांउ धूं तेरा, भौसागर तिरिबे कूं भेरा ॥
जे यहु भेरा रांम न करता, तौ आपै आप आवटि जग मरता ॥
राम गुसांई मिहर जु कीन्हां, भेरा साजि सत कौं दीन्हां ॥
दुख खडण मही मडणा, भगति मुकुति बिश्रांम।
बिधि करि भेरा साजिया, धन्या रांम का नाम ॥

शब्दार्थ—भेरा=वेडा, नावो या जहाजो का समूह। आवटि=जल कर। मडणा=शोभा का हेतु।

सन्दर्भ—कबीर राम-नाम की महिमा का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—हे सृष्टि कर्ता (प्रभु)! आपका नाम ही भवसागर से पार उतरने का जलयान है। यदि राम इस वेडे का निर्माण न करते (यदि आपके नाम का सहारा न होता) तो यह ससार अपनी वासनाओ की अग्नि मे स्वय ही जलकर नष्ट हो जाता। स्वामी राम ने जगत के ऊपर बहुत कृपा की जो नाम-रूपी वेडा बनाकर सत-समाज को दे दिया। नाम दुखो का खण्डन (नाश) करने वाला है और पृथ्वी की शोभा है। यही भक्ति, मुक्ति और परम शाति का हेतु है स्वय

विधाता ने इस बेडे (ससार-सागर से पार जाने के साधन) को बनाया है और उसका नाम 'राम-नाम' रख दिया है।

अलंकार—(i) रूपक—भौसागर, भाव भेरा।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—भेरा साजि।
(iii) उल्लेख—दु ख·······विश्राम।

विशेष—(i) राम-नाम की महिमा अपार है। कबीर का तात्पर्य दाशरथि राम से नही है, बल्कि उनका तात्पर्य परम ब्रह्म के गुणो से है।

(ii) यह नाम-माहात्म्य-वर्णन सगुण भक्ति जैसा है। यथा—

विश्वास एक राम-नाम को।
मानत नहिं परितीति अनत ऐसोई सुभाव मन वाम को।
पढिवो पर्‌यो न छठी, छ मत रिगु जजुर अथर्वन साम को।
+ + +
सब दिन सब लायक भग गायक रघुनायक गुन-गुरम को।
बैठे नाम काम-तरु-तर-डर कौन छोर घन घाम को।
को जानै को जैहै जमपुर, को सुरपुर परधाम को।
तुलसिहिं बहुत भलो लागत जग जीवन राम गुलाम को।
(गोस्वामी तुलसीदास)

(३६)

जिनि यह भेरा दिढ़ करि गहिया, गये पार तिन्हौं सुख लहिया॥
दुमनां ह्वै जिनि चित्त डुलावा, करि छिटके थै थाह न पावा॥
इक डूबे अरु रहे उरवारा, ते जगि जरे न राखणहारा॥
राखन की कछु जुगति न कीन्हीं, राखणहार न पाया चीन्ही॥
जिनि चिन्हां ते निरमल अगा, जे अचीन्ह ते भये पतंगा॥
रांम नांम ल्यौ लाइ करि, चित चेतन ह्वै जागि।
कहै कबीर ते ऊबरे, जे रहे रांम ल्यौ लागि॥

शब्दार्थ—भेरा=बेडा, राम-नाम का बेडा। दिढ करि=दृढतापूर्वक। गहिया=पकड रखा है। दुमना ह्वै=दुविधा मे पड कर। करि छिटकै=हाथ छूट गया। उरवारा=इसी पार। राखन=रक्षा।

सन्दर्भ—पूर्व पद के समान राम-नाम की महिमा का प्रतिपादन है।

भावार्थ—जिन लोगो ने राम-नाम रूपी नाव को कसकर (दृढनिश्चय पूर्वक) पकड रखा है (विश्वास पूर्वक अवलम्बन ग्रहण कर लिया है) वे भव-सागर के पार हो गये और उन्हे सुख की प्राप्ति हुई। द्विविधा मे पड कर जिन्होने अपना चित्त डाँवाडोल कर दिया, उनका हाथ छूट जाता है (वे बीच मे गिर पडते हैं) और उनको इस भवसागर की थाह नही मिलती है अर्थात् वे इसमे डूब जाते है। ऐसे व्यक्ति एक तो भवसागर मे डूब जाते है और यही रह जाते है तथा सासारिक

विषयाग्नि मे जलते हैं और उनको कोई बचाने वाला नही होता है। उन्होने अपने बचाव (अपने उद्धार) का कोई उपाय नही किया होता है, क्योंकि वे अपने को बचाने वाले प्रभु को पहचान ही नही पाते हैं। जो प्रभु को पहचान लेते हैं। उनका अन्त करण निर्मल हो जाता है। जो प्रभु से अपरिचित बने रहते हैं वे आसक्ति की अग्नि मे पतगे के समान जलकर नष्ट हो जाते हैं। हे जीव, तू रामनाम मे अपनी लौ लगाकर चित मे चेतकर और अपना आत्म-बोध जाग्रत कर। कबीर कहते हैं कि जिनकी लौ राम-नाम मे लगी होती है, इन्ही का उद्धार हो पाता है, अर्थात् वे ही भव-सागर मे डूबने से बच जाते है।

अलंकार — (i) रूपकातिशयोक्ति—भेरा, जग, राखणहार, पतगा।
(ii) सागरूपक—सम्पूर्ण पद।

विशेष—ससार-सागर के पार जाने के लिए एक मात्र अवलम्बन राम-नाम ही है। देखें पद स० १४६। समभाव के लिए देखें—

बरषा रितु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास।
राम नाम वर बरन जुग सावन भादव मास।
(गोस्वामी तुलसीदास)

(३७)

अरचित अविगत है निरधारा, जाण्यां जाइ न वार न पारा ॥
लोक वेद थें अछै बियारा, छाड़ि रह्यौ सबही संसारा ॥
जसकर गांउ न ठांउ न खेरा, कैसें गुन बरनू मैं तेरा ॥
नहीं तहां रूप रेख गुन बांनां, ऐसा साहिब है अकुलांनां ॥
नहीं सो ज्वांन न बिरध नही बारा, आपैं आप आपनपौं तारा ॥
कहै कबीर बिचारि करि, जिनि को लावै भंग।
सेवौ तन मन लाइ करि रांम रह्या सरवंग ॥

शब्दार्थ—खेरा=खेडा, खेत या निवास-स्थान। अकुलाना=जिसका कोई कुल न हो। बिरध=वृद्ध।

सन्दर्भ—कबीरदास परम तत्व की अनिर्वचनीयता का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—वह परम तत्व किसी के द्वारा रचा नही गया है, उसको कोई जान नही सकता है तथा वह किसी अन्य तत्व पर आधारित नही है अथवा उसको जानने के लिए कोई साधन उपलब्ध नही है। उसका वार-पार आदि-अन्त नही है और न उसको जाना ही जा सकता है। वह लोक और वेद से परे है, अर्थात् सामान्य ज्ञान अथवा अन्त ज्ञान किसी के द्वारा उसको नही जाना जा सकता है। वह समस्त ससार को छोड कर ऊपर उठा हुआ है (निर्लिप्त है।) उसका न कोई गाँव है, न कोई स्थान है और न कोई विशेष निवास-स्थान है। हे प्रभु! ऐसे आपका वर्णन मे किस प्रकार कर सकता हूँ? उस तत्व का न कोई रूप है, न रेखा है और न कोई वेष ही है। यह स्वामी ऐसा है कि जिसका कोई कुल (वश) ही

नही है। वह न तो युवक है, न वह वृद्ध है और न बालक ही। उस तत्व का अपनत्व अपने आप ही मे समाहित है। कबीर विचार पूर्वक कहते हैं कि उस तत्व के स्वरूप को खण्डश मत सोचो। वह तो सर्वव्यापी अखण्ड तत्व है। तन-मन लगा कर उसकी सेवा करो। राम सर्वव्यापी हैं।

अलंकार—(i) सबधातिशयोक्ति—जाण्या जाइ'''' ' पारा।

(ii) वक्रोक्ति कैसें '' ''''तेरा।

विशेष—(i) 'नेति नेति' निरूपण की पद्धति है।

(ii) वह तत्व अवर्णनीय इस कारण है—क्योकि वह देश-काल द्वारा परिच्छिन्न न होने के कारण वाणी की सीमा मे नही आता है।

(iii) वह स्वगतादि सभी प्रकार के भेदो से शून्य अद्वैत तत्व है। बात ऐसी ही है कि—

केशव कहि न जाहि का कहिए।

× × ×

तुलसीदास परिहरै तीन भ्रम सो आपन पहिचानै।

(गोस्वामी तुलसीदास)

(३८)

नहीं सो दूरि नहीं सो नियरा, नहीं तात नहीं सो सियरा॥
पुरिष न नारि करै नहीं क्रीरा, घांम न घांम न व्यापै पीरा॥
नदी न नाव धरनि नहीं धीरा, नहीं सो कांच नही सो हीरा॥
कहै कबीर बिचारि करि, तासूं लावो हेत।
बरन बिवरजत ह्वै रह्या, नां सो स्यांम न सेत॥

शब्दार्थ—तात=उष्ण (शत्रु)। सियरा=शीतल (मित्र)। क्रीरा=क्रीडा। घाम=धूप। घाम=दुःख। धीरा=धैर्यवान। विरजत=विवर्जित, परे।

सन्दर्भ—कबीर परम तत्व रूप प्रभु को अनिवर्चनीय बताते हैं।

भावार्थ—वह परम तत्व दूर नही है (क्योकि वह हृदयस्थ है), वह पास भी नही है (क्योकि साधना द्वारा भी दुष्प्राप्य है)। न वह उष्ण (शत्रु) है और न शीतल (मित्र) है। न वह पुरुष है और न नारी रूप ही है। वह इन दोनो मे किसी रूप मे क्रीडा नहीं करता है। न तो उसको धूप लगती है और किसी प्रकार की व्यथा ही उसको व्यापती है। न वह नदी है, न नाव है और न वह इन सबको धैर्य पूर्वक धारण वाली पृथ्वी ही है। न वह कांच (विषय-वासना स्वरूप) है, और न हीरा (सद्वृत्ति स्वरूप) ही है। कबीरदास विचार कर कहते हैं कि रे जीव, तू उस परम तत्व के प्रति अनुराग कर। वह न श्याम है और न श्वेत है। वह सब प्रकार के रगो से परे हैं।

विशेष—निर्गुण निराकार ब्रह्म की अनिवर्चनीयता का प्रतिपादन है। उसको किसी प्रकार के शब्दो मे आबद्ध नही किया जा सकता है।

(३९)

नां वो वारा व्याह बराता, पीय पितंबर स्यांम न राता ॥
तीरथ व्रत न आवै जाता, मन नहीं मोनि वचन नही बाता ॥
नाद न बिंद गरथ नहीं गाथा, पवन न पांणी संग न साथा ॥
कहै कबीर बिचारि करि, ताकै हाथि न नाहि ।
सो साहिब किनि सेविये, जाकै घूप न छांह ॥

शब्दार्थ— वारा = बालक । राता = लाल । गरथ = ग्रन्थ ।

सन्दर्भ—कबीरदास परम तत्व को अनिर्वचनीय कहते हैं ।

भावार्थ— वह राम रूपी परम तत्व न बालक है और उसने विवाह-बारात ही किया है । न वह पीताम्बरधारी है और न श्याम अथवा लाल रग का वस्त्र धारण करने वाला है । वह न तीर्थ-व्रत मे है और न कही आता-जाता है । वह मन ही मन मे मौन रहने वाला भी नही है और न वचनो का वाचाल ही । वह न नाद रूप है और न विन्दु रूप ही है । वह किसी ग्रन्थ अथवा गाथा का विषय भी नही है । वह न जल-रूप है और न प्राण रूप ही । उसने इनका कुछ भी सम्पर्क नही किया है । कवीरदास विचार पूर्वक कहते हैं कि इस तत्व रूप राम के हाथ-पैर कुछ भी नही हैं । रे जीव, तू ऐसे स्वामी की सेवा क्यो नही करता है । जिसके लिए न कही धूप है और न कही छाया ही—अर्थात् जो दु ख-सुख के सर्वथा परे है ।

अलंकार— (1) छेकानुप्रास—बारा व्याह-बराता, गरथ गाथा, पवन पांणी ।
(11) वक्रोक्ति—किनि सेविये ।

विशेष—(1) शैली लाक्षणिक है—धूप-छाँह सदृश प्रयोग ।
(11) कबीर के राम परम तत्व हैं—दाशरथि राम नही । इसी कारण वह उनके वाणी-बद्ध लौकिक रूप का निषेध करते हैं—"नावा वारा ' · राता ।" इत्यादि । वह यह भी कह देते हैं कि वाह्याचारो द्वारा वह ग्राह्य नही है—"तीरथ ·· · साथा ।" उन्होंने तो स्पष्ट कहा है कि—

दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना । राम नाम का मरम न जाना ।

(४०)

ता साहिब कै लागौ साथा, दुख सुख मेटि रह्यौ अनाथा ॥
नां जसरथ धरि औतरि आवा, नां लका का राव सतावा ॥
देवै कूख न औतरि आवा, ना जसवै ले गोद खिलावा ॥
ना वो ग्वालन कै संग फिरिया, गोबरधन ले न कर धरिया ॥
बांवन होय नहीं बलि छलिया, धरनी बेद लेन उधरिया ॥
गंडक सालिकरांम न कोला, मछ कछ ह्वै जलहि न डोला ॥
बद्री बैस्य ध्यान नही लावा, परसरांम ह्वै खत्री न संतावा ॥
द्वारामती सरीर न छाड़ा, जगनाथ ले प्यंड न गाड़ा ॥

कहै कबीर बिचार करि, ये ऊले व्योहार ।
याही थैं जे अगम है, सो बरति रह्या ससारि ।।

शब्दार्थ—अनाथा=अनाथो क । दैवै=देवकी । उधरिया=उद्धार किया ।

सदर्भ—कबीरदास अवतारवाद का खण्डन करते हैं ।

भावार्थ—तुम उस परम प्रभु की शरण मे जाओ जो अनाथों के सुख-दुख को मिटाने वाला है—अर्थात् कर्म-बन्धन से सर्वथा मुक्त कर देने वाला है। उसने दशरथ के घर मे अवतार नही लिया है और न उसने लका के राजा (रावण) को ही पीडित किया। वह देवकी की कोख से भी अवतरित नही हुआ और न यशोदा ने उसको अपनी गोद मे ही खिलाया। वह ग्वालो के साथ वन-वन नही घूमा और न उसने अपने हाथ पर गोवर्धन ही उठाया। उसने वामन का अवतार लेकर राजा बलि को नही छला ओर न वाराह के रूप मे उसने पृथ्वी और वेद का उद्धार ही किया। वह गण्डक नदी मे शालिग्राम की पिण्डी भी नही बना और न उसने वाराह अवतार ही धारण किया। वह मत्स्य (मछली का अवतार लेकर) तथा कच्छप (कछुए का अवतार लेकर) के रूप मे समुद्र-जल मे भी नही डोलता फिरा। बद्रिका आश्रम मे बैठकर उसने कभी भजन भी नही किया। परशुराम के रूप मे उसने क्षत्रियो का सहार भी नही किया। उसने (कृष्ण बनकर) द्वारिकापुरी मे अपने शरीर को भी नही छोडा, और न ही उसने जगन्नाथपुरी की मूर्ति की स्थापना ही की। कबीरदास विचार कर कहते है कि अवतारवाद से सम्वन्धित ये समस्त व्यवहार उल्टे एव व्यर्थ है। (क्योकि ये देशकाल से परिच्छिन्न हैं)। इससे यही समझो कि परम तत्व अगम है। वही सम्पूर्ण जगत मे व्याप्त है तथा सम्पूर्ण जगत को सचालित कर रहा है।

विशेष—अवतारवाद सम्बन्धी समस्त पौराणिक कथाओ की निरर्थकता का प्रतिपादन है। कबीर तो केवल सर्वव्यापी परम तत्व की आराधना का उपदेश देते हैं। लौकिक वाणी एव लौकिक व्यवहार की सीमाओ मे बाँधकर हम परमब्रह्म के महत्व को वहुत कुछ कम कर देते हैं, क्योकि—

जो जहन में आगया वह लाइन्तहा कैसे हुआ ?
जो समझ में आगया वह खुदा कैसे हुआ ?

(४१)

नां तिस सबद न स्वाद न सोहा, नां तिहि मात पिता नहीं मोहा ।।
नां तिहि सास ससुर नहीं सारा, नां तिहि रोज न रोवनहारा ।।
ना तिहि सूतिग पातिग, नां तिहि माइ न देव कथा पिक ।।
नां तिहि ब्रिध बधावा बाजै, नां तिहि गीत नाद नहीं साजै ।।
नां तिहि जाति पांत्य कुल लीका, नां तिहि छोति पवित्र नहीं सींचा ।।
कहै कबीर बिचारि करि, औ है पद निरबांन ।
सति ले मन मै राखिये, जहां न दूजी आंन ।।

शब्दार्थ—सारा=साला, पत्नी का भाई। सूतिग=जन्म का अशौच। पातिग=पातक (ब्रह्म हत्या, सुरापान, गुरुतल्पगमन, स्तेय और पातकी का ससर्ग।

सन्दर्भ— कबीरदास परम तत्व की अलौकिकता का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—उस परम तत्व का न कोई शब्द है, न कोई स्वाद और न गध ही। उसके कोई माता-पिता नही है और न उसको किसी प्रकार का मोह ही सताता है। न उसके सास-श्वसुर है और न साला ही है। न उसके लिए कोई रोता है और न रोने वाला है। उसके लिए जन्म-मृत्यु के अशौच नहीं हैं। उसके कोई आराध्या भाई नही है और न उसके लिए देव-कथा पीठ है। उसके यहाँ वृद्धि (कुल-वृद्धि) का कोई अवसर नही है और न इस कारण उसके यहाँ कभी मगल-गीत ही होते हैं। उसके यहाँ किसी प्रकार के गति-नाद का आयोजन नही होता है। उसकी न कोई जाति-पाँति है और न कोई कुल-परम्परा ही है। और न उसके यहाँ छुआछूत और पवित्रता की ही बात है। कबीरदास विचार करके कहते हैं कि जो अतीत वस्तु है, वह तो पद निर्वाण है। हे जीव, तुम सत्य तत्व को अपने हृदय मे धारण करो। वहाँ कोई अन्य तत्व नही है। वह द्वैत रहित अद्वैत तत्व है।

अलकार—(i) अनुप्रास—सबद स्वाद सोहा। विध, बधावा बाजै।
(ii) पदमैत्री—घूतिग पातिग जातिग।

विशेष—उस परम तत्व का वर्णन शब्दातीत है, साथ ही लौकिक उपमानो के द्वारा भी उसका निरूपण सम्भव नही है। वह तो वस्तुतः स्वय सिद्ध अनिर्वचनीय तत्व है।

(४२)

नां सो आवै नां सो जाई, ताक बध पिता नहीं माई॥
चार बिचार कछू नही वाकै, उनमनि लागि रहौ जे ताकै॥
को है आदि कवन का कहिये, कवन रहनि वाका ह्वै रहिये॥
कहै कबीर बिचारि करि, जिनि को खोजै दूरि।
ध्यांन धरौ मन सुध करि, रांम रह्या भरभूरि॥

शब्दार्थ—उन्मनि=उस अवस्था का द्योतक है जब मन भावाभाव अवस्था से विनियुक्त रहता है, उसे अपने ही होने और न होने की चेतना नही रहती है। यह साधना कबीर के 'सहजयोग' का एक आवश्यक तत्त्व है।

सन्दर्भ - पूर्व पद के समान।

भावार्थ—वह परम तत्व न आता है और न जाता है (अर्थात् वह जन्म-मरण के परे है)। उसके भाई, पिता और माता नही हैं। (वह सासारिक सम्बन्धो के परे है।) उसको किसी प्रकार के लौकिक आचार-व्यवहार का भी पालन नही करना पड़ता है। वह तो उन्मनि (समाधि) अवस्था मे रह कर जगत को साक्षी रूप से देखता रहता है। आदि तत्व क्या है, इसके सम्बन्ध मे कौन क्या कह सकता

है ? अर्थात् कोई कुछ नही कह सकता है। कोई यह भी नही बता सकता है कि किस प्रकार के आचरण द्वारा जीव परम तत्व को प्राप्त कर सकता है। कबीरदास भली प्रकार सोच-विचार कर कहते है कि उस परम तत्व को कहीं दूर मत खोजो। मन मे उसकी स्मृति जगाकर उसका ध्यान करो। वह परम तत्व रूप राम सर्वत्र व्याप्त है।

अलकार—वक्रोक्ति—को है रहिए।

विशेष—पूर्व पद के समान।

(४३)

नाद विद रक इक खेला, आपै गुरु आप ही चेला ।
आपै मत्र आपै मत्रेला, आपै पूजै आप पूजेला ।
आपै गावै आप बजावै, अपना किया आप ही पावै ।
आपै धूप दीप आरती, अपनी आप लगावै जाती ।।
कहै कबीर विचारि करि, झूठा लोही चांम ।
जो या देही रहित है, सो है रमिता राम ।।

शब्दार्थ—रक=तुच्छ। मत्रेला=मत्र लेने वाला। पूजेला=पूजा प्राप्त करने वाला। जाती=ज्योति।

सन्दर्भ—कबीरदास द्वैत रहित उस अद्वैत तत्व का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—नाद और बिन्दु की यह सहज साधना तो वास्तव मे एक तुच्छ खेल है। वह स्वय ही गुरु है और स्वय ही चेला है। वह स्वय ही मत्र है और स्वय मत्र लेने वाला है। स्वय पूजा है और स्वय पूजित है। वह स्वय ही गाता है और स्वय बजाता है। अर्थात् कर्त्ता और भोक्ता वह तत्व ही है। वह आपही धूप दीप और आरती है तथा आप ही उसमे ज्योति-स्वरूप है। कबीरदास विचार करके कहते है कि रक्त और चम का विभेद व्यर्थ (झूठा) है। जो तत्व देह रहित है, वही वास्तव मे राम है और वही सबमे रमा हुआ है।

अलंकार—(i) पदमैत्री—गावै, बजावै, पावै।
(ii) विरोधाभास—जो राम।

विशेष—अद्वैतवाद का प्रभाव स्पष्ट है।

[७] चौपदी रमैणी

(४४)

ऊंकार आदि है मूला, राजा परजा एकहि सूला ।।
हम तुम्ह मांहै एकै लोहू, एकै प्रांन जीवन है मोहू ।।
एकही बास रहै दस मासा, सूतग पातग एकै आसा ।।
एकही जननीं जान्यां ससारा, कौंन ग्यान थै भये निनारा ।।
ग्यांन न पायौ बावरे, धरी अविद्या मैड ।
सतगुर मिल्या न मुक्ति फल, तायै खाई बैड ।।

शब्दार्थ—आदि है मूला=उत्पत्ति का मूल कारण। मूला=व्यथा। लोहू =खून, रक्त। वास=गर्भ वास। बेंड=बेंडा, रुकावट।

संदर्भ—कबीरदास जीवन की एकता का प्रतिपादन करते हैं।

भावार्थ—ओंकार सृष्टि की उत्पत्ति का मूल कारण है। राजा और प्रजा (सम्पूर्ण समाज) को एक ही व्यथा है। हममे और तुममे एक ही प्रकार का रक्त है, एक ही प्राण है, एक ही जीवन है तथा एक ही प्रकार के मोह ने सब को आबद्ध कर रखा है। हम सब एक ही प्रकार से गर्भ मे दस मास तक रहे हैं। जन्म और मृत्यु के अवसर पर हम तुम सबको एक ही स्थान प्राप्त होता हे। सारे ससार को एक ही प्रकार से माता जन्म देती है। फिर भेद होकर सबके अलग-अलग होने का क्या आधार है अथवा किस आधार पर भेद-भाव स्थापित किया जाना चाहिए? रे पागल जीव! तुम कभी ग्यान प्राप्त नही कर सके। तुमने अपने चारों ओर अविद्या की दीवाल बना रखी है (इसी के कारण ज्ञान तुम्हारे मन-मानस मे प्रवेश नही कर पाता है।) तुमको सद्गुरु की प्राप्ति नही हुई और मोक्ष नही मिल सकी। इसी कारण विषयो की खाई का अवरोध बना हुआ है।

(४५)

बालक ह्वै भग द्वारे आवा, भग भुगतन कूँ पुरिष कहावा ।।
ग्यांन न सुमिर्‌यो निरगुण सारा, विषथैं बिरचि न किया बिचारा ।।
साध न मिटी जनम की, मरन तुराना आइ ।
मन क्रम बचन न हरि भज्या, अकुर बीज नसाइ ।।

सन्दर्भ—कबीर जीव के अज्ञान का वर्णन करते हैं।

भावार्थ—बालक रूप धारण करके यह जीव योनि-द्वार से बाहर निकला तथा उसने योनि के भोग को ही अपना पुरुषत्व समझा। उसने सारतत्व निर्गुण भगवान का कभी भी स्मरण नही किया। उसने भक्ति-भाव पूर्वक कभी भगवान की आराधना नही की। इससे उसकी जीवन की जन्म-मरण-सम्बन्धी बाधायें समाप्त नही हुई—जीने की आकाक्षा पूरी नही हुई और मृत्यु शीघ्रता पूर्वक आ पहुँची। जीव ने मन, कर्म और वचन से भगवान का स्मरण नहीं किया जिसमे ससार-ताप के अकुर तथा कर्म के बीज नष्ट हो जाते।

(४६)

तिण चरि सुरही उदिक जु पाया, द्वारै दूध बछ कूँ दीया ।।
बछा चूँखत उपजी न दया, बछा बांजि बिछोही मया ।।
ताका दूध आप दुहि पीया, ग्यांन विचार कछू नहीं कीया ।।
जे कुछ लोगनि सोई कींया, माला मंत्र बादि ही लीया ।।
पीया दूध रुध्र ह्वै आया, मुई गाइ तब दोष लगाया ।।
बाकस ले चमरां कूं दीन्हीं, तुचा रंगाइ करौती कीन्ही ।।
ले रुकरौती बैठे संगा, ये देखौ पांडे के रंगा ।।

तिहि रुकरौती पांणी पीया, यह कुछ पांडे अचिरज कीया ॥
अचिरज कीया लोक मै, पीया सुहागल नीर ।
इद्री स्वारथि सब कीया, बध्या भरम सरीर ॥

शब्दार्थ—तिण=घास फूस । सुरही=सुरभी, गाय । उदिक=पानी । चूखत=धन चूसते हुए । बाकस=बख्शिश, स्वल्प द्रव्य । तुच=त्वचा ।

सन्दर्भ—कबीर कहते है कि अत्यधिक स्वार्थपरकता के कारण ही जीव दुख भोगते है ।

भावार्थ—गाय घास-फूस खाकर और पानी पीकर द्वार पर अपने बछडे (बछिया) के लिए दूध देती है । थन चूसते हुए दूध पीते हुए बछडे पर गाय के स्वामी को दया नही आती है । और वह बछडे को अलग बाँध देते हैं । और वह इस प्रकार माँ-बेटे के बीच बिछोह कर देता है । वह बछडे के भाग का दूध दुह कर स्वय पी लेता है । ऐसा करते हुए वह किसी प्रकार का सोच विचार नही करता है । जैसा सब लोग करते हैं, वैसा ही पडित जी भी करते है । वे माला-मत्र का जप व्यर्थ ही करते हैं । रक्त से बनने वाले दूध को वे पी जाते है (मानो गाय का रुधिर ही पीते हो) । इससे गाय शक्ति हीन होकर मर जाती है । उसकी मृत्यु का कारण कोई रोग बता देते हैं । कुछ थोडा सा द्रव्य लेकर वे मरी हुई गाय को चमार के सुपुर्द कर देते है । उसी की खाल को रगवाकर मसक तैय्यार करा लेते हैं । उस मसक बाजे को लेकर सब पडितो के साथ बैठ जाते हैं । अब आप ही देखिए कि पवित्रता की दुहाई देने वाले, पडितजी के क्या ठाठ है ? वे उस मसक का पानी पीते है । पडितजी का यह कार्य आश्चर्य मे डालने वाला है । (पवित्रता का ढोग करने वाले) पडितजी आश्चर्य मे डालने वाला व्यवहार करते है । वे चमडे के बने हुए पुर द्वारा खीचा हुआ ताजी पानी पीते हैं । कबीर कहते हैं कि पडित जी की भांति सब लोग इन्द्रियो की विषयासक्ति के वशीभूत होकर इस प्रकार के कार्य करते हैं और इस प्रकार शरीर के माया-मोह मे ही बधे रहते है ।

अलंकार—अनुप्रास—बछा बाँधि बिछोही ।

विशेष—(1) गौ-सेवा का दम्भ करने वाले किस प्रकार व्यवहार मे गौहत्या के वास्तविक रूप से उत्तरदायी है, इसकी सुन्दर झाँकी प्रस्तुत की गई है । पाखण्डी जन पर भी करारा व्यग्य है ।

(४७)

एकै पवन एकही पांणी, करी रसोई न्यारी जांनी ॥
माटी सूं माटी ले पोती, लागी कहौ कहां धूं छोती ॥
धरती लीपि पवित्र कीन्ही, छोति उराय लीक बिचि दीन्ही ॥
थाका हम सूं कहौ बिचारा, क्यू भव तिरिहौ इहि आचारा ॥
ए पांखड जींव के भरमा, मानि अमांनि जीव के करमा ॥
करि आचार जु ब्रह्म सतावा, नांव बिनां सतोष न पावा ॥

सालिगरांम सिला करि पूजा, तुलसी तोड़ि भया नर दूजा ॥
ठाकुर ले पाटै पौढावा, भोग लगाइ अरु आपै खावा ॥
साच सील का चौका दीजै, भाव भगति की सेवा कीजै ॥
भाव भगति की सेवा मांनै, सतगुर प्रकट कहै नही छांनै ॥
अनभै उपजि न मन ठहराई, परकीरति मिलि मन न रूमाई ॥
जब लग भाव भगति नही करिहौ, तब लग भवसागर क्यूं तिरिहौ ॥
भाव भगति बिसवास बिनु, कटै न ससै सूल ।
कहै कबीर हरि भगति बिन, मूकति नहीं रे मूल ॥

शब्दार्थ—पाणी = पानी । पाखण्ड = वाह्याचार । मान—अमानि = ऊँच-नीच की भावना । नट दूजा = भिन्न व्यक्ति (भक्त)

सन्दर्भ—कबीरदास दम्भ को त्याग कर सत्याचरण का उपदेश देते हैं ।

भावार्थ—एक ही हवा है और एक ही पानी है । उनसे तैयार की हुई रसोई को (मिथ्याभिमान के वशीभूत होकर) अलग-अलग समझ लिया । मिट्टी लेकर जमीन (चौके का स्थान) पोत लिया । परन्तु यह तो कोई बताव कि उसमे छूत कहाँ लगी हुई थी ? धरती को लीप कर पवित्र बना लिया और छुआछूत की अपवित्रता से बचने के लिए बीच मे एक लकीर खीच ली । इससे क्या हुआ । इस पवित्रता और अपवित्रता का रहस्य हमे कोई समझा द । ऐसी भेद-बुद्धि पर आधारित आचरण करके कोई व्यक्ति भव सागर से किस प्रकार पार हो सकगा ? ये समस्त वाह्याचार तो जीव के भ्रम स उत्पन्न हुए ह । मान-सम्मान, ऊँच-नीच का भेद ये सब मनुष्य के ही बनाए हुए हैं । इस प्रकार क आचरण द्वारा जीव ईश्वर को ही कष्ट देता है । ईश्वर के नाम स्मरण के बिना जाव को सतोप (सुख) की प्राप्ति नही हो सकती है । तुमने पत्थर को शालिग्राम मानकर पूजा हे । तुलसी के पत्त तोड कर पत्थर पर चढाकर व्यक्ति अपने आप को अन्य व्यक्तियो की अपेक्षा भिन्न एव श्रेष्ठ समझने लगता हैं । ठाकुर जी को लेकर ये लोग पट्टे पर सुला देते हैं तथा उनका भोग लगा कर (मूर्ति को प्रसाद दिखा कर) स्वय सब कुछ खा जाते हैं ।

आडम्बर की भर्त्सना करते हुए कबीरदास सत्य आचरण का उपदेश देते हैं—हे जीव, सत्य और शील का अपने अन्तःकरण मे चौका लगाओ । उसक बाद भक्ति-भाव पूर्वक भगवान की सेवा करो । ईश्वर भावपूर्ण भक्ति से ही प्राप्त होते हैं । सद्गुरु ने इस बात को अप्रत्यक्ष रूप से नही, अपितु स्पष्टत. कहा ह । जब तक अभय की स्थिति नही होती है जो भेद-भाव और द्वैत भावना से मुक्त होने पर ही सम्भव है तब तक मन की चचलता नही जाती है । और मन स्थिर न हो सकने के कारण परोपकार (परम तत्व के प्रेम) मे समाहित नही हो पाता ह । और जब तक प्रेम भाव से प्रभु की भक्ति नही करोगे, तब तक हे जीव, तुम भवसागर क पार किस प्रकार जा सकोगे ? प्रेम सहित प्रभु-भक्ति और प्रभु के प्रति अनन्य

विश्वास के अभाव मे ससार के भ्रम एव सशय जनित कष्टों का नाश नही होता है। कबीरदास कहत है कि मूल सिद्धात यह है कि भगवान की भक्ति के विना व्यक्ति को मोक्ष की प्राप्ति नही होती है।

अलकार—(i) गूढोक्ति—लागी''' छोती।
(ii) वक्रोक्ति—क्यू''''आचार, क्यू तरिहो।
(iii) सभग पद यमक—मानि अमानि।
(iv) रूपक—साच सील का चौका, भाव भगति की सेवा, भवसागर, ससै सूल।

विशेष—(i) समाज मे प्रचलित वाह्याचारो पर करारी चोट है। छुआछूत के नाम पर प्रचलित 'आठ कनौजिया नौ चूल्हे' जैसे मिथ्याचारो पर तीखा व्यग्य है।

(ii) नाम—स्मरण की महिमा है।

(iii) कबीर प्रभु-भक्ति के लिए प्रेमा भक्ति (श्रद्धा) और विश्वास को मूल अवलम्बन मानते हैं। समभाव देखे—

भवानी शकरौ वन्दे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ।
याभ्या विना न पश्यन्ति सिद्धा स्वान्त स्थमीश्वरम्।
(गोस्वामी तुलसीदास)

(iv) परकीरति मिलि मन न समाई। जीव-सेवा के विना मन प्रभु-भक्ति मे स्थापित हो ही नही सकता है—

सो अनन्य गति जाकें मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत। (गोस्वामी तुलसीदास)

(v) सत्य शील—सत्य शील साधना के आधार स्तम्भ है। इन्ही पर चल कर साधक अपने पथ पर अग्रसर हो सकता है। धर्म रथ का निरूपण करते हुए गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है कि—

सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ ध्वजा पताका।

(v) कहै कबीर ''' नही रे मूल। तुलना करें—

वारि मथे वरु होहि घृत, सिकता ते वरु तेल।
विनु हरि भगति न भव तरिय, यह सिद्धान्त अपेल।

तथा— नाहिन आवत आन भरोसो।

× × ×

वहु मत सुनि वहु पंथ पुराननि जहाँ कहाँ झगरो सो।
गुरु कह्यो राम-भजन नीको मोहि लगत राज-डगरो सो।
तुलसी विनु परतीति प्रीति फिरि-फिरि पचि मरै मरो सो।
राम-नाम बोहित भव-सागर चाहै तरन तरो सो।
(गोस्वामी तुलसीदास)

———